बयानुल क़ुरान

हिस्सा अव्वल
तर्जुमा व मुख़्तसर तफ़सीर
सूरतुल फ़ातिहा व सूरतुल बक़रह

अज़
डॉक्टर इसरार अहमद

بِسۡمِ اللّٰہِ الرَّحۡمٰنِ الرَّحِیۡمِ

अर्ज़े मुरत्तब

क़ुरान हकीम नौए इन्सानी के लिये अल्लाह तआला का आखरी और तकमीली (complete) पैगाम-ए-हिदायत है, जिसे नबी आखिरुज्ज़मान मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की दावत व तब्लीग में मरकज़ (center) व महवर (axis) की हैसियत हासिल थी। आप ﷺ ने इस क़ुरान की बुनियाद पर ना सिर्फ दुनिया को एक निज़ामे अद्ल इज्तमाई अता फ़रमाया बल्कि इस आदिलाना निज़ाम पर मब्नी एक सालेह मआशरा भी बिलफअल क़ायम करके दिखाया। आप ﷺ ने इस क़ुरान की रहनुमाई में इन्क़लाब के तमाम मराहिल तय करते हुए नौए इन्सानी का अज़ीम तरीन इन्क़लाब बरपा फरमा दिया। चुनाँचे यह क़ुरान महज़ एक किताब नहीं “किताबे इन्क़लाब” है, और इस शऊर के बगैर क़ुरान मजीद की बहुत सी अहम हक़ीक़तें क़ुरान के क़ारी पर मुन्कशिफ (ज़ाहिर) नहीं हो सकतीं।

अल्लाह तआला जज़ा-ए-खैर अता फ़रमाये सदर मौसिस मरकज़ी अंजुमन खुद्दामुल क़ुरान लाहौर और बानी-ए-तंज़ीमे इस्लामी मोहतरम डॉक्टर इसरार अहमद हफीज़ुल्लाह को जिन्होंने इस दौर में क़ुरान हकीम की इस हैसियत को बड़े वसीअ पैमाने पर आम किया है कि यह किताब अपनी दीगर (अन्य) इम्तियाज़ी हैसियतों के साथ-साथ मौहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ का आला-ए-इन्क़लाब और आप ﷺ के बरपा करदा इन्क़लाब के मुख्तलिफ

मराहिल के लिये ब-मंज़िला-ए-मैन्युअल (manual) भी है, लिहाज़ा इसका मुताअला (study) आँहुज़ूर ﷺ की दावत व तहरीक और इन्क़लाबी जद्दो-जहद के तनाज़ुर (दृष्टिकोण) में किया जाना चाहिये और इसके क़ारी को खुद भी "मन्हज-ए-इन्क़लाबे नबवी ﷺ" पर मब्नी इन्क़लाबी जद्दो-जहद में शरीक होना चाहिये। ब-सूरते दीगर (अन्यथा) वह क़ुरान हकीम के मआरफ़ (तालीम) के बहुत बड़े खज़ाने तक रसाई (पहुँच) से महरूम रहेगा।

मोहतरम डॉक्टर साहब ने अपने दौरा-ए-तर्जुमा-ए-क़ुरान (बयानुल क़ुरान) में भी क़ुरान करीम की इस इम्तियाज़ी हैसियत को पेशे नज़र रखा है, जिसे दावत रुजू इलल क़ुरान के इन्तहाई अहम संगे मील की हैसियत हासिल है। इस बात की ज़रूरत शिद्दत से महसूस हो रही थी कि इस शहरा-ए-आफाक़ "बयानुल क़ुरान" को मुरत्तब करके किताबी सूरत में पेश किया जाये। चुनाँचे राक़िमुल हुरूफ़ ने अल्लाह तआला की ताईद व तौफ़ीक़ तलब करते हुए कुछ अरसा क़ब्ल इस काम का बीड़ा उठाया और पहले "तआरुफे क़ुरान" और फिर रफ्ता-रफ्ता सूरतुल फ़ातिहा और सूरतुल बक़रह की तरतीब व तस्वीद (आलेखन) मुकम्मल की। अब तक मुकम्मल होने वाला काम किताबी सूरत में "बयानुल क़ुरान" (हिस्सा अव्वल) के तौर पर पेश किया जा रहा है। क़ारईन किराम (पाठकों) से इस्तदआ (निवेदन) है कि वह अल्लाह तआला के हुज़ूर इस आजिज़ के लिये उस हिम्मत व इस्तक़ामत (दृढ़ता) की दुआ करें जो इस अज़ीम काम की तकमील के लिये दरकार है।

हाफ़िज़ खालिद महमूद खिज़र
मुदीर शौबा मतबूआत, क़ुरान अकेडमी लाहौर
नवम्बर, 2008

بِسۡمِ اللّٰہِ الرَّحۡمٰنِ الرَّحِیۡمِ

तक़दीम

इसरार अहमद

इन सतूर के नाचीज़ राक़िम को क़ुरान मजीद का मुफ़स्सिर तो बहुत दूर की बात है, मरव्वजा मफ़हूम के ऐतबार से "आलिमे दीन" होने का भी हरगिज़ कोई दावा नहीं है, ताहम (हालाँकि), खालिसतन "تحدیثاً لِلنّعمۃ" (बा-हवाला "وَاَمَّا بِنِعۡمَۃِ رَبِّکَ فَحَدِّثۡ") अल्लाह तआला की उन नेअमतों के ऐतराफ़ व इज़हार में कोई कबाहत महसूस नहीं होती कि उसने अपने ख़ास फज़ल व करम से ऐसे हालात पैदा कर दिये कि अवाइल (early) उमर ही में क़ुराने हकीम के साथ एक दिली उन्स (घनिष्ठ परिचय) और ज़ेहनी मुनास्बत (सम्बन्ध) क़ायम होती चली गयी। चुनाँचे अव्वलन बिल्कुल ही नौउम्री में (हाई स्कूल के इब्तदाई सालों के दौरान) अल्लामा इक़बाल की शायरी के ज़रिये क़ुरान की अज़मत, मिल्लते इस्लामी की निशाते सानिया की उम्मीद और इसके ज़िमन में क़ुरान की अहमियत का एक गहरा नक़्श क़ल्ब पर क़ायम फरमा दिया, फिर एक खानदानी रिवायत के मुताबिक़ हाई स्कूल की तालीम के दौरान अरबी को एक इज़ाफ़ी मज़मून की हैसियत से इख़्तियार करने की सूरत पैदा फरमा दी जिससे अरबी ग्रामर की असासात (आधार) का इल्म हासिल हो गया। और फिर मेट्रिक के इम्तिहान के बाद फराग़त के दिनों में, जबकि

1947 ईस्वी के मुस्लिम कश फसादात के नतीजे में हम लगभग एक माह क़स्बा हिसार (जो अब भारत की रियासत हरयाणा में है) में हिन्दुओं के हमलों से दिफ़ाअ (बचाव) के लिये चंद मुहल्लों पर मुश्तमिल एक दिफाई ब्लाक में “महसूर” थे, क़ुरान हकीम से पहले मानवी तआर्रुफ़ की यह सूरत पैदा फरमा दी कि मुझे और मेरे बड़े भाई इज़हार अहमद साहब मरहूम को एक मस्जिद में बैठ कर मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी मरहूम की माहनामा “तर्जुमानुल क़ुरान” में शाया होने वाली तफ़सीर सूरह युसुफ के इज्तमाई के मुताअले और उस पर बाहमी मुज़ाकरे का मौक़ा मिला, जिससे अंदाज़ा हुआ कि क़ुरान फ़साहत व बलाग़त की मेराज और सरचश्मा-ए-हिदायत ही नहीं, बल्कि मिम्बा-ए-इल्म व हिकमत भी है, और वाक़िअतन इस लायक़ है कि बेहतरीन ज़हनी व फिक्री सलाहियतों को इसके इल्म व फ़हम के हुसूल में इस तौर से सर्फ़ (खर्च) किया जाये कि अव्वलन इसके अमूमी (सामान्य) पैगाम को सही तौर पर समझें जो कि इल्म व हिकमत के बहर-ए-ज़खार की सतह पर बिल्कुल उसी तरह तैर रहा है जैसे किसी तेल बरदार (वाहक) जहाज़ में शिकस्त व रेख्त (विनाश) के बाइस (कारण) उससे निकाल कर बहने वाला तेल सतह समुन्दर पर तैर रहा होता है, और फिर इसकी गहराइयों में गोताज़नी करके इसकी तह से इसके फ़लसफ़ा व हिकमत के असल मोतियों को तलाश करें!

अल्हम्दुलिल्लाह, सुम्मा अल्हम्दुलिल्लाह, कि यह इन ही अमूरे सलासा के नतीजे का ज़हूर था कि जब तक़सीमे हिन्द के वक़्त एक सौ सत्तर मील का सफ़र (हिसार से हैड

सुलेमानकी तक) पैदल काफ़िले के साथ आग और खून के दरिया उबूर (पार) करके पाकिस्तान पहुँचना नसीब हुआ तो फ़ौरन तहरीके जमाते इस्लामी के साथ अमली वाबस्तगी (practical commitment) हो गयी। (जो अव्वलन इस्लामी जमीयते तलबा में शमूलियत [सह-भागिता] की सूरत में थी, और उसके बाद जमाते इस्लामी की रुक्नियत की शक्ल में!) और इस पूरे दस साला अरसे के दौरान जमीयत और जमाअत के इज्तमाआत में "दरसे क़ुरान" की ज़िम्मेदारी अमूमन मुझ पर आयद (लागू) होती रही। जिसे बिलउमूम बहुत इस्तेहसान की नज़रों से देखा जाता था। अगरचे मैं अच्छी तरह समझता था कि सामईन (श्रोताओं) की जानिब से यह तहसीन व तारीफ़ इक़बाल के इस शेर के ऐन मुताबिक़ है कि:

ख़ुश आ गयी है जहाँ को क़लंदरी मेरी,
वरना शेर मेरा क्या है! शायरी क्या है!!

मज़ीद बराँ (इसके अलावा) मैं हरगिज़ इसका दावा भी नहीं करता कि मेरे इस तअल्लुम व तदब्बुर क़ुरान के ज़ोक़ व शौक़ में रोज़ अफज़ो (तेज़ी से) इज़ाफे में इस खारजी पसंदीदगी की बिना पर पैदा होने वाली "हिम्मत अफज़ाई" को सिरे से कोई दखल हासिल नहीं था, लेकिन वाक़्या यह है कि मैं अपने दरूस (course) के लिये तैयारी के ज़िमन में जो मुताअला करता और मुख्तलिफ़ अरबी और उर्दू तफासीर से रुजू करता और फिर अपने ज़ाती गौरो फ़िक्र से भी काम लेता तो उसके नतीजे में मुझ पर क़ुरान की अज़मत मुन्कशिफ (स्पष्ट) होती चली गयी। और इस क़ौल को हरगिज़ किसी मुबालगे पर मब्नी ना समझा जाये कि क़ुरान

ने मुझे अपना "असीर" (possess) कर लिया। चुनाँचे यह इसी असीरी का मज़हर है कि मैंने 1952 ईस्वी ही में (बीस साल की उम्र में) मेडिकल एजुकेशन के ऐन वस्त (बीच) में ये शऊरी फैसला कर लिया था कि अब यह तिब्ब (मेडिकल) की तालीम भी और तबाबत (प्रैक्टिस) का पेशा भी, सब मेरी तरजीहात में नम्बर दो पर रहेंगे, अव्वलीन तरजीह ख़िदमते क़ुरान हकीम और ख़िदमते दीने मतीन को हासिल रहेगी! और फिर 1971 ईस्वी में क़मरी हिसाब से चालीस साल की उम्र में जब यह महसूस हुआ कि अल्लाह तआला ने अपने ख़ुसूसी फ़ज़ल व करम से मुझ पर अपनी शाने "عَلَّمَ الْقُرْاٰنَ" के साथ-साथ "عَلَّمَهُ الْبَيَانَ" का भी किसी दर्जे में फैज़ान फरमा दिया है तो अपने पेशा-ए-तबाबत को बिल्कुल खैरबाद कह कर अपने आप को हमातन (हर हाल) और हमावक़्त (हर वक़्त) क़ुराने मुबीन और दीने मतीन की ख़िदमत के लिये वक़्फ़ कर दिया।

मुझ पर अल्लाह तआला का एक ख़ास फ़ज़ल व करम इस ऐतबार से भी हुआ कि उसने मुझे किसी एक लकीर का फ़क़ीर होने से बचा लिया। चुनाँचे क़ुरान के इल्म व फ़हम के ज़िमन में मेरे इस्तफ़ादे का हल्क़ा (दायरा) बहुत वसीअ भी है। और बाज़ ऐतबारात से तज़ाद (विरोध) का हामिल (धारक) भी! मैंने अपनी एक तालीफ़ "दावत रुजूअ इलल क़ुरान का मंज़र व पसमंज़र" में इसकी पूरी तफसील दर्ज कर दी है कि मेरे इल्म व फ़हमे क़ुरान के "हौज़" में तफ़सीर क़ुरान के चार सिलसिलों की नहरों से पानी आता रहा, जिन पर पाँचवा इज़ाफा मेरी तालीम में शामिल उलूमे तबीइया (प्राकृतिक विज्ञान) के मबादयात (आधार) का इल्म था।

फिर अल्लाह ने मुझे जो मन्तक़ी ज़हन अता फ़रमाया था उसके ज़रिये इन पाँच सिलसिलों से हासिलशुदा मालूमात में "जमीअ व तवाफ़िक़" (synthesis) क़ायम किया। जिसकी बिना पर बहम्दुलिल्लाह मेरे "बयानुल क़ुरान" को एक जामियत हासिल हो गयी। और ग़ालिबन यही इसकी मक़बूलियत का असल राज़ है।(1) वल्लाहु आलम!

एक मुस्तनद "आलिमे दीन" ना होने के बावजूद जिस चीज़ ने मुझे दर्स व तदरीसे क़ुरान की जुर्रात (बल्कि ठेठ मज़हबी हल्क़ों [दायरों] के नज़दीक "जसारत") की हिम्मत अता फ़रमायी, वह नबी अकरम ﷺ का यह क़ौले मुबारक है कि: ((بَلِّغُوا عَنِّي وَلَوْ آيَةً)) यानि "पहुँचा दो मेरी जानिब से ख्वाह एक ही आयत!" (सही बुखारी, और उसके अलावा तिरमिज़ी, और अहमद दारमी रहमतुल्लाह अलै०)। चुनाँचे मेरे नज़दीक जिन उलूमे दीनी की तहसील को उल्माये किराम लाज़मी क़रार देते हैं वह किसी के "मुफ़्ती" बनने के लिये तो लामहाला लाज़मी हैं, लेकिन क़ुरान के दाई और मुबल्लिग़ बनने के लिये हरगिज़ ज़रूरी नहीं हैं। इसलिये कि क़ुरान का पैगाम अगरचे ता क़यामे क़यामत पूरी नौए इंसानी के लिये था, ताहम (हालाँकि) इसके अव्वलीन मुख़ातिब तो "उम्मी" थे। चुनाँचे क़ुरान के असल पैगाम को अल्लाह तआला ने निहायत "यसीर" सूरत में, जैसे कि पहले अर्ज़ किया गया, एक अथाह समुन्दर की सतह पर तैरने वाले तेल के मानिन्द पेश किया (यही वजह है कि सूरतुल क़मर में चार बार फ़रमाया गया):

وَلَقَدْ يَسَّرْنَا الْقُرْاٰنَ لِلذِّكْرِ فَهَلْ مِنْ مُّدَّكِرٍ

"हमने नसीहत व हिदायत के लिये क़ुरान को बहुत आसान बना दिया है, तो है कोई जो इससे तज़क्कुर हासिल करे!"

क़िस्सा मुख़्तसर--- लाहौर में 1965 ईस्वी से मेरे बाज़ाब्ता हल्क़ा मुताअला-ए-क़ुरान (organised centers to understand Quran) क़ायम हुए तो उसके नतीजे में पहले 1972 ई० में मरकज़ी अंजुमन खुद्दामुल क़ुरान लाहौर क़ायम हुई, जिसकी कोख़ से ज़ेली अंजुमनों का एक सिलसिला बरामद हुआ (कराची, मुल्तान, फैसलाबाद, झंग, कोएटा, इस्लामाबाद, पेशावर) फिर 1976 ई० में लाहौर में क़ुरान अकेडमी क़ायम हुई, और उसकी "बेटियों" के तौर पर कराची, मुल्तान, फैसलाबाद और झंग में भी अकेडमियाँ वजूद में आयीं। साथ ही पाकिस्तान के तूल व अर्ज़ में बड़े-बड़े शहरों में मेरे दर्से क़ुरान की महफ़िलें मुनअक्क़िद (आयोजित) होने लगीं। फिर क़ुरानी तरबियत गाहों (जो एक हफ़्ते से लेकर एक महीने तक के अरसे पर मुहीत होती थीं) का सिलसिला शुरू हुआ। इधर लाहौर में सालाना क़ुरान कॉन्फ्रेंसों का सिलसिला जारी हुआ और फिर जब पाकिस्तान टेलिविज़न पर यह दर्से क़ुरान शुरू हुआ तो अव्वलन अल् किताब फिर अलिफ़ लाम मीम फिर नबी कामिल (ﷺ) और बिल आख़िर "अल् हुदा" का हफ़्तावार प्रोग्राम जो पूरे पन्द्रह महीने इस शान से जरी रहा कि हफ़्ते के एक ही दिन, एक ही वक़्त पर, पाकिस्तान के तमाम टी०वी० स्टेशनों से नशर (प्रसारित) होता था। तो उस ज़माने में जो मक़बूलियत हासिल हुई

उसकी बिना पर मुझे अपने बारे में वह शदीद अन्देशा लाहक़ हो गया था जिसका ज़िक्र एक हदीस में आया है कि आँहुज़ूर ﷺ ने इरशाद फ़रमाया: "किसी शख्स की तबाही के लिये यह बात काफी है कि उसकी जानिब उँगलियाँ उठनी शुरू हो जायें!" इस पर दरयाफ्त किया गया कि: "अगर यह किसी चीज़ की बुनियाद पर हो तो क्या तब भी?" तो आप ﷺ ने फ़रमाया: "हाँ तब भी, इसलिये कि इससे इन्सान के लग़ज़िश में मुब्तला होने (यानि उसमें उजुब [बदलाव] और तकब्बुर जैसी हलाकत ख़ेज़ बीमारियों के पैदा हो जाने) का अन्देशा पैदा हो जाता है। इल्ला (सिवाय) यह कि अल्लाह की रहमत शामिल हाल हो!" (इस हदीस को मुहद्दिस ज़हबी रहि० ने हज़रत इमरान बिन हुसैन (रज़ि०) से रिवायत किया है, अगरचे इसकी रिवायत में किसी क़दर ज़ौफ़ मौजूद है।) इसलिये कि उस ज़माने में फिल वाक़ेअ कैफ़ियत यह हो गई थी कि मैं जिधर जाता था लोग एक-दूसरे को इशारों के ज़रिये मेरी तरफ़ मुतवज्जा करते थे। यह भी उस ज़माने की बात है कि मुझसे मुतअद्दिद (कई) लोगों ने तफसीरे क़ुरान लिखने की फ़रमाइश की, और एक पब्लिशर ने तो बहुत इसरार किया कि आप एक तर्जुमा-ए-क़ुरान ही लिख दें। लेकिन मैंने हमेशा और सबसे यही कहा कि मेरा मक़ाम नहीं है! इस दावते क़ुरानी में अगरचे मेरा ज़्यादा ज़ोर क़ुरान के चीदा-चीदा (ख़ास-ख़ास) मक़ामात पर मुश्तमिल "मुताअला-ए-क़ुरान हकीम के एक मुन्तखब निसाब" के दर्स पर रहा, लेकिन बहम्दुलिल्लाह दो बार पूरे क़ुरान मजीद का दर्स देने की सआदत (सौभाग्य) भी हासिल हुई, अगरचे वह सारा टेप रिकॉर्डशुदा मौजूद नहीं है!

इस दावते क़ुरानी का नुक़्ता-ए-उरूज यह था कि 1948 ई० (1404 हिजरी) में नमाज़े तरावीह के साथ दौरा-ए-तर्जुमा-ए-क़ुरान का आग़ाज़ हुआ। चुनाँचे हर चार रकअत तरावीह से क़ब्ल उन रकाअतों में पढ़ी जाने वाली आयात का तर्जुमा और मुख़्तसर तशरीह बयान होती थी, फिर नमाज़ में उनकी समाअत होती थी, जिसके नतीजे में, बाज़ लोगों में कम और बाज़ में ज़्यादा, वह कैफ़ियत पैदा हो जाती थी जिसे इक़बाल ने अपने इस शेर में बयान किया है कि:

तेरे ज़मीर पर जब तक ना हो नुज़ूले किताब
गिरह कुशा है ना राज़ी ना साहिबे कशाफ़!

इस अमल के नतीजे में नमाज़े इशा और नमाज़े तरावीह की तकमील में लगभग छ: घंटे सर्फ़ (खर्च) होते थे। और बहम्दुलिल्लाह सामईन का जोशो ख़रोश और ज़ोक़ो शौक़ दीदनी होता था। और सुम्मा अल्हम्दुलिल्लाह कि अब यह सिलसिला पाकिस्तान के बहुत से मक़ामात पर मेरी सल्बी और माअनवी औलाद के ज़रिये जारी है!

इस सिलसिले में दौरा-ए-तर्जुमा-ए-क़ुरान का जो प्रोग्राम 1998 ई० में कराची की क़ुरान अकेडमी की जामा मस्जिद में हुआ, उसकी ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग आला मैयार पर की गयी थी। चुनाँचे यह बहम्दुलिल्लाह ऑडियो-वीडियो कैसिटों और C.Ds और D.V.Ds और टी०वी० चैनल्स के ज़रिये पूरी दुनिया में निहायत वसीअ पैमाने पर फ़ैल चुका है। और अब इसे किताबी शक्ल में भी शाया (प्रकाशित) करने का सिलसिला शुरू हो रहा है, जिसकी पहली जिल्द आपकी ख़िदमत में हाज़िर है! इसकी तबाअत

व अशाअत (printing & publishing) के सिलसिले में अंजुमन खुद्दामुल क़ुरान सूबा सरहद के सदर जनाब डॉक्टर इक़बाल साफ़ी ने ताकीद (focus) का जो दबाव मरकज़ी अंजुमन पर बरक़रार रखा और माली तआवुन (सहयोग) भी पेश किया, उसकी बिना पर इससे इस्तफादह (फ़ायदा) करने वाले हर शख्स पर उनका यह हक़ है कि उनके लिये दुआये खैर ज़रूर करे।

आखरी बात यह कि इस "बयानुल क़ुरान" के ज़िमन में अगर असहाबे इल्म मेरी गलतियों की निशानदेही करें तो मैं ममनून (आभारी) हूँगा। और आइन्दा तबाअत (प्रिंटिंग) में तसहीह (सुधार) भी कर दी जायेगी। इस बात को दोहराने की चंदआँ ज़रूरत नहीं है कि मैं ना मुफ़स्सिर होने का मुद्दई हूँ ना आलिम होने का, बल्कि सिर्फ़ अल्लाह के कलामे पाक और उसके दीने मतीन का अदना ख़ादिम हूँ। और मेरी सब हज़रात से इस्तदआ (निवेदन) है कि मेरे हक़ में दुआ करें कि अल्लाह मेरी मसाई (कोशिशों) को शर्फ़े क़ुबूल अता फरमाये और निजाते उखरवी का ज़रिया बना दे। आमीन! या रब्बल आलमीन!

(नोट: इस पूरी बहस में मैंने अक़ामते दीन की अमली जद्दो-जहद के लिये तंज़ीमे इस्लामी के क़ियाम का ज़िक्र नहीं किया। इसलिये कि यह एक मुस्तक़िल और जुदागाना बाब है, और इस मुख़्तसर 'तक़दीम' में ना उसकी गुंजाइश है ना ज़रूरत। ताहम उसके लिये मेरी तालीफात "तहरीक जमाते इस्लामी: एक तहक़ीक़ी मुताअला" और

"सिलसिला-ए-अशाअत तंज़ीमे इस्लामी" अज़ अव्वल ता दहम का मुताअला मुफ़ीद होगा।)

दुआ का तालिब

ख़ाकसार **इसरार अहमद** अफ़ी अन्हु

26 नवम्बर, 2008

तक़दीम तबीअ सालिस

"बयानुल क़ुरान" (हिस्सा अव्वल) के पहले दो एडिशन चंद ही माह में (यानि देखते ही देखते!) ख़त्म हो गये। और यह बात मेरे लिये बहुत हैरतअंगेज़ है। इसलिये कि मैं अव्वलन तो मुफ़स्सिरे क़ुरान ही नहीं हूँ, सानियन मेरा किसी मारूफ़ मज़हबी फ़िरक़े या मस्लक से कोई तंज़ीमी ताल्लुक़ भी नहीं है। इन अमूर (विवादों) के अलल-रग्म (बावजूद) इसकी इस क़दर पज़ीराई (अभिवादन) यक़ीनन अल्लाह तआला की किसी ख़ुसूसी मशीयत (मर्ज़ी) की मज़हर (घोषणा) है। वल्लाहु आलम!!

क़ुरान हकीम की इस तर्जुमानी में अगर कोई खैर वजूद में आया है तो वह सरासर अल्लाह तआला के फ़ज़ल व करम से है। और खालिसतन उसकी अता व मरहम्मत (अनुदान) का नतीजा है। और अगर किसी मक़ाम पर कोई गलती हो गई है तो वह सरासर मेरे इल्म या फ़हम का क़सूर है, जिसके लिये अल्लाह तआला से भी अफ्व व दरगुज़र का तलबगार हूँ। और अहले इल्म हज़रात से भी तवक्क़ो रखता हूँ कि इस पर खालिसतन फरमाने नबवी ﷺ "اَلدِّيْنُ النَّصِيْحَةُ" के मुताबिक़ मुतनब्बा (टिप्पणी) फरमा कर सवाब हासिल करेंगे! और ज़ाती तौर पर मैं भी ममनूअ हूँगा!!

इस जिल्द में अभी सिर्फ सूरतुल फ़ातिहा और सूरतुल बक़रह की तर्जुमानी हुई है, गोया कि अभी पहाड़ जैसा भारी काम बाक़ी है। ताहम अल्लाह तआला के फ़ज़ल व करम से तवक्क़ो है कि जैसे उसने, मेरे किसी इरादे या मंसूबाबंदी के

बगैर और मेरी खालिस ला-इल्मी में पेशे नज़र जिल्द शाया करा दी, वैसे ही बाक़ी भी शाया करा देगा, ख्वाह ख़ुद मेरी इस दुनिया से दारे आख़िरत की जानिब रवानगी के बाद ही सही। आख़िर में दुआ है:

اللّٰھمّ تقبّل منّی فانّک خیرُ المُتقبِّلیْن وتُب عَلَیَّ فانّک انت التوّابُ الرّحیم! آمین! یا ربّ العٰلمین!!

ख़ाकसार **इसरार अहमद** अफ़ी अन्हु
08 अगस्त, 2009

❀ ❀ ❀

बाब अव्वल

क़ुरान के बारे में हमारा अक़ीदा

तआरुफ़े क़ुरान मजीद के सिलसिले में सबसे पहली बात यह है कि क़ुरान हकीम के बारे में हमारा ईमान, या इस्तलाहे आम में हमारा अक़ीदा क्या है?

क़ुरान हकीम के मुताल्लिक़ अपना अक़ीदा हम तीन सादा जुमलों में बयान कर सकते हैं:

1) क़ुरान अल्लाह का कलाम है।

2) यह मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर नाज़िल हुआ है।

3) यह हर ऐतबार से महफ़ूज है, और कुल का कुल मन व अन मौजूद है, और इसकी हिफ़ाजत का ज़िम्मा ख़ुद अल्लाह तआला ने लिया है।

यह तीन जुमले हमारे अक़ाइद की फ़ेहरिस्त के ऐतबार से, क़ुरान हकीम के बारे में हमारे अक़ीदे पर किफ़ायत करेंगे। लेकिन इन्हीं तीन जुमलों के बारे में अगर ज़रा तफ़्सील से गुफ़्तगू की जाये और दिक़्क़ते नज़र से इन पर ग़ौर किया जाये तो कुछ इल्मी हक़ाइक सामने आते हैं। तम्हीदी ग़ुफ़्तगू में इनमें से बाज़ की तरफ़ इज्मालन इशारा मुनासिब मालूम होता है।

(1) क़ुरान : अल्लाह तआला का कलाम

सबसे पहली बात कि क़ुरान मजीद अल्लाह का कलाम है, ख़ुद क़ुरान मजीद से साबित है। चुनाँचे सूरतुल तौबा की आयत 6 में अल्लाह तआला ने नबी अकरम ﷺ से फ़रमाया:

وَاِنۡ اَحَدٌ مِّنَ الۡمُشۡرِكِيۡنَ اسۡتَجَارَكَ فَاَجِرۡهُ حَتّٰى يَسۡمَعَ كَلٰمَ اللّٰهِ ثُمَّ اَبۡلِغۡهُ مَاۡمَنَهٗ

"और अगर मुशरिकीन में से कोई शख़्स पनाह माँग कर तुम्हारे पास आना चाहे (ताकि अल्लाह का कलाम सुने) तो उसे पनाह दे दो यहाँ तक कि वह अल्लाह का कलाम सुन ले, फिर उसे उसकी अमन की जगह तक पहुँचा दो।"

जब सूरतुल तौबा की पहली छः आयात नाज़िल हुईं, जिनमें से मुशरिकीने अरब को आख़िरी अल्टीमेटम दे दिया गया कि अगर तुम ईमान न लाये तो चार माह की मुद्दत के ख़ात्मे के बाद तुम्हारा क़त्लेआम शुरू हो जायेगा, तो इस ज़िमन में नबी अकरम ﷺ को एक हिदायत यह भी दी गई कि यह अल्टीमेटम दिये जाने के बाद अगर मुश्रिकीन में से कोई आप ﷺ की पनाह तलब करे तो वह आप ﷺ के पास आकर मुक़ीम हो और कलाम अल्लाह को सुने, जिस पर ईमान लाने की दावत दी जा रही है, फिर उसे उसकी अमन की जगह तक पहुँचा दिया जाये। यानि ऐसा नहीं होना चाहिए कि वहीं उससे मुतालबा किया जाये कि फ़ैसला करो कि आया तुम ईमान लाते हो या नहीं। इस वक़्त मैंने इस आयत का हवाला सिर्फ़ "कलाम अल्लाह" के अल्फ़ाज़ के लिये शहादत के तौर पर दिया है।

कलाम इलाही : जुमला सिफ़ाते इलाहिया का मज़हर

क़ुरान मजीद के कलाम अल्लाह होने में ही इसकी असल अज़मत का राज़ मज़्मर है। इसलिये कि कलाम मुतकल्लिम की सिफ़त होता है और उसमें मुतकल्लिम की पूरी शख़्सियत हवीदा होती है। चुनाँचे आप किसी भी शख़्स का कलाम सुन कर अंदाज़ा कर सकते हैं कि उसके इल्म और फ़हम व शऊर की सतह क्या है। आ या वह तालीम याफ़्ता इंसान है, महज़ब है, मुतमदन है या कोई उजड्ड गँवार है। इस ऐतबार से दरहक़ीक़त यह कलाम अल्लाह, अल्लाह तआला की जुमला सिफ़ात का मज़हर है, इसी हक़ीक़त को अल्लामा इक़बाल ने निहायत ख़ूबसूरत अंदाज़ में बयान किया:

फ़ाश गोयम आँच दर दिल मज़्मर अस्त
ईं किताबे नीस्त, चीज़े दीगर अस्त
मिसल हक़ पिन्हाँ व हम पैदा सत ईं!
ज़िन्दा व पाइन्दा व गोया सत ईं!

(जो बात मेरे दिल में छुपी हुई है वह मैं साफ़-साफ़ कह देता हूँ कि यह (क़ुरान हकीम) किताब नहीं है, कोई और ही शय है। चुनाँचे यह हक़ तआला की ज़ात के मानिंद पोशीदा भी है और ज़ाहिर भी है। नेज़ यह हमेशा ज़िन्दा और बाक़ी रहने वाला भी है और यह कलाम भी करता है।)

मुख़्तलिफ़ मफ़ाहीम व मायने के लिये इस शेर का हवाला दे दिया जाता है, लेकिन क़ाबिले ग़ौर बात यह है कि इसमें इसके "चीज़े दीगर" होने का कौनसा पहलू उजागर किया जा रहा है। इसमें दर हक़ीक़त सूरतुल हदीद के उस मुक़ाम की तरफ़ इशारा हो गया है कि: { هُوَ الْاَوَّلُ وَالْاٰخِرُ

{وَالظَّاهِرُ وَالْبَاطِنُ} (आयत 3) यानि अल्लाह तआला की शान यह है कि वह الاوّل भी है और الاخر भी, वह الظاهر भी है और الباطن भी। इसी तरह अल्लामा कहते हैं कि इस क़ुरान की भी यही शान है। नेज़ जिस तरह अल्लाह तआला की सिफ़त الحیّ القیّوم (आयतल कुर्सी, सूरतुल बक़रह) है इसी तरह यह कलाम भी ज़िन्दा व पाइन्दा है, हमेशा रहने वाला है। फिर यह सिर्फ़ कलाम नहीं, ख़ुद मुतकल्लिम (बात करने वाला) है।

यहाँ कलाम और मुतकल्लिम के माबैन (दर्मियान) फ़र्क़ के हवाले से मुतकल्लमीन कि उस बहस की तरफ़ इशारा करना ज़रूरी मालूम होता है कि ज़ाते हक़ की सिफ़ात, ज़ात से अलैहदा और मुस्तज़ाद हैं या ऐन ज़ात? अल्लामा इक़बाल ने भी अपनी मशहूर नज़्म "इब्लीस की मजलिस-ए-शूरा" में इस बहस का ज़िक्र किया है:

हैं सिफ़ाते ज़ाते हक़, हक़ से जुदा या ऐन ज़ात?
उम्मत मरहूम की है किस अक़ीदे में निजात?

यह इल्मे कलाम का एक निहायत ही पेचीदा, ग़ामज़ और अमीक़ मसला है, जिस पर बड़ी बहसें हुईं और बिलआख़िर मुतकल्लमीन का इस पर तक़रीबन इज्माअ हुआ कि "لَا عَیْنٌ وَلَا غَیْرٌ" यानि अल्लाह की सिफ़ात को ना उसकी ज़ात का ऐन क़रार दिया जा सकता है ना उसका ग़ैर। अगर इस हवाले से ग़ौर करें तो क़ुरान हकीम भी, जो अल्लाह तआला की सिफ़त है, इसी के ज़ेल में आयेगा, यानि ना इसे अल्लाह का ग़ैर कहा जा सकता है ना उसका ऐन।

चुनाँचे इस हवाले से सूरतुल हश्र की आयत 21 क़ुरान मजीद की फ़ी नफ़्सी अज़मत के ज़िमन में अहम तरीन है:

لَوْ اَنْزَلْنَا هٰذَا الْقُرْاٰنَ عَلٰى جَبَلٍ لَّرَاَيْتَهٗ خَاشِعًا مُّتَصَدِّعًا مِّنْ خَشْيَةِ اللّٰهِ ۭ وَتِلْكَ الْاَمْثَالُ نَضْرِبُهَا لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَتَفَكَّرُوْنَ ۝۲۱

"अगर हम इस क़ुरान को किसी पहाड़ पर उतार देते तो तुम देखते कि वह अल्लाह तआला की ख़शियत और ख़ौफ से दब जाता और फट जाता, और यह मिसालें हैं जो हम लोगों के लिये बयान करते हैं ताकि वह ग़ौर करें।"

इस तम्सील को सूरतुल आराफ़ की आयत 143 के हवाले से समझा जा सकता है जिसमें अल्लाह तआला की तलबी पर हज़रत मूसा अलै० के कोहे तूर पर हाज़िर होने का वाक़िया बयान हुआ है। यह वही तलबी थी जिसमें आप अलै० को तौरात अता की गयी। उस वक़्त अल्लाह तआला ने हज़रत मूसा अलै० को मुख़ातबह व मुकालमह से सरफ़राज़ फ़रमाया तो उनकी आतिशे शौक़ कुछ और भड़की और उन्होंने फ़रमाइश करते हुए कहा

رَبِّ اَرِنِيْٓ اَنْظُرْ اِلَيْكَ ۭ

"ऐ परवरदिगार! मुझे अपना दीदार अता फ़रमा।"

मुख़ातबह व मुकालमह के शर्फ़ से तूने मुझे मुशर्रफ फ़रमाया है, अब ज़रा मज़ीद करम फ़रमा। इस पर जवाब मिला:

لَنۡ تَرٰىنِیۡ	*"(मूसा) तुम मुझे हरगिज़ नहीं देख सकते!"*
وَلٰکِنِ انۡظُرۡ اِلَی الۡجَبَلِ	*"लेकिन ज़रा उस पहाड़ की तरफ़ देखो, मैं उस पर अपनी एक तजल्ली डालूँगा।"*
فَاِنِ اسۡتَقَرَّ مَکَانَہٗ فَسَوۡفَ تَرٰىنِیۡ ۚ	*"चुनाँचे अगर वह पहाड़ अपनी जगह पर क़ायम रह जाये तो फिर तुम भी गुमान कर लेना कि तुम मुझे देख सकोगे।"*
فَلَمَّا تَجَلّٰی رَبُّہٗ لِلۡجَبَلِ جَعَلَہٗ دَکًّا وَّ خَرَّ مُوۡسٰی صَعِقًا ۚ	*"फिर जब अल्लाह तआला ने उस पहाड़ पर अपनी तजल्ली डाली तो वह "دَکًّا دَکًّا" (रेज़ा-रेज़ा) हो गया और मूसा अलै० बेहोश होकर गिर पड़े।"*

यहाँ "دَکًّا" के दोनों तर्जुमे किये जा सकते हैं, यानि रेज़ा-रेज़ा हो जाना, टूट-फूट कर टुकडे-टुकडे हो जाना, या कूट-कूट कर किसी शय को हमवार कर देना, बराबर कर देना। जैसे सूरतुल फ़जर की आयत 21 { کَلَّاۤ اِذَا دُکَّتِ الۡاَرۡضُ دَکًّا دَکًّا } में इन मायनों में वारिद हुआ है। वही लफ़्ज़ यहाँ पहाड़ के बारे में आया है। यानी वह पहाड़ रेज़ा-रेज़ा हो गया या दब गया, ज़मीन के साथ बैठ गया। मूसा अलै० ने अल्लाह

तआला की यह तजल्ली देखी जो बिलवास्ता थी, यानि बराहे रास्त हज़रत मूसा अलै० पर नहीं बल्कि पहाड़ पर थी और हज़रत मूसा अलै० बिलवास्ता उसका नज़ारा कर रहे है थे, लेकिन ख़ुद हज़रत मूसा अलै० की कैफ़ियत यह हुई कि

وَّخَرَّ مُوْسٰى صَعِقًا

"हज़रत मूसा (अलै०) बेहोश होकर गिर पड़े।"

यहाँ ज़ात व सिफ़ाते बारी तआला की बहस का एक अक़ीदा हल हो जाता है कि जैसे अल्लाह तआला ने अपनी ज़ात की तजल्ली पहाड़ पर डाली तो वह पहाड़ दब गया फट गया, रेज़ा-रेज़ा हो गया, इसी तरह क़ुरान मजीद के मुताल्लिक़ फ़रमाया:

لَوْ اَنْزَلْنَا هٰذَا الْقُرْاٰنَ عَلٰى جَبَلٍ لَّرَاَيْتَهٗ خَاشِعًا مُّتَصَدِّعًا مِّنْ خَشْيَةِ اللّٰهِ ؕ

यानि कलाम अल्लाह की भी वही कैफ़ियत और तासीर है जो कैफ़ियत व तासीर तजल्लिये ज़ाते इलाही की है। इसलिये कि क़ुरान अल्लाह का कलाम और अल्लाह की सिफ़त है। तो तजल्लिये सिफ़ात और तजल्लिये ज़ात में कोई फ़र्क नहीं।

अलबत्ता अल्लामा इक़बाल ने एक जगह इस बारे में ज़रा मुबालगा आराई से काम लिया। अल्लामा ने हुज़ूर ﷺ की मदह फ़रमाते हुए यह अल्फ़ाज़ इस्तेमाल किये:

मूसा ज़े होश रफ़त बैक जलवये सिफ़ात
तो ऐने ज़ात मी नगरी व तबस्समी!

अल्लामा हज़रत मुहम्मद ﷺ का हज़रत मूसा अलै० से तक़ाबुल कर रहे हैं कि वह तो तजल्लिये सिफ़ात के बिलवास्ता नज़ारे ही से बेहोश होकर गिर गये, लेकिन ऐ नबी ﷺ! आपने ऐने ज़ात का दीदार किया और तबस्सुम की कैफ़ियत में किया। इसमें दो ऐतबारात से मुग़ालता पाया जाता है। अव्वल तो वह तजल्ली, तजल्लिये सिफ़ात नहीं तजल्लिये ज़ात थी जो हज़रत मूसा अलै० की फ़रमाईश पर अल्लाह तआला ने पहाड़ पर डाली। जैसा कि क़ुरान मजीद में है: { فَلَمَّا تَجَلّٰى رَبُّهٗ لِلْجَبَلِ } गोया यहाँ अल्लाह तआला के लिये यह लफ़्ज़ इस्तेमाल हुआ है कि वह ख़ुद मुतजल्ली हुआ। दूसरे यह कि यह ख्याल भी मुख्तलिफ़ फ़ेह है कि नबी अकरम ﷺ ने शबे मेराज में ज़ाते इलाही का मुशाहदा किया। अगरचे हमारे असलाफ़ में यह राय भी है कि आप ﷺ ने अल्लाह तआला को देख़ा है, लेकिन अकसर व बेशतर की राय इसके बरअक्स है, इसलिये कि वहाँ भी "आयात" का ज़िक्र है। जैसा कि सूरतुल नज्म (आयत:21) में आया: { لَقَدْ رَاٰى مِنْ اٰيٰتِ رَبِّهِ الْكُبْرٰى } इसमें कोई शक नहीं कि वह आयात, जो वहाँ हुज़ूर नबी अकरम ﷺ ने देखीं, अल्लाह तआला की अज़ीम-तरीन आयात में से हैं।

اِذْ يَغْشَى السِّدْرَةَ مَا يَغْشٰى ﴿١٦﴾ مَا زَاغَ الْبَصَرُ وَمَا طَغٰى ﴿١٧﴾ لَقَدْ

"उस वक़्त बेरी पर छा रहा था जो कुछ कि छा रहा था। निगाह ना चुन्धियाई और ना हद से मुतजाविज़ हुई। और उसने अपने रब की बड़ी-बड़ी निशानियाँ देखीं।"

رَاٰی مِنۡ اٰیٰتِ رَبِّہِ
الۡکُبۡرٰی ﴿۱۸﴾

अब उससे ज़्यादा बड़ी आयात और उससे ज़्यादा बड़ी तजल्लिये इलाही और कहाँ होगी? लेकिन दोनों ऐतबार से इस शेर में मुबालगा है। अलबत्ता इस आयते मुबारका के हवाले से अल्लामा के इस शेर

मिसले हक़ पिन्हाँ व हम पैदा सत ईं!
ज़िन्दा व पाइन्दा व गोया सत ईं!

में मेरे नज़दीक क़तअन कोई मुबालगा नहीं है। और इस आयत मुबारका के हवाले से वह बात कही जा सकती है जो अल्लामा इक़बाल ने इस शेर में कही है।

तौरात की गवाही

अब ज़रा क़ुरान मजीद के कलामुल्लाह होने के हवाले से एक और बात ज़हननशीन कर लीजिये। तौरात में किताबे इस्तस्ना या सफ़रे इस्तस्ना जो सुहुफ़े मूसा में से एक सहीफ़ा है, के अट्ठारहवें बाब में नबी अकरम ﷺ के लिये जो पेशनगोई बयान की गयी है उसमें अल्फ़ाज़ यहीं है कि:

"मैं उनके भाईयों में से उनके लिये तेरी मानिंद एक नबी बरपा करुँगा और उसके मुँह में अपना कलाम डालूँगा और वह उनसे वही कुछ कहेगा जो मैं उससे कहूँगा।"

मैंने यहाँ ख़ास तौर पर उन अल्फ़ाज़ का हवाला दिया है कि "मैं उसके मुँह में अपना कलाम डालूँगा।" यहाँ एक तो

लफ़्ज़ कलाम आया है जैसे कि क़ुरान हकीम की इस आयत में आया { حَتّٰى يَسْمَعَ كَلٰمَ اللّٰهِ } फिर "कलाम मुँह में डालना" के हवाले से क़ुरान मजीद में एक लफ़्ज़ दो मर्तबा आया है, वह लफ़्ज़ "क़ौल" है, यानी क़ुरान को क़ौल क़रार दिया गया है।

सूरतुल हाक़्क़ा में है:

اِنَّهٗ لَقَوْلُ رَسُوْلٍ كَرِيْمٍ ﴿٤٠﴾ وَّمَا هُوَ بِقَوْلِ شَاعِرٍ ؕ قَلِيْلًا مَّا تُؤْمِنُوْنَ ﴿٤١﴾ وَلَا بِقَوْلِ كَاهِنٍ ؕ قَلِيْلًا مَّا تَذَكَّرُوْنَ ﴿٤٢﴾

और सूरतुल तकवीर में यह अल्फ़ाज़ वारिद हुए हैं:

اِنَّهٗ لَقَوْلُ رَسُوْلٍ كَرِيْمٍ ﴿١٩﴾ ذِيْ قُوَّةٍ عِنْدَ ذِي الْعَرْشِ مَكِيْنٍ ﴿٢٠﴾ مُّطَاعٍ ثَمَّ اَمِيْنٍ ﴿٢١﴾ وَمَا صَاحِبُكُمْ بِمَجْنُوْنٍ ﴿٢٢﴾

और इसी सूरह में आगे चलकर आया:

وَمَا هُوَ بِقَوْلِ شَيْطٰنٍ رَّجِيْمٍ ﴿٢٥﴾

क़ाबिले तवज्जोह अम्र यह है कि इन दो मक़ामात में से मौअक्खर अज़्ज़िक्र के मुताल्लिक़ तक़रीबन इजमाअ है कि यहाँ हज़रत जिब्राईल अलै० मुराद हैं। गोया क़ुरान को उनका क़ौल क़रार दिया गया। और सूरतुल हाक़्क़ा में इसे नबी ﷺ का क़ौल क़रार दिया जा रहा है। अब ज़ाहिर है

यहाँ जिन चीजों की नफ़ी की जा रही है कि "यह किसी शायर का क़ौल नहीं" और "यह किसी काहिन का क़ौल नहीं" इनसे यक़ीनन रसूल करीम صلى الله عليه وسلم मुराद हैं। यूँ समझिये कि अल्लाह का कलाम पहले हज़रत जिब्राईल अलै० पर नाज़िल हुआ। अगर मैं किताबे इस्तस्ना के अल्फ़ाज़ इस्तेमाल करुँ तो यहाँ "अल्लाह ने अपना कलाम उनके मुँह मे डाला।" ताहम "उनके मुँह" का हम कोई तसव्वुर नहीं कर सकते, वह निहायत जलीलो क़द्र फ़रिश्ते हैं। बहरहाल क़ौल का लफ़्ज़ क़ुरान मजीद के लिये इस्तेमाल हुआ है जिससे ज़ाहिर है कि इब्तदाअन कलामे इलाही हज़रत जिब्रील अलै० के क़ौल की शक्ल में उतरा और फिर हज़रत जिब्रील अलै० के ज़रिये से हज़रत मुहम्मद रसूल अल्लाह صلى الله عليه وسلم के मुँह में डाला गया, और वहाँ से यह क़ौले मुहम्मद صلى الله عليه وسلم की सूरत में लोगों के सामने आया, इसलिये कि यह आप صلى الله عليه وسلم ही की ज़बाने मुबारक से अदा हुआ, लोगों ने उसे सिर्फ़ आप ही के ज़बाने मुबारक से सुना। गोया यह क़ौल, क़ौले शायर नहीं, यह क़ौले काहिन नहीं, यह क़ौले शैतान रजीम नहीं, बल्कि यह क़ौले रसूले करीम है और रसूले करीम अव्वलन मुहम्मद रसूल अल्लाह صلى الله عليه وسلم हैं, यह लोगों के सामने उनके क़ौल की हैसियत से आया है। फिर सनियन (दूसरे) यह हज़रत जिब्राईल अलै० का क़ौल है, इसलिये कि उन्होंने यह क़ौल हुज़ूर صلى الله عليه وسلم को पहुँचाया। और इसको आख़िरी दर्जे तक पहुँचाने पर यह अल्लाह का कलाम है जिसके मुताल्लिक़ तौरात में अल्फ़ाज़ आये हैं कि "मैं उसके मुँह में अपना कलाम डालूँगा।"

लौहे महफ़ूज़ और मुसहफ़ में मुताबक़त

कलाम होने के हवाले से तीसरी बात यह नोट कीजिये कि कलाम अल्लाह की सिफ़त है और अल्लाह की सिफ़ात क़दीम (प्राचीन) है। अल्लाह की ज़ात की तरह उसकी सिफ़ात का भी यही मामला है। ज़ाहिर है कि अल्लाह तआला माद्दियत (पदार्थवादी) और जिस्मानियत (भौतिक उपस्थिति) से मा वरा है। यही मामला अल्लाह की सिफ़ात का भी है चुनाँचे कलाम अल्लाह, जिसे हर्फ़ो सूत की महदूदियत (परिसीमाओं) से आला व अरफ़ा ख़्याल किया जाता है, उसे अल्लाह तआला ने इंसानों की हिदायत के लिये हरूफ़ व असवात का जामा (लिबास) पहनाया और सय्यदुल मुर्सलीन ﷺ के क़ल्बे मुबारक पर बतरीक़े तन्ज़ील नाज़िल फ़रमाया। यही कलाम लौहे महफ़ूज़ में अल्लाह के पास मंदर्ज (लिखा हुआ महफ़ूज़ है) है जिसे उम्मुल किताब या किताबे मकनून भी कहा गया है। हमारे पास मौजूद क़ुरान मजीद या मुसहफ़ की इबारत बैन ही (बिल्कुल) वही है जो लौहे महफ़ूज़ या उम्मुल किताब में है, बिल्कुल उसी तरह जैसे किसी दस्तावेज़ की मस्दक़ह नक़ल (xerox copy) हो, जो बगैर किसी शोशे के फ़र्क़ के असल के मुताबिक़ हो। चुनाँचे सूरतुल बुरूज में फ़रमाया:

بَلْ هُوَ قُرْاٰنٌ مَّجِيْدٌ ﴿٢١﴾ فِيْ لَوْحٍ مَّحْفُوْظٍ ﴿٢٢﴾

“यह क़ुरान निहायत बुज़ुर्ग व बरतर है और यह लौहे महफ़ूज़ में है।”

इसी के मुताल्लिक़ सूरतुल वाक़िया में इर्शाद फ़रमाया गया:

اِنَّهٗ لَقُرْاٰنٌ كَرِيْمٌ ۝ فِيْ كِتٰبٍ مَّكْنُوْنٍ ۝ لَّا يَمَسُّهٗٓ اِلَّا الْمُطَهَّرُوْنَ ۝

"यह तो एक किताब है बड़ी करीम, बहुत बाइज़्ज़त, और एक ऐसी किताब है जो छुपी हुई है। जिसे छू ही नहीं सकते मगर वही जो बहुत ही पाक कर दिए गए हैं।"

यानी मलाइका मुक़र्रबीन, जिनके बारे में एक और मक़ाम पर फ़रमाया गया:

فِيْ صُحُفٍ مُّكَرَّمَةٍ ۝ مَّرْفُوْعَةٍ مُّطَهَّرَةٍ ۝ بِاَيْدِيْ سَفَرَةٍ ۝ كِرَامٍ بَرَرَةٍ ۝

"यह ऐसे सहीफों में दर्ज है जो मुकरर्म हैं, बुलंद मर्तबा है, पाकीज़ा है, मौअज्ज़ज़ और नेक कातिबों के हाथों में रहते हैं।" (सूरह अ'बसा)

दर हक़ीकत यह किताब मकनून उन फरिश्तों के पास है, वह तुम्हारी रसाई (पहुँच) से बईद व मा वरा (बहुत दूर) है। यही बात सूरतुल ज़ुख़रफ में कही गयी है:

وَاِنَّهٗ فِيْٓ اُمِّ الْكِتٰبِ لَدَيْنَا لَعَلِيٌّ حَكِيْمٌ

"यह तो दर हक़ीक़त असल किताब में हमारे पास महफ़ूज़ है, बड़ी बुलंद मर्तबा और हिकमत से लबरेज़ (भरी हुई है)।" (आयत:4)

اُمٌّ का लफ़्ज़ जड़ और बुनियाद के लिये आता है। इसलिये माँ के लिये भी अरबी में लफ़्ज़ "اُمٌّ" इस्तेमाल होता

है, क्योंकि इसी के बतन से औलाद की विलादत होती है, वह गोया कि बमंज़िले असास है। चुनाँचे इस किताब की असल असास लौहे महफ़ूज़ में है, किताबे मकनून में है। मज़ीद वज़ाहत कर दी गई कि "لَدَيۡنَا" यानि वह उम्मुल किताब जो हमारे पास है, उसमें यह क़ुरान दर्ज है। "لَعَلِيٌّ حَكِيۡمٌ" इस क़ुरान की सिफ़ात यह हैं कि वह बहुत बुलंद व बाला और हिकमत वाला है, मुस्तहकम है। वह अल्लाह का कलाम और निहायत महफ़ूज़ किताब है। इसे लौहे महफ़ूज़ कहें, किताबे मकनून कहें या उम्मुल किताब कहें, असल कलाम वहाँ है--- उसी आलम-ए-ग़ैब में, उसी आलम-ए-अम्र में--- जिसे सिवाये उन पाक-बाज़ फ़रिश्तों के जिनकी रसाई लौहे महफ़ूज़ तक हो, कोई मस्स (छू) नहीं कर सकता, यानि इस लौहे महफ़ूज़ के मज़ामीन पर मुत्तेलह नहीं हो सकता। अलबत्ता अल्लाह तआला ने इंसानों की हिदायत के लिये मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर अपने इस कलाम की तन्ज़ील फ़रमाई और इसकी इबारत को ता-क़यामे क़यामत तक मुसाहफ़ में महफ़ूज़ फ़रमा दिया और नापाक हाथों से छूने पर मना फ़रमा दिया।

कलामे इलाही की तीन सूरतें

जब मैंने अर्ज़ किया कि क़ुरान अल्लाह का कलाम है तो यहाँ सवाल पैदा होता है कि अल्लाह तआला इंसान से किस

तरह हमकलाम होता है! क़ुरान मजीद में इसकी तीन शक्लें बयान हुई हैं।

وَمَا كَانَ لِبَشَرٍ اَنْ يُّكَلِّمَهُ اللّٰهُ اِلَّا وَحْيًا اَوْ مِنْ وَّرَآئِ حِجَابٍ اَوْ يُرْسِلَ رَسُوْلًا فَيُوْحِيَ بِاِذْنِهٖ مَا يَشَآءُ ۭ اِنَّهٗ عَلِيٌّ حَكِيْمٌ ۝۵۱

"किसी बशर का यह मक़ाम नहीं है कि अल्लाह उससे रू-ब-रू बात करे। उसकी बात या तो वही (इशारे) के तौर पर होती है, या पर्दे के पीछे से, या फिर वह कोई पैग़म्बर (फ़रिश्ता) भेजता है और वह उसके हुक्म से जो कुछ वह चाहता है वही करता है। यक़ीनन वह बरतर और साहिबे हिकमत है।"

(सूरतुल शौरा)

नोट करने की बात यह है कि यह नहीं फ़रमाया कि अल्लाह के लिये यह मुमकिन नहीं है, अल्लाह तो हर शय पर क़ादिर है, वह जो चाहता है कर सकता है, अल्लाह की क़ुदरत से कोई चीज़ बईद (दूर) नहीं है, बल्कि कहा कि इंसान का यह मक़ाम नहीं है कि अल्लाह उससे बराहे रास्त कलाम करे, किसी बशर का यह मर्तबा नहीं है कि अल्लाह उससे कलाम करे, सिवाये तीन सूरतों के, या तो वही यानि मख़्फ़ी इशारे के ज़रिये से, या पर्दे के पीछे से, या वह किसी रसूल (रसूले मलक) को भेजता है जो वही करता है अल्लाह के हुक्म से जो अल्लाह चाहता है।

अब कलामे इलाही की मज़कूरा तीन शक्लें हमारे सामने आई हैं। इनमें से दो के लिये लफ़्ज़ वही आया है। दरमियान में एक शक्ल "مِنْ وَّرَآءِ حِجَابٍ" बयान हुई है। इसका तज़करा सूरतुल आराफ़ की आयत 143 के ज़ेल में हो चुका है। और यह तो अम्र वाक़िया है ही कि हज़रत मूसा अलै० से अल्लाह तआला ने मुताददिद (कई) मौक़ों पर इस सूरत में कलाम फ़रमाया।

पहली मर्तबा हज़रत मूसा अलै० जब आग की तलाश में कोहे तूर पर पहुँचे तो वहाँ मुख़ातबा हुआ। यह मुख़ातबा और मुकालमा-ए-इलाही (बात-चीत) हज़रत मूसा अलै० के साथ "مِنْ وَّرَآءِ حِجَابٍ" हुआ था, इसी लिये तो वह आतिशे शौक़ भड़की थी कि:

क्या क़यामत है कि चिलमन से लगे बैठे हैं
साफ छुपते भी नहीं, सामने आते भी नहीं!

ज़ाहिर है कि जब हम कलाम होने का शर्फ़ हासिल हो रहा है तो एक क़दम और बाक़ी है कि मुझे दीदार भी अता हो जाए, लेकिन यह मुख़ातबा مِنْ وَّرَآءِ حِجَابٍ था। नबी अकरम ﷺ से यही मुख़ातबा शबे मेराज में पर्दे के पीछे से हुआ। बाज़ हज़रात की राय है कि हुज़ूर ﷺ को अल्लाह तआला (यानि ज़ाते इलाही) का दीदार हासिल हुआ, लेकिन मेरी राय सलफ़ में से उन हज़रात के साथ है जो इसके क़ायल नहीं हैं। उनमें हज़रत आयशा सिद्दीक़ा (रज़ि०) बड़ी अहमियत कि हामिल हैं, उन्होंने हुज़ूर ﷺ से लाज़िमन इन चीज़ों के बारे में इस्तफ़सार किया (पूछा) होगा, चुनाँचे

उनकी बात के मुताल्लिक़ तो हम यक़ीन के दर्जे में कह सकते हैं कि वह मुहम्मद रसूल ﷺ से मरफ़ूअ है। हज़रत आयशा (रज़ि०) बयान करतीं हैं कि "نُوْرٌ اَنّٰى يُرٰى؟" यानि अल्लाह तो नूर है, उसे कैसे देखा जा सकता है? (मुस्लिम, किताबुल ईमान, अन अबु ज़र (रज़ि०) नूर तो दूसरी चीज़ों को देखने का ज़रिया बनता है, नूर ख़ुद कैसे देखा जा सकता है! बहरहाल मेरी राय यह कि यह गुफ़्तग़ू भी مِنْ وَّرَآءِ حِجَابٍ थी। वह वराये हिजाब (पर्दे के पीछे से) गुफ़्तग़ू जो हज़रत मूसा अलै० को कोहे तूर पर मकालमा व मुख़ातबा में नसीब हुई, उस वराये हिजाब मुलाक़ात और गुफ़्तगू (बात-चीत) से अल्लाह तआला ने मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ को शबे मेराज में "عِنْدَ سِدْرَةِ الْمُنْتَهٰى" मुशर्रफ़ फ़रमाया।

अलबत्ता वही बराहे रास्त भी है, यानि बग़ैर फ़रिश्ते के वास्ते के। दूसरी क़िस्म की वही फ़रिश्ते के ज़रिये से है और क़ुरान मजीद से जिस बात की तरफ़ ज़्यादा रहनुमाई मिलती है वह यह है कि क़ुरान वही है बवास्ता "मलक"। जैसे क़ुरान मजीद में है:

نَزَلَ بِهِ الرُّوْحُ الْاَمِيْنُ ﴿١٩٣﴾ عَلٰى قَلْبِكَ....

"इसे लेकर आपके दिल पर रूहे अमीन उतरा है..." (अल् शूराअ:194)

और

فَاِنَّهٗ نَزَّلَهٗ عَلٰى قَلْبِكَ

"पस इसे जिब्रील ने ही आपके क़ल्ब पर नाज़िल किया।" (अल् बक़रह:97)

अलबत्ता फ़रिश्ते के बग़ैर वही, यानि दिल में किसी बात का अल्लाह तआला की तरफ़ से बराहे रास्त (सीधा) डाल दिया जाना, यानि "इल्हाम" का ज़िक्र भी हुज़ूर ﷺ ने किया है और इसके लिये हदीस में "نَفَثَ فِي الرَّوعِ" के अल्फ़ाज़ भी आये हैं। यानि किसी ने दिल में कोई बात डाल दी, किसी ने फूँक मार दी बग़ैर इसके कि कोई आवाज़ सुनने में आई हो। एक कैफ़ियत सिलसिलातुल जर्स की भी थी। हुज़ूर ﷺ को घंटियों की सी आवाज़ आती थी और उसके बाद हुज़ूर ﷺ के क़ल्बे मुबारक पर वही नाज़िल हो जाती थी।

बहरहाल यक़ीन के साथ तो मैं नहीं कह सकता, लेकिन मेरा गुमाने ग़ालिब है कि दूसरी क़िस्म की वही (बज़रिये फ़रिश्ता) पर पूरे का पूरा क़ुरान मुश्तमिल है। और वही बराहे रास्त यानि "القاء" तो दर हक़ीक़त वही ख़फी है, जिसकी वज़ाहत अंग्रेज़ी के दो अल्फ़ाज़ के दरमियान फ़र्क से बख़ूबी हो जाती है। एक लफ़्ज़ है inspiration और दूसरा revelation, जिसके साथ एक और लफ़्ज़ verbal revelation भी अहम है। Inspiration में एक मफ़हूम, एक ख़्याल या तसव्वुर इंसान के ज़हन व क़ल्ब में आ जाता है, जबकि revelation बाक़ायदा किसी चीज़ के किसी पर reveal किये जाने को कहते हैं। और इसमें भी ईसाईयों के यहाँ एक बड़ी साजिश चल रही है। वह revelation को मानते हैं लेकिन verbal revelation को नहीं मानते, बल्कि उनके नज़दीक सिर्फ़ मफ़हूम ही अम्बिया के क़ुलूब पर

नाज़िल किया जाता था, जिसे वह अपने अल्फ़ाज़ में अदा करते थे। जबकि हमारे यहाँ इस बारे में मुस्तक़िल इज्माई (हमेशा से पूरी उम्मत का) अक़ीदा है कि यह अल्लाह का कलाम है जो मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर नाज़िल हुआ। यह लफ़्जन भी वही है और मायनन भी, लफ़्जन भी अल्लाह का कलाम है और मायनन भी, यानि यह verbal revelation है।

इस ज़िमन (बारे) में एक दिलचस्प वाक़िया लाहौर ही में ग़ालिबन एफ़० सी० कॉलेज के प्रिसिंपल और अल्लामा इक़बाल के दरमियान पेश आया था। वह दोनों किसी दावत में इकट्ठे थे कि उन साहब ने हज़रते अल्लामा से कहा कि मैंने सुना है कि आप भी verbal revelation के क़ायल हैं! इस पर अल्लामा ने उस वक़्त जो जवाब दिया वह उनकी ज़हानत पर दलालत करता (सबूत देता) है। उन्होंने कहा कि जी हाँ, मैं verbal revelation को न सिर्फ़ मानता हूँ, बल्कि मुझे तो इसका ज़ाति तजुर्बा हासिल है। चुनाँचे ख़ुद मुझ पर जब शेर नाज़िल होते हैं तो वह अल्फ़ाज़ के जामे में ढ़ले हुए आते हैं, मैं कोई लफ़्ज़ बदलना चाहूँ तो भी नहीं बदल सकता, मालूम होता है कि वह मेरी अपनी तख़्लीक़ नहीं हैं बल्कि मुझ पर नाज़िल किये जाते हैं। तो यह दर हक़ीक़त किसी को जवाब देने का वह अंदाज़ है जिसको अरबी में "الاجوبة المُسكتة" यानि चुप करा देने वाला जवाब कहा जाता है। यह वह जवाब है जिसके बाद फ़रीक़ सानी के लिये किसी क़ैल व क़ाल का मौका ही नहीं रहता।

बहरहाल कलामे इलाही वाक़िअतन verbal revelation है जिसने अव्वलन क़ौले जिब्रील की शक्ल

इख़्तियार की। हज़रत जिब्रील अलै० के जरिये क़ौल की शक़्ल में नाज़िल हुआ। और फिर ज़बाने मुहम्मदी ﷺ की शक़्ल में अदा हुआ। तो यह दर हक़ीक़त revelation है, inspiration नहीं, और महज़ revelation भी नहीं बल्कि verbal revelation है, यानि मायने, मफ़हूम और अल्फ़ाज़ सबके सब अल्लाह तआला की तरफ़ से हैं और यह बहैसियत-ए-मजमूई (पूरे का पूरा) अल्लाह का कलाम है।

(2) क़ुरान का रसूल अल्लाह ﷺ पर नुज़ूल

क़ुरान मजीद के मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर नुज़ूल के ज़िमन (बारे) में भी चन्द बातें नोट कर लें। पहली बहस तो "नुज़ूल" की लग़वी बहस से मुताल्लिक़ है। यह लफ़्ज़ نَزَلَ, يَنْزِلُ सलासी मुजर्रद में भी आता है। तब यह फेअल लाज़िम होता है, यानि "ख़ुद उतरना।" क़ुरान मजीद के लिये इन मायनों में यह लफ़्ज़ क़ुरान में मुताददिद (कई) बार आया है। मसलन:

وَبِالْحَقِّ اَنْزَلْنٰهُ وَبِالْحَقِّ نَزَلَ ؕ

"हमने इस क़ुरान को हक़ के साथ नाज़िल किया है और यह हक़ के साथ नाज़िल हुआ है।" (बनी इस्राइल:105)

यहाँ यह फ़ेअल लाज़िम आ रहा है, यानि नाज़िल हुआ। आम तौर पर फ़ेअल लाज़िम को मुताददी बनाने के लिये इस फ़ेअल के साथ किसी सिला (preposition) का इज़ाफा किया जाता है। चुनाँचे यह फ़अल نَزَلَ "بِ" के साथ मुताददी होकर भी क़ुरान मजीद में आया है, बमायने उसने

उतारा, जैसे جَاءَ "वह आया" से جَاءَ بِهٖ "वह लाया।" मसलन:

نَزَلَ بِهِ الرُّوْحُ الْاَمِيْنُ ﴿١٩٣﴾ عَلٰى قَلْبِكَ...

"रूहुल अमीन (जिब्रील) ने इस क़ुरान को उतारा है मुहम्मद ﷺ के क़ल्बे मुबारक पर।" (अश शौअरा)

नुज़ूले क़ुरान की दो कैफ़ियतें : इन्ज़ाल और तन्ज़ील

सलासी मज़ीद फ़ीह के दो अबवाब यानि बाबे इफ्आल और बाबे तफ़्ईल से यह लफ़्ज़ क़ुरान मजीद में बकसरत इस्तेमाल हुआ है। दोनों अबवाब से यह फ़ेअल मुमताददी के तौर पर बमायने "उतारना" इस्तेमाल होता है, यानि اَنْزَلَ, يُنْزِلُ, اِنْزَالًاऔर نَزَّلَ, يُنَزِّلُ, تَنْزِيلًا। इन दोनों के माबैन फ़र्क़ यह है कि बाबे इफ़्आल में कोई फ़अल दफ्फ़तन और एकदम कर देने के मायने होते हैं जबकि बाबे तफ्ईल में वही फ़ेल तदरीजन, अहतमाम, तवज्जोह और मेहनत के साथ करने के मायने होते हैं। इन दोनों के माबैन फ़र्क़ को "ईलाम" और "तालीम" के मायने के फर्क़ के हवाले से बहुत ही नुमाया तौर पर और जामियत के साथ समझा जा सकता है। "اِعلام" के मायने हैं बता देना। यानि आपने कोई चीज़ पूछी तो जवाब दे दिया गया। चुनाँचे "Information Office" को अरबी में "मकतबुल ईलाम" कहा जाता है। जबकि

"तालीम" के मायने ज़हन नशीन कराना और थोड़ा-थोड़ा करके बताना है। यानि पहले एक बात समझा देना, फिर दूसरी बात उसके बाद बताना और इस तरह दर्जा-ब-दर्जा मुख़ातब के फ़हम की सतह बुलंद से बुलंदतर करना।

अग़रचे क़ुरान मजीद के लिये लफ़्ज़ "इन्ज़ाल" और उससे मुशतक़ मुख़्तलिफ़ अल्फ़ाज़ इस्तेमाल हुए हैं, लेकिन बकसरत (ज़्यादातर) लफ़्ज़ "तन्ज़ील" इस्तेमाल हुआ है। क़ुरान मजीद की असल शान तन्ज़ीली शान है, यानि यह कि इसको तदरीजन, रफ़्ता-रफ़्ता, थोड़ा-थोड़ा और नजमन-नजमन नाज़िल किया गया। चुनाँचे क़ुरान मजीद के हुज़ूर ﷺ पर नुज़ूल के लिये सहीतर और ज़्यादा मुस्तमिल लफ़्ज़ क़ुरान हकीम में तन्ज़ील है, ताहम दो मक़ामात पर "لَيۡلَةُ الۡقَدۡرِ" और "لَيۡلَةٍ مُّبٰرَكَةٍ" के साथ इन्ज़ाल का लफ़्ज़ आया है। फ़रमाया: {اِنَّآ اَنۡزَلۡنٰهُ فِىۡ لَيۡلَةِ الۡقَدۡرِ} (अल् कद्र:1) और: {اِنَّآ اَنۡزَلۡنٰهُ فِىۡ لَيۡلَةٍ مُّبٰرَكَةٍ} (अल् दुख़ान 3) इसी तरह {شَهۡرُ رَمَضَانَ الَّذِىۡٓ اُنۡزِلَ فِيۡهِ الۡقُرۡاٰنُ} (अल् बक़रह:185) में भी लफ़्ज़ "इन्ज़ाल" इस्तेमाल हुआ है। फिर हुज़ूर ﷺ पर नुज़ूल के लिये भी कहीं-कहीं लफ़्ज़ "इन्ज़ाल" आया है, अग़रचे अकसर व बेशतर लफ़्ज़ "तन्ज़ील" ही आया है। इसकी तक़रीबन मज्मुआ अलय तावील यह है कि पूरा क़ुरान दफ्फ़तन लौहे महफ़ूज़ से समाये दुनिया तक लैललतुल क़द्र में नाज़िल कर दिया गया, जिसे "लैलाह मुबारका" भी कहा गया है जो कि रमज़ानुल मुबारक की एक रात है। लिहाज़ा जब रमज़ानुल मुबारक की लैललतुल क़द्र या लैलाह मुबारक में क़ुरान के नुज़ूल का

ज़िक्र हुआ तो लफ़्ज़ इन्ज़ाल इस्तेमाल हुआ। क़ुरान मजीद समाये दुनिया पर एक ही बार मुकम्मल पूरे तौर पर नाज़िल होने के बाद वहाँ से तदरीजन और थोड़ा-थोड़ा करके मुहम्मद रसूल ﷺ पर नाज़िल हुआ। लिहाज़ा हुज़ूर ﷺ पर नुज़ूल के लिये अकसर व बेशतर लफ़्ज़ तन्ज़ील इस्तेमाल हुआ है।

लफ़्ज़ तन्ज़ील के (ज़िमन) बारे में सूरतुल निशा की आयत 136 निहायत अहम है। इर्शाद हुआ:

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اٰمِنُوْا بِاللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ وَالْكِتٰبِ الَّذِيْ نَزَّلَ عَلٰي رَسُوْلِهٖ وَالْكِتٰبِ الَّذِيْٓ اَنْزَلَ مِنْ قَبْلُ ۭ

"ऐ ईमान वालो! ईमान लाओ (जैसा कि ईमान लाने का हक़ है) अल्लाह पर और उसके रसूल पर और उस किताब पर भी जो उसने अपने रसूल ﷺ पर नाज़िल फ़रमाई और उस किताब पर भी जो उसने पहले नाज़िल की।"

तौरात तख़्तियों पर लिखी हुई, मकतूब शक्ल में हज़रत मूसा अलै० को दी गई थी। वह चूँकि दफ़्फ़तन और जुमलतन वाहिदतन (एक बार में पूरी) दे दी गई, इसलिये इसके लिये लफ़्ज़ इन्ज़ाल आया है, जबकि क़ुरान थोड़ा-थोड़ा करके बाइस-तेईस बरस में नाज़िल हुआ। लिहाज़ा इसी के ज़िमन में लफ़्ज़ "नज़्ज़ला" इस्तमाल हुआ। चुनाँचे ऊपर वाली आयत हैं "तन्ज़ील" और "इन्ज़ाल" एक-दूसरे के बिल्कुल मुक़ाबले में आये हैं। गोया यहाँ "تُعْرَفُ الْاَشْيَاءُ

بِأَضْدَادِهَا" (चीज़ें अपनी अज़्दाद से पहचानी जाती हैं) का उसूल दुरुस्त बैठता है।

हिकमते तन्ज़ील

अब हम यह जानने कि कोशिश करते हैं कि तन्ज़ील की हिकमत क्या है? यह थोड़ा-थोड़ा करके क्यों नाज़िल किया गया और एक ही बार क्यों ना नाज़िल कर दिया गया? क़ुरान मजीद में इसकी दो हिकमतें बयान हुई हैं।

एक तो यह कि लोग शायद इसका तहम्मुल (बरदाशत) ना कर सकते। चुनाँचे लोगों के तहम्मुल की ख़ातिर थोड़ा-थोड़ा करके नाज़िल किया गया ताकि वह इसको अच्छी तरह समझें, इस पर गौर करें और इसे हरज़े जान बनाएँ और इसी के मुताबिक़ उनके ज़हन व फ़िक्र की सतह बुलंद हो। यह हिकमत सूरह बनी इस्राइल की आयत 106 में बयान की गई है:

وَقُرْاٰنًا فَرَقْنٰهُ لِتَقْرَاَهٗ عَلَى النَّاسِ عَلٰی مُکْثٍ وَّنَزَّلْنٰهُ تَنْزِیْلًا ﴿١٠٦﴾

"और हमने क़ुरान को टुकड़ों-टुकड़ों में मुन्क़सिम कर दिया ताकि आप थोड़ा-थोड़ा करके और वक़्फे-वक़्फे से लोगों को सुनाते रहें और हमने इसे बतदरीज उतारा।"

इस हिकमत को समझने के लिये बारिश की मिसाल मुलाहिज़ा कीजिये। बारिश अगर एकदम बहुत मूसलाधार हो तो उसमें वह बरकात नहीं होती जो थोड़ी-थोड़ी और तदरीजन होने वाली बारिश में होती है। बारिश अगर तदरीजन हो तो ज़मीन के अंदर जज़्ब होती चली जायेगी, लेकिन अगर मूसलाधार बारिश हो रही हो तो उसका अक्सर व बेशतर हिस्सा बहता चला जायेगा। यही मामला क़ुरान मजीद के इन्ज़ाल व तन्ज़ील का है। इसमें लोगों की मसलहत है कि क़ुरान उनके फ़हम में, उनके बातिन में, उनकी शख़्सियतों में तदरीजन सरायत करता चला जाये। सरायत के हवाले से मुझे फिर अल्लामा इक़बाल का शेर याद आया है:

चूँ बजाँ दर रफ़त जाँ दीग़र शूद
जान चूँ दीगर शद जहाँ दीगर शूद!

"(यह क़ुरान) जब किसी के बातिन में सराहत कर जाता है तो उसके अंदर एक इन्क़लाब बरपा हो जाता है, और जब किसी के अंदर की दुनिया बदल जाती है तो उसके लिये पूरी दुनिया ही इन्क़लाब की ज़द में आ जाती है!"

तो जब यह क़ुरान किसी के अंदर इस तरह उतर जाता है जैसे बारिश का पानी ज़मीन में जज़्ब होता है तो उसकी शख़्सियत में सराहत कर जाता है और उसके सराहत करने के लिये उसका तदरीजन थोड़ा-थोड़ा नाज़िल किया जाना ही हिकमत पर बनी है। लेकिन इससे भी ज़्यादा अहम बात सूरतुल फ़ुरक़ान में कही गयी है, इसलिये कि वहाँ कुफ़्फ़ारे

मक्का बिल् ख़ुसूस सरदाराने क़ुरैश का बाक़ायदा एक ऐतराज़ नक़ल हुआ है। फ़रमाया:

وَقَالَ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا لَوْلَا نُزِّلَ عَلَيْهِ الْقُرْاٰنُ جُمْلَةً وَّاحِدَةً ۚ كَذٰلِكَ ۚ لِنُثَبِّتَ بِهٖ فُؤَادَكَ وَرَتَّلْنٰهُ تَرْتِيْلًا ﴿٣٢﴾ وَلَا يَاْتُوْنَكَ بِمَثَلٍ اِلَّا جِئْنٰكَ بِالْحَقِّ وَاَحْسَنَ تَفْسِيْرًا ﴿٣٣﴾

"मुन्करीन कहते हैं: इस शख़्स पर सारा क़ुरान एक ही वक़्त में क्यों न उतार दिया गया? हाँ ऐसा इसलिये किया गया है कि इसको हम अच्छी तरह आप (صلى الله عليه وسلم) के ज़हेननशीन करते रहें और इसको हमने बग़रज़े तरतील थोड़ा-थोड़ा करके उतारा है। और (इसमें यह मस्लिहत भी है कि) जब कभी वह आपके सामने कोई निराली बात (या अजीब सवाल) लेकर आये, उसका ठीक जवाब बर वक़्त हमने आपको दे दिया और बेहतरीन तरीके से बात खोल दी।"

ऐतराज़ यह था कि यह पूरा क़ुरान एकदम, एक बारगी क्यों नहीं नाज़िल दर दिया गया? इस ऐतराज़ में जो वज़न था, पहले इसको समझ लिजिये। उन्होंने जो बात की दर हक़ीक़त उससे मुराद यह थी कि जैसे हमारा एक शायर दफ्फ़तन पूरा दीवान लोगों को फ़राहम नहीं कर देता, बल्कि वह एक ग़ज़ल कहता है, क़सीदा कहता है, फिर मज़ीद मेहनत करता है, फिर कुछ और तबा आज़माई करता है, फिर कुछ और कहता है, इस तरह तदरीजन दीवान बन जाता है, इसी तरीके से मुहम्मद (صلى الله عليه وسلم) कर रहे हैं। अगर यह अल्लाह का कलाम होता तो पूरा का पूरा एकदम

नाज़िल हो सकता था। यह तो दर हक़ीक़त इंसान की कैफ़ियत है कि पूरी किताब दफ्फ़तन produce नहीं कर देता। पूरा दीवान तो किसी शायर ने एक दिन के अंदर नहीं कहा बल्कि उसे वक़्त लगता है, वह मुसलसल मेहनत करता है, कुछ तकल्लुफ़ भी करता है, कभी आमद भी हो जाती है, लेकिन वह कलाम दीवान की शक़्ल में तदरीजन मदव्वन होता है। तो यह तो इसी तरह की चीज़ है।

لَوْلَا نُزِّلَ عَلَيْهِ الْقُرْاٰنُ جُمْلَةً وَّاحِدَةً ۚ

"क्यों नहीं यह क़ुरान इस पर एकदम नाज़िल हो गया?"

अब इसका जवाब दिया गया:

كَذٰلِكَ ۚ لِنُثَبِّتَ بِهٖ فُؤَادَكَ

"यह इसलिये किया है ताकि ऐ नबी ﷺ हम इसके ज़रिये से आपके दिल को तस्बीत (जमाव) अता करें।"

यानि वह बात जो आम इंसानों की मस्लिहत में है वह ख़ुद मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ के लिये भी मस्लिहत पर मब्नी है कि आपके लिये भी शायद क़ुरान मजीद का एकबारग़ी तहम्मुल करना मुश्किल हो जाता। सूरतुल हश्र के आखिरी रुकू में यह अल्फ़ाज़ वारिद हुए हैं:

لَوْ اَنْزَلْنَا هٰذَا الْقُرْاٰنَ عَلٰى جَبَلٍ لَّرَاَيْتَهٗ

"अगर हम पूरे के पूरे क़ुरान को दफ्फ़तन किसी पहाड़ पर नाज़िल कर देते तो तुम देखते कि वह अल्लाह के ख़ौफ से दब जाता और फट जाता।" (आयत:21)

خَاشِعًا مُّتَصَدِّعًا مِّنْ

خَشْيَةِ اللّٰهِ ط

(नोट कीजिये कि यहाँ लफ़्ज़ "इन्ज़ाल" आया है)। मालूम हुआ कि क़ल्बे मुहम्मदी ﷺ को जमाव और ठहराव अता करने के लिये इसे बतदरीज नाज़िल किया गया है:

وَرَتَّلْنٰهُ تَرْتِيْلًا

"और हमने इसको बग़रज़े तरतील थोड़ा-थोड़ा करके उतारा है।"

"रतल" छोटे पैमाने को, छोटे-छोटे टुकड़े करने को कहते हैं।

अगली आयत में जो इर्शाद हुआ उसके दोनों मफ़हूम हो सकते हैं। एक यह कि ऐ नबी! जो ऐतराज़ भी यह हम पर करेंगे हम उसका बेहतरीन जवाब आपको अता कर देंगे। लेकिन दूसरा मफ़हूम यह भी है कि यह एक मुसलसल कशाकश है जो आपके और मुश्रीकीने अरब के दरमियान चल रही है। आज वह एक बात कहते हैं, अगर उसी वक़्त उसका जवाब दिया जाये तो वह दर हक़ीक़त आपकी दावत के लिये मौज़ूं हैं। अगर यह सारे का सारा कलामे इलाही एक ही मर्तबा नाज़िल हो जाता तो हालात के साथ उसकी मुताबिक़त और उनकी तरफ़ से पेश होने वाले ऐतराज़ात का बर वक़्त जवाब न होता और इसके अंदर जो असर अंदाज़ होने की कैफ़ियत है वह हासिल न होती। इस तदरीज में अपनी जगह मौज़ूनियत है और उसकी अपनी तासीर है। इस ऐतबार से क़ुरान मजीद को तदरीजन नाज़िल किया गया।

क़ुरान करीम का ज़माना-ए-नुज़ूल और अर्ज़े नुज़ूल

रसूल अल्लाह ﷺ पर क़ुरान करीम के नुज़ूल के ज़िमन में अब दो छोटी-छोटी चीज़ें और नोट कर लीजिये। यह सिर्फ मालूमात के ज़िमन में हैं। इसका ज़माना नुज़ूल क्या है? हम जिस हिसाब (सन् ईसवी) से बात करने के आदी हैं, उसी हिसाब से हमारे ज़हन का सुग़रा-कबरा बना हुआ है। इस ऐतबार से नोट कर लीजिये कि क़ुरान हकीम का ज़माना-ए-नुज़ूल 610 ई० से 632 ई० तक 22 बरस पर मुश्तमिल है। क़मरी हिसाब से यह 23 बरस बनेंगे। 40 आमुल फ़ील से शुरू करें तो 12 साल क़ब्ले हिजरत और 11 हिजरी साल मिलकर 23 साल क़मरी बनेंगे। जिनके दौरान यह क़ुरान बतर्ज़े तन्ज़ील थोड़ा-थोड़ा करके नाज़िल हुआ। सही हदीसों में यह शहादत मौजूद है कि पहले सूरह अलक़ की पाँच आयतें नाज़िल हुई, फिर तीन साल का वक़्फ़ा आया। सूरह अलक़ की यह पाँच आयात भी चूँकि क़ुरान मजीद का हिस्सा हैं, लिहाज़ा सही क़ौल यही है कि क़ुरान हकीम का ज़माना-ए-नुज़ूल 23 क़मरी या 22 शम्सी साल है।

अब यह कि नुज़ूल की जगह कौनसी है? इस ज़िमन में सिर्फ़ एक लफ़्ज़ नोट कर लीजिये कि तक़रीबन पूरे का पूरा क़ुरान "हिजाज़" में नाज़िल हुआ। इसलिये कि अग़ाज़े वही के बाद हुज़ूर अकरम ﷺ का कोई सफ़र हिजाज़ से बाहर साबित नहीं है। अग़ाज़े वही से क़ब्ल आप ﷺ ने मुतादिद सफ़र किये हैं। आप ﷺ शाम का सफ़र करते थे, यक़ीनन यमन भी आप ﷺ जाते होंगे। इसलिये कि अल्फ़ाज़े क़ुरानी "رِحۡلَةَ الشِّتَآءِ وَالصَّيۡفِ" की रू से क़ुरैश के

सालाना दो सफ़र होते थे। गर्मियों के मौसम में शिमाल की तरफ़ जाते थे, इसलिये कि फ़लस्तीन का इलाक़ा निस्बतन ठंडा है, और सर्दियों के मौसम में वह जुनूब की तरफ़ (यमन) जाते थे, इसलिये कि वह गर्म इलाक़ा है। तो हुज़ूर अकरम ﷺ ने भी तिजारती सफ़र किये हैं। बाज़ मुहक़्क़ीन ने तो यह इम्कान भी ज़ाहिर किया है कि आप ﷺ ने उस ज़माने में कोई बेहरी सफ़र भी किया और ग़ल्फ़ को उबूर करके मकरान के साहिल पर किसी जगह आप ﷺ तशरीफ़ लाये। (वल्लाहु आलम!) यह बात मैंने डाक्टर हमीदुल्लाह साहब के एक लेक्चर में सुनी थी जो उन्होंने हैदराबाद (सिन्ध) में दिया था, लेकिन बाद में इस पर जिरह हुई कि यह बहुत ही कमज़ोर क़ौल है और इसके लिये कोई सनद मौजूद नहीं है। अलबत्ता "अल् ख़बर" जहाँ आज आबाद है वहाँ पर तो हर साल एक बहुत बड़ा तिजारती मेला लगता था और हुज़ूर ﷺ का वहाँ तक आना साबित है। बहरहाल आपको मालूम है कि हुज़ूर ﷺ आग़ाज़े वही के बाद दस साल तक तो मक्का मुकर्रमा में रहे, इसके बाद ताईफ़ का सफ़र किया है। फिर आस-पास "अकाज़" का मेला लगता था और मंडियाँ लगती थीं, उनमें आपने सफ़र किये हैं। फिर आप ﷺ ने मदीना मुनव्वरा हिजरत फ़रमाई। इसके बाद सब जंगें हिजाज़ के इलाक़े ही में हुईं, सिवाये ग़जव-ए-तबूक के। लेकिन तबूक भी असल में हिजाज़ ही का शिमाली सिरा है, इस ऐतबार से हिजाज़ ही का इलाक़ा है जिसमें क़ुरान करीम नाज़िल हुआ था। ताहम दो आयतें इस ऐतबार से मुस्तसना क़रार दी जा सकती हैं कि वह ज़मीन पर नहीं बल्कि आसमान पर नाज़िल हुईं। हज़रत अब्दुल्लाह बिन

मसऊद (रज़ि०) से सही मुस्लिम में रिवायत मौजूद है कि शबे मेराज में अल्लाह तआला ने आप ﷺ को जो तीन तोहफ़े अता किये उनमें नमाज़ की फ़र्ज़ियत और दो आयाते क़ुरानी शामिल हैं। यह सूरतुल बक़रह की आख़िरी दो आयात हैं जो अर्श के दो ख़जाने हैं जो मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ को शबे मेराज में अता हुए। तो यह दो आयतें मुस्तसना हैं कि यह ज़मीन पर नाज़िल नहीं हुईं बल्कि आप ﷺ को सिद्रतुल मुन्तहा पर दी गयीं और ख़ुद आप ﷺ सातवें आसमान पर थे, जबकि बाक़ी पूरा क़ुरान आसमान से ज़मीन पर नाज़िल हुआ है। जियोग्राफयाई ऐतबार से हिजाज़ का इलाक़ा महबत वही है।

(3) क़ुरान हकीम की महफ़ूजियत

मैंने अर्ज़ किया था कि क़ुरान के बारे में तीन बुनियादी और ऐतक़ादी (विश्वासी) चीज़ें हैं: अव्वल, यह अल्लाह का कलाम है दूसरा, यह मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर नाज़िल हुआ। तीसरा, यह मन व अन कुल का कुल महफ़ूज़ है। इसमें ना कोई कमी हुई है ना कोई बेशी हुई है। ना कमी हो सकती है ना बेशी हो सकती है। ना कोई तहरीफ़ हुई है न कोई तब्दीली। यह गोया हमारे अक़ीदे (विश्वास) का जुज़्वे ला यन्फक (वह हिस्सा जो कभी छोड़ा नहीं जा सकता) है। इसमें कुछ इश्तबा (शक) अहले तशय्यो (शिया लोगों) ने पैदा किया है, लेकिन उनकी बात भी मैं कुछ यक़ीन के साथ इसलिये नहीं कह सकता कि उनका यह क़ौल भी सामने आता है कि "हम इस क़ुरान को महफ़ूज़ मानते हैं।" अलबत्ता अवाम में जो चीज़ें मशहूर हैं कि क़ुरान से फ़लाह आयात

निकाल दी गईं, फ़लाह सूरत हज़रत अली (रज़ि०) की मदह या शान में थीं, वह इसमें से निकाल दी गई वग़ैरह, उनके बारे में मैं नहीं कह सकता कि यह उनमें से अवाम का ला नाम की बातें हैं या उनके ऐताक़ादात (विश्वास) में शामिल हैं। लेकिन यह कि बहरहाल अहले सुन्नत का इज्माई अक़ीदा (पूरी उम्मत इस पर सहमत) है कि यह क़ुरान हकीम महफ़ूज़ है और कुल का कुल मन व अन हमारे सामने मौज़ूद है। इसके लिये ख़ुद क़ुरान मजीद से जो गवाही मिलती है वह सबसे ज़्यादा नुमायां (साफ़) होकर सूरतुल क़ियामा में आई है। फ़रमाया:

لَا تُحَرِّكْ بِهٖ لِسَانَكَ لِتَعْجَلَ بِهٖ ۝١٦ۭ اِنَّ عَلَيْنَا جَمْعَهٗ وَقُرْاٰنَهٗ ۝١٧ښ

रसूल अल्लाह ﷺ को अल्लाह तआला ने अज़राहे शफ़क़त (प्यार से) फ़रमाया: "आप इस क़ुरान को याद करने के लिये अपनी ज़बान को तेजी से हरकत न दें। इसको याद करवा देना और पढ़वा देना हमारे ज़िम्मे है।" आप ﷺ मुशक्क़त (तकलीफ) न झेलें, यह ज़िम्मेदारी हमारी है कि हम इसे आप ﷺ के सीने मुबारक के अंदर जमा कर देंगे और इसकी तरतीब क़ायम कर देंगे, इसको पढ़वा देंगे। जिस तरतीब से यह नाज़िल हो रहा है उसकी ज़्यादा फ़िक्र न कीजिये। असल तरतीब जिसमें इसका मुरतब्ब किया जाना हमारे पेश नज़र है, जो तरतीब लौहे महफ़ूज़ की है उसी तरतीब से हम पढ़वा देगें। {ثُمَّ اِنَّ عَلَيْنَا بَيَانَهٗ ۝١٩ۭ} फिर अग़र आपको किसी चीज़ में इब्हाम महसूस हो और वज़ाहत

(समझाने) की ज़रुरत हो तो इसकी तौज़ीह और तद्बीन भी हमारे ज़िम्मे है।

यह सारी ज़िम्मेदारी अल्लाह तआला ने ख़ुद अपने ऊपर ली है। अगर इन आयात को कोई शख्स क़ुरान मजीद की आयात मानता है तो उसको मानना पड़ेगा कि क़ुरान मजीद पूरे का पूरा जमा है, इसका कोई हिस्सा ज़ाया नहीं हुआ। सराहत के साथ यह बात सूरह अल् हिज्र की आयत 9 में मज़कूर है। फरमाया:

إِنَّا نَحْنُ نَزَّلْنَا الذِّكْرَ وَإِنَّا لَهُ لَحَافِظُونَ

"हमने ही इस 'अल् ज़िक्र' को नाज़िल किया है और हम ही इसकी हिफ़ाज़त करने वाले हैं।"

यह गोया हमेशा-हमेश के लिये अल्लाह तआला की तरफ़ से गारंटी है कि हमने इसे नाज़िल किया और हम ही इसके मुहाफ़िज़ हैं। इस हक़ीक़त को अल्लामा इक़बाल ने ख़ूबसूरत शेर में बयान किया है:

हर्फ़े ऊ रा रैब ने, तब्दील ने
आय इश शर्मिंदा तावील ने

"इसके अल्फ़ाज़ में ना किसी शक व शुबह का शायबा है न रद्दो-बदल की गुंजाईश। और इसकी आयत किसी तावील की मोहताज़ नहीं।"

इस शेर में तीन ऐतबारात से नफी की गई है: (1) क़ुरान के हुरूफ़ में यानि इसके मतन में कोई शक़ व शुबह की गुंजाइश नहीं। यह मिन व अन महफ़ूज़ है। (2) इसमें कहीं कोई तहरीफ़ (परिवर्तन) हुई हो, कहीं तब्दीली की गयी हो, क़तअन ऐसा नहीं। (3) क्या इसकी आयात की उलट-पुलट

तावील भी की जा सकती है? नहीं! यह आख़िरी बात बज़ाहिर बहुत बड़ा दावा मालूम होता है, इसलिये कि तावील के ऐतबार से क़ुरान मजीद के मायने में लोगों ने तहरीफ़ की, लेकिन वाक़्या यह है कि क़ुरान मजीद में अगर कहीं माअन्वी तहरीफ़ की कोशिश भी हुई है तो वह क़तअन दर्जा-ए-इस्तनाद को नहीं पहुँच सकी, उसे कभी भी इस्तक़लाल और दवाम हासिल नहीं हो सका, क़ुरान ने ख़ुद उसको रद्द कर दिया। जिस तरह दूध में से मक्ख़ी निकाल कर फेंक दी जाती है, ऐसी ही तावीलात भी उम्मत की तारीख़ के दौरान कहीं भी जड़ नहीं पकड़ सकी है और इसी तरह निकाल दी गई हैं। इस बात की सनद भी क़ुरान में मौजूद है। सूरह हा मीम सजदा की आयत 42 में है:

لَّا يَأْتِيهِ الْبَاطِلُ مِنْ بَيْنِ يَدَيْهِ وَلَا مِنْ خَلْفِهِ ۖ تَنزِيلٌ مِّنْ حَكِيمٍ حَمِيدٍ

“बातिल इस (क़ुरान) पर हमलावर नहीं हो सकता, ना सामने से ना पीछे से, यह एक हकीम व हमीद की नाज़िल करदा चीज़ है।”

यह बात सिरे से ख़ारिज अज़ इम्कान (मुमकिन ही नहीं) है कि इस क़ुरान में कोई तहरीफ़ (परिवर्तन) हो जाये, इसका कोई हिस्सा निकाल दिया जाये, इसमें कोई ग़ैर क़ुरान शामिल कर दिया जाये। सूरतुल हाक़्क़ा की यह आयात मुलाहिज़ा कीजिये जहाँ गोया इस इम्कान की नफ़ी में मुबालगे का अंदाज़ है:

وَلَوْ تَقَوَّلَ عَلَيْنَا بَعْضَ الْاَقَاوِيْلِ ﴿٤٤﴾ لَاَخَذْنَا مِنْهُ بِالْيَمِيْنِ ﴿٤٥﴾ ثُمَّ لَقَطَعْنَا مِنْهُ الْوَتِيْنَ ﴿٤٦﴾ فَمَا مِنْكُمْ مِّنْ اَحَدٍ عَنْهُ حٰجِزِيْنَ ﴿٤٧﴾

“(कोई और तो इसमें इज़ाफा क्या करेगा) अगर यह (हमारे नबी मुहम्मद ﷺ) ख़ुद भी (बफ़र्ज़े महाल) अपनी तरफ़ से कुछ गढ़ कर इसमें शामिल कर दें तो हम इन्हें दाहिने हाथ से पकड़ेंगे और इनकी शह रग़ काट देंगे। फिर तुम में से कोई (बड़े से बड़ा मुहाफ़िज़ व मददगार) नहीं होगा कि जो उन्हें हमारी पकड़ से बचा सके।”

यहाँ तो मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ के लिये भी इस शिद्दत के साथ नफ़ी कर दी गयी है। कुफ़्फ़ारे मुश्रिकीन की तरफ़ से मुतालबा किया जाता था कि आप इस क़ुरान में कुछ नरमी और लचक दिखायें यह तो बहुत rigid है, बहुत ही uncompromising है, बहरहाल दुनिया में मामलात “कुछ लो कुछ दो” (give and take) से तय होते हैं, लिहाज़ा कुछ आप नरम पड़ें कुछ हम नरम पड़ते हैं। इसके बारे में फ़रमाया: (अल् क़लम, आयत:9)

وَدُّوْا لَوْ تُدْهِنُ فَيُدْهِنُوْنَ

“वह तो चाहते हैं कि आप कुछ ढीले हो जायें तो यह भी ढीले हो जायेंगे।”

और सूरह यूनुस में इर्शाद हुआ:

وَاِذَا تُتۡلٰی عَلَیۡہِمۡ اٰیَاتُنَا بَیِّنٰتٍ ۙ قَالَ الَّذِیۡنَ لَا یَرۡجُوۡنَ لِقَآءَنَا ائۡتِ بِقُرۡاٰنٍ غَیۡرِ ہٰذَاۤ اَوۡ بَدِّلۡہُ ؕ قُلۡ مَا یَکُوۡنُ لِیۡۤ اَنۡ اُبَدِّلَہٗ مِنۡ تِلۡقَآیِٔ نَفۡسِیۡ ۚ اِنۡ اَتَّبِعُ اِلَّا مَا یُوۡحٰۤی اِلَیَّ ۚ اِنِّیۡۤ اَخَافُ اِنۡ عَصَیۡتُ رَبِّیۡ عَذَابَ یَوۡمٍ عَظِیۡمٍ ﴿۱۵﴾

"जब उन्हें हमारी आयाते बय्यिनात सुनाई जाती हैं तो वह लोग जो हमसे मिलने की तवक़्क़ो नहीं रखते, कहते हैं कि इस क़ुरान के बजाये कोई और क़ुरान लायें या इसमें कुछ तरमीम कीजिये। (ऐ नबी!इनसे) कह दीजिए मेरे लिये हर्ग़िज़ मुमकिन नहीं है कि मैं अपने ख़्याल और इरादे से इसके अंदर कुछ तब्दीली कर सकूँ। मैं तो ख़ुद पाबंद हूँ उसका जो मुझ पर वही किया जाता है। अगर मैं अपने रब की नाफ़रमानी करूँ तो मुझे एक बड़े हौलनाक दिन के अज़ाब का डर है।"

यह है क़ुरान मजीद की शान कि यह लफ़्जन, मायनन, मतनन कुल्ली तौर पर (हर तरह से) महफ़ूज़ है।

❀ ❀ ❀

बाब दोम (दूसरा)

चन्द मुतफ़र्रिक़ मुबाहिस

क़ुरान मजीद की ज़बान

अब आईये अगली बहस की तरफ़ कि क़ुरान मजीद की ज़बान क्या है और इस ज़बान की शान क्या है। यह बात भी क़ुरान मजीद ने बहुत तकरार और इआदह (दोहराना) के साथ बयान की है कि यह क़ुरान अरबी मुबीन में है, यानि सस्ता, साफ़, सलीस, खुली और वाज़ेह अरबी में है।

क़ुरान मजीद अल्लाह का कलाम है। इसने जिन हुरूफ़ व अस्वात (आवाज़) का जामा पहना वह हुरूफ़ व अस्वात लौहे महफ़ूज़ में हैं। इसके बाद वह कलामे इलाही, क़ौले जिब्रील अलै० और क़ौले मुहम्मद ﷺ बनकर नाज़िल हुआ और लोगों के सामने आया। चुनाँचे सूरह अल् ज़ुख़र्फ़ के आग़ाज़ में इर्शाद हुआ:

حٰمٓ ۝١ وَالْكِتٰبِ الْمُبِيْنِ ۝٢ اِنَّا جَعَلْنٰهُ قُرْءٰنًا عَرَبِيًّا لَّعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ۝٣

"हा, मीम। क़सम है इस वाज़ेह किताब की! हमने इसे क़ुराने अरबी बनाया है ताकि तुम समझ सको।"

क़ुरान की मुख़ातिब अव्वल क़ौम हिजाज़ में आबाद थी। उससे कहा जा रहा है कि हमने इस क़ुरान को तुम्हारी ज़बान में बनाया। उसने अव्वलन हुरूफ़ व अस्वात का जामा पहना है, फिर तुम्हारी ज़बान अरबी का जामा पहनकर तुम्हारे सामने नाज़िल किया गया है ताकि तुम इसको समझ सको।

यही बात सूरह यूसुफ़ के शुरू में कही गयी है:

الٓرٰ تِلْكَ اٰيٰتُ الْكِتٰبِ الْمُبِيْنِ ① اِنَّآ اَنْزَلْنٰهُ قُرْءٰنًا عَرَبِيًّا لَّعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ②

"अलिफ़, लाम, रा। यह उस किताब की आयात है जो अपना मदअन साफ़-साफ़ बयान करती है। हमने इसे नाज़िल किया है क़ुरान बनाकर अरबी ज़बान में ताकि तुम समझ सको।"

सूरह अल् शौरा में फ़रमाया:

بِلِسَانٍ عَرَبِيٍّ مُّبِيْنٍ ﴿١٩٥﴾

"साफ़-साफ़ अरबी ज़बान में (नाज़िल किया गया)।"

सूरह अल् ज़ुमुर में इर्शाद फ़रमाया:

قُرْاٰنًا عَرَبِيًّا غَيْرَ ذِيْ عِوَجٍ لَّعَلَّهُمْ يَتَّقُوْنَ ﴿٢٨﴾

"ऐसा क़ुरान जो अरबी ज़बान में है, जिसमें कोई टेढ़ नहीं है, ताकि वह बच कर चलें।"

इसमें कहीं कजी नहीं, कहीं कोई ऐच-पेच नहीं, इसकी ज़बान बहुत सलीस, सस्ता और बिलकुल वाजेह ज़बान है। इसमें कहीं पहेलियाँ बुझवाने का अंदाज़ नहीं है।

अब नोट कीजिये कि क़ुरान की अरबी कौनसी अरबी है? इसलिये कि अरबी ज़बान एक है मगर इसके dialects और इसकी बोलियाँ बेशुमार है। ख़ुद जज़ीरा नुमाए अरब में कई बोलियाँ थीं, तलफ्फुज़ और लहजे मुख़्तलिफ़ थे। बाज़ अल्फ़ाज़ किसी ख़ास इलाक़े में मुस्तमिल थे और दूसरे इलाक़े के लोग उन अल्फ़ाज़ को जानते ही नहीं थे। आज भी कहने को तो मिश्र, लीबिया, अल् जज़ाइर, मुरतानिया और हिजाज़ की ज़बान अरबी है, लेकिन उनके यहाँ जो फ़सीह अरबी कहलाती है वह तो एक ही है। वह दरहक़ीक़त एक इसलिये है कि क़ुरान मजीद ने उसे दवाम अता किया है। यह क़ुरान मजीद का अरबी ज़बान पर अज़ीम अहसान है। इसलिये कि दुनिया में दूसरी कोई ज़बान भी ऐसी नहीं है जो चौदह सौ बरस से एक ही शान और एक ही कैफ़ियत के साथ बाकी हो। उर्दू ज़बान ही को देखिये 100-200 बरस पुरानी उर्दू आज हमारे लिये नाक़ाबिले फ़हम है। दक्कन की उर्दू हमें समझ नहीं आ सकती, इसमें कितनी तब्दीली हुई है। इसी तरह फ़ारसी ज़बान का मामला है। एक वह फ़ारसी थी जो अरबों की आमद और इस्लाम के ज़ुहूर के वक़्त थी। अरबों के हाथों ईरान फ़तह हुआ तो रफ़्ता-रफ़्ता उस फ़ारसी का रंग बदलता गया। अब उसको फिर बदला गया है और उसमें से अरबी अल्फ़ाज़ को निकाल कर उसके लहजे भी बदल दिये गये हैं। एक फ़ारसी वह है जो अफ़ग़ानिस्तान में बोली जाती है, वह हमारी समझ में आती है। इसलिये

कि जो फ़ारसी यहाँ पढ़ाई जाती थी वह यही फ़ारसी थी। आज जो फ़ारसी ईरान में पढ़ाई जा रही है वह बहुत मुख़्तलिफ़ है, अपने लहजे में भी और अपने अल्फ़ाज़ के ऐतबार से भी। लेकिन अरबी "फ़सीह ज़बान" एक है। यह असल में हिजाज़ के बद्दुओं की ज़बान थी। पूरा क़ुरान हकीम हिजाज़ में नाज़िल हुआ। हजाज़ में बादिया नशीन थे। अरबों का कहना है कि ख़ालिस ज़बान बादिया नशीनों की है, शहर वालों की नहीं। जबकि मक्का शहर था और वहाँ बाहर से भी लोग आते रहते थे। क़ाफिले आ रहे हैं, जा रहे हैं, ठहर रहे हैं। जहाँ इस तरह आमद व रफ्त हो वहाँ ज़बान ख़ालिस नहीं रहती और उसमें ग़ैर ज़बानों के अल्फ़ाज़ शामिल होकर मुस्तमिल हो जाते हैं और बोल-चाल में आ जाते हैं। ख़ास इसी वजह से मक्का के शरफ़ा अपने बच्चों को पैदाइश के फ़ौरन बाद बादिया नशीनों के पास भेज देते थे। एक तो दूध पिलाने का मामला था। दूसरा यह कि उनकी ज़बान साफ़ रहे, ख़ालिस अरबी ज़बान रहे और वह हर मिलावट से पाक रहे। तो क़ुरान मजीद हिजाज़ के बादिया नशीनों की ज़बान में नाज़िल हुआ।

अलबत्ता यह साबित है कि क़ुरान मजीद में कुछ अल्फ़ाज़ दूसरे क़बाइल और दूसरे इलाक़ों की ज़बानों के भी आये हैं। अल्लामा जलालुद्दीन स्यूती रहि० ने ऐसे अल्फ़ाज़ की फेहरिस्त मुरत्तब (लिस्ट बनाई है) की है। इसके अलावा कुछ ग़ैर अरबी अल्फ़ाज़ भी क़ुरान मजीद में आये हैं जो मौरब हो गये हैं। इब्राहीम, इस्माईल, इस्राईल, इस्हाक़ यह तमाम नाम दरहक़ीक़त अबरानी ज़बान के अल्फ़ाज़ हैं। लफ़्ज़ "ईल" अबरानी ज़बान में अल्लाह के लिये आता है

और यह लफ़्ज़ हमारे यहाँ क़ुरान मजीद के ज़रिये आया है। इसी तरीक़े से “सिज्जील” का लफ़्ज़ फ़ारसी से आया है। सहरा में कहीं बारिश के नतीजे में हल्की सी फुहार पड़ी हो तो बारिश के क़तरों के साथ रेत के छोटे-छोटे दाने बन जाते हैं और फिर तेज़ धूप पड़ने पर ऐसे पक जाते हैं जैसे भट्टे में ईंटो को पका दिया गया हो। यह कंकर “सिज्जील” कहलाते हैं जो “संगे गुल” का मौरब है। बाक़ी अक्सर व बेशतर क़ुरान मजीद की ज़बान जिसमें यह नाज़िल हुआ, वह हिजाज़ के इलाक़े के बादिया नशीनों की अरबी है, जिसमें फ़साहत व बलाग़त नुक़्ता-ए-उरूज पर है और इसका लोहा माना गया है।

इसके अलावा क़ुरान मजीद में एक सौती आहंग है। इसका एक “मलकूती गिना” (Divine Music) है, इसकी एक अज़ूबत और मिठास है। यह दोनों चीज़ें अरब में पूरे तौर पर तस्लीम की गई हैं और लोगों पर सबसे ज़्यादा मरऊबियत (पसंद) क़ुरान हकीम की फ़साहत, बलाग़त और अज़ूबित ही से तारी हुई है। उनकी अपनी ज़बान में होने के ऐतबार से ज़ाहिर बात है कि क़ुरान के बेहतरीन नाक़द भी वही हो सकते थे। वाज़ेह रहे कि अदब में “तन्क़ीद” दोनों पहलुओं को मुहीत होती है। किसी चीज़ की क़द्र व क़ीमत का अंदाज़ा लगाना, उसे जाँचना, परखना। उसमें कोई ख़ामी हो तो उसको नुमाया करना, और अगर कोई मुहासिन हो तो उनको समझना और बयान करना। इस ऐतबार से इसकी फ़साहत व बलाग़त को तस्लीम किया गया है।

मैं अर्ज़ कर चुका हूँ कि अरबी ज़बान आज भी मुख़्तलिफ़ इलाक़ों में मुख़्तलिफ़ लहजों और बोलियों की शक़्ल इख़्तियार कर चुकी है। एक इलाक़े की आमी (colloquial) रबी दूसरे लोगों की समझ में नहीं आती थी। ख़ुद नुज़ूले क़ुरान के ज़माने में नजद के लोगों की ज़बान हिजाज़ के लोगों की समझ में नहीं आती थी। इसकी वज़ाहत एक हदीस में भी मिलती है कि नजद से कुछ लोग आए और वह हुज़ूर ﷺ से गुफ़्तगु कर रहे थे जो बड़ी मुश्किल से समझ में आ रही थी और लोग उसे समझ नहीं पा रहे थे। आज भी नजद के लोग जो गुफ़्तगु करते हैं तो वाक़िया यह है कि अरबी से वाक़फ़ियत (जानने) होने के बावजूद उनकी अरबी हमारी समझ में नहीं आती, उनका लबो लहजा बिल्कुल मुख़्तलिफ़ है। क़ुरान हकीम की ज़बान हिजाज़ के बादिया नशीनों की है। लिहाज़ा अगर तहक़ीक़ व तदब्बुर क़ुरान का हक़ अदा करना हो तो जाहिलियत की शायरी पढ़ना ज़रूरी है। अइम्मा-ए-लुग़त (Master of language) ने एक-एक लफ़्ज़ की तहक़ीक़ करके और बड़ी गहराईयों में उतर कर जाहिली शायरी के हवाले से जितने भी इस्तशहाद (प्रमाण) हो सकते थे उनको ख़ंगाल कर क़ुरान में मुस्तमिल अल्फ़ाज़ के माद्दों के मफ़हूम मुअय्यन (अर्थ बता दिये) कर दिये हैं। एक आम क़ारी को, जो क़ुरान से तज़्ज़कुर करना चाहे, सिर्फ़ हिदायत हासिल करना चाहे, इस झगड़े में पड़ने की चंदान ज़रूरत नहीं है। अलबत्ता तदब्बुर क़ुरान के लिये जब तहक़ीक़ की जाती है तो जब तक किसी एक लफ़्ज़ की असल पूरी तरह मालूम न की जाए और उसके बाल की ख़ाल न उतार ली जाए तहक़ीक़ का हक़ अदा नहीं होता। इस

ऐतबार से शेर जाहिली की ज़बान को समझना तदब्बुर क़ुरान के लिये यक़ीनन ज़रूरी है।

क़ुरान के अस्मा व सिफ़ात

अगली बहस क़ुरान हकीम के अस्मा (नाम) व सिफ़ात (गुणों) की है। अल्लाम जलालुद्दीन स्यूति रहि० ने अपनी शहरा आफ़ाक़ किताब "अल् इत्तेफाक़ फ़ी उलूमुल क़ुरान" में क़ुरान हकीम के अस्मा व सिफ़ात क़ुरान हकीम ही से लेकर पचपन (55) नामों की फ़ेहरिस्त मुरत्तब (तैयार) की है। मैंने जब इस पर ग़ौर किया तो अंदाज़ा हुआ कि वह भी कामिल नहीं है, मसलन लफ़्ज़ "बुरहान" उनकी फ़ेहरिस्त में शामिल नहीं है। दरहक़ीक़त (असल में) क़ुरान मजीद की सिफ़ात, इसकी शानों और इसकी तासीर के लिये मुख़्तलिफ़ अल्फ़ाज़ को जमा किया जाये तो 55 ही नहीं इससे ज़्यादा अल्फ़ाज़ बन जायेंगे। लेकिन मैंने इन्हें दो हिस्सों में तक़सीम किया है। एक तो वह अल्फ़ाज़ हैं जो मुफ़रद की हैसियत से और मारफ़ा की शक्ल में क़ुरान मजीद में क़ुरान के लिये वारिद हुए हैं, जबकि कुछ सिफ़ात हैं जो मौसूफ़ के साथ आ रही हैं। मसलन "क़ुरान मजीद" में "मजीद" क़ुरान का नाम नहीं है, दरहक़ीक़त सिफ़त है। इसी तरह "अल् क़ुरान अल् मजीद" में अग़रचे "अलिफ़ लाम" के साथ "अल् मजीद" आता है, लेकिन यह चूँकि मौसूफ़ के साथ मिल कर आया है लिहाज़ा यह भी सिफ़त है।

क़ुरान माजीद के लिये जो अल्फ़ाज़ बतौर-ए-इस्म आये हैं, उनमें से अक्सर व बेशतर वह हैं जिनके साथ लाम लगा

है। क़ुरान के लिये अहमतरीन नाम जो इसका इम्तियाज़ी (विशेष) और इख़्तसासी (The Exclusive) नाम है, "अल् क़ुरान" है। (मैं बाद में इसकी वज़ाहत करूँगा) इसके बाद कसरत से इस्तेमाल होने वाला नाम "अल् किताब" है। क़ुरान की असल हक़ीक़त पर रोशनी डालने वाला अहमतरीन नाम "अल् ज़िक्र" है। क़ुरान मजीद की इफ़ादियत के लिये सबसे ज़्यादा जामेअ नाम "अल् हुदा" है। क़ुरान मजीद की नौइयत और हैसियत के ऐतबार से अहम तरीन नाम "अल् नूर" है। क़ुरान मजीद की एक इन्तहाई अहम शान जो एक लफ़्ज़ के तौर पर आई है "अल् फ़ुरक़ान" है यानि (हक़ व बातिल में) फ़र्क कर देने वाली शय, दूध का दूध और पानी का पानी जुदा कर देने वाली शय। क़ुरान का एक नाम "अल् वही" भी आया है: {قُلْ إِنَّمَآ أُنذِرُكُم بِٱلْوَحْيِ} (अल् अम्बिया:45)। इसी तरह "कलामुल्लाह" का लफ़्ज़ भी ख़ुद क़ुरान में आया है: {حَتَّىٰ يَسْمَعَ كَلَٰمَ ٱللَّهِ} (अत् तौबा:6) चूँकि यहाँ कलाम मुदाफ़ वाक़ेअ हुआ है, लिहाज़ा यह भी मआरफा बन गया। मेरे नज़दीक जिन्हें हम क़ुरान के नाम क़रार दें, वह तो यही बनते हैं। अग़रचे, जैसा कि मैंने अर्ज़ किया, जो लफ़्ज़ भी क़ुरान के लिये सिफ़त के तौर पर या इसकी शान को बयान करने के लिये क़ुरान में आ गया है अल्लामा जलालुद्दीन स्यूती रहि० ने उसको फ़ेहरिस्त में शामिल करके 55 नाम गिनवाये हैं, लेकिन यह फ़ेहरिस्त भी मुकम्मल नहीं।

क़ुरान करीम की मुख़्तलिफ़ शानों और सिफ़ात के लिये यह अल्फ़ाज़ आए हैं:

करीमुन إِنَّهُۥ لَقُرْءَانٌ كَرِيمٌ ۝ (अल् वाक़्या:77)

अल् हकीम	يٰسٓ ﴿۱﴾ وَالْقُرْاٰنِ الْحَكِيْمِ ﴿۲﴾	(यासीन:1-2)
अल् अज़ीम	وَلَقَدْ اٰتَيْنٰكَ سَبْعًا مِّنَ الْمَثَانِيْ وَالْقُرْاٰنَ الْعَظِيْمَ ﴿۸۷﴾	(अल् हिज्र:87)
मजीदुन और अल् मजीद	بَلْ هُوَ قُرْاٰنٌ مَّجِيْدٌ ﴿۲۱﴾ और قٓ ۚ وَالْقُرْاٰنِ الْمَجِيْدِ ﴿۱﴾	(अल् बुरूज:21) (क़ाफ़:
अल् मुबीन	حٰمٓ ﴿۱﴾ وَالْكِتٰبِ الْمُبِيْنِ ﴿۲﴾	(अल् ज़ुख़रुफ़:1-2)
रहमतुन	هُدًى وَّرَحْمَةٌ لِّلْمُؤْمِنِيْنَ ﴿۵۷﴾	(यूनुस:57)
अलिय्युन	وَاِنَّهٗ فِيْٓ اُمِّ الْكِتٰبِ لَدَيْنَا لَعَلِيٌّ حَكِيْمٌ ﴿۴﴾	(अल् ज़ुख़रुफ़:4)
बसाइर	قَدْ جَآءَكُمْ بَصَآئِرُ مِنْ رَّبِّكُمْ ۚ	(अल् अनआम:104)
बशीरुन व नज़ीरुन	بَشِيْرًا وَّنَذِيْرًا ۚ	(हा मीम सज्दा:4)

[अल्फ़ाज़ अम्बिया के लिये आते हैं लेकिन यहाँ खुद क़ुरान के लिये भी आये हैं। क़ुरान अपनी ज़ात में फ़ी नफ़
र भी है]

बुशरा	وَبُشْرٰى لِلْمُسْلِمِيْنَ	(अल् नहल:89, 102)
अज़ीज़ुन	وَاِنَّهٗ لَكِتٰبٌ عَزِيْزٌ ﴿۴۱﴾	(हा मीम सज्दा:41)
बलाग़ुन	هٰذَا بَلٰغٌ لِّلنَّاسِ	(इब्राहीम:52)
बयानुन	هٰذَا بَيَانٌ لِّلنَّاسِ	(आले इमरान:138)
मौइज़तुन		
शिफ़ाउन	قَدْ جَآءَتْكُمْ مَّوْعِظَةٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَشِفَآءٌ لِّمَا فِي الصُّدُوْرِ ۙ	(यूनुस:57)
अहसनुलक़सस	نَحْنُ نَقُصُّ عَلَيْكَ اَحْسَنَ الْقَصَصِ	(यूसुफ़:3)
अहसनुल हदीस		
मुताशाबिह		
मसानिया	اَللّٰهُ نَزَّلَ اَحْسَنَ الْحَدِيْثِ كِتٰبًا مُّتَشَابِهًا مَّثَانِيَ ۖ	(अल् ज़ुमर:23)
मुबारकुन	كِتٰبٌ اَنْزَلْنٰهُ اِلَيْكَ مُبٰرَكٌ	(सुआद:29)
मुसद्दिक़ुन		
मुहय्मिनुन	مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ مِنَ الْكِتٰبِ وَمُهَيْمِنًا عَلَيْهِ	(अल् मायदा:48)
क़य्यिम	قَيِّمًا لِّيُنْذِرَ بَاْسًا شَدِيْدًا مِّنْ لَّدُنْهُ	(अल् कहफ़:2)

यह मुख़्तलिफ़ अल्फ़ाज़ हैं जो क़ुरान हकीम की मुख़्तलिफ़ शानों के लिये आए हैं। जैसा कि अल्लाह तआला के निन्यानवे (99) नाम हैं, जो उसकी मुख़्तलिफ़ शानों को ज़ाहिर करते हैं, इसी तरह हुज़ूर ﷺ के नामों की फ़ेहरिस्त भी आपने पढ़ी होगी। आप ﷺ की मुख़्तलिफ़ शानें हैं, इसके ऐतबार से आप बशीर भी हैं, नज़ीर भी हैं, हादी भी हैं, मुअल्लिम भी हैं। क़ुरान मजीद के भी मुख़्तलिफ़ अस्मा व सिफ़ात हैं।

लफ़्ज़ "क़ुरान" की लुग़वी बहस:

क़ुरान मजीद के नामों में सबसे अहम नाम "अल् क़ुरान" है, जिसके लिये मैंने लफ़्ज़ exclusive इस्तेमाल किया था कि यह किसी और किताब के लिये इस्तेमाल नहीं हुआ, वरना तौरात किताब भी है, हिदायत भी थी, और उसके लिये लफ़्ज़ नूर भी आया है। इर्शाद हुआ:

اِنَّآ اَنْزَلْنَا التَّوْرٰىةَ فِيْهَا هُدًى وَّنُوْرٌ ۚ

"हमने तौरात नाज़िल की जिसमें हिदायत भी है और नूर भी।" (अल् मायदा:44)

ख़ुद क़ुरान मजीद हिदायत भी है, नूर भी है, रहमत भी है। तो बक़िया तमाम औसाफ़ तो मुश्तरिक (एक जैसे) हैं, लेकिन अल् क़ुरान के लफ़्ज़ का इतलाक़ कुतुबे समाविया (आसमानी किताबों) में से किसी और किताब पर नहीं होता। यह इम्तियाज़ी, इख़्तसासी और इस्तस्नाई नाम सिर्फ़ क़ुरान मजीद के लिये है। इसी लिये एक राय यह है कि यह

इस्मे अलम है, और इस्मे जमिद है, इस्मे मुश्तक़ नहीं है। अल्लाह तआला के नाम "अल्लाह" के बारे में भी एक राय यह है कि यह इस्मे ज़ात है, इस्मे अलम है, इस्मे जामिद है, मुश्तक़ नहीं है, यह किसी और माद्दे से निकला हुआ नहीं है। जबकि एक राय यह है कि यह भी सिफ़त है, जैसे अल्लाह तआला के दूसरे सिफ़ाती नाम हैं। जैसे "अलीम" अल्लाह तआला की सिफ़त है और "अल् अलीम" नाम है, "रहीम" सिफ़त है और "अर्रहीम" नाम है, इसी तरह इलाह पर "अल्" दाख़िल हुआ तो "अल् इलाह" बन गया और दो लाम मुद्ग़म होने (मिलने) से यह "अल्लाह" बन गया। यह दूसरी राय है। जो मामला लफ़्ज़ अल्लाह के बारे में इख़्तलाफ़ी है बईना वही इख़्तलाफ़ लफ़्ज़ क़ुरान के बारे में है। एक राय यह है कि यह इस्मे जामिद और इस्मे आलम है, इसका कोई और माद्दा नहीं है। जबकि दूसरी राय यह है कि यह इस्मे मुश्तक़ है। लेकिन फिर इसके माद्दे की ताईन में इख़्तलाफ़ है।

एक राय के मुताबिक इसका माद्दा "قرن" है, यानि क़ुरान में जो "नून" है वह भी हर्फ़े असली है। दूसरी राय के मुताबिक़ इसका माद्दा "ق ر ء" है। यह गोया महमूज़ है। मैं यह बातें अहले इल्म की दिलचस्पी के लिये अर्ज़ कर रहा हूँ। जिन लोगों ने इसका माद्दा "قرن" माना है, उनके भी दो राय हैं। एक राय यह कि जैसे अरब कहते हैं "قَرَنَ الشَّیْءَ بِالشَّیْءِ" (कोई शय [चीज़] किसी दूसरे के साथ शामिल कर दी गई) तो इससे क़ुरान बना है। अल्लाह तआला की आयात, अल्लाह तआला का कलाम जो वक़्तन-फ़-वक़्तन नाज़िल हुआ, इसको जब जमा कर दिया गया तो वह

"क़ुरान" बन गया। इमाम अश'अरी भी इस राय के क़ायल हैं। जबकि एक राय इमाम फ़राअ की है, जो लुग़त के बहुत बड़े इमाम हैं, कि यह क़रीना और क़राइन से बना है। क़राइन कुछ चीज़ों के आसार होते हैं। क़ुरान मजीद की आयात चूँकि एक-दूसरे से मुशाबह हैं, जैसा कि सूरह अल् ज़ुमुर में क़ुरान मजीद की यह सिफ़त वारिद हुई है "كِتٰبًا مُّتَشَابِهًا مَّثَانِيَ" (आयत:23)। इस ऐतबार से आपस में यह आयात क़ुरनाअ हैं। चुनाँचे क़रीना से क़ुरान बन गया है।

जो लोग कहते हैं कि इसका माद्दा ق ر ء है वह क़ुरान को मसदर मानते हैं। قَرَأَ،يَقْرَأُ،قَرْأً،وَقِرَاءَةً وَقُرْآنًا। यह अग़रचे मसदर का मारूफ़ वज़न नहीं है लेकिन इसकी मिसालें अरबी में मौजूद हैं। जैसे رَجَعَ से رُجحان और غَفَرَ से غُفران। इनके मादह में "नून" शामिल नहीं है। जैसे ग़ुफ़रान और रुजहान मसदर हैं, ऐसे ही قرأ से मसदर क़ुरान है यानि पढ़ना। और मसदर बसा औक़ात मफ़ऊल का मफ़हूम देता है। तो क़ुरान का मफ़हूम होगा पढ़ी जाने वाली शय, पढ़ी गयी शय। "قَرَأَ" में जमा करने का मफ़हूम भी है। अरब कहते हैं: قرأتُ المَاءَ فِي الحَوضِ "मैंने हौज़ के अंदर पानी जमा कर लिया।" इसी से क़ुरिया बना है, यानि ऐसी जगह जहाँ लोग जमा हो जायें। गोया क़ुरान का मतलब है अल्लाह का कलाम जहाँ जमा कर दिया गया। तमाम आयात जब जमा कर ली गयीं तो यह क़ुरान बन गया। जैसे क़ुरिया वह जगह है जहाँ लोग आबाद हो जायें, मिल-जुल कर रह रहे हों। तो

जमा करने का मफ़हूम قَرَءَमें भी है और قرنमें भी है। यह दोनों माद्दे एक-दूसरे से बहुत क़रीब हैं। बहरहाल यह इस लफ़्ज़ की लुग़वी बहस है।

क़ुरान का अस्लूबे कलाम

अब मैं अगली बहस पर आ रहा हूँ कि इसका अस्लूबे कलाम क्या है! क़ुरान मजीद ने शद व मद के साथ जिस बात की नफ़ी की है वह यह है कि यह शेर नहीं है: (यासीन:69)

وَمَا عَلَّمْنٰهُ الشِّعْرَ وَمَا يَنْۢبَغِيْ لَهٗ

"हमने अपने इस रसूल को शेर सिखाया ही नहीं, ना इनके यह शायाने शान है।"

शायरों के बारे में सूरह अल् शौराअ में आया है:

وَالشُّعَرَاۗءُ يَتَّبِعُهُمُ الْغَاوٗنَ ۲۲۴ اَلَمْ تَرَ اَنَّهُمْ فِيْ كُلِّ وَادٍ يَّهِيْمُوْنَ ۲۲۵ وَاَنَّهُمْ

"और शायरों की पैरवी तो वही लोग करते हैं जो गुमराह हों। क्या तूने नहीं देखा कि वह हर वादी में घूमते रहते हैं (हर मैदान में सरगर्दां रहते हैं) और यह कि वह कहते हैं जो नहीं करते।"

يَقُوْلُوْنَ مَا لَا
يَفْعَلُوْنَ ﴿٢٢٦﴾

अगली आयत में {اِلَّا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ....} के अल्फ़ाज के साथ इस्तसना भी आया है, और इस्तसना क़ायदा-ए-कुल्लिया की तौसीक़ करता है (Exception proves the rule)--- चुनाँचे क़ुरान मजीद के ऐतबार से शेर गोयी कोई अच्छी शय नहीं है, कोई ऐसी महमूद सिफ़त नहीं है कि जो अल्लाह तआला अपने रसूल को अता फ़रमाता। बल्कि हुज़ूर अकरम ﷺ का मामला तो यह था कि आप ﷺ कभी कोई शेर पढ़ते भी थे तो ग़लती हो जाती थी। इसलिये कि नबी अकरम ﷺ पर से अल्लाह तआला शायरी की तोहमत हटाना चाहता था, लिहाज़ा आपके अंदर शायरी का वस्फ़ (ख़ूबी) ही पैदा नहीं किया गया। सीरत का एक दिलचस्प वाक़या आता है कि हुज़ूर ﷺ ने एक मर्तबा एक शेर पढ़ा और उसमें ग़लती हुई। इस पर हज़रत अबु बकर (रज़ि०) मुस्कुराये और अर्ज़ की: اَشْهَدُ اَنَّكَ لَرَسُوْلُ اللّٰهِ "मैं ग़वाही देता हूँ कि यक़ीनन आप अल्लाह के रसूल हैं।" इसलिये कि अल्लाह ने फ़रमाया है: {وَمَا عَلَّمْنٰهُ الشِّعْرَ وَمَا يَنْۢبَغِيْ لَهٗ} (यासीन:69) तो वाक़िअतन आपको शेर से यानि शेर के वज़न और उसकी बहर वग़ैरह से मुनासबत नहीं थी। बाक़ी जहाँ तक शेर के मफ़हूम का और आला मज़ामीन का ताल्लुक़ है तो ख़ुद हुज़ूर ﷺ का

फ़रमान है: ((اِنَّ مِنَ الْبَيَانِ لَسِحْرًا وَاِنَّ مِنَ الشِّعْرِ لَحِكْمَةً)) यानि बहुत से बयान बहुत से ख़ुत्बे और तक़रीरें जादू असर होते हैं और बहुत से अशआर के अंदर हिकमत के ख़जाने होते हैं। बाज़ शायरों के अशआर हुज़ूर ﷺ ने ख़ुद पढ़े भी हैं और उनकी तहसीन फ़रमाई है, लेकिन क़ुरान बहरहाल शेर नहीं है।

अलबत्ता एक बात कहने की जुर्रत कर रहा हूँ कि क़दीम ज़माने की शायरी जिसमें बहर, वज़न और रदीफ़ व क़ाफ़िया की पाबंदी सख़्ती के साथ होती थीं, उसके ऐतबार से यक़ीनन क़ुरान शेर नहीं है, लेकिन एक शायरी जिसका रिवाज असरे हाज़िर में हुआ है और उसके लिये ग़ालिबन क़ुरान ही के अस्लूब को चुराया गया है, जिसे आप "आज़ाद नज़्म" (Blank Verse) कहते हैं, उसके अंदर जो सिफ़ात और ख़ुसूसियात आजकल होती हैं उनका मिन्बा और सरचश्मा क़ुरान हकीम है। इसलिये कि इसमें एक रिदम (Rythm) होता है, इसमें फ़वासल भी हैं, क़वानी के तर्ज़ पर सौती आहंग भी है, लेकिन वह जो मारूफ़ शायरी थी उसके ऐतबार से क़ुरान बड़ी ताकीद के साथ कहता है कि क़ुरान शेर नहीं है।

क़ुरान के अस्लूब के ज़िमन में दूसरी अहम बात यह है कि आम मायने में क़ुरान किताब भी नहीं है। मैं यहाँ इक़बाल का मिसरा qoute कर रहा हूँ, अग़रचे इसके वह मायने नहीं "ईं किताबे नीस्त चीज़े दीग़र अस्त!"

आज हमारा किताब का तसव्वुर यह है कि उसके मुख़्तलिफ़ अबवाब (Chapters) होते हैं। आप किसी किताब या तस्नीफ़ में एक मौज़ू को एक बाब की शक्ल देते

हैं। एक बाब (Chapter) मे एक बात मुकम्मल हो जानी चाहिये। अगले बाब में बात आगे चलेगी, कोई पिछली बात नहीं दोहराई जायेगी, तीसरे बाब में बात और आगे चलेगी। फिर एक किताब मज़मून के ऐतबार से एक वहादत बनेगी और उसके अंदर मौज़ूआत (विषय) और उन्वानात (शीर्षकों) के हवाले से अबवाब (Chapters) तक़सीम हो जायेंगे। गोया हमारे यहाँ मारूफ़ मायने में किताब का इत्लाक़ जिस चीज़ पर किया जाता है, उस मायने में क़ुरान किताब नहीं है। अल्बत्ता यह "अल् किताब" है ब-मायने लिखी हुई शय। अल्लाह तआला ने इसे किताब क़रार दिया है और इसके लिये सबसे ज़्यादा कसरत से यही लफ़्ज़ "किताब" ही क़ुरान में आया है। यह अल्फ़ाज़ साढ़े तीन सौ (350) जगह आया है। क़ुरान और क़ुरआनन तक़रीबन 70 मक़ामात पर आया है। लेकिन "क़ुरान" exclusive आया है, जबकि किताब का लफ़्ज़ तौरात, इंजील, इल्मे ख़ुदावंदी और तक़दीर के लिये भी आया है और क़ुरान मजीद के हिस्सों और अहकाम के लिये भी आया है। बहरहाल किताब इस मायने में तो है। माज़अल्लाह, कोई यह नहीं कह सकता कि क़ुरान किताब नहीं है, लेकिन जिस मायने में हम लफ्ज़ किताब बोलते हैं उस मायने में क़ुरान किताब नहीं है।

तीसरी बात यह कि यह मज्मुआ मक़ालात (collection of essays) भी नहीं है। इसलिये कि हर मक़ाला अपनी जगह पर ख़ुद मकतफ़ी और एक मुकम्मल शय होता है। लेकिन क़ुरान मजीद के बारे में हम यह बात नहीं कह सकते। तो फिर यह है क्या? पहली बात तो यह नोट कीजिये कि इसका अस्लूब ख़ुत्बे का है। अरब में दो ही

चीजें ज़्यादा मारूफ़ थीं, ख़िताबत या शायरी। शौअरा (शायर का plural) उनके यहाँ बड़े महबूब थे। शायरी का उनको बड़ा ज़ौक (पसंद) था और वह शौअरा की बड़ी क़द्र करते थे। उनके यहाँ क़सीदा गोई के मुक़ाबले होते थे। फिर हर साल जो सबसे बड़ा शायर शुमार होता था उसकी अज़मत को तस्लीम करने की अलामत के तौर पर सब शायर उसके सामने बाक़ायदा सजदा करते थे। फिर उसका क़सीदा बैतुल्लाह पर लटका दिया जाता था। यही क़सीदे "معلّقة سبعة" के नाम से मारूफ़ हैं। चुनाँचे अरब या तो शेरों से वाक़िफ़ थे या ख़ुत्बों से। तो क़ुरान मजीद उस दौर की दो सबसे ज़्यादा मारूफ़ अस्नाफ़ (शायरी और ख़ुत्बा) में ख़ुत्बे के अस्लूबी पर है। इस ऐतबार से हम कह सकते हैं कि क़ुरान हक़ीम मज्मुआ-ए-ख़ुत्बाते इलाहिया (A collection of divine orations) है, जिसमें हर सूरत एक ख़ुत्बे की मांनिंद है।

ख़ुत्बे के ऐतबार से चंद बाते नोट कर लें। ख़ुत्बे में मुख़ातब (दर्शक) और ख़तीब (वक्ता) के दरमियान एक ज़हनी रिश्ता होता है। मुख़ातिब (वक्ता) को मालूम होता है कि मेरे सामने कौन लोग बैठे हैं, उनकी फ़िक्र क्या है, उनकी सोच क्या है, उनके अक़ाइद क्या हैं, उनके नज़रियात क्या हैं। वह उनका हवाला दिये बग़ैर अपनी गुफ़्तुगू के अंदर उन पर तन्क़ीद भी करेगा, उनकी तसीह भी करेगा, लेकिन कोई तम्हीदी कलिमात नहीं होंगे कि अब मैं तुम्हारी फ़लाँ ग़लती की तसीह करना चाहता हूँ, मैं अब तुम्हारे इस ख़्याल की नफ़ी करना चाहता हूँ। यह अंदाज़ नहीं होगा बल्कि वह रवानी के साथ आगे चलेगा। मुख़ातिब (वक्ता) और मुख़ातब

(दर्शक) के माबैन एक ज़हनी हम-आहंगी होती है, वह एक-दूसरे से वाक़िफ़ होते हैं, और ख़ास तौर पर मुख़ातिबीन के फ़हम, उनकी समझ, उनके अक़ीदे, उनके नज़रियात से ख़तीब वाक़िफ़ होता है। यह दर हक़ीक़त ख़ुत्बे की शान है। यही वजह है कि इसमें तहवीले ख़िताब होती है और बग़ैर वारनिंग के होती है। बसा औक़ात ग़ायब को हाज़िर फ़र्ज़ करके उससे ख़िताब किया जाता है। चुनाँचे ऐसा भी होता है कि एक ख़तीब मस्जिद में ख़ुत्बा दे रहा है और वह मुख़ातिब कर रहा है सदरे ममलकत को, हालाँकि वह वहाँ मौजूद नहीं होते। इस तरह जो लोग बैठे हुए हैं बसा औक़ात उनसे सीग़ा ग़ायब में गुफ़्तगू शुरू हो जायेगी, और यह भी बलाग़त का अंदाज़ है। कभी वह एक तरफ़ बात कर रहा, कभी दूसरी तरफ़ कर रहा है, कभी किसी ग़ायब से बात कर रहा है और ख़िताबत का वही अंदाज़ होगा अग़रचे वह ग़ायब वहाँ मौजूद नहीं है। इसको तहवीले ख़िताब कहते हैं। क़ुरान मजीद पर ग़ौर करने के ज़िमन में इसकी बहुत अहमियत होती है। अगर ख़िताब का रुख़ मुअय्यन हो कि यह बात किससे कही जा रही है, मुख़ातब कौन है, तो इस बात का असल मफ़हूम उजागर होकर सामने आता है, वरना अगर मुख़ातब का तअय्युन न हो तो बहुत से बड़े-बड़े मुग़ालतें जन्म ले सकते हैं।

ख़ुत्बे और मक़ाले में एक वाजेह फ़र्क यह होता है कि मक़ाले में आम तौर पर सिर्फ़ अक़्ल से अपील की जाती है। इसमें मन्तिक़ और अक़्ली दलीलें होती हैं, जबकि ख़ुत्बे में अक़्ल के साथ-साथ जज़्बात से भी अपील होती है। गोया

कि इंसान के अंदर झाँक कर बात की जाती है। लोगों को दावत दी जाती है कि अपने अंदर झाँको। और:

وَفِيْٓ اَنْفُسِكُمْ ۭ اَفَلَا تُبْصِرُوْنَ ۝21

"और ख़ुद तुम्हारे अंदर भी (निशानियाँ हैं) तो क्या तुमको सूझता नहीं है?" (अज़ ज़ारियात:21)

और:

اَفِي اللّٰهِ شَكٌّ فَاطِرِ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ۭ

"(ज़रा ग़ौर करो) क्या अल्लाह के बारे में शक करते हो जो ज़मीन और आसमान का बनाने वाला है?"(इब्राहिम:10)

यह अंदाज़ बहरहाल किसी तहरीर या मक़ाले में नहीं होगा, यह ख़ुत्बे का अंदाज़ है।

एक और बात जो ख़ुत्बे के ऐतबार से उसके ख़साइस (गुणों) में से है वह यह कि एक मौस्सर (असरदार) ख़ुत्बे के शुरू में बहुत जामेअ गुफ़्तुगू होती है। कामयाब ख़ुत्बा वही होगा जिसका आग़ाज़ ऐसा हो कि मुक़र्रर और ख़तीब अपने मुख़ातबीन (दर्शकों) और सामईन (श्रोताओं) की तवज्जोह अपनी तरफ़ मब्ज़ूल करा ले (पलटा ले)। और फिर अग़रचे ख़ुत्बे के दौरान मज़मून (विषय) दायें-बायें फैलेगा, इधर जायेगा, उधर जायेगा लेकिन आख़िर में आकर वह फिर किसी मज़मून के ऊपर मुर्तकज़ (केंद्रीत) हो जायेगा। यह अगर नहीं है तो गोया कि वक़्त ज़ाया हो गया। हमारे यहाँ बड़े-बड़े ख़तीब पैदा हुए हैं। ख़ासतौर पर मजलिसे अहरार ने बड़े अवामी ख़तीब पैदा किये, जिनमें से अताउल्लाह शाह बुख़ारी रहि० बहुत बड़े ख़तीब थे। उनकी तक़रीर का यह

आलम होता था कि गुफ़्तगू चार-चार घंटे, पाँच-पाँच घंटे चल रही है। उसमें कभी मशरिक़ की, कभी मग़रिब की, कभी शिमाल की और कभी जुनूब की बात आ जाती। कभी हँसाने का और कभी रुलाने का अंदाज़ होता, कहीं लतीफ़ा गोई भी हो जाती। लेकिन अव्वल और आख़िर बात बिल्कुल वाज़ेह होती। ख़ूब घुमा फिरा कर भी मुख़ातब को किसी एक बात पर ले आना कि उठे तो कोई एक बात, कोई एक पैग़ाम लेकर उठे, कोई एक जज़्बा उसके अंदर जाग चुका हो, एक पैग़ाम उस तक पहुँच चुका हो, यह ख़ुत्बे के औसाफ़ हैं।

आपको मालूम है ख़्वाह ग़ज़ल हो या क़सीदा, शायरी में मुताला और मक़्ता दोनों की बड़ी अहमियत है। मुताला जानदार है तो आप पूरी ग़ज़ल पढ़ेंगे और अगर मुताला ही फुसफुसा है तो आगे आप क्या पढ़ेंगे! इसी तरह मक़्ता भी जानदार होना चाहिये। इसी लिये मक़्ता और मुताला के अल्फ़ाज़ अलैहदा से वाज़ेह किए गये हैं। ख़ुतबात के अंदर भी इब्तदा और इख्तताम पर निहायत जामेअ और अहम मज़मून होता है। क़ुरान मजीद की सूरतों की इब्तदा और इख्तताम भी निहायत जामेअ मज़ामीन पर होती है। चुनाँचे क़ुरान मजीद की सूरतों की इब्तदाई आयात और इख्तताम आयात की फज़ीलत पर बहुत सी हदीसें मिलती हैं। सूरतुल बक़रह की इब्तदाई आयात और इख्तताम आयात, इसी तरह सूरह आले इमरान की शुरू की आयात और फिर इख्तताम आयात निहायत जामेअ हैं। यह अंदाज़ अक्सर व बेशतर सूरतों में मिलेगा। यह है असल में बिल् अमूम क़ुरान का असलूब, जो ज़ाहिर बात है शायरी का नहीं है। आम

मयाने में वह किताब नहीं, मज्मुआ-ए-मक़ालात नहीं। इसका असलूब अगर है तो वह ख़ुत्बे से मिलता है। यह गोया ख़ुत्बाते इलाहिया हैं जिनका मज्मुआ है क़ुरान!

❀ ❀ ❀

बाब सौम (तीसरा)

क़ुरान मजीद की तरकीब व तक़सीम

आयात और सूरतों की तक़सीम

बहुत सी चीज़ों से मिल कर कोई शै मुरक्कब (मिश्रण) बनती है। क़ुरान कलामे मुरक्कब है। इसकी तक़सीम सूरतों और आयात में है। फिर इसमें अहज़ाब और ग्रुप हैं। आम तसव्वुरे किताब तो यह है कि इसके अबवाब होते हैं, लेकिन क़ुरान हकीम पर इन इस्तलाहात का इत्लाक़ नहीं होता। क़ुरान हकीम ने अपनी इस्तलाहात ख़ुद वाज़ेह की है। इन इस्तलाहात की दुनिया में मौजूद किसी भी किताब की इस्तलाहात से कोई मुशाबिहत नहीं है। चुनाँचे अल्लामा जाहज़ ने एक बड़ा ख़ूबसूरत उन्वान क़ायम किया है। वो कहते हैं कि अरब इससे तो वाक़िफ थे कि उनके बड़े-बड़े शायरों के दीवान होते थे। सारा कलाम किताबी शक़्ल में जमा हो गया तो वह दीवान कहलाया। लिहाज़ा किसी भी दर्जे में अगर मिसाल या तशबीह से समझना चाहें तो दीवान के मुक़ाबले में लफ़्ज़ क़ुरान है। फिर दीवान बहुत से क़सीदों का मज्मुआ होता था। हमारे यहाँ भी किसी शायर का दीवान होगा तो उसमें क़सीदें होंगे, ग़ज़लें होंगी, नज़्में होंगी। क़ुरान हकीम में इस सतह पर जो लफ़्ज़ है वह सूरत है। अल्लाह तआला का यह कलाम सूरतों पर मुश्तमिल है। अगर कोई नस्र (गद्य) की किताब है तो वह जुमलों पर मुश्तमिल होगी और अगर नज़्म (कविता) की है तो वह

अशआर पर मुश्तमिल होगी। इसकी जगह क़ुरान मजीद की इस्तलाह आयत है। शायरी में अशआर के ख़ात्मे पर रदीफ़ के साथ-साथ एक लफ़्ज़ क़ाफिया कहलाता है और ग़ज़ल के तमाम अशआर हम क़ाफिया होते हैं। क़ुरान मजीद पर भी हम आमतौर पर इस लफ़्ज़ का इत्लाक़ कर देते हैं, इसलिये कि क़ुरान मजीद की आयतों में भी आख़िरी अल्फ़ाज़ के अंदर सौती आहंग है। यहाँ इन्हें फ़वासिल कहा जाता है, क़ाफिया का लफ़्ज़ इस्तेमाल नहीं किया जाता कि किसी भी दर्जे में शेर के साथ कोई मुशाबिहत ना पैदा हो जाये।

क़ुरान मजीद का सबसे छोटा यूनिट आयत है। यानि क़ुरान मजीद की इब्तदाई इकाई के लिये लफ़्ज़ आयत अखज़ किया गया है। आयत के मायने निशानी के हैं। क़ुरानी आयत गोया अल्लाह के इल्म व हिकमत की निशानी है। आयत का लफ़्ज़ क़ुरान मजीद में बहुत से मायनों में इस्तेमाल हुआ है। मसलन आयाते आफाक़ी और आयाते अन्फुसी। इस कायनात में हर तरफ़ अल्लाह तआला की निशानियाँ हैं। कायनात की हर शय अल्लाह तआला की क़ुदरत, उसके इल्म और उसकी हिकमत की गवाही दे रही है। गोया हर शय अल्लाह की निशानी है। फिर कुछ निशानियाँ हमारे अंदर हैं। चुनाँचे फ़रमाया:

وَفِي الْأَرْضِ آيَاتٌ لِّلْمُوقِنِينَ ﴿٢٠﴾ وَفِيٓ

"और ज़मीन में निशानियाँ हैं यक़ीन लाने वालों के लिये। और ख़ुद तुम्हारे अपने वजूद में भी। क्या तुमको सूझता नहीं?"

(अज़ ज़ारियात:20-21)

اَنۡفُسِكُمۡ‌ؕ اَفَلَا تُبۡصِرُوۡنَ ۝۲۱

मज़ीद फ़रमाया:

سَنُرِيۡهِمۡ اٰيٰتِنَا فِى الۡاٰفَاقِ وَفِىۡۤ اَنۡفُسِهِمۡ حَتّٰى يَتَبَيَّنَ لَهُمۡ اَنَّهُ الۡحَـقُّ‌ؕ

"अनक़रीब हम उनको अपनी निशानियाँ आफ़ाक़ में भी दिखायेंगे और उनके अपने नफ़्स में भी, यहाँ तक कि उन पर यह बात वाज़ेह हो जायेगी कि यह क़ुरान वाक़ई बरहक़ है।" (हा मीम सजदा:53)

अंग्रेजी में आयत के लिये हम लफ़्ज़ verse बोल देते हैं, मगर verse तो शेर को कहते हैं जबकि क़ुरान की आयात ना तो शेर हैं, ना मिसरे हैं, ना जुमले हैं। बस बायना लफ़्ज़ आयत ही को आम करना चाहिये। बहरहाल कुछ आयाते आफ़ाक़ी हैं, यानि अल्लाह की निशानियाँ, कुछ आयाते अन्फुसी हैं, वह भी अल्लाह की निशानियाँ हैं और आयाते क़ुरानियाँ भी दरहक़ीक़त अल्लाह तआला की हिक़मते बालग़ा और इल्मे कामिल की निशानियाँ हैं। यह लफ़्ज़ क़ुरान की इकाई के तौर पर इस्तेमाल हुआ है।

जान लेना चाहिये कि आयात का तअय्युन किसी ग्रामर, बयान या नह्व (syntax) के उसूल पर नहीं है, इसमें कोई इज्तहाद (अपनी राय) दाख़िल नहीं है, बल्कि इसके लिये एक इस्तलाह "तौक़ीफ़ी" इस्तेमाल होती है, यानि यह रसूल अल्लाह ﷺ के बताने पर मौक़ूफ़ (निर्भर) है। चुनाँचे हम

देखते हैं कि आयात बहुत तवील (लम्बी) भी हैं। एक आयत आयतल कुर्सी है जिसमें मुकम्मल दस जुमले हैं, लेकिन बाज़ आयात हर्फ़े मुक़त्आत पर भी मुश्तमिल हैं। {حٰمٓ} एक आयत है, हालाँकि इसका कोई मफ़हूम मालूम नहीं है, आम ज़बान के ऐतबार से इसके मायने मुअय्यन नहीं किये जा सकते। यह तो हुरूफे तहज्जी हैं। इसको मुरक्क़बे कलाम भी नहीं कह सकते, क्योंकि इसको अलैहदा-अलैहदा पढ़ा जाता है। इसलिये यह हुरूफे मुक़त्आत कहलाते हैं। {حٰمٓ} {عٓسٓقٓ} इनको जमा नहीं कर सकते, यह तोड़-तोड़ कर अलैहदा-अलैहदा पढ़े जायेंगे। इसी तरह "अलिफ़ लाम मीम" को "अलम्" नहीं पढ़ा जा सकता। लेकिन यह भी आयत है। इस बारे में एक बात याद रखिये कि जहाँ हुरूफ़े मुक़त्आत में से एक-एक हर्फ़ आया है जैसे {صٓ وَالْقُرْاٰنِ ذِی الذِّكْرِ} {نٓ وَالْقَلَمِ وَمَا يَسْطُرُوْنَ} {قٓ ۚ وَالْقُرْاٰنِ الْمَجِيْدِ} यहाँ एक हर्फ़ पर आयत नहीं बनी, लेकिन दो-दो हुरूफ़ पर आयतें बनी हैं। "हा मीम" क़ुरान में सात जगह आया है और यह मुकम्मल आयत है। अलिफ़ लाम मीम आयत है। अल्बत्ता "अलिफ़ लाम रा" तीन हुरूफ़ हैं और वह आयत नहीं है। मालूम हुआ कि इसकी बुनियाद किसी उसूल, क़ायदे या इज्तहाद (अपनी राय) पर नहीं है बल्कि यह अमूर कुल्लियतन तौक़ीफी (अल्लाह के द्वारा सिखाया हुआ) हैं कि हुज़ूर ﷺ के बताने से मालूम हुए हैं। अलबत्ता फिर हुज़ूर ﷺ से चूँकि मुख़्तलिफ़ रिवायात हैं, इसलिये इस पहलु से कहीं-कहीं फ़र्क़ वाक़ेअ हुआ है। चुनाँचे आयाते क़ुरानिया की तादाद मुत्तफ़िक़ अलै नहीं है। इस पर तो इत्तेफाक़ है कि

आयतों की तादाद छ: हज़ार से ज़्यादा है, लेकिन बाज़ के नज़दीक कमोबेश 6216, बाज़ के नज़दीक 6236 और बाज़ के नज़दीक 6666 है। इसके मुख़्तलिफ़ असबाब हैं। बाज़ सूरतों के अंदर आयतों के तअय्युन में भी फ़र्क़ है। लेकिन यह सब किसी का अपना इज्तहाद (अपनी राय) नहीं है, बल्कि सब के सब अदद व शुमार हुज़ूर ﷺ की नक़ल होने की बुनियाद पर है। एक फर्क़ यह भी है कि आयत बिस्मिल्लाह क़ुरान हक़ीम में 113 मर्बता सूरतों के शुरू में आती है (क्योंकि सूरतों की कुल तादाद 114 है और उनमें से सिर्फ़ एक सूरत सूरह तौबा के शुरू में बिस्मिल्लाह नहीं आती)। अगर इसको हर मर्तबा शुमार किया जाये तो 113 तादाद बढ़ जायेगी, हर मर्तबा शुमार ना किया जाये तो 113 तादाद कम हो जायेगी। इस ऐतबार से आयाते क़ुरानिया की तादाद मुत्तफ़िक़ अलै नहीं है, बल्कि इसमें इख़्तलाफ़ है। जैसा कि पहले ज़िक्र हो चुका कि हुरूफे मुक़त्आत पर भी आयत है, मुरक्कबाते नाक़िसा पर भी आयत है, जैसे {وَالۡعَصۡرِ} कहीं आयत मुकम्मल जुमला भी है, और ऐसी आयतें भी हैं जिनमें दस-दस जुमले हैं।

क़ुरान हकीम की आयतें जमा होती हैं तो सूरतें वजूद में आती हैं सूरत का लफ़्ज़ "सूर" से माख़ूज़ है और यह लफ्ज़ सूरह अल् हदीद में फ़सील के मायने में आया है। पिछले ज़माने में हर शहर के बाहर, गिर्दा-गिर्द (चारों तरफ़) एक फ़सील (firewall) होती थी जो शहर का इहाता कर लेती थी, शहर की हिफ़ाज़त का काम भी देती थी और हद बंदी भी करती थी। आयतों को जब जमा किया गया तो उससे जो फ़सीलें वजूद में आयीं वह सूरतें हैं। फ़सल अलैहदा करने

वाली शय को कहते हैं। तो गोया एक सूरह दूसरी सूरह से अलैहदा हो रही है। फसील अलैहदगी की बुनियाद है। फ़सील के लिये "सूर" का लफ़्ज़ मुस्तमिल है, फिर इससे सूरत बना है। अलबत्ता यह सूरतें "अबवाब" नहीं हैं, बल्कि जिस तरह आयत के लिये लफ़्ज़ verse मुनासिब नहीं इसी तरह सूरत के लिये लफ़्ज़ "बाब" या chapter दुरुस्त नहीं।

अब जान लीजिये कि जैसे आयात का मामला है ऐसे ही सूरतों का भी है। चुनाँचे सूरतें बहुत छोटी भी हैं। क़ुरान मजीद की तीन सूरतें सिर्फ़ तीन-तीन आयात पर मुश्तमिल हैं: सूरह अल् अस्र, सूरह अल् नस्र, सूरह अल् कौसर। जबकि तीन सूरतें 200 से ज़्यादा आयतों पर मुश्तमिल हैं। सूरह अल् बक़रह की 285 या 286 आयतें हैं। (सूरह अल् बक़रह की आयतों की तादाद के ऐतबार से राय में फ़र्क है)। सबसे ज़्यादा आयतें सूरह अल् बक़रह में हैं। फिर सूरह अश् शौरा में 227 और सूरह आराफ़ में 206 आयतें हैं। मुहक़्क़ीन उलेमाओं का इस पर इज्मा है कि आयतों की तरह सूरतों का तअय्युन भी हुज़ूर ﷺ ने ख़ुद फ़रमाया। अग़रचे एक ज़ईफ़ सा क़ौल मिलता है कि शायद यह काम सहाबा किराम (रज़ि०) ने किसी इज्तहाद से किया हो, मगर यह मुख़्तार क़ौल नहीं है, ज़ईफ़ है। इज्मा इसी पर है कि आयतों की ताईन भी तौक़ीफी और सूरतों की ताईन भी तौक़ीफी है।

क़ुरान हकीम की सात मंज़िलें

दौरे सहाबा (रज़ि०) में हमें एक तक़सीम मिलती है और वह है सात मंज़िलों की शक्ल में सूरतों की ग्रुपिंग। इन्हें

अहज़ाब भी कहते हैं। "हज़्ब" का लफ़्ज़ अहादीस में मिलता है, लेकिन वह एक ही मायने में नहीं होता। यह लफ़्ज़ इस मायने में भी इस्तेमाल होता था कि हर शख़्स अपने लिये तिलावत की एक मिक़दार मुअय्यन कर लेता था कि मैं इतनी मिक़दार रोज़ाना पढूँगा। यह गोया कि उसका अपना हज़्ब है। चुनाँचे हज़रत उमर बिन ख़त्ताब (रज़ि०) से मरवी एक हदीस में आया है कि रसूल ﷺ ने इर्शाद फ़रमाया:

مَنۡ نَامَ عَنۡ حِزۡبِہٖ مِنَ اللَّیۡلِ، اَوۡ عَنۡ شَیۡءٍ مِنۡہُ، فَقَرَأَہٗ مَا بَیۡنَ صَلَاۃِ الۡفَجۡرِ وَصَلَاۃِ الظُّہۡرِ، کُتِبَ لَہٗ کَاَنَّمَا قَرَأَہٗ مِنَ اللَّیۡلِ (اخرجه الجماعة الا البخاری)

"जो शख़्स नींद (या बीमारी) की वजह से रात को (तहज्जुद में) अपने हज़्ब को पूरा न कर सके, फिर वह फ़जर और ज़ुहर के दरमियान उसकी तिलावत कर ले तो उसके लिये उतना ही सवाब लिखा जायेगा गोया उसने उसे रात के दौरान पढ़ा है।"

(यह हदीस बुख़ारी के सिवा दीगर अइम्मा-ए-हदीस ने रिवायत की है)

यानि जो शख़्स किसी वजह से किसी रात अपने हज़्ब को पूरा न कर सके, जितना भी निसाब उसने मुअय्यन किया हो, किसी बीमारी की वजह से, य़ा नींद का ग़लबा हो जाये, तो उसे चाहिये कि अपनी इस क़िरात या तिलावत को वह दिन के वक़्त ज़रूर पूरा कर ले। सहाबा किराम (रज़ि०) में से अक्सर का मामूल था कि हर हफ्ते क़ुरान मजीद की तिलावत ख़त्म कर लेते थे। लिहाज़ा ज़रूरत महसूस हुई कि क़ुरान के सात हिस्से ऐसे हो जायें कि एक हिस्सा रोज़ाना तिलावत करें तो हर हफ्ते क़ुरान मजीद का दौर मुकम्मल

हो जाये। इसलिये सूरतों के सात मज्मुऐ या ग्रुप बना दिये गये। इन ग्रुपों के लिये आज-कल हमारे यहाँ जो लफ़्ज़ मुस्तमिल है वह "मंज़िल" है, लेकिन हदीसों और रिवायतों में हज़्ब का लफ़्ज़ आता है।

अहज़ाब या मंज़िलों की इस तक़सीम में बड़ी ख़ूबसूरती है। ऐसा नहीं किया गया कि यह सातों हिस्से बिल्कुल मसावी (बराबर) किये जायें। अगर ऐसा होता तो ज़ाहिर बात है कि सूरतें टूट जातीं, उनकी फ़सील ख़त्म हो जाती। चुनाँचे हर हज़्ब में पूरी-पूरी सूरतें जमा की गईं। इस तरह अहज़ाब या मंज़िलों की मिक़दार मुख़्तलिफ़ हो गईं। चुनाँचे कुछ हज़्ब छोटे हैं कुछ बड़े हैं, लेकिन इनके अंदर सूरतों की फ़सीलें नहीं टूटीं, यह इनका हुस्न है। ग़ौर करें तो मालूम होता है कि यह शय भी शायद अल्लाह तआला ही की तरफ़ से है। अग़रचे यह नहीं कहा जा सकता कि मंज़िलों की ताईन भी तौक़ीफ़ी है, लेकिन मंज़िलों की इस तक़सीम में गिनती के ऐतबार से जो हुस्न पैदा हुआ है उससे मालूम होता है कि यह भी अल्लाह तआला की हिकमत ही का एक मज़हर है। सूरतुल फ़ातिहा को अलग रख दिया जाये कि यह तो क़ुरान हकीम का मुक़दमा या दिबाचा है तो इसके बाद पहला हज़्ब या मंज़िल तीन सूरतों (अल् बक़रह, आले इमरान, अल् निसा) पर मुश्तमिल है। दूसरी मंज़िल पाँच सूरतों पर, तीसरी मंज़िल सात सूरतों पर, चौथी मंज़िल नौ सूरतों पर, पाँचवीं मंज़िल ग्यारह सूरतों पर, और छठी मंज़िल तेरह सूरतों पर मुश्तमिल है, जबकि सातवीं मंज़िल (हज़्बे मुफ़स्सल) जो कि आखिरी मंज़िल है, इसमें 65 सूरतें हैं। आख़िर में सूरतें छोटी-छोटी हैं। याद रहे कि 65 भी 13 का

multiple बनता है (13x5=65)। सूरतों की तादाद जैसा कि ज़िक्र हो चुका 114 है। यह तादाद मुत्तफ़िक़ अलै है, जिसमें कोई शक व शुबह की गुंजाइश नहीं।

आजकल जो क़ुरान हकीम हुकुमत सऊदी अरब के ज़ेरे अहतमाम बहुत बड़ी तादाद में बड़ी ख़ूबसूरती और नफ़ासत से शाया (प्रकाशित) होता है, उसमें हज़्ब का लफ़्ज़ बिल्कुल एक नये मायने में आया है। उन्होंने हर पारे को दो हज़्ब में तक़सीम कर लिया है, गोया निस्फ़ पारे की बजाये लफ़्ज़ हज़्ब है। फिर वह हज़्ब भी चार हिस्सों में मुन्क़सिम है: رُبع الحزب، نصفُ الحزب और फिर ثلاثةُ ارباعِ الحزب। इस तरह उन्होंने हर पारे के आठ हिस्से बना लिये हैं। यह लफ़्ज़ हज़्ब का बिल्कुल नया इस्तेमाल है। इसकी क्या सनद और दलील है और यह कहाँ से माख़ूज़ है, यह मेरे इल्म में नहीं है।

इंसानी कलाम हुरूफ़ और अस्वात (आवाज़) से मुरत्तब (बना) होता है और हर ज़बान में हुरूफे हिजाइया होते हैं। फिर हुरूफ़ मिल कर कलिमात बनाते है। कलिमात से कलाम वजूद में आता है, ख़्वाह वह कलाम मंज़ूम (नज़्म में) हो या नसर हो। इस तरह क़ुरान मजीद की तरकीब है। हुरूफ़ से मिलकर कलिमात बने, कलिमात ने आयात की शक़्ल इख़्तियार की, आयात जमा हुईं सूरतों की शक़्ल में और सूरतें जमा हो गयीं मंज़िलों की शक़्ल में।

रुकुओं और पारों की तक़सीम

सूरतों की पहली तक़सीम रुकुओं में है। यह तक़सीम दौरे सहाबा (रज़ि०) और दौरे नबवी ﷺ में मौजूद नहीं थी।

यह तक़सीमें ज़माना मा बाद की पैदावार हैं। रुकुओं की तक़सीम बड़ी सूरतों में की गई। 35 सूरतें ऐसी हैं जो एक ही रुकु पर मुश्तमिल हैं, यानि वह इतनी छोटी हैं कि इन्हें एक रकात में आसानी से पढ़ा जा सकता है, लेकिन बक़िया सूरतें तवील हैं। सूरह अल् बक़रह में 285 या 286 आयात हैं और उसके 40 रुकु हैं। हुज़ूर ﷺ से मंक़ूल है कि आप ﷺ ने एक रात इन तीन सूरतों (अल् बक़रह, आले इमरान, अल् निसा) की मंज़िल एक रकात में मुकम्मल की है। लेकिन यह तो इस्तसनात (exceptions) की बात है। आम तौर पर तिलावत की वह मिक़दार जो एक रकात में बा-आसानी पढ़ी जा सकती हो, एक रुकु पर मुश्तमिल होती है। रुकु रकात से ही बना है। यह तक़सीम हज्जाज बिन युसुफ़ के ज़माने में यानि ताबईन के दौर में हुई है। लेकिन ऐसा नज़र आता है कि यह तक़सीम बड़ी मेहनत से मायने पर ग़ौर करते हुए की गई है कि किसी मक़ाम पर एक मज़मून मुकम्मल हो गया और दूसरा मज़मून शुरु हो रहा है तो वहाँ अगर रुकु कर लिया जाये तो बात टूटेगी नहीं। अग़रचे हमारे यहाँ आमतौर पर अइम्मा-ए-मसाजिद पढ़े-लिखे लोग नहीं होते, अरबी ज़बान से वाक़िफ नहीं होते, लिहाज़ा अक्सर ऐसी तकलीफ़देह सूरते हाल पैदा होती है कि वह ऐसी जगह पर रुकु कर देते हैं जहाँ कलाम का रब्त मुंक़तह हो जाता है। फिर अगली रकात में वहाँ से शुरु करते हैं जहाँ से बात मायनवी ऐतबार से बहुत ही गिराँ गुज़रती है। रुकुओं की तक़सीम बिलउमूम बहुत उम्दा है, लेकिन चंद एक मक़ामात पर ऐसा महसूस होता है कि अगर यह आयत यहाँ से हटा कर रुकु मा क़ब्ल में शामिल की गई होती या रुकु का निशान

इस आयत से पहले होता तो मायने और मफ़हूम के ऐतबार से बेहतर होता। बहरहाल अक्सर व बेशतर रुकुओं की तक़सीम मायनवी ऐतबार से सही है जो बड़ी मेहनत से गहराई में ग़ौर करके की गई है।

इसके अलावा एक तक़सीम पारों की शक़्ल में है। यह तक़सीम तो और भी बाद के ज़माने की है और बड़ी भूंडी तक़सीम है, इसलिये कि इसमें सूरतों की फ़सीलें तोड़ दी गई हैं। ऐसा महसूस होता है कि जब मुसलमानों का जोशे ईमान कम हुआ और लोगों ने मामूल बनाना चाहा कि हर महीने में एक मर्तबा क़ुरान ख़त्म कर लें तब उनको ज़रूरत पेश आई कि इसको तीस हिस्सों में तक़सीम किया जाये। इस मक़सद के लिये किसी ने ग़ालिबन यह हरकत की कि उसके पास जो मुस्हफ़ मौजूद था उसने उसके सफ्हें (पन्ने) गिन कर तीस पर तक़सीम करने की कोशिश की। इस तरह जहाँ भी सफ़्हा (पन्ना) कट गया वहीं निशान लगा दिया और अगला पारा शुरू हो गया। इस भूंडी तक़सीम की मिसाल देखिये कि सूरह अल् हिज्र की एक आयत तेहरवें पारे में है जबकि बाक़ी पूरी सूरत चौदहवें पारे में है। हमारे यहाँ जो मुस्हफ़ है उनमें आपको यही शक़्ल नज़र आयेगी। सऊदी अरब से जो क़ुरान मजीद बड़ी तादाद में शाये होकर (छप कर) पूरी दुनिया में फैला है, यह अब पाकिस्तानी और हिन्दुस्तानी मुसलमानों के लिये इसी अंदाज़ से शाया किया जाता है जिससे कि हम मानूस (परिचित) हैं। अलबत्ता अहले अरब के लिये जो क़ुरान मजीद शाया किया जाता है उसमें रमूज़े अवक़ाफ और अलामाते ज़ब्त भी मुख़्तलिफ़ हैं और उसमें चौदहवाँ जुज़ सूरह अल् हिज्र से शुरू किया जाता है। गोया

वह तक़सीम जो हमारे यहाँ है उसमें उन्होंने इज्तहाद से काम लिया है, अगरचे पारों की तक़सीम बाक़ी रखी है। बाज़ दूसरे अरब मुमालिक (देशों) से जो क़ुरान मजीद शाये होते हैं, उनमें पारों का ज़िक्र ही नहीं है। इसलिये कि यह कोई मुत्तफ़िक़ अलै चीज़ नहीं है और ज़मान-ए-ताबईन में भी इसका कोई तज़करा नहीं है, यह इससे बहुत बाद की बात है। हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) और हज़रत इमरान इब्ने हुसैन (रज़ि०) से मरवी मुत्तफ़िक़ अलै हदीस है कि रसूल अल्लाह ﷺ ने इर्शाद फ़रमाया:

خَيْرُ النَّاسِ قَرْنِيْ ثُمَّ الَّذِيْنَ يَلُوْنَهُمْ ثُمَّ الَّذِيْنَ يَلُوْنَهُمْ

इस हदीस की रू से बेहतरीन अदवार (वक़्त) तीन ही हैं। दौरे सहाबा, दौरे ताबईन, फिर दौरे तबे ताबईन। इन तीन ज़मानों को हम "قرنٌ مشهودٌ لها بِالخير" कहते हैं। बाक़ी इसके बाद का मामला हुज्जत नहीं है, इसकी दीन के अंदर कोई मुस्तक़िल और दायमी अहमियत नहीं है।

तरतीबे नुज़ूली और तरतीबे मुस्हफ़ का इख़्तलाफ़

क़ुरान हकीम की तरतीब के ज़िमन में पहली बात जो बिल्कुल मुत्तफ़िक़ अलै और हर शक व शुबह से बाला है वह यह है कि तरतीबे नुज़ूली बिल्कुल मुख़्तलिफ़ है और तरतीबे मुस्हफ़ बिल्कुल मुख़्तलिफ़ है। अक्सर व बेशतर जो सूरतें इब्तदा में नाज़िल हुईं वह आख़िर में दर्ज हैं और हिजरत के बाद जो सूरतें नाज़िल हुई हैं (अल् बक़रह, आले इमरान, अल् निसा, अल् मायदा) उनको शुरू में रखा गया है। तो

इसमें किसी शक व शुबह की गुंजाईश नहीं कि तरतीबे नुज़ूली और तरतीबे मुस्हफ़ मुख़तलिफ़ है।

जहाँ तक तरतीबे नुज़ूली का ताल्लुक़ है, इससे हर तालिबे इल्म को दिलचस्पी होती है जो क़ुरान मजीद पर ग़ौर करना चाहता है। इसलिये कि तरतीबे नुज़ूली के हवाले से क़ुरान हकीम के मायने और मफ़्हूमों का एक नया पहलु सामने आता है। एक तो यह कि एक ख़ास पसमंज़र के साथ सूरतें जुड़ती हुई चली जाती हैं। इब्तदा में क्या हालात थे जिनमें यह सूरतें नाज़िल हुईं, फिर हालात ने क्या पलटा खाया तो अगली सूरतें नाज़िल हुईं। चुनाँचे तरतीबे नुज़ूली के हवाले से क़ुरान हकीम को मुरत्तब किया जाये तो एक ऐतबार से वह सीरतुन नबी ﷺ की किताब बन जायेगी। इसलिये कि आग़ाज़े वही के बाद से लेकर आप ﷺ के इन्तेक़ाल तक वह ज़माना है जिसमें क़ुरान नाज़िल हुआ। दूसरे यह कि इस पूरे ज़माने के साथ क़ुरान मजीद की आयात और सूरतों का जो मज्मुई रब्त है, तरतीबे नुज़ूली की मदद से उसे समझने और ग़ौर फिक्र करने में मदद मिलती है। पस (इसलिये) क़ुरान मजीद के हर तालिबे इल्म को इससे दिलचस्पी होना समझ में आता है। चुनाँचे बाज़ सहाबा (रज़ि०) के बारे में रिवायात मिलती हैं कि उन्होंने तरतीबे नुज़ूली के ऐतबार से क़ुरान हकीम को मुरत्तब (set) किया था। हज़रत अली (रज़ि०) के बारे में यह बात बहुत शद व मद (विस्तार) के साथ कही जाती है कि उन्होंने भी इसको तरतीबे नुज़ूली के ऐतबार से क़ुरान हकीम को मुरत्तब किया था, और अवाम की सतह पर यह मशहूर है कि अहले तशय्य (शिया) उसी को असल और मुस्तनद क़ुरान मानते

हैं और हज़रत अली (रज़ि०) का यह मुस्हफ़ उनके बारहवें इमाम के पास है, जो एक ग़ार में रू पोश हैं। क़यामत के क़रीब जब वह ज़ाहिर होंगे तब वह अपना यह मुस्हफ़ यानि "असल क़ुरान" लेकर आयेंगे। गोया अहल तशय्य (शिया) यह क़ुरान उस वक़्त तक के लिये ही क़ुबूल करते हैं। आमतौर पर उनकी तरफ़ यही बात मन्सूब है, लेकिन दौरे हाज़िर के बाज़ शिया उल्मा इस तसव्वुर के क़ायल नहीं हैं। एक शिया आलिमे दीन सय्यद हादी अली नक़वी ने बहुत शद व मद (विस्तार) के साथ इस तसव्वुर की नफ़ी की है और कहा है कि "हम इसी क़ुरान को मानते हैं, यही असल क़ुरान है और इसे मन व अन महफ़ूज़ मानते हैं। हमारे नज़दीक कोई आयत इससे ख़ारिज नहीं हुई और कोई शय बाहर से बाद में इसमें दाखिल नहीं हुई। यही जो "دُفَّتین" यानि जिल्द के दो गत्तों के माबैन है, यही हक़ीक़ी और असली क़ुरान है।"

बहरहाल अगर हज़रत अली (रज़ि०) के पास ऐसा कोई मुस्हफ़ था जिसे आपने तरतीबे नुज़ूली के मुताबिक़ मुरत्तब किया था तो इसमें कोई हर्ज की बात नहीं। अमली और हक़ीक़ी ऐतबार से क़ुरान हकीम पर ग़ौरो फ़िक्र करने के लिये क़ुरान मजीद के बाज़ अंग्रेज़ी तर्जुमें में भी तरतीबे नुज़ूली के ऐतबार से सूरतों को मुरत्तब करके तर्जुमा किया गया है। (मुहम्मद इज़्ज़तु दरविज़ा ने भी अपनी तफ़्सीर "अल् तफ़्सीर अल् हदीस" में सूरतों को नुज़ूली ऐतबार से तरतीब दिया है।) अमली ऐतबार से इसमें कोई हर्ज नहीं, लेकिन असल हुज्जत तरतीबे मुस्हफ़ की है। यह तरतीब तौक़ीफ़ी (अल्लाह के द्वारा बताया हुआ) है। यह मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की दी हुई तरतीब है और यही तरतीब लौहे

महफ़ूज़ में है। असल क़ुरान तो वही है। अज़रूए अल्फ़ाज़े क़ुरानी:

{إِنَّهُ لَقُرْآنٌ كَرِيمٌ ﴿٧٧﴾ فِي كِتَابٍ مَكْنُونٍ ﴿٧٨﴾ (अल् वाक़िया:77-78) } और { بَلْ هُوَ قُرْآنٌ مَجِيدٌ ﴿٢١﴾ فِي لَوْحٍ مَحْفُوظٍ ﴿٢٢﴾ (अल् बुरुज:21-22) }

"अल् इतक़ान फ़ी उलूमुल् क़ुरान" में जलालुद्दीन स्यूति रहि० ने बहुत ही ज़ोर और ताकीद के साथ किसी का यह क़ौल नक़ल किया है कि अगर तमाम इंसान और जिन्न मिल कर कोशिश कर लें तब भी तरतीबे नुज़ूली पर क़ुरान को मुरत्तब नहीं किया जा सकता। इसलिये कि इसके बारे में हमारे पास मुकम्मल मालूमात नहीं हैं। बहुत सी सूरतों के अंदर बाद में नाज़िल होने वाली आयतें पहले आ गई हैं और शुरू में नाज़िल होने वाली बाद में आई हैं। इस ऐतबार से एक-एक आयत के बारे में मुअय्यन करना और उसकी तरतीब के बारे में इज्मा नामुमकिन है। चुनाँचे असल मुस्हफ़ वही है जो हमारे पास है और इसकी तरतीब भी तौफ़ीक़ी (अल्लाह के द्वारा बताया हुआ) है जो मुहम्मद रसूल صلى الله عليه وسلم ने बताई है।

इस तरतीबे मुस्हफ़ के ऐतबार से इस दौर में सूरतों की एक नयी ग्रुपिंग की तरफ़ रहनुमाई हुई है। मौलाना हमीदुद्दीन फ़राही रहि० ने ख़ासतौर पर अपनी तवज्जह को नज़्मे क़ुरान पर मरकूज़ किया, आयात का बाहमी रब्त तलाश किया। नेज़ यह कि आयतों की वह कौनसी क़द्र मुशतरक है जिसकी बिना पर उनको सूरतों में जमा किया गया--- फिर यह कि हर सूरत का एक अमूद और मरकज़ी

मज़मून है, बज़ाहिर आयतें ग़ैर मरबूत (असंबंधित) नज़र आतीं हैं लेकिन दरहक़ीक़त उनके माबैन (बीच) एक मन्तक़ी (वैचारिक) रब्त मौजूद है और हर आयत उस सूरत के अमूद (केंद्रीय विचार) के साथ मरबूत (संबंधित) है--- मज़ीद यह कि सूरतें जोड़ों की शक़्ल में हैं--- इन चीजों पर मौलाना फ़राही रहि० ने ज्यादा तवज्जह की। मौलाना इस्लाही साहब ने इस बात को मज़ीद आगे बढ़ाया है।

इस बारे में एक इश्तबाह (शक) पैदा हो सकता है, जिसे रफ़ा (दूर) कर देना ज़रूरी है कि क़ुरान मजीद का यह पहलु इस ज़माने में क्यों सामने आया और इससे पहले इस पर ग़ौर क्यों नहीं हो सका? क्या हमारे अस्लाफ़ (पूर्वज) क़ुरान मजीद पर तदब्बुर का हक़ अदा नहीं करते थे? इस इस्तबाह (शक) को अपने ज़हन में न आने दें, इसलिये कि क़ुरान मजीद की शान यह है कि इसके अजायब (अजूबे) कभी ख़त्म नहीं होंगे। हुज़ूर ﷺ का अपना क़ौल है: "لَا تَنْقَضِیْ عَجَائِبُہٗ"। अगर कोई शख़्स यह समझता है कि किसी ख़ास दौर के मुहद्दसीन, मुहक़्क़ीन, मुफ़स्सरीन क़ुरान मजीद के इल्म का बतमाम व कमाल इहाता कर चुके तो वह सख़्त ग़लती पर है। अगर ऐसा होता तो यह क़ुरान मजीद पर भी तअन होता और ख़ुद हुज़ूर ﷺ के इस क़ौल की भी नफ़ी होती। यह तो जैसे-जैसे ज़माना आगे बढ़ेगा क़ुरान मजीद के अजायब, इसकी हिकमतें, इसके उलूम (अध्ययन) व मारफ़ के नये-नये ख़ज़ाने बरामद होते रहेंगे। चुनाँचे हमारा तर्ज़े अमल यह होना चाहिये कि मुताअला क़ुरान के बाद हम यह महसूस करें कि हमने अपनी इस्तताअत (क्षमता) के मुताबिक़ इसको सीखा है और बाद में आने वाले इसमें से

कुछ और भी हासिल करेंगे, वह हमेशा इसके लिये कोशां रहेंगे, इसमें ग़ौरो फ़िक्र और तदब्बुर करते रहेंगे और नये-नये उलूम (अध्ययन) और नये-नये निकात इसमें से बरामद होते रहेंगे। अल्लाह तआला कि हिकमत में यही ज़माना इस इन्कशाफ़ के लिये मुअय्यन था, और ज़ाहिर बात है कि हिकमते क़ुरानी का जो भी कोई नया पहलु दरयाफ़्त होगा वह किसी इंसान ही के ज़रिये से होगा। लिहाज़ा इसके लिये तबियत के अंदर बुअद महसूस ना करें। बहरहाल मौलाना फराही रहि० ने नज़्मे क़ुरान को अपना ख़ुसूसी मौज़ू (विषय) बनाया। वह तफ़्सीर क़ुरान लिखना चाहते थे मगर लिख नहीं सके, सिर्फ़ चंद सूरतों की तफासीर उन्होंने लिखी हैं। उनमें से भी बाज़ ना-मुकम्मल हैं। वह एक मुफक्किर क़िस्म के इंसान थे मुसन्निफ़ क़िस्म के इंसान नहीं थे। मुफक्किर इंसान मुसलसल ग़ौर करता रहता है और उसके सामने नये-नये पहलू आते रहते हैं। चुनाँचे उनका तस्नीफ़ व तालीफ़ का अंदाज़ यह था कि उन्होंने मुख़्तलिफ़ मौज़ुआत (विषयों) पर फ़ाइल खोल रखे थे। जब कोई नया ख़्याल आता तो काग़ज़ पर लिख कर मुतालक़ा फ़ाइल में शामिल कर लेते। यही वजह है कि उनकी अक्सर तसानीफ़ उनकी वफ़ात के बाद किताबी शक्ल में शाया (छपी) हुई हैं, जबकि उनके ज़माने में वह सिर्फ़ फ़ाइलों की शक़्ल में थीं और किसी शय के छपने की नौबत आई ही नहीं। सोच-विचार का तसलसुल उनके आख़िरी लम्हें तक जारी रहा। “मुकद्दमा निज़ामुल क़ुरान” वाक़िअतन उनके फ़िक्र और सोच की सही नुमाइन्दगी (प्रतिनिधित्व) करता है। इस ज़िमन में उनके शागिर्द रशीद अमीन अहसन इस्लाही साहब ने बात को

आगे बढ़ाया है। नज़्मे क़ुरान के बारे में इन हज़रात के नतीजे फ़िक्र के चंद निकात मुलाहिज़ा हों:

(i) हर सूरत का एक अमूद (केंद्रीय विचार) है, जैसे एक हार की डोरी है उसमें मोती पिरोये हुए हैं। यह डोरी देखने वालों को नज़र नहीं आती, मोती नज़र आते हैं, लेकिन उनको बाँधने वाली शय तो डोरी है जिसमें वह पिरोये गए हैं। इसी तरह हर सूरत का एक मरकज़ी मज़मून या अमूद (केंद्रीय विचार) है जिसके साथ उसकी तमाम आयतें मरबूत (जुड़ी) हैं।

(ii) क़ुरान मजीद की अक्सर सूरतें जोडों की शक़्ल में हैं और यूँ कह सकते हैं कि एक ही मज़मून का एक रुख एक सूरत में आ जाता है और उसी का दूसरा रुख़ उस जोड़े के दूसरे हिस्से में आकर मज़मून की तकमील कर देता है। मौलाना इस्लाही साहब ने भी ऐसा ही फ़रमाया है। अलबत्ता जहाँ तक इस उसूल के इन्तबाक़ (अनुपालन) का ताल्लुक़ है इसमें इख़्तिलाफ़ की गुँजाइश है और जो हज़रात मेरे दरसों में तसलसुल (sequence) से कसरत करत रहे हैं उन्हें मालूम है कि मुझे बहुत से मौक़ों पर इस्लाही साहब से इख़्तिलाफ़ भी है, लेकिन उसूलन यह बात दुरुस्त है कि क़ुरान मजीद की अक्सर सूरतें जोड़ों की शक़्ल में हैं। ताहम बाज़ सूरतें मुनफ़रिद हैसियत की मालिक हैं, उनका जोड़ा उस जगह पर मौजूद नहीं है। अग़रचे मैंने तहक़ीक़ की है कि अक्सर व बेशतर ऐसी सूरतों के जोड़े भी मायनन क़ुरान में मौजूद हैं। मसलन सूरह अल् नूर तन्हा और मुनफ़रिद है, सूरह अल् अहज़ाब भी मुनफ़रिद और तन्हा है, लेकिन यह

दोनों आपस में जोड़ा हैं और इनमें जोड़ा होने की निस्बत ब-तमाम व कमाल मौजूद है। इसी तरह सूरह अल् फ़ातिहा मुनफ़रिद (अनोखी) है। वह तो इस ऐतबार से भी मुनफ़रिद (अनोखी) है कि वाक़िअतन उसका ब-तमाम व कमाल जोड़ा बनना मुमकिन नहीं, वह अपनी जगह पर क़ुरान हकीम और سَبْعًا مِّنَ الْمَثَانِيْ है, लेकिन सूरह अन्नास में ग़ौर करें तो मायनन यह सूरत सूरह अल् फ़ातिहा का जोड़ा बनती है। इसलिये कि सूरह अल् फ़ातिहा में इस्तआनत (मदद) है और सूरह अन्नास में इस्तआज़ह (शरण)। फिर सूरतुल फ़ातिहा में अल्लाह तआला की तीन शानें रब, मालिक, इलाह हैं और यही तीन शानें सूरतुन्नास में भी हैं।

(iii) तिलावत के लिये सात मंज़िलों के अलावा क़ुरान हकीम में सूरतों की एक मायनवी ग्रुपिंग भी है। इस ऐतबार से भी सूरतों के सात ग्रुप हैं और हर ग्रुप में एक मक्की और मदनी दोनों तरह की सूरतें शामिल हैं। हर ग्रुप में एक या एक से ज़्यादा मक्की सूरतें और उसके बाद एक या एक से ज़्यादा मदनी सूरतें हैं। एक ग्रुप की मक्की और मदनी सूरतों में वही निस्बत है जो एक जोड़े की दो सूरतों में होती है। जैसे एक मज़मून की तकमील एक जोड़े की सूरतों में होती है, यानि एक रुख़ एक फ़र्द में और दूसरा रुख़ दूसरे फ़र्द में, इसी तरह हर ग्रुप का एक मरकज़ी मज़मून और अमूद (केंद्रीय विचार) है, जिसका एक रुख़ मक्की सूरतों में और दूसरा रुख़ मदनी सूरतों में आ जाता है। इस तरह ग़ौर व फ़िक्र और तदब्बुर करके नये मैदान सामने आ रहे हैं। जो इन्सान भी इनका अमूद

मुअय्यन करने में ग़ौरो फ़िक्र करेगा वह किसी नतीजे पर पहुँचेगा, अग़रचे अमूद मुअय्यन करने में इख़्तिलाफ़ हो सकता है। सबसे बड़ा ग्रुप पहला है जिसमें मक्की सूरत सिर्फ़ एक यानि सूरतुल फ़ातिहा जबकि मदनी सूरतें चार हैं जो सवा छः पारों पर फैली हुई है, यानि सूरतुल बक़रह, आले इमरान, अल् निसा और अल् मायदा। दूसरा ग्रुप इस ऐतबार से मुतवाज़िन है कि उसमें दो सूरतें मक्की और दो मदनी हैं। सूरतुल अनआम और सूरतुल आराफ़ मक्की हैं जबकि सूरतुल अन्फ़ाल और सूरतुल तौबा मदनी हैं। तीसरे ग्रुप में सूरह युनुस से सूरह अल् मोमिनून तक चौदह मक्की सूरतें हैं। यह तक़रीबन सात पारे बन जाते हैं। इसके बाद एक मदनी सूरत है और वह सूरतुल नूर है। इसके बाद चौथे ग्रुप में सूरतुल् फ़ुरक़ान से सूरतुल सज्दा तक मक्कियात हैं, फिर एक मदनी सूरत सूरतुल अहज़ाब है। पाँचवें ग्रुप में सूरह सबा से लेकर सूरतुल अहक़ाफ़ तक मक्कियात हैं, फिर तीन मदनी सूरतें हैं, सूरह मुहम्मद, सूरतुल फ़तह और सूरह अल् हुजरात हैं। इसके बाद छठे ग्रुप में फिर सूरह क़ाफ़ से सूरतुल वाक़िया तक सात मक्कियात हैं जिनके बाद फिर दस मदनियात हैं सूरह अल् हदीद से सूरह अल् तहरीम तक। इसी तरह सातवें ग्रुप में भी पहले मक्की सूरतें हैं और आख़िर में दो मदनी सूरतें हैं। इस तरह यह सात ग्रुप बनते हैं। यह ग्रुप मौलाना इस्लाही साहब के मुरत्तब करदा हैं, इनमें पहला और आख़िरी ग्रुप इस ऐतबार से अक्सी निस्बत रखते हैं कि पहले ग्रुप में सिर्फ़ एक सूरत सूरह फ़ातिहा मक्की है और सवा छः

पारों पर मुश्तमिल चार तवील-तरीन सूरतें मदनी हैं, जबकि आख़िरी ग्रुप में सूरतल मुल्क से लेकर पूरे दो पारे तक़रीबन मक्कियात पर मुश्तमिल हैं, आख़िरी में सिर्फ़ दो सूरतें "मौअव्वज़तैन" मदनी हैं। यानि यहाँ निस्बत बिल्कुल अक्सी है। लेकिन दूसरा ग्रुप भी मुतवाज़िन है, यानि दो सूरतें मक्की, दो मदनी-- और छठा ग्रुप भी मुतवाज़िन है कि उसमें सात सूरतें मक्की हैं (सूरह क़ाफ़ से सूरह वाक़िया तक) जबकि दस सूरतें मदनी हैं (सूरह अल् हदीद से सूरह अल् तहरीम तक) लेकिन हुज्म (volume) के ऐतबार से तक़रीबन बराबर हैं। यह भी ग़ौरो फिक्र और सोच-विचार का एक मौज़ू है और इससे भी क़ुरान मजीद की हिकमत व हिदायत और उसके इल्म के नये-नये गोशे (corner) सामने आ रहे हैं।

क़ुरान हकीम की सूरतों के जोड़े होने का मामला क़ुरान मजीद में बाज़ जगहों पर तो बहुत ही नुमाया है। "अल् मौअव्वज़तैन" आख़िरी दो सूरतें हैं जो तअव्वुज़ पर मुश्तमिल हैं: {قُلۡ اَعُوۡذُ بِرَبِّ الۡفَلَقِ} और {قُلۡ اَعُوۡذُ بِرَبِّ النَّاسِ} इसी तरह "अज़ ज़हरावैन - दो निहायत ताबनाक सूरतें" अल् बक़रह और आले इमरान हैं। हुज़ूर ﷺ इन दोनों को भी एक नाम दिया जैसे आख़िरी दो सूरतों को एक नाम दिया। इसी तरह सूरतुल मुज़म्मिल और सूरतुल मुदस्सिर में और सूरह अद् दुहा और सूरह अलम नशरह में मायनवी रब्त है। सूरह अल् तहरीम और सूरह अत् तलाक़ में तो यह रब्त बहुत ही नुमाया है। दोनों सूरतों का आग़ाज़

बिल्कुल एक जैसा है: {يٰٓاَيُّهَا النَّبِيُّ اِذَا طَلَّقْتُمُ النِّسَآءَ} और {يٰٓاَيُّهَا النَّبِيُّ لِمَ تُحَرِّمُ مَآ اَحَلَّ اللّٰهُ لَكَ} मज़मून के अंदर भी बड़ी गहरी मुनासबत है। इसके बाद सूरह अस्सफ़ और सूरतुल जुमा का जोड़ा है। सूरह अस्सफ़ سَبَّحَ لِلّٰهِ से और सूरतुल जुमा يُسَبِّحُ لِلّٰهِ के अल्फ़ाज़ से शुरु हो रही हैं। सूरह अस्सफ़ की मरकज़ी आयत जो रसूल ﷺ के मक़सदे बेअसत को मुअय्यन कर रही है {هُوَ الَّذِيْٓ اَرْسَلَ رَسُوْلَهٗ بِالْهُدٰى وَدِيْنِ الْحَقِّ لِيُظْهِرَهٗ عَلَى الدِّيْنِ كُلِّهٖ} (आयत:9) है, जबकि सूरतुल जुमा की मरकज़ी आयत जो हुज़ूर ﷺ के इन्क़लाब का असासी मिन्हाज मुअय्यन कर रही है {هُوَ الَّذِيْ بَعَثَ فِي الْاُمِّيّٖنَ رَسُوْلًا مِّنْهُمْ يَتْلُوْا عَلَيْهِمْ اٰيٰتِهٖ وَيُزَكِّيْهِمْ وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ} (आयत:2) है। बहरहाल सूरतों का जोड़ा होना, सूरतों का ग्रुप की शक्ल में होना, इन ग्रुप्स का अपना एक अमूद और एक मरकज़ी मज़मून होना, फिर इसके दो रुख़ बन जाना जो इसकी मक्कियात और मदनियात में आते हैं, क़ुरान मजीद के इल्म व हिकमत के ख़ज़ाने के वह दरवाज़े हैं जो अब खुले हैं। इस तरह दरवाज़े हर दौर में खुलते रहे हैं और आइन्दा भी खुलते रहेंगे। चुनाँचे क़ुरान मजीद पर तज़क्कुर (याद) और तदब्बुर (सोच-विचार) तसलसुल (निरंतर) के साथ जारी रहना चाहिये।

पीछे सात मंज़िलों और सात अहज़ाब का ज़िक्र हो चुका। अब मक्की और मदनी सूरतों के सात ग्रुप्स का बयान हुआ। यह दोनों क़िस्म के ग्रुप दो जगह पर आकर मिल जाते

हैं। पहली मंज़िल तो सूरह अल् निसा पर ख़त्म हो जाती है और पहला ग्रुप सूरह मायदा पर ख़त्म होता है। सूरह अल् तौबा पर दूसरी मंज़िल भी ख़त्म होती है और दूसरा ग्रुप भी ख़त्म होता है। सूरह यूनुस से तीसरी मंज़िल शुरु होती है और तीसरा ग्रुप भी शुरु होता है। इसी तरह एक मक़ाम और है। सूरह क़ाफ़ से आख़िरी मंज़िल भी शुरु हो रही है और उसी से छठा ग्रुप भी शुरु हो रहा है। सूरह क़ाफ़ छठे ग्रुप की पहली मक्की सूरत है। यह छठा ग्रुप सूरह अल् तहरीम पर ख़त्म हो जाता है और आख़िरी ग्रुप सूरतुल मुल्क से शुरु होता है, लेकिन जो मंज़िल सूरह क़ाफ़ से शुरु होती है वह सूरह अन्नास तक एक ही है।

यह वह चीज़ें हैं जो मालूमात के दर्जे में सामने रहें और ज़हन में मौजूद रहें तो इंसान जब ग़ौर करता है तो इनके हवाले से बाज़ अवक़ात हिकमत के बड़े क़ीमती मोती हाथ लगते हैं।

❀ ❀ ❀

बाब चाहरम (चौथा)

तद्वीने क़ुरान (क़ुरान की परिपूर्ति)

क़ुरान मजीद की तद्वीन के बारे में यह बात बिल्कुल वाज़ेह है कि यह रसूल अल्लाह ﷺ की हयाते तैय्यबा में मुकम्मल हो गयी थी। किसी शायर का दीवान उसकी गज़लों और कसीदों पर मुश्तमिल होता है। क़ुरान मजीद अल्लाह का कलाम है और उसकी भी तद्वीन हुई है। यह भी एक दीवान की शक्ल में है, इसको भी जमा किया गया है। जमा व तद्वीने क़ुरान अपनी जगह पर बहुत अहम मौज़ू (विषय) है। इसके बारे में ख़ास मालूमात हमारे ज़हनों में हर वक़्त मुसतहज़र (याद) रहनी चाहिये, क्योंकि आमतौर पर अहले तशय्यो के हवाले से हमारे यहाँ जो चीज़ें मशहूर हैं (वल्लाहु आलम वह हक़ीक़त पर मब्नी हैं या महज़ मुख़ालिफ़ीन का प्रोपेगंडा है) इनकी वजह से लोगों के ज़हनों में शुबहात पैदा हुए हैं और वह काफ़ी बड़े हलक़े के अंदर फैले हैं।

हमारे यहाँ जुमे के ख़ुत्बे जो मुरत्तब किये गए हैं और आम ख़तीब पढ़ते हैं, उनमें भी ऐसे अल्फ़ाज़ आ गये हैं जो बहुत बड़े-बड़े मुग़ालतों की बुनियाद बन गये हैं। हो सकता है किसी दुश्मने इस्लाम ने, किसी बातिनी ने, किसी ग़ाली क़िस्म के राफ्दी ने यह अल्फ़ाज़ शामिल कर दिये हों। बज़ाहिर तारीफ़ हो रही है मगर हक़ीक़त में तनक़ीस हो

रही है और दीन की जड़ काटी जा रही है। इसकी मिसाल भी इसी तद्वीने के ज़ेल (below) में आयेगी।

क़ुरान मजीद की तद्वीन तीन मराहिल (steps) में मुकम्मल हुई। पहली तद्वीन रसूल अल्लाह ﷺ की हयाते तैय्यबा में हो गई थी, लेकिन वह तद्वीन उस शक्ल में थी कि सूरतें मुअय्यन हो गईं, सूरतों की तरतीब मुअय्यन हो गई। किताबी शक्ल में क़ुरान मजीद हुज़ूर ﷺ की हयाते तैय्यबा में मौजूद नहीं था। लोगों के पास मुख्तलिफ हिस्सों में लिखा हुआ क़ुरान था। लोग ऊँट के शाने (shoulder) की हड्डी (जो काफी चौड़ी होती है) पर लिखते थे या कुल्हे की हड्डी पर लिखा जाता था। ऊँट की पसलियाँ (ribs) भी बड़ी चौड़ी होती हैं यह भी इस मक़सद के लिये इस्तेमाल होती थीं। कागज़ उस ज़माने में कहाँ था, कपड़ा ज़्यादा दस्तयाब था, लिहाज़ा कपड़े पर भी लिखा जाता था। इसी तरह छोटे-छोटे पत्थरों पर भी आयात लिख लेते थे। याद रहे कि क़ुरान मजीद की असल हैसीयत "कौल" की है: {اِنَّهٗ لَقَوۡلُ رَسُوۡلٍ كَرِيۡمٍ} (अल् हाक्क़ा:40) ना तो यह हुज़ूर ﷺ को लिखी हुई शक्ल में दिया गया ना हुज़ूर ﷺ ने लिखी हुई शक्ल में उम्मत को दिया। हुज़ूर ﷺ को भी यह पढ़ाया गया है। अज़ रुए अल्फ़ाज़े क़ुरानी:

سَنُقۡرِئُكَ فَلَا تَنۡسٰٓى	*"हम आपको पढ़ायेंगे, फिर आप भूलेंगे नहीं।"*

(अल् आला:6)

यह अव्वलन क़ौले जिब्राईल (अलै०) फिर क़ौले मुहम्मद ﷺ बन कर लोगों के सामने आया। जिब्राईल (अलै०) से

हुज़ूर ﷺ ने सुना, हुज़ूर ﷺ से सहाबा (रज़ि०) ने सुना। चुनाँचे असल में तो क़ुरान पढ़ी जाने वाली शय है। लेकिन जैसे-जैसे क़ुरान नाज़िल होता आप ﷺ उसे लिखवा भी लेते। बाज़ सहाबा किराम (रज़ि०) किताबते वही की ज़िम्मेदारी पर मामूर (तैनात) थे। और हुज़ूर ﷺ ने इस बात का हुक्म भी दे दिया था कि ((لَا تَكْتُبُوا عَنِّيْ غَيْرَ الْقُرْآنِ)) "मेरी तरफ़ से सिवाये क़ुरान के कुछ ना लिखो।"

अहादीस को लिखने से हुज़ूर ﷺ ने मना फ़रमा दिया था ताकि कहीं अल्लाह और रसूल ﷺ का कलाम गडमड ना हो जाये, सिर्फ़ क़ुरान मजीद को ही लिखने का हुक्म दिया। लेकिन असल क़ुरान अल्लाह ताला ने हुज़ूर ﷺ के सीने में जमा किया और मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ ने सहाबा (रज़ि०) के सीनों में जमा कर दिया। वह क़ौल से क़ौल की शक्ल में गया है, लोगों ने हुज़ूर ﷺ के दहन मुबारक से सीखा है। बहरहाल रसूल ﷺ के दौर में लिखा हुआ क़ुरान भी था लेकिन किताबी शक्ल में जमाशुदा नहीं था। जमाशुदा शक्ल में सिर्फ सीनों में था, हुफ्फाज़ को याद था। उन्हें याद था कि क़ुरान इस तरतीब के साथ है। इसके लिये सबसे बड़ी दलील यह है कि सही रिवायात के मुताबिक़ हर रमज़ानुल मुबारक में जितना क़ुरान उस वक़्त तक नाज़िल हो चुका था, हुज़ूर ﷺ और हज़रत जिब्राइल (अलै०) उसका दौर करते थे, जैसा कि हमारे यहाँ रमज़ान के आने से पहले हुफ्फाज़ दौर करते हैं, एक हाफ़िज़ सुनाता है, दूसरा सुनता है ताकि तरावीह में सुनाने के लिये ताज़ा हो जाये। तो रमज़ानुल मुबारक में हुज़ूर ﷺ और हज़रत

जिब्राईल (अलै०) मुज़ाकरह करते थे, क़ुरान मजीद का दौर होता था। आप ﷺ की ज़िन्दगी के आख़री रमज़ान में आप ﷺ ने जिब्राईल (अलै०) से क़ुरान मजीद का दो मरतबा मुक्ममल दौर किया। चुनाँचे जहाँ तक हाफ़जे में और सीने में क़ुरान का मुदव्विन हो जाना है वह तो नबी अकरम ﷺकी हयात तैय्यबा के दौरान मुक्ममल हो गया था।

तद्वीने क़ुरान का दूसरा मरहला हज़रत अबुबकर (रज़ि०) के अहदे ख़िलाफ़त में आया जब मुरतद्दीन (वह शख्स जो इस्लाम क़बूल करने के बाद फिर दोबारा काफ़िर, यहूद या इसाई हो जाये) और मानिईन ज़कात (ज़कात देने से मना करने वाले) से जंगें हुईं। जंगे यमामा में तो बहुत बड़ी तादाद में सहाबा (रज़ि०) शहीद हुए। यह बड़ी खूंरेज़ जंग थी और इसमें कसीर तादाद में हुफ्फाज़े क़ुरान शहीद हो गए तो तशवीश पैदा हुई और यह ख्याल आया कि इस क़ुरान को अब किताबी शक्ल में जमा कर लेना चाहिये। यह ख्याल सबसे पहले हज़रत उमर (रज़ि०) के दिल में आया। हज़रत उमर (रज़ि०) ने यह बात हज़रत अबुबकर (रज़ि०) से कही तो वो बड़े मुतरद्दिद (परेशान) हुए कि मैं वह काम कैसे करूँ जो हुज़ूर ﷺ ने नहीं किया! लेकिन हज़रत उमर (रज़ि०) इसरार (आग्रह) करते रहे और रफ्ता-रफ्ता हज़रत अबुबकर (रज़ि०) को भी इस पर इन्शराहे सद्र हो गया (दिल ने मान लिया)। उन्होंने हज़रत उमर (रज़ि०) से कहा कि अब तुम्हारी इस बात के लिये अल्लाह ने मेरे सीने को कुशादाह (बड़ा) कर दिया है। इसके बाद यह ज़िम्मेदारी हज़रत ज़ेद बिन साबित (रज़ि०) पर ड़ाली गयी जो हुज़ूर ﷺ के ज़माने में कातिबे वही थे। आप ﷺ के चंद ख़ास

सहाबा जो किताबते वही पर मामूर (तैनात) थे, उनमें हज़रत ज़ेद बिन साबित (रज़ि०) बहुत मारूफ़ (मशहूर) थे। उनसे हज़रत अबुबकर (रज़ि०) ने फ़रमाया कि तुम यह काम करो, और उनके साथ कुछ और सहाबा की एक कमैटी तशकील दे दी (गठित कर दी)। वह भी पहले बहुत मुतरद्दिद रहे। उनकी दलील भी यह थी कि जो काम हुज़ूर ﷺ ने नहीं किया वह मैं कैसे करूँ! इलावज़ह (इससे बड़ी बात) यह तो पहाड़ जैसी ज़िम्मेदारी है, यह मैं कैसे उठाऊँ! लेकिन जब हज़रात अबुबकर और उमर (रज़ि०) दोनो का इसरार (आग्रह) हुआ तो उनका भी सीना खुल गया। फिर जिन सहाबा (रज़ि०) के पास क़ुरान हकीम का जो हिस्सा भी लिखी हुई शक्ल में था, उनसे लिया गया और मुख्तलिफ शहादतों और हुफ्फाज़ की मदद से अहदे सिद्दीक़ी में क़ुरान पाक को एक किताब की शक्ल में मुरत्तब (जमा) कर लिया गया। याद रहे कि एक किताब की शक्ल में भी क़ुरान मजीद की तद्वीन रसूल अल्लाह ﷺ के इन्तेक़ाल के दो साल के अंदर-अंदर मुकम्मल हो गई। हज़रत अबुबकर (रज़ि०) का अहदे ख़िलाफ़त कुल सवा दो बरस है।

हज़रत अबुबकर (रज़ि०) की मजलिसे शूरा में यह मसला भी ज़ेरे गौर आया कि हुज़ूर ﷺ के ज़माने में तो क़ुरान एक जिल्द के माबैन जमा नहीं किया गया, लिहाज़ा इसका नाम क्या रखा जाए! एक तजवीज़ यह आयी कि इसे भी इन्जील का नाम दिया जाये। एक राय यह दी गयी कि इसका नाम "सफ़र" हो, इसलिये कि सफ़र का लफ्ज़ तौरात की किताबों के लिये मारूफ़ चला आ रहा था, जैसे सफ़र अय्यूब एक किताब थी। तो सफ़र किताब को कहते हैं जिस

की जमा "असफ़ार" है और यह लफ्ज़ क़ुरान में भी आया है। सफ़र का लफ़्ज़ी मतलब है रोशनी देने वाली। फिर अबदुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) ने तजवीज़ पेश की कि इसका नाम "मुस्हफ़" होना चाहिये। उन्होंने कहा कि मेरा आना-जाना हब्शा होता है, वहाँ के लोगों के पास एक किताब है और वह उसे मुस्हफ़ कहते हैं। अब "मुस्हफ़" के लफ्ज़ पर इत्तेफ़ाक़ और इज्माअ हो गया। चुनाँचे क़ुरान के लिये हज़रत अबुबकर (रज़ि०) के अहदे ख़िलाफ़त में हज़रत अबदुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) की तजवीज़ पर मुस्हफ़ नाम रखा गया और इस पर लोगों का इज्माअ हुआ। तद्वीने क़ुरान का यह दूसरा मरहला है।

क़ुरान हकीम की तिलावत के ज़िमन में एक मामला चला आ रहा था, जैसा कि हदीस में आता है कि क़ुरान मजीद सात हुरूफ़ पर नाज़िल हुआ था। अरबों की ज़बान तो एक थी लेकिन बोलियाँ मुख़्तलिफ़ थीं, अल्फाज़ के लहजे मुख़्तलिफ़ थे। तो सब लोगों को इजाज़त दी गई थी कि वह अपने-अपने लहजे के अंदर क़ुरान पढ़ लिया करें ताकि सहूलत रहे, वरना बड़ी मशक़्क़त की ज़रूरत थी कि सब लोग अपने लहजे बदलें। यह वह ज़माना था कि इन्क़लाबी जद्दो-जहद का tempo इतना तेज़ था कि इन कामों के लिये ज़्यादा फ़ुरसत नहीं थी कि इसके लिये बाक़ायदा इदारे क़ायम हों, मुख़्तलिफ़ जगहों से लोग आयें और अपना लहजा बदल कर क़ुरैश के लहजे के मुताबिक़ करें, हिजाज़ी लहजा इख़्तियार करें। चुनाँचे इजाज़त दी गई थी कि अपने-अपने लहजों में पढ़ लें। मुख़्तलिफ़ लहजों में पढ़ने के साथ कुछ लफ्ज़ी फ़र्क़ भी आने लगे। हज़रत उस्मान (रज़ि०) के ज़माने

तक पहुँचते-पहुँचते नौबत यह आ गई कि मुख़्तलिफ़ लहजों में लफ्ज़ी फ़र्क़ के साथ भी क़ुरान पढ़ा जाने लगा। कोई शख़्स क़ुरान पढ़ रहा होता, दूसरा कहता कि यह गलत पढ़ रहा है, यह यूँ नही है, जैसे मैं पढ़ रहा हूँ वह सही है। इस पर उस जज़्बाती क़ौम के अंदर तलवारें निकल आती थीं। अंदेशा हुआ कि अगर इस तरह से ये बात फैल गई तो क़ुरान का कोई एक टेक्स्ट (text) मुत्तफ़िक़ अलैह नही रहेगा। उम्मत को जमा करने वाली शय तो यह क़ुरान ही है, इसमें लफ्ज़ी फर्क़ के नतीजे में दाइमी (अविनाशी) इफ़तेराक़ (विभाजन) व इन्तेशार (गड़बड़) पैदा हो जायेगा। चुनाँचे हज़रत उस्मान (रज़ि०) ने सहाबा (रज़ि०) के मशवरे से तय किया कि क़ुरान का एक टेक्स्ट (text) तैयार किया जाये। इस टेक्स्ट के लिये लफ्ज़ "रस्म" है। रस्मुल ख़त का लफ्ज़ हम इस्तेमाल करते हैं। "ا ب ت" हुरूफ़ है, लेकिन अरबी में लिखे जाऐंगे तो इनका रस्मुल ख़त कुछ और है, उर्दू में लिखे जाऐंगे तो इनकी शक्ल और है। हज़रत उस्मान (रज़ि०) ने एक रस्मुल ख़त और एक टेक्स्ट पर क़ुरान जमा किया। उन्होंने भी एक कमेटी बनाई और हुक्म दे दिया गया कि तमाम लहजों को रद्द करके क़ुरैश के लहजे पर क़ुरान का टेक्स्ट तैयार किया जाये जो मुत्तफ़िक़ अलैह टेक्स्ट होगा। चुनाँचे इस कमेटी ने बड़ी मेहनते शाक्क़ा से इस काम की तकमील की। इस तरह क़ुरान का रस्मुल ख़त मुअय्यन हो गया और मुत्तफ़िक़ अलैह टेक्स्ट वजूद में आ गया। रस्मे उस्मानी के मुताबिक़ सूरह फ़ातिहा में "ملك يوم الدين" लिखा जायेगा, लिखने की शक्ल यह नहीं होगी: "مالك يوم الدين"। एक

क़िरात में चूँकि مَلِكِभी है तो "ملك" को "مٰلِكِ" भी पढ़ा जा सकता है और "مَلِكِ" भी। तो यह बहुत बड़ा कारनामा है जो हज़रत उस्मान (रज़ि०) ने सहाबा (रज़ि०) के मशवरे से सरअंजाम दिया कि क़ुरान का एक रस्मुल ख़त मुअय्यन हो गया और मसाहिफ़े उस्मान (रज़ि०) तैयार हो गये। बाज़ रिवायात के मुताबिक़ उसकी चार नक़ूल (copies) तैयार की गईं, बाज़ रिवायात के मुताबिक़ पाँच और बाज़ में सात का अदद भी मिलता है। उनमें से एक मुस्हफ official version के तौर पर मदीने में रखा गया और बाक़ी नक़लें मक्का मुकर्रमा, दमिश्क़, कूफ़ा, यमन, बहरीन और बसरह को भेज दी गईं। उनमें से कोई-कोई नक़ल अब भी मौजूद है। तुर्की और ताशक़न्द में वह "मुसाहिफ़े उस्मानी" मौजूद हैं जो हज़रत उस्मान (रज़ि०) ने तैयार कराये थे।

यहाँ एक अहम बात तवज्जोह तलब है कि हमारे यहाँ ख़ुत्बाते जुमा में बाज़ ख़तीब ये जुमला पढ़ जाते हैं: "جَامِعُ آيَاتِ القرآن عثمان بن عفان رضی اللہ عنہ" यहाँ हम-क़ाफ़िया अल्फ़ाज़ जमा करके सौती आहंग के साथ एक ख़ास अन्दाज़ पैदा किया गया है, लेकिन यह अल्फ़ाज़ इस क़दर गलत और इतने गुमराहकुन हैं कि इससे यह तसव्वुर पैदा होता है कि आयाते क़ुरानिया को सबसे पहले हज़रत उस्मान (रज़ि०) ने जमा किया। यह बात क़ुरान पर से ऐतमाद को हटा देने वाली है। आयाते क़ुरानिया तो रसूल अल्लाह ﷺ के ज़माने में जमा हो चुकी थीं, सूरतें हुज़ूर ﷺ के ज़माने में वजूद में आ चुकी थीं, सूरतों की तद्वीन ही नहीं तरतीब भी हुज़ूर ﷺ के ज़माने में अमल में आ चुकी थी। किताबी

शक्ल में क़ुरान अबुबकर (रज़ि०) के ज़माने में जमा हुआ। हज़रत उस्मान (रज़ि०) और अबुबकर (रज़ि०) के ज़माने में दस-पन्द्रह साल का फसल है। अगर "جَامِعُ آیَاتِ الْقُرآن" हज़रत उस्मान (रज़ि०) को क़रार दिया जाये तो कोई शख़्स कह सकता है कि क़ुरान की तद्वीन हुज़ूर ﷺ के पन्द्रह या बीस साल बाद हुई है। हज़रत उस्मान (रज़ि०) का अहदे ख़िलाफ़त बारह बरस है और हुज़ूर ﷺ के इन्तेक़ाल के 24 बरस के बाद उनका इन्तेक़ाल हुआ। तो इस तरह क़ुरान के मतन (text) के बारे में शुकूक व शुबहात पैदा किये जा सकते हैं, जबकि हक़ीक़त यह है कि हज़रत उस्मान (रज़ि०) आयाते क़ुरानी के जमा करने वाले नहीं हैं बल्कि उम्मत को क़ुरान के एक टेक्स्ट और रस्मुल ख़त पर जमा करने वाले हैं। इसलिये आज दुनिया में जो मुस्हफ़ मौजूद हैं यह "मुस्हफ़े उस्मान" कहलाता है। इसका नाम "मुस्हफ़" हज़रत अबुबकर (रज़ि०) ने रखा था और मुस्हफ़े उस्मान में रस्मुल ख़त और टेक्स्ट मुअय्यन हो गया कि अब क़ुरान इसी तरीक़े से लिखा जायेगा और यही पूरी दुनिया के अंदर official टेक्स्ट है।

हमारे यहाँ अक्सर व बेशतर क़ुरान पाक की इशाअत (प्रकाशन) के इदारे रस्मे उस्मानी का पूरा अहतमाम नहीं करते और इस ऐतबार से उनमें रस्म की गलतियाँ भी आ जाती हैं, इसलिये कि उनके सामने अपने-अपने मफ़ादात (फ़ायदे) होते हैं यानी कम ख़र्च से ज़्यादा नफ़ा हासिल करने की कोशिश---- लेकिन अब सऊदी हुकूमत ने इसका अहतमाम करके बड़ी नेकी कमाई है। क़ुरान मजीद की हिफाज़त के हवाले से एक नेकी मिस्र ने कमाई थी। जब इस्राईल ने क़िराअते क़ुरान मजीद के अन्दर तहरीफ़ करके

उसको आम करने की कोशिश की तो हुकूमते मिस्र ने अपने चोटी के क़ुर्राअ, क़ारी महमूद ख़लील हुसरी और अब्दुल बासित अब्दुस्समद से पूरा क़ुरान मजीद मुख्तलिफ़ क़िरातों में तिलावत कराया और उनके केसिट्स तैयार करके दुनिया में फैला दिये कि अब गोया वह रेफ़रेंस का काम देंगे। उनके होते हुए अब किसी के लिये मुमकिन नहीं है कि इस तरह क़िरात के हवाले से क़ुरान में कोई तहरीफ़ कर सके। इसी तरह सऊदी अरब की हुकूमत ने करोड़ों रूपये के ख़र्च से बहुत बड़ी फाउंडेशन बनाई है, जिसके ज़ेरे अहतमाम बड़े उम्दा आर्ट पेपर पर आलमी मैयार (quality) की बड़ी उम्दा जिल्द के साथ लाखों की तादाद में यह क़ुरान मजीद छापे जा रहे हैं, जो हज़रत उस्मान (रज़ि०) के मुअय्यन करदा रस्मुल ख़त के मुताबिक़ हैं।

बहरहाल हज़रत उस्मान (रज़ि०) "جامع آیات القرآن" की बजाये "جامع الاُمَّۃ علیٰ رسمٍ واحدٍ" यानी उम्मत को क़ुरान हकीम के एक रस्मुल ख़त पर जमा करने वाले हैं। यह तद्वीन भी हुज़ूर ﷺ के इन्तेक़ाल के 24 बरस के अंदर मुकम्मल हो गई। यही वजह है कि दुनिया मानती है और तमाम मुस्तशरिक़ (orientalist) मानते हैं कि जितना ख़ालिस मतन (pure text) क़ुरान का दुनिया में मौजूद है, किसी दूसरी किताब का मौजूद नहीं है। यह बात "الفضل ما شھدت بہ الاعداء" का मिस्दाक़ है, यानी फ़ज़ीलत तो वह है, जिसको दुश्मन भी तस्लीम करने पर मजबूर हो जाये। और यह किसी शय की हक्क़ानियत (सत्यता) के लिये आख़री सबूत होता है। पस यह बात पूरी दुनिया में मुसल्लम

(accepted) है कि क़ुरान हकीम का टेक्स्ट महफ़ूज़ है या जितना महफ़ूज़ टेक्स्ट क़ुरान का है इतना और किसी किताब का नहीं है। यानी क़िरात के फर्क़ भी रिकॉर्ड पर हैं, सबाअ (सात) क़िरात और अशरा (दस) क़िरात रिकॉर्ड पर हैं, उनमें भी एक-एक हर्फ़ का मामला मदवन (recorded) है कि फ़लाँ क़िरात में यह लफ्ज़ ज़बर के साथ पढ़ा गया है या ज़ेर के साथ। और यह तमाम official क़िरात हैं। बाक़ी जहाँ तक रस्मुल ख़त का ताल्लुक़ है उसका टेक्स्ट हज़रत उस्मान (रज़ि०) ने मुअय्यन कर दिया। उम्मते मुस्लिमा पर यह उनका बहुत बड़ा अहसान है। क़ुरान हकीम की compilation और उसकी तद्वीन के मुताल्लिक़ यह चीज़ें ज़हन में रहनी चाहिये। यह हक़ाईक़ सामने ना हों तो कुछ लोग ज़हनों में शुकूक व शुबहात पैदा कर सकते हैं।

❀ ❀ ❀

बाब पन्जम (पाँचवा)

क़ुरान मजीद का मौज़ू

अब हम अगली बहस पर आते हैं कि क़ुरान का मौज़ू क्या है। क्या क़ुरान फ़लसफ़े की किताब है? क्या यह साइंस की किताब है? क्या यह जियोलॉजी या फिज़िक्स की किताब है? किस क़िस्म की किताब है? तो पहली बात यह समझिये कि क़ुरान का मौज़ू है इंसान--- लेकिन इंसान की एनाटोमी, उसकी फिज़ियोलॉजी या anthropology नहीं है, बल्कि इंसान की हिदायत। यह हिदायत का लफ़्ज़ क़ुरान मजीद के लिये बुनियादी हैसियत रखता है। चुनाँचे देखिये सूरतुल बक़रह के शुरु ही में फ़रमाया: {هُدًى لِّلْمُتَّقِيْنَ} (आयत:2) फिर उसके वस्त (बीच) में इर्शाद हुआ: {هُدًى لِّلنَّاسِ} (आयत:185) यानि पूरे नोए इंसानी के लिये हिदायत। सूरह यूनुस में फ़रमाया: {هُدًى وَّرَحْمَةٌ لِّلْمُؤْمِنِيْنَ} (आयत:57)। सूरह लुक़मान में फ़रमाया: {هُدًى وَّرَحْمَةً لِّلْمُحْسِنِيْنَ} (आयत:3)। सूरह बक़रह (आयत:97) और सूरह नम्ल (आयत:2) में {هُدًى وَّبُشْرٰى لِلْمُؤْمِنِيْنَ} जबकि सूरह आले इमरान में {هُدًى وَّمَوْعِظَةٌ لِّلْمُتَّقِيْنَ} (आयत:138) और सूरतुल मायदा में {هُدًى وَّمَوْعِظَةً لِّلْمُتَّقِيْنَ} (आयत:46) के अल्फ़ाज़ आये। मालूम हुआ कि "هُدًى" का लफ़्ज़ क़ुरान

हकीम के लिये कसरत के साथ आया है। फिर यह सिर्फ़ नकरह नहीं "ال" के साथ मारफा बन कर भी कई जगह आया है। तीन मर्तबा तो इस आयत मुबारका में आया जो रसूल अल्लाह ﷺ के मक़सदे बअसत को बयान करती है: {هُوَ الَّذِيْٓ اَرْسَلَ رَسُوْلَهٗ بِالْهُدٰى وَدِيْنِ الْحَقِّ لِيُظْهِرَهٗ عَلَى الدِّيْنِ كُلِّهٖ} (अल् तौबा: 33, अल् फ़तह:28, अस् सफ़:9) هُدًى नकरह था, اَلْهُدٰى मारफ़ा हो गया। यानि हिदायते कामिला, हिदायते ताम्मा, हिदयाते अब्दी। इसी तरह सूरह अल् नज्म (आयत:23) में फ़रमाया: {وَلَقَدْ جَآءَهُمْ مِّنْ رَّبِّهِمُ الْهُدٰى}। सूरतुल जिन्न का आग़ाज़ जिन्नात की एक जमात के इस क़ौल: {اِنَّا سَمِعْنَا قُرْاٰنًا عَجَبًا} (आयत:1) से होता है। आगे चल कर अल्फ़ाज़ आते हैं: {وَّاَنَّا لَمَّا سَمِعْنَا الْهُدٰٓى اٰمَنَّا بِهٖ} (आयत:13) गोया सूरतुल जिन्न ने मुअय्यन किया कि "قُرْاٰنًا عَجَبًا" और "اَلْهُدٰى" मुतरादिफ़ (बराबर) अल्फ़ाज़ हैं। सूरह बनी इस्राईल और सूरह अल् कहफ़ में आया है:

وَمَا مَنَعَ النَّاسَ اَنْ يُّؤْمِنُوْٓا اِذْ جَآءَهُمُ الْهُدٰى

"क्या शय है जो लोगों को ईमान लाने से रोकती है जबकि उनके पास अल् हुदा आया है?" (बनी इसराइल:94, अल् कहफ़:55)

तो गोया क़ुरान का मौज़ू है इंसान की हिदायत।

अब यह बात ज़हन में रखिये कि इंसान के इल्म के दो गोशे (corner) हैं, इल्मे इंसानी दो हिस्सों में मुन्क़सिम (विभाजित) है। मशहूर कहावत है: (اَلْعِلْمُ عِلْمَانِ: عِلْمُ الْاَدْيَانِ وَعِلْمُ الْاَبْدَانِ) एक हिस्सा है माद्दी दुनिया (Physical World) का इल्म, माद्दी हक़ाइक़ का इल्म, जो हवास (senses) के ज़रिये से हासिल होता है। देखना, सुनना, सूँघना, चखना, छूना हमारे हवासे ख़म्सा (five senses) हैं। यह तमाम सलाहियतें हैं जिनसे कुछ मालूमात हासिल होती हैं और अक़्ल का कंप्यूटर इनको प्रोसेस करता है, इनसे नतीजे निकालता है और उन्हें स्टोर कर लेता है। फिर हवास के ज़रिये से मज़ीद (ज़्यादा) कोई मालूमात हासिल होती हैं तो अब इनको भी वह प्रोसेस करके अपने साबक़ा (पिछली) "memory store" के साथ हमआहंग (compatible) करके कोई और नतीजा अख़्ज़ करता (निकालता) है। इस तरह रफ़्ता-रफ़्ता इंसान का यह इल्म बढ़ता चला जा रहा है और हम नहीं कह सकते कि यह अभी और कहाँ तक जायेगा। आज से सौ साल पहले भी इंसान तसव्वुर नहीं कर सकता था कि इंसानी इल्म वहाँ पहुँच जायेगा जहाँ आज पहुँच चुका है। यह इल्म बिल् हवास व अल् अक़्ल है और इस इल्म का वही से कोई ताल्लुक़ नहीं है। इसका ताल्लुक उस इल्मे अस्मा से है जो बिल्कुल शुरू में हज़रत आदम (अलै०) में वदीयत (रखना) कर दिया गया था और यही दुनिया में सरबुलंदी की बुनियाद है।

इल्में इंसानी के दो ग़ोशों के ज़िमन में सूरतुल बक़रह का चौथा रुकु बहुत अहम है। इल्मुल अस्मा का ज़िक्र उसके शुरू में हैं। जब अल्लाह तआला ने फ़रिश्तों से फ़रमाया कि

मैं ज़मीन में एक ख़लीफ़ा बनाने वाला हूँ तो फ़रिश्तों की तरफ़ से यह बात इस्तफ़हामन पेश की गई (पूछी गयी):

اَتَجۡعَلُ فِيۡهَا مَنۡ يُّفۡسِدُ فِيۡهَا وَيَسۡفِكُ الدِّمَآءَ‌ۚ

"क्या आप उसको ज़मीन में ख़लीफा बनाएँगें जो उसमें फ़साद फैलाएगा और खूँरेज़ियाँ करेगा?" (आयत:30)

फ़रिश्तों का यह अश्क़ाल इस तरह दूर किया गया:

وَعَلَّمَ اٰدَمَ الۡاَسۡمَآءَ كُلَّهَا

"और अल्लाह ने आदम को तमाम नाम सिखा दिये।" (आयत:31)

यह इल्मे अस्मा जो आदम को दिया गया, यही हुकूमते अरज़ी (ज़मीन की ख़िलाफ़त) की बुनियाद है। जो क़ौम इस इल्म के अंदर तरक्क़ी करेगी वही इक़्तदारे अरज़ी (सत्ता) की हक़दार ठहरेगी। अलबत्ता इस रुकू के आख़िरी में फ़रमाया गया कि जब हज़रत आदम (अलै०) से ख़ता हो गई और शैतान के अग़वा (लालच) से मुतास्सिर होकर अल्लाह तआला के हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी हो गई तो उन्होंने अल्लाह तआला के हुज़ूर तौबा की और अल्लाह तआला ने उनकी तौबा क़ुबूल करने का बायन तौर ऐलान कर दिया:

فَتَلَقّٰٓى اٰدَمُ مِنۡ رَّبِّهٖ كَلِمٰتٍ فَتَابَ عَلَيۡهِ‌ؕ (आयत:37)

इसके बाद ज़िक्र है कि जब आदम और हव्वा अलैहिस्सलाम को हुक्म दिया गया कि अब ज़मीन में जाकर रहो और वहाँ का चार्ज संभालो तो फ़रमाया:

فَاِمَّا يَاْتِيَنَّكُمْ مِّنِّيْ هُدًى فَمَنْ تَبِعَ هُدَايَ فَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ۝۳۸

"तो जब भी मेरी तरफ़ से तुम्हारे पास कोई हिदायत आये तो जो लोग मेरी उस हिदायत की पैरवी करेंगे उनके लिये किसी ख़ौफ और रंज का मौक़ा ना होगा।" (आयत:38)

वह इल्मे हिदायत है।

यह दो चीज़ें बिल्कुल अलैहदा-अलैहदा हैं। इल्मे अस्मा दरहक़ीक़त यूँ समझिये कि जैसे आम की गुठली में आम का पूरा दरख़्त होता है। वही गुठली तो है जो आप ज़मीन में दबाते हैं। फिर अगर वहाँ पानी पड़ता है और ज़मीन में रुईदगी की सलाहियत भी है तो वह गुठली फटेगी। उसमें से जो दो पत्ते निकलेंगे वह फलें-फूलेंगे, परवान चढ़ेंगे तो दरख़्त बनेगा। वह पूरा दरख़्त आम की गुठली में बिलक़ुवत (potentially) मौजूद था, अल्बत्ता उसे बिल् फ़अल (actually) पूरा दरख़्त बनने में तीन-चार साल लगेगें। तो जिस तरह पूरा दरख़्त आम की गुठली में बिल् क़ुव्वत मौजूद था लेकिन वह आम का दरख़्त कई साल के अंदर बिल् फ़अल वजूद में आया, बयीना यह मामला कुल माद्दी हक़ाइक़ का है कि इस ज़िमन में कुल इल्म हज़रत आदम (अलै०) के वजूद में बिल् क़ुव्वत (potentially) वदीयत कर दिया गया! अब इसकी exfoliation हो रही है, वह बढ़ता जा रहा है, बर्गोबार ला रहा है। और जैसा कि मैंने अर्ज़ किया, इस इल्म का कोई ताल्लुक़ आसमानी हिदायत से नहीं है। अब यह ख़ुद रू पौदा है जो बढ़ता चला जा रहा है, और मालूम नहीं

कहाँ तक पहुँचेगा। अल्लामा इक़बाल ने इसकी सही ताबीर की है:

उरूज-ए-आदम-ए-ख़ाकी से अंजुम सहमे जाते हैं
कि यह टूटा हुआ तारा मय कामिल ना बन जाये!

अल्लामा की ज़िन्दगी में तो इंसान ने चाँद पर क़दम नहीं रखा था, लेकिन अब इंसान चाँद पर क़दम रख कर आ गया है। मज़ीद यह कि अब तो जेनेटिक इंजीनियरिंग अपने कमालात दिखा रही है। क्लोनिंग के तरीक़े से हैवानात पैदा किये जा रहे हैं। इस इंसानी इल्म के साथ अगर इल्मे वही यानि इल्मे हिदायत ना हो तो यह इल्म बजाये ख़ैर के शर का ज़रिया बन जाता है। चुनाँचे आज यह इल्म वाक़िअतन शैतानी क़ुव्वत बन चुका है, हलाकत का सामान बन चुका है, तबाही का ज़रिया बन चुका है।

{فَاِمَّا يَاْتِيَنَّكُمْ مِّنِّىْ هُدًى} ने हज़रत आदम अलै० से लेकर हज़रत मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ तक इरतक़ाई मराहिल तय किये। जैसे-जैसे नौए इंसानी शऊर की मंजिलें तय करती गई, अल्लाह तआला की तरफ़ से हिदायत में भी इज़ाफ़ा होता गया, ता आँके (यहाँ तक कि) यह इल्मे हिदायत क़ुरान हकीम में आकर "اَلْهُدٰى" (Final Guidance) की सूरत में मुकम्मल हो गया। इस हिदायत में जो इरतक़ा हुआ है उसे भी आप समझ लीजिये। पहली किताबें जो नाज़िल हुईं उनमें भी "هُدًى" तो थीं। सूरतुल मायदा में इर्शाद हुआ:

اِنَّآ اَنۡزَلۡنَا التَّوۡرٰىةَ فِيۡهَا هُدًى وَّنُوۡرٌ

"हमने तौरात नाज़िल की थी, उसमें हिदायत भी थी नूर भी था।" (आयत:44)

इसी रुकू में (सूरतुल मायदा का सातवाँ रुकू) इंजील के बारे में फ़रमाया:

فِيۡهِ هُدًى وَّنُوۡرٌ

"उसमें हिदायत भी थी नूर भी था।"

(आयत:46)

लेकिन यह हिदायत और नूर दर्जा-ब-दर्जा तरक़्क़ी करता रहा है, यहाँ तक कि क़ुरान में आकर यह कामिल हुआ है और اَلۡهُدٰى बन गया है। अब यह هُدًى नहीं, اَلۡهُدٰى है, यानि हिदायते ताम्मा (मुकम्मल)।

इसकी वजह क्या है? देखिये एक बच्चे को अगर आप तालीम देना चाहते हैं तो उसकी ज़हनी सतह को मल्हूज़ (ध्यान में) रखे बग़ैर नहीं दे सकते। आप प्राइमरी में ज़ेरे तालीम किसी बच्चे के लिये चाहे पी०एच०डी० उस्ताद रख दें, लेकिन वह उस्ताद बच्चे की ज़हनी इस्तअदाद (क्षमता) की मुनासिबत से ही उसे तालीम दे सकेगा। बच्चा रफ़्ता-रफ़्ता आगे बढ़ेगा। यहाँ तक कि जब वह अपनी अक़्ल और शऊर की पूरी शिद्दत, क़ुव्वत और बलूग़त को पहुँच जायेगा तब उसे आख़िरी इल्म पढ़ाया जायेगा। पहले वह तारीख़ पढ़ रहा था, अब फ़लसफ़ा-ए-तारीख़ पढ़ेगा। इस हवाले से अल्लाह तआला ने अपनी हिदायत तदरीज के साथ उतारी है। तौरात में सिर्फ़ अहकाम हैं, हिकमत है ही नहीं, जबकि

इंजील में हिकमत है, अहकाम हैं ही नही। दोनों चीज़ें मिल कर एक बात को मुकम्मल करतीं हैं। तौरात में सिर्फ़ अहकाम हैं। जैसे आप बच्चे को बता देते हैं कि भई खाने-पीने से रोज़ा टूट जाता है, रोज़े का मतलब यह है कि अब दिन भर खाना-पीना कुछ नहीं है। चाहे बच्चा अभी छः सात साल का है, वह यह बात समझ लेता है। इस तरह उसे अहकाम तो दे दिये जायेंगे कि यह करो, यह ना करो, यह Do's हैं यह Donts हैं।

चुनाँचे तौरात में अहकामे अशरा (The Ten Commandments) दे दिये गये, लेकिन अभी इनकी हिकमत नहीं बताई गई। इसलिये कि अभी हिकमत का तहम्मुल (समझना/धैर्य) इंसान के लिये मुमकिन नहीं था। अभी नौए इंसानी का अहदे तफ़ूलियत (बचपन) था। यूँ समझिये कि वह आज से साढ़े तीन हज़ार साल क़ब्ल का इंसान था। तौरात चौदह सौ क़ब्ल मसीह में हज़रत मूसा अलै० को दी गई। इसके चौदह सौ साल बाद हज़रत ईसा अलै० को इंजील दी गई, जिसमें सिर्फ़ हिकमत है, अहकाम हैं ही नहीं। लेकिन आज से दो हज़ार साल पहले हज़रत मसीह अलै० के यह अल्फ़ाज़ इंजील में मौजूद हैं (अब भी मौजूद हैं) कि आप अलैहिस्सलाम ने अपने हवारीन से फ़रमाया था: "मुझे तुमसे और भी बहुत सी बातें कहनी थीं, मगर अभी तुम उनका तहम्मुल नहीं कर सकोगे, जब वह फ़ारक़लीत आयेगा तो तुम्हें सब कुछ बतायेगा।" यह मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की पेशनगोई थी। हज़रत मसीह अलै० ने फ़रमाया कि अभी तुम तहम्मुल नहीं कर सकते। गोया तुम्हारी ज़हनी बलूग़त के लिये छः सौ बरस

मज़ीद दरकार हैं। चुनाँचे अल् हुदा क़ुरान हकीम में आकर मुकम्मल हुआ है।

क़ुरान मजीद जो हिदायत देता है उसके भी दो हिस्से हैं। एक फ़िक्रो नज़र की हिदायत है, जिसका उन्वान "ईमान" है। इसका मौज़ू वही है जो फ़लसफ़े का है। यानि कायनात की हक़ीकत क्या है, जिन्दगी की हक़ीक़त क्या है, ज़िन्दगी का माल क्या है, इसका आग़ाज़ क्या है, अन्जाम क्या है, सही क्या है, गलत क्या है, ख़ैर क्या है, शर क्या है, इल्म क्या है? क़ुरान मजीद का दूसरा मौज़ू हिदायते अमली है, इन्फ़रादी सतह पर भी और इज्तमाई सतह पर भी। यह अवामर व नवाही (करना ना करना) और हलाल व हराम के अहकाम पर मुश्तमिल है। फिर इसमें मआशी व मआशरती अहकाम भी हैं। यह हिदायते फ़िक्रो नज़र और हिदायते फअल व अमल (इन्फ़रादी व इज्तमाई) क़ुरान हकीम का मौज़ू है।

इस ज़िमन में यह बात नोट कर लीजिये कि साइंस और टेक्नोलॉजी क़ुरान हकीम का मौज़ू नहीं है, क़ुरान मजीद किताबे हिदायत है, साइंस की किताब नहीं है, अलबत्ता इसमें साइंसी उलूम (studies) की तरफ़ इशारे मौजूद हैं और उनके हवाले मौजूद हैं। क़ुरान मजीद कायनाती हक़ाइक़ को आयाते इलाहिया क़रार देता है। सूरतुल बक़रह की आयत 164 मुलाहिज़ा कीजिये, जिसे मैं "आयातुल आयात" क़रार देता हूँ:

اِنَّ فِیْ خَلْقِ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ وَاخْتِلَافِ الَّیْلِ وَالنَّهَارِ وَالْفُلْكِ الَّتِیْ تَجْرِیْ فِی الْبَحْرِ بِمَا یَنْفَعُ النَّاسَ وَمَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ مِنَ السَّمَآءِ مِنْ مَّآءٍ فَاَحْیَا بِهِ الْاَرْضَ بَعْدَ مَوْتِهَا وَبَثَّ فِیْهَا مِنْ كُلِّ دَآبَّةٍ ۪ وَّتَصْرِیْفِ الرِّیٰحِ وَالسَّحَابِ الْمُسَخَّرِ بَیْنَ السَّمَآءِ وَالْاَرْضِ لَاٰیٰتٍ لِّقَوْمٍ یَّعْقِلُوْنَ ۝١٦٤

“यक़ीनन आसमानों और ज़मीन की साख़्त हैं, रात और दिन के पेहम एक-दूसरे के बाद आने में, उन क़श्तियों में जो इंसान के नफ़े की चीज़ें लिये हुये दरियाओं और समुंदरों में चलती-फिरती हैं, बारिश के उस पानी में जिसे अल्लाह ऊपर से बरसाता है, फिर उसके ज़रिये से मुर्दा ज़मीन को ज़िन्दगी बख़्शता है और (अपने इसी इन्तेज़ाम की बदौलत) ज़मीन में हर क़िस्म की जानदार मख़्लूक़ को फैलाता है, हवाओं की गर्दिश में, और उन बादलों में जो आसमान और ज़मीन के दरमियान ताबेअ फ़रमान बना कर रखे गये हैं, उन लोगों के लिये बेशुमार निशानियाँ हैं जो अक़्ल से काम लेते हैं।”

यह सब अल्लाह की निशानियाँ हैं। इनमें अल्लाह की क़ुदरत, अल्लाह की अज़मत, अल्लाह का इल्मे कामिल, अल्लाह की हिकमते बालगा (प्रभावी) सब कुछ शामिल है।

तो यह जो मज़ाहिर तबीई (Physical Phenomena) हैं, क़ुरान हकीम इनका जा-बजा हवाला देता है। बाज़ कायनाती हक़ाइक़ वह हैं जिनका ताल्लुक़ फ़ल्कियात (Astronomy) से है। फ़रमाया: (यासीन:40)

وَكُلٌّ فِيْ فَلَكٍ يَّسْبَحُوْنَ ۝٤٠

यानि यह *"तमाम अजरामे समाविया अपनेअपने- मदार (orbit) में तैर रहे हैं।"*

मालूम हुआ हर शय हरकत में है। इंसान पर एक दौर ऐसा गुज़रा है जब वह समझता था कि ज़मीन साकिन है और सूरज इसके गिर्द हरकत कर रहा है। फिर एक दौर आया जिसमें कहा गया कि नहीं, सूरज साकिन है, ज़मीन हरकत करती है, ज़मीन सूरज के गिर्द चक्कर लगाती है, और आज हमें मालूम हुआ कि हर शय हरकत में है। सूरज का भी अपना एक मदार (orbit) है, उसमें वह अपने पूरे कुन्बे समेत हरकत कर रहा है। यह निज़ामे शम्सी उसका कुन्बा है, इस पूरे कुन्बे को लेकर वह भी एक मदार में हरकत कर रहा है। तो मालूम हुआ कि अल्फ़ाज़े क़ुरानी: {وَكُلٌّ فِيْ فَلَكٍ يَّسْبَحُوْنَ} में "كُلٌّ" का लफ़्ज़ जिस तरह मन्क़ह और मुबरहन होकर, जिस शान के साथ आज होवीदा (ज़ाहिर) हुआ है, आज से पहले इंसान को मालूम नहीं था। क़ुरान मजीद में कायनाती मज़ाहिर के बारे में जो बात कही गई है वह कभी गलत नहीं हो सकती। यह वह हक़ीक़त है जो इस दौर में आकर पूरी तरह वाज़ेह हुई है।

डाक्टर मोरिस बोकाई एक फ्राँसिसी सर्जन थे। उन्होंने क़ुरान और बाइबिल दोनो का तक़ाबली मुताला किया। वाज़ेह रहे कि बाइबिल से मुराद अहदनामा क़दीम (Old Testament) और अहदनामा जदीद (New Testament) दोनों हैं। तक़ाबिली मुताला के बाद वह इस नतीजे पर पहुँचे कि पूरे क़ुरान में कोई एक लफ़्ज भी ऐसा नहीं है जिसे हमारे साइंसी इन्कशाफ़ात में से किसी ने ग़लत साबित किया हो, जबकि तौरात में बेशुमार चीज़ें ऐसी हैं कि साइंस उन्हें ग़लत साबित कर चुकी है। इस पर उन्होंने 250 सफों की किताब तहरीर की: “The Bible, The Quran and Science”। सवाल यह पैदा होता है कि तौरात भी तो अल्लाह की किताब है, फिर उसमें ऐसी चीजें क्यों आ गईं जो साइंसी हक़ाइक़ के खिलाफ़ हैं। इसका जवाब यह है कि असल तौरात तो छठी सदी क़ब्ल मसीह ही में गुम हो गई थी जब बख़्त नसर के हाथों येरुशलम की तबाही हुई थी। इसके डेढ़ सौ वर्ष बाद कुछ लोगों ने तौरात को याददाश्तों से मुरत्तब किया। लिहाज़ा उस वक़्त इंसानी इल्म की जो सतह थी उसके ऐतबारात से तावीलात तौरात में शामिल हो गयीं, क्योंकि इंसान तो अपनी ज़हनी सतह के मुताबिक़ ही सोच सकता है। तौरात में तहरीफ़ होने की वजह से इसमें ऐसी चीजें दर्ज हैं जो साइंस की रू से ग़लत साबित हुईं। अलबत्ता क़ुरान में ऐसी कोई तावील नहीं हुई और इसकी हिफ़ाजत का अल्लाह तआला ने ख़ुद ज़िम्मा लिया है। यह बात बड़ी अहम है इसको बड़े ख़ूबसूरत अंदाज़ में डाक्टर रफीउद्दीन मरहूम ने कहा है कि यह कायनात अल्लाह का फअल है। उसकी तख्लीक़ और उसकी तदबीर

है, जबकि क़ुरान अल्लाह का क़ौल है, और अल्लाह तआला के क़ौल व अमल में तज़ाद (विरोध) मुमकिन नहीं है। किसी इन्सान के क़ौल व अमल में भी अगर कोई तज़ाद हो तो वह इंसानियत की सतह से नीचे उतर जाता है, अल्लाह तआला के क़ौल और अमल में तज़ाद कैसे हो सकता है? यहाँ यह हो सकता है कि एक दौर में इंसानों ने बात समझी ना हो, उनका ज़हन वहाँ तक पहुँचा ना हो, उनकी मालूमात का दायरा अभी इस हद तक हो कि इन हक़ाइक़ तक ना पहुँचा जा सके। लेकिन जैस-जैसे वक़्त आयेगा मज़ीद हक़ाइक मुन्कशिफ़ होंगे और यह बात ज़्यादा से ज़्यादा वाज़ेह से वाज़ेहतर होती चली जायेगी कि जो कुछ क़ुरान ने फ़रमाया है वही बरहक़ है। यहाँ आज से पहले इंसानी ज़हन इस हद तक रसाई हासिल करने का अहल नहीं था। सूरह हा मीम सजदा की आख़िरी से पहली आयत ज़हन में रखिये:

سَنُرِيهِمْ آيَاتِنَا فِي الْآفَاقِ وَفِي أَنفُسِهِمْ حَتَّىٰ يَتَبَيَّنَ لَهُمْ أَنَّهُ الْحَقُّ ۗ

"हम उन्हें दिखाते चले जायेंगे अपनी निशानियाँ आफ़ाक़ में भी और ख़ुद उनकी जानों में भी, यहाँ तक कि यह बात पूरी तरह निख़र कर उनके सामने वाज़ेह हो जायेगी कि यह क़ुरान ही हक़ है।"

डॉक्टर कीथल मूर कनाडा के बहुत बड़े एम्ब्रॉयलॉजिस्ट हैं। उनकी किताब इल्मे जनीन (Embryology) में सनद मानी जाती है और यूनिवर्सिटी की सतह पर बतौर टेक्स्ट बुक पढ़ाई जाती है। उन्होंने क़ुरान हकीम का मुताला करने के बाद इन्तहाई हैरत का इज़हार किया है कि आज से चौदह

सौ वर्ष क़ब्ल जबकि ना माइक्रोस्कोप मौजूद थी और ना ही dissection होता था, क़ुरान ने इल्मे जनीन के मुताल्लिक़ जो मालूमात दी हैं वह सही तरीन हक़ाइक़ पर मुश्तमिल हैं। डॉक्टर मौसूफ़ सूरतुल मोमिनून की आयात 12 से 14 का मुताला करते हुए अंगश्त बद नदाँ हैं:

وَلَقَدْ خَلَقْنَا الْاِنْسَانَ مِنْ سُلٰلَةٍ مِّنْ طِيْنٍ ⑫ ثُمَّ جَعَلْنٰهُ نُطْفَةً فِيْ قَرَارٍ مَّكِيْنٍ ⑬ ثُمَّ خَلَقْنَا النُّطْفَةَ عَلَقَةً فَخَلَقْنَا الْعَلَقَةَ مُضْغَةً فَخَلَقْنَا الْمُضْغَةَ عِظٰمًا فَكَسَوْنَا الْعِظٰمَ لَحْمًا ۤ ثُمَّ اَنْشَاْنٰهُ خَلْقًا اٰخَرَ ؕ

“हमने इंसान को मिट्टी के सत् से बनाया, फिर उसे एक महफ़ूज़ जगह टपकी हुई बूँद में तब्दील किया, फिर उस बूँद को लोथड़े की शक़्ल दी, फिर लोथड़े को बोटी बना दिया, फिर बोटी की हड्डियाँ बनाईं, फिर हड्डियों पर गोश्त चढ़ाया, फिर उसे एक दूसरी ही मख़्लूक़ बना कर खड़ा किया।”

उनका कहना है कि वाक़्या यह है कि इंसानी तख़्लीक़ के मराहिल की इससे ज़्यादा सही ताबीर मुमकिन नहीं है। तो यह हक़ीक़त ज़हन में रखिये कि अगरचे क़ुरान मजीद साइंस की किताब नहीं है, लेकिन जिन साइंसी हक़ाइक़ या साइंसी मज़ाहिर (phenomena) का क़ुरान ने हवाला

दिया है वह यक़ीनन हक़ हैं, चाहे ता-हाल हम उनकी हक़्क़ानियत को ना समझ पाये हों। मसलन आज भी मुझे नहीं मालूम कि क़ुरान जो "सात आसमान" कहता है तो इनसे क्या मुराद है। लेकिन मुझे यक़ीन है कि एक वक़्त आयेगा जब इंसान समझेगा कि "सात आसमान" के यह अल्फ़ाज़ ठीक-ठीक उस हक़ीक़त पर मुन्तबिक़ होते हैं जो आज हमारे इल्म में आयी है, पहले नहीं आयी थी। अलबत्ता जैसा कि मैं अर्ज़ कर चुका हूँ, अमली ऐतबार से यह नुक़्ता बहुत अहम है कि क़ुरान साइंस या टेक्नोलॉजी की किताब नहीं है और इसके हवाले से एक बड़ा मन्तक़ी नतीजा यह निकलता है कि अगर हमारे अस्लाफ़ ने अपने दौर की मालूमात की सतह पर क़ुरान की इन आयात का कोई ख़ास मफ़हूम मुअय्यन किया तो हमारे लिये लाज़िम नहीं है कि हम उसकी पैरवी करें। हम क़ुरान में बयानकरदा साइंसी मज़ाहिर को उस साइंसी तरक़्क़ी के हवाले से समझेंगे जो रोज़ ब रोज़ हो रही है। यहाँ तक कि आखिरी बात अर्ज़ कर रहा हूँ कि इस मामले में ख़ुद मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ से भी अगर कोई बात मन्क़ूल हो तो वह भी क़तई नहीं समझी जायेगी, क्योंकि हुज़ूर ﷺ यह चीज़ें सिखाने के लिये नहीं आये थे। यह बात अग़रचे बहुत से लोगों पर सक़ील और ग़िराँ गुज़रेगी लेकिन सही तर्ज़े अमल यही होगा कि साइंस और टेक्नोलॉजी के ज़िमन में अगर हुज़ूर ﷺ की कोई हदीस भी सामने आ जाये तो उसको भी हम दलीले क़तई नहीं समझेगें।

इस सिलसिले में ताबीरे नख़ल का वाक़्या बहुत अहम है। आपको मालूम है कि हुज़ूर ﷺ की पैदाइश मक्के की है,

हिजरत तक सारी ज़िन्दगी आपने वहाँ गुज़ारी, वह वादी-ए-ग़ैर ज़िज़रा है, जहाँ कोई पैदावार, कोई ज़राअत, कोई काश्त होती ही नहीं थी, लिहाज़ा आप ﷺ को उसका कोई तजुर्बा सिरे से था ही नहीं। हाँ तिजारत का भरपूर तजुर्बा था और उसके तमाम असरारो रमूज़ से आप ﷺ वाक़िफ़ थे। आप ﷺ मदीना तशरीफ़ लाये तो आप ﷺ ने देखा कि खजूरों के सिलसिले में अंसारे मदीना "ताबीरे नख़ल" का मामला करते थे। खजूर एक ऐसा पौधा है जिसके नर और मादा फूल अलैहदा-अलैहदा होते हैं। अगर इसके नर और मादा फूलों को क़रीब ले आयें तो इसके बारआवर (उपजाऊ) होने का इम्कान ज़्यादा हो जाता है। अहले मदीना को यह बात तजुर्बे से मालूम हुई थी और वह इस पर अमल पैरा (पालन करते) थे। मदीना तशरीफ़ आवरी पर रसूल अल्लाह ﷺ ने जब अहले मदीना का यह मामूल देखा तो उनसे फ़रमाया कि अगर आप लोग ऐसा ना करें तो क्या है? ऐसा ना करना शायद तुम्हारे हक़ में बेहतर हो। यह बात आप ﷺ ने अपने इज्तहाद और फ़हम के मुताबिक़ इस बुनियाद पर फ़रमायी कि फ़ितरत अपनी देखभाल ख़ुद करती है। अल्लाह तआला ने फ़ितरत का निज़ाम इंसानों पर नहीं छोड़ा, बल्कि यह तो ख़ुदकार निज़ाम है। चुनाँचे आप ﷺ ने फ़रमाया कि आप लोग इस क़ुदरती निज़ाम में दख़ल ना दें तो क्या है? अलबत्ता आप ﷺ ने रोका नहीं। लेकिन ज़ाहिर बात है कि सहाबा कराम रिज़वान अल्लाहु तआला अलैहिम अज्मईन के लिये हुज़ूर ﷺ का इतना कहना भी गोया हुक्म के दर्जे में था। उन्होंने उस साल वह काम नहीं किया, लेकिन फ़सल कम हो गई।

अब वह ड़रते-डरते, झिझकते-झिझकते हुज़ूर ﷺ की ख़िदमत में आये और अर्ज़ किया कि हुज़ूर! हमने इस मर्तबा ताबीरे नख़ल नहीं की है तो फ़सल कम हुई है। इस पर आप ﷺ ने फ़रमाया: ((اَنْتُمْ اَعْلَمُ بِاَمْرِ دُنْيَاكُمْ))(1) इस हदीस का एक-एक लफ़्ज़ याद कर लीजिये। आप ﷺ ने फ़रमाया कि यह जो तुम्हारे अपने दुनयवी और माद्दी मामलें हैं जिनकी बुनियाद तजुर्बे पर है, यह तुम मुझसे बेहतर जानते हो। तुम ज़्यादा तजुर्बेकार हो, तुम इन हक़ीक़तों से ज़्यादा वाक़िफ हो। एक दूसरी रिवायत में रसूल ﷺ के यह अल्फ़ाज़ नक़ल हुए हैं:

اِنَّمَا اَنَا بَشَرٌ، اِذَا اَمَرْتُكُمْ بِشَیْءٍ مِّنْ دِيْنِكُمْ فَخُذُوْا بِهٖ، وَاِذَا اَمَرْتُكُمْ بِشَیْءٍ مِنْ رَأْيِيْ فَاِنَّمَا بَشَرٌ (2)

"मैं तो एक बशर हूँ। जब मैं तुम्हें तुम्हारे दीन के बारे में कोई हुक्म दूँ तो उससे सरताबी ना करना, लेकिन जब मैं तुम्हें अपनी राय से कोई हुक्म दूँ तो जान लो कि मैं एक बशर ही हूँ।"

गोया आप ﷺ ने वाज़ेह फ़रमा दिया कि मैं यह चीज़ें सिखाने नहीं आया, मैं जो कुछ सिखाने आया हूँ वह मुझसे लो! इस ऐतबार से यह हदीस बुनियादी अहमियत रखती है। ज़ाहिर है आप ﷺ टेक्नोलॉजी सिखाने नहीं आये थे। आप ﷺ तिब्ब व जराहत सिखाने नहीं आये थे, आप ﷺ कोई और साइंस पढ़ाने नहीं आये थे। वरना तो हम शिकवा करते कि आप ﷺ ने हमें एटम बम बनाना क्यों नहीं सिखा दिया? जब रसूल अल्लाह ﷺ ने यह फ़रमा दिया कि ((اَنْتُمْ اَعْلَمُ بِاَمْرِ دُنْيَاكُمْ)) तो हमारे लिये यह

बात आख़िरी दर्जे में सनद है कि जैसे-जैसे साइंसी इन्कशाफ़ात (खुलासे) हो रहे हैं, जैसे-जैसे इल्मे इंसानी की exploration हो रही है, वैसे-वैसे हक़ीक़ते फ़ितरत हमारी निगाहों के सामने मुन्कशिफ़ हो रहे हैं। जैसे आम की गुठली से आम का पूरा दरख़्त वजूद में आता है ऐसे ही हज़रत आदम अलै० के वजूद में इल्म बिल् हवास और इल्म बिल अक़्ल का जो mechanism रख दिया गया था, यह उसी का नतीजा है कि इल्म फैल रहा है। इससे जो भी चीज़ें हमारे सामने आईं उनमें कहीं रुकावट नहीं है कि हम सलफ़ की बात को लेकर बैठ जाएँ कि साइंस ख़्वाह कुछ भी कहे हम तो असलाफ़ की बात मानेगें। यहाँ पर इस तर्ज़े अमल के लिये कोई दलील और बुनियाद नहीं।

क़ुरान का असल मौज़ू ईमान है। मा वराउल तबीयाती हक़ाइक़ (Beyond Physical Facts) आलमे ग़ैब से मुताल्लिक़ हैं, जो हमारे आलमे महसुसात (feelings) से मा वरा (beyond) हैं, जिसकी ख़बरें हमें सिर्फ़ वही से मिल सकती हैं। इल्मे हक़ीक़त जिसे हम इज्माली तौर पर ईमान कहते हैं यह क़ुरान का असल मौज़ू है, यानि हिदायते फ़िक्री व अमली। तमद्दुनी मैदान में, मआशी व इक़्तसादी और मआशरती मैदान में यह करो और यह ना करो। यह चीज़ें खाने-पीने की हैं, यह चीज़ें खाने-पीने की नहीं हैं। यह हराम हैं, यह नजिस हैं। यह इल्म हुज़ूर ﷺ ने दिया है और क़ुरान का मौज़ू असल में यही है। अलबत्ता क़ुरान में जो साइंसी रेफरेन्सेस आये हैं, वह ग़लत नहीं हैं, वह लाज़िमन दुरुस्त हैं।

इंसानी इल्म के तीन दायरे हैं। एक इल्म बिल् हवास है, यह इंसानी इल्म का पहला दायरा है। हवास के ज़रिये हमें मालूमात हासिल होती हैं, जिन्हें आज-कल हम sense data कहते हैं। आँख ने देखा, कान ने सुना, हाथ ने उसकी पैमाइश की। इसके बाद दूसरा दायरा इल्म बिल अक़्ल है। अक़्ल sense data को प्रोसेस करती है। इस ज़िमन में इस्तदलाल और इस्तनबात के उसूल मुअय्यन किये गये हैं। इंसान अपने हवासे ख़म्सा (five senses) के ज़रिये इल्म हासिल करता है, फिर अक़्ल इन मालूमात को process करती है तो इंसान किसी नतीजे पर पहुँचता है। यूँ अक़्ल हवास की मोहताज हुई, लेकिन अक़्ल व हवास के मा वरा (के ऊपर) भी एक इल्म है जिसे शाह इस्माईल शहीद रहि० ने इल्म बिल् क़ल्ब का नाम दिया है। आज इसे extra sensory perceptions कहा जा रहा है। यह इल्म का तीसरा दायरा है। इससे पहले अदब में इसके लिये वज्दान (intuition) का लफ़्ज़ था। यह इल्म बिल् क़ल्ब दरहक़ीक़त वह ख़ास इंसानी इल्म है जिससे आज के माद्दा परस्त वाक़िफ़ नहीं हैं। वही का ताल्लुक़ इसी तीसरे दायरे से है। इसलिये कि वही का नुज़ूल क़ल्ब पर होता है। अज़रुए अल्फ़ाज़ क़ुरानी: (अल् शौरा:193-194)

نَزَلَ بِهِ الرُّوْحُ الْاَمِيْنُ ﴿١٩٣﴾ عَلٰى قَلْبِكَ لِتَكُوْنَ مِنَ الْمُنْذِرِيْنَ ﴿١٩٤﴾

अक़्ल और हवास से हासिल होने वाले उलूम (अध्ययन) में तमाम फ़िज़िकल साइंस, मेडिकल साइंस और टेक्नोलॉजी के मज़ामीन (articles) शामिल हैं। इंसान के मुख़्तलिफ़

चीज़ो के ख़वास (गुण) मालूम किये, कुछ तबीई (भौतिक) और किमियाई (रासायनिक) तब्दीलियों के उसूल दरयाफ़्त (खोज) किये। फिर उन उसूलों से जो मालूमात हासिल हुईं उनको इस्तेमाल किया। इससे इंसान की टेक्नोलॉजी तरक़्क़ी करती जा रही है और अभी ना मालूम कहाँ तक पहुँचेगी। यह एक इल्म है जिसका ज़िक्र क़ुरान हकीम में {وَعَلَّمَ اٰدَمَ الْاَسْمَاۗءَ كُلَّهَا} के अल्फ़ाज़ में कर दिया गया। अलबत्ता इंसान सिर्फ़ इस इल्म पर क़ानेअ (काफी/पर्याप्त) नहीं रहा, इसलिये कि इससे तो सिर्फ़ जुज़वी (partly) इल्म हसिल होता है, इंसान एक-एक जज़्व (ingredients) क़दम-ब-क़दम सीखता है। इंसान की एक तलब (urge) है कि वह माहियत (nature) मालूम करना चाहता है कि कायनात की हक़ीक़त क्या है? मेरी हक़ीक़त क्या है? इल्म की हक़ीक़त, ख़ैर (अच्छे) व शर (बुरे) की हक़ीक़त क्या है? ज़ाहिर बात है कि आज से एक हज़ार साल पहले के इंसान की मालूमात (इल्म बिल् हवास और इल्म बिल् अक़्ल के ऐतबार से) बड़ी महदूद थीं, लेकिन उस वक़्त के इंसान को भी इस चीज़ की ज़रुरत थी कि वह कोई राय क़ायम करे कि यह कायनात जिसका मैं एक फ़र्द हूँ, उसकी हक़ीक़त क्या है, ख़ुद मेरी हक़ीक़त क्या है? मेरी ज़िन्दगी का आग़ाज़ क्या है? मेरा इसके साथ रब्त (link) व ताल्लुक़ क्या है? इस सफ़र की मंज़िल क्या है? मैं अपनी ज़िन्दगी में क्या करूँ, क्या ना करूँ? क्या करना सही है क्या करना ग़लत है? यह इंसान की ज़रुरत है। लिहाज़ा इस ज़रुरत के तहत जब इंसान ने सोचना शुरू किया तो फ़लसफ़े का आग़ाज़ हुआ जो गुत्थियों को सुलझाना चाहता है। इन गुत्थियों को सुलझाने के लिये फिर

इंसान ने अक़्ल के घोड़े दौड़ाये, अपनी मन्तिक़ (तर्क) को इस्तेमाल किया। फ़लसफ़ा, मा बाद अल् तबीअ'यात, इलाहियात, अख्लाक़ियात और नफ्सियात, यह तमाम उलूम (studies) इंसानी उलूम (studies) में से हैं। गोया कि इल्म बिल् हवास और इल्म बिल् अक़्ल के नतीजे में यह दो इल्म वजूद में आये। एक फ़िज़िकल साइंस का इल्म जिसका ताल्लुक़ टेक्नोलॉजी से है। दूसरा सोशल साइंस का इल्म जिसमें फिलोसफी, सोशियोलॉजी, नफ़्सियात, अख्लाक़ियात, इक़्तसादयात (economics) और सियासियात वगैरह शामिल हैं।

जान लीजिये कि هُدًى जिसकी तकमीली शक्ल "اَلْهُدٰی" क़ुरान मजीद है, उसका मौज़ू इंसानी इल्म का दायरा-ए-अव्वल नहीं है। यह साइंस की किताब नहीं है और ना ही साइंस पढ़ाने या टेक्नोलॉजी सिखाने आई है। अम्बिया इसलिये नहीं भेजे गये। अग़रचे क़ुरान मजीद में साइंसी मज़ाहिर (घटनाओं) की तरफ़ हवाले मौजूद हैं और वह लाज़िमन दुरुस्त हैं, लेकिन वह क़ुरान का असल मौज़ू नहीं है। जैसे-जैसे इंसान के साइंसी इल्म में तदरीजन तरक़्की हो रही है इसी तरह इन रेफरेन्सेस को समझना भी इंसान के लिये मुमकिन हो रहा है। अलबत्ता क़ुरान का असल मौज़ू मा बाद अल् तबीअ'यात है। फिर फ़िक्र व अमल दोनों के लिये रहनुमाई दरकार है, जैसे कि किसी रास्ते पर चलने वाले "रोड साइंज़" की ज़रुरत होती है कि इधर ना जाना, इधर ख़तरा है, हलाकत है। इसी तरह इंसान को सफ़रे हयात में इन cautions की ज़रूरत है कि इधर ख़तरा है, यह तुम्हारे लिये मम्नूअ (मना) है, यह हराम है, यह

नुकसानदेह है, इसमें हलाकत है, चाहे तुम्हें हलाकत नज़र नहीं आ रही लेकिन तुम उधर जाओगे तो तुम्हारे लिये हलाकत है। दरहक़ीक़त यह क़ुरान का असल मौज़ू है।

❀ ❀ ❀

बाब शशम (छठा)

फ़हम-ए-क़ुरान के उसूल
(क़ुरान को समझने के सिद्धान्त)

फ़हम-ए-क़ुरआन के सिलसिले में दर्ज ज़ेल (निम्नलिखित) उन्वानात (शीर्षक) की तफ़हीम (समझ) ज़रूरी है।

1) क़ुरान करीम का अस्लूबे इस्तदलाल (तर्क का अंदाज़)

क़ुरान के तालिबे इल्म को जानना चाहिये कि क़ुरान का अस्लूबे इस्तदलाल मन्तक़ी (logical) नहीं, फ़ितरी (naturally) है। इंसान जिस फ़लसफ़े से वाक़िफ़ है उसकी बुनियाद मन्तिक़ है। चुनाँचे हमारे फ़लासफ़ा (दार्शनिक) और मुतकल्लिमीन (धर्मविज्ञानी) इस्तख़राजी मन्तिक़ (Deductive Logic) से ऐतना (उपेक्षा) करते रहे हैं, जबकि क़ुरआन मजीद ने इसे सिरे से इख़्तियार नहीं किया। वक़्ती तक़ाज़े के तहत हमारे मुतकल्लिमीन ने इसे इख़्तियार करने की कोशिश की लेकिन इससे कोई ज़्यादा फ़ायदा नहीं पहुँच पाया। ईमानी हक़ाइक़ को जब इस्तख़राजी मन्तिक़ के ज़रिये से साबित करने की कोशिश की गई तो यक़ीन कम और शक ज़्यादा पैदा हुआ। इस ज़िमन में केंट की बात हर्फ़े आख़िर का दर्जा रखती है, लिहाज़ा अल्लामा इक़बाल ने भी अपने ख़ुत्बात का आग़ाज़ इसी हवाले से किया है। केंट ने

हत्मी (अंतिम) तौर पर साबित कर दिया कि किसी मन्तक़ी दलील से ख़ुदा का वजूद साबित नहीं किया जा सकता। मन्तिक़ में अल्लाह की हस्ती के अस्बात (यक़ीन) के लिये एक दलील लायेंगे तो मन्तिक़ की दूसरी दलील उसे काट देगी। जैसे लोहा लोहे को काटता है इसी तरह मन्तिक़, मन्तिक़ को काट देगी। क़ुरआन अग़रचे कहीं-कहीं मन्तिक़ को इस्तेमाल तो किया है लेकिन वह भी मन्तक़ी इस्तलाहात (वाक्यांश) में नहीं। क़ुरआन मजीद का अस्लूबे इस्तदलाल फ़ितरी है और इसका अंदाज़ ख़िताबी है। जैसे एक ख़तीब जब ख़ुत्बा देता है तो जहाँ वह अक़ली दलीलें देता है वहाँ जज़्बात से भी अपील करता है। इससे उसके ख़ुत्बे में गहराई व गैराई (प्रभाव) पैदा होती है। एक लेक्चर में ज़्यादातर दारोमदार मन्तिक़ पर होता है। यानि ऐसी दलील जो अक़्ल को क़ायल कर सके। लेकिन शौला बयान ख़तीब इंसान के जज़्बात को अपील करता है। इसको ख़िताबी दलील कहा जाता है। यही ख़िताबी अंदाज़ और इस्तदलाल क़ुरआन ने इस्तेमाल किया है।

इंसान की फ़ितरत में कुछ हक़ीक़तें मौजूद हैं। क़ुरान के पेशे नज़र इन हक़ीक़तों को उभारना मक़सूद है। यानि इंसान को अमादा किया जाए कि:

"अपने मन में डूब कर पा जा सुराग़े ज़िन्दगी!"

अक़्ल और मन्तिक़ का दायरा तो बड़ा महदूद है। इंसान अपने अंदर झाँके तो उसके अंदर सिर्फ़ अक़्ल ही नहीं है, कुछ और भी है। बक़ौल अल्लामा इक़बाल:

है ज़ौक़े तजल्ली भी इसी ख़ाक में पिन्हाँ
ग़ाफ़िल! तो नरा साहब अदराक नहीं है!

यह जो इसके अंदर "कोई और" शय भी है, उसे अपील करना ज़रूरी है ताकि इंसान फ़ितरत की बुनियाद पर अपने अंदर झाँके और महसूस करे कि हाँ यह है! ताहम उसके लिये कोई मन्तक़ी दलील भी पेश कर दी जाये। तो यह नूरुन अला नूर (सोने पे सुहागा) होगा। यह है दरहक़ीक़त क़ुरआन का फ़ितरी तर्ज़े इस्तदलाल। बाज़ मक़ामात पर ऐसे मालूम होता है कि जैसे क़ुरआन अपने मुख़ातिब की आँखों में आँखें डाल कर कुछ कह रहा है और उसे तवज्जोह दिला रहा है कि ज़रा ग़ौर करो, सोचो, अपने अंदर झाँको। जैसे सूरह इब्राहिम की आयत 10 में फ़रमाया गया:

اَفِی اللّٰہِ شَکٌّ فَاطِرِ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ؕ

"क्या अल्लाह की हस्ती में कोई शक है जो आसमानों और ज़मीन को पैदा करने वाला है?"

यहाँ कोई मन्तक़ी दलील नहीं है, लेकिन मुख़ातिब को दरूँ बीनी पर आमादा किया जा रहा है कि अपने अन्दर झाँको, तुम्हें अपने अंदर सुबूत मिलेगा, तुम्हें अपने अन्दर अल्लाह की हस्ती की शहादत मिलेगी। सूरतुल अनाम की आयत 19 में इर्शाद हुआ:

اَئِنَّکُمْ لَتَشْھَدُوْنَ اَنَّ مَعَ اللّٰہِ اٰلِھَۃً اُخْرٰی ؕ

"क्या तुम वाक़ई इस बात की गवाही दे रहे हो कि अल्लाह के सिवा कोई और इलाह भी है?"

यानि तुम यह बात कह तो रहे हो, लेकिन ज़रा सोचो तो सही क्या कह रहे हो? क्या तुम्हारी फ़ितरत इसे तस्लीम करती है? अपने बातिन में झाँको, क्या तुम्हारा दिल इसकी

गवाही देता है? हालाँकि ज़ाहिर है कि वह तो इसके मुद्दई थे और अपने माअबुदाने बातिल के लिये कट मरने को तैयार थे। इस ख़िताबी दलील के पसमंज़र में यह हक़ीक़त मौजूद है कि तुम जानते हो कि यह महज़ एक अक़ीदा (dogma) है जो चला आ रहा है, तुम्हारे बाप-दादा की रिवायत है, इसकी हैसियत तुम्हारे नस्ली ऐतक़ादात (racial creed) की है। क़ुरआन मजीद दरहक़ीक़त इंसान की फ़ितरत के अंदर जो शय मुज़मर (फँसी) है उसी को उभार कर बाहर लाना चाहता है। चुनाँचे क़ुरआन का अस्लूबे इस्तदलाल मन्तक़ी नहीं है, बल्कि फ़ितरी है। इसको ख़िताबी अंदाज़ कहा जायेगा।

2) क़ुरान हकीम में मुहक्कम और मुताशाबेह की तक़सीम

सूरह आले इमरान की आयत 7 मुलाहिज़ा कीजिये! इर्शाद हुआ है:

هُوَ الَّذِيْٓ اَنْزَلَ عَلَيْكَ الْكِتٰبَ مِنْهُ اٰيٰتٌ مُّحْكَمٰتٌ هُنَّ اُمُّ الْكِتٰبِ وَاُخَرُ مُتَشٰبِهٰتٌ ۭ

“वही है (अल्लाह) जिसने (ऐ मुहम्मद ﷺ) आप पर किताब नाज़िल की, उसमें से कुछ आयाते मुहक्कमात हैं, वही किताब की जड़ बुनियाद हैं और दूसरी मुतशाबेह हैं।”

इस आयत में लफ़्ज़ किताब दो दफ़ा आया है, दोनों के मफ़हूम में बारीक सा फ़र्क है। मुताशाबेह इन मायने में कि असल मफ़हूम को समझने में इश्तबाह (गलती) हो जाता है, वह आयाते मुताशाबिहात हैं। आगे फ़रमाया:

فَاَمَّا الَّذِيْنَ فِيْ قُلُوْبِهِمْ زَيْغٌ فَيَتَّبِعُوْنَ مَا تَشَابَهَ مِنْهُ ابْتِغَاۗءَ الْفِتْنَةِ وَابْتِغَاۗءَ تَاْوِيْلِهٖ ۚ

"तो वह लोग जिनके दिलों में कजी है वह मुतशाबेह आयात के पीछे पड़ जाते हैं (उन्हीं पर गौरो फ़िक्र और उन्हीं में खोज कुरेद में लगे रहते हैं) उनकी नीयत ही फ़ितना उठाने की है, और वह भी हैं जो उसका असल मफ़हूम जानना चाहते हैं।"

وَمَا يَعْلَمُ تَاْوِيْلَهٗٓ اِلَّا اللّٰهُ ۘ

"हालाँकि उसके हक़ीक़ी मायने व मुराद अल्लाह ही जानता है।"

وَالرّٰسِخُوْنَ فِي الْعِلْمِ يَقُوْلُوْنَ اٰمَنَّا بِهٖ ۙ كُلٌّ مِّنْ عِنْدِ رَبِّنَا ۚ

"अलबत्ता जो लोग इल्म में पुख्तगी के हामिल हैं वह कहते हैं कि हम ईमान रखते हैं इस पूरी किताब पर (मुहक्कमात पर भी और मुतशाबेहात पर भी), यह सब हमारे रब की तरफ़ से है।"

وَمَا يَذَّكَّرُ اِلَّآ اُولُوا الْاَلْبَابِ

"लेकिन नसीहत नहीं हासिल करते मगर वही जो होशमन्द हैं।"

अल्लाह तआला हमें उन अक़्लमन्दों और होशमन्दों में शामिल करे, رَاسِخُوْنَ فِی الْعِلْمِ में हमारा शुमार हो!

मुहक्कम और मुतशाबेह से मुराद क्या है? जान लीजिये कि "मुहक्कम क़तई" यानि वह मुहक्कम जिनके क़तई होने में ना पहले कोई शुबह हो सकता था ना अब है, ना आइंदा होगा, वह तो क़ुरआन हकीम के अवामिर व नवाही (Do's and Donts) हैं। यानि यह करो, यह ना करो, यह हलाल है, यह हराम है, यह जायज़ है, यह नाजायज़ है, यह पसंदीदा है, यह नापसंदीदा है, यह अल्लाह को पसंद और यह अल्लाह को नापसंद है!

क़ुरान हकीम का अमली हिस्सा दरहक़ीक़त मुहक्कमात ही पर मुश्तमिल है। यही वजह है कि इस आयत में किताब का लफ़्ज़ दो मर्तबा आया है। पहले बहैसियत मज्मुई पूरे क़ुरान के लिये फ़रमाया: {هُوَ الَّذِيْٓ اَنْزَلَ عَلَيْكَ الْكِتٰبَ} क़ुरआन मजीद का जो हिस्सा अमली हिदायतों पर मुश्तमिल है उसके लिये भी लफ़्ज़ "किताब" मख्सूस है। चुनाँचे दूसरी मर्तबा जो लफ़्ज़ किताब आया है: {هُنَّ اُمُّ الْكِتٰبِ} वह इसी मफ़हूम में है। जहाँ कोई शय वाजिब की जाती है वहाँ "كُتِبَ" का लफ़्ज़ आता है। जैसे {كُتِبَ عَلَيْكُمْ} {كُتِبَ عَلَيْكُمُ الصِّيَامُ} {عَلَيْكُمُ الْقِتَالُ إِذَا حَضَرَ اَحَدَكُمُ الْمَوْتُ} नमाज़ के बारे में सूरह निसा (आयत:103) में फ़रमाया: {اِنَّ الصَّلٰوةَ كَانَتْ عَلَى الْمُؤْمِنِيْنَ كِتٰبًا مَّوْقُوْتًا} यहाँ किताब से मुराद वह हुक्म है जो दिया

गया है, तो इन मायने में {هُنَّ اُمُّ الْكِتٰبِ} से मुराद क़ानून, शरीअत, अमली हिदायात, अवामिर व नवाही हैं और असल में वही मुहक्कमात हैं।

दायमी मुतशाबिहात आलमे ग़ैब और उसके ज़िमन में आलम-ए- बरज़ख, आलम-ए-आख़िरत, आलम-ए-अरवाह, मलाइका का आलम और आलम-ए-इमसाल वग़ैरह हैं। यह दरहक़ीक़त वह दायरे हैं जो हमारी निगाहों से ओझल हैं और इसकी हक़ीक़तों को कव्व कमाहक़, इस ज़िन्दगी में समझना महाल और नामुमकिन है। लेकिन इनका एक इल्म दिया जाना ज़रूरी था। मा बाद अल् तबीअ'यात ईमानियात के लिये ज़रूरी है कि इस सबका एक इज्माली ख़ाका सामने हो। हर इंसान ने मरना है, मरने के फ़ौरन बाद आलम-ए-बरज़ख में यह कुछ होना है, बा'अस बाद अल् मौत (मौत के बाद उठना) है, हश्र-नश्र है, हिसाब-किताब है, जन्नत व दोज़ख़ है। इन हक़ीक़तों का इज्माली इल्म मौजूद ना हो तो बुनियादी ज़रुरत के तौर पर इंसान को जो फ़लसफ़ा दरकार है वह उसको फ़राहम नहीं होगा। लेकिन इनकी हक़ीक़तों तक रसाई इस ज़िन्दगी में रहते हुए हमारे लिये मुमकिन नहीं, लिहाज़ा इनका जो इल्म दिया गया है वह आयाते मुतशाबिहात हैं, और वह दाईमन मुतशाबिहात ही रहेंगी। हाँ जब उस आलम में आँख खुलेगी तो असल हक़ीक़त मालूम होगी, यहाँ मालूम नहीं हो सकती।

अलबत्ता मुतशाबिहात का एक दूसरा दायरा है जो तदरीजन मुतशाबिहात से मुहक्कमात की तरफ़ आ रहा है। वह दायरा मज़ाहिर तबीई (Physical Phenomena) से मुताल्लिक़ है। आज से हज़ार साल पहले इसका दायरा बहुत

वसीअ (wide) था, आज यह कुछ महदूद हुआ है, लेकिन अब भी बहुत से हक़ों को हम नहीं जानते। सात आसमानों की हक़ीक़त आज तक हमें मालूम नहीं है। हो सकता है कुछ आगे चल कर हमारा मैटेरियल साइंस का इल्म इस हद तक पहुँच जाये कि मालूम हो कि यह है वह बात जो क़ुरआन ने सात आसमानों से मुताल्लिक़ कही थी, लेकिन इस वक़्त यह हमारे लिये मुतशाबिहात में से है। इसी तरह एक आयत (सूरह यासीन:40)

كُلٌّ فِيْ فَلَكٍ يَّسْبَحُوْنَ ۝۴۰

"हर शय अपने मदार में तैर रही है।"

इसको पहले इंसान नहीं समझ सकता था, लेकिन आज यह हक़ीक़त मुहक्कम होकर सामने आ गई है कि:

"लहु ख़ुर्शीद का टपके अगर ज़र्रे का दिल चीरें!"

अगर आप निज़ामे शम्सी को देखें तो हर चीज़ हरकत में है। कहकशां को देखें तो हर शय हरकत में है। कहकशांऐं एक-दूसरे से दूर भाग रही हैं, फ़ासला बढ़ता चला जा रहा है। एक ज़र्रे (atom) का मुशाहिदा करें तो उसमें इलेक्ट्रोन और प्रोटोन हरकत में हैं। गोया हर शय हरकत में है आज से कुछ अरसा क़ब्ल यह बात मुतशाबिहात में थी, आज वह मुहक्कमात के दायरे में आ गई है। चुनाँचे बहुत सी वह साइंसी हक़ीक़तें जो अभी तक इंसान को मालूम नहीं हैं और उनके हवाले क़ुरआन में हैं, वह आज के ऐतबार से तो मुतशाबिहात में शुमार होंगे लेकिन इंसान का फ़िज़िकल

साइंस का इल्म आगे बढ़ेगा तो वो तदरीजन मुतशाबिहात के दायरे से निकल कर मुहक्कमात के दायरे मे आ जायेंगे।

3) तफ़्सीर और तावील का फ़र्क़

तफ़्सीर और तावील दोनो लफ़्ज़ क़ुरआन मजीद में आये हैं। सूरह आले इमरान की मुतज़क्किर बाला आयत में इर्शाद हुआ है:

وَمَا يَعْلَمُ تَاْوِيْلَهٗٓ اِلَّا اللّٰهُ

“इसकी तावील कोई नहीं जानता मगर अल्लाह।”

तफ़्सीर का लफ़्ज क़ुरआन मजीद में सूरतुल फ़ुरक़ान में आया है:

وَلَا يَاْتُوْنَكَ بِمَثَلٍ اِلَّا جِئْنٰكَ بِالْحَقِّ وَاَحْسَنَ تَفْسِيْرًا ۝۳۳

“और नहीं लाते वह आपके सामने कोई निराली बात मगर हम पहुँचा देते हैं (उसके जवाब में) आपको ठीक बात और बेहतरीन तरीक़े से बात खोल देते हैं।”

यह लफ़्ज़ क़ुरआन में एक ही मर्तबा आया है, जबकि तावील का लफ़्ज़ सत्रह (17) बार आया है। इसके कुछ और मफ़हूम भी हैं और क़ुरआन के अलावा कुछ और चीज़ों पर भी इसका इत्लाक़ (लागू) हुआ है। तफ़्सीर और तावील में फ़र्क क्या है?

तफ़्सीर का मादह “ف س ر” है। यह गोया “सफ़र” की मुन्क़लिब शक़्ल है। सफ़र ब-मायने Journey भी है--- और

इसका मतलब रोशनी भी है, किताब भी है। हुरूफ़ ज़रा आगे-पीछे हो गये हैं, लफ़्ज़ एक ही है। तफ़सीर के मायने हैं किसी शय को खोलना, वाज़ेह कर देना, किसी शय को रोशन कर देना, लेकिन यह ज़्यादातर मुफरादात और अल्फ़ाज़ से मुताल्लिक़ होती है, जबकि तावील बहैसियत मज्मुई कलाम का असल मद्लूल होती है कि इससे मुराद क्या है, इसका असल मक़सूद क्या है, इसकी असल हक़ीक़त क्या है। लिहाज़ा ज़्यादातर यही लफ़्ज़ क़ुरआन के लिये मुस्तमिल है। अग़रचे हमारे यहाँ उर्दूदान लोग ज़्यादातर लफ़्ज़ तफ़्सीर इस्तेमाल करते हैं कि फलाँ आयत की तफ़्सीर, फ़लाँ लफ़्ज़ की तफ़्सीर, लेकिन इसके लिये क़ुरआन की असल इस्तलाह तावील ही है और हदीस में भी यही लफ़्ज़ आया है। हज़रत अब्दुल्लाह बिन अब्बास (रज़ि०) के लिये हुज़ूर ﷺ की दुआ मन्क़ूल है: ((اَللّٰھُمَّ فَقِّهْهُ فِى الدِّيْنِ وَعَلِّمْهُ التَّاوِيْلَ)) यानि ऐ अल्लाह! इस नौजवान को दीन का फ़हम और तफ़क्क़ो अता फ़रमा और तावील का इल्म अता फ़रमा! चुनाँचे कलाम की असल हक़ीक़त, असल मुराद, असल मतलूब, असल मद्लूल को पा लेना ताकि इंसान असल मक़सूद तक पहुँच जाये, इसे तावील कहते हैं।

"जो शय की हक़ीक़त को ना देखे वह नज़र क्या!"

"ا,و,ل" का माद्दा अरबी ज़बान में किसी शय की तरफ़ लौटने के मफ़हूम में आता है। इसी लिये लोग कहते हैं हम फ़लाँ की आल हैं, यानि वह किसी बड़ी शख़्सियत की तरफ़ अपनी निस्बत करते हैं। "आले फ़िरऔन" का मतलब फ़िरऔन की औलाद नहीं है, बल्कि फ़िरऔन वाले

"फ़िरऔनी" है। वह फ़िरऔन की ही इताअत करते थे और उसी को अपना माबूद यानि हाकिम और पेशवा समझते थे। इसी मायने में किसी इबारत को उसके असल मफ़हूम की तरफ़ लौटाना तावील है। तफ़्सीर और तावील के माबैन इस फ़र्क़ को ज़हन में रखना ज़रूरी है।

4) तावील-ए-आम और तावील-ए-ख़ास

क़ुरआन हकीम की किसी एक आयत या चंद आयात के मज्मुए या किसी ख़ास मज़मून जो चंद आयात में मुक्कमल हो रहा है, पर ग़ौर करने में दो मरहले हमेशा पेशे नज़र रहने चाहियें: एक तावीले ख़ास और दूसरा तावीले आम। इस सिलसिले में याद रहे कि क़ुरआन हकीम ज़मान (समय) व मकान के एक ख़ास तनाज़र (Perspective) में नाज़िल हुआ है। इसका ज़माना-ए-नुज़ूल 610 ईस्वी से 632 ईस्वी के अरसे पर मुहीत (शामिल) है और इसके नुज़ूल की जगह सरज़मीं हिजाज़ है। इसका एक ख़ास पसमंज़र है। ज़ाहिर बात है कि अगर उस वक़्त और उस इलाक़े के लोगों के अक़ीदे व नज़रियात और उनकी ज़हनी सतह को मलहूज़ (ध्यान में) ना रखा जाता तो उन तक इब्लाग़ (communication) मुमकिन ही नहीं था। वह तो उम्मी थे (अशिक्षित), पढ़े-लिखे ना थे। अगर उन्हें फ़लसफ़ा पढ़ाना शुरू कर दिया जाता, साइंसी उलूम के बारे में बताया जाता तो यह बातें उनके सरों के ऊपर से गुज़र जातीं। क़ुरआनी आयात तो उनके दिल और दिमाग़ में पैवस्त (attached) हो गई, क्योंकि बराहेरास्त इब्लाग़ (communication) था, कोई barrier मौजूद नहीं था। तो क़ुरआन हकीम का

यह शाने नुज़ूल ज़हन में रखिये। वैसे तो "शाने नुज़ूल" की इस्तलाह (term) किसी ख़ास आयत के लिये इस्तेमाल होती है, लेकिन एक ख़ास time and space complex में क़ुरआन हकीम का एक मज्मुई शाने नुज़ूल है जिसमें यह नाज़िल हुआ। वहाँ के हालात, उस अरसे के वाक़्यात, उन हालात में तदरीजन जो तब्दीली हुई, फिर कौन लोग इसके मुख़ातिब थे, अहले मक्का के अक़ीदे, उनकी रस्में-रीतें, उनके नज़रियात, उनके मुसल्लमात, उनकी दिलचस्पियाँ...... जब क़ुरआन को इस सयाक़ व सबाक़ (context) में रख कर ग़ौर करेंगे तो यह तावीले ख़ास होगी। इसमें आप मज़ीद तफ़्सील में जायेंगे कि फ़लाँ आयत का वाक़्याती पसमंज़र क्या है। यानि क़ुरआन मजीद की किसी आयत या चंद आयात पर ग़ौर करते हुए अव्वलन इसको इसके context में रख कर ग़ौर करना कि जब यह आयात नाज़िल हुईं उस वक़्त लोगों ने इनका मफ़हूम क्या समझा, यह तावीले ख़ास होगी। अलबत्ता क़ुरआन मजीद चूँकि नौए इंसानी की अब्दी (अनन्त) हिदायत के लिये नाज़िल हुआ है, सिर्फ़ ख़ास इलाक़े और ख़ास ज़माने के लोगों के लिये तो नाज़िल नहीं हुआ, लिहाज़ा इसमें अब्दी (अनन्त) हिदायत है, इस ऐतबार से तावीले आम करना होगी।

तावीले आम के ऐतबार से अल्फ़ाज़ पर ग़ौर करेंगे कि अल्फ़ाज़ क्या इस्तेमाल हुए हैं। यह अल्फ़ाज़ जब तरकीबों की शक्ल इख़्तियार करतें हैं तो क्या तरकीबें बनती हैं। फिर आयात का बाहमी रब्त क्या है, सयाक़ व सबाक़ क्या है? यह आयात जिस सूरह में आई उसका अमूद क्या है, उस सूरह का जोड़ा कौनसा है, यह सूरह किस सिलसिला-ए-सूर

का हिस्सा है। फिर वह सूरतें मक्की और मदनी कौनसे ग्रुप में शामिल हैं, उनका मरकज़ी मज़मून क्या है? इस पसमंज़र में एक सयाक़ व सबाक़ मतन (text) का होगा, जिससे हमें तावीले आम मालूम होगी और एक सयाक़ व सबाक़ वाक़्यात का होगा, जिससे हमें उन आयतों की तावीले ख़ास मालूम होगी।

अगर हम क़ुरआन मजीद की मौजूदा तरतीब के ऐतबार से आयतों पर ग़ौर करें तो मालूम होगा कि जिस तरतीब से इस वक़्त क़ुरआन मजीद मौजूद है असल हुज्जत यही है, यही असल तरतीब है, यही लौहे महफ़ूज़ की तरतीब है। तावीले आम के ऐतबार से एक उसूली बात याद रखें: الاعتبار لعموم اللفظ لا لخصوص السبب यानि असल ऐतबार अल्फ़ाज़ के अमूम का होगा ना कि ख़ास शाने नुज़ूल का। देखा जायेगा कि जो अल्फ़ाज़ इस्तेमाल हुए हैं उनका मफ़हूम व मायने, नेज़ मद्लूल क्या है। कलामे अरब से दलाइल लाये जायेंगे कि वह इन्हें किन मायने में इस्तेमाल करते थे। उस लफ़्ज़ के अमूम का ऐतबार होगा ना कि उसके शाने नुज़ूल का। लेकिन इसके यह मायने भी नहीं कि इसे बिल्कुल नज़र अंदाज़ कर दिया जाये। सबसे मुनासिब बात यही होगी कि पहले इसकी तावीले ख़ास पर ग़ौर करें और फिर इसके अब्दी सरचश्मा-ए-हिदायत होने के नाते अमूम पर ग़ौर करें। इस ऐतबार से तावीले ख़ास और तावीले आम के फ़र्क़ को ज़हन में रखें।

5) तज़क्कुर व तदब्बुर

तज़क्कुर व तदब्बुर दोनों अल्फ़ाज़ अलग-अलग तो बहुत जगह आये हैं, सूरह सुआद की आयत 29 में यकजा (एक साथ) आ गये हैं:

كِتٰبٌ اَنْزَلْنٰهُ اِلَيْكَ مُبٰرَكٌ لِّيَدَّبَّرُوْٓا اٰيٰتِهٖ وَلِيَتَذَكَّرَ اُولُوا الْاَلْبَابِ ۝٢٩

"यह एक बड़ी बरकत वाली किताब है जो (ऐ नबी ﷺ) हमने आपकी तरफ़ नाज़िल की है ताकि यह लोग इसकी आयात पर गौर करें और अक़्ल व फ़िक्र रखने वाले इससे सबक़ लें।"

इन दोनों का मतलब क्या है? एक है क़ुरआन मजीद से हिदायत अखज़ कर लेना, नसीहत हासिल कर लेना, असल रहनुमाई हासिल कर लेना, जिसको मौलाना रूम ने कहा: "माज़ क़ुराँ मग़ज़हा बरदा शतीम" यानि क़ुरआन का जो असल मग़ज़ है वह तो हमने ले लिया। इसका असल मग़ज़ "हिदायत" है। इस मरहले पर क़ुरआन जो लफ़्ज़ इस्तेमाल करता है वह "तज़क्कुर" है। यह लफ़्ज़ ज़िक्र से बना है। तज़क्कुर याददेहानी को कहते हैं। अब इसका ताल्लुक़ उसी बात से जुड़ जायेगा जो क़ुरआन के अस्लूबे इस्तदलाल के ज़िमन में पहले बयान की जा चुकी है। यानि क़ुरआन मजीद जिन असल हक़ाइक़ (माबाद अल्तबीअ'यात हक़ीक़तों) की तरफ़ रहनुमाई करता है वह फ़ितरते इंसानी में मुज़मर हैं, उन पर सिर्फ़ ज़हूल और निस्यान (भूलने) के पर्दे पड़ गये हैं। मसलन आपको कोई बात कुछ अरसे पहले मालूम थी, लेकिन अब उसकी तरफ़ ध्यान नहीं रहा और वह आपकी याददाश्त के जख़ीरे में गहरी उतर गई है और अब याद नहीं

आती, लेकिन किसी रोज़ उसकी तरफ़ कोई हल्का सा इशारा मिलते ही आपको वह पूरी बात याद आ जाती है। जैसे आपका कोई दोस्त था, किसी ज़माने मे बेतकल्लुफ़ी थी, सुबह शाम मुलाक़ातें थीं, अब तवील अरसा हो गया,कभी उसकी याद नहीं आयी। ऐसा नहीं कि आपको याद नहीं रहा, बल्कि ज़हूल है, निस्यान है, तवज्जह उधर नहीं है, कभी ज़हन उधर मुन्तक़िल ही नहीं होता। लेकिन अचानक किसी रोज़ आपने अपना ट्रंक खोला और उसमें से कोई क़लम या रुमाल जो उसने कभी दिया हो बरामद हो गया तो फ़ौरन आपको अपना वह दोस्त याद आ जायेगा। यह phenomenon तज़क्कुर है। तज़क्कुर का मतलब तअल्लम नहीं है। तअल्लम इल्म हासिल करना यानि नई बात जानना है, जबकि तज़क्कुर पहले से हासिलशुदा इल्म जिस पर ज़हूल और निस्यान के जो पर्दे पड़ गये थे, उनको हटाकर अंदर से उसे बरामद करना है। फ़ितरते इंसानी के अंदर अल्लाह की मोहब्बत, अल्लाह की मार्फ़त के हक़ाइक़ मुज़मर हैं। यह फ़ितरत में मौज़ूद हैं, सिर्फ़ उन पर पर्दे पड़ गये हैं, दुनिया की मोहब्बत ग़ालिब आ गई है:

दुनियाँ ने तेरी याद से बेगाना कर दिया
तुझसे भी दिलफ़रेब हैं ग़म रोज़गार के! (फ़ैज़)

यहाँ की दिलचस्पियों, मसाइल, मुश्किलात, मशरूफियात, मशागुल की वजह से ज़हूल हो गया है, पर्दा पड़ गया है। तज़क्कुर यह है कि इस पर्दे को हटा दिया जाये।

सरकशी ने कर दिये धुंधले नक़ूशे बन्दगी
आओ सज्दे में गिरें, लौहे जबीं ताज़ा करें! (हफ़ीज़)

याददाश्त को recall करना और अपनी फ़ितरत में मुज़मर हक़ाइक़ को उजाग़र कर लेना तज़क्कुर है। क़ुरआन का असल हदफ़ यही है और इस ऐतबार से क़ुरआन का दावा सूरह अल् क़मर में चार मर्तबा आया है:

وَلَقَدۡ يَسَّرۡنَا الۡقُرۡاٰنَ لِلذِّكۡرِ فَهَلۡ مِنۡ مُّدَّكِرٍ ﴿۳۲﴾

"हमने क़ुरान को तज़क्कुर के लिये बहुत आसान बना दिया है, तो कोई है नसीहत हासिल करने वाला?"

इसके लिये बहुत ग़हराई में गोताज़नी करने की ज़रुरत नहीं है, बहुत मशक्क़त व मेहनत मतलूब नहीं है। इंसान के अंदर तलब-ए-हक़ीक़त हो और क़ुरआन से बराहेरास्त राब्ता (communication) हो जाये तो तज़क्कुर हासिल हो जायेगा। इसकी शर्त सिर्फ़ एक है और वह यह कि इंसान को इतनी अरबी ज़रूर आती हो कि वह क़ुरआन से हम कलाम हो जाये। अगर आप तर्जुमा देखेंगे तो कुछ मालूमात तो हासिल होगी, तज़क्कुर नहीं होगा। इक़बाल ने कहा था:

तेरे ज़मीर पर जब तक ना हो नुज़ूले किताब
ग़िरह कशा है ना राज़ी ना साहिबे कशाफ़!

तज़क्कुर के अमल का असर तो यह है कि आपके अंदर के मुज़मर हक़ाइक़ उभर कर आपके शऊर की सतह पर दोबारा आ जायें। यह ना हो कि पहले आपने मतन को पढ़ा, फिर तर्जुमा देखा, हाशिया देखा, इसके बाद अगली आयत की तरफ़ गये तो तसलसुल टूट गया और कलाम की तासीर ख़त्म हो गई। तर्जुमे से कलाम की असल तासीर बाक़ी नहीं रहती। शेक्सपियर की कोई इबारत अगर आप अँग्रेज़ी में

पढ़ेंगे तो झूम जायेंगे, अगर उसका तर्जुमा करेंगे तो उसका वह असर नहीं होगा। इसी तरह ग़ालिब का शेर हो या मीर का, उसका अँग्रेज़ी में तर्जुमा करेंगे तो वह असर बाक़ी नहीं रहेगा और आप वजद में नहीं आयेंगे, झूम-झूम नहीं जायेंगे। अरबी ज़बान का इतना इल्म कि आप अरबी मतन को बराहेरास्त समझ सकें, तज़क्कुर की बुनियादी शर्त है। चुनाँचे अव्वलन (पहला) हुस्ने नीयत हो, तलबे हिदायत हो, तास्सुब की पट्टी ना बंधी हो, और सानयन (दूसरे) अरबी ज़बान का इतना इल्म हो कि आप बराहेरास्त उससे हम कलाम हो रहे हों, यह दोनों शर्तें पूरी हो जायें तो तज़क्कुर हो जायेगा।

दोबारा ज़हन में ताज़ा कर लीजिये कि आयत का मतलब निशानी है। निशानी उसे कहते हैं जिसको देख कर ज़हन किसी और शय की तरफ़ मुन्तक़िल हो जाये। आपने क़लम या रुमाल देखा तो ज़हन दोस्त की तरफ़ मुन्तक़िल हो गया जिससे मिले हुए बहुत अरसा हो गया था और उसका कभी ख़्याल ही नहीं आया था। मौलाना रूम कहते हैं।

ख़ुश्क तार व ख़ुश्क मग़ज़ व ख़ुश्क पोस्त
अज़ कजा मी आयद ईं आवाज़े दोस्त?

हमारा एक अज़ली दोस्त है “अल्लाह” वही हमारा ख़ालिक़ है, हमारा बारी है, हमारा रब है। उसकी दोस्ती पर कुछ पर्दे पड़ गए हैं, उस पर कुछ ज़हूल तारी हो गया है। क़ुरआन उस दोस्त की याद दिलाने के लिये आया है।

इसके बरअक्स तदब्बुर गहराई में गोताज़न होने को कहते हैं। “क़ुरआन में हो गोताज़न ऐ मर्दे मुसलमान!”

तदब्बुर के ऐतबार से क़ुरान हकीम मुश्किलतरीन किताब है। इसकी वजह क्या है? यह कि इसका मिन्बा और सरचश्मा इल्मे इलाही है और इल्मे इलाही ला-मुतनाही (अन्तहीन) है। यह हक़ीक़त है कि कलाम में मुतकल्लिम की सारी सिफ़ात मौजूद होती हैं, लिहाज़ा यह कलाम ला-मुतनाही है। इसको कोई शख़्स ना अबूर कर सकता है ना गहराई में इसकी तह तक पहुँच सकता है। यह नामुमकिन है, चाहे पूरी-पूरी ज़िन्दगियाँ खपा लें। वह चाहे साहिबे कश्शाफ़ हों, साहिबे तफ़्सीर कबीर हों, कसे बाशद। इसका अहाता करना किसी के लिये मुमकिन नहीं। बाज़ लोग ग़ैर महतात अंदाज़ में यह अल्फ़ाज़ इस्तेमाल कर देते हैं कि "उन्हें क़ुरआन पर बड़ा अबूर हासिल है।" यह क़ुरआन के लिये बड़ा तौहीन आमेज़ कलमा है। अबूर एक किनारे से दूसरे किनारे तक पहुँच जाने को कहते हैं। क़ुरआन का तो किनारा ही कोई नहीं है। किसी इंसान के लिये यह मुमकिन नहीं है कि वह क़ुरआन पर अबूर हासिल करे। यह ना मुमकिनात में से है। इसी तरह इसकी गहराई तक पहुँच जाना भी ना मुमकिन है।

इस सिलसिले में एक तम्सील (उदाहरण) से बात किसी क़दर वाज़ेह हो जायेगी। कभी ऐसा भी होता है कि समुन्दर में कोई टेंकर तेल लेकर जा रहा है और किसी वजह से अचानक तेल लीक करने लग जाता है। लेकिन वह तेल सतह समुन्दर के ऊपर ही रहता है, नीचे नहीं जाता। सतह समुन्दर पर ऊपर तेल की तह और नीचे पानी होता है और वह तेल पाँच-दस मील तक फैल जाता है। समुन्दर की अथाह गहराई के बावजूद तेल सतह आब पर ही रहता है।

इसी तरह समझिये कि क़ुरआन मजीद की असल हिदायत और असल तज़क्कुर इसकी सतह पर मौजूद है। इस तक रसाई के लिये साइंसदान या फ़लसफ़ी होना, अरबी अदब (साहित्य) का माहिर होना, कलामे जाहिली का आलिम होना ज़रुरी नहीं। सिर्फ़ दो चीज़ें मौजूद हों। पहली ख़ुलूसे नीयत और तलबे हिदायत, दूसरी क़ुरआन से बराहेरास्त हमकलामी का शर्फ़ और इसकी सलाहियत। यह दोनों हैं तो तज़क्कुर का तक़ाज़ा पूरा हो जायेगा। अलबत्ता तदब्बुर के लिये गहराई में उतरना होगा और इस बहरे ज़ख़्ख़ार में गोताज़नी करना होगी। तदब्बुर का हक़ अदा करने के लिये शेरे जाहिली को भी जानना ज़रूरी है। हर लफ़्ज़ की पहचान ज़रूरी है कि जिस दौर में क़ुरआन नाज़िल हुआ उस ज़माने और उस इलाक़े के लोगों में इस लफ़्ज़ का मफ़हूम क्या था, यह किन मायने में इस्तेमाल हो रहा था? क़ुरआन ने बुनियादी इस्तलाहात वहीं से अख़ज़ की हैं। वही अल्फ़ाज़ जिनको अरब अपने अशआर और ख़ुत्बात के अंदर इस्तेमाल करते थे उन्हीं को क़ुरआन मजीद ने लिया है। चुनाँचे नुज़ूले क़ुरआन के दौर की ज़बान को पहचानना और उसके लिये ज़रूरी महारत का होना तदब्बुर के लिये नाग़ज़ीर (ज़रूरी) है। फिर यह कि अहादीस, इल्मे बयान, मन्तिक़, इन सबको इंसान बतरीक़े तदब्बुर जानेगा तो फिर वह इसका हक़ अदा कर सकेगा।

मौलाना अमीन अहसन इस्लाही साहब ने अपनी तफ़्सीर का नाम ही "तदब्बुरे क़ुरआन" रखा है और वह तदब्बुरे क़ुरआन के बहुत बड़े दाई हैं। इसके लिये उन्होंने अपनी ज़िन्दगी में बहुत मेहनत की है। उनके बाज़ शागिर्द

हज़रात ने भी मेहनतें की हैं और वक़्त लगाया है। इसके उन तक़ाज़ों को तो उन हज़रात ने बयान किया है, लेकिन तदब्बुरे क़ुरआन का एक और तक़ाज़ा भी है जो बदक़िस्मती से उनके सामने भी नहीं आया। अगर वह तक़ाज़ा भी पूरा नहीं होगा तो असरे हाज़िर के तदब्बुर का हक़ अदा नहीं होगा। वह तक़ाज़ा यह है कि इल्मे इंसानी आज जिस लेवल तक पहुँच गया है, मेटेरियल साइंस के मुख़्तलिफ़ उलूम के ज़िमन में जो कुछ मालूमात इंसान को हासिल हो चुकी हैं और वह ख़्यालात व नज़रियात जिनको आज दुनिया में माना जा रहा है उनसे आगाही हासिल की जाये। अगर इनका इज्माली इल्म नहीं है तो इस दौर के तदब्बुरे क़ुरआन का हक़ अदा नहीं किया जा सकता। क़ुरआन हकीम वह किताब है जो हर दौर के उफ़क़ (Horizon) पर ख़ुर्शीदे ताज़ा की मानिन्द तुलूअ होगी। आज से सौ बरस पहले के क़ुरआन और आज के क़ुरआन में इस हवाले से फ़र्क़ होगा। मतन और अल्फ़ाज़ वही हैं, लेकिन आज इल्मे इंसानी की जो सतह है उस पर इस क़ुरआन के फ़हम और इसके इल्म को जिस तरीक़े से जलवागर होना चाहिये अगर आप इसका हक़ अदा कर रहे हैं तो आप सौ बरस पहले का क़ुरआन पढ़ा रहे हैं, आज का क़ुरआन नहीं पढ़ा रहे। जैसे अल्लाह की शान है: {كُلَّ يَوْمٍ هُوَ فِيْ شَاْنٍ} (सूरह रहमान:29) इसी तरह का मामला क़ुरआन हकीम का भी है।

इसी तरह हिदायते अमली के ज़िमन में इक़्तसादयात, समाजियात और नफ़्सियाते इंसानी के सिलसिले में रहनुमाई और हक़ाइक़ क़ुरआन में मौजूद हैं, उन्हें कैसे समझेंगे? क़ुआरन की असल तालीमात की क़द्र व क़ीमत

और उसकी असल evaluation कैसे मुमकिन है अग़र इंसान आज के इक़्तसादी मसाईल को ना जानता हो? इसके बग़ैर वह तदब्बुरे क़ुरआन का हक़ नहीं अदा कर सकता। मसलन आज के इक़्तसादी मसाईल क्या हैं? पेपर करेंसी की हक़ीक़त क्या है? इक़्तसादयात के उसूल व मबादी क्या हैं? बैंकिंग की असल बुनियाद क्या है? किस तरह कुछ लोगों ने इस पूरी नौए इंसानी को मआशी ऐतबार से बेबस किया हुआ है। इस हक़ीक़त को जब तक नहीं समझेंगे तो आज के दौर में क़ुरआन हकीम की इक़्तसादी तालीमात वाज़ेह करने का हक़ अदा नहीं हो सकता।

वाक़या यह है कि आज तदब्बुरे क़ुरआन किसी एक इंसान के बस का रोग ही नहीं रहा, इसके लिये तो एक जमाअत दरकार है। मेरे किताबचे "मुसलमानों पर क़ुरआन मजीद के हुक़ूक़" के बाब "तज़क्कुर व तदब्बुर" में यह तसव्वुर पेश किया गया है कि ऐसी यूनिवर्सिटीज़ क़ायम हों जिनका असल मरकज़ी शौबा (विभाग) "तदब्बुरे क़ुरआन" का हो। जो शख़्स भी इस यूनिवर्सिटी का तालिबे इल्म हो, वह अरबी ज़बान सीखे और क़ुरआन पढ़े। लेकिन इस मरकज़ी शौबे के गिर्द तमाम उलूमे अक़्ली, जैसे मन्तिक़, मा बाद अल् तबीअ'यात, अख़्लाक़ियात, नफ़्सियात और इलाहियात, उलूमे अमरानी (सामाजिक) जैसे मआशियात, सियासियात और क़ानून, और उलूमे तबीई, जैसे रियाज़ी (गणित), कीमिया (रसायन), तबीअ'यात (भौतिक), अरदियात (भूविज्ञान) और फ़ल्कियात (खगोलीय) वग़ैरह के शौबों का एक हिसार (दिवार) क़ायम हो, और हर एक तालिबे इल्म "तदब्बुरे क़ुरआन" की लाज़िमन और एक या

उससे ज़्यादा दूसरे उलूम की अपने ज़ौक़ (समझ) के मुताबिक़ तहसील (study) करे और इस तरह इन शौबा हाए उलूम में क़ुरआन के इल्म व हिदायत को तहक़ीक़ी तौर पर अख़ज़ करके मुअस्सर (प्रभावी) अंदाज़ में पेश कर सके। तालिबे इल्म वह भी पढ़े तब मालूम होगा कि इस शौबे में इंसान आज कहाँ खड़ा है और क़ुरआन क्या कह रहा है। फ़लाँ शौबे में नौए इंसानी के क्या मसाईल हैं और इस ज़िमन में क़ुरआन हकीम क्या कहता है। मुख़्तलिफ़ शौबे मिल कर तदब्बुरे क़ुरआन की ज़रूरत को पूरा कर सकते हैं जो वक़्त का अहम तक़ाज़ा है।

जैसा कि मैंने अर्ज़ किया, तज़क्कुर के ऐतबार से क़ुरआन आसान तरीन किताब है जो हमारी फ़ितरत की पुकार है। “मैंने यह जाना कि गोया यही मेरे दिल में था!” अगर इंसान की फ़ितरत मस्ख़शुदा (विकृत) नहीं है, बल्कि सलीम (ठीक) है, सालेह है, सलामती पर क़ायम है तो वह क़ुरआन को अपने दिल की पुकार महसूस करेगा, उसके और क़ुरआन के दरमियान कोई हिजाब ना होगा, वह उसे अपने दिल की बात समझेगा, उसके लिये अरबी ज़बान का सिर्फ़ इतना इल्म काफ़ी है कि बराहेरास्त हमकलाम हो जाये। जबकि तदब्बुर के तक़ाज़े पूरे करने किसी एक इंसान के बस का रोग़ नहीं है। जो शख़्स भी इस मैदान में क़दम रखना चाहे उसके ज़हन में एक इज्माली ख़ाका ज़रूर होना चाहिये कि आज जदीद साइंस के ऐतबार से इंसान कहाँ खड़ा है। जब इंसान को अपने मक़ाम की मारफ़त हासिल हो जाये तो वह क़ुरआन मजीद से बेहतर तौर पर फ़ायदा उठा सकता है। इसकी मिसाल ऐसी है कि समुन्दर में तो बेतहाशा पानी है,

आप अग़र पानी लेना चाहते हैं तो जितना बड़ा कटोरा, कोई देग, देगची या बाल्टी आपके पास है उसी को आप भर लेंगे। यानि जितना आपका ज़र्फ़ (container) होगा उतना ही आप समुन्दर से पानी अख़ज़ कर सकेगें। इसका यह मतलब तो हरगिज़ ना होगा कि समुन्दर में पानी ही इतना है! इंसानी ज़हन का ज़र्फ उलूम से बनता है। यह ज़र्फ़ आज से पहले बहुत तंग था। एक हज़ार साल पहले का ज़र्फ़े ज़हनी बहुत महदूद था। इंसानी उलूम के ऐतबार से आज का ज़र्फ़ बहुत वसीअ है। अगर आज आपको क़ुरआन मजीद से हिदायत हासिल करनी है तो आपको अपना ज़र्फ़ इसके मुताबिक वसीअ करना होगा। और अगर कुछ लोग अभी उसी साबिक़ दौर में रह रहे हैं तो क़ुरआन हकीम के मख़्फ़ी हक़ाइक़ उन पर मुन्कशिफ़ नहीं होंगे।

6) अमली हिदायात और मज़ाहिरे तबीई के बारे में मुतज़ाद तर्ज़े अमल

क़ुरआन हकीम में साइंसी उलूम के जो हवाले आते हैं और उसमें जो अमली हिदायात मिलती हैं, उनके ज़िमन में यह बात पेशेनज़र रहनी चाहिये कि एक ऐतबार से हमें आगे से आगे बढ़ना है और दूसरे ऐतबार से हमें पीछे से पीछे जाना है। चुनाँचे क़ुरआन हकीम पर ग़ौरो फ़िक्र करने वाले का अंदाज़ (attitude) दो ऐतबारात से बिल्कुल मुतज़ाद (opposite) होना चाहिये। साइंसी हवाले जो क़ुरआन में आये हैं उनकी ताबीर करने में आगे से आगे जाइये। आज इंसान को क्या मालूमात हासिल हो चुकी हैं, कौनसे हक़ाइक़ पाये सबूत को पहुँच चुके हैं, उनके हवाले पेशेनज़र रहेंगे।

इसमें पीछे जाने की ज़रूरत नहीं है। इमाम राज़ी और दीगर क़दीम मुफस्सिरीन को देखने की ज़रूरत नहीं है। बल्कि इस ज़िमन में नबी अकरम ﷺ ने भी कुछ फ़रमाया है तो वह भी हमारे लिये लाज़िम नहीं है। इसलिये कि हुज़ूर ﷺ साइंस और टेक्नोलॉजी सिखाने नहीं आये थे। ताबीरे नख़्ल का वाक़या पीछे गुज़र चुका है, इसके ज़िमन में आप ﷺ ने फ़रमाया था: ((دُنْيَاكُمْ بِاَمْرِ اَعْلَمُ اَنْتُمْ)) "अपने दुनियावी मामलात के बारे में तुम मुझसे ज़्यादा जानते हो।" तजुर्बाती उलूम के मुताबिक़ जो तुम्हें इल्म हासिल है उस पर अमल करो। लेकिन दीन का जो अमली पहलू है उसमें पीछे से पीछे जाइये। यहाँ यह दलील नहीं चलेगी कि जदीद दौर के तक़ाज़े कुछ और हैं, जबकि यह देखना होगा कि रसूल ﷺ ने और ﷺ के सहाबा (रज़ि०) ने क्या किया। इस हवाले से क़ुरआन के तालिबे इल्म का रुख़ पीछे की तरफ़ होना चाहिये कि अस्लाफ़ ने क्या समझा। मुताख़रीन को छोड़ कर मुतक़दमीन की तरफ़ जाइये। मुतक़दमीन से तबअ ताबईन, फिर ताबईन से होते हुए "اَصْحَابِيْ وَعَلَيْهِ اَنَا مَا" यानि हुज़ूर ﷺ और सहाबा (रज़ि०) के अमल तक पहुँचिये। इस ऐतबार से इक़बाल का यह शेर सही मुन्तबिक़ होता है।

बमुस्तफ़ा ﷺ बरसाँ ख़्वीश रा कि दीं हमा ऊस्त
अग़र बऊव नरसीदी तमाम बू-लहबी सत!

दीन का अमली पहलू वही है जो अल्लाह के रसूल ﷺ से साबित है। इसमें अग़रचे रिवायात के इख़्तलाफ़ की वजह से कुछ फ़र्क हो जायेगा मगर दलील यही रहेगी: ((صَلُّوْا كَمَا رَاَيْتُمُوْنِيْ اُصَلِّيْ))(1) नमाज़ इस तरह पढ़ो जैसे तुम मुझे

नमाज़ पढ़ते हुए देखते हो।” अब नमाज़ के जुज़यात के बारे में रिवायात में कुछ फ़र्क़ मिलता है। किसी के नज़दीक एक रिवायत क़ाबिले तरजीह है, किसी के नज़दीक दूसरी। इस ऐतबार से जुज़यात में थोड़ा बहुत फ़र्क़ हो जाए तो कोई हर्ज नहीं। अलबत्ता दलील यही रहेगी कि रसूल ﷺ और सहाबा (रज़ि०) का अमल यह था। हुज़ूर अकरम ﷺ का यह फ़रमान भी नोट कर लीजिये: ((فَعَلَيْكُمْ بِسُنَّتِي وَ سُنَّةِ الْخُلَفَاءِ الْمَهْدِيِّيْنَ الرَّاشِدِيْنَ))(2) “तुम पर मेरी सुन्नत इख़्तियार करना लाज़िम है और मेरे ख़ुल्फ़ा-ए-राशिदीन की सुन्नत जो हिदायत याफ़्ता हैं।” चुनाँचे हुज़ूर ﷺ का अमल और ख़ुल्फ़ा-ए-राशिदीन का अमल हमारे लिये लायक़ तक़लीद है। फिर इसी से मुत्तसिल (connecting) वह चीज़ें हैं जिन पर हमारी चौदह सौ बरस की तारीख़ में उम्मत का इज्माअ रहा है। अब दुनिया इस्लामी सजाओं को वहशियाना क़रार देकर हम पर असर अंदाज़ होने की कोशिश कर रही है और हमें बुनियादपरस्त (fundamentalist) की गाली देकर चाहती है कि हमारे अंदर माज़रत ख़्वाहाना रवैया पैदा कर दे, मगर हमारा तर्ज़े अमल यह होना चाहिये कि इन बातों से क़तअन मुतास्सिर हुए बग़ैर दीन के अमली पहलू के बारे में पीछे से पीछे जाते हुए {مُحَمَّدٌ رَّسُوْلُ اللّٰهِ ۭ وَالَّذِيْنَ مَعَهٗٓ} (सूरह फ़तह:1) तक पहुँच जायें!

बदकिस्मती से हमारे आम उल्माओं का हाल यह है कि उन्होंने अरबी उलूम तो पढ़े हैं, अरबी मदरसों से फ़ारिग़ अल् तहसील हैं, मगर वह आगे पढ़ने की सलाहियत से आरी

(मुक्त) हैं। उन्होंने साइंस नहीं पढ़ी, वह जदीद उलूम से वाक़िफ़ नहीं, वह नहीं जानते आइंस्टीन किस बला का नाम है और उस शख़्स के ज़रिये तबीअ'यात के अंदर कितनी बड़ी तब्दीली आ गई है। न्यूटोनियन इरा क्या था और आइंस्टीन का दौर क्या है, उन्हें क्या पता! आज कायनात का तसव्वुर क्या है, एटम की साख़्त क्या है, उन्हें क्या मालूम! एटम तो पुरानी बात हो गई, अब तो इंसान न्यूट्रॉन प्रोटोन से भी कहीं आगे की बारीकियों तक पहुँच चुका है। अब इन चीज़ों को नहीं जानेंगे तो इन हक़ाइक़ को सही तौर पर समझना मुमकिन नहीं होगा। मज़ाहिर तबीई का मामला तो आगे से आगे जा रहा है। इसकी ताबीर जदीद से जदीद होनी चाहिये। अलबत्ता इस ज़िमन मे यह फ़र्क़ ज़रूर मल्हूज़ रहना चाहिये कि एक तो साइंस के मैदान के महज़ नज़रियात (theories) हैं जिन्हें मुसल्लमा हक़ाइक़ का दर्जा हासिल नहीं है, जबकि एक वह चीज़ें हैं तजुर्बाती तौसीक़ (मान्यता) हो चुकी है और उन्हें अब मुसल्लमा हक़ाइक़ का दर्जा हासिल है। इन दोनो में फ़र्क़ करना होगा। ख़्वाहमोंख़्वाह कोई भी नज़रिया सामने आ जाये या कोई मफ़रूज़ा (hypothesis) मंज़रे आम पर आ जाये इस पर क़ुरान को मुन्तबिक़ करने की कोशिश करना सई ला हासिल बल्कि मज़र (ख़तरनाक) शय है। लकिन उसूली तौर पर हमें इन चीज़ों की ताबीर में आगे से आगे बढ़ना है। और जहाँ तक दीन के अमली हिस्से का ताल्लुक़ है जिसे हम शरीअत कहते हैं, यानि अवामिर व नवाही, हलाल व हराम, हुदूद व ताज़िरात वग़ैरह, इन तमाम मामलात में हमें पीछे से पीछे जाना होगा, यहाँ तक की मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ के

क़दमों में अपने आप को पहुँचा दीजिये। इसलिये कि दीन इसी का नाम है। : बमुस्तफ़ा ﷺ बरसाँ ख़्वीश रा कि दीं हमा ऊस्त!

7) फ़हमे क़ुरान के लिये जज़्बा-ए-इन्क़लाब की ज़रूरत

फ़हमे क़ुरआन के लिये बुनियादी उसूल और बुनियादी हिदायात या इशारात के ज़िमन में मौलाना अबुल आला मौदूदी (रहि०) ने यह बात बड़ी ख़ूबसूरती से तफ़्हीमुल क़ुरआन के मुक़दमे में कही है कि क़ुरआन महज़ नज़रियात और ख़्यालात की किताब नहीं है कि आप किसी ड्राइंगरूम में या कुतुबख़ाने में आराम से कुर्सी पर बैठ कर इसे पढ़ें और इसकी सारी बातें समझ जायें। कोई मुहक़्क़िक़ या रिसर्च स्कॉलर डिक्शनरियों और तफ़्सीरों की मदद से इसे समझना चाहे तो नहीं समझ सकेगा। इसलिये कि यह एक दावत और तहरीक की किताब है। मौलाना मरहूम लिखते हैं:

> *“......अब भला यह कैसे मुमकिन है कि आप सिरे से नज़ाए कुफ़्र व दीन और मारका-ए-इस्लाम व जाहिलियत के मैदान में क़दम ही ना रखें और इस कशमकश की किसी मंज़िल से गुज़रने का आपको इत्तेफ़ाक़ ही ना हुआ हो और फिर महज़ क़ुरआन के अल्फ़ाज़ पढ़-पढ़ कर इसकी सारी हक़ीक़तें आपके सामने बेनक़ाब हो जायें! इसे तो पूरी तरह आप उसी वक़्त समझ सकते हैं जब इसे लेकर उठें और दावत*

इलल्लाह का काम शुरू करें और जिस-जिस तरह यह किताब हिदायत देती जाये उसी तरह क़दम उठाते चले जायें.....”

क़ुरान मजीद की बहुत सी बड़ी अहम हक़ीक़तें इसके बग़ैर मुन्कशिफ़ नहीं होगी, इसलिये कि क़ुरआन एक “किताबे इन्क़लाब” (Manual of Revolution) है। इस क़ुरआन ने इंसानी जद्दोजहद के ज़रिये अज़ीम इन्क़लाब बरपा किया है। मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ और आप ﷺ के साथी (रज़ि०) एक हिज़्बुल्लाह थे, एक जमाअत और एक पार्टी थे, उन्होंने दावत और इन्क़लाब के तमाम मराहिल को तय किया और हर मरहले पर उसकी मुनासिबत से हिदायात नाज़िल हुईं। एक मरहला वह भी था कि हुक्म दिया जा रहा था कि मार खाओ लेकिन हाथ मत उठाओ: {كُفُّوْٓا اَيْدِيَكُمْ} (सूरतुन्निसा 77)। फिर एक मरहला वह भी आया कि हुक्म दे दिया गया कि अब आगे बढ़ो और जवाब दो, उन्हें क़त्ल करो। सूरह अन्फ़ाल में इर्शाद हुआ:

وَقَاتِلُوْهُمْ حَتّٰى لَا تَكُوْنَ فِتْنَةٌ وَّيَكُوْنَ الدِّيْنُ كُلُّهٗ لِلّٰهِ ۚ

“और इनसे जंग करते रहो यहाँ तक कि फ़ितना ख़त्म हो जाये और दीन कुल का कुल अल्लाह के लिये हो जाये।” (आयत:39)

सूरह अल् बक़रह में फ़रमाया:

وَاقْتُلُوْهُمْ حَيْثُ ثَقِفْتُمُوْهُمْ وَاَخْرِجُوْهُمْ مِّنْ حَيْثُ اَخْرَجُوْكُمْ

"और उनको क़त्ल कर दो जहाँ कहीं तुम उनको पाओ और उन्हें निकालो जहाँ से उन्होंने तुमको निकाला है।" (आयत:191)

दोनों मराहिल में यक़ीनन फ़र्क़ है, बल्कि बज़ाहिर तज़ाद (contradiction) है, लेकिन जानना चाहिये कि यह एक ही जद्दोजहद, के दो मुख़्तलिफ़ मराहिल हैं। फिर एक दाई जब दावत देता है तो जो मसाईल उसे दरपेश होते हैं उनको एक ऐसा शख्स क़त्अन नहीं जान सकता जिसने उस कूचे में क़दम ही नहीं रखा है। उसे क्या अहसास होगा कि मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ से यह क्यों कहा जा रहा है: "क़सम है क़लम की और जो कुछ लिखतें हैं! आप अपने रब के फ़ज़्ल से मजनून नहीं हैं। और आपके लिये तो बेइन्तहा अज्र है।" यानि ऐ नबी ﷺ आप महज़ून और ग़मग़ीन ना हों। आप इनके कहने से (मआज़ अल्लाह) मजनून तो नहीं हो जायेंगे। ऐसे अल्फ़ाज़ जब किसी को कहे जाते हैं तो उसका ही दिल जानता है कि उस पर क्या गुज़रती है। अंदाज़ा लगाइये कि क़ुरैशे मक्का से इस क़िस्म के अल्फ़ाज़ सुन कर क़ल्बे मुहम्मदी ﷺ पर क्या कैफ़ियत तारी होती होगी। यह क़ुरआन हम पर reveal नहीं हो सकता जब तक उन अहसासात व कैफ़ियात के साथ हम ख़ुद दो-चार ना हों। जब तक कि हमारी कैफ़ियात व अहसासात उसके साथ

ममास्लत (समानता) ना रखें हम कैसे समझेंगे कि क्या कहा जा रहा है और किस कैफ़ियत के अन्दर कहा जा रहा है।

मेडिकल कॉलेज में दाखिल होने वाले तलबा (students) सबसे पहले जिस किताब से मुतारफ़ (indtroduced) होते हैं वह “Manual of Dissection” है। उसमें हिदायात होती हैं कि लाश के बदन पर यहाँ शग़ाफ़ (चीर) लगाओ और खाल हटाओ तो तुम्हें यह चीज़ नज़र आयेगी, यहाँ शग़ाफ़ लगाओ तो तुम्हें फ़लाँ शय नज़र आयेगी, इसे यहाँ से हटाओगे तो तुम्हें इसके पीछे फ़लाँ चीज़ छुपी हुई नज़र आयेगी। इस ऐतबार से क़ुरआन हकीम “Manual of Revolution” है। जब तक कोई शख़्स इन्क़लाबी जद्दोजहद में शरीक नहीं होगा क़ुरआन हकीम के मआरफ़ (Teachings) का बहुत बड़ा ख़जाना उसके लिये बंद रहेगा। एक शख़्स फ़क़ीह है, मुफ़्ती है तो वह फ़िक़्ही अहकाम को ज़रूर उसके अंदर से निकाल लेगा। आपको मालूम होगा कि बाज़ तफ़ासीर “अहकामुल क़ुरान” के नाम से लिखी गई हैं जिनमें सिर्फ़ उन्हीं आयात के बारे में गुफ़्तगू और बहस है जिनसे कोई ना कोई फ़िक़्ही हुक्म मुस्तनबत (derived) होता है। मसलन हलत (सिद्धान्त) व हुरमत का हुक्म, किसी शय के फ़र्ज़ होने का हुक्म जिससे अमल का मामला मुताल्लिक़ है। बाकी तो गोया क़सस (क़िस्से) हैं, तारीखी हक़ाइक़ व वाक़्यात हैं। यहाँ तक कि क़िस्सा आदम व इब्लीस जो सात मर्तबा क़ुरआन में आया है, या ईमानी हक़ाइक़ के लिये जो दलीलें व बराहीन (arguments) हैं उनसे कोई गुफ़्तगू नहीं की गई, बल्कि सिर्फ़ अहकामुल

क़ुरआन जो क़ुरान का एक हिस्सा है, उसी को अहमियत दी गई है।

क़ुरआन के तदरीजन नुज़ूल का सबब यह है कि साहिबे क़ुरआन ﷺ की जद्दोजहद के मुख़्तलिफ़ मराहिल को समझा जाये, वरना फ़िक़्ही अहकाम तो मुरत्तब करके दिये जा सकते थे, जैसा कि हज़रत मूसा अलै० को दे दिये गए थे "अहकामे अशरा" तख़्तियों पर कन्दह (खुदे हुए) थे जो मूसा अलै० के सुपुर्द कर दिये गये। लेकिन मुहम्मह रसूल अल्लाह ﷺ की इन्क़लाबी जद्दोजहद जिस-जिस मरहले से गुज़रती रही क़ुरआन में उस मरहले से मुताल्लिक़ आयतें नाज़िल होती रहीं। तंज़ील की तरतीब के अंदर मुज़मर असल हिकमत यही तो है कि आँहुज़ूर ﷺ की जद्दोजहद, हरकत और दावत के मुख़्तलिफ़ मरहले सामने आ जाते हैं। अब भी क़ुरआन की बुनियाद पर और मन्हजे इन्क़लाबे नबवी ﷺ पर जो जद्दोजहद होगी उसे इन तमाम मरहलों से होकर गुज़रना होगा। चुनाँचे कम से कम यह तो हो कि इस जद्दोजहद को इल्मी तौर पर फ़हम के लिये इंसान सामने रखे। अगर इल्मी ऐतबार से सीरतुन्नबी ﷺ का ख़ाका ज़हन में मौजूद ना हो तो फ़हम किसी दर्जे में भी हासिल नहीं होगा। फ़हमे हक़ीक़ी तो उसी वक़्त हासिल होगा जब आप ख़ुद इस जद्दोजहद में लगे हुए हैं और वही मसाईल आपको पेश आ रहे हैं तो अब मालूम होगा कि यह मक़ाम और मरहला या मसला वह था जिसके लिये यह हिदायते क़ुरआनी आई थी।

8) क़ुरान के मुनज़्ज़ल मिनल्लाह होने का सुबूत

इस ज़िमन में यह जानना भी ज़रूरी है कि क़ुरआन के मुनज़्ज़ल मिनल्लाह होने का सुबूत क्या है। याद रखिये कि सुबूत दो क़िस्म के होते हैं, ख़ारजी और दाख़िली। ख़ारजी सुबूत ख़ुद मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ का यह फ़रमाना है कि यह कलाम मुझ पर नाज़िल हुआ। फिर आप ﷺ की शहादत भी दो हैसियतों से है। आप ﷺ की शख़्सन शहादत ज़्यादा नुमाया उस वक़्त थी जबकि क़ुरान नाज़िल हुआ और हुज़ूर ﷺ ख़ुद मौजूद थे। वह लोग भी वहाँ मौजूद थे जिन्होंने आप ﷺ की चालीस साला ज़िन्दगी का मुशाहदा किया था, जिन्हें कारोबारी शख़्सियत की हैसियत से आप ﷺ के मामलात का तजुर्बा था। जिनके सामने आप ﷺ की सदाक़त, दयानत, अमानत और इफ़ा-ए-अहद का पूरा नक्शा मौजूद था। बल्कि उससे आगे बढ़ कर जिनके सामने चेहरा-ए-मुहम्मदी ﷺ मौजूद था। सलीमुल फ़ितरत इंसान आपका रुए अनवर देख कर पुकार उठता था: سُبۡحَانَ اللّٰہِ مَا ھٰذَا بِوَجۡہِ کَذَّابٍ (अल्लाह पाक है, यह चेहरा किसी झूठे का हो ही नहीं सकता)। तो हुज़ूर ﷺ की शख़्सियत, आप ﷺ की ज़ात और आप ﷺ की शहादत कि यह क़ुरआन मुझ पर नाज़िल हुआ, सबसे बड़ा सुबूत था।

इस ऐतबार से याद रखिये कि मुहम्मह रसूल अल्लाह ﷺ और क़ुरआन बाहम एक दुसरे के शाहिद (गवाह) हैं। क़ुरआन मुहम्मह ﷺ की रिसालत पर गवाही देता है:

{یٰسٓ ۝ وَ الۡقُرۡاٰنِ الۡحَکِیۡمِ ۝ اِنَّکَ لَمِنَ الۡمُرۡسَلِیۡنَ ۝}

क़ुरआन गवाही दे रहा है कि आप ﷺ अल्लाह के रसूल हैं और क़ुरान के मुनज़्ज़ल मिनल्लाह होने का सुबूत ज़ाते मुहम्मदी ﷺ है। इसका एक पहलु तो वह है कि नुज़ूले क़ुरआन के वक़्त रसूल अल्लाह ﷺ की ज़ात, आप ﷺ की शख़्सियत, आप ﷺ की सीरत व किरदार, आप ﷺ का अख्लाक़, आप ﷺ का वजूद, आप ﷺ की शबीहा (छवि) और चेहरा सामने था। दूसरा पहलु जो दायमी है और आज भी है वह हुज़ूर ﷺ का वह कारनामा है जो तारीख़ की अनमिट शहादत है। आप एच० जि० वेल्ज़, एम० एन० राय या डॉक्टर माइकल हार्ट से पूछिये कि वह कितना अज़ीम कारनामा है जो मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ ने सरअंजाम दिया। और आप ﷺ ख़ुद कह रहे हैं कि मेरा आला इंक़लाब क़ुरआन है, यही मेरा अस्लहा और असल ताक़त है, यही मेरी क़ुव्वत का सरचश्मा और मेरी तासीर का मिन्बा है। इससे बड़ी गवाही और क्या होगी? यह तो क़ुरआन के मुनज़्ज़ल मिनल्लाह होने की ख़ारजी शहादत है। यानि "हुज़ूर ﷺ की शख़्सियत।" शहादत का यह पहलु हुजूर ﷺ के अपने ज़माने में और आप ﷺ की हयाते दुनयवी के दौरान ज़्यादा नुमाया था। और जहाँ तक आप ﷺ के कारनामे का ताल्लुक़ है इस पर तो अक़्ल दंग रह जाती है। देखिये माइकल हार्ट मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ के बारे में यह कहने पर मजबूर हुआ है:

> *"He was the only man in history who has supremely successful on both the religious and secular levels."*

यानि तारीखे इंसानी में सिर्फ़ वही वाहिद शख़्स हैं जो सेक्युलर और मज़हबी दोनों मैदानों में इन्तहाई कामयाब रहे---

और आप ﷺ का यह इर्शाद है कि यह अल्लाह का कलाम है। तो ख़ारजी सुबूत गोया बतमाम व कमाल हासिल हो गया।

क़ुरान के मुनज़्ज़ल मिनल्लाह होने का दाख़िली सुबूत यह है कि इंसान का दिल गवाही दे। दाख़िली सुबूत इंसान का अपना बातिनी तजुर्बा होता है। अगर हज़ार आदमी कहें चीनी मीठी है मगर आपने ना चखी हो तो आप कहेंगे कि जब इतने लोग कह रहे हैं मीठी है तो होगी मीठी। ज़ाहिर है एक हज़ार आदमी मुझे क्यों धोखा देना चाहेंगे, यक़ीनन मीठी होगी। लेकिन "होगी" से आगे बात नहीं बढ़ती। अलबत्ता जब इंसान चीनी को चख ले और उसकी अपनी हिसे ज़ायका (sense of taste) बता रही हो कि यह मीठी है तो अब "होगी" नहीं बल्कि "है"। "होगी" और "है" मे दरहक़ीक़त इंसान के ज़ाती तजुर्बे का फ़र्क़ है। अफ़सोस यह है कि आज की दुनिया सिर्फ़ ख़ारजी तजुर्बों को जानती है। एक तजुर्बा इससे कहीं ज़्यादा मुअत्बर है और वह बातनी तजुर्बा है, यानि किसी शय पर आपका दिल गवाही दे। इक़बाल ने क्या ख़ूब कहा है:

तू अरब हो या अजम हो तेरा ला इलाहा इल्ला
लुग़ते ग़रीब, जब तक तेरा दिल ना दे गवाही!

ला इलाहा इल्लल्लाह के लिये अगर दिल ने गवाही ना दी तो इंसान ख़्वाह अरबी नस्ल हो, अरबी ज़बान जानता हो, लेकिन उसके लिये यह कलमा लुग़ते ग़रीब ही है,

नामानूस सी बात है, उसके अंदर पेवस्त नहीं है, उसको मुतास्सिर नहीं करती। क़ुरआन इंसान की अपनी फ़ितरत को अपील करता है और इंसान को अपने मन में झाँकने के लिये आमादा करता है। वह कहता है अपने मन में झाँको, देखो तो सही, ग़ौर तो करो

اَفِی اللّٰہِ شَکٌّ فَاطِرِ السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضِ ؕ

"क्या तुम्हें अल्लाह के बारे में शक है जो आसमानों और जमीन का पैदा करने वाला है?" (इब्राहीम:10)

اَئِنَّکُمۡ لَتَشۡہَدُوۡنَ اَنَّ مَعَ اللّٰہِ اٰلِـہَۃً اُخۡرٰی ؕ

"क्या तुम वाक़िअतन यह गवाही देते हो कि अल्लाह के साथ कोई और माबूद भी है?" (अल् अनाम:19)

देखना तक़रीर की लज़्ज़त कि जो उसने कहा
मैंने यह जाना कि गोया यह ही मेरे दिल में है!

अल्लामा इब्ने क़य्यिम (रहि०) ने इसकी बड़ी ख़ूबसूरत ताबीर की है। वह कहते हैं कि बहुत से लोग ऐसे हैं कि जब क़ुरआन पढ़ते हैं तो यूँ महसूस करते हैं कि वह मुस्हफ़ से नहीं पढ़ रहे बल्कि क़ुरआन उनके लौहे क़ल्ब पर लिखा हुआ है, वहाँ से पढ़ रहे हैं। गोया फ़ितरते इंसानी को क़ुरआन मजीद के साथ इतनी हम-आहंगी (एकता) हो जाती है।

हमारे दौर के एक सूफ़ी बुज़ुर्ग कहा करते हैं कि रूहे इंसानी और क़ुरआन हकीम एक ही गाँव के रहने वाले हैं। जैसे एक गाँव के रहने वाले एक दूसरे को पहचानते हैं और बाहम इन्सियत (attached together) महसूस करते हैं ऐसा ही मामला रूहे इंसानी और क़ुरआन हकीम का है।

क़ुरआन को पढ़ कर और सुन कर रूहे इंसानी महसूस करती है कि इसका मिन्बा और सरचश्मा वही है जो मेरा है। जहाँ से मैं आई हूँ यह कलाम भी वहीं से आया है। यक़ीनन इस कलाम का मिन्बा और सरचश्मा वही है जो मेरे वजूद, मेरी हस्ती और मेरी रूह का मिन्बा और सरचशमा है। यह हम-आहंगी (एकता) है जो असल बातिनी तजुर्बा बन जाये तब ही यक़ीन होता है कि यह कलाम वाक़िअतन अल्लाह का है।

❀ ❀ ❀

बाब हफ़्तम (सातवाँ)

एजाज़े क़ुरआन के अहम और बुनियादी वजूह (वजहें)

क़ुरान और साहिबे क़ुरान ﷺ का बाहमी ताल्लुक़

मैं अर्ज़ कर चुका हूँ कि क़ुरआन मजीद और नबी अकरम ﷺ दोनों एक-दूसरे के शाहिद हैं। क़ुरआन के मुनज़्ज़ल मिनल्लाह होने की सबसे बड़ी और सबसे मौअतबर (trusted) ख़ारजी गवाही नबी अकरम ﷺ की अपनी गवाही है। आप ﷺ की शख़्सियत, आप ﷺ का किरदार, आप ﷺ का चेहरा-ए-अनवर अपनी-अपनी जगह पर गवाह हैं। हमारे लिये अग़रचे आप ﷺ की सीरत आज भी ज़िन्दा व पाइन्दा है, किताबों में दर्ज है, लेकिन एक मुजस्सम इंसानी शख़्सियत की सूरत में आप ﷺ हमारे सामने मौजूद नहीं हैं, हम आप ﷺ के रूए अनवर की ज़ियारत से महरूम हैं। ताहम आप ﷺ का कारनामा ज़िन्दा व ताबन्द है और इसकी गवाही हर शख़्स दे रहा है। हर मौर्रिख (इतिहासकार) ने तस्लीम किया है, हर मुफ़क्किर (Thinker) ने माना है कि तारीखे इंसानी का अज़ीम-तरीन इन्क़लाब वह था जो हुज़ूर ﷺ ने बरपा किया। आप ﷺ की यह अज़मत आज भी मुबरहन (स्पष्ट) है, अशकारा (openly) है, अज़हर मिनश्शम्श (express evident) है। चुनाँचे क़ुरआन के मुनज्ज़ल मिनल्लाह और कलामे इलाही होने पर सबसे बड़ी ख़ारजी गवाही ख़ुद नबी

अकरम ﷺ हैं, और नबी अकरम ﷺ के नबी और रसूल होने का सबसे बड़ा गवाह, सबसे बड़ा शाहिद और सबसे बड़ा सुबूत ख़ुद क़ुरआन मजीद है।

इस ऐतबार से यह दोनों जिस तरह लाज़िम व मलज़ूम हैं इसके लिये मैं क़ुरआन हकीम के दो मक़ामात से इस्तशहाद (शपथपत्र) कर रहा हूँ। सूरह अल् बय्यिना (आयत:1) में फ़रमाया:

لَمۡ يَكُنِ الَّذِيۡنَ كَفَرُوۡا مِنۡ اَهۡلِ الۡكِتٰبِ وَالۡمُشۡرِكِيۡنَ مُنۡفَكِّيۡنَ حَتّٰى تَاۡتِيَهُمُ الۡبَيِّنَةُ

"अहले किताब में से जिन लोगों ने कुफ़्र किया और मुशरिक बाज़ आने वाले ना थे यहाँ तक कि उनके पास "बय्यिना" आ जाती।"

"بيّنة" खुली और रोशन दलील को कहते हैं। ऐसी रोशन हक़ीक़त जिसको किसी ख़ारजी दलील की मज़ीद हाजत ना हो वह "بيّنة" है। जैसे हम अपनी गुफ़्तगू में कहते हैं कि यह बात बिल्कुल बय्यिन है, बिल्कुल वाज़ेह है, इस पर किसी क़ील व क़ाल की हाजत ही नहीं है। बल्कि अगर बय्यिना पर कोई दलील लाने की कोशिश की जाये तो किसी दर्जे में शक व शुबह तो पैदा किया जा सकता है, उस पर यक़ीन में इज़ाफ़ा नहीं किया जा सकता। और यह بيّنةक्या है? फ़रमाया:

رَسُوۡلٌ مِّنَ اللّٰهِ يَتۡلُوۡا صُحُفًا مُّطَهَّرَةً ۙ﴿۲﴾ فِيۡهَا كُتُبٌ قَيِّمَةٌ ؕ﴿۳﴾

"एक रसूल अल्लाह की जानिब से जो पाक सहीफ़े पढ़ कर सुनाता है, जिनमें बिल्कुल रास्त (सच) और दुरुस्त तहरीरें लिखी हुई हों।" (आयत:2-3)

यहाँ क़ुरान हकीम की सूरतों को अल्लाह की किताबों से ताबीर किया गया है, जो क़ायम व दायम हैं और हमेशा-हमेश रहने वाली हैं। तो गोया रसूल ﷺ की शख़्सियत और अल्लाह का यह कलाम जो उन पर नाज़िल हुआ, दोनों मिलकर "بَيِّنَة" बनते हैं।

मैंने क़ुरान फ़हमी का यह उसूल बारहा (बार-बार) अर्ज़ किया है कि क़ुरआन मजीद में अहम मज़ामीन (articles) कम से कम दो जगह ज़रूर आते हैं। चुनाँचे इसकी नज़ीर (उदाहरण) सूरह अत् तलाक़ में मौजूद है। इसकी आयत 10 इन अल्फ़ाज़ पर ख़त्म होती है:

قَدۡ اَنۡزَلَ اللّٰهُ اِلَيۡكُمۡ ذِكۡرًا ۙ﴿۱۰﴾

"अल्लाह ने तुम्हारी तरफ़ एक ज़िक्र नाज़िल कर दिया है।"

और यह ज़िक्र क्या है? फ़रमाया:

رَّسُوۡلًا يَّتۡلُوۡا عَلَيۡكُمۡ اٰيٰتِ اللّٰهِ مُبَيِّنٰتٍ

"एक ऐसा रसूल जो तुम्हें पढ़ कर सुना रहा है अल्लाह की आयात जो हर शय को रोशन कर देने वाली (और हर हक़ीक़त को मुबरहन [स्पष्ट] कर देने वाली)

لِّيُخْرِجَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ مِنَ الظُّلُمٰتِ اِلَى النُّوْرِ ۭ

हैं, ताकि ईमान लाने वालों और नेक अमल करने वालों को तारीकियों (अंधेरों) से निकाल कर रोशनी में ले आये।”

यहाँ “اٰيٰتٍ بَيِّنٰتٍ” के बजाये “اٰيٰتٍ مُّبَيِّنٰتٍ” आया है। “बय्यिन” वह चीज़ है जो ख़ुद रोशन है और “मुबय्यिन” वह चीज़ है जो दूसरी चीज़ों को रोशन करती है, हक़ाइक़ को उजागर करती है। तो यहाँ पर ज़िक्र की जो तावील की गई कि {رَّسُوْلًا يَّتْلُوْا عَلَيْكُمْ اٰيٰتِ اللّٰهِ مُبَيِّنٰتٍ} इससे वाज़ेह हुआ कि क़ुरआन और मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ एक-दूसरे के साथ इस तरह जुड़े हुए और मिले हुए हैं कि एक हयातयाती वजूद (Organic Whole) बन गये हैं। यह एक-दूसरे के लिये शाहिद भी हैं और एक-दूसरे के लिये complimentary भी हैं। इस हवाले से यह दोनों हक़ीक़ते इस तरह जमा हैं कि एक-दूसरे से जुदा नहीं की जा सकतीं।

मुहम्मह रसूल अल्लाह ﷺ का असल मोअज्ज़ह (चमत्कार): क़ुरान हकीम

अगली बात यह समझिये कि नबी अकरम ﷺ की रिसालत का असल सबूत या बा अल्फ़ाज़े दीगर आप ﷺ का असल मोअज्ज़ह (चमत्कार), बल्कि वाहिद मोअज्ज़ह क़ुरआन हकीम है। यह बात ज़रा अच्छी तरह समझ लीजिये। “मोअज्ज़ह” का लफ्ज़ हमारे यहाँ बहुत आम हो

गया है और हर ख़र्क़े आदत शय को मोअज्ज़ह शुमार किया जाता है। मोअज्ज़ह के लफ़्ज़ी मायने आजिज़ कर देने वाली शय के हैं। क़ुरआन मजीद में "عجز" माद्दे से बहुत से अल्फ़ाज़ आते हैं, लेकिन हमारे यहाँ इस्तलाह के तौर पर इस लफ्ज़ का जो इत्लाक़ किया जाता है वह क़ुरआन हकीम में मुस्तमिल नहीं है, बल्कि अल्लाह के रसूलों को जो मोअज्ज़ात दिये गये उन्हें भी आयतें कहा गया है। अम्बिया व रुसुल अल्लाह तआला की आयात यानि अल्लाह की निशानियाँ लेकर आये।

इस ऐतबार से मोअज्ज़ह का लफ़्ज़ जिस मायने में हम इस्तेमाल करते हैं, उस मायने में यह क़ुरआन मजीद में मुस्तमिल नहीं है। अलबत्ता वह तबीई क़वानीन (Physical Laws) जिनके मुताबिक़ यह दुनिया चल रही है, अगर किसी मौक़े पर वह टूट जायें और उनके टूट जाने से अल्लाह तआला की कोई मशियते ख़ुसूसी (special will) ज़ाहिर हो तो उसे ख़र्क़े आदत कहते हैं। मसलन क़ानून तो यह है कि पानी अपनी सतह हमवार रखता है, लेकिन हज़रत मूसा अलै० ने अपने असा (लाठी) की ज़र्ब (चोट) लगाई और समुन्दर फट गया, यह ख़र्के आदत है, यानि जो आदी क़ानून है वह टूट गया। "ख़र्क़" फट जाने को कहते हैं, जैसे सूरह अल् कहफ़ में यह लफ्ज़ आया है "خَرَقَهَا" यानि उस अल्लाह के बन्दे ने जो हज़रत मूसा अलै० के साथ कश्ती में सवार थे, कश्ती में शग़ाफ़ (दरार) डाल दिया। पस (बस) जब भी कोई तबीई क़ानून टूटेगा तो वह ख़र्क़े आदत होगा। अल्लाह तआला इन ख़र्क़े आदत वाक़्यात के ज़रिये से बहुत से क़वानीने क़ुदरत को तोड़ कर अपनी ख़ुसूसी मशियत और

ख़ुसूसी क़ुदरत का इज़हार फ़रमाता है। और यह बात हमारे हाँ मुसल्लम है कि इस ऐतबार से अल्लाह तआला का मामला सिर्फ़ अम्बिया के साथ मख़्सूस नहीं है, बल्कि अल्लाह तआला अपने नेक बंदों में से भी जिनके साथ ऐसा मामला करना चाहें करता है, लेकिन इस्तलाहन हम उन्हें करामात कहते हैं। ख़र्क़े आदत या करामात अपनी जगह पर एक मुस्तक़िल मज़मून है।

मोअज्ज़ह भी ख़र्क़े आदत होता है, लेकिन रसूल का मोअज्ज़ह वह होता है जो दावे के साथ पेश किया जाये और जिसमें तहदी (challenge) भी मौजूद हो। यानि जिसे रसूल ख़ुद अपनी रिसालत के सुबूत के तौर पर पेश करे और फिर उसमें मुक़ाबले का चैंलेज दिया जाये। जैसे हज़रत मूसा अलै० को अल्लाह तआला ने जो मोअज्ज़ात अता किये उनमें "بیضا یر" और "عصا" की हैसियत असल मोअज्ज़ेह की थी। वैसे आयतें और भी दी गई थीं जैसा कि सूरह बनी इस्राईल में है:

وَلَقَدْ اٰتَيْنَا مُوْسٰى تِسْعَ اٰيٰتٍۢ بَيِّنٰتٍ

"और बेशक हमने मूसा को नूर रोशन निशानियाँ दीं।" (आयत:101)

मगर यह उस वक़्त की बात है जब आप अलै० अभी मिस्र के अंदर थे। जब आप अलै० मिस्र से बाहर निकले तो असा की करामात ज़ाहिर हुईं कि उसकी ज़र्ब से समुन्दर फट गया, उसकी ज़र्ब से चट्टान से बारह चश्में फूट पड़े। यह तमाम चीज़ें ख़र्क़े आदत हैं, लेकिन असल मोअज्ज़ेह दो थे जिनको

हज़रत मूसा अलै० ने दावे के साथ पेश किया कि यह मेरी रिसालत का सुबूत है।

जब आप अलै० फिरऔन के दरबार में पहुँचें और आपने अपनी रिसालत की दावत पेश की तो दलीले रिसालत के तौर पर फ़रमाया कि मैं इसके लिये सनद {سُلۡطٰنٍ مُّبِيۡنٍ} भी लेकर आया हूँ। फिरऔन ने कहा कि लाओ पेश करो तो आप अलै० ने यह दो मोअज्ज़ेह पेश किये। यह दो मोअज्ज़ेह जो अल्लाह की तरफ़ से आप अलै० को अता किये गये, आप अलै० की रिसालत की सनद थे। इसमें तहदी भी थी। लिहाज़ा मुक़ाबला भी हुआ और जादूगरों ने पहचान भी लिया कि यह जादू नहीं है, मोअज्ज़ह है। मोअज्ज़ह जिस मैदान का होता है उसे उसी मैदान के अफ़राद ही पहचान सकते हैं। जब जादूगरों का हज़रत मूसा अलै० से मुक़ाबला हुआ तो आम देखने वालों ने तो यही समझा होगा कि यह बड़ा जादूगर है और यह छोटे जादूगर हैं, इसका जादू ज़्यादा ताक़तवर निकला, इसके असा ने भी साँप और अस्दहा की शक्ल इख़्तियार की थी और इन जादूगरों की रस्सियों और छड़ियों ने भी साँपों की शक्ल इख़्तियार कर ली थी, अलबत्ता यह ज़रूर है कि इसका बड़ा साँप बाक़ी तमाम साँपों को निगल गया। यही वजह है कि मजमा ईमान नहीं लाया, लेकिन जादूगर तो जानते थे कि उनके फ़न की रसाई कहाँ तक है, इसलिये उन पर यह हक़ीक़त मुन्कशिफ़ (प्रकट) हो गई कि यह जादू नहीं है, कुछ और है।

इसी तरह क़ुरान हकीम के मोअज्ज़ह होने का असल अहसास अरब के शायर, ख़तीबों और ज़बान दानों को हुआ था। आम आदी ने भी अगरचे महसूस किया कि यह ख़ास

कलाम है, बहुत पुरतासीर और मीठा कलाम है, लेकिन इसका मोअज्ज़ह होना यानि आजिज़ कर देने वाला मामला तो इसी तरह साबित हुआ कि क़ुरआन मजीद में बार-बार चैलेंज़ दिया गया कि इस जैसा कलाम पेश करो। इस ऐतबार से जान लीजिये कि रसूल ﷺ का असल मोअज्ज़ह क़ुरआन है।

आप ﷺ के ख़र्क़े आदत मोअज्ज़ात तो बेशुमार हैं। शक़्क़ क़मर (चाँद के दो टुकड़े) क़ुरआन हकीम से साबित है, लेकिन यह आप ﷺ ने दावे के साथ नहीं दिखाया, ना ही इस पर किसी को चैलेंज किया, बल्कि आप ﷺ से मुतालबे (माँग) किये गये थे कि आप ﷺ यह-यह करके दिखाइये, उनमें से कोई बात अल्लाह तआला के यहाँ मन्ज़ूर नहीं हुई। अल्लाह चाहता तो उनका मुतालबा (माँग) पूरा करा देता, लेकिन उन मुतालबों को तस्लीम नहीं किया गया। अलबत्ता ख़र्क़े आदत वाक़्यात बेशुमार हैं। जानवरों का भी आप ﷺ की बात को समझना और आप ﷺ से अक़ीदत का इज़हार करना बहुत मशहूर है। हज्जतुल विदाह के मौक़े पर 63 ऊँटों को हुज़ूर ﷺ ने ख़ुद अपने हाथों से नहर (ज़िबह) किया था। क़तार में सौ ऊँट खड़े किये गये थे। रिवायात में आता है कि एक ऊँट जब गिरता था तो अगला ख़ुद आगे आ जाता था। इसी तरह "सतूने हनाना" का मामला हुआ। हुज़ूर ﷺ मस्जिद नबवी ﷺ में खजूर के एक तने का सहारा लेकर ख़ुत्बा इर्शाद फ़रमाया करते थे, मग़र जब इस मक़सद के लिये मिम्बर बना दिया गया और आप ﷺ पहली मर्तबा मिम्बर पर खड़े होकर ख़ुत्बा देने लगे तो उस सूखे हुए तने में से ऐसी आवाज़ आई जैसे कोई

बच्चा बिलख़-बिलख़ कर रो रहा हो, इसी लिये तो उसे "हनाना" कहते हैं। ऐसे ही कई मौकों पर थोड़ा खाना बहुत से लोगों को किफ़ायत कर गया।

इन ख़र्क़े आदत वाक़यात को बाज़ अक़लियत पसंद (Rationalists) और साइंसी मिज़ाज के हामिल लोग तस्लीम नहीं करते। पिछले ज़माने में भी लोग इनका इन्कार करते थे। इस पर मौलाना रूम ने ख़ूब फ़रमाया है कि:

फ़ल्सफ़ी को मुन्कर हनाना अस्त
अज़ हवासे अम्बिया बेगाना अस्त!

बहरहाल ख़र्क़े आदत वाक़्यात हुज़ूर ﷺ की हयाते तैय्यबा में बहुत हैं। (तफ़्सील देखना हो तो "सूरतुन नबी ﷺ" अज़ मौलाना शिबली की एक ज़ख़ीम जिल्द सिर्फ़ हुज़ूर ﷺ के ख़र्क़े आदत वाक़्यात पर मुश्तमिल है) लेकिन जैसा कि ऊपर गुज़रा, मोअज्ज़ह दावे के साथ और रिसालत के सुबूत के तौर पर होता है।

क़ुरान मजीद में इसकी दूसरी मिसाल हज़रत ईसा अलै० की आई है कि आप अलै० लोगों से फ़रमाते हैं कि देखो मैं मुर्दों को ज़िन्दा करके दिखा रहा हूँ। मैं गारे से परिन्दे की सूरत बनाता हूँ और उसमें फूँक मारता हूँ तो वह अल्लाह के हुक्म से उड़ता हुआ परिन्दा बन जाता है। ख़र्क़े आदत का मामला तो ग़ैर नबी के लिये भी हो सकता है। अल्लाह तआला अपने नेक बन्दों के लिये भी इस तरह के हालात पैदा कर सकता है। उनका अल्लाह के यहाँ जो मक़ाम व मर्तबा है उसके इज़्हार के लिये करामात का ज़हूर हो सकता है। यह चीज़ें बईद (असम्भव) नहीं हैं, लेकिन अम्बिया की करामात को अर्फ़े आम (आम तौर) में "मोअज्ज़ात" कहा

जाता है और ग़ैर अम्बिया और औलिया के लिये "करामात" का लफ़्ज़ इस्तेमाल होता है। लेकिन मोअज्ज़ह वह है जिसे अल्लाह का रसूल दावे के साथ पेश करके और चैलेंज करे।

यह बात कि क़ुरान मजीद ही हुज़ूर ﷺ का असल मोअज्ज़ह है, दो ऐतबारात से क़ुरआन में बयान की गई है। एक मुस्बत अंदाज़ है, जैसे सूरह यासीन में इब्तदाई आयतों में फ़रमाया:

يٰسٓ ۝ وَالْقُرْاٰنِ الْحَكِيْمِ ۝ اِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ ۝

"यासीन! क़सम है क़ुरान हकीम की (और क़सम का असल फ़ायदा शहादत होता है, यानि गवाह है यह क़ुरान हाकिम) कि यक़ीनन (ऐ मुहम्मद ﷺ) आप अल्लाह के रसूल हैं।"

ख़िताब बज़ाहिर हुज़ूर ﷺ से है, हालाँकि हुज़ूर ﷺ को यह बताना मक़सूद नहीं है, बल्कि मुख़ातिबीन यानि अहले अरब और अहले मक्का को सुनाया जा रहा है कि यह क़ुरआन शाहिद है, यह सुबूत है, यह दलीले क़तई है कि मुहम्मद ﷺ अल्लाह के रसूल हैं, यह क़ुरान पुकार-पुकार कर मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की रिसालत का सुबूत पेश कर रहा है।

इसके अलावा क़ुरान हकीम के चार मक़ामत और हैं जिनमें यही आयत मुक़द्दर है, अग़रचे बयान नहीं हुई। सूरह सुआद का आग़ाज़ होता है:

صٓ وَالۡقُرۡاٰنِ ذِی الذِّکۡرِ ۝۱ بَلِ الَّذِیۡنَ کَفَرُوۡا فِیۡ عِزَّۃٍ وَّ شِقَاقٍ ۝۲

"सुआद, क़सम है इस क़ुरान की जो नसीहत (याद दिहानी) वाला है। लेकिन वह लोग कि जो मुन्कर हैं, घमण्ड और ज़िद में पड़े हुए हैं।"

यहाँ "सुआद" एक हर्फ़ है, लेकिन इससे आयत नहीं बनी, जबकि "यासीन" एक आयत है। सूरह सुआद की पहली आयत क़सम पर मुश्तमिल है। "بَلۡ" से जो दूसरी आयत शुरु हो रही है यह साबित कर रही है कि मुक़स्सम अलैह (जिस चीज़ पर क़सम खाई जा रही है) यहाँ महज़ूफ़ है और वह {اِنَّکَ لَمِنَ الۡمُرۡسَلِیۡنَ} है। गोया कि मायनन इसे यूँ पढ़ा जायेगा:

{صٓ وَالۡقُرۡاٰنِ ذِی الذِّکۡرِ ۝۱ (اِنَّکَ لَمِنَ الۡمُرۡسَلِیۡنَ) بَلِ الَّذِیۡنَ کَفَرُوۡا} ....

इसी तरह सूरह क़ाफ़ में है:

{قٓ ۚ وَالۡقُرۡاٰنِ الۡمَجِیۡدِ ۝۱ (اِنَّکَ لَمِنَ الۡمُرۡسَلِیۡنَ) بَلۡ عَجِبُوۡۤا اَنۡ جَآءَهُمۡ مُّنۡذِرٌ مِّنۡهُمۡ.....}

ऐसी ही दो सूरतें अल् ज़ुख़रफ़ और अल् दुख़ान "حٰمٓ" से शुरू होती हैं। इनकी पहली दो आयतें बिल्कुल एक जैसी हैं

حٰمٓ ۚ﴿١﴾ وَالْكِتٰبِ الْمُبِيْنِ ۙ﴿٢﴾

पहली आयत हुरूफ़े मुक़त्‌आत पर और दूसरी आयत क़सम पर मुश्तमिल है। इसके बाद मुक़सम अलैए {اِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ} महज़ूफ़ मानना पड़ेगा। गोयाः

حٰمٓ ۚ﴿١﴾ وَالْكِتٰبِ الْمُبِيْنِ ۙ﴿٢﴾ (اِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ) اِنَّا جَعَلْنٰهُ قُرْءٰنًا عَرَبِيًّا لَّعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ۚ﴿٣﴾

और:

حٰمٓ ۚ﴿١﴾ وَالْكِتٰبِ الْمُبِيْنِ ۙ﴿٢﴾ (اِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ) اِنَّآ اَنْزَلْنٰهُ فِيْ لَيْلَةٍ مُّبٰرَكَةٍ اِنَّا كُنَّا مُنْذِرِيْنَ ﴿٣﴾

यह एक अस्लूब है कि मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की रिसालत को साबित करने के लिये क़ुरआन की क़सम खाई गई, यानि क़ुरआन की गवाही और शहादत पेश की गई। यह इस बात को कहने का एक अस्लूब है कि हुज़ूर ﷺ की रिसालत का असल सुबूत या आप ﷺ का असल मोअज्ज़ह क़ुरआन है।

क़ुरान का दावा और चैलेंज

पहले गुज़र चुका है कि मोअज्ज़ह मैं तहदी (चैलेंज) भी ज़रूरी है और दावा भी। लिहाज़ा वह मक़ामात गिन लीजिये जिनमें चैलेंज है कि अगर तुम्हारा यह ख़्याल है कि यह मुहम्मद ﷺ का कलाम है, इंसानी कलाम है जिसे मुहम्मद ﷺ ने ख़ुद गढ़ लिया है, यह उनकी अपनी

इख्तरा (खोज) है तो तुम मुक़ाबला करो और ऐसा ही कलाम पेश करो। क़ुरआन मजीद में ऐसे पाँच मक़ामात हैं। सूरह अत्तूर (आयत:33-34) में फ़रमाया:

اَمۡ يَقُوۡلُوۡنَ تَقَوَّلَهٗ ۚ بَلۡ لَّا يُؤۡمِنُوۡنَ ۚ﴿۳۳﴾ فَلۡيَاۡتُوۡا بِحَدِيۡثٍ مِّثۡلِهٖۤ اِنۡ كَانُوۡا صٰدِقِيۡنَ ﴿۳۴﴾

"क्या उनका यह कहना है कि यह मुहम्मद ﷺ ने ख़ुद गढ़ लिया है? बल्कि हक़ीक़त यह है कि यह मानने को तैयार नहीं। फिर चाहिये कि वह इसी तरह का कोई कलाम पेश करें अगर वह सच्चे हैं।"

يَقُوۡلُ,قَالَ का मायने है कहना। जबकि يَتَقَوَّلُ,تَقَوَّلَ का मफ़हूम है तकल्लुफ़ करके कहना, यानि मेहनत करके कलाम मौज़ूँ करना (जिसके लिये अँग्रेज़ी में composition का लफ़्ज़ है)। तो क्या उनका ख़्याल है कि यह मुहम्मद ﷺ ने ख़ुद कह लिया है? हक़ीक़त यह है कि यह मानने को तैयार नहीं, लिहाज़ा इस तरह की कट हुज्जतियाँ कर रहे हैं। अगर यह सच्चे हैं तो ऐसा ही कलाम पेश करें। आख़िर ये भी इंसान हैं, इनमें बड़े-बड़े शायर और बड़े क़दिरुल कलाम ख़तीब मौजूद हैं। इनमें वह शायर भी है जिनको दूसरे शायर सजदा करते हैं। ये सबके सब मिल कर ऐसा कलाम पेश करें। सूरह बनी इस्राईल (आयत:88) में फ़रमाया गया:

قُلۡ لَّئِنِ اجۡتَمَعَتِ الۡاِنۡسُ وَالۡجِنُّ عَلٰٓى اَنۡ

"(ऐ नबी ﷺ! इनसे) कह दीजिये कि अगर तमाम जिन्न व इन्स जमा हो जायें (और अपनी पूरी क़ुव्वत व सलाहियत और

يَّأْتُوْا بِمِثْلِ هٰذَا الْقُرْاٰنِ لَا يَاْتُوْنَ بِمِثْلِهٖ وَلَوْ كَانَ بَعْضُهُمْ لِبَعْضٍ ظَهِيْرًا ﴿٨٨﴾

अपनी तमाम ज़हानत व फ़तानत, क़ादिरुल कलामी को जमा करके कोशिश करें) कि इस क़ुरआन जैसी किताब पेश कर दें तो वह हरग़िज़ ऐसी किताब नहीं ला सकेगें चाहे वह एक-दूसरे कि कितनी ही मदद करें।"

यह तो बहैसियत-ए-मज्मुई पूरे क़ुरान मजीद की नज़ीर पेश करने से मख़्लूक़ के आजिज़ होने का दावा है जो क़ुरान मजीद ने दो मक़ामात पर किया है। सूरह युनुस में इससे ज़रा नीचे उतर कर, जिसे बर सबीले तनज़्ज़ुल कहा जाता है, फ़रमाया कि पूरे क़ुरान की नज़ीर नहीं ला सकते तो ऐसी दस सूरतें ही गढ़ कर ले आओ! इर्शाद हुआ: (सूरह हूद, आयत:13)

اَمْ يَقُوْلُوْنَ افْتَرٰىهُ ۭ قُلْ فَاْتُوْا بِعَشْرِ سُوَرٍ مِّثْلِهٖ مُفْتَرَيٰتٍ وَّادْعُوْا مَنِ اسْتَطَعْتُمْ مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ﴿١٣﴾

"क्या यह कहते हैं कि यह क़ुरआन ख़ुद गढ़ कर ले आया है? (ऐ नबी ﷺ! इनसे) कहिये पस तुम भी दस सूरतें बना कर ले आओ ऐसी ही गढ़ी हुई और बुला लो जिसको बुला सको अल्लाह के सिवा अगर तुम सच्चे हो।"

इसके बाद दस से नीचे उतर कर एक सूरत का भी चैलेंज दिया गया: (सूरह युनुस, आयत:38)

اَمۡ يَقُوۡلُوۡنَ افۡتَرٰٮهُ ‌ؕ قُلۡ فَاۡتُوۡا بِسُوۡرَةٍ مِّثۡلِهٖ وَادۡعُوۡا مَنِ اسۡتَطَعۡتُمۡ مِّنۡ دُوۡنِ اللّٰهِ اِنۡ كُنۡتُمۡ صٰدِقِيۡنَ ۝۳۸

“क्या यह कहते हैं कि यह क़ुरान ख़ुद बना कर ले आया है? (ऐ नबी ﷺ! इनसे) कहिये पस तुम भी एक सूरत बना कर ले आओ ऐसी ही और बुला लो जिसको बुला सको अल्लाह के सिवा अगर तुम सच्चे हो।”

यह चारों मक़ामात तो मक्की सूरतों में हैं। पहली मदनी सूरत “ अल् बक़रह” है। इसमें बड़े अहतमाम के साथ यह बात कही गई है:

وَاِنۡ كُنۡتُمۡ فِىۡ رَيۡبٍ مِّمَّا نَزَّلۡنَا عَلٰى عَبۡدِنَا فَاۡتُوۡا بِسُوۡرَةٍ مِّنۡ مِّثۡلِهٖ ۖ وَادۡعُوۡا شُهَدَآءَكُمۡ مِّنۡ دُوۡنِ اللّٰهِ اِنۡ كُنۡتُمۡ صٰدِقِيۡنَ ۝۲۳ فَاِنۡ لَّمۡ

“अगर तुम लोगों को शक है इस कलाम के बारे में जो हमने अपने बन्दे पर नाज़िल किया है (कि यह अल्लाह का कलाम नहीं है) तो इस जैसी एक सूरत तुम भी (मौज़ूं करके) ले आओ और अपने तमाम मददगारों को बुला लो (उन सबको जमा कर लो) अल्लाह के सिवा अगर तुम सच्चे हो। और अगर तुम ऐसा ना कर सको, और तुम हरगिज़ ऐसा ना कर सकोगे, तो बचो उस आग से जिसका

تَفۡعَلُوۡا وَلَنۡ تَفۡعَلُوۡا فَاتَّقُوا النَّارَ الَّتِیۡ وَقُوۡدُهَا النَّاسُ وَالۡحِجَارَةُ ۚۖ اُعِدَّتۡ لِلۡكٰفِرِیۡنَ ﴿۲۴﴾

ईंधन आदमी और पत्थर होंगे, यह मुन्करों के लिये तैयार की गयी है।"

यहाँ यह वाज़ेह किया जा रहा है कि हक़ीक़त में तुम सच्चे नहीं हो, तुम्हारा दिल गवाही दे रहा है कि यह इंसानी कलाम नहीं है, लेकिन चूँकि तुम ज़बान से तन्क़ीद (आलोचना) कर रहे हो और झुठला रहे हो तो अगर वाक़िअतन तुम्हें शक है तो इस शक को रफ़ा (अस्वीकृत) करने के लिये हमारा यह चैलेंज़ मौजूद है।

यह हैं क़ुरआन मजीद के मोअज्ज़ह होने के दो अस्लूब। एक मुस्बत (positive) अंदाज़ है कि क़ुरआन गवाह है इस पर कि ऐ मुहम्मद! (ﷺ) आप अल्लाह के रसूल हैं, और दूसरा अंदाज़ चैलेंज का है कि अगर तुम्हें इसके कलामे इलाही होने में शक है तो इस जैसा कलाम तुम भी बना कर ले आओ।

क़ुरान किस-किस ऐतबार से मोअज्ज़ह है?

अब इस ज़िमन में तीसरी ज़ेली (उप) बहस यह होगी कि क़ुरआन मजीद किस-किस ऐतबार से मोअज्ज़ह है। यह मज़मून इतना वसीअ और इतना मुतनव्वा अल् ऐतराफ़ है

कि "القرآن اعجاز وجوہ" पर पूरी-पूरी किताबें लिखी गई हैं। ज़ाहिर बात है इस वक़्त इसका इहाता मक़सूद नहीं है, सिर्फ़ मोटी-मोटी बातें ज़िक्र की जाती हैं।

असल शय तो इसकी तासीरे क़ल्ब है कि यह दिल को लगने वाली बात है। इसका असल ऐजाज़ यही है कि यह दिल को जाकर लगती है बशर्ते कि पढ़ने वाले के अंदर तास्सुब, ज़िद्द और हठधर्मी ना हो और उसे ज़बान से इतनी वाक़िफ़यत हो जाए कि बराहेरास्त क़ुरआन उसके दिल पर उतर सके। यह क़ुरआन के ऐजाज़ का असल पहलु है। लेकिन इज़ाफ़ी तौर पर जान लीजिए कि जिस वक़्त क़ुरआन नाज़िल हुआ उस वक़्त के ऐतबार से इसके मोअज्ज़ह होने का नुमाया और अहमतर पहलु इसकी अदबियत, इसकी फ़साहत व बलाग़त, इसके अल्फ़ाज़ का इन्तखाब, बंदिशें और तरकीबें, इसकी मिठास और इसकी सौती आहंग है। यह दरहक़ीक़त नुज़ूल के वक़्त क़ुरआन के मोअज्ज़ह होने का सबसे नुमाया पहलु है।

यहाँ यह बात पेशे नज़र रहे कि हर रसूल को उसी तर्ज़ का मोअज्ज़ह दिया गया जिन चीज़ों का उसके ज़माने में सबसे ज़्यादा चर्चा और शगुफ़ था। हज़रत मूसा अलै० के ज़माने में जादू आम था लिहाज़ा मुक़ाबले के लिये आप अलै० को वह चीज़ें दी गईं जिनसे आप अलै० जादूगरों को शिकस्त दे सकें। हुज़ूर ﷺ ने जिस क़ौम में अपनी दावत का आग़ाज़ किया उस क़ौम का असल ज़ौक कुदरते कलाम था। वह कहते थे कि असल में बोलने वाले तो हम ही हैं, बाकी दुनिया तो गूँगी है। उनकी ज़बानदानी का यह आलम था कि वह अपनी पसंद की अशयाअ (चोज़ों) के नाम रखना

शुरू करते तो हज़ारो नाम रख देते। चुनाँचे अरबी में शेर और तलवार के लिये पाँच-पाँच हज़ार अल्फ़ाज़ हैं। घोड़े और ऊँट के लिये ला-तादाद अल्फ़ाज़ हैं। यह उनकी क़ादिरुल कलामी है कि किसी शय को उसकी हर अदा के ऐतबार से नया नाम दे देते। घोड़ा उनकी बड़ी महबूब शय है, लिहाज़ा उसके नामालूम कितने नाम हैं। शेरो-शायरी में उनके ज़ौक़ व शौक़ का यह आलम था कि उनके यहाँ सालाना मुक़ाबले होते थे ताकि उस साल के सबसे बड़े शायर का तअय्युन किया जाये। शायर अपने-अपने क़सीदे लिख कर लाते थे, मुक़ाबला होता था। फिर जब फ़ैसला होता था कि किसका क़सीदा सब पर बाज़ी ले गया है तो बाक़ी तमाम शायर उसकी अज़मत के ऐतराफ़ के तौर पर उसको सजदा करते थे। फिर वह क़सीदा ख़ाना काबा की दीवार पर लटका दिया जाता था कि यह है इस साल का क़सीदा। चुनाँचे इस तरह के सात क़सीदे ख़ाना काबा में आवेज़ा (प्रदर्शित) किये गए थे जिन्हें "سَبۡعَةمُعَلَّقَة" कहा जाता था। "مُعلّقةسبعةُ" के आख़िरी शायर हज़रत लबीद (रज़ि०) थे जो ईमान ले आए। ईमान लाने के बाद उन्होंने शेर कहने छोड़ दिये। हज़रत उमर (रज़ि०) ने उनसे कहा कि ऐ लबीद! अब आप शेर क्यों नहीं कहते? तो जवाब में उन्होंने बड़ा प्यारा जुमला कहा कि "اَبَعۡدَ الۡقُرۡاٰنِ؟" यानि क्या क़ुरआन के नुज़ूल के बाद भी? अब किसी के लिये कुछ कहने का मौक़ा बाक़ी है? क़ुरआन के आ जाने के बाद कोई अपनी फ़साहत व बलाग़त के इज़हार की कोशिश कर सकता है? गोया ज़बाने बंद हो गईं, उन पर ताले पड़ गये, मालिकुल शौरा (शायरों के राजा) ने शेर कहने छोड़ दिये।

जिन लोगों की मादरी ज़बान अरबी है वह आज भी क़ुरान के इस ऐजाज़ को महसूस कर सकते हैं। ग़ैर अरब लोगों के लिये इसको महसूस करना मुमकिन नहीं है। अगर कोई अपनी मेहनत से अरबी अदब के अंदर मौलाना अली मियाँ(1) की सी महारत हासिल कर ले तो वह वाक़िअतन इसको महसूस कर सकेगा और इसकी तहसीन कर सकेगा कि फ़साहत व बलाग़त में क़ुरआन का क्या मक़ाम है। हम जैसे लोगों के लिये यह मुमकिन नहीं है, अलबत्ता इसका सौती आहंग हम महसूस कर सकते हैं। वाक़्या यह है कि क़ुरआन की क़िरात के अंदर एक मोअज्ज़ाना तासीर है जो क़ल्ब के अंदर अजीब कैफ़ियात पैदा कर देती है। क़ुरआन का सौती आहंग हमारी फ़ितरत के तारों को छेड़ता है। क़ुरआन की यह मोअज्ज़ाना तासीर आज भी वैसी है जैसी नुज़ूले क़ुरआन के वक़्त थी। इसमें मरवरे अय्याम (दिन गुज़रने) से कोई फ़र्क वाक़ेअ नहीं हुआ।

क़ुरआन की फ़साहत व बलाग़त, इसकी अदबियत, अज़ूबत और इसके सौती आहंग की मोअज्ज़ाना तासीर पर मुस्तज़ाद (top) अहदे हाज़िर में क़ुरान के ऐजाज़ के ज़िमन में जो चीज़ें बहुत नुमाया होकर सामने आती हैं उनमें से एक चीज़ तो वह है जिसका क़ुरान मजीद ने बड़े सरीह अल्फ़ाज़ (हा मीम अस्सज्दा:53) में ज़िक्र किया है:

سَنُرِيۡهِمۡ اٰيٰتِنَا فِى الۡاٰفَاقِ وَفِىۡۤ اَنۡفُسِهِمۡ

"हम अनक़रीब उन्हें अपनी आयतें दिखाएँगे आफ़ाक़ में भी और उनकी अपनी जानों में भी यहाँ तक कि यह बात उन पर

حَتّٰى يَتَبَيَّنَ لَهُمْ اَنَّهُ الْحَقُّ ؕ

वाज़ेह हो जाएगी कि यह क़ुरआन हक़ है।"

इस आयत मुबारका में इल्मे इंसानी के दायरे में साइंस और टेक्नोलॉजी की तरक़्क़ी और जदीद इकतशाफ़ात (खोज) व इन्कशाफ़ात (खुलासे) की तरफ़ इशारा है। यह आयाते आफ़ाक़ी हैं। फ्राँसीसी सर्जन डॉक्टर मौरिस बकाई का पहले भी हवाला दिया जा चुका है कि क़ुरआन का मुताअला करने के बाद उसने कहा कि मेरा दिल इस पर मुत्मईन हो गया है कि इस क़ुरआन में कोई बात ऐसी नहीं है जिसे साइंस ने ग़लत साबित किया हो। अलबत्ता उस दौर में जबकि इंसान का अपना ज़हनी ज़र्फ़ वसीअ नहीं हुआ था, ऊलूमे इंसानी और मालूमाते इंसानी का दायरा महदूद था, उस वक़्त साइंसी इशारात की हामिल आयाते क़ुरानिया का क्या मफ़हूम समझा गया, वह बात और है। कलामुल्लाह होने के ऐतबार से असल अहमियत तो क़ुरआन के अल्फ़ाज़ को हासिल है। डॉक्टर मौरिस बकाई ने क़ुरआन का तौरात के साथ तक़ाबुल (मुक़ाबला) किया है! तौरात से मुराद Old Testament है। इंजीले अरबिया जो हज़रत ईसा अलै० की तरफ़ मन्सूब है, उनमें तो कई चीज़ें ऐसी हैं जो ग़लत साबित हो चुकी हैं। इंजील में ज़्यादातर अख़्लाक़ी मुवाअज़ (उपदेश) हैं या फिर हज़रत ईसा अलै० के स्वान्हे हयात (जीवनी) हैं। तौरात में यह मुबाहिस मौजूद हैं कि कायनात कैसे पैदा हुई, अल्लाह ने कैसे इसे बनाया। मुख़्तलिफ़ साइंसी phenomena उसमें मौजूद हैं।

आपको मालूम है कि फ़िज़िक्स में आज सबसे ज़्यादा अहम मौज़ू जिस पर तहक़ीक़ हो रही है, यही है कि कायनात कैसे वजूद में आई, इब्तदाई हालात क्या थे और बाद अज़ा (बाद में) उनमें क्या तब्दीलियाँ हुईं। डाक्टर मौरिस बकाई ने इस ऐतबार से महसूस किया कि तौरात में तो ऐसी चीजें हैं जो ग़लत साबित हो चुकी हैं। इसलिये कि असल तौरात तो छठी सदी क़ब्ले मसीह ही में गुम हो गई थी। बख़्त नसर के हमले में येरुशलम को तहस-नहस कर दिया गया और हैकले सुलेमानी की ईंट से ईंट बजा दी गई, उसकी बुनियादें तक खोद डाली गईं और येरुशलम के बसने वाले छ: लाख की तादाद में क़त्ल कर दिये गए जबकि बख़्त नसर छ: लाख को क़ैदी बना कर भेड़-बकरियों की तरह हाँकते हुए अपने हमराह बाबुल (ईराक़) ले गया। चुनाँचे येरुशलम में एक मुतनफ्फिस (जीव) भी बाक़ी नहीं रहा। आप अंदाज़ा करें, अगर यह आदादो और शुमार (आंकड़े) सही हैं तो हज़रत मसीह अलै० से भी छ: सौ साल क़ब्ल यानि आज से 2600 बरस क़ब्ल येरुशलम बारह लाख की आबादी का शहर था और उस शहर पर क्या क़यामत गुज़री होगी! इसके बाद से वह असल तौरात दुनिया में नहीं है। मूसा अलै० को जो अहकामे अशरह (Ten Commandments) दिये गये थे वह पत्थर की तख़्तियों पर लिखे हुए थे। यह तख़्तियाँ भी लापता हो गईं और बाक़ी तौरात का वजूद भी बाक़ी ना रहा। क़ुरआन हकीम में "مُوسٰى وَاِبْرٰهِيْمَ صُحُفِ" का ज़िक्र है। मूसा अलै० के सहीफ़े पाँच है जो अहद नामा-ए-क़दीम (Old Testament) की पहली पाँच किताबे हैं। सानेहा येरुशलम (Tragedy of

Jerusalem) के तक़रीबन डेढ़ सौ बरस बाद लोगों ने तौरात को अपनी याददाश्तों से मुरत्तब किया। चुनाँचे उस वक़्त की नौए इंसानी की ज़हनी और इल्मी सतह जो थी वो इस पर लाज़िमी तौर पर असर अंदाज़ हुई।

डॉक्टर मौरिस बकाई के अलावा मैं डाक्टर कीथल मूर का हवाला भी दे चुका हूँ कि वह क़ुरआन हकीम में इल्मे जनीन (भ्रूणविज्ञान) से मुताल्लिक़ इशारात पाकर किस क़दर हैरान हुआ कि यह मालूमात चौदह सौ बरस पहले कहाँ से आ गईं! फ़िज़िकल साइंस के मुख़्तलिफ़ फ़ील्ड्स हैं, उनमें जैसे-जैसे इल्मे इंसानी तरक़्क़ी करता जायेगा यह बात मज़ीद मुबरहन (स्पष्ट) होती चली जायेगी कि यह कलामे हक़ है और यह कलाम मज़ाहिर तबीई (भौतिक घटनाओं) के ऐतबार से भी हक़ साबित हो रहा है। यह एक वाज़ेह सुबूत है कि यह क़ुरआन अल्लाह का कलाम है और मुहम्मद صلی اللہ علیہ وسلم अल्लाह के रसूल हैं।

अहदे हाज़िर के ऐतबार से क़ुरआन हकीम के ऐजाज़ का दूसरा अहमतर पहलु इसकी हिदायते अमली है। इसमें इन्फ़रादी (व्यक्तिगत) ज़िन्दगी से मुताल्लिक़ भी मुकम्मल हिदायतें हैं और इंसानी अख़्लाक़ व किरदार और इंसान के रवैये में भी पूरी तफ्सीलात मौजूद हैं। इन्फ़रादी ज़िन्दगी से मुताल्लिक़ यह तमाम चीज़ें साबक़ा अम्बिया की तालीमात में भी मौजूद हैं। यह अख़्लाक़ी इक़दार (moral values) वैसे भी फ़ितरते इंसानी के अंदर मौजूद हैं। क़ुरआन का अपना कहना है: {فَاَلۡہَمَہَا فُجُوۡرَہَا وَتَقۡوٰىہَا} (अश्शम्स:8) यानि नफ़्से इंसानी को इलहामी तौर पर यह मालूम है कि फ़ुजूर (अनैतिकता) क्या हैं और तक़वा (नैतिकता) क्या है।

परहेज़गारी किसे कहते हैं और बद्कारी किसे कहते हैं। अलबत्ता क़ुरआन हकीम का ऐजाज़ यह है कि इसमें अद्ल व क़िस्त (न्याय) पर मब्नी (आधारित) इज्तमाई निज़ाम दिया गया है जिसमें इन्तहाई तवाज़ुन (संतुलन) रखा गया है।

इंसान ग़ौर करे तो मालूम होगा कि नौए इंसानी को तीन बड़े-बड़े उक़द हाए ला यन्हल (dilemmas) दरपेश हैं जो तवाज़ुन (संतुलन) के मत्क़ाज़ी (अपेक्षित) हैं और इनमें अदमे तवाज़ुन (असंतुलन) से इंसानी तमद्दुन (सभ्यता) फ़साद और बिगाड़ का शिकार है। इसमें पहला उक़दा-ए-ला यन्हल यह है कि मर्द और औरत के हुक़ूक़ व फ़राइज़ में क्या तवाज़ुन है? दूसरा यह कि सरमाया और मेहनत के माबैन (बीच) क्या तवाज़ुन है? फिर तीसरा यह कि फ़र्द और रियासत या फ़र्द और इज्तमाइयत के माबैन हुक़ूक़ व फ़राइज़ के ऐतबार से क्या तवाज़ुन है? इन तीनों मामलात में तवाज़ुन क़ायम करना इन्तहाई मुश्किल है। अगर फ़र्द को ज़रा ज़्यादा आज़ादी दे दी जाती है तो अनारकी (chaos) फ़ैलती है। आज़ादी के नाम पर दुनिया में क्या कुछ हो रहा है! दूसरी तरफ़ अगर फ़र्द की आज़ादी पर क़दग़नें (controls) और बंदिशें लगा दी जाऐं तो वह रद्दे अमल होता है जो कम्युनिज़्म के ख़िलाफ़ हुआ। फ़ितरते इंसानी और तबीयते इंसानी ने यह क़द्ग़नें क़ुबूल नहीं कीं और इनके ख़िलाफ़ बग़ावत की।

औरत और मर्द के हुक़ूक़ के माबैन तवाज़ुन का मामला भी इन्तहाई हस्सास (संवेदनशील) है। इस मीज़ान का पलड़ा अगर ज़रा सा मर्द की जानिब झुका दिया जाये तो

औरत की कोई हैसियत नहीं रहती, वह बिल्कुल भेड़-बकरी की तरह मर्द की मिल्कियत बन कर रह जाती है, उसका कोई तशख्खुस (पहचान) नहीं रहता और वह मर्द की जूती की नोक क़रार पाती है। लेकिन अगर दूसरा पलड़ा ज़रा झुका दिया जाये तो औरत को जो हैसियत मिल जाती है वह क़ौमों की क़िस्मतों के लिये तबाहकुन साबित होती है। इससे ख़ानदानी इदारा ख़त्म हो जाता है और घर के अंदर का चैन और सुकून बर्बाद होकर रह जाता है। इसकी सबसे बड़ी मिसाल सेकेण्ड यूनियन मुमालिक हैं। मआशी और इक़तसादी (economic) ऐतबार से यह कहा जा सकता है कि रूऐ अरज़ी (ज़मीन) पर अगर जन्नत देखनी हो तो इन मुल्कों को देख लिया जाये। वहाँ के शहरियों की बुनियादी ज़रूरतें किस उम्दगी के साथ पूरी हो रही है! वहाँ इलाज और तालीम की सहुलियतें सबके लिये यकसा (बराबर) हैं और इस ज़िमन में ख़ैरात (charity) पर पलने वालों और टेक्स अदा करने वालों के माबैन कोई फ़र्क़ व तफ़ावत (असमानता) नहीं है। लेकिन इन मुल्कों में मर्द और औरत के हुक़ूक़ के माबैन तवाज़ुन बरक़रार नहीं रखा गया जिसके नतीजे में ख़ानदान का इदारा मज़्महल (उलट) हुआ, बल्कि टूट-फूट कर ख़त्म हो गया और घर का सुकून नापीद (विलुप्त) हो गया। चुनाँचे आज ख़ुदकुशी की सबसे ज़्यादा शरह (अनुपात) स्वीडन में है। इसलिये कि घर का सुकून ख़त्म हो जाने के बाअस (कारण) आसाब (nerves) पर शदीद तनाव है।

अल्लाह का शुक्र है कि हमारे यहाँ ख़ानदान का इदारा बरक़रार है। अगरचे यहाँ भी नाम-निहाद तौर पर बहुत

ऊँची सतह के लोगों के यहाँ तो वह सूरतें पैदा हो गई हैं, ताहम मज्मुई तौर पर हमारे यहाँ ख़ानदान का इदारा अभी काफ़ी हद तक महफ़ूज़ है। इस ज़िमन में क़ुरआन मजीद में लफ़्ज़ "سکون" इस्तेमाल हुआ है। सूरतुल रूम की आयत 21 मुलाहिज़ा हो:

وَمِنْ اٰيٰتِهٖٓ اَنْ خَلَقَ لَكُمْ مِّنْ اَنْفُسِكُمْ اَزْوَاجًا لِّتَسْكُنُوْٓا اِلَيْهَا وَجَعَلَ بَيْنَكُمْ مَّوَدَّةً وَّرَحْمَةً

"और उसकी निशानियों में से यह है कि उसने तुम्हारे लिये तुम्हारी ही नौअ (जाति) से जोड़े बनाये, ताकि तुम उनके पास सुकून हासिल करो और तुम्हारे दरमियान मुहब्बत और रहमत पैदा कर दी।"

अगर इंसान को यह सुकून नहीं मिलता तो अगरचे उसकी खाने-पीने की ज़रूरतें, जिन्सी तस्कीन (यौन सन्तुष्टि) और दूसरी ज़रूरयाते ज़िन्दगी खूब पूरी हो रही हों लेकिन ज़िन्दगी इंसान के लिये जहन्नम बन जाएगी।

मज़कूरा बाला तीन उक़द हाए ला-यन्हल में से मआशियात का मसला सबसे मुश्किल है। सरमाये को ज़्यादा खल-खेलने का मौका देंगे तो सूरते हाल एक इन्तहा को पहुँच जायेगी और मज़दूर का बद्तरीन इस्तेहसाल (शोषण) होगा, जबकि मज़दूर को ज़्यादा हुक़ूक़ दे देंगे तो सरमाए को कोई तहफ़्फ़ुज़ हासिल नहीं रहेगा। अगर नेशनलाईज़ेशन हो जाये तो लोगों में काम करने का जज़्बा ही नहीं रहता। आपको मालूम है कि हमारे यहाँ नेशनलाईज़ेशन के बाद

क्या हुआ! रूस की इक़्तसादी मौत की अहम वजह यही नेशनलाईज़ेशन थी। तो अब सरमाए और मेहनत में तवाज़ुन के लिये क्या शक़्ल इख़्तियार की जाये? यह है दरहक़ीक़त अहदे हाज़िर में क़ुरआन की हिदायत का अहमतरीन हिस्सा! आज इस पर भरपूर तवज्जह मरकूज़ करने की ज़रूरत है। फ़िज़िकल साइंस से क़ुरआन की हक़्क़ानियत के सुबूत ख़ुद-ब-ख़ुद मिलते चले जायेंगे। जैसे-जैसे साइंस तरक़्क़ी कर रही है नए-नए गोशे सामने आ रहे हैं और इनसे साबित हो रहा है कि यह क़ुरआन हक़ है। लेकिन आज ज़रूरत इस अम्र की है कि क़ुरआन हकीम ने अमरानियाते इंसानिया और इज्तमाइयात मसलन इक़्तसादयात, सियासियात और समाजियात के ज़िमन में जो अदले इज्तमाई दिया है उसके मुबरहन किया जाये। अल्लामा इक़बाल के यह दो शेर इसी हक़ीक़त की निशानदेही कर रहे हैं:

हर कुजा बीनी जहाने रंग व बू
आँ कि अज़ ख़ाकिश बरवीद आरज़ू!
या ज़ नूर मुस्तफ़ा ﷺ ऊ रा बहास्त
या हनूज़ अंदर तलाशे मुस्तफ़ा ﷺ अस्त!

यानि दुनिया में जो सोशल इंक़लाब आया है उसकी सारी चमक-दमक और रोशनी या तो नूरे मुस्तफ़ा ﷺ ही से मुस्तआर (उधार ली गई) और माख़ूज़ (प्राप्त) है या फिर इंसान चार व नाचार हुज़ूर ﷺ के लाये हुए निज़ाम ही की तरफ़ बढ़ रहा है। वह दायें-बायें की ठोकरें और अफ़रात व तफ़रीत (ऊँच-नीच) के धक्के खाकर लड़खड़ाता हुआ चार व नाचार उसी मंज़िल की तरफ़ जा रहा है जहाँ मुहम्मद

रसूल अल्लाह ﷺ और क़ुरआन हकीम ने उसे पहुँचाया था।

अहदे हाज़िर में ऐजाज़े क़ुरान का मज़हर: अल्लामा इक़बाल

वुजूह ऐजाज़े क़ुरआन के ज़िमन में एक अहम बात अर्ज़ कर रहा हूँ कि मेरे नज़दीक अहदे हाज़िर में क़ुरआन के ऐजाज़ का सबसे बड़ा मज़हर अल्लामा इक़बाल की शख़्सियत है। मैंने अर्ज़ किया था कि क़ुरआन हकीम ज़मान (समय) व मकान (जगह) के एक ख़ास तनाज़ुर (दृष्टिकोण) में आज से चौदह बरस क़ब्ल नाज़िल हुआ था। इसके अव्वलीन मुख़ातिब अरब के उजड्ड, देहाती, बद्दू और ना-ख़वान्दा (अशिक्षित) लोग थे जिन्हें क़ुरआन ने "उम्मिय्यीन" और "لُّدًّا قَوۡمًا" क़रार दिया है। लेकिन इस क़ुरान ने उनके अंदर बिजली दौड़ा दी। उनके ज़हन, क़ल्ब और रूह को मुतास्सिर किया, फिर उनमें वलवला पैदा किया, उनके बातिन को मुनव्वर किया। उनकी शख़्सियतों में इंक़लाब आया और अफ़राद बदल गये। फिर उन्होंने ऐसी क़ुव्वत की हैसियत इख़्तियार की कि जिसने दुनिया को एक नया तमद्दुन, नयी तहज़ीब और नये क़वानीन देकर एक नये दौर का आग़ाज़ किया। लेकिन बीसवीं सदी में अल्लामा इक़बाल जैसा एक शख़्स जिसने वक़्त की आला तरीन सतह पर इल्म हासिल किया, जिसने मशरिक़ व मग़रिब के फ़लसफ़े पढ़ लिये, जो क़दीम और जदीद दोनों का जामेअ था, जो जर्मनी और इंग्लिसतान में जाकर फ़लसफ़े पढ़ता रहा, उसको इस क़ुरआन ने इस तरह possess किया और

उस पर इस तरह अपनी छाप क़ायम की कि उसके ज़हन को सुकून मिलता तो सिर्फ़ क़ुरआन हकीम से और उसकी तिशनगी-ए-इल्म (इल्म की प्यास) को आसूदगी (चैन) हासिल हो सकी तो सिर्फ़ किताबुल्लाह से। गोया बक़ौल ख़ुद उनके:

ना कहीं जहाँ में अमाँ मिली, जो अमाँ मिली तो कहाँ मिली

मेरे जुर्मे ख़ाना ख़राब को तेरे अफ़ू-ए-बंदा नवाज़ में!

मेरा एक किताबचा "अल्लामा इक़बाल और हम" एक अरसे से शाया होता है। यह मेरी एक तक़रीर है जो मैंने एचिसन कॉलेज में 1973 ईसवी में की थी। इसमें मैंने अल्लामा इक़बाल के लिये चंद इस्तलाहात इस्तेमाल की हैं। "इक़बाल और क़ुरान" के उन्वान से मैंने अल्लामा इक़बाल को (1) अज़मते क़ुरान का निशान, (2) वाक़िफ़े मर्तबा व मक़ामे क़ुरान, और (3) दाई इलल क़ुरान के ख़िताबात दिये हैं। मैं अल्लामा इक़बाल को इस दौर का सबसे बड़ा तर्जुमानुल क़ुरान समझता हूँ। क़ुरान मजीद के उलूम व मआरफ़ (Studies & Teachings) की जो ताबीर अल्लामा इक़बाल ने की है इस दौर में कोई दूसरी शख़्सियत इसके आस-पास भी नहीं पहुँची। उनसे लोगो ने चीज़ें मुस्तआर (उधार) ली हैं और फिर उनको बड़े पैमाने पर फैलाया है। उन हज़रात की यह ख़िदमत अपनी जगह क़ाबिले क़द्र है, लेकिन फ़िक्री ऐतबार से वह तमाम चीजें अल्लामा इक़बाल के ज़हन की पैदावार हैं।

मज़कूरा बाला किताबचे में मैंने मौलाना अमीन अहसन इस्लाही साहब की गवाही भी शाया की है। कई साल पहले

का वाक़्या है कि मौलाना आँखों के ऑपरेशन के लिये ख़ानक़ा डोगरां से लाहौर आये हुए थे और ऑपरेशन में किसी वजह से ताख़ीर हो रही थी। घर से बाहर होने की वजह से उनके लिखने-पढ़ने का सिलसिला मौअत्तल (delay) हो गया। ताहम फ़ुरसत के उन अय्याम में मौलाना ने अल्लामा इक़बाल का पूरा उर्दू और फ़ारसी कलाम दोबारा पढ़ लिया। इसके बाद उन्होंने उसके बारे में मुझसे दो तास्सुर (impression) बयान किये। मौलाना का पहला तास्सुर तो यह था कि "क़ुरआन हकीम के बाज़ मक़ामात के बारे में मुझे कुछ मान सा था कि मैंने उनकी ताबीर जिस अस्लूब से की है शायद कोई और ना कर सके। लेकिन अल्लामा इक़बाल के कलाम के मुताअले से मालूम हुआ कि वह उनकी ताबीर मुझसे बहुत पहले और मुझसे बहुत बेहतर कर चुके हैं!" मौलाना इस्लाही साहब का दूसरा तास्सुर यह था कि "इक़बाल का कलाम पढ़ने के बाद मेरा दिल बैठ सा गया है कि अग़र ऐसा हदी ख़वाँ (extent reader) इस उम्मत में पैदा हुआ, लेकिन यह उम्मत टस से मस ना हुई तो हमा-शमा (forgive us) के करने से क्या होगा!" जो क़ौम अल्लामा इक़बाल से हरकत में नहीं आई उसे कौन हरकत में ला सकेगा।

वाक़्या यह है कि मेरे नज़दीक इस दौर का सबसे बड़ा तर्जुमानुल क़ुरआन और सबसे बड़ा दाई इलल क़ुरान अल्लामा इक़बाल है। इसलिये की क़ुरान मजीद की अज़मत का जिस गैराई (विस्तार) और गहराई के साथ अहसास अल्लामा इक़बाल को हुआ है मेरी मालूमात की हद तक (अग़रचे मेरी मालूमात महदूद है) इस दर्जे क़ुरआन की

अज़मत का इन्कशाफ़ (खोज) किसी और इंसान पर नहीं हुआ। जब वह क़ुरआन मजीद की अज़मत बयान करते हैं तो ऐसा महसूस होता है कि यह उनकी दीद और उनका तजुर्बा है, क्योंकि जिस अंदाज़ से वह बात बयान करते हैं वह तकल्लुफ़ और आवर्द (अवतरण) से मावरा (बढ़ कर) अंदाज़ होता है। मुलाहिज़ा कीजिये कि अल्लामा इक़बाल क़ुरआन मजीद के बारे में क्या कहते हैं:

आँ किताबे ज़िन्दा क़ुरआने हकीम
हिकमत ऊ ला यज़ाल अस्त व क़दीम
नुस्ख़ा इसरारे तकवीन हयात
बे सबात अज़ कौतश गीरद सबात
हर्फ़े ऊ रा रैब ने, तब्दील ने
आया इश शर्मिंदा-ए-तावील ने
फाश गोयम आँच दर दिल मुज़मर अस्त
ईं किताबे नीस्त चीज़ें दीगर अस्त
मिस्ल हक़ पिन्हाँ व हम पैदा सत ईं
जिन्दा व पाइन्दा व गोया अस्त ईं
चूँ बजाँ दर रफ़्त जाँ जो दीगर शूद
जाँ चू दीगर शद जहाँ दीगर शूद!

"वह ज़िन्दा किताब, क़ुरआन हकीम, जिसकी हिकमत लाज़वाल भी है और क़दीम भी!
ज़िन्दगी के वजूद में आने ख़ज़ाना, जिसकी हयात अफ़रोज़ और क़ुव्वत बख़्श तासीर से बेसबात भी सबात व दवाम हासिल कर सकते हैं।

इसके अल्फ़ाज़ में ना किसी शक व शुबह का शाइबा है ना रद्दो बदल की गुंजाईश। और इसकी आयतें किसी तावील की मोहताज़ नहीं।

(इस किताब के बारे में) जो बात मेरे दिल में पोशीदा है उसे ऐलानिया ही कह गुज़रूँ? हक़ीक़त यह है कि यह किताब नहीं कुछ और ही शय है!

यह ज़ाते हक़ सुब्हानहु व तआला (का कलाम है लिहाज़ा उसी) के मानिन्द पोशीदा भी है और ज़ाहिर भी, और जीती-जागती बोलती भी है और हमेशा क़ायम रहने वाली भी!

(यह किताबे हकीम) जब किसी के बातिन में सरायत (जम) कर जाती है तो उसके अंदर एक इंक़लाब बरपा हो जाता है, जब किसी के अंदर की दुनिया बदल जाती है तो उसके लिये पूरी दुनिया ही इंक़लाब की ज़द में आ जाती है।"

क़ुरान हकीम के बारे में मज़ीद लिखते हैं:

सद जहाने ताज़ा दर आयाते ऊस्त
अस्र हा पेचीदा दर आनाते ऊस्त!

"इसकी आयतों में सैंकड़ों ताज़ा जहान आबाद हैं और इसके एक-एक लम्हें में बेशुमार ज़माने मौजूद हैं।" (गोया हर ज़माने में यह क़ुरआन एक नई शान और नई आन-बान के साथ दुनिया में आया है और आता रहेगा।)

अब आप अल्लामा इक़बाल के तीन अशआर मुलाहिज़ा कीजिए जो उन्होंने नबी अकरम ﷺ से मुनाजात (प्रार्थना) करते हुए कहे। इनसे आपको अंदाज़ा होगा कि

उन्हें कितना यक़ीन था कि मेरे फ़िक्र का मिम्बा (स्रोत) क़ुरआन हकीम है। चुनाँचा "मस्नवी इसरारो रमूज़" के आख़िर में "अर्ज़े हाले मुसन्निफ़ बहुज़ूर रहमतुल लिल्आलमीन ﷺ" के ज़ेल में यहाँ तक लिख दिया कि:

गर दिलम आईना बे जौहर अस्त
वर बहर्फ़म ग़ैर क़ुराँ मज़मर अस्त
पर्दा-ए-नामूसे-ए-फ़िकरम चाक कुन
ईं ख़याबाँ रा ज़ख़ारम पाक कुन!
रोज़े महशर ख़्वार व रुस्वा कुन मरा!
बे नसीब अज़ बोसा पा कुन मरा!

"अगर मेरे दिल की मिसाल उस आईने की सी है जिसमें कोई जौहर ही ना हो, और अग़र मेरे कलाम में क़ुरआन के सिवा किसी और शय की तर्जुमानी है, तो (ऐ नबी ﷺ!) आप मेरे नामूसे फ़िक्र का पर्दा ख़ुद चाक फ़रमा दें और इस चमन को मुझ जैसे ख़ार से पाक कर दें। (मज़ीद बीराँ) हश्र के दिन मुझे ख़्वार व रुसवा कर दें और (सबसे बढ़ कर यह कि) मुझे अपनी क़दमबोसी की सआदत से महरूम फ़रमा दें!"

मैंने अपनी इम्कानी हद तक क़ुरआन हकीम का पूरी बारीक बीनी से मुताअला किया है और इस पर ग़ौर फ़िक्र और सोच-विचार किया है। मैंने अल्लामा इक़बाल का उर्दू और फ़ारसी कलाम भी पढ़ा है। इसके बाद मैंने यह बात रिकॉर्ड करानी ज़रूरी समझी है कि अल्लामा इक़बाल के बारे में मैंने जो बात 1973 ईसवी में कही आज भी मैं उसी बात पर क़ायम हूँ कि "इस दौर में अज़मते क़ुरआन और

मर्तबा व मक़ामे क़ुरआन का इन्कशाफ़ जिस शिद्दत के साथ और जिस दर्जे में अल्लामा इक़बाल पर हुआ शायद ही किसी और पर हुआ हो।" और यह कि मेरे नज़दीक इस दौर का सबसे बड़ा तर्जुमानुल क़ुरआन और दाई इलल क़ुरआन इक़बाल है। अल्लामा इक़बाल मुसलमानों की क़ुरआन से दूरी पर मर्सिया कहते:

जानता हूँ मैं यह उम्मत हामिले क़ुराँ नहीं
है वही सरमाया दारी बंदा-ए-मोमिन का दीं!

मुसलमानों को क़ुरआन की तरफ़ मुतवज्जह करते हुए कहते हैं:

बायातिश तरा कारे जुज़ ईं नीस्त
कि अज़ यासीन अव आसाँ बमीरी!

"इस क़ुरआन के साथ तुम्हारा इसके सिवा और कोई सरोकार नहीं रहा कि तुम किसी शख़्स को आलमे नज़ा में इसकी सूरह यासीन सुना दो, ताकि उसकी जान आसानी से निकल जाए।"

हमारे यहाँ सूफ़ी और वाअज़ हज़रात ने क़ुरआन को छोड़ कर अपनी मजालिस और अपने वाज़ के लिये कुछ और चीज़ों को मुन्तख़ब कर लिया है, तो इस पर इक़बाल ने किस क़दर दर्दनाक मर्सिये कहे हैं और किस क़दर सही नक्शा खींचा है:

सूफ़ी पशमिना पोशे हाल मस्त
अज़ शराबे नग़मा क़वाल मस्त
आतिश अज़ शेरे इराक़ी दर दिलश
दर नमी साज़द ब-क़ुराँ मुफ़फिलश

और:

वाज़े दस्ताँ ज़न व अफ़साना बंद
मानी ऊ पस्त व हर्फ़े ऊ बुलंद
अज़ ख़तीब व देलमी गुफ्तारे अव
बा ज़ईफ़ व शाज़ व मरसिल कारे ऊ!

"अदना लिबास में मल्बूस और अपने हाल में मस्त सूफी क़व्वाल के नग़मे की शराब ही से मदहोश है। उसके दिल में इराक़ी के किसी शेर से तो आग सी लग जाती है लेकिन उसकी महफ़िल में क़ुरआन का कहीं गुज़र नहीं!

(दूसरी तरफ़) वाइज़ का हाल यह है कि हाथ भी ख़ूब चलाता है और समाँ भी ख़ूब बाँध देता है और उसके अल्फ़ाज़ भी पुर शिकवा और बुलंद व बाला हैं, लेकिन मायने के ऐतबार से निहायत पस्त और हल्के! उसकी सारी गुफ़्तगू (बजाए क़ुरआन के) या तो ख़तीब बग़दादी से माख़ूज़ होती है या इमाम देलमी से, और उसका सारा सरोकार बस ज़ईफ़, शाज़ और मरसिल हदीसों से रह गया है!"

अल्लामा इक़बाल के नज़दीक मुसलमानों के ज़वाल व इज़्महलाल (तड़प) का और उम्मते मुस्लिमा के नक्बत (कष्ट) व इफ़लास (तंगी) और ज़िल्लत व ख्वारी का असल सबब क़ुरआन से दूरी और किताबे इलाही से बादुही है। चुनाँचे "जवाबे शिकवा" का एक शेर मुलाहिज़ा कीजिये:

वो ज़माने में मौअज़्ज़ज़ थे मुसलमाँ होकर
और तुम ख़्वार हुए तारिके क़ुराँ हो कर!

बाद में इसी मज़मून का इआदा (repeat) अल्लामा मरहूम ने फ़ारसी में निहायत पुर शिकवा अल्फ़ाज़ और हद दर्जा दर्दअँगेज़ और हसरत आमेज़ पैराए में यूँ किया:

ख़्वार अज़ महजूरी क़ुराँ शदी
शिकवा सन्ज गर्दिशे दौराँ शदी
ऐ चू शबनम बर ज़मीन अफ़्तनदह
दर बग़ल दारी किताबे ज़िन्दाह!

"(ऐ मुसलमान!) तेरी ज़िल्लत और रुसवाई का असल सबब तो यह है कि तू क़ुरआन से दूर और बे-ताल्लुक़ हो गया है, लेकिन तू अपनी इस ज़बूं हाली पर इल्ज़ाम गर्दिशे ज़माना को दे रहा है! ऐ वो क़ौम जो शबनम के मानिन्द ज़मीन पर बिखरी हुई है (और पाँव तले रौंदी जा रही है)! उठ कि तेरी बग़ल में एक किताबे ज़िन्दा मौजूद है (जिसके ज़रिये तू दोबारा बामे उरूज़ [शिखर] पर पहुँच सकती है।)"

मैं अपना यह तास्सुर एक बार फिर दोहरा रहा हूँ कि असरे हाज़िर में क़ुरान की अज़मत जिस दर्जा उन पर मुन्कशिफ़ हुई थी, मैं अपनी महदूद मालूमात की हद तक कहने को तैयार हूँ कि वह मुझे कहीं और नज़र नहीं आती। मेरे नज़दीक अल्लमा इक़बाल दौरे हाज़िर में ऐजाज़े क़ुरआन का एक अज़ीम मज़हर हैं।

❀ ❀ ❀

बाब हश्तम (आँठवा)

क़ुरान मजीद से हमारा ताल्लुक़

क़ुरान "हबलुल्लाह" है!

जब हम कहते हैं कि क़ुरान "हबलुल्लाह" है! तो इसके क्या मायने हैं? "हबल" के एक मायने रस्सी के हैं और यही असल मायने हैं। सूरतुल लहब में यह लफ़्ज़ आया है: {فِيْ جِيْدِهَا حَبْلٌ مِّنْ مَّسَدٍ} यानी मूंज की बटी हुई रस्सी। इमाम राग़िब रहि० ने इसकी ताबीर की है: "استعیر للوصل ولکل مایتوسل بہ الی شیء" यानी किसी शय से जुड़ने के लिये और जिस शय से जुड़ा जाये उसके लिये इस्तआरतन (रूपक) यह लफ़्ज़ इस्तेमाल होता है। अहद, क़ौल व करार और मीसाक़ दो फरीक़ों को बाहम (एक साथ) जोड़ देता है। चुनाँचे यह लफ़्ज़ अहद के मायने में भी आता है, और क़ुरान हकीम में यह ऐसे अहद के लिये आया है जिससे किसी को अमन मिल रहा हो, हिफ़ाज़त और अमान हासिल हो रही हो। सूरह आले इमरान (आयत 112) में यहूद के बारे में इर्शाद हुआ:

ضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ الذِّلَّةُ اَيْنَ مَا ثُقِفُوْٓا اِلَّا بِحَبْلٍ مِّنَ اللّٰهِ وَحَبْلٍ مِّنَ

"यह जहाँ भी पाये गये इन पर ज़िल्लत की मार ही पड़ी, सिवाय इसके कि कहीं अल्लाह के ज़िम्मे या इन्सानों के ज़िम्मे में पनाह मिल गयी। यह अल्लाह के ग़ज़ब में घिर चुके हैं, इन पर मोहताजी

النَّاسِ وَبَآءُوْ بِغَضَبٍ مِّنَ اللّٰهِ وَضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ الْمَسْكَنَةُ ؕ

और कम हिम्मती मुसल्लत कर दी गयी है।"

गोया खुद अपने बल पर, अपने पाँव पर खड़े होकर, ख़ुद मुख्तारी की असास (self-sufficient foundation) पर उनके लिये इज़्ज़त का मामला इस दुनिया में नहीं है। यह क़ुरान मजीद की पेशनगोई है और मौजूदा रियासते इसराइल इसका वाज़ेह सबूत है। अमेरिका अगर एक दिन के लिये भी अपनी हिफ़ाज़त हटा ले तो इसराइल का वजूद बाक़ी नहीं रहेगा।

क़ुरान मजीद (आले ईमरान:103) में अहले ईमान से फ़रमाया गया है:

وَاعْتَصِمُوْا بِحَبْلِ اللّٰهِ جَمِيْعًا

"अल्लाह की रस्सी को मज़बूती से पकड़ लो सब मिल कर।"

अलबत्ता "हबलुल्लाह" क्या है? क़ुरान में इसकी सराहत (विवरण) नहीं है। और क़ुरान मजीद में जो बात पूरी तरह वाज़ेह ना हो, मुज्मल (संक्षिप्त) हो, उसकी तशरीह (व्याख्या) और तबयीन (समझाना) रसूल अल्लाह ﷺ का फर्ज़े मन्सबी (कर्तव्य) है। अज़रुए अल्फ़ाज़े क़ुरानी:

وَاَنۡزَلۡنَاۤ اِلَیۡکَ الذِّکۡرَ لِتُبَیِّنَ لِلنَّاسِ مَا نُزِّلَ اِلَیۡہِمۡ

"और हमने (ऐ नबी ﷺ) आपकी तरफ़ 'अज़ ज़िक्र' नाज़िल किया, ताकि जो चीज़ उनके लिये उतारी गयी है आप उसे उन पर वाज़ेह करें।" (सूरह नहल:44)

चुनाँचे अहादीस नबवी ﷺ में सराहत मौजूद है कि "हबलुल्लाह" क़ुरान मजीद है। सही मुस्लिम में हज़रत ज़ैद बिन अरक़म (रज़ि०) से मरवी यह हदीस नक़ल हुई है कि रसूल अल्लाह ﷺ ने इर्शाद फ़रमाया:

اَلَا وَاِنِّیۡ تَارِکٌ فِیۡکُمۡ ثَقَلَیۡنِ، اَحَدُھُمَا کِتَابُ اللہِ عَزَّوَجَلَّ ھُوَ .... حَبۡلُ اللہِ

"आगाह रहो! मैं तुम्हारे माबैन (बीच) दो ख़ज़ाने छोड़े जा रहा हूँ, उनमें से एक अल्लाह की किताब है, वही हबलुल्लाह है....."

क़ुरान हकीम के बारे में हज़रत अली (रज़ि०) से एक तवील हदीस मरवी है, जिसमें अल्फ़ाज़ आये हैं: ((ھُوَ حَبۡلُ اللہِ الۡمَتِیۡنُ)) "यह (क़ुरान) ही अल्लाह की मज़बूत रस्सी है।" यह रिवायत सुनन तिरमिज़ी और सुनन दारमी में मौजूद है। मज़ीद बराँ (बढ़ कर) हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) से जो रिवायत रज़ीन में आयी है उसमें भी यही अल्फ़ाज़ हैं: ((ھُوَ حَبۡلُ اللہِ الۡمَتِیۡنُ)) "यह क़ुरान ही अल्लाह की मज़बूत रस्सी है।" सुनन दारमी में हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) से रिवायत है कि अल्लाह के रसूल अल्लाह ﷺ ने इर्शाद फ़रमाया: اِنَّ ھٰذَا الۡقُرۡاٰنَ حَبۡلُ اللہِ

وَالنُّوْرُ الْمُبِيْنُ "यक़ीनन यह क़ुरान हबलुल्लाह और नूरे मुबीन है।"

क़ुरान को "रस्सी" किस ऐतबार से कहा गया है, इसके दो पहलु हैं। एक तो बंदा इस रस्सी के ज़रिये अल्लाह से जुड़ता है। यह रस्सी हमें अल्लाह से जोड़ने वाली है। "ताल्लुक़ माअ अल्लाह" और "तक़र्रुब इलल्लाह" दोनों तसव्वुफ़ (रहस्यवाद) की इस्तलाहें (मुहावरे) हैं। ताल्लुक़ के मायने हैं लटक जाना। "अलक़" लटकी हुई शय को कहते हैं। "ताल्लुक़ माअ अल्लाह" का मफ़हूम होगा अल्लाह से लटक जाना, यानि अल्लाह से चिमट जना, अल्लाह के साथ जुड़ जाना। इसी तरह "तक़र्रुब इलल्लाह" का मतलब है अल्लाह से क़रीब से क़रीब तर होने की कोशिश करना। सलूक (व्यवहार) और तरीक़त (रास्ता) का मक़सद यही है। ताल्लुक़ माअ अल्लाह में इज़ाफ़े और तक़र्रुब इलल्लाह का मौअसर तरीन (सबसे प्रभावी) और सहल तरीन (सबसे आसान) ज़रिया क़ुरआन हकीम है।

इस ऐतबार से दो हदीसें मुलाहिज़ा कीजिए। एक के रावी हज़रत अबदुल्लाह बिन मसऊद (रज़ि०) हैं। हदीस के अल्फ़ाज़ हैं:

اَلْقُرْآنُ حَبْلُ اللهِ الْمَمْدُوْدُ مِنَ السَّمَاءِ اِلَى الْاَرْضِ

"यह क़ुरान अल्लाह की रस्सी है जो आसमान से ज़मीन तक तनी हुई है।"

यही अल्फ़ाज़ हज़रत ज़ैद बिन अरक़म (रज़ि०) से मरफ़ूअन भी रिवायत किये गए हैं। यानी अगर अल्लाह से जुड़ना है, अल्लाह से ताल्लुक़ क़ायम करना है तो इस क़ुरान को

मज़बूती के साथ थाम लो, इससे तुम अल्लाह से जुड़ जाओगे, अल्लाह का क़ुर्ब हासिल कर लोगे।

दूसरी मौअज्जम कबीर (क़ीमती खज़ाना) तिबरानी की बड़ी प्यारी रिवायत है। उसमें इन अल्फ़ाज़ में नक़्शा खींचा गया है कि हुज़ूर ﷺ अपने हुजरे से बरामद हुए तो आप ﷺ ने मस्जिद के गोशे (कोने) में देखा कि कुछ सहाबा (रज़ि०) क़ुरान का मुज़करा (discussion) कर रहे थे, क़ुरान को समझ और समझा रहे थे। हुज़ूर ﷺ उनके पास तशरीफ़ लाये और बड़ा प्यारा सवाल किया:

أَلَسْتُمْ تَشْهَدُوْنَ اَنْ لَّا اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَاَنِّیْ رَسُوْلُ اللّٰهِ وَاَنَّ هٰذَا الْقُرْآنَ جَاءَ مِنْ عِنْدِ اللّٰهِ؟

"क्या तुम इस बात की गवाही नहीं देते कि अल्लाह के सिवा कोई माबूद नहीं और मैं अल्लाह का रसूल हूँ और यह क़ुरान अल्लाह के पास से आया है?"

सहाबा (रज़ि) का जवाब इसके सिवा और क्या हो सकता था: "بَلٰی یَا رَسُوْلَ اللّٰهِ!" यानी "क्यों नहीं ऐ अल्लाह के रसूल ﷺ, हम इसके गवाह हैं! इस पर आप ﷺ ने फ़रमाया:

فَاسْتَبْشِرُوْا فَاِنَّ هٰذَا الْقُرْآنَ طَرَفُهٗ بِاَيْدِيْكُمْ وَطَرَفُهٗ بِيَدِ اللّٰهِ

"पस तुम खुशियाँ मनाओ, इसलिये कि यह क़ुरान वह शय है जिसका एक सिरा तुम्हारे हाथ में है और दूसरा सिरा अल्लाह के हाथ में है।"

इन अहादीस मुबारका से "हबलुल्लाह" का यह तसव्वुर वाज़ेह हो जाता है कि यह अल्लाह के साथ जोड़ने वाली शय है।

अभी हमने जिस हदीस का मुताअला किया उसमें क़ुरआन हकीम के लिये "جَآءَ مِنْ عِنْدِ اللّٰهِ" के अल्फ़ाज़ आये हैं, कि यह क़ुरान अल्लाह के पास से आया है। मुस्तदरक हाकिम और मरासील अबु दाऊद में हज़रत अबुज़र गफ़ारी (रज़ि०) से रसूल अल्लाह ﷺ की यह हदीस नक़ल हुई है:

اِنَّكُمْ لَا تَرْجِعُوْنَ اِلَى اللّٰهِ بِشَیْءٍ اَفْضَلَ مِمَّا خَرَجَ مِنْهُ يَعْنِي الْقُرْآنَ

यानि *"तुम लोग अल्लाह तआला की तरफ़ रुजू और उसके यहाँ तक़र्रुब उस चीज़ से बढ़ कर किसी और चीज़ से हासिल नहीं कर सकते जो ख़ुद उसी (अल्लाह तआला) से निकली है, यानि क़ुरान मजीद।"*

दरहक़ीक़त क़ुरान चूँकि अल्लाह का कलाम है और कलाम मुतकल्लिम की सिफत होता है, तो इससे बढ़ कर क़रीब होने का कोई और ज़रिया हो ही नहीं सकता। चुनाँचे जब कोई शख्स क़ुरान पढ़ता है तो गोया वह अल्लाह से हमकलाम होता है। हज़रत अब्दुल्लाह बिन मुबारक रहि० तबै ताबईन के दौर की शख्सियत हैं। उन्होंने अपना मामूल बना लिया था कि साल में छः महीने सरहदों पर जिहाद में शरीक होते। उस दौर में दारुल इस्लाम की सरहदें बढ़ रही थीं और उसके लिये जिहाद जारी था। जबकि छः महीने आप रहि० घर पर गुज़ारते और इस अरसे में लोगों से मिलने-जुलने से हत्तल इम्कान गुरेज़ करते। सिर्फ नमाज़ बा-जमात के लिये मस्जिद में आते, बाक़ी वक़्त घर पर ही रहते। किसी ने कहा कि अब्दुल्लाह! आप तन्हाई पसंद हो गए हैं, तन्हाई से आपकी तबीयत उकताती नहीं? उन्होंने फ़रमाया: "क्या तुम उस शख्स को तन्हा समझते हो जो अल्लाह से

हमकलाम होता है और रसूल अल्लाह ﷺ की सोहबत से फैज़याब होता है?" लोग हैरान हुए कि यह क्या कह रहे हैं। जब इसकी वज़ाहत तलब की गई तो फ़रमाया कि देखो जब मैं अकेला होता हूँ तो क़ुरान पढ़ता हूँ या हदीस पढ़ता हूँ। जब क़ुरान पढ़ता हूँ तो अल्लाह से हमकलाम होता हूँ और जब हदीस पढ़ता हूँ तो रसूल अल्लाह ﷺ की सोहबत से फ़ैज़याब होता हूँ। तुम मुझे तन्हा ना समझो:

दीवाना-ए-चमन की सैरें नहीं हैं तन्हा
आलम है इन गुलों में, फूलों में बस्तियाँ हैं!

मसनद अहमद, तिरमिज़ी, अबु दाऊद, निसाई, इब्ने माजा और सही इब्ने हब्बान में हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रज़ि०) से यह हदीसे नबवी मन्क़ूल है:

يُقَالُ لِصَاحِبِ الْقُرْآنِ اقْرَأْ وَارْتَقِ وَرَتِّلْ كَمَا كُنْتَ تُرَتِّلُ فِي الدُّنْيَا فَإِنَّ مَنْزِلَكَ عِنْدَ آخِرِ آيَةٍ تَقْرَأُهَا

"(क़यामत के दिन) साहिबे क़ुरान से कहा जायेगा कि क़ुरान शरीफ़ पढ़ता जा और (जन्नत के दरजात पर) चढ़ता जा, और ठहर-ठहर कर पढ़ जैसा कि तू दुनिया में ठहर-ठहर कर पढ़ता था। पस तेरा मक़ाम वही है जहाँ आखरी आयत हर पहुँचे।"

लेकिन वाज़ेह रहे कि साहिबे क़ुरान से मुराद सिर्फ़ हाफ़िज़े क़ुरान या हमारे यहाँ पाए जाने वाले क़ारी नहीं हैं, बल्कि वह हाफिज़ व क़ारी मुराद हैं जो क़ुरान के इल्म व हिकमत से भी वाकिफ़ हैं, उसको पढ़ते भी हैं और उस पर अमल पैरा (पालन करना) भी हैं। जन्नत में इस क़ुरान के ज़रिये उनके दरजात में तरक्क़ी होती चली जायेगी और उनका आखरी

मक़ाम वहाँ मुअय्यन होगा जहाँ उनका सरमाया-ए-क़ुरान ख़त्म होगा। तो वाक़्या यह है कि तक़र्रुब इलल्लाह और वसल इलल्लाह का मौअस्सर तरीन (असरदार) ज़रिया क़ुरान हकीम ही है। मैंने इसी लिये इमाम राग़िब रहि० के अल्फ़ाज़ का हवाला दिया था कि "हबल" का लफ्ज़ वसल के लिये इस्तआरतन (रूपक) इस्तेमाल होता है और यह हर उस शय के लिये इस्तेमाल होगा जिसके ज़रिये किसी शय के साथ जुड़ा जाये। इस मायने में हबलुल्लाह क़ुरान मजीद है।

अगर पैराशूट की मिसाल सामने रखें तो जुमला ईमानियात इस क़ुरान के साथ इस तरह जुड़े हुए हैं जिस तरह पैराशूट की छतरी की रस्सियाँ नीचे आकर एक जगह जुड़ जाती हैं। जब पैराशूट खुलता है तो उसकी छतरी किस क़दर वसीअ (चौड़ी) होती है, लेकिन उसकी सारी रस्सियाँ एक जगह आकर जुड़ी हुई होती हैं। बा-अल्फ़ाज़ दीगर (दूसरे लफ़्ज़ों में) जितने भी शोबे हैं वह सबके सब क़ुरान के साथ मुन्सलिक (जुड़े हुए) हैं। चुनाँचे क़ुरान पर यह यक़ीन मतलूब है कि यह इन्सानी कलाम नहीं है, बल्कि इसका मिम्बा और सरचश्मा वही है जो मेरी रूह का मिम्बा और सरचश्मा है। यह कलाम भी ज़ाते बारी तआला ही से सादर (जारी) हुआ है और मेरी रूह भी अल्लाह ही के अम्रे कुन (हुक्म) का ज़हूर (हाजिर) है। इस अन्दाज़ से क़ुरान पर यक़ीन, अल्लाह तआला पर यक़ीन और क़ुरान लाने वाले मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर यक़ीन मतलूब है। ("हकीक़ते ईमान" के मौज़ू पर मेरी पाँच तक़ारीर में यह मज़मून आ चुका है)।

एक ईमान तो तक़लीदी (बनावटी) है, यानि गैर शऊरी ईमान, कि एक यक़ीन की कैफ़ियत पैदा हो जाती है, चाहे वह अला वजह अल् बसीरत (अंतर्द्रीष्टि में) ना हो, और वह भी बहुत बड़ी दौलत है, लेकिन इससे कहीं ज़्यादा क़ीमती ईमान वह है जो अला वजह अल बसीरत हो। अज़रुए अल्फ़ाज़े क़ुरानी:

قُلۡ هٰذِهٖ سَبِيۡلِىۡۤ اَدۡعُوۡۤا اِلَى اللّٰهِ ؔ عَلٰى بَصِيۡرَةٍ اَنَا وَمَنِ اتَّبَعَنِىۡ ؕ

"(ऐ नबी ﷺ!) कह दीजिये कि यह मेरा रास्ता है, मैं अल्लाह की तरफ़ बुलाता हूँ समझ-बूझ कर और जो मेरे साथ हैं (वह भी)।" (युसुफ:108)

अला वजह अल् बसीरत ईमान यानि शऊरी ईमान, इकतसाबी (प्राप्त) ईमान और हक़ीक़ी ईमान का वाहिद मिम्बा और सरचश्मा क़ुरान हकीम है। मौलाना ज़फ़र अली खान बहुत ही सादा अल्फ़ाज़ में एक बहुत बड़ी हक़ीक़त बयान कर गये हैं:

वो जिन्स नहीं ईमान जिसे ले आऐं दुकान-ए-फ़लसफ़ा से
ढूंढे से मिलेगी आक़िल को यह क़ुरआं के सिपारों में

आक़िल यानी गौरो फ़िक्र करने वाले और सोच-विचार करने वाले के लिये ईमान का मिम्बा व सरचश्मा सिर्फ़ क़ुरआने हकीम है।

क़ुरान हकीम के "हबलुल्लाह" होने का एक दूसरा पहलु भी है और वह यह कि अहले ईमान को जोड़ने वाली रस्सी, उनको बाहम एक-दूसरे से बाँध देने वाली शय, उनको बुनियादे मरसूस बनाने वाली चीज़ यह क़ुरान है। इसलिये कि क़ुरान हकीम में जहाँ अल्लाह की रस्सी को मज़बूती के

साथ थामने का हुक्म आया है वहाँ उसके साथ ही बाहम मुतफ़र्रिक़ (अलग) होने से रोका गया है। फ़रमाया:

وَاعْتَصِمُوْا بِحَبْلِ اللّٰهِ جَمِيْعًا وَّلَا تَفَرَّقُوْا ۠

"और मज़बूती से थाम लो अल्लाह की रस्सी को सब मिल-जुल कर और तफ़रक़ा मत डालो!"

अहले ईमान को जोड़ने वाली और बुनयाने मरसूस (ठोस बुनियाद) बनाने वाली रस्सी यही क़ुरान हकीम है। इसलिये कि इन्सानी इत्तेहाद वही मुस्तहकम (स्थिर) और पायेदार होगा जो फ़िक्र व नज़र की हम आहंगी के साथ हो। बहुत से इत्तेहाद वक़्ती तौर पर वजूद में आ जाते हैं। जैसे कुछ सियासी मसलहतें हैं तो इत्तेहाद क़ायम कर लिया, कोई दुनियावी मफ़ादात हैं तो उनकी बिना पर इत्तेहाद क़ायम कर लिया। यह इत्तेहाद हक़ीक़ी नहीं होते और ना ही पायेदार और मुस्तहकम होते हैं। इन्सान हैवाने आक़िल है। यह सोचता है, ग़ौर करता है, इसके नज़रियात हैं, इसके कुछ एहराफ व मक़ासिद हैं, कोई नस्बुल ऐन (लक्ष्य) है। नज़रियात, मक़ासिद और नस्बुल ऐन का बड़ा गहरा रिश्ता होता है। तो जब तक उनमें हम आहंगी ना हो कोई इत्तेहाद पायेदार और मुस्तहकम नहीं होगा। इस ऐतबार से अल्लाह की इस रस्सी को मज़बूती से थामोगे तो गोया दो रिश्ते क़ायम हो गये। एक रिश्ता अहले ईमान का अल्लाह के साथ और एक रिश्ता अहले ईमान का एक-दूसरे के साथ। जैसे कुल शरीअत को ताबीर किया जाता है कि शरीअत नाम है हुक़ूक़ुल्लाह और हुक़ूक़ुल इबाद का। अल्लाह के साथ जोड़ने वाली सबसे बड़ी इबादत नमाज़ है और बन्दों के साथ

ताल्लुक़ क़ायम करने वाली शय ज़कात है। इसी तरह हबलुल्लाह एक तरफ़ अहले ईमान को अल्लाह से जोड़ रही है और दूसरी तरफ़ अहले ईमान को आपस में जोड़ रही है। यह उन्हें बुनयाने मरसूस (ठोस बुनियाद) और "كَجَسَدٍ وَاحِدٍ" बना देने वाली शय है। यही वह बात है जिसे अल्लमा इक़बाल ने इन्तहाई ख़ूबसूरती से कहा है:

अज़ यक आईनी मुसलमाँ ज़िन्दा अस्त
पैकर मिल्लत अज़ क़ुरआं ज़िन्दा अस्त
मा हमा ख़ाक व दिले आगाह ऊस्त
ऐतशामशे कुन कि हबलुल्लाह ऊस्त!

"वहदते आईन ही मुस्लमान की ज़िन्दगी का असल राज़ है और मिल्लते इस्लामी के जसद-ए-ज़ाहिरी में रुहे बातिनी की हैसियत सिर्फ़ क़ुरान को हासिल है। हम तो सर से पाँव तक ख़ाक ही ख़ाक हैं, हमारा क़ल्बे ज़िन्दा और हमारी रूहे ताबंदाह (फॉस्फोरस) तो असल में क़ुरान ही है। लिहाज़ा ऐ मुस्लमान! तू क़ुरान को मज़बूती से थाम ले कि 'हबलुल्लाह' यही है।"

हबलुल्लाह के बारे में मुफ़स्सिरीन के यहाँ बहुत से अक़वाल मिलते हैं कि हबलुल्लाह से मुराद क़ुरान है, कलमा-ए-तैय्यबा है, इस्लाम है। यह सारी चीज़ें अपनी जगह पर दुरुस्त हैं लेकिन अहादीस नबवी ﷺ की रोशनी में इसका मिस्दाक़े कामिल क़ुरान ही है। और फिर इसकी जिस क़दर उम्दा ताबीर अल्लामा इक़बाल ने की है, यह फसाहत व बलाग़त के ऐतबार से भी मेरे नज़दीक बहुत उम्दा मक़ाम है:

मा हमा ख़ाक व दिले आगाह ऊस्त
ऐतशामशे कुन कि हबलुल्लाह ऊस्त!

नोट कीजिये कि क़ुरान मजीद में: { وَاعْتَصِمُوْا بِحَبْلِ اللّٰهِ جَمِيْعًا وَّلَا تَفَرَّقُوْا ۠} के अल्फ़ाज़ के बाद फ़रमाया गया है: (आले इमरान:103)

وَاذْكُرُوْا نِعْمَتَ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ اِذْ كُنْتُمْ اَعْدَاۗءً فَاَلَّفَ بَيْنَ قُلُوْبِكُمْ فَاَصْبَحْتُمْ بِنِعْمَتِهٖٓ اِخْوَانًا ۚ

"और याद करो अपने ऊपर अल्लाह की उस नेअमत को कि जब तुम बाहम दुश्मन थे, फिर उसने तुम्हारे दिलों को जोड़ दिया तो तुम उसके फ़ज़ल से भाई-भाई हो गये।"

यह क़ुरान मजीद ही है जो अहले ईमान के दिलों को जोड़ता और उनको बाहम पेवस्त (संयुक्त) करता है, और यह दिली ताल्लुक़ और दिली हम आहंगी ही है जो मुसलमानों को बुनयाने मरसूस (ठोस बुनियाद) बनाने वाली शय है।

मुसलमानों पर क़ुरान मजीद के हुक़ूक़

तआरुफ़े क़ुरान के ज़िमन में जो कुछ मैंने अर्ज़ किया उन सब बातों का जो अमली नतीजा निकलना चाहिये वह क्या है? यानि क़ुरान हकीम के बारे में मुझ पर और आप पर क्या ज़िम्मेदारी आयद (लागू) होती है? इसके ऐतबार से मैं ख़ास तौर पर अपनी किताब "मुसलमानों पर क़ुरान मजीद के

हुक़ूक़" का ज़िक्र करना चाहता हूँ जो हमारी तहरीक रुजू इलल क़ुरान के लिये दो बुनयादों में से एक बुनियाद की हैसियत रखती है। हमारी इस तहरीक का आगाज़ 1965 ईस्वी से हुआ था। इब्तदाई छ: सात साल तो मैं तन्हा था। ना कोई अंजुमन थी, ना कोई इदारा, ना जमाअत। फिर अंजुमन खुद्दामुल क़ुरान क़ायम हुई, फिर 1976 ईस्वी में क़ुरान अकेडमी का संगे बुनियाद रखा गया। क़ुरान अकैडमी की तामीरात मुकम्मल होने के बाद फिर उसी के बतन से क़ुरान कालेज की विलादत हुई, जिसके सर पर क़ुरान ऑडिटोरियम का ताज सजा हुआ है। इस पूरी जद्दो-जहद की बुनियाद और असास दो किताबचे हैं: (1) "इस्लाम की निशाते सानिया। करने का असल काम।" यह मज़मून मैंने 1967 ईस्वी में मीसाक़ के इदारे के तौर पर लिखा था। (2) मुसलमानों पर क़ुरान मजीद के हुक़ूक़।" यह किताबचा मेरी दो तक़रीरों पर मुश्तमिल है जो मैंने 1968 ईस्वी में की थीं।

इसका पसमंज़र यह है कि उस ज़माने में जशने ख़ैबर और जशने मेहरान वगैरह जैसे मुख्तलिफ़ उनवानात से जशन मनाये जा रहे थे, जिनमें राग-रंग की महफ़िलें भी होती थीं। सदर अय्यूब खान का ज़माना था। अगरचे शिकस्त व रेख्त (विनाश) के आसार ज़ाहिर हो रहे थे, लेकिन "सब अच्छा है" के इज़हार के लिये यह शानदार तक़रीबात मुनअक्क़िद की जा रही थीं। यह गोया उनके दौरे हुकूमत की आख़री भड़क थी, जैसे बुझने से पहले चिराग़ भड़कता है।

अल्लमा इक़बाल ने अपनी नज़म "इब्लीस की मजलिसे शूरा" में इब्लीस की तर्जुमानी इन अल्फ़ाज़ में की है: "मस्त

रखो ज़िक्र व फ़िक्रे सुबह गाही में इसे!” लेकिन उन दिनों ज़िक्र व फ़िक्र की बजाये लोगों को राग-रंग की महफ़िलों में मस्त रखने का अहतमाम हो रहा था। उसी ज़माने में मज़हबी लोगों को रिशवत के तौर पर “जशने नुज़ूले क़ुरान” अता किया गया कि तुम भी जशन मनाओ और अपना ज़ोक़ व शोक़ पूरा कर लो। चुनाँचे चौदह सौ साला “जशने नुज़ूले क़ुरान” का इनअक़ाद (आयोजन) हुआ। इसके ज़िमन में क़िरात की बड़ी-बड़ी महफ़िलें मुनअक़्क़िद (आयोजित) हुईं, जिनमें पूरी दुनिया से क़ुर्रा (क़ारी) हज़रात शरीक हुए। इसी सिलसिले में सोने के तार से क़ुरान लिखने का प्रोजेक्ट शुरू हुआ।

उस वक़्त मेरा ज़हन मुन्तक़िल हुआ (बदला) कि क्या क़ुरान हकीम का हम पर यही हक़ है? क्या अपने इन कामों से हम क़ुरान मजीद का हक़ अदा कर रहे हैं? चुनाँचे मैंने मस्जिदे ख़ज़रा समनाबाद में अपने दो खुत्बाते जुमा में मुसलमानों पर क़ुरान मजीद के हुक़ूक़ बयान किये कि हर मुसलमान पर हस्बे इस्तअदाद (ताक़त के अनुसार) क़ुरान मजीद के पाँच हुक़ूक़ आयद होते हैं:

1) इसे माने जैसा कि मानने का हक़ है। (ईमान व ताज़ीम)
2) इसे पढ़े जैसा कि पढ़ने का हक़ है। (तिलावत व तरतील)
3) इसे समझे जैसा कि समझने का हक़ है। (तज़क्कुर व तदब्बुर)
4) इस पर अमल करे जैसा कि अमल करने का हक़ है। (हुक्म व अक़ामत)

इन्फरादी ज़िन्दगी में हुक्म बिल क़ुरआन यह है कि हमारी हर राय और हर फ़ैसला क़ुरान पर मब्नी हो। और इज्तमाई ज़िन्दगी में क़ुरान पर अमल की सूरत अक़ामत मा अनज़ल मिनल्लाह यानि क़ुरान के अता करदा निज़ामे अदले इज्तमाई को क़ायम करना है। क़ुराने हकीम में इरशाद है:

قُلۡ یٰۤاَہۡلَ الۡکِتٰبِ لَسۡتُمۡ عَلٰی شَیۡءٍ حَتّٰی تُقِیۡمُوا التَّوۡرٰىۃَ وَ الۡاِنۡجِیۡلَ وَ مَاۤ اُنۡزِلَ اِلَیۡکُمۡ مِّنۡ رَّبِّکُمۡ

"ऐ किताब वालो! तुम्हारा कोई मक़ाम नहीं जब तक कि तुम क़ायम ना करो तौरात और इन्जील को और जो कुछ तुम्हारी जानिब नाज़िल किया गया है तुम्हारे रब की तरफ़ से।" (सूरह मायदा:68)

5) क़ुरान को दूसरों तक पहुँचाना, इसे फैलाना और आम करना। (तबलीग व तबईन)

इन पाँच उन्वानात के तहत अल्हम्दुलिल्लाह सुम्मा अल्हम्दुलिल्लाह यह बहुत जामेअ किताबचा मुरत्तब हुआ और बिला मुबालगा यह लाखों की तादाद में छपा है। फिर अंग्रेज़ी, अरबी, फ़ारसी, पश्तो, तमिल, मलेशिया की ज़बान और सिन्धी में इसके तराजिम हुए। जो हजरात भी हमारी इस तहरीक रुजू इलल क़ुरान से कुछ दिलचस्पी रखते हैं, मेरे दुरूस (कोर्स) में शरीक होते हैं या हमारे लिट्रेचर का मुताअला करते हैं उन्हें मेरा नासहाना मशवरा है कि इस किताबचे का मुताअला ज़रूर करें। यह दरहक़ीक़त "तआरुफे क़ुरान" पर मेरे ख़िताबात का लाज़मी नतीजा और उनका ज़रुरी तकमिला है।

यह भी जान लीजिये कि अगर हम यह हुक़ूक़ अदा नही करते तो अज़रुए क़ुरान हमारी हैसियत क्या है। क़ुरान मजीद के हुक़ूक़ को अदा ना करना क़ुरान को तर्क कर (छोड़) देने के मुतरादिफ (बराबर) है। सूरतुल फुरक़ान में मुहम्मद रसूल्लाह ﷺ की फ़रियाद नक़ल हुई है:

وَقَالَ الرَّسُوْلُ يٰرَبِّ اِنَّ قَوْمِي اتَّخَذُوْا هٰذَا الْقُرْاٰنَ مَهْجُوْرًا ۝٣٠

"और पैग़म्बर कहेगा कि ऐ मेरे रब! मेरी क़ौम ने इस क़ुरान को छोड़ रखा था।"

मौलाना शब्बीर अहमद उस्मानी रहि० ने इस आयत के ज़ेल में हाशिये में लिखा है:

"आयत में अगरचे मज़कूर सिर्फ़ काफ़िरों का है ताहम क़ुरआन की तस्दीक़ ना करना, उसमें तदब्बुर ना करना, उस पर अमल ना करना, उसकी तिलावत ना करना, उसकी तसहीहे क़िरआत की तरफ़ तवज्जो ना करना, उससे ऐराज़ करके दूसरी लग्वियात या हक़ीर चीज़ों की तरफ़ मुतवज्जह होना, यह सब सूरतें दर्जा-ब-दर्जा हिजराने क़ुरान के तहत में दाख़िल हो सकती हैं।"

बहैसियत मुसलमान हम पर क़ुरआन मजीद के जो हुक़ूक़ आयद होते हैं, अगर उन्हें हम अदा नहीं कर रहे तो हुज़ूर ﷺ के इस क़ौल और फ़रियाद का इतलाक़ (लागू) हम पर भी होगा। गोया कि हुज़ूर ﷺ अल्लाह तआला की बारगाह में हमारे ख़िलाफ़ मुद्दई की हैसियत से खड़े होंगे।

अल्लामा इक़बाल इसी आयते क़ुरानी की तरफ़ अपने इस शेर में इशारा करते हैं:

ख्वार अज़ महजूरी क़ुराँ शुदी
शिकवा सन्ज गर्दिशे दौराँ शुदी!

"(ऐ मुस्लमान!) तेरी ज़िल्लत और रुसवाई का असल सबब तो यह है कि तू क़ुरान से दूर और बेताल्लुक़ हो गया है, लेकिन तू अपनी इस ज़बूँ हाली (बदहाली) का इल्ज़ाम गर्दिशे ज़माना को दे रहा है!"

क़ुरान मजीद में दो मक़ामात पर क़ुरान के हुक़ूक़ अदा ना करने को क़ुरान की तकज़ीब क़रार दिया गया है। आप लाख समझें कि आप क़ुरान मजीद पर ईमान रखते हैं और उसकी तस्दीक़ करते हैं, लेकिन अगर आप उसके हुक़ूक़ की अदायगी अपनी इस्तअदाद (ताक़त) के मुताबिक़, अपनी इम्कानी हद तक नहीं कर रहे तो दरहक़ीक़त क़ुरान को झुठला रहे हैं। साबक़ा उम्मते मुस्लिमा यानि यहूद के बारे में सूरह जुमा में यह अल्फ़ाज़ आये हैं:

مَثَلُ الَّذِيْنَ حُمِّلُوا التَّوْرٰىةَ ثُمَّ لَمْ يَحْمِلُوْهَا كَمَثَلِ الْحِمَارِ يَحْمِلُ اَسْفَارًا ۭ بِئْسَ مَثَلُ الْقَوْمِ الَّذِيْنَ كَذَّبُوْا

"मिसाल उन लोगों की जो हामिले तौरात बनाए गए, फिर उन्होंने उसकी ज़िम्मेदारियों को अदा ना किया, उस गधे की सी है जो किताबों का बोझ उठाये हुए हो। बुरी मिसाल है उस क़ौम की जिसने अल्लाह की आयात को झुठलाया। और अल्लाह ऐसे

بِاٰيٰتِ اللّٰهِ ۭ وَاللّٰهُ لَا يَهْدِي الْقَوْمَ الظّٰلِمِيْنَ

ज़ालिमों को हिदायत नहीं देता।" (आयत:5)

हमें काँपना चाहिये, लरज़ना चाहिये कि कहीं हमारा शुमार भी इन्हीं लोगों में ना हो जाये।

इस ज़िमन में दूसरा मक़ाम सूरतुल वाक़िया के तीसरे रुकूअ की इब्तदाई आयात हैं:

فَلَآ اُقْسِمُ بِمَوٰقِعِ النُّجُوْمِ ۝ وَاِنَّهٗ لَقَسَمٌ لَّوْ تَعْلَمُوْنَ عَظِيْمٌ ۝ اِنَّهٗ لَقُرْاٰنٌ كَرِيْمٌ ۝ فِيْ كِتٰبٍ مَّكْنُوْنٍ ۝ لَّا يَمَسُّهٗٓ اِلَّا الْمُطَهَّرُوْنَ ۝ تَنْزِيْلٌ مِّنْ رَّبِّ الْعٰلَمِيْنَ ۝ اَفَبِهٰذَا الْحَدِيْثِ اَنْتُمْ مُّدْهِنُوْنَ

"पस नहीं, मैं क़सम खाता हूँ तारों के मौक़ों की, और अगर तुम समझो तो यह बहुत बड़ी क़सम है, कि यह एक बुलन्द पाया क़ुरान है, एक महफ़ूज़ किताब में सब्त, जिसे मुतहर्रीन (पाक) के सिवा कोई छू नहीं सकता। यह रब्बुल आलमीन का नाज़िल करदा है। फिर क्या इस कलाम के साथ तुम बेऐतनाई (लापरवाही) बरतते हो, और इस नेअमत में अपना हिस्सा यह रखा है कि इसे झुठलाते हो?"

وَتَجْعَلُوْنَ رِزْقَكُمْ ﴿٨١﴾

اَنَّكُمْ تُكَذِّبُوْنَ ﴿٨٢﴾

इस क़ुरान, इस अज़मत वाली किताब, जो किताबे करीम है, किताबे मकनून है, के बारे में तुम्हारी यह सुस्ती, तुम्हारी यह कस्लमंदी, तुम्हारी यह नाक़द्री और तुम्हारा यह अमली तअतिल (रुकावट) कि तुम इसे झुठला रहे हो! तुमने अपना हिस्सा और नसीब यह बना लिया है कि तुम इसकी तकज़ीब कर रहे हो? तकज़ीब इस मायने में भी कि क़ुरान का इन्कार किया जाए, इसे अल्लाह का कलाम ना माना जाये--- और तकज़ीब अमली के ज़िमन में वह चीज़ भी इसके ताबेअ और शामिल होगी जो मैं बयान कर चुका हूँ। यानि हामिल-ए-किताबे इलाही होने के बावजूद उसकी ज़िम्मेदारियों को अदा ना किया जाये। अल्लाह तआला हमें इस अन्जाम से महफ़ूज़ रखे कि हम भी ऐसे लोगों में शामिल हों। हम में से हर शख्स को इन हुक़ूक़ के अदा करने की अपनी इम्कानी हद तक भरपूर कोशिश करनी चाहिये।

اقول قولی هذا واستغفر اللّٰہ لی ولکم السائر المسلمین والمسلمات۔

❀ ❀ ❀

सूरतुल फ़ातिहा

نحمدہٗ و نصلی علیٰ رسولہِ الکریم

اَعُوْذُ بِاللّٰہِ مِنَ الشَّیْطٰنِ الرَّجِیْمِ

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ①

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ② الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ③

مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ ④ اِيَّاكَ نَعْبُدُ وَاِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ ⑤

اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَ ⑥ صِرَاطَ الَّذِيْنَ

اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ ۙ غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَلَا

الضَّاۗلِّيْنَ ⑦

رَبِّ اشْرَحْ لِيْ صَدْرِيْ وَيَسِّرْ لِيْٓ اَمْرِيْ وَاحْلُلْ عُقْدَةً مِّنْ لِّسَانِيْ يَفْقَهُوْا قَوْلِيْ

सूरतुल फ़ातिहा अगरचे क़ुरान हकीम की मुख्तसर सूरतों में से है, इसकी कुल सात आयात हैं, लेकिन यह क़ुरान हकीम की अज़ीम तरीन सूरत है। इस सूरह मुबारका को उम्मुल क़ुरान भी कहा गया है और असासुल क़ुरान (foundation of Quran) भी। यानि यह पूरे क़ुरान के लिये जड़, बुनियाद और असास की हैसियत रखती है। यह अल-फ़ातिहा किस ऐतबार से है? فَتَحَ يَفْتَحُ के मायने हैं

खोलना। चूँकि क़ुरान हकीम शुरु इस सूरत से होता है लिहाज़ा यह “सूरतुल फ़ातिहा” (The Opening Surah of the Qur’an) है। इसका एक नाम “अल-काफ़िया” यानि किफ़ायत करने वाली है, जबकि एक नाम “अश-शफ़िया” यानि शिफ़ा देने वाली है। दूसरी बात यह नोट कीजिये कि यह सूरह मुबारका पहली मुकम्मल सूरत है जो रसूल अल्लाह ﷺ पर नाज़िल हुई है। इससे पहले मुताफर्रिक़ (अलग-अलग) आयात नाज़िल हुईं। सबसे पहले सूरतुल अलक़ की पाँच आयतें, फिर सूरह नून या सूरतुल क़लम की सात आयतें, फिर सूरतुल मुज़म्मिल की नौ आयतें, फिर सूरतुल मुदस्सिर की सात आयतें और फिर सूरतुल फ़ातिहा की सात आयतें नाज़िल हुईं। लेकिन यह पहली मुकम्मल सूरत है जो नाज़िल हुई है रसूल अल्लाह ﷺ पर। सूरतुल हिज्र में एक आयत बाअल्फ़ाज़ आयी है:

وَلَقَدْ اٰتَيْنٰكَ سَبْعًا مِّنَ الْمَثَانِيْ وَالْقُرْاٰنَ الْعَظِيْمَ ﴿٨٧﴾

“हमने (ऐ नबी ﷺ!) आप ﷺ को सात ऐसी आयात अता की हैं जो बार-बार पढ़ी जाती हैं और अज़मत वाला क़ुरान।”

सूरतुल फ़ातिहा की सात आयतें दोहरा-दोहरा कर पढ़ी जाती हैं, नमाज़ की हर रकअत में पढ़ी जाती हैं, और यह सूरह मुबारका खुद अपनी जगह पर एक क़ुराने अज़ीम है। सही बुखारी की रिवायत है कि रसूल अल्लाह ﷺ ने इरशाद फरमाया: ((اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ هِيَ السَّبْعُ الْمَثَانِيْ وَالْقُرْآنُ الْعَظِيْمُ الَّذِيْ اُوْتِيْتُهٗ))(1) “सूरह अल्हमदु लिल्लाही

रब्बिल आलामीन ही "सबअ मसानी" और "क़ुराने अज़ीम" है जो मुझे अता हुई है।"

तादाद के ऐतबार से इसकी सात आयात मुत्तफिक़ अलै हैं। अलबत्ता अहले इल्म में एक इख्तलाफ़ है। बाज़ (कुछ) हज़रात के नज़दीक, जिनमें इमाम शाफ़ई (रहि०) भी शामिल हैं, आयत बिस्मिल्लाह भी सूरतुल फ़ातिहा का जुज़ (हिस्सा) है। उनके नज़दीक { بِسۡمِ اللّٰہِ الرَّحۡمٰنِ الرَّحِیۡمِ} सूरतुल फ़ातिहा की पहली आयत और {صِرَٰطَ ٱلَّذِينَ أَنۡعَمۡتَ عَلَيۡهِمۡ غَيۡرِ ٱلۡمَغۡضُوبِ عَلَيۡهِمۡ وَلَا ٱلضَّآلِّينَ} सातवी आयत है। लेकिन दूसरी तरफ इमाम अबु हनीफ़ा (रहि०) की राय यह है कि आयत बिस्मिल्लाह सूरतुल फ़ातिहा का जुज़ (हिस्सा) नहीं है, बल्कि आयत बिस्मिल्लाह क़ुरान मजीद की किसी भी सूरत का जुज़ नहीं है, सिवाय एक मक़ाम के जहाँ वह मतन में आयी है। हज़रत सुलेमान अलै० ने मलका-ए-सबा को जो ख़त लिखा था उसका तज़किरा सूरतुल नम्ल में बाअल्फ़ाज़ आया है: {اِنَّہٗ مِنۡ سُلَیۡمٰنَ وَ اِنَّہٗ بِسۡمِ اللّٰہِ الرَّحۡمٰنِ الرَّحِیۡمِ} (आयत:30)। सूरतों के आगाज़ (शुरू) में यह अलामत (निशानी) के तौर पर लिखी गयी है कि यहाँ से नयी सूरत शुरू हो रही है। इन हज़रात के नज़दीक {اَلۡحَمۡدُ لِلّٰہِ رَبِّ الۡعٰلَمِیۡنَ} सूरतुल फ़ातिहा की पहली आयत और {اِہۡدِنَا الصِّرَاطَ الۡمُسۡتَقِیۡمَ} पाँचवी आयत है, जबकि {صِرَاطَ الَّذِیۡنَ اَنۡعَمۡتَ عَلَیۡہِمۡ} छठी और { غَیۡرِ الۡمَغۡضُوۡبِ عَلَیۡہِمۡ وَلَا الضَّآلِّیۡنَ} सातवी आयत है। जिन हज़रात के

नज़दीक आयत बिस्मिल्लाह सूरतुल फ़ातिहा का जुज़ है वह नमाज़ में जहरी क़िरात करते हुए { بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ} भी बिलजहर (ऊँची आवाज़ में) पढ़ते हैं, और जिन हज़रात के नज़दीक यह सूरतुल फ़ातिहा का जुज़ नहीं है वह जहरी क़िरात करते हुए भी बिस्मिल्लाह ख़ामोशी से पढ़ते हैं और {اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ} से क़िरात शुरू करते हैं।

नमाज़ का जुज़वे लाज़िम (ज़रूरी हिस्सा)

इस सूरह मुबारका का असलूब (अंदाज़) क्या है? यह बहुत अहम और समझने की बात है। वैसे तो यह कलामुल्लाह है, लेकिन इसका असलूब दुआइया है। यह दुआ अल्लाह ने हमें तलक़ीन फरमायी (सिखायी) है कि मुझसे इस तरह मुख़ातिब हुआ करो, जब मेरे हुज़ूर में हाज़िर हो तो यह कहा करो। वाक़िया यह है कि इसी बिना (वजह) पर क़ुरान मजीद की इस सूरत को नमाज़ का जुज़वे लाज़िम क़रार दिया गया है, बल्कि सूरतुल फ़ातिहा ही को हदीस में "अस-सलाह" कहा गया है, यानि असल नमाज़ सूरतुल फ़ातिहा है। बाक़ी इज़ाफी चीजें हैं, तस्बीहात हैं, रुकूअ व सुजूद हैं, क़ुरान मजीद का कुछ हिस्सा आप और भी पढ़ लेते हैं। हजरत उबादह बिन सामित (रजि०) से मरवी मुत्तफिक़ अलै हदीस है कि रसूल अल्लाह ﷺ ने इरशाद फ़रमाया: ((لَا صَلَاةَ لِمَنْ لَّمْ يَقْرَأْ بِفَاتِحَةِ الْكِتَابِ))[2] यानि जो शख्स (नमाज़ में) सूरतुल फ़ातिहा नहीं पढ़ता उसकी कोई नमाज़ नहीं है। इसके अलावा और भी बहुत सी अहादीस में यह मज़मून आया है।

इस ऐतबार से भी हमारे यहाँ एक फ़िक़ही इख्तलाफ़ मौजूद है। बाज़ हज़रात ने इस हदीस को इतना अहम समझा है कि आप बा-जमात नमाज़ पढ़ रहे हैं तब भी उनके नज़दीक आप इमाम के साथ-साथ ज़रूर सूरतुल फ़ातिहा पढ़ेंगे। चुनाँचे इमाम हर आयत के बाद वक़्फा दे। इमाम जब कहे: اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ तो इसके बाद मुक़तदी भी कहे: اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ख्वाह (चाहे) अपने दिल में कहे। फिर इमाम कहे: الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ तो मुक़तदी भी दिल में कह ले: الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ यह मौक़फ (विचार) है इमाम शाफ़ई (रहि०) का कि नमाज़ चाहे जहरी (ऊँची आवाज़ में पढ़ने वाली) हो चाहे सिर्रि (हल्की आवाज़ से पढ़ने वाली) हो, अगर आप इमाम के पीछे पढ़ रहे हैं तो इमाम अपनी सूरतुल फ़ातिहा पढ़ेगा और आप अपनी पढेंगे और लाज़िमन पढेंगे।

इमाम अबु हनीफ़ा (रहि०) का मौक़फ (विचार) इसके बिल्कुल बरअक्स (विपरीत) है कि इमाम जब सूरतुल फ़ातिहा पढ़ेगा तो हम पीछे बिल्कुल नहीं पढेंगें, बल्कि इमाम की क़िरात ही मुक़तदियों की क़िरात है। उनका इस्तदलाल (तर्क) आयते क़ुरानी {وَاِذَا قُرِئَ الْقُرْاٰنُ فَاسْتَمِعُوْا لَهٗ وَاَنْصِتُوْا لَعَلَّكُمْ تُرْحَمُوْنَ} (आराफ़:204) और हदीसे नबवी ﷺ ((مَنْ كَانَ لَهٗ اِمَامٌ فَقِرَاءَةُ الْاِمَامِ لَهٗ قِرَاءَةٌ))[3] से है। नेज़ (इसलिये) उनका कहना है कि नमाज़ बा-जमाअत में इमाम की हैसियत सबके नुमाइन्दे की होती है। अगर कोई वफ़्द (प्रतिनिधि मंडल) कहीं जाता है और उस वफ़्द का कोई सरबराह (प्रमुख) होता है तो वहाँ जाकर गुफ्तगू (बात-

चीत) वफ़द का सरबराह करता है, बाकि सब लोग ख़ामोश रहते हैं।

अब इस ज़िमन (बारे) में एक इन्तहाई मामला तो यह हो गया जो इमाम शाफ़ई (रहि०) का मौक़फ है कि चाहे जहरी नमाज़ हो या सिर्रि हो, उसमे इमाम के पीछे मुक़तदी भी सूरतुल फ़ातिह पढेंगे। आपको मालूम है कि ज़ोहर और अस्र सिर्रि नमाजें हैं, इनमे इमाम ख़ामोशी से क़िरात करता है, बुलन्द आवाज़ से नहीं पढ़ता, जबकि फज्र, मग़रिब और इशा जहरी नमाजें हैं, जिनमें सूरतुल फ़ातिहा और क़ुरान मजीद का कुछ हिस्सा पहली दो रकअतों में आवाज़ के साथ पढ़ा जाता है। इमाम अबु हनीफ़ा (रहि०) का मौक़फ है कि नमाज़ चाहे जहरी हो या सिर्रि हो, नमाज़ बा-जमाअत की सूरत में मुक़तदी ख़ामोश रहेगा और सूरतुल फ़ातिहा नहीं पढ़ेगा।

इनके अलावा एक दरमियानी मसलक भी है और वह इमाम मालिक (रहि०) और इमाम इब्ने तैमिया (रहि०) वगैरह का है। इस ज़िमन में उनका मौक़फ यह है कि जहरी रकअत में मुक़तदी सूरतुल फ़ातिहा मत पढ़े, बल्कि इमाम की क़िरात ख़ामोशी से सुने, अज़रूए निस क़ुरानी (आराफ़:204):

وَإِذَا قُرِئَ الْقُرْآنُ فَاسْتَمِعُوا لَهُ وَأَنصِتُوا لَعَلَّكُمْ تُرْحَمُونَ ﴿٢٠٤﴾

"और जब क़ुरान पढ़ा जाये तो तुम पूरी तवज्जोह से इसे सुना करो और खुद ख़ामोश रहा करो, ताकि तुम पर रहम किया जाये।"

इसी तरह हदीसे नबवी ﷺ है: ((اِذَا قَرَأَ(الْاِمَامُ)) فَاَنْصِتُوْا))[4] "जब इमाम क़िरात करे तो तुम ख़ामोश रहो।" चुनाँचे जब इमाम बिलजहर क़िरात कर रहा है: {اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ، الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ، مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ} तो आप सुनिये और ख़ामोश रहिये, लेकिन जो सिर्रि नमाज़ है उसमे इमाम अपने तौर पर सूरतुल फ़ातिहा पढ़े और अपने तौर पर ख़ामोशी से पढें। यह दरमियानी मौक़फ है, और मैंने बहरहाल इसी को इख़्तियार किया हुआ है।

फ़ितरते सलीमा की पुकार

सूरतुल फ़ातिहा के ज़िमन में, मैंने अर्ज़ किया कि यह दुआ है जो अल्लाह तआला ने हमें तलक़ीन की है। लेकिन इससे आगे बढ़ कर ज़रा क़ुरान मजीद की हिकमत और फ़लसफ़े पर गौर करेंगे तो इस सूरत की एक और शान सामने आयेगी। बुनियादी तौर पर क़ुरान का फ़लसफ़ा क्या है? इन्सान इस दुनिया में जब आता है तो फ़ितरत लेकर आता है, जिसे क़ुरान हकीम 'फितरतल्लाही' क़रार देता है, अज़रूए अल्फ़ाज़े क़ुरानी (अर-रूम:30): {فِطْرَتَ اللّٰهِ الَّتِيْ فَطَرَ النَّاسَ عَلَيْهَا} यही हक़ीक़त हदीसे नबवी ﷺ में बाअल्फाज़ बयान की गयी है: ((مَا مِنْ مَوْلُوْدٍ اِلَّا يُوْلَدُ عَلَى الْفِطْرَةِ، فَاَبَوَاهُ يُهَوِّدَانِهٖ اَوْ يُنَصِّرَانِهٖ اَوْ يُمَجِّسَانِهٖ))[5] "(नस्ले इन्सानी का) हर पैदा होने वाला बच्चा फ़ितरत पर पैदा होता है, लेकिन यह उसके वालिदैन हैं जो उसे यहूदी, नसरानी या मजूसी बना देते हैं।" हर बच्चा जो पैदा होता है

फ़ितरते इस्लाम लेकर आता है। तो इन्सान की फ़ितरत के अन्दर अल्लाह तआला ने अपनी मारफ़त और अपनी मोहब्बत वदीयत (आन्तरिक देन) कर दी है। इसलिये कि जो रूहे इन्सानी है वह कहाँ से आयी है?

وَيَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الرُّوْحِ ۭ قُلِ الرُّوْحُ مِنْ اَمْرِ رَبِّيْ

"(ऐ नबी ﷺ)! यह आपसे रूह के बारे में सवाल करते हैं। कह दीजिये कि रूह मेरे रब के अम्र (हुक्म) में से है।" (इसरा:85)

हमारी रूह रब तआला की तरफ से आयी है, लिहाज़ा इसके अन्दर अल्लाह की मारफ़त भी है, अल्लाह की मोहब्बत भी है। तो जब तक एक इन्सान की फ़ितरत में कोई कजी (विकृति) ना आये वह बेराह रवी (perversion) से महफ़ूज़ रहे तो इसे हम कहते हैं फितरते सलीमा, यानि सालिम (protected) और महफ़ूज़ फ़ितरत। इस फ़ितरत वाला इन्सान जब बुलूग (maturity) को पहुँचता है और उसे अक़्ले सलीम भी मिल जाती है, यानि सही-सही अन्दाज़ में ग़ौर करने की सलाहियत मिल जाती है तो इन दोनों चीज़ों के इम्तिज़ाज (मिलने) के नतीजे में ईमानियात के कुछ बुनियादी हक़ाइक़ इन्सान पर ख़ुद मुन्कशिफ़ (प्रकट) हो जाते हैं, चाहे उसे कोई वही मिले या ना मिले। यह है फ़ितरत का मामला और यह है क़ुरान की हिकमत और फ़लसफ़े का उसूल। इसकी एक बड़ी शानदार मिसाल क़ुरान मजीद में हज़रत लुक़्मान की दी गयी है, जो ना नबी थे ना किसी नबी के पैरोकार और उम्मती थे, लेकिन उन्हें अल्लाह ने हिकमत अता फरमायी थी।

"हिकमत" फ़ितरते सलीमा, क़ल्बे सलीम और अक़्ले सलीम के इम्तिज़ाज से वुजूद में आती है। अगर फ़ितरत भी महफ़ूज़ है, अक़्ल भी टेढ़ पर नहीं चल रही, बल्कि सही और सीधे रास्ते पर चल रही है तो इन दोनों के इम्तिज़ाज से जो हिकमत पैदा होती है, इंसान को जो दानाई (wisdom) मयस्सर आती है उसके नतीजे में वह पहचान लेता है कि इस कायनात का एक पैदा करने वाला है, यह खुद ब खुद नहीं बनी है। दूसरे यह कि वह अकेला है, तन्हा है, कोई उसका साझी नहीं है (لَا مِثْلَ لَهٗ وَلَا مِثَالَ لَهٗ وَلَا مَثِيْلَ لَهٗ وَلَا كُفُوَ لَهٗ وَلَا ضِدَّ لَهٗ وَلَا نِدَّ لَهٗ)। कोई उसका मद्दे मुक़ाबिल नहीं है और उसमें तमाम सिफ़ाते कमाल ब-तमामो कमाल मौजूद हैं। वह عَلٰی کُلِّ شَیۡءٍ قَدِیۡر है, بِکُلِّ شَیۡءٍ عَلِیۡم है, हर जगह मौजूद है, और उसकी ज़ात में कोई नुक़्स, कोई ऐब, कोई कोताही, कोई तक़सीर (fault), कोई कमज़ोरी, कोई ज़ौफ (दुर्बलता), कोई एहतियाज क़तअन नहीं है।

यह पाँच बातें फ़ितरते सलीमा और अक़्ले सलीम के नतीजे में इन्सान के इल्म में आती हैं, चाहे उसे अभी किसी वही से फैज़ (फ़ायदा) हासिल ना हुआ हो। चुनाँचे आप देखते हैं कि चीन का बड़ा फ़लसफ़ी और हकीम कनफ्यूसियस इन तमाम बातों को मानने वाला था, हालाँकि वह नबी तो नहीं था! मज़ीद बराँ (इसके अलावा) यह बात भी सामने आती है कि इन्सानी ज़िन्दगी सिर्फ़ यह दुनिया की ज़िन्दगी नहीं है, असल ज़िन्दगी एक और है जौ मौत के बाद शुरू होगी और उसमें इन्सान को इस ज़िन्दगी के आमाल का पूरा-पूरा बदला मिलेगा, नेकियाँ कमाई हैं तो उनकी जज़ा मिलेगी

और बदियाँ कमाई हैं तो उनकी सज़ा मिलेगी। यह वह हक़ाइक़ हैं कि जहाँ तक इन्सान अपनी अक़्ले सलीम और फितरते सलीमा की रहनुमाई से पहुँच जाता है। फिर इसका मन्तक़ी नतीजा यह निकलता है कि एक हस्ती जो यकता (अद्वितीय) है, वही पैदा करने वाला है, परवरदिगार है, عَلٰى كُلِّ شَیْءٍ قَدِیْرٌ है, بِكُلِّ شَیْءٍ عَلِیْمٌ है, वही राज़िक़ है, वही ख़ालिक़ है, वही मालिक है, वही मुश्किल कुशा है, तो अब उसी की बन्दगी होनी चाहिये, उसी का हुक्म मानना चाहिये, उसी से मोहब्बत करनी चाहिये, उसी को मतलूब बनाना चाहिये, उसी को मक़सूद बनाना चाहिये। यह इसका मन्तक़ी नतीजा है और यहाँ तक इन्सान अक़्ले सलीम और फ़ितरते सलीमा की रहनुमाई से पहुँच जाता है।

दरख्वास्त-ए-हिदायत

अलबत्ता अब आगे मसला आता है कि मैं क्या करूँ क्या ना करूँ? इसमें भी जहाँ तक इन्फ़रादी (व्यक्तिगत) मामलात हैं, उनके ज़िमन में एक रोशनी अल्लाह ने इन्सान के बातिन में रखी हुई है, उसके ज़मीर के अन्दर, क़ल्ब और रूह के अन्दर यह रोशनी मौजूद है कि इन्सान नेकी और बदी को खूब जानता है। अज़रूए अल्फाज़े क़ुरानी (अश्शम्स):

وَنَفۡسٍ وَّمَا سَوّٰىهَا ۝۷ فَاَلۡهَمَهَا فُجُوۡرَهَا وَتَقۡوٰىهَا ۝۸

"क़सम है नफ्से इन्सानी की और जो उसे सँवारा (दुरुस्त किया, उसकी नोक-पलक सँवारी), फिर उसमें नेकी और बदी का इल्म इल्हामी तौर पर रख दिया।"

हर इन्सान जानता है कि झूठ बोलना बुरा है, सच बोलना अच्छा है, वादा पूरा करना अच्छा है, वादा ख़िलाफ़ी बुरी बात है, पड़ोसी को सताना बहुत बुरी बात है जबकि पड़ोसी के साथ खुशख़ुलक़ी के साथ पेश आना इन्सानियत का तक़ाज़ा है। तो इन्फ़रादी सतह पर भी इन्सान सही और ग़लत, हक़ और बातिल में कुछ ना कुछ फर्क़ कर लेता है। लेकिन जब इज्तमाई (सामाजिक) ज़िन्दगी का मामला आता है तो उसके लिये मजबूरी है कि वह नहीं समझ सकता कि ऐतदाल (मध्यम) का रास्ता कौनसा है। आइली (पारिवारिक) ज़िन्दगी में औरत का मक़ाम क्या होना चाहिये, औरत के हुक़ूक़ क्या होने चाहिये। चुनाँचे एक इन्तहा तो यह है कि दुनिया में औरत को मर्द की मिलकियत बना लिया गया। जैसे भेड़-बकरी किसी की मिलकियत है, ऐसे ही गोया बीवी भी खाविन्द की मिलकियत है, उसकी कोई हैसियत ही नहीं, उसके कोई हुक़ूक़ ही नहीं, उसका कोई लीगल स्टेटस ही नहीं, उसके कोई दस्तूरी हुक़ूक़ ही नहीं। वह ना किसी शय (चीज़) की मालिक हो सकती है, ना कोई कारोबार कर सकती है। और एक इन्तहा यह होती है कि कोई किल्योपत्रा (69-30 ई.पू. मिस्र की एक रानी) है जो किसी क़ौम की सरबराह बन कर बैठ जाये और फिर

उसका बेड़ा गर्क़ कर दे, जैसा मिस्र का बेड़ा किल्योपत्रा ने गर्क़ किया। तो यह दो मुताज़ाद (विपरीत) इन्तहाएँ हैं।

आज हमें मग़रिब में नज़र आ रहा है कि मर्दो-ज़न शाना-ब-शाना और बराबर हैं। इसका नतीजा क्या निकला? फैमिली लाइफ़ ख़त्म होकर रह गई। अब वहाँ सिर्फ़ One Parent Family है। बिल क्लिंटन ने नये साल पर अपनी क़ौम को जो पैग़ाम दिया था उसमें कहा था कि अनक़रीब (जल्द ही) हमारी अमेरिकी क़ौम की अज़ीम अक्सरियत हरामज़ादों पर मुश्तमिल होगी। (उसने अल्फ़ाज़ इस्तेमाल किये थे: Born without any wedlock)। हलालज़ादा और हरामज़ादा में यही तो फर्क़ है कि अगर माँ-बाप का निकाह हुआ है, शादी हुई है तो उनके मिलाप के नतीजे में पैदा होने वाला बच्चा उनकी हलाल और जायज़ औलाद है। लेकिन अगर एक मर्द और एक औरत ने बगैर निकाह के ताल्लुक़ क़ायम कर लिया है तो इस तरह बगैर किसी लीगल मैरिज के, बगैर किसी शादी के बन्धन के जो औलाद होगी वह हरामी है। बिल क्लिंटन को मालूम था कि उनके यहाँ अब जो बच्चे पैदा हो रहे हैं वो अक्सरो बेशतर बगैर किसी शादी के बन्धन के पैदा हो रहे हैं, लिहाज़ा उसने कहा कि अनक़रीब हमारी क़ौम की अक्सरियत हरामज़ादों पर मुश्तमिल होगी। एक कौम की कज रवी और perversion की इन्तहा यह है कि उन्होंने बुनियादी फार्मों में से बाप का नाम ही निकाल दिया है। इसलिये कि बहुत से बच्चों को पता ही नहीं है कि हमारा बाप कौन है, वह तो अपनी माँ से वाक़िफ़ हैं, बाप के बारे में उन्हें कुछ इल्म नहीं है।

इसी तरह सरमाया और मेहनत के दरमियान हुक़ूक़ व फ़राइज़ का तवाज़ुन (संतुलन) क्या हो, यहाँ भी इन्सान बेबस है। सरमायादार की अपनी मसलहतें (स्वार्थ) हैं और मज़दूर की अपनी मसलहतें (स्वार्थ) हैं। सरमायादार को अन्दाज़ा नहीं हो सकता कि मज़दूर पर क्या बीत रही है, वह किन मशक़्क़तों में है। बक़ौल अल्लामा इक़बाल:

तू क़ादिर व आदिल है मगर तेरे जहान में
है तल्ख़ बहुत बन्दा-ए-मज़दूर के अवक़ात!

लिहाज़ा सरमाये के क्या हुक़ूक़ हैं और लेबर के क्या हुक़ूक़ हैं, इनमें तवाज़ुन क्या हो, यह किस तरह मुअय्यन (तय) होगा?

इसी तरह का मामला फ़र्द और मआशरे का है। एक तरफ इन्फ़रादी हुक़ूक़ और इन्फ़रादी आज़ादी है और दूसरी तरफ मआशरा, क़ौम और रियासत (state) है। किसके हुक़ूक़ ज़्यादा होंगे? एक फ़र्द कहता है मैं आज़ाद हूँ, मैं मादरज़ाद बराहना (बिल्कुल नंगा) होकर सड़क पर चलूँगा, तुम कौन हो मुझे रोकने वाले? आया (क्या) उसे रोका जा सकता है कि नहीं? अगर उसे रोक दिया जाये तो उसकी आज़ादी पर क़दगन (प्रतिबन्ध) हो जायेगी। अगर उसे कहा जाये कि तुम इस तरह नहीं निकल सकते तो आज़ादी तो नहीं रही, उसकी मादर-पीदर आज़ादी तो ख़त्म हो जायेगी! लेकिन ज़ाहिर बात है कि एक रियासत और मआशरे के कुछ उसूल हैं, उसके कुछ अख़्लाक़ियात हैं, कुछ क़वाइद व क़वानीन हैं। वह चाहती है कि उनकी पाबन्दी की जाये, और पाबन्दी कराने के लिये वह चाहती है कि उसके पास इख़्तियारात हों, ऑथोरिटी हो। दूसरी तरफ़ अवाम यह

चाहते हैं कि हमारे हुक़ूक़ का सारा मामला हमारे अपने हाथ में होना चाहिये। अब इसमें ऐतदाल का रास्ता कौन सा है?

यह है वह उक़दाये ला यन्हल (dilemma) जिसमें इन्सान के लिये इसके सिवा कोई और शक्ल नहीं है कि घुटने टेक कर अल्लाह से दुआ करे कि परवरदिगार! मैं इस मसले को हल नहीं कर सकता, मैं तुझसे रहनुमाई चाहता हूँ। तू मुझे हिदायत दे, सीधे रास्ते पर चला! मैंने तुझे पहचान लिया, मैंने यह भी जान लिया कि मरने के बाद जी उठना है और हिसाब किताब होगा और मुझे जवाबदेही करनी पड़ेगी, और मैं इस नतीजे पर भी पहुँच चुका हूँ कि तेरी ही बन्दगी करनी चाहिये, तेरी ही इताअत करनी चाहिये, तेरे ही हुक्म पर चलना चाहिये.... लेकिन इससे आगे मैं क्या करूँ क्या ना करूँ? क्या सही है क्या गलत है? क्या जायज़ है क्या नाजायज़ है? मेरा नफ्स तो मुझे अपनी मरग़ूब चीज़ों पर उकसाता है। लेकिन जिस चीज़ के लिये मेरे नफ्स ने मुझे उकसाया है वह जायज़ भी है या नहीं? सही भी है या नहीं? फ़ौरी री तौर पर तो मुझे इससे मुसर्रत (ख़ुशी) हासिल हो रही, मुझे इससे लज़्ज़त हासिल हो रही है, मनफ़अत (फ़ायदा) पहुँच रही है, लेकिन मैं नहीं जानता कि आख़िरकार नतीजे के ऐतबार से यह चीज़ मआशरे के लिये और खुद मेरे लिये नुक़सानदेह भी हो सकती है? ऐ अल्लाह! मैं नहीं जानता, तू मुझे हिदायत दे, मुझे रास्ता दिखा, सीधा रास्ता, दरम्यिानी रास्ता, ऐसा रास्ता जो मुतवाज़िन हो, जिसमें इन्साफ हो, जिसमें अद्ल और क़िस्त हो, जिसमें किसी के हुक़ूक़ साक़ित ना हों और कोई जाबिर (हिंसक) बन कर मुसल्लत (लागू) ना हो जाये, जिसमें ना कोई हुज़्न

(शोक) व मलाल और मायूसी व दरमान्दगी (depression) हो, ना कोई मआशी इस्तहसाल (आर्थिक शोषण) हो, ना कोई समाजी इम्तियाज़ (भेदभाव) हो। ऐ रब्ब! इन तीनों चीज़ों से पाक एक सिराते मुस्तक़ीम मैं अपने ज़हन से तलाश नहीं कर सकता, मेरे फ़ैसले जो हैं गलत हो जाएँगे। तो मैं हाथ जोड़ कर अर्ज़ करता हूँ कि मुझे इस सीधे रास्ते की हिदायत बख़्श दे।

यूँ समझिये कि पसमंज़र में एक शख़्स है जो अपनी सलामती-ए-तबअ, सलामती-ए-फ़ितरत और सलामती-ए-अक़्ल की रहनुमाई में यहाँ तक पहुँच गया कि उसने अल्लाह को पहचान लिया, आख़िरत को पहचान लिया, यह भी तय कर लिया कि रास्ता एक ही है और वह है अल्लाह की बन्दगी का रास्ता, लेकिन इसके बाद उसे एहतियाज (ज़रूरत) महसूस हो रही है कि मुझे बताया जाये कि अब मैं दायीं तरफ़ मुडूं या बायीं तरफ मुडूं? यह मुझे नहीं मालूम। क़दम-क़दम पर चौराहे आ रहे हैं, सैराहे आ रहे हैं। ज़ाहिर बात है इनमें से एक ही रास्ता होगा जो सीधा मंज़िले मक़सूद तक लेकर जायेगा। कहीं मैं गलत मोड़ मुड़ गया तो मेरा हाल इस शेर के मिस्दाक़ हो जायेगा:

रुस्तम कि ख़ार अज़ पाकशम महमुल निहाँ शद अज़ नज़र
यक लहज़ा गाफिल गुश्तम वसद साला राहम दूर शद!

एक छोटी सी गलती इन्सान को कहाँ से कहाँ ले जाती है। ज़ाहिर बात है कि सीधे रास्ते से आप ज़रा सा कज (टेढ़े) हो गये तो जितना आप आगे बढेंगे इसी क़दर उस सिराते मुस्तक़ीम से आपका फ़ासला बढ़ता चला जायेगा। आगाज़ में तो महज़ दस डिग्री का एंगल था, ज़्यादा फ़ासला नहीं

था, लेकिन यह दस डिग्री का एंगल खुलता चला जायेगा और आप सिराते मुस्तक़ीम से दूर से दूर तर होते चले जाऐंगे।

अल्लाह करे कि सूरतुल फ़ातिहा को पढ़ते हुए हम भी इसी मक़ाम पर खड़े हों कि हमारा दिल थका हुआ हो, हमें अल्लाह पर ईमान, अल्लाह की रबूबियत पर ईमान, अल्लाह की रहमानियत पर ईमान, अल्लाह के मालिकी यौमुद्दीन होने पर ईमान हासिल हो। यह भी हमारा अज़्म (दृढ संकल्प) हो और हमारा तयशुदा फ़ैसला हो कि उसी की बन्दगी करनी है, और फिर उसके सामने दस्त सवाल दराज़ करें कि परवरदिगार हमें हिदायत अता फरमा!

सूरतुल फ़ातिहा के तीन हिस्से

इस सूरह मुबारका के असलूब के हवाले से अब मैं इसके मज़ामीन का तजज़िया आपके सामने रखता हूँ। इस सूरह मुबारका को आप तीन हिस्सों में तक़सीम कर सकते हैं। पहली तीन आयात में अल्लाह की हम्दो सना है, आखरी तीन आयात में अल्लाह से दुआ है, जबकि दरमियान की चौथी आयत में बन्दे का अपने रब से एक अहद व पैमान है। यह गोया अल्लाह और बन्दे का एक Hand Shake है।

जुज़वे अव्वल: पहली तीन आयात में इन्सान की तरफ से उन हक़ाइक़ का इज़हार है जहाँ तक वह ख़ुद पहुँच गया है। यह तीन आयतें मिल कर एक जुम्ला बनती हैं। ग्रामर के ऐतबार से भी यह बड़ी ख़ूबसूरत तक़सीम है। पहली तीन आयतों में (जो मिल कर एक जुम्ला बनती हैं) अल्लाह की हम्दो सना है।

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ۝ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ۝ مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ ۝

“कुल शुक्र और कुल सना अल्लाह के लिये है जो तमाम जहानों का परवरदिगार और मालिक है। बहुत रहम फरमाने वाला, निहायत मेहरबान है, जज़ा और सज़ा के दिन का मालिक व मुख़्तार है।”

{اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ} अल्हमदु मुब्तदा लिल्लाही खबर। “कुल तारीफ़ (कुल हम्दो सना और कुल शुक्र) अल्लाह के लिये है।” अब वह अल्लाह कौन है? {رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ} “जो तमाम जहानों का मालिक है (परवरदिगार है, परवरिश कुनिन्दाह [प्रदाता] है)।” {الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ} “जो रहमान और रहीम है।” अल्हमदुलिल्लाह में लाम हर्फ़े जर है लिहाज़ा ‘अल्लाह’ मजरूर है। इसके बाद आने वाले कलिमात रब्बिल आलामीन, अर्रहमानिर्रहीम और मालिकी यौम इद्दीन ‘अल्लाह’ का बदल होने के बाइस मजरूर हैं। यह गोया एक जुम्ला चला आ रहा है: कुल हम्द, कुल सना, कुल शुक्र उस अल्लाह के लिये है जो तमाम जहानों का मालिक है, मुख़्तार है, आक़ा है, परवरदिगार है, रहमान है और रहीम है।

नोट कर लीजिये कि आयत बिस्मिल्लाह में भी अल्लाह तआला के नाम के साथ यह दोनों सिफाती नाम “अर्रहमान अर्रहीम” आये हैं। बल्कि दोनों जगह अल्लाह के लिये तीन नाम हैं। सबसे पहला नाम “अल्लाह” है। इसे कहा जाता है कि यह अल्लाह तआला का इस्मे ज़ात है। अगरचे मैं इसका क़ायल नहीं हूँ। यह भी एक सिफाती नाम है। “इलाह” पर

"अल" दाखिल होकर "अल्लाह" बन गया। लेकिन बहरहाल "अल्लाह" का नाम बड़ी अहमियत का हामिल है और अरब में सबसे ज़्यादा मारूफ़ यही नाम था। जब क़ुरान ने रहमान का तज़किरा करना शुरू किया तो वह हैरान हुए और कहने लगे कि यह रहमान क्या होता है? (مَا الرَّحْمٰنُ) तब यह कहा गया: (बनी इसराइल:110)

قُلِ ادْعُوا اللّٰهَ اَوِ ادْعُوا الرَّحْمٰنَ ۭ اَيًّا مَّا تَدْعُوْا فَلَهُ الْاَسْمَاۗءُ الْحُسْنٰى ۚ

"(ऐ नबी ﷺ! इनसे) कह दो कि उसे अल्लाह कह कर पुकार लो या रहमान कह कर पुकार लो, जो कह कर भी पुकारोगे तो तमाम अच्छे नाम उसी के हैं।"

यह तमाम सिफाते कमाल उसी की ज़ात में मौजूद हैं। (Call the rose by any name it will smell as sweet.)

इस्म "अल्लाह" के तीन मायने हैं। तफ़सील से सर्फे नज़र करते हुए अर्ज़ कर रहा हूँ कि अवाम के नज़दीक अल्लाह से मुराद हाजत रवा है, जिसकी तरफ इन्सान तकलीफ़ और मुसीबत में, मुश्किलात में, रिज़्क़ के लिये और अपनी दीगर हाजात के लिये रुजूअ करता है। "अल्लाह" का एक और मफ़हूम ये है कि वह हस्ती जो इन्सान को सबसे ज़्यादा महबूब हो {وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَشَدُّ حُبًّا لِّلّٰهِ} यह सूफ़िया किराम का तसव्वुर है। और एक है फ़लसफ़े का तसव्वुर कि "अल्लाह" वह हस्ती है जिसकी किना (वजूद) से कोई वाक़िफ़ नहीं हो सकता, उसके बारे में ग़ौरो फिक्र से सिवाय तहय्यर (आश्चर्यजनक) के और कुछ हासिल नहीं हो सकता। तो इस माद्दे "अलिफ लाम हा" या "वाव लाम हा" के अन्दर

तीन मायने हैं- 1) वह हस्ती कि जिसकी तरफ अपनी तकलीफ़ व मुसीबत के रफ़ा करने के लिये और अपनी ज़रूरियात पूरी कराने के लिये रुजूअ किया जाये। 2) वह हस्ती जिससे इन्तहाई मोहब्बत हो। 3) जिसकी हस्ती का इदराक (अहसास) मुमकिन नहीं, जिसकी किना (वजूद) हमारे फ़हम और हमारे तसव्वुर से मा वरा, वराउल वरा, सुम्मा वराउल वरा (high, higher, highest) है।

{الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ} रहमत के माद्दे से यह अल्लाह के दो अस्मा हैं। इना दोनों में फ़र्क़ क्या है? رَحْمٰن, فَعْلَان के वज़न पर मुबालगे का सीगा है, चुनाँचे इसके अन्दर मुबालगे की कैफ़ियत है, यानि इन्तहाई रहम करने वाला। इसलिये कि अरब जो इस वज़न पर कोई लफ़्ज़ लाते हैं तो मालूम होता है कि उसमें निहायत शिद्दत है। मसलन غَضْبَان "गुस्से में लाल भभूका शख़्स।" सूरतुल आराफ़ में हज़रत मूसा अलै० के लिये अल्फ़ाज़ आये हैं {غَضْبَانَ اَسِفًا} "गुस्से और रन्ज में भरा हुआ।" अरब कहेगा: اَنَا عَطْشَانُ: मैं प्यास से मरा जा रहा हूँ। اَنَا جَوْعَانُ: मैं भूक से मरा जा रहा हूँ। तो रहमान वह हस्ती है जिसकी रहमत ठाठे मारते हुए समुन्दर की मानिन्द है।

और "رَحِيْم" فَعِيْل के वज़न पर सिफते मुशब्बा है। जब कोई सिफ्त किसी की ज़ात में मुस्तक़िल और दाइम हो जाये तो वह फ़ईल के वज़न पर आती है। अर्रहमानिर्रहीम दोनो सिफ़ात इकट्ठी होने का मायना यह है कि उसकी रहमत ठाठें मारते हुए समुन्दर की मानिन्द भी है और उसकी रहमत में

दवाम भी है, वह एक दरिया की तरह मुस्तक़िल रवां-दवां है। अल्लाह तआला की रहमत की यह दोनों शानें ब-यक वक़्त मौजूद हैं। हम इसका कुछ अन्दाज़ा एक मिसाल से कर सकते है। फ़र्ज़ कीजिये कहीं कोई एक्सीडेन्ट हुआ हो और वहाँ आप देखें कि कोई ख़ातून बेचारी मर गयी है और उसका दूध पीता बच्चा उसकी छाती के साथ चिमटा हुआ है। यह भी पता नहीं है कि वह कौन है, कहाँ से आयी है, कोई उसके साथ नहीं है। इस कैफ़ियत को देख कर हर शख़्स का दिल पसीज जायेगा और हर वह शख़्स जिसकी तबियत के अन्दर नेकी का कुछ माद्दा है, चाहेगा कि इस लावारिस बच्चे की कफ़ालत और इसकी परवरिश की ज़िम्मेदारी मैं उठा लूँ। लेकिन हो सकता है कि जज़्बात के जोश में आप यह काम तो कर जायें लेकिन कुछ दिनों के बाद आपको पछतावा लाहक़ हो जाये कि मैं खाम्हा ख्वाह यह ज़िम्मेदारी ले बैठा और मैंने एक बोझ अपने ऊपर नाहक़ तारी कर लिया। चुनाँचे हमारे अन्दर रहम का जो जज़्बा उभरता है वह जल्द ही ख़त्म हो जाता है, वह मुस्तक़िल और दाइम नहीं है, जबकि अल्लाह की रहमत में जोश भी है और दवाम भी है, दोनों चीजें ब-यक वक़्त मौजूद हैं।

{مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ} "वह जज़ा और सज़ा के दिन का मालिक है।" वह मुख़्तारे मुतलक़ है। क़यामत के दिन इन्सानों के आमाल के मुताबिक़ जज़ा और सज़ा के फ़ैसले होंगे। किसी की वहाँ कोई सिफ़ारिश नहीं चलेगी, किसी का वहाँ ज़ोर नहीं चलेगा, कोई दे दिला कर छूट नहीं सकेगा, किसी को कहीं से मुतलक़न कोई मदद नहीं मिलेगी। उस रोज़ कहा जायेगा: {لِمَنِ الْمُلْكُ الْيَوْمَ} "आज किसके हाथ में

इख़्तियार और बादशाही है?" {لِلّٰهِ الْوَاحِدِ الْقَهَّارِ} "उस अल्लाह के हाथ में है जो अकेला है और पूरी क़ायनात पर छाया हुआ है।"

अब देखिये ग्रामर की रू से यह एक जुम्ला मुकम्मल हुआ:

اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ ۙ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ ۙ مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ ۗ	*"कुल हम्द व सना और शुक्र उस अल्लाह के लिये है जो तमाम जहानों का परवरदिगार और मालिक है, जो रहमान है, रहीम है, और जो जज़ा व सज़ा के दिन का मालिक और मुख़्तारे मुतलक़ है।"*

जुज़वे सानी: सूरतुल फ़ातिहा का दूसरा हिस्सा सिर्फ़ एक आयत पर मुश्तमिल है, जो हर ऐतबार से इस सूरत की मरकज़ी आयत है:

اِيَّاكَ نَعْبُدُ وَاِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ ۗ	*"हम सिर्फ़ तेरी ही बन्दगी करते हैं और करते रहेंगे और हम सिर्फ़ तुझ ही से मदद चाहते हैं और चाहते रहेंगे।"*

ज़मीर मुख़ातिब "كَ" को मुक़द्दम करने से हश्र का मफ़हूम पैदा होता है। फिर अरबी में फ़अल मुज़ारेअ, ज़माना-ए-हाल और मुस्तक़बिल दोनों के लिये आता है, लिहाज़ा मैंने तर्जुमे में इन बातों का लिहाज़ रखा है। यह बन्दे का अपने परवरदिगार से अहद व पैमान है जिसे मैंने hand shake से ताअबीर किया है। इसका सही तसव्वुर एक हदीस क़ुदसी की रोशनी में सामने आता है, जिसे मैं

बाद में पेश करूँगा। यहाँ समझने का असल नुक्ता यह है कि यह फ़ैसला कर लेना तो आसान है कि ऐ अल्लाह! मैं तेरी ही बन्दगी करूँगा, लेकिन इस फ़ैसले को निभाना बहुत मुश्किल है।

यह शहादत गहे उलफ़त में क़दम रखना है
लोग आसान समझते हैं मुस्लमान होना!

अल्लाह की बन्दगी के जो तक़ाज़े हैं उनको पूरा करना आसान नहीं है, लिहाज़ा बन्दगी का अहद करने के फ़ौरन बाद अल्लाह की पनाह में आना है कि ऐ अल्लाह! मैं इस ज़िमन में तेरी ही मदद चाहता हूँ। फ़ैसला तो मैंने कर लिया है कि तेरी ही बन्दगी करूँगा और इसका वादा कर रहा हूँ, लेकिन इस पर कारबन्द रहने के लिये मुझे तेरी मदद दरकार है। चुनाँचे रसूल अल्लाह ﷺ के अज़कारे मासूरह में हर नमाज़ के बाद आप ﷺ का एक ज़िक्र यह भी है: ((رَبِّ اَعِنِّیْ عَلٰی ذِکْرِكَ وَشُکْرِكَ وَحُسْنِ عِبَادَتِكَ))(6) "परवरदिगार! मेरी मदद फरमा कि मैं तुझे याद रख सकूँ, तेरा शुक्र अदा कर सकूँ और तेरी बन्दगी आहसन तरीक़े से बजा लाऊँ।" तेरी मदद के बग़ैर मैं यह नहीं कर सकूँगा।

{اِیَّاكَ نَعْبُدُ وَاِیَّاكَ نَسْتَعِیْنُ} जब भी आप इस आयत को पढ़ें तो आपके ऊपर एक ख़ास कैफ़ियत तारी होनी चाहिये कि पहले कंपकपी तारी हो जाये कि ऐ अल्लाह! मैं तेरी बन्दगी का वादा तो कर रहा हूँ, मैंने इरादा तो कर लिया है कि तेरा बन्दा बन कर ज़िन्दगी गुज़ारूँगा, मैं तेरी जनाब में इसका इक़रार कर रहा हूँ, लेकिन ऐ अल्लाह! मैं तेरी मदद का मोहताज हूँ, तेरी तरफ़ से तौफीक़ होगी, तैसीर

(सुविधा) होगी, तआवुन (सहयोग) होगा, नुसरत (मदद) होगी तब ही मैं यह अहदो पैमान पूरा कर सकूँगा, वरना नहीं।

{**اِيَّاكَ نَعْبُدُ وَاِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ**} आयत एक है लेकिन जुम्ले दो हैं। "**اِيَّاكَ نَعْبُدُ**" मुकम्मल जुम्ला है, जुम्ला फ़अलिया इन्शाइया और "**اِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ**" दूसरा जुम्ला है। बीच में हर्फ़े अतफ़ वाव है। इससे पहले इस सूरह मुबारका में कोई हर्फ़े अतफ़ नहीं आया है। इसलिये कि अल्लाह तआला की सारी सिफ़ात उसकी ज़ात में ब-यक वक़्त मौजूद हैं। यहाँ हर्फ़े अतफ़ आ गया: "ऐ अल्लाह! हम तेरी ही बन्दगी करते हैं और करते रहेंगे" और "तुझ ही से मदद माँगते हैं और माँगते रहेंगे।" हमारा सारा दारोमदार और तवक्कुल तुझ ही पर है। हम तेरी मदद ही के सहारे पर इतनी बड़ी बात कह रहे हैं कि ऐ अल्लाह! हम तेरी ही बन्दगी करते रहेंगे।

हम नमाज़े वितर में जो दुआ-ए-क़ुनूत पढ़ते हैं कभी आपने उसके मफ़हूम पर भी गौर किया है? उसमें हम अल्लाह तआला के हुज़ूर बहुत बड़ा इक़रार करते हैं:

اَللّٰھُمَّ اِنَّا نَسْتَعِیْنُكَ وَ نَسْتَغْفِرُكَ وَ نُؤْمِنُ بِكَ وَ نَتَوَكَّلُ عَلَیْكَ وَ نُثْنِیْ عَلَیْكَ الْخَیْرَ وَ نَشْكُرُكَ وَلَا نَكْفُرُكَ، وَ نَخْلَعُ وَ نَتْرُكُ مَنْ یَّفْجُرُكَ، اَللّٰھُمَّ اِیَّاكَ نَعْبُدُ وَلَكَ نُصَلِّیْ وَنَسْجُدُ وَاِلَیْكَ نَسْعٰی وَنَحْفِدُ، وَنَرْجُوْا رَحْمَتِكَ وَنَخْشٰی عَذَابَكَ اِنَّ عَذَابَكَ بِالْكُفَّارِ مُلْحِقٌ۔

"ऐ अल्लाह! हम तुझ ही से मदद चाहते हैं, और तुझ ही से अपने गुनाहों की मग़फ़िरत तलब करते

हैं, और हम तुझ पर ईमान रखते हैं, और तुझ पर तवक्कुल करते हैं, और तेरी तारीफ़ करते हैं, और तेरा शुक्र अदा करते हैं और तेरी नाशुक्री नहीं करते। और हम अलैहदा (अलग) कर देते हैं और छोड़ देते हैं हर उस शख़्स को जो तेरी नाफ़रमानी करे। ऐ अल्लाह! हम तेरी ही इबादत करते हैं और तेरे ही लिये नमाज़ पढ़ते हैं और सज्दा करते हैं, और हम तेरी तरफ़ कोशिश करते है और हम हाज़िरी देते हैं। और हम तेरी रहमत के उम्मदीवार हैं और तेरे अज़ाब से ड़रते हैं, बेशक तेरा अज़ाब काफ़िरों को पहुँचने वाला है।"

वाक़िया यह है कि इस दुआ को पढ़ते हुए लरज़ा तारी (खौफ़) होता है कि कितनी बड़ी-बड़ी बातें हम अपनी ज़ुबान से निकाल रहे हैं। हम ज़ुबान से तो कहते हैं कि "ऐ अल्लाह! हम सिर्फ़ तेरी ही मदद चाहते हैं" लेकिन ना मालूम किस-किस के सामने हाथ फैलाते हैं और किस-किस के सामने जबीं सायी करते (सर झुकाते) हैं, किस-किस के सामने अपनी इज़्ज़त-ए-नफ्स का धैला करते हैं। फिर यह अल्फ़ाज़ देखिये: وَنَخْلَعُ وَنَتْرُكُ مَنْ يَّفْجُرُكَ कि जो भी तेरी नाफ़रमानी करे उसे हम अलैहदा कर देते हैं, उसको हम छोड़ देते हैं, उससे तर्के ताल्लुक़ कर लेते हैं। लेकिन क्या वाक़िअतन हम किसी से तर्के ताल्लुक़ करते हैं? हम कहते हैं दोस्ती है, रिश्तेदारी है क्या करें, वह अपना अमल जाने मैं अपना अमल जानूँ। हमारा तर्ज़े अमल तो यह है। तो कितना बड़ा दावा है इस दुआ के अन्दर? और वह पूरा दावा इस एक जुम्ले में मुज़मर है: اِيَّاكَ نَعْبُدُ "परवरदिगार! हम तेरी

ही बन्दगी करते हैं और करते रहेंगे।" चुनाँचे उस वक़्त फ़ौरी तौर पर बन्दे के सामने यह कैफ़ियत आ जानी चाहिये कि ऐ अल्लाह मैं यह उसी सूरत में कर सकूँगा अगर तेरी मदद शामिले हाल रहे।

जुज़वे सालिस: सूरतुल फ़ातिहा का तीसरा हिस्सा तीन आयात पर मुश्तमिल है, ताहम (हालाँकि) यह एक ही जुम्ला बनता है।

اِهۡدِنَا الصِّرَاطَ الۡمُسۡتَقِیۡمَ ۙ﴿۵﴾ صِرَاطَ الَّذِیۡنَ اَنۡعَمۡتَ عَلَیۡہِمۡ ۬ۙ غَیۡرِ الۡمَغۡضُوۡبِ عَلَیۡہِمۡ وَ لَا الضَّآلِّیۡنَ ٪﴿۶﴾

(آمین)

"(ऐ रब हमारे!) हमें हिदायत बख़्श सीधी राह की। राह उन लोगों की जिन पर तेरा ईनाम हुआ, जो ना तो मग़ज़ूब हुए और ना गुमराह।"

अब दखिये यह اِیَّاکَ نَسۡتَعِیۡنُ ही की तशरीह है जो आख़री तीन आयतों में है। हमें अल्लाह से क्या मदद चाहिये? पैसा चाहिये? दौलत चाहिये? नहीं नहीं! ऐ अल्लाह हमें यह नहीं चाहिये। फिर क्या चाहिये? {اِهۡدِنَا الصِّرَاطَ الۡمُسۡتَقِیۡمَ} "हमें सीधे रास्ते की हिदायत अता फ़रमा।" यह जो ज़िन्दगी के मुख़्तलिफ़ मामलात में दोराहे, सेराहे और चौराहे आ जाते हैं, वहाँ हम फ़ैसला नहीं कर सकते कि सही क्या है, ग़लत क्या है। लिहाज़ा ऐ अल्लाह! हमें सीधे रास्ते की तरफ़

हिदायत बख़्श। "اِهْدِ" हिदायत से फ़अले अम्र है कि हमें हिदायत दे। हिदायत का एक दर्जा यह भी है कि सीधा रास्ता बता दिया जाये। हिदायत का दूसरा दर्जा यह है कि सीधा रास्ता दिखा दिया जाये, और हिदायत का आख़री मरतबा यह है कि उँगली पकड़ कर सीधे रास्ते पर चलाया जाये, जैसे बच्चों को लेकर आते हैं। लिहाज़ा सीधे रास्ते की हिदायत की दुआ में यह सारे मफ़हूम शामिल होंगे। ऐ अल्लाह! हमें सीधा रास्ता दिखा दे। ऐ अल्लाह! इस सीधे रास्ते के लिये हमारे सीनों को खोल दे। اَللّٰهُمَّ نَوِّرْ قُلُوْبَنَا بِالْاِيْمَانِ وَاشْرَحْ صُدُوْرَنَا لِلْاِسْلَامِ "ऐ अल्लाह! हमारे दिलों को ईमान की रोशनी से मुनव्वर कर दे और हमारे सीनों को इस्लाम के लिये खोल दे।" हमें उस पर इन्शराह-ए-सद्र (खुले दिल) हो जाये। और फिर यह कि हमें उस सीधे रास्ते के ऊपर चला।

अब आगे इस सिराते मुस्तक़ीम की भी वज़ाहत है, और यह वज़ाहत दो तरह से है। सिराते मुस्तक़ीम की वज़ाहत एक मुसबत अन्दाज़ में और एक मन्फ़ी अन्दाज़ में की गयी है। मुसबत अन्दाज़ यह है कि

صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ ۥۙ

"(ऐ अल्लाह!) उन लोगों के रास्ते पर (हमें चला) जिन पर तूने अपना ईनाम नाज़िल फ़रमाया।"

यह मज़मून जाकर सूरतुन्निसा में खुलेगा कि मुनअम अलैहिम चार गिरोह हैं:

مِّنَ النَّبِيّٖنَ وَالصِّدِّيۡقِيۡنَ وَالشُّهَدَآءِ وَالصّٰلِحِيۡنَ‌ۚ وَحَسُنَ اُولٰٓـئِكَ رَفِيۡقًا ؕ ﴿۶۹﴾

"कि वह नबी, सिद्दीक़ीन, शुहादा और सालेहीन हैं। और बहुत ही ख़ूब है उनकी रफ़ाक़त।"

ऐ अल्लाह! उनके रास्ते पर हमें चला। यह तो मुसबत बात हो गयी। मन्फ़ी अन्दाज़ यह इख़्तियार फ़रमाया:

غَيۡرِ الۡمَغۡضُوۡبِ عَلَيۡهِمۡ وَلَا الضَّآلِّيۡنَ ؑ ﴿۷﴾

"ना उन पर तेरा ग़ज़ब नाज़िल हुआ और ना ही वह गुमराह हुए।"

जो लोग सिराते मुस्तक़ीम से भटक गये वो दो क़िस्म के हैं। उनमें फ़र्क़ यह है कि जो शरारते नफ्स की वजह से गलत रास्ते पर चलता है उस पर अल्लाह का ग़ज़ब नाज़िल होता है, और जिसकी नीयत तो गलत नहीं होती, लेकिन वो गुलू (ज़रूरत से ज़्यादा मोहब्बत) करके जज़्बात में आकर कोई गलत रास्ता इख़्तियार कर लेता है तो वह ضَالّ (गुमराह) है। चुनाँचे "مَغۡضُوۡبِ عَلَيۡهِمۡ" की सबसे बड़ी मिसाल यहूद हैं कि अल्लाह की किताब उनके पास थी, शरीअत मौजूद थी, लेकिन शरारते नफ्स और तकब्बुर की वजह से वह ग़लत रास्ते पर चल पड़े। जबकि नसारा "ضَآلِّيۡنَ" हैं, उन्होंने

हज़रत मसीह अलै० के बारे में सिर्फ़ गुलू किया है। जैसे हमारे यहाँ भी बाज़ नात गौ और नात ख्वा नबी करीम ﷺ की शान बयान करते हैं तो मुबालगा आराई (ज़रुरत से ज़्यादा मोहब्बत) करते हुए कभी उन्हें अल्लाह से भी ऊपर ले जाते हैं। यह गुलू होता है, लेकिन होता है नेक नीयति से, मोहब्बत से। चुनाँचे नसारा ने हुब्बे रसूल में गुलू से काम लेते हुए हज़रत ईसा अलै० को ख़ुदा का बेटा बना दिया। हमारे शिया भाईयों में से भी बाज़ लोग हैं जो हज़रत अली रजि० को ही ख़ुदा बना बैठे हैं। मसलन,

"लेकिन नहीं है ज़ाते ख़ुदा से जुदा अली!"

बहरहाल यह गुलू होता है जो इन्सानों को गुमराह कर देता है। इसी लिये क़ुरान में कहा गया है: (अल् मायदा:77)

قُلْ يَاَهْلَ الْكِتٰبِ لَا تَغْلُوْا فِيْ دِيْنِكُمْ غَيْرَ الْحَقِّ

"ऐ किताब वालों! अपने दीन में नाहक़ गुलु से काम ना लो।"

लेकिन नसारा ने अपने दीन में और हज़रत ईसा अलै० की मोहब्बत में गुलू से काम लिया तो वह गुमराह हो गये। तो ऐ अल्लाह! इन सबके रास्ते से हमें बचा कर सीधे रास्ते पर चला, जो सिद्दिक़ीन का, अंबिया का, शुहादा का और सालेहीन का रास्ता है।

हदीसे क़ुदसी

आखिर में वह हदीसे क़ुदसी पेश कर रहा हूँ जिसमें सूरतुल फ़ातिहा ही को अस-सलाह (नमाज़) क़रार दिया गया है। यह मुस्लिम शरीफ़ की रिवायत है और हज़रत अबु हुरैरा रजि० इसके रावी है। वह बयान करते है कि मैंने रसूल अल्लाह ﷺ को यह इरशाद फ़रमाते हुए सुना कि अल्लाह तआला फ़रमाता है:

((قَسَمْتُ الصَّلَاةَ بَيْنِيْ وَ بَيْنَ عَبْدِيْ نِصْفَيْنِ وَلِعَبْدِيْ مَا سَأَلَ، فَإِذَا قَالَ الْعَبْدُ ﴿اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ﴾ قَالَ اللّٰهُ تَعَالٰى: حَمِدَنِيْ عَبْدِيْ، وَإِذَا قَالَ ﴿الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ﴾ قَالَ اللّٰهُ تَعَالٰى: اَثْنٰى عَلَيَّ عَبْدِيْ، وَإِذا قَالَ ﴿مٰلِكِ يَوْمِ الدِّيْنِ﴾ قَالَ مَجَّدَنِيْ عَبْدِيْ۔ وَقَالَ مَرَّةً: فَوَّضَ إِلَيَّ عَبْدِيْ۔ فَإِذَا قَالَ ﴿إِيَّاكَ نَعْبُدُ وَإِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ﴾ قَالَ هٰذَا بَيْنِيْ وَ بَيْنَ عَبْدِيْ وَلِعَبْدِيْ مَا سَأَلَ، فَإِذَا قَالَ ﴿اِهْدِنَا الصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَ صِرَاطَ الَّذِيْنَ اَنْعَمْتَ عَلَيْهِمْ ۙ غَيْرِ الْمَغْضُوْبِ عَلَيْهِمْ وَلَا الضَّآلِّيْنَ﴾ قَالَ هٰذَا لِعَبْدِيْ وَلِعَبْدِيْ مَا سَأَلَ))

"मैंने नमाज़ को अपने और अपने बन्दे के दरमियान दो बराबर हिस्सों में तक़सीम कर दिया है (इसका निस्फ हिस्सा मेरे लिये और निस्फ हिस्सा मेरे बन्दे के लिये है) और मेरे बन्दे को वह अता किया गया जो उसने तलब किया। जब बन्दा कहता है: "अल्हमदुलिल्लाही रब्बिल आलामीन" तो अल्लाह फ़रमाता है कि मेरे बन्दे ने मेरी हम्द की (मेरा शुक्र अदा किया)। जब बन्दा कहता है: "अर्रहमानिर्रहीम" तो अल्लाह फ़रमाता है कि मेरे बन्दे ने मेरी सना की। जब बन्दा कहता है:

"मालिकी यौमइद्दीन" तो अल्लाह फ़रमाता है कि मेरे बन्दे ने मेरी बुज़ुर्गी और बड़ाई बयान की-- और एक मर्तबा आप ﷺ ने यह भी फ़रमाया "मेरे बन्दे ने अपने आप को मेरे सुपुर्द कर दिया—(गोया यह पहला हिस्सा कुल का कुल अल्लाह के लिये है।) फिर जब बन्दा कहता है कि "इय्याका नाअबुदु व इय्याका नस्तईन" तो अल्लाह तआला फ़रमाता है कि यह हिस्सा मेरे और मेरे बन्दे के माबैन (बीच) मुशतरिक (साझा) है और मैंने अपने बन्दे को बख़्शा जो उसने माँगा। (गोया यह हिस्सा एक क़ौल व क़रार और अहद व मीसाक़ [घोषणापत्र] है। इसे मैंने कहा था कि यह अल्लाह और बन्दे के दरमियान Shake Hand है।) फिर जब बन्दा कहता है: "इहदी नस्सिरातल मुस्तक़ीम, सिरातल्लाज़ीना अन'अमता अलैहिम, गयरिल मग़दूबी अलैहिम वलद्दाल्लीन" तो अल्लाह फ़रमाता है कि यह हिस्सा (कुल का कुल) मेरे बन्दे के लिये है और मेरे बन्दे ने जो कुछ मुझसे तलब किया वह मैंने उसे बख़्शा।"(7)

इस हदीस की रू से सूरतुल फ़ातिहा के तीन हिस्से बन जाएँगे। पहला हिस्सा कुल्लियतन अल्लाह के लिये है और आखरी हिस्सा कुल्लियतन बन्दे के लिये, जबकि दरमियानी व मरकज़ी आयत: "اِيَّاكَ نَعْبُدُ وَاِيَّاكَ نَسْتَعِيْنُ" बन्दे और अल्लाह के माबैन (बीच) क़ौल व क़रार है। गोया इसका भी निस्फे अव्वल अल्लाह के लिये और निस्फे सानी बन्दे के

लिये है। इसी तरह निस्फ-निस्फ की तक़सीम ब-तमाम व कमाल पूरी हो गयी!

एक बात यह भी नोट कर लीजिये कि इस हदीसे क़ुदसी में "قَسَمْتُ الصَّلَاةَ بَيْنِيْ وَبَيْنَ عَبْدِيْ نِصْفَيْنِ" के बाद आयत "बिस्मिल्लाह" का ज़िक्र नहीं है, बल्कि "اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ" से बात बराहे रास्त आगे बढ़ती है। इससे यह साबित हुआ कि इस ज़िमन में इमाम अबु हनीफ़ा रहि० का मौक़फ दुरुस्त है कि आयत बिस्मिल्लाह सूरतुल फ़ातिहा का जुज़ नहीं है।

इस सूरह मुबारका के इख्तताम पर "आमीन" कहना मसनून है। "आमीन" के मायने हैं "ऐ अल्लाह ऐसा ही हो!" इस सूरह मुबारका का असलूब चूँकि दुआइया है, लिहाज़ा दुआ के इख्तताम पर "आमीन" कह कर बन्दा गोया फिर बारगाहे इलाही में अर्ज़ करता है कि ऐ परवरदिगार! मैंने यह अर्ज़राश्त (घोषणा) तेरे हुज़ूर पेश की है, तू इसे शर्फ़े क़ुबूल अता फरमा।

بارك الله لى ولكم فى القرآن العظيم ونفعنى وايا كم بالآيات والذكر الحكيم۔

❀ ❀ ❀

सूरतुल बक़रह

तम्हीदी कलिमात

क़ुरान हकीम की पहली सूरत सूरतुल फ़ातिहा है, जिसका मुतअला हम कर चुके हैं। यह बात आपके सामने आ चुकी है कि यह वह पहली सूरत है जो रसूल अल्लाह صلى الله عليه وسلم पर पूरी की पूरी नाज़िल हुई। इससे पहले सिर्फ़ मुतफर्रिक़ (विभिन्न) आयात नाज़िल हुई थीं। यानि सूरतुल अलक़, सूरतुल क़लम, सूरतुल मुज़म्मिल और सूरतुल मुदस्सिर की इब्तदाई (शुरुआती) आयात।

यह बात भी आपके सामने आ चुकी है कि क़ुरान हकीम में मक्की और मदनी सूरतों के मजमुओं (जोड़ों) के ऐतबार से भी सात ग्रुप हैं। पहला ग्रुप वह है जिसका हम सूरतुल फ़ातिहा से आग़ाज़ कर चुके हैं। इस ग्रुप में जो मक्की सूरत है वह सिर्फ़ सूरतुल फ़ातिहा है। यह हुज्म (मात्रा) के ऐतबार से बहुत छोटी लेकिन अपने मक़ाम व मरतबा और फज़ीलत के ऐतबार से बहुत बड़ी है, यहाँ तक कि इसे "अल-क़ुरानुल अज़ीम" भी कहा गया है। गोया यह अपनी जगह पर ख़ुद एक अज़ीम क़ुरान है। इसके बाद मदनी सूरतें चार हैं। यह तवील तरीन मदनी सूरतें हैं और दो-दो सूरतों के दो जोड़ों पर मुश्तमिल हैं। मैं अर्ज़ कर चुका हूँ कि क़ुरान हकीम की अक्सर सूरतें जोड़ों की शक्ल में हैं, जबकि कुछ मुन्फ़रिद (अकेली) भी हैं। सूरतुल फ़ातिहा मुन्फ़रिद है, उसका कोई जोड़ा नहीं है, अगरचे उसकी मानवी मुनासबत क़ुरान

मजीद की आखरी सूरत सूरतुन्नास के साथ जोड़ी जाती है, लेकिन बहरहाल उसका जोड़ा सूरतुल फ़लक़ है। قُلْ اَعُوْذُ بِرَبِّ الْفَلَقِ और قُلْ اَعُوْذُ بِرَبِّ النَّاسِ दोनों सूरतों पर मुश्तमिल एक जोड़ा है, लिहाज़ा सूरतुल फ़ातिहा का कोई जोड़ा नहीं है, या हम यह कह सकते हैं कि पूरा क़ुरआन ही उसका जोड़ा है।

सूरतुल फ़ातिहा के बाद जो चार सूरतें हैं यह जोड़ो की शक्ल में हैं। सूरतुल बक़रह और सूरह आले इमरान एक जोड़ा है जबकि सूरतुन्निसा और सूरतुल मायदा दूसरा जोड़ा है। इसकी सबसे नुमाया अलामत यह है कि सूरतुल बक़रह और सूरह आले इमरान दोनों का आग़ाज़ हर्फ़े मुक़त्तआत "الٓمّٓ" से होता है, जबकि सूरतुन्निसा और सूरतुल मायदा दोनों में बग़ैर किसी तम्हीद के गुफ्तुगू शुरू हो जाती है। सूरतुन्निसा का आग़ाज़ होता है: {يٰۤاَيُّهَا النَّاسُ اتَّقُوْا رَبَّكُمُ الَّذِيْ خَلَقَكُمْ مِّنْ نَّفْسٍ وَّاحِدَةٍ} और सूरतुल मायदा शुरू होती है: {يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْۤا اَوْفُوْا بِالْعُقُوْدِ}। पहले कोई तम्हीदी बात नहीं की गयी।

सूरतुल बक़रह और सूरह आले इमरान का यह जो जोड़ा है, इन दोनों को रसूल अल्लाह ﷺ ने "अज़्ज़हरावैन" का नाम अता फरमाया है। "ज़हरा" का मतलब है बहुत ताबनाक, रोशन। यह लफ्ज़ हज़रत फ़ातिमा रज़ि० के नाम का जुज़ (हिस्सा) बन चुका है और उन्हें फ़ातिमातुज़्ज़हरा कहा जाता है। रसूल अल्लाह ﷺ की लख़्ते जिगर, नूरे चश्म हज़रत फ़ातिमा बहुत ही रोशन चेहरे वाली ख़ातून

थीं। हज़ूर ﷺ के अल्फ़ाज़ के मुताबिक़ सूरतुल बक़रह और सूरह आले इमरान "अज़्ज़हरावैन" यानि दो इन्तहाई ताबनाक और रोशन सूरतें हैं। इसी तरह क़ुरान मजीद की आखरी दो सूरतों को "मुअव्वज़ातैन" का नाम दिया गया है।

पहले ग्रुप की इन मदनी सूरतों के मज़ामीन के बारे में जान लीजिये कि दो मज़मून हैं जो इनमें मुतवाज़ी (समानांतर) चलते हैं। पहला मज़मून शरीअते इस्लामी का है। इसलिये कि इससे पहले तक़रीबन दो तिहाई क़ुरान नाज़िल हो चुका है। सूरतुल बक़रह पहली मदनी सूरत है, इससे पहले ज़मानी ऐतबार से पूरा मक्की क़ुरान नाज़िल हो चुका था, अगरचे तरतीब में वह बाद में आयेगा। उसमें शरीअत के अहकाम नहीं थे। लिहाज़ा अब जबकि मदीना में मुस्लमानों का एक आज़ाद मआशरा क़ायम हो गया, या यूँ कह लीजिये कि मुस्लमानों की एक छोटी सी हुकूमत क़ायम हो गयी, जहाँ अपने क़वाइद, अपने क़वानीन, अपने उसूलों के मुताबिक़ सारे मामलात तय किये जा सकते थे, तब शरीअत का नुज़ूल शुरू हुआ। सूरतुल बक़रह में यूँ समझिये कि अहकामे शरीअत की इब्तदा होती है। कोई भी तामीर करनी हो तो पहले उसका इब्तदाई ख़ाका बनता है, उसके बाद उसके तफ्सीली नक़्शे बनते हैं। तो इब्तदाई ख़ाका जो है शरीअते मुहम्मदी अला सहाबाहुस्सलातु वस्सलाम का वह सूरतुल बक़रह में है। फिर सूरतुन्निसा में इसके अन्दर मज़ीद इज़ाफ़ा होता है, और सूरतुल मायदा में शरीअत के तकमीली अहकाम आते हैं। चुनाँचे सूरतुल मायदा तकमीले शरीअत की सूरत है। इसी में वह आयत है (आयत:3):

{اَلۡیَوۡمَ اَ کۡمَلۡتُ لَکُمۡ دِیۡنَکُمۡ وَاَتۡمَمۡتُ عَلَیۡکُمۡ نِعۡمَتِیۡ وَرَضِیۡتُ لَکُمُ الۡاِسۡلَامَ دِیۡنًا}।

दूसरा मज़मून जो इन सूरतों में चलता है वह है अहले किताब से ख़िताब। मक्की क़ुरान में सारा ख़िताब मुशरिकीन से था, यानि अरब के वो लोग जो मक्का में और उसके इर्द-गिर्द आबाद थे। वहाँ कोई यहूदी या कोई नसरानी नहीं था, सब के सब मुशरिकीने अरब थे। तो पूरे मक्की क़ुरान में उन्ही से रद्दो क़दाह है, गुफ्तुगू है, बहस व नज़ाअ है, उनके ऐतराज़ात के जवाबात हैं और उन पर इत्मामे हुज्जत किया गया है। अगरचे अहले किताब का तज़किरा हवाले के तौर पर मौजूद है, हज़रत मूसा और हज़रत ईसा अलै० का ज़िक्र मौजूद है, लेकिन बनी इसराइल से, यहूदियों से, या नसारा से कोई ख़िताब नहीं हुआ। उनसे ख़िताब मदीना में आकर शुरू हुआ है, क्योंकि वहाँ यहूदी आबाद थे। मदीना में यहूद के तीन मज़बूत क़बीले मौजूद थे। तो यह हैं दो बुनियादी मज़मून इस पहले ग्रुप के। इनमें आपको एक और तक़सीम नज़र आ जायेगी कि अहले किताब में से जिनसे “या बनी इसराइल” के अल्फ़ाज़ से ख़िताब हो रहा है यानि यहूद, उनसे सारी गुफ्तुगू सूरतुल बक़रह में है, जबकि जो नसारा हैं उनसे गुफ्तुगू सूरह आले इमरान में है।

सूरतुल बक़रह की अहमियत व फज़ीलत का अन्दाज़ा इससे भी होता है कि इसे हुज़ूर ﷺ ने क़ुरान मजीद का ज़रवा-ए-सनाम यानि क्लाईमैक्स (Climax) क़रार दिया है। हदीस के अल्फ़ाज़ हैं: ((اَلۡبَقَرَۃُ سَنَامُ الۡقُرۡآنِ وَ ذُرۡوَتُہٗ)) (मसनद अहमद)। हुज्म के ऐतबार से भी क़ुरान की सबसे

बड़ी सूरत यही है, 286 आयात पर मुश्तमिल ढ़ाई पारों पर फैली हुई है।

सूरतुल बक़रह को दो हिस्सो में तक़सीम किया जा सकता है और इस ऐतबार से मैंने इसका एक नाम तजवीज़ किया है "सूरतुल उम्मातैन" यानि दो उम्मतों की सूरत। इसके निस्फ़े अव्वल में असल रुए सुखन उम्मत साबिक़ यहूद की तरह है, जो उस वक़्त तक अल्लाह के नुमाइन्दा थे और ज़मीन पर वही उम्मते मुस्लिमा की हैसियत रखते थे। लेकिन उन्होंने अपनी बदआमाली की वजह से अपने आपको उस मक़ाम का नाअहल साबित किया, लिहाज़ा वह माज़ूल (बेदखल) किये गये और एक नयी उम्मत उम्मते मुहम्मद ﷺ उस मक़ाम पर फाइज़ की (रखी) गयी। तो निस्फे अव्वल में साबित उम्मत से गुफ्तुगू है और उन पर गोया फर्दे जुर्म आइद की (लगाई) गयी है कि तुमने यह किया, यह किया और यह किया। हमने तुम पर यह अहसानात किये, हमनें यह भलाईयाँ कीं, तुम्हारे ऊपर हमारी यह रहमतें हुईं, लेकिन तुम्हारा तर्ज़े अमल यह है, जिसकी बिना पर अब तुम माज़ूल किये जा रहे हो। यह मज़मून है पहले निस्फ़ का। और अब जो दूसरी उम्मत क़ायम हुई है यानि उम्मते मुहम्मद ﷺ, उससे ख़िताब है निस्फ़े सानी के अन्दर। तो इसकी यह तरतीब ज़हन में रखिये। पहला हिस्सा अट्ठारह रुकूओं पर मुश्तमिल है और उसकी आयात की तादाद 152 है। जबकि दूसरा हिस्सा बाईस रुकूओं पर मुश्तमिल है, लेकिन तादादे आयात 134 हैं। इस तरह यह दोनों हिस्से तक़रीबन बराबर बन जाते हैं।

निस्फ़े अव्वल के जो अट्ठारह रुकूअ हैं उनको भी तीन हिस्सों में तक़सीम कर लीजिये। पहले चार रुकूअ तम्हीदी हैं। फिर दस रुकूओं में बनी इसराइल से ख़िताब है। फिर चार रुकूअ तहवीली हैं। तम्हीदी रुकूओं में से पहले दो रुकूओं में तीन क़िस्म के इन्सानों की एक तक़सीम बयान कर दी गयी जो दुनिया में हमेशा पाये जायेंगे। जब भी कोई नयी दावत आयेगी तो कुछ लोग ऐसे होंगे जो उसे तहे दिल से क़ुबूल करेंगे और उसके लिये "हरचे बादाबाद मा कश्ती दराब अन्दाखतीम" के मिस्दाक़ सब कुछ करने को तैयार हो जायेंगे। कुछ लोग वह होंगे जो उसकी मुख़ालफ़त पर अव्वल रोज़ से कमर कस लेंगे और उसे हरगिज़ नहीं मानेंगे। और कुछ वह होंगे जो बैन-बैन (बीच में) रहेंगे। उनका तर्ज़े अमल यह रहेगा कि बात कुछ अच्छी लगती भी है लेकिन इसके लिये क़ुर्बानी देनी कठिन है, इसके तक़ाज़े बड़े मुश्किल हैं। बात अच्छी है क़ुबूल भी करते हैं, लेकिन अमालन उसके तक़ाज़े पूरे नहीं करते। उनके लिये सूरतुन्निसा (आयत:143) में {لَآ اِلٰى هٰٓؤُلَاۗءِ وَلَآ اِلٰى هٰٓؤُلَاۗءِ} के अल्फ़ाज़ आये हैं। यह तफ़सील पहले दो रुकूओं में आयी है।

इसके बाद दूसरे दो रुकूओं में गोया मक्की क़ुरान का ख़ुलासा आ गया है। एक रुकूअ में क़ुरान मजीद की दावत का ख़ुलासा और एक रुकूअ में क़ुरान मजीद का फ़लसफ़ा बयान कर दिया गया। यह मज़ामीन असल में मक्की सूरतों के हैं और वहाँ तफ़सील से ज़ेरे बहस आ चुके हैं। सूरतुल बक़रह के नुज़ूल से पहले इन मज़ामीन पर बहुत मुफ़स्सल (विस्तृत) बहसें हो चुकी हैं, लेकिन चूँकि हिकमते खुदावन्दी में इस मुसहफ़ की तरतीब में सबसे पहले सूरतुल बक़रह है,

लिहाज़ा सूरतुल बक़रह में इन मज़ामीन का ख़ुलासा दर्ज कर दिया गया, ताकि आगे बढ़ने से पहले वह मज़ामीन ज़हन नशीन कर लिये जायें।

अब बिस्मिल्लाह करके हम सुरतुल बक़रह के मुताअले का आग़ाज़ कर रहे हैं।

आयात 1 से 7 तक

اَعُوْذُ بِاللّٰہِ مِنَ الشَّیْطٰنِ الرَّجِیْمِ

بِسۡمِ اللّٰہِ الرَّحۡمٰنِ الرَّحِیۡمِ

الٓـمّٓ ۚ﴿۱﴾ ذٰلِکَ الۡکِتٰبُ لَا رَیۡبَ ۚۖۛ فِیۡہِ ۚۛ ہُدًی لِّلۡمُتَّقِیۡنَ
﴿۲﴾ الَّذِیۡنَ یُؤۡمِنُوۡنَ بِالۡغَیۡبِ وَ یُقِیۡمُوۡنَ الصَّلٰوۃَ وَ مِمَّا
رَزَقۡنٰہُمۡ یُنۡفِقُوۡنَ ﴿۳﴾ وَ الَّذِیۡنَ یُؤۡمِنُوۡنَ بِمَاۤ اُنۡزِلَ
اِلَیۡکَ وَ مَاۤ اُنۡزِلَ مِنۡ قَبۡلِکَ ۚ وَ بِالۡاٰخِرَۃِ ہُمۡ
یُوۡقِنُوۡنَ ؕ﴿۴﴾ اُولٰٓئِکَ عَلٰی ہُدًی مِّنۡ رَّبِّہِمۡ ٭ وَ اُولٰٓئِکَ
ہُمُ الۡمُفۡلِحُوۡنَ ﴿۵﴾ اِنَّ الَّذِیۡنَ کَفَرُوۡا سَوَآءٌ عَلَیۡہِمۡ
ءَاَنۡذَرۡتَہُمۡ اَمۡ لَمۡ تُنۡذِرۡہُمۡ لَا یُؤۡمِنُوۡنَ ﴿۶﴾ خَتَمَ اللّٰہُ

عَلٰى قُلُوۡبِهِمۡ وَعَلٰى سَمۡعِهِمۡ ؕ وَعَلٰٓى اَبۡصَارِهِمۡ
غِشَاوَةٌ وَّلَهُمۡ عَذَابٌ عَظِيۡمٌ ۝٧

[redacted]

"अलिफ़, लाम, मीम।"

الٓمّٓ ۝١

यह हुरूफ़े मुक़त्तआत हैं जिनके बारे में यह जान लीजिये कि इनके हक़ीक़ी, हतमी (निश्चित) और यक़ीनी मफ़हूम को कोई नहीं जानता सिवाय अल्लाह और उसके रसूल ﷺ के। यह एक राज़ है अल्लाह और उसके रसूल ﷺ के माबैन (बीच)। हुरूफ़े मुक़त्तआत के बारे में अगरचे बहुत सी आरा (राय) ज़ाहिर की गयी हैं, लेकिन उनमें से कोई शय रसूल अल्लाह ﷺ से मनक़ूल नहीं है। अलबत्ता यह बात साबित है कि इस तरह के हुरूफ़े मुक़त्तआत का कलाम में इस्तेमाल अरब में मारूफ़ था, इसलिये किसी ने इन पर ऐतराज़ नहीं किया। क़ुरान मजीद की 114 में से 29 सूरतें ऐसी हैं जिनका आग़ाज़ हुरूफ़े मुक़त्तआत से हुआ है। सूरह क़ाफ़, सूरतुल क़लम और सूरह सुआद के आग़ाज़ में एक-एक हर्फ है। हा मीम, ताहा और यासीन दो-दो हर्फ हैं। अलिफ़ लाम मीम और अलिफ़ लाम रा तीन-तीन हुरूफ़ हैं जो कई सूरतों के आग़ाज़ में आये हैं। अलिफ़ लाम मी सुआद और अलिफ़ लाम मीम रा चार-चार हुरूफ़ हैं। हुरूफ़े मुक़त्तआत में ज़्यादा से ज़्यादा पाँच हुरूफ़ यकजा (इकट्ठे) आते हैं। चुनाँचे काफ़ हा या अैन सुआद सूरह मरयम के आग़ाज़ में और हा मीम अैन

सीन क़ाफ़ सूरतुल शौरा के आग़ाज़ में आये हैं। इनके बारे में इस वक़्त मुझे इससे ज़्यादा कुछ अर्ज़ नहीं करना है। अपने मुफ़स्सल दर्से क़ुरान में मैंने इन पर तफ़सील से बहसें की हैं।

आयत 2

ذٰلِكَ الْكِتٰبُ لَا رَيْبَ ۛ فِيْهِ ۛ

"यह अल किताब है, इसमें कुछ शक नहीं।" या "यह वो किताब है जिसमें कोई शक नहीं।"

आयत के इस टुकड़े के दो तर्जुमे हो सकते हैं। पहले तर्जुमे की रू से यह है वह किताबे मौऊद (वादा की हुई) जिसकी ख़बर दी गयी थी कि नबी आखिरुज़्ज़माँ ﷺ आयेंगे और उनको हम एक किताब देंगे। यह गोया हवाला है मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ के बारे में पेशनगोईयों की तरफ कि जो तौरात में मौजूद थीं। आज भी "किताब मुक़द्दस" की किताबे इस्तसना (Deuteronomy) के अट्ठाहरवें बाब के अट्ठाहरवीं आयत के अन्दर यह अल्फ़ाज़ मौजूद हैं कि: "मैं इन (बनी इसराइल) के लिये इनके भाईयों (बनी इस्माईल) में से तेरी मानिन्द एक नबी बरपा करूँगा और अपना कलाम उसके मुँह में डालूँगा और जो कुछ मैं उसे हुक्म दूँगा वही वह उनसे कहेगा।" तो यह बाईबल में हज़रत मुहम्मद ﷺ की पेशनगोईयाँ थीं। आगे चल कर सूरतुल आराफ़ में हम इसे तफ़सील से पढ़ भी लेंगे। यहाँ इस बात की तरफ़ इशारा हो रहा है कि यही वह किताबे मौऊद है कि जो नाज़िल कर दी गयी है मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर। इसमें किसी शक व शुबह की गुन्जाईश नहीं है। इसमें हर शय अपनी

जगह पर यक़ीनी है, हतमी है, अटल है, और यह दुनिया की वाहिद किताब है जो यह दावा लेकर उठी है कि इसमें कोई शक व शुबह नहीं। जो किताबें आसमानी कहलायी जाती हैं उनके अन्दर भी यह दावा कहीं मौजूद नहीं है, इन्सानी किताबों में तो इसका सवाल ही नहीं है। अल्लामा इक़बाल जैसे नाबगह अस्र (समकालीन प्रतिभाशाली) फ़लसफ़ी भी अपने लेक्चर्स की तम्हीद में लिखते है कि मैं यह नहीं कह सकता कि जो कुछ मैंने कहा है वह सब सही है, हो सकता है जैसे-जैसे इल्म आगे बढ़े मज़ीद नयी बातें सामने आयें।

लेकिन क़ुरान का दावा है कि لَا رَيْبَ ۚ فِيْهِ ۚ "इसमें किसी शक व शुबह की गुंजाईश नहीं है।" पहले तर्जुमे की रू से "ذٰلِكَ الْكِتٰبُ" एक जुम्ला मुकम्मल हो गया और "لَا رَيْبَ ۚ فِيْهِ ۚ" दूसरा जुम्ला है। जबकि दूसरे तर्जुमे की रू से "ذٰلِكَ الْكِتٰبُ لَا رَيْبَ ۚ فِيْهِ ۚ" मुकम्मल जुम्ला है। यानि "यह वह किताब है जिसमें किसी शक व शुबह की गुंजाईश नहीं है।"

هُدًى لِّلْمُتَّقِيْنَ ۝٢

"हिदायत है परहेजगारों के लिये।"

यानि उन लोगों के लिये जो बचना चाहें। तक़वा का लफ्ज़ी मायना है बचना। "وَقٰى يَقِى" का मफ़हूम है "किसी को बचाना" जबकि तक़वा का मायना है खुद बचना। यानि कज रवी से बचना, गलत रवी से बचना और इफ़रात व तफ़रीत (inflation & deflation) के धोखों से बचना। जिन लोगों के अन्दर फ़ितरते सलीमा होती है उनके अन्दर यह

अख्लाक़ी हिस्स (भावना) मौजूद होती है कि वह भलाई को हासिल करना चाहते हैं और हर बुरी चीज़ से बचना चाहते हैं। यहीं लोग हैं जो क़ुरान मजीद के असल मुख़ातिबीन (श्रोता) हैं। गोया जिसके अन्दर भी बचने की ख़्वाहिश है उसके लिये यह किताब हिदायत है। सूरतुल फ़ातिहा में हमारी फ़ितरत की तर्जुमानी की गयी थी और हमसे यह कहलवाया गया था: {اِهۡدِنَا الصِّرَاطَ الۡمُسۡتَقِيۡمَ} "(ऐ परवरदिगार!) हमें सीधे रास्ते की हिदायत बख़्शा।" आयत ज़ेरे मुतआला गोया इसका जवाब है: {ذٰلِكَ الۡكِتٰبُ لَا رَيۡبَ ۛۚ فِيۡهِ ۛۚ هُدًى لِّلۡمُتَّقِيۡنَ} लो वह किताब मौजूद है कि जिसमें किसी शक व शुबह की गुंजाईश नहीं है और यह उन तमाम लोगों के लिये हिदायत के तक़ाज़ों के ऐतबार से किफ़ायत करती है जिनमें गलत रवी से बचने की ख़्वाहिश मौजूद है।

वह लोग कौन हैं? अब यहाँ देखिये तावीले खास का मामला आ जायेगा कि उस वक़्त रसूल अल्लाह ﷺ की तेरह बरस की मेहनत के नतीजे में मुहाजरीन व अन्सार की एक जमात वजूद में आ गयी थी, जिसमें हज़राते अबुबक्र, उमर, उस्मान, अली, तल्हा, ज़ुबैर, साद बिन उबादह और साद इब्ने मुआज़ (रज़िअल्लाहु अन्हुम) जैसे नफ़ूसे क़ुदसिया शामिल थे। तो गोया इशारा करके दिखाया जा रहा है कि देखो यह वो लोग हैं, देख लो इनमें क्या औसाफ़ (गुण) हैं।

आयत 3

الَّذِيۡنَ يُؤۡمِنُوۡنَ بِالۡغَيۡبِ

"जो ईमान रखते हैं गैब पर"

यह मुत्तक़ीन के औसाफ़ में से पहला वसफ़ (गुण) है। वह यह नहीं समझते कि बस जो कुछ हमारी आँखों से नज़र आ रहा है, हवासे ख़म्सा (Five senses) की ज़द में है बस वही कुल हक़ीक़त है। नहीं! असल हक़ीक़त तो हमारे हवास की सरहदों से बहुत परे वाक़ेअ हुई है।

हिदायते क़ुरानी का नुक़्ता-ए-आगाज़ यह है कि इन्सान यह समझ ले कि जो असल हक़ीक़त है वह उसकी निगाहों से मुस्तविर (छुपी) है। इन्गलिस्तान के बहुत बड़े फ़लसफ़ी ब्रेडले (Bradley) की किताब का उन्वान है: "Appearance and Reality"। उसने लिखा है कि जो कुछ नज़र आ रहा है यह हक़ीक़त नहीं है, हक़ीक़त इसके पीछे है, कन्फ़यूसिस (551 से 479 ई०पू०) चीन का बहुत बड़ा हकीम और फ़लसफ़ी था, उसकी तालीमात में अख़्लाक़ी रंग बहुत नुमाया था। उसका एक जुम्ला है:

> There is nothing more real than what can not be seen; and there is nothing more certain than what can not be heard.
>
> *यानि वह हक़ाइक़ जो आँखों से देखे नहीं जा सकते और कानों से सुने नहीं जा सकते उनसे ज़्यादा यक़ीनी और वाक़ई हक़ाइक़ कोई और नहीं हैं।*

وَ يُقِيۡمُوۡنَ الصَّلٰوةَ

"और नमाज़ क़ायम करते हैं"

अल्लाह के साथ अपना एक ज़हनी व क़ल्बी और रूहानी रिश्ता इस्तवार (मज़बूत) करने के लिये नमाज़ क़ायम करते हैं।

وَمِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ ۝

"और जो कुछ हमनें उन्हें दिया है उसमें से खर्च करते हैं।"

यानि ख़ैर में, भलाई में, नेकी में, लोगों की तकालीफ़ दूर करने में और अल्लाह के दीन की सरबुलन्दी के लिये, अल्लाह तआला की रज़ाजोई के लिये
अपना माल खर्च करते हैं।

आयत 4

وَالَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِمَآ اُنْزِلَ اِلَيْكَ

"और जो ईमान रखते हैं उस पर भी जो (ऐ नबी ﷺ) आपकी तरफ़ नाज़िल किया गया है।"

وَمَآ اُنْزِلَ مِنْ قَبْلِكَ ۚ

"और उस पर भी (ईमान रखते हैं) जो आप (ﷺ) से पहले नाज़िल किया गया।"

यह बहुत अहम अल्फ़ाज़ हैं। आम तौर पर आज कल हमारे यहाँ यह ख्याल फैला हुआ है कि साबक़ा आसमानी किताब तौरात और इन्जील वगैरह के पढ़ने का कोई फ़ायदा नहीं, इसकी कोई ज़रूरत नहीं। "कोई ज़रूरत नहीं" की हद तक तो शायद बात सही हो, लेकिन "कोई फ़ायदा नहीं" वाली

बात बिल्कुल गलत है। देखिये क़ुरान के आगाज़ ही में किस क़दर अहतमाम के साथ कहा जा रहा है कि ईमान सिर्फ़ क़ुरान पर ही नहीं, उस पर भी ज़रूरी है जो इससे पहले नाज़िल किया गया। सूरतुन्निसा कोई छः हिजरी में जाकर नाज़िल हुई है, और इसकी आयत 136 के अल्फ़ाज़ मुलाहिज़ा कीजिये:

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اٰمِنُوْا بِاللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ وَالْكِتٰبِ الَّذِيْ نَزَّلَ عَلٰي رَسُوْلِهٖ وَالْكِتٰبِ الَّذِيْٓ اَنْزَلَ مِنْ قَبْلُ

"ऐ लोगो जो ईमान लाये हो! ईमान लाओ अल्लाह पर और उसके रसूल पर और उस किताब पर जो अल्लाह ने अपने रसूल मुहम्मद ﷺ पर नाज़िल की है और हर उस किताब पर जो इससे पहले वह नाज़िल कर चुका है।"

चुनाँचे तौरात, इन्जील, ज़बूर और सुहूफ़े इब्राहीम (अलै०) पर इज्माली ईमान की अहमियत को अच्छी तरह समझ लीजिये। अलबत्ता चूँकि हम समझते हैं और मानते हैं कि इन किताबों में तहरीफ़ हो गयी है लिहाज़ा इन किताबों की कोई शय क़ुरान पर हुज्जत (प्रमाण) नहीं होगी। जो चीज़ क़ुरान से टकरायेगी हम उसको रद्द कर देंगे और इन किताबों की किसी शय को दलील के तौर पर नहीं लायेंगे। लेकिन जहाँ क़ुरान मजीद की किसी बात की नफी ना हो रही हो वहाँ इनसे इस्तफ़ादह (फ़ायदा) में कोई हर्ज नहीं। बहुत से हक़ाइक़ ऐसे हैं जो हमें इन किताबों ही से मिलते हैं। मसलन अम्बिया (अलै०) के दरमियान ज़मानी तरतीब

(Chronological Order) हमें तौरात से मिलती है, जो क़ुरान में नहीं है। क़ुरान में कभी हज़रत नूह (अलै०) का ज़िक्र बाद में और हज़रत मूसा (अलै०) का पहले आ जाता है। यहाँ तो किसी और पहलु से तरतीब आती है, लेकिन तौरात में हमें हज़राते इब्राहीम, इसहाक़, याक़ूब, अम्बिया-ए-बनी इसराइल मूसा और ईसा (अला नबिय्यिना व अलैहिमुस्सलातु वस्सलाम) की तारीख मिलती है। इस ऐतबार से साबक़ा किताबे समाविया की अहमियत पेशे नज़र रहनी चाहिये।

وَبِالْاٰخِرَةِ هُمْ يُوْقِنُوْنَ ④

"और आख़िरत पर वह यक़ीन रखते हैं।"

यहाँ नोट करने वाली बात यह है कि बाक़ी सब चीज़ों के लिये तो लफ्ज़ ईमान आया है जबकि आख़िरत के लिये "ईक़ान" आया है। वाक़िया यह है कि इन्सान के अमल के ऐतबार से सबसे ज़्यादा मौअस्सर (प्रभावी) शय ईमान बिल आख़िरा है। अगर इन्सान को यह यक़ीन है कि आख़िरत की ज़िन्दगी में मुझे अल्लाह के हुज़ूर हाज़िर होकर अपने आमाल की जवाबदेही करनी है तो उसका अमल सही होगा। लेकिन अगर इस यक़ीन में कमी वाक़ेअ हो गयी तो तौहीद भी महज़ एक अक़ीदा (Dogma) बन कर रह जायेगी और ईमान बिल रिसालत भी बिदआत को जन्म देगा। फिर ईमान बिल रिसालत के मज़ाहिर यह रह जायेंगे कि बस ईद मिलादुन्नबी ﷺ मना लीजिये और नाते अशआर कह

दीजिये, अल्लाह-अल्लाह खैर सल्ला। इन्सान का अमल तो आख़िरत के यक़ीन के साथ दुरुस्त होता है।

{وَبِالۡاٰخِرَةِهُمۡ يُوۡقِنُوۡنَ} के अल्फ़ाज़ में यह मफ़हूम भी है कि "आख़िरत पर उन्ही का यक़ीन है।" यहाँ गोया हश्र भी है। इस ऐतबार से कि यहूदी भी मुद्दई थे कि हम आख़िरत पर यक़ीन रखते हैं। यहाँ तज़ाद (Contrast) दिखाया जा रहा है कि आख़िरत पर यक़ीन रखने वाले तो यह लोग हैं! तावीले खास के ऐतबार से यह कहा जायेगा कि यह लोग तुम्हारी निगाहों के सामने मौजूद हैं जो मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की तेरह बरस की कमाई हैं। जो इन्क़लाबे नबवी ﷺ के असासी मिन्हाज (Basic round) यानि तिलावते आयात, तज़किया और तालीमे किताब व हिकमत का नतीजा हैं।

आयत 5

اُولٰٓئِكَ عَلٰى هُدًى مِّنۡ رَّبِّهِمۡ ۚ

"यही वह लोग हैं जो अपने रब की तरफ़ से हिदायत पर हैं"

वह इब्तदाई हिदायत भी उनके पास थी और इस तकमीली हिदायत यानि क़ुरान पर भी उनका पूरा यक़ीन है, और मुहम्मद ﷺ का इत्तेबाअ भी वह कर रहे हैं।

وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الۡمُفۡلِحُوۡنَ ۝۵

"और यही वह लोग हैं जो फ़लाह पाने वाले हैं।"

"फ़लाह" का लफ्ज़ भी क़ुरान मजीद की बहुत अहम इस्तलाह (मुहावरा) है। इसका मायना है मंज़िले मुराद को पहुँच जाना, किसी बातिनी हक़ीक़त का अयां (उजागर) हो जाना। इस पर इन्शा अल्लाह सूरतुल मौमिनून के शुरू में गुफ्तुगू होगी। यहाँ फ़रमाया जा रहा है कि फ़लाह पाने वाले, कामयाब होने वाले, मंजिले मुराद को पहुँचने वाले असल में यही लोग हैं। तावीले खास के ऐतबार से यह सहाबा किराम (रजि०) की तरफ़ इशारा हो गया, जबकि तावीले आम के ऐतबार से हर शख्स को बता दिया गया कि अगर क़ुरान की हिदायत से मुस्तफ़ीद (फ़ायदेमन्द) होना है तो यह औसाफ़ अपने अन्दर पैदा करो।

आयत 6

إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا سَوَآءٌ عَلَيْهِمْ ءَأَنذَرْتَهُمْ أَمْ لَمْ تُنذِرْهُمْ لَا يُؤْمِنُونَ ⑥

"यक़ीनन जिन लोगों ने कुफ़्र किया (यानि वह लोग जो कुफ़्र पर अड़ गये) उनके लिये बराबर है (ऐ मुहम्मद ﷺ) कि आप उन्हें इन्ज़ार फ़रमायें या ना फ़रमायें वह ईमान लाने वाले नहीं हैं।"

"إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا" से मुराद यहाँ वह लोग हैं जो अपने कुफ़्र पर अड़ गये। इसको हम तावीले आम में नहीं ले सकते। इसलिये कि इस सूरत में तो इसके मायने यह होंगे कि जिस शख़्स ने किसी भी वक़्त कुफ़्र किया अब वह हिदायत पर आ ही नहीं सकता! यहाँ यह बात मुराद नहीं है। अगर कोई

शख़्स किसी मुगालते की बिना पर या अदमे तौजीही (अनदेखी) की बिना पर कुफ़्र में है, हक़ उस पर वाज़ेह नहीं हुआ है तो इन्ज़ार व तब्शीर से उसे फ़ायदा हो जायेगा। आप उसे वाज़ व नसीहत करें तो वह उसका असर क़ुबूल कर लेगा। लेकिन जो लोग हक़ को हक़ समझने और पहचानने के बावजूद महज़ ज़िद, हठधर्मी और तास्सुब की वजह से या तकब्बुर और हसद की वजह से कुफ़्र पर अड़े रहे तो उनकी किस्मत में हिदायत नहीं है। ऐसे लोगों का मामला यह है कि ऐ नबी (صلی اللہ علیہ وسلم)! उनके लिये बराबर है ख्वाह आप (صلی اللہ علیہ وسلم) उन्हें समझायें या ना समझायें, ड़रायें या ना ड़रायें, इन्ज़ार फ़रमायें या ना फ़रमायें वह ईमान लाने वाले नहीं हैं। इसलिये कि सोते को तो जगाया जा सकता है, जागते को आप कैसे जगाऐंगे? यह गोया कि मक्का के सरदारों की तरफ इशारा हो रहा है कि उनके दिल और दिमाग़ गवाही दे चुके हैं कि मुहम्मद (صلی اللہ علیہ وسلم) अल्लाह के रसूल हैं और क़ुरान उन पर इत्मामे हुज्जत कर चुका है और वह मान चुके हैं कि क़ुरान का मुक़ाबला हम नहीं कर सकते, यह मुहम्मद (صلی اللہ علیہ وسلم) का मुकम्मल मौज्जज़ा है, इसके बावजूद वह ईमान नहीं लाये।

आयत 7

خَتَمَ اللّٰہُ عَلٰی قُلُوۡبِہِمۡ وَعَلٰی سَمۡعِہِمۡ ؕ

"अल्लाह ने मोहर कर दी है उनके दिलों पर और उनके कानों पर।"

ऐसा क्यों हुआ? उनके दिलों पर और उनके कानों पर मोहर इब्तदा ही में नहीं लगा दी गयी, बल्कि जब उन्होंने हक़ को पहचानने के बाद रद्द कर दिया तो इसकी पादाश (इल्ज़ाम) में अल्लाह तआला ने उनके दिलों पर मोहर कर दी और उनकी समाअत पर भी।

وَعَلٰٓى اَبْصَارِهِمْ غِشَاوَةٌ

"और उनकी आँखों के सामने परदा पड़ चुका है।"

यह मज़मून सूरह यासीन के शुरु में बहुत शरहो-बस्त (ज़्यादा विस्तार) के साथ दोबारा आयेगा।

وَّلَهُمْ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ۧ

"और उनके लिये बहुत बड़ा अज़ाब है।"

यह दूसरे गिरोह का तज़किरा हो गया। एक रुकूअ (कुल सात आयात) में दो गिरोहों का ज़िक्र समेट लिया गया। एक वह गिरोह जिसने क़ुरान करीम की दावत से सही-सही इस्तफ़ादह किया, उनमें तलबे हिदायत का माद्दा मौजूद था, उनकी फ़ितरतें सलीम थीं, उनके सामने दावत आयी तो उन्होंने क़ुबूल की और क़ुरान के बताये हुए रास्ते पर चले। वह गुलिस्ताने मुहम्मदी ﷺ के गुले सरसब्द हैं। वह शजरा-ए-क़ुरानी के निहायत मुबारक और मुक़द्दस फल हैं। दूसरा गिरोह वह है जिसने हक़ को पहचान भी लिया, लेकिन अपने तास्सुब या हठधर्मी की वजह से उसको रद्द कर दिया। उनका ज़िक्र भी बहुत इख्तसार (संक्षिप्त) के साथ आ

गया। उनका तफ़सीली ज़िक्र आपको मक्की सूरतों में मिलेगा। अब आगे तीसरे गिरोह का ज़िक्र आ रहा है।

आयात 8 से 20 तक

وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّقُوْلُ اٰمَنَّا بِاللّٰهِ وَبِالْيَوْمِ الْاٰخِرِ
وَمَا هُمْ بِمُؤْمِنِيْنَ ۸ يُخٰدِعُوْنَ اللّٰهَ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ۚ
وَمَا يَخْدَعُوْنَ اِلَّآ اَنْفُسَهُمْ وَمَا يَشْعُرُوْنَ ۹ فِيْ
قُلُوْبِهِمْ مَّرَضٌ ۙ فَزَادَهُمُ اللّٰهُ مَرَضًا ۚ وَلَهُمْ
عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۙ بِمَا كَانُوْا يَكْذِبُوْنَ ۱۰ وَاِذَا قِيْلَ لَهُمْ
لَا تُفْسِدُوْا فِي الْاَرْضِ ۙ قَالُوْٓا اِنَّمَا نَحْنُ مُصْلِحُوْنَ
۱۱ اَلَآ اِنَّهُمْ هُمُ الْمُفْسِدُوْنَ وَلٰكِنْ لَّا يَشْعُرُوْنَ
۱۲ وَاِذَا قِيْلَ لَهُمْ اٰمِنُوْا كَمَآ اٰمَنَ النَّاسُ قَالُوْٓا
اَنُؤْمِنُ كَمَآ اٰمَنَ السُّفَهَاۗءُ ۭ اَلَآ اِنَّهُمْ هُمُ السُّفَهَاۗءُ
وَلٰكِنْ لَّا يَعْلَمُوْنَ ۱۳ وَاِذَا لَقُوا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا قَالُوْٓا
اٰمَنَّا ښ وَاِذَا خَلَوْا اِلٰى شَيٰطِيْنِهِمْ ۙ قَالُوْٓا اِنَّا مَعَكُمْ ۙ
اِنَّمَا نَحْنُ مُسْتَهْزِءُوْنَ ۱۴ اَللّٰهُ يَسْتَهْزِئُ بِهِمْ

وَيَمُدُّهُمْ فِىْ طُغْيَانِهِمْ يَعْمَهُوْنَ ﴿۱۵﴾ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ
اشْتَرَوُا الضَّلٰلَةَ بِالْهُدٰى ۠ فَمَا رَبِحَتْ تِّجَارَتُهُمْ وَمَا
كَانُوْا مُهْتَدِيْنَ ﴿۱۶﴾ مَثَلُهُمْ كَمَثَلِ الَّذِى اسْتَوْقَدَ
نَارًا ۚ فَلَمَّآ اَضَآءَتْ مَا حَوْلَهٗ ذَهَبَ اللّٰهُ بِنُوْرِهِمْ
وَتَرَكَهُمْ فِىْ ظُلُمٰتٍ لَّا يُبْصِرُوْنَ ﴿۱۷﴾ صُمٌّۢ بُكْمٌ عُمْىٌ
فَهُمْ لَا يَرْجِعُوْنَ ۙ ﴿۱۸﴾ اَوْ كَصَيِّبٍ مِّنَ السَّمَآءِ فِيْهِ
ظُلُمٰتٌ وَّرَعْدٌ وَّبَرْقٌ ۚ يَجْعَلُوْنَ اَصَابِعَهُمْ فِىْٓ اٰذَانِهِمْ
مِّنَ الصَّوَاعِقِ حَذَرَ الْمَوْتِ ؕ وَاللّٰهُ مُحِيْطٌۢ بِالْكٰفِرِيْنَ
﴿۱۹﴾ يَكَادُ الْبَرْقُ يَخْطَفُ اَبْصَارَهُمْ ؕ كُلَّمَآ اَضَآءَ لَهُمْ
مَّشَوْا فِيْهِ ۙ وَاِذَآ اَظْلَمَ عَلَيْهِمْ قَامُوْا ؕ وَلَوْ شَآءَ اللّٰهُ
لَذَهَبَ بِسَمْعِهِمْ وَاَبْصَارِهِمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَىْءٍ
قَدِيْرٌ ﴿۲۰﴾

आयत 8

وَمِنَ النَّاسِ مَنۡ يَّقُوۡلُ اٰمَنَّا بِاللّٰهِ وَبِالۡيَوۡمِ الۡاٰخِرِ وَمَا هُمۡ بِمُؤۡمِنِيۡنَ ۞٨

"और लोगों मे से कुछ ऐसे भी हैं जो कहते तो यह हैं कि हम ईमान रखते हैं अल्लाह पर भी और यौमे आख़िर पर भी, मगर वह हक़ीक़त में मोमिन नहीं हैं।"

यहाँ एक बात समझ लीजिये! अक्सर व बेशतर मुफ़स्सिरीन ने इस तीसरी क़िस्म (Category) के बारे में यही राय क़ायम की है कि यह मुनाफ़िक़ीन का तज़किरा है, अगरचे यहाँ लफ्ज़ मुनाफ़िक़ या लफ्ज़े निफ़ाक़ नहीं आया। लेकिन मौलाना अमीन अहसन इस्लाही साहब ने इसके बारे में एक राय ज़ाहिर की है जो बड़ी क़ीमती है। उनका कहना है कि यहाँ एक किरदार का नक़्शा खींच दिया गया है, ग़ौर करने वाले ग़ौर कर लें, देख लें कि वह किस पर चस्पा हो रहा है। और जब यह आयात नाज़िल हो रही थीं तो इनमें शख्सियात की किरदार निगारी का यह जो नक़्शा खींचा जा रहा है यह बिलफ़अल दो तबक़ात के ऊपर रास्त (सही) आ रहा था। एक तबक़ा उलमाये यहूद का था। वह भी कहते थे कि हम भी अल्लाह को मानते हैं, आख़िरत को भी मानते हैं। (इसीलिये यहाँ रिसालत का ज़िक्र नहीं है।) वह कहते थे कि अगर सवा लाख नबी आये हैं तो उन सवा लाख को तो हम मानते हैं, बस एक मुहम्मद (ﷺ) को हमने नहीं माना और एक ईसा (अलै०) को नहीं माना, तो हमें भी तस्लीम किया जाना चाहिये कि हम मुस्लमान हैं। और वाक़िया यह है कि यहाँ जिस अन्दाज़ में तज़किरा हो रहा है इससे उनका

किरदार भी झलक रहा है और रुए सुखन भी उनकी तरफ़ जा रहा है। मुझे याद है दसवीं जमात के ज़माने में देल्ही में मैंने जूतों की एक दुकान पर देखा था कि एक बहुत बड़ा जूता लटकाया हुआ था और साथ लिखा था: Free to whom it fits यानि जिसके पाँव में यह ठीक-ठीक आ जाये वह इसे मुफ्त ले जाये! तो यहाँ भी एक किरदार का नक़्शा खींच दिया गया है। अब यह किरदार जिसके ऊपर भी फिट बैठ जाये वह इसका मिस्दाक़ (applicable) शुमार होगा।

जैसा कि मैंने अर्ज़ किया, ज़्यादातर मुफ़स्सिरीन की राय तो यही है कि यह मुनाफ़िक़ीन का तज़किरा है। लेकिन यह किरदार बैनहीं (इसी तरह) यहूद के उलमा पर भी मुन्तबिक़ (लागू) हो रहा है। यहाँ यह बात भी नोट कर लीजिये कि मदीना मुनव्वरा में निफ़ाक़ का पौदा, बल्कि सहीतर अल्फ़ाज़ में निफ़ाक़ का झाड़-झन्काड़ जो परवान चढ़ा है वह यहूदी उलमा के ज़ेरे असर परवान चढ़ा है। जैसे जंगल के अन्दर बड़े-बड़े दरख्त भी होते हैं और उनके नीचे झाड़ियाँ भी होती हैं। तो यह निफ़ाक़ का झाड़-झन्काड़ दरअसल यहूदी उलमा का जो बहुत बड़ा पौदा था उसके साये में परवान चढ़ा है और इन दोनों में मानवी रब्त (हू-ब-हू सम्पर्क) भी मौजूद है।

आयत 9

يُخٰدِعُوْنَ اللّٰهَ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ۚ

"वह धोखा देने की कोशिश कर रहे हैं अल्लाह को और अहले ईमान को।"

يُخٰدِعُوْنَ बाब मुफ़ाअला है। इस बाब का खास्सा है कि इसमें एक कशमकश और कशाकश मौजूद होती है। लिहाज़ा मैंने इसका तर्जुमा किया: "वह धोखा देने की कोशिश कर रहे हैं।"

وَمَا يَخْدَعُوْنَ اِلَّآ اَنْفُسَهُمْ

"और नहीं धोखा दे रहे मगर सिर्फ़ अपने आप को।"

यह बात यक़ीनी है कि अपने आप को तो धोखा दे रहे हैं, लेकिन यह अल्लाह, उसके रसूल ﷺ को और अहले ईमान को धोखा नहीं दे सकते। सूरतुन्निसा की आयत 142 में मुनाफ़िक़ीन के बारे में यही बात बड़े वाज़ेह अन्दाज़ में बाअल्फाज़ आयी है: {اِنَّ الْمُنٰفِقِيْنَ يُخٰدِعُوْنَ اللّٰهَ وَهُوَ خَادِعُهُمْ} "यक़ीनन मुनाफ़िक़ीन अल्लाह को धोखा देने की कोशिश कर रहे हैं, हालाँकि अल्लाह ही उन्हें धोखे में ड़ालने वाला है।"

وَمَا يَشْعُرُوْنَ ۝

"और उन्हें इसका शऊर नहीं है।"

यह बात बहुत अच्छी तरह नोट कर लीजिये कि मुनाफ़िक़ीन की भी अक्सरियत वह थी जिन्हें अपने निफ़ाक़ का शऊर नहीं था। वह अपने तै खुद को मुस्लमान समझते थे। वह मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ के बारे में कहते थे कि इन्होंने ख्वाह माख्वाह अहले मक्का के साथ लड़ाई मोल ले ली है, इसकी क्या ज़रूरत है? हमें अमन के साथ रहना चाहिये और अमन व आश्ती (सुलह) के माहौल में उनसे बात करनी

चाहिये। वह समझते थे कि हम खैर ख्वाह हैं, हम भली बात कह रहे हैं, जबकि यह बेवकूफ लोग हैं। देखते नहीं कि किससे टकरा रहे हैं! हाथ में अस्लाह नहीं है और लड़ाई के लिये जा रहे हैं। चुनाँचे यह तो बेवकूफ हैं। अपने बारे में वह समझते थे कि हम तो बड़े मुख्लिस हैं। जान लीजिये कि मुनाफ़िक़ीन में यक़ीनन बाज़ लोग ऐसे भी थे कि जो इस्लाम में दाखिल ही धोखा देने की ख़ातिर होते थे और उन पर पहले दिन से यह वाज़ेह होता था कि हम मुस्लमान नहीं हैं, हमने मुस्लमानों को धोखा देने के लिये इस्लाम का महज़ लिबादा ओढ़ा है। ऐसे मुनाफ़िक़ीन का ज़िक्र सूरह आले इमरान की आयत 72 में आयेगा। लेकिन अक्सर व बेशतर मुनाफ़िक़ीन दूसरी तरह के थे, जिन्हें अपने निफ़ाक़ का शऊर हासिल नहीं था।

आयत 10

فِىۡ قُلُوۡبِهِمۡ مَّرَضٌ ۙ

"उनके दिलों में एक रोग है।"

यह रोग और बीमारी क्या है? एक लफ्ज़ में इसको "किरदार की कमज़ोरी" (weakness of character) से ताबीर किया जा सकता है। एक शख़्स वह होता है जो हक़ को हक़ समझ कर क़ुबूल कर लेता है और फिर "हरचे बादाबाद" (जो हो सो हो) की कैफ़ियत के साथ उसकी खातिर अपना सब कुछ क़ुर्बान कर देने को तैयार हो जाता है। दूसरा शख्स वह है जो हक़ को पहचान लेने के बावजूद रद्द कर देता है। उसे "काफ़िर" कहा जाता है। जबकि एक शख्स वह भी है जो हक़

को हक़ पहचान कर आया तो सही, लेकिन किरदार की कमज़ोरी की वजह से उसकी क़ुव्वते इरादी कमज़ोर है। ऐसे लोग आख़िरत भी चाहते हैं लेकिन दुनिया भी हाथ से देने के लिये तैयार नहीं। वह चाहते हैं कि यहाँ का भी कोई नुक़सान ना हो और आख़िरत का भी सारा भला हमें मिल जाये। दर हक़ीक़त यह वो लोग हैं कि जिनके बारे में कहा गया
कि इनके दिलों में एक रोग है।

فَزَادَهُمُ اللّٰهُ مَرَضًا ۚ

"तो अल्लाह ने उनके रोग में इज़ाफ़ा कर दिया।"

यह अल्लाह की सुन्नत है। आप हक़ पर चलना चाहें तो अल्लाह तआला हक़ का रास्ता आप पर आसान कर देगा, लेकिन अगर आप बुराई की तरफ़ जाना चाहें तो बड़ी से बड़ी बुराई आपके लिये हल्की होती चली जायेगी। आप ख्याल करेंगे कि कोई ख़ास बात नहीं, जब यह कर लिया तो अब यह भी कर गुज़रु। और अगर कोई बैन-बैन (बीच में) लटकना चाहे तो अल्लाह उसको उसी राह पर छोड़ देता है। ठीक है, वह समझते हैं हम कामयाब हो रहे हैं कि हमने मुस्लमानों को भी धोखा दे लिया, वह हमें मुस्लमान समझते हैं और यहूदियों को भी धोखा दे लिया, वह समझते हैं कि हम उनके साथी हैं। तो उनका यह समझना कि हम कामयाब हो रहे हैं, बिल्कुल गलत है। हक़ीक़त में यह कामयाबी नहीं है, बल्कि अल्लाह तआला ने वह तबाहकुन रास्ता उनके लिये आसान कर दिया है जो उन्होंने खुद मुन्तख़ब किया (चुना) था। उनके दिलों में जो रोग मौजूद था अल्लाह ने उसमें इज़ाफ़ा फ़रमा दिया।

وَلَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ۢ

"और उनके लिये तो दर्दनाक अज़ाब है।

ऊपर कुफ्फ़ार के लिये अल्फ़ाज़ आये थे: {وَّلَهُمْ عَذَابٌ عَظِيْمٌ} और यहाँ عَذَابٌ اَلِيْمٌ का लफ़्ज़ आया है कि उनके लिये दर्दनाक और अलमनाक अज़ाब है।

بِمَا كَانُوْا يَكْذِبُوْنَ ۝۱۰

"ब-सबब उस झूठ के जो वह बोल रहे थे।"

आयत 11

وَاِذَا قِيْلَ لَهُمْ لَا تُفْسِدُوْا فِى الْاَرْضِ ۙ

"और जब उनसे कहा जाता है कि मत फ़साद करो ज़मीन में"

इससे मुराद यह है कि जब तुमने मुहम्मद ﷺ को अल्लाह का रसूल मान लिया तो अब उनकी ठीक-ठीक पैरवी करो, उन (ﷺ) के पीछे चलो। उन (ﷺ) का हुक्म है तो जंग के लिये निकलो। उन (ﷺ) की तरफ़ से तक़ाज़ा आता है तो माल पेश करो। और अगर तुम इससे कतराते हो तो फिर जमाती ज़िन्दगी के अन्दर फ़ितना व फ़साद फैला रहे हो।

قَالُوْٓا اِنَّمَا نَحْنُ مُصْلِحُوْنَ ۝۱۱

"वह कहते हैं हम तो इस्लाह करने वाले हैं।"

हम तो सुलह कराने वाले हैं। हमारी नज़र में यह लड़ना-भिड़ना कोई अच्छी बात नहीं है, टकराव और तसादुम कोई अच्छे काम थोड़े ही हैं। बस लोगों को ठंडे-ठंडे दावत देते रहो, जो चाहे क़ुबूल कर ले और जो चाहे रद्द कर दे। यह ख्वाह माख्वाह दुश्मन से टकराना और जंग करना किस लिये? और अल्लाह के दीन को ग़ालिब करने के लिये क़ुर्बानियाँ देने, मुसीबतें झेलने और मशक़्क़तें बर्दाश्त करने के मुतालबे काहे के लिये?

आयत 12

اَلَآ اِنَّھُمْ ھُمُ الْمُفْسِدُوْنَ وَلٰكِنْ لَّا يَشْعُرُوْنَ ⑫

“आगाह हो जाओ कि हक़ीक़त में यही लोग मुफ्सिद हैं, मगर इन्हें शऊर नहीं है।”

यही तो हैं जो फ़साद फैलाने वाले हैं। इसलिये कि मुहम्मद ﷺ की दावत तो ज़मीन में इस्लाह के लिये है। इस इस्लाह के लिये कुछ ऑपरेशन करना पड़ेगा। इसलिये कि मरीज़ इस दर्जे को पहुँच चुका है कि ऑपरेशन के बग़ैर उसकी शिफ़ा मुमकिन नहीं है। अब अगर तुम इस ऑपरेशन के रास्ते में रुकावट बनते हो तो दर हक़ीक़त तुम फ़साद मचा रहे हो, लेकिन तुम्हें इसका शऊर नहीं। आयत के आख़री अल्फ़ाज़ {وَلٰكِنْ لَّا يَشْعُرُوْنَ} से यह बात वाज़ेह हो रही है कि शऊरी निफ़ाक़ और शय है, जबकि यहाँ सारा तज़किरा गैर शऊरी निफ़ाक़ का हो रहा है।

आयत 13

وَاِذَا قِيْلَ لَهُمْ اٰمِنُوْا كَمَآ اٰمَنَ النَّاسُ

"और जब उनसे कहा जाता है कि ईमान लाओ, जिस तरह दूसरे लोग ईमान लाये हैं"

आख़िर देखो, यह दूसरे अहले ईमान हैं, जब बुलावा आता है तो फ़ौरन लब्बैक कहते हुए हाज़िर होते हैं, जबकि तुमने और ही रविश (तरीक़ा) इख्तियार कर रखी है।

قَالُوْٓا اَنُؤْمِنُ كَمَآ اٰمَنَ السُّفَهَاۗءُ ۭ

"वह कहते हैं क्या हम ईमान लायें जैसे यह बेवकूफ़ लोग ईमान लाये हैं?"

मुनाफ़िक़ीन सच्चे अहले ईमान के बारे में कहते थे कि इन्हें तो अपने नफ़े की फ़िक्र है ना नुक़सान की, ना खतरात का कोई ख्याल है ना अन्देशों का कोई गुमान। जान, माल और औलाद की कोई परवाह नहीं। यह घरबार को छोड़ कर आ गये हैं, अपने बाल-बच्चे कुफ्फ़ारे मक्का के रहमो करम पर छोड़ आये हैं कि सरदाराने क़ुरैश उनके साथ जो चाहे सुलूक करें, तो यह तो बेवकूफ़ लोग हैं। (आज-कल आप ऐसे लोगों को fanatics कहते हैं) भई देख-भाल कर चलना चाहिये, दायें-बायें देख कर चलना चाहिये। अपने नफ़ा-नुक़सान का ख्याल करके चलना चाहिये। ठीक है, इस्लाम दीने हक़ है, लेकिन बहरहाल अपनी और अपने अहलो अयाल की

मसलहतों (स्वार्थों) को भी देखना चाहिये। यह लोग तो मालूम होता है बिल्कुल दीवाने और fanatics हो गये हैं।

اَلَآ اِنَّهُمۡ هُمُ السُّفَهَآءُ وَلٰكِنۡ لَّا يَعۡلَمُوۡنَ ﴿۱۳﴾

"आगाह हो जाओ कि वही बेवक़ूफ़ हैं, लेकिन उन्हें इल्म नहीं।"

वह सादिक़ुल ईमान जो ईमान के हर तक़ाज़े को पूरा करने के लिये हर वक़्त हाज़िर हैं, उनसे बड़ा अक़्लमन्द और उनसे बड़ा समझदार कोई नहीं। उन्होंने यह जान लिया है कि असल ज़िंदगी आख़िरत की ज़िंदगी है, यह ज़िंदगी तो आरज़ी है, तो अगर कल के बजाये आज ख़त्म हो जाये या अभी ख़त्म हो जाये तो क्या फर्क़ पडेगा? यहाँ से जाना तो है, आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसो, जाना तो है। तो अक़्ल तो उनके अन्दर है।

आयत 14

وَاِذَا لَقُوا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا قَالُوۡٓا اٰمَنَّا ۚۖ

"और जब यह अहले ईमान से मिलते हैं तो कहते हैं हम भी ईमान रखते हैं।"

आम यहूदी भी कहते थे कि हम भी तो आख़िर अल्लाह को और आख़िरत को मानते हैं, जबकि मुनाफ़िक़ तो रसूल ﷺ को भी मानते थे।

وَاِذَا خَلَوْا اِلٰى شَيٰطِيْنِهِمْ ۙ

"और जब यह ख़लवत (अकेले) में होते हैं अपने शैतानों के पास"

यहाँ "श्यातीन" से मुराद यहूद के उलमा भी हो सकते हैं और मुनाफ़िक़ीन के सरदार भी। अब्दुल्लाह बिन उबई मुनाफ़िक़ीने मदीना का सरदार था। अगर वह कभी उन्हें मलामत करता कि मालूम होता है तुम तो बिल्कुल पूरी तरह से मुस्लमानों में शामिल ही हो गये हो, तुम्हें क्या हो गया है तुम मुहम्मद (صلى الله عليه وسلم) की हर बात मान रहे हो, तो अब उन्हें अपनी वफ़ादारी का यक़ीन दिलाने के लिये कहना पड़ता था कि नहीं नहीं, हम तो मुस्लमानों को बेवकूफ़ बना रहे हैं, हम उनसे ज़रा तमस्खुर (मज़ाक) कर रहें हैं, हम आप ही के साथ हैं, आप फिक्र ना करें। मुनाफ़िक़ तो होता ही दो रुखा है। "نفق" कहते हैं सुरंग को, जिसके दो रास्ते होते हैं। "نافقاء" गोह (रेगिस्तान में पाया जाने वाला छिपकली जैसा एक जीव) के बिल को कहा जाता है। गोह अपने बिल के दो मुँह रखता है कि अगर कुत्ता शिकार के लिये एक तरफ़ से दाखिल हो जाये तो वह दूसरी तरफ़ से निकल भागे। तो मुनाफ़िक़ भी ऐसा शख़्स है जिसके दो रुख़ होते हैं। सूरतुन्निसा में मुनाफ़िक़ीन के बारे में कहा गया है: {مُّذَبْذَبِيْنَ بَيْنَ ذٰلِكَ ۖ لَآ اِلٰى هٰٓؤُلَاۗءِ وَلَآ اِلٰى هٰٓؤُلَاۗءِ } (आयत:143) यानि कुफ़्र व ईमान के दरमियान डाँवाडोल हैं, मुज़बज़ब होकर रह गये हैं। ना इधर के हैं ना उधर के हैं।

लफ्ज़ "शैतान" के बारे में दो राय हैं। एक यह कि इसका माद्दा "ش ط ن" है और दूसरी यह कि यह "ش و ط" माद्दे से है। شَطَنَ के मायने हैं تَبَعَّدَ यानि बहुत दूर हो गया। पस शैतान से मुराद है जो अल्लाह की रहमत से बहुत दूर हो गया। जबकि شَاطَ يَشُوْطُ के मायने हैं اِحْتَرَقَ غَضَبًا وَّ حَسَدًا यानि कोई शख़्स गुस्से और हसद के अन्दर जल उठा। इससे فَعْلَان के वज़न पर "شَيطان" है, यानि वह जो हसद और ग़ज़ब की आग में जल रहा है। चुनाँचे एक तो शैतान वह है जो जिन्नात में से है, जिसका नाम पहले "अज़ाज़ील" था, अब हम उसे इब्लीस के नाम से जानते हैं। फिर यह कि दुनिया में जो भी उसके पैरोकार हैं और उसके मिशन में शरीकेकार हैं, ख़्वाह इन्सानों में से हों या जिन्नों में से, वह भी श्यातीन हैं। इसी तरह अहले कुफ़्र और अहले ज़ैग के जो बड़े-बड़े सरदार होते हैं उनको भी श्यातीन से ताबीर किया गया। आयत ज़ेरे मुतआला में श्यातीन से यही सदरार मुराद हैं।

قَالُوْٓا اِنَّا مَعَكُمْ ۙ اِنَّمَا نَحْنُ مُسْتَهْزِءُوْنَ ﴿١٤﴾

"कहते हैं कि हम तो आपके साथ हैं और उन लोगों से तो महज़ मज़ाक कर रहे हैं।"

जब वह अलैहदगी में अपने शैतानों यानि सरदारों से मिलते हैं तो उनसे कहते हैं कि असल में तो हम आपके साथ हैं, उन मुस्लमानों को तो हम बेवकूफ़ बना रहे हैं, उनसे इस्तेहज़ा

और तमस्खुर (हँसी-मज़ाक) कर रहें हैं जो उनके सामने "आमन्ना" कह देते हैं कि हम भी आपके साथ हैं।

आयत 15

اَللّٰهُ يَسْتَهْزِئُ بِهِمْ وَيَمُدُّهُمْ فِيْ طُغْيَانِهِمْ يَعْمَهُوْنَ ⑮

"दर हक़ीक़त अल्लाह उनका मज़ाक उड़ा रहा है और उनको उनकी सरकशी में ढ़ील दे रहा है कि वह अपने अक़्ल के अन्धेपन में बढ़ते चले जायें।"

अल्लाह तआला शरकशों की रस्सी दराज़ करता है। कोई शख़्स शरकशी के रास्ते पर चल पड़े तो अल्लाह तआला उसे फ़ौरन नहीं पकड़ता, बल्कि उसे ढ़ील देता है कि चलते जाओ जहाँ तक जाना चाहते हो। तो इनकी भी अल्लाह तआला रस्सी दराज़ कर रहा है, लेकिन यह समझते हैं कि हम मुस्लमानों का मज़ाक उड़ा रहे हैं। असल में मज़ाक तो अल्लाह के नज़दीक उनका उड़ रहा है।

लफ्ज़ "يَعْمَهُوْنَ" अक़्ल के अन्धेपन के लिये आया है। इसका माद्दा "ع م ه" है। आगे आयत 18 में लफ्ज़ "عُمْيٌ" आ रहा है जो "ع م ی" से है। इन दोनों में फर्क़ यह है कि "عَمِهَ يَعْمَهُ" बसीरत से महरूमी के लिये आता है और "عَمِيَ يَعْمٰى" बसारत से महरूमी के लिये।

आयत 16

أُولَٰٓئِكَ الَّذِيۡنَ اشۡتَرَوُا الضَّلٰلَةَ بِالۡهُدٰى ۪

"यह वह लोग हैं कि जिन्होंने हिदायत के एवज़ (बदले) गुमराही खरीद ली है।"

यह बड़ा प्यारा अन्दाज़े बयान है। इनके सामने दोनों options थे। एक शख़्स ने गुमराही को छोड़ा और हिदायत ले ली। उसे इसकी भारी कीमत देना पड़ी। उसे तक़लीफें उठानी पड़ीं, आज़माइशों में से गुज़रना पड़ा, क़ुरबानियाँ देनी पड़ीं। उसने यह सब कुछ मन्ज़ूर किया और हिदायत ले ली। जबकि एक शख़्स ने हिदायत देकर गुमराही ले ली। आसानी तो हो गई, फ़ौरी तकलीफ से तो बच गये, दोनों तरफ से अपने मफ़ादात को बचा लिया, लेकिन हक़ीक़त में सबसे ज़्यादा घाटे का सौदा यही है।

فَمَا رَبِحَتۡ تِّجَارَتُهُمۡ وَمَا كَانُوۡا مُهۡتَدِيۡنَ ۝١٦

"सो नफ़ा ना हुई उनकी तिजारत उनके हक़ में और ना हुऐ राह पाने वाले।"

"رَبِحَ يَرۡبَحُ" के मायने हैं तिजारत वगैरह में नफ़ा उठाना, जो एक सही और जायज़ नफ़ा है, जबकि "ر ب و" माद्दे से رَبَا يَرۡبُوۡ के मायने भी माल में इज़ाफा और बढोत्तरी के हैं, लेकिन वह हराम है। तिजारत के अन्दर जो नफ़ा हो जाये वह "رِبۡح" है, जो जायज़ नफ़ा है और अपना माल किसी को क़र्ज़ देकर उससे सूद वसूल करना "رِبا" है जो हराम है।

अब यहाँ दो बड़ी प्यारी तमसीलें (उदाहरण) आ रही हैं। पहली तमसील कुफ्फ़ार के बारे में और दूसरी तमसील मुनाफ़िक़ीन के बारे में।

आयत 17

مَثَلُهُمْ كَمَثَلِ الَّذِى اسْتَوْقَدَ نَارًا ۚ

"उनकी मिसाल ऐसी है जैसे एक शख़्स ने आग रोशन की।"

فَلَمَّآ اَضَاۤءَتْ مَا حَوْلَهٗ

"फिर जब उस आग ने सारे माहौल को रोशन कर दिया"

ذَهَبَ اللّٰهُ بِنُوْرِهِمْ

"तो अल्लाह ने उनका नूरे बसारत सल्ब कर (छीन) लिया"

وَتَرَكَهُمْ فِىْ ظُلُمٰتٍ لَّا يُبْصِرُوْنَ ۝١٧

"और छोड़ दिया उनको अन्धेरों के अन्दर कि वह कुछ नहीं देखते।"

यहाँ एक शबे तारीक का नक़्शा खींचा जा रहा है। अल्लामा इक़बाल के अल्फाज़ में:

अन्धेरी शब है जुदा अपने काफ़िले से है तू
तेरे लिये है मेरा शौला-ए-नवा कन्दील!

अन्धेरी शब है। काफ़िला भटक रहा है। कुछ लोग बड़ी हिम्मत करते हैं कि अन्धेरे में भी इधर-उधर से लकड़ियाँ जमा करते हैं और आग रोशन कर देते हैं। लेकिन ऐन उस वक़्त जब आग रोशन होती है तो कुछ लोगों की बीनाई सल्ब हो जाती है। पहले वह अन्धेरे में इसलिये थे कि खारिज

में रोशनी नहीं थी। अब भी वह अन्धेरे ही में रह गये कि खारिज में तो रोशनी आ गई मगर उनके अन्दर की रोशनी गुल हो गई, उनकी बसारत सल्ब हो गई। यह मिसाल है उन कुफ़्फ़ार की जो इस्लाम की रोशनी फैलने के बावजूद उससे महरूम (वंचित) रहे, मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की आमद से पहले हर सू (दिशा) तारीकी छाई हुई थी। कोई हक़ीक़त वाज़ेह नहीं थी। काफ़िला-ए-इन्सानियत अन्धेरी शब में भटक रहा था। मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ तशरीफ़ लाये और उन्होंने आग रोशन कर दी। इस तरह हिदायत वाज़ेह हो गयी। लेकिन कुछ ज़िद, तास्सुब, तकब्बुर या हसद की बुनियाद पर कुछ लोगों की अन्दर की बीनाई (नज़र) ज़ाइल (दूर) हो गयी। चुनाँचे वह तो वैसे के वैसे भटक रहे हैं। जैसे पहले अन्धेरे में थे वैसे ही अब भी अन्धेरे में हैं। रोशनी में आने वाले तो वह है जिनका ज़िक्र सबसे पहले "अल-मुत्ताक़ीन" के नाम से हुआ।

आयत 18

صُمٌّ بُكْمٌ عُمْيٌ فَهُمْ لَا يَرْجِعُوْنَ ۝١٨

"यह बहरे हैं, गूँगे हैं, अन्धे हैं, सो अब यह नहीं लौटेंगे।"

اَصَمّ बहरे को कहते हैं, صُمٌّ इसकी जमा है, اَبْكَم गूँगे को कहा जाता है, بُكْمٌ इसकी जमा है। اَعْمٰی अन्धे को कहते हैं, عُمْيٌ इसकी जमा है। फ़रमाया कि यह बहरे हैं, गूँगे हैं, अन्धे हैं, अब यह लौटने वाले नहीं हैं। यह कौन हैं? अबु-जहल,

अबु-लहब, वलीद बिन मुगीरा और उक़बा इब्ने अबी मुईत सबके सब अभी ज़िन्दा थे जब यह आयात नाज़िल हो रही थीं। यह सब तो ग़ज़वा-ए-बद्र में वासिले जहन्नम हुए जो सन 2 हिजरी में हुआ। तो यह लोग इस मिसाल का मिस्दाक़े कामिल थे। आगे अब दूसरी मिसाल बयान की जा रही है।

आयत 19

اَوۡ كَصَيِّبٍ مِّنَ السَّمَآءِ فِيۡهِ ظُلُمٰتٌ وَّرَعۡدٌ وَّبَرۡقٌ ۚ

"या उनकी मिसाल ऐसी है जैसे बड़े ज़ोर की बारिश बरस रही है आसमान से, उसमें अन्धेरे भी हैं और गरज और बिजली (की चमक) भी।"

يَجۡعَلُوۡنَ اَصَابِعَهُمۡ فِىۡٓ اٰذَانِهِمۡ مِّنَ الصَّوَاعِقِ حَذَرَ الۡمَوۡتِ ‌ؕ

"यह अपनी उँगलियाँ अपने कानों के अन्दर ठूस लेते हैं मारे कड़क के, मौत के ड़र से।"

यानि इस हैबतनाक कड़क से कहीं उनकी जानें ना निकल जायें।

وَاللّٰهُ مُحِيۡطٌۢ بِالۡكٰفِرِيۡنَ ۝١٩

"और अल्लाह ऐसे काफ़िरों का इहाता (cover) किये हुऐ है।"

वह इन मुन्करीने हक़ को हर तरफ़ से घेरे में लिये हुए है, यह बच कर कहाँ जायेंगे।

आयत 20

يَكَادُ الْبَرْقُ يَخْطَفُ اَبْصَارَهُمْ ؕ

"क़रीब है कि बिजली उचक ले उनकी आँखें।"

كُلَّمَآ اَضَاۗءَ لَهُمْ مَّشَوْا فِيْهِ ڎ

"जब चमकती है उन पर तो चलने लगते हैं उसकी रोशनी में।"

ज्यों ही उन्हें ज़रा सी रोशनी महसूस होती है और दायें-बायें कुछ नज़र आता है तो कुछ दूर चल लेते हैं।

وَاِذَآ اَظْلَمَ عَلَيْهِمْ قَامُوْا ۭ

"और जब उन पर तारीकी तारी हो जाती है तो खड़े के खड़े रह जाते हैं।"

यह एक नक़्शा खीचा गया है कि एक तरफ़ बारिश हो रही है। यानि क़ुरान मजीद आसमान से नाज़िल हो रहा है। बारिश को क़ुरान मजीद "مَاۗءً مُّبٰرَكًا" क़रार देता है और यह खुद "كِتٰبٌ مُّبٰرَكٌ" है। लेकिन यह कि इसके साथ कड़के हैं, गरज है, कुफ़्र से मुक़ाबला है, कुफ़्र की तरफ़ से धमकियाँ हैं, अन्देशे और ख़तरात हैं, इम्तिहानात और आज़माईशें हैं। चुनाँचे मुनाफ़िक़ीन का मामला यह है कि ज़रा कही हालात

कुछ बेहतर हुए, कुछ breething space मिली तो मुस्लमानों के शाना-ब-शाना थोड़ा सा चल लिये कि हम भी मुस्लमान हैं। जब वह देखते कि हालात कुछ पुर सकून हैं, किसी जंग के लिये बुलाया नहीं जा रहा है तो बढ़-चढ़ कर बातें करते और अपने ईमान का इज़हार भी करते, लेकिन जैसे ही कोई आज़माइश आती ठिठक कर खड़े के खड़े रह जाते।

وَلَوْ شَآءَ اللّٰهُ لَذَهَبَ بِسَمْعِهِمْ وَاَبْصَارِهِمْ ط

"और अल्लाह चाहता तो उनकी समाअत और बसारत को सल्ब कर लेता।"

लेकिन अल्लाह का क़ानून यही है कि वह फ़ौरी गिरफ्त नहीं करता। उसने इन्सान को इरादे और अमल की आज़ादी दी है। तुम अगर मोमिन सादिक़ बन कर रहना चाहते हो तो अल्लाह तआला उस रविश (तरीक़े) को तुम्हारे लिये आसान कर देगा। और अगर तुमने अपने तास्सुब या तकब्बुर की वजह से कुफ़्र का रास्ता इख़्तियार किया तो अल्लाह उसी को तुम्हारे लिये खोल देगा। और अगर तुम बीच में लटकना चाहते हो {لَآ اِلٰى هٰٓؤُلَآءِ وَلَآ اِلٰى هٰٓؤُلَآءِ} तो लटके रहो। अल्लाह तआला ना किसी को जबरन हक़ पर लायेगा और ना ही किसी को जबरन बातिल की राह पर लेकर जायेगा। इसलिये कि अगर जब्र का मामला हो तो फिर इम्तिहान कैसा? फिर तो जज़ा और सज़ा का तसव्वुर गैर मन्तक़ी (illogical) और गैर माक़ूल (irrational) ठहरता है।

اِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَىۡءٍ قَدِيۡرٌ ۝۲۰

"यक़ीनन अल्लाह हर चीज़ पर क़ादिर है।"

सूरतुल बक़रह के यह इब्तदाई दो रुकूअ इस ऐतबार से बहुत अहम हैं कि इनमें इन्सानी शख्सियतों की तीन गिरोहों में तक़सीम कर दी गयी है, और तावीले आम ज़हन में रखिये कि जब भी कोई दावते हक़ उठेगी, अगर वह वाक़िअतन कुल की कुल हक़ की दावत हो और उसमें इन्क़लाबी रंग हो कि बातिल से पंजा आज़माई करके उसे नीचा दिखाना है और हक़ को गालिब करना है, तो यह तीन क़िस्म के अफ़राद लाज़िमन वजूद में आयेंगे। इनको पहचानना और इनके किरदार के पीछे जो असल पसमन्ज़र है उसको जानना बहुत ज़रूरी है।

आयात 21 से 29 तक

يٰۤاَيُّهَا النَّاسُ اعۡبُدُوۡا رَبَّكُمُ الَّذِىۡ خَلَقَكُمۡ وَالَّذِيۡنَ
مِنۡ قَبۡلِكُمۡ لَعَلَّكُمۡ تَتَّقُوۡنَ ۝۲۱ الَّذِىۡ جَعَلَ لَكُمُ
الۡاَرۡضَ فِرَاشًا وَّالسَّمَآءَ بِنَآءً وَّاَنۡزَلَ مِنَ السَّمَآءِ
مَآءً فَاَخۡرَجَ بِهٖ مِنَ الثَّمَرٰتِ رِزۡقًا لَّكُمۡ ۚ فَلَا
تَجۡعَلُوۡا لِلّٰهِ اَنۡدَادًا وَّاَنۡتُمۡ تَعۡلَمُوۡنَ ۝۲۲ وَاِنۡ كُنۡتُمۡ فِىۡ

رَيۡبٍ مِّمَّا نَزَّلۡنَا عَلٰی عَبۡدِنَا فَاۡتُوۡا بِسُوۡرَۃٍ مِّنۡ مِّثۡلِہٖ ۪
وَ ادۡعُوۡا شُہَدَآءَکُمۡ مِّنۡ دُوۡنِ اللّٰہِ اِنۡ کُنۡتُمۡ صٰدِقِیۡنَ
﴿۲۳﴾ فَاِنۡ لَّمۡ تَفۡعَلُوۡا وَ لَنۡ تَفۡعَلُوۡا فَاتَّقُوا النَّارَ الَّتِیۡ
وَقُوۡدُہَا النَّاسُ وَ الۡحِجَارَۃُ ۚۖ اُعِدَّتۡ لِلۡکٰفِرِیۡنَ ﴿۲۴﴾
وَ بَشِّرِ الَّذِیۡنَ اٰمَنُوۡا وَ عَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ اَنَّ لَہُمۡ
جَنّٰتٍ تَجۡرِیۡ مِنۡ تَحۡتِہَا الۡاَنۡہٰرُ ؕ کُلَّمَا رُزِقُوۡا مِنۡہَا
مِنۡ ثَمَرَۃٍ رِّزۡقًا ۙ قَالُوۡا ہٰذَا الَّذِیۡ رُزِقۡنَا مِنۡ قَبۡلُ ۙ
وَ اُتُوۡا بِہٖ مُتَشَابِہًا ؕ وَ لَہُمۡ فِیۡہَاۤ اَزۡوَاجٌ مُّطَہَّرَۃٌ ٭ۙ
وَّ ہُمۡ فِیۡہَا خٰلِدُوۡنَ ﴿۲۵﴾ اِنَّ اللّٰہَ لَا یَسۡتَحۡیٖۤ اَنۡ
یَّضۡرِبَ مَثَلًا مَّا بَعُوۡضَۃً فَمَا فَوۡقَہَا ؕ فَاَمَّا الَّذِیۡنَ
اٰمَنُوۡا فَیَعۡلَمُوۡنَ اَنَّہُ الۡحَقُّ مِنۡ رَّبِّہِمۡ ۚ وَ اَمَّا الَّذِیۡنَ
کَفَرُوۡا فَیَقُوۡلُوۡنَ مَاذَاۤ اَرَادَ اللّٰہُ بِہٰذَا مَثَلًا ۘ یُضِلُّ
بِہٖ کَثِیۡرًا ۙ وَّ یَہۡدِیۡ بِہٖ کَثِیۡرًا ؕ وَ مَا یُضِلُّ بِہٖۤ اِلَّا
الۡفٰسِقِیۡنَ ﴿۲۶﴾ الَّذِیۡنَ یَنۡقُضُوۡنَ عَہۡدَ اللّٰہِ مِنۡۢ بَعۡدِ
مِیۡثَاقِہٖ ۪ وَ یَقۡطَعُوۡنَ مَاۤ اَمَرَ اللّٰہُ بِہٖۤ اَنۡ یُّوۡصَلَ

وَيُفْسِدُوْنَ فِي الْاَرْضِ ۭ اُولٰۗىِٕكَ هُمُ الْخٰسِرُوْنَ ㉗
كَيْفَ تَكْفُرُوْنَ بِاللّٰهِ وَكُنْتُمْ اَمْوَاتًا فَاَحْيَاكُمْ ۚ ثُمَّ
يُمِيْتُكُمْ ثُمَّ يُحْيِيْكُمْ ثُمَّ اِلَيْهِ تُرْجَعُوْنَ ㉘ هُوَ الَّذِيْ
خَلَقَ لَكُمْ مَّا فِي الْاَرْضِ جَمِيْعًا ۤ ثُمَّ اسْتَوٰٓى اِلَى
السَّمَاۗءِ فَسَوّٰىهُنَّ سَبْعَ سَمٰوٰتٍ ۭ وَھُوَ بِكُلِّ شَيْءٍ
عَلِيْمٌ ㉙

सूरतुल बक़रह के तीसरे रुकूअ में क़ुरान की दावत का खुलासा आ गया है कि क़ुरान अपने मुख़ातिब को क्या मानने की दावत देता है और उसकी पुकार क्या है। जैसा कि मैं अर्ज़ कर चुका हूँ, सूरतुल बक़रह के नुज़ूल से क़ब्ल दो तिहाई क़ुरान नाज़िल हो चुका था। तरतीबे मुसहफ़ के ऐतबार से वह क़ुरान बाद में आयेगा, लेकिन तरतीबे नुज़ूली के ऐतबार से वह पसमन्ज़र में मौजूद है। लिहाज़ा सूरतुल बक़रह के पहले दो रुकूओं में मक्की क़ुरान के मुबाहिस का खुलासा बयान कर दिया गया है और तीसरे रुकूअ में क़ुरान मजीद की दावत का खुलासा और लुब्बे लुबाब (सारांश) आ गया है, जबकि क़ुरान मजीद का फ़लसफ़ा और बाज़ निहायत अहम मौज़ूआत व मसाइल का खुलासा चौथे रुकूअ में बयान हुआ है। अब हम तीसरे रुकूअ का मुतआला कर रहे हैं:

आयत 21

يٰٓاَيُّهَا النَّاسُ اعْبُدُوْا رَبَّكُمُ الَّذِىْ خَلَقَكُمْ وَالَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ۝٢١

"ऐ लोगों! बन्दगी इख़्तियार करो अपने उस रब (मालिक) की जिसने तुमको पैदा किया और तुमसे पहले जितने लोग गुज़रे हैं (उन्हें भी पैदा किया) ताकि तुम बच सको।"

यह क़ुरान की दावत का खुलासा है और यही तमाम अम्बिया व रुसुल (अलै०) की दावत थी। सूरतुल आराफ़ और सूरह हूद में एक-एक रसूल का नाम लेकर उसकी दावत इन अल्फ़ाज़ में बयान की गयी है:

يٰقَوْمِ اعْبُدُوا اللّٰهَ مَا لَكُمْ مِّنْ اِلٰهٍ غَيْرُهٗ

"ऐ मेरी क़ौम के लोगों! अल्लाह की बन्दगी करो, तुम्हारा कोई और इलाह उसके सिवा नहीं है।"

सूरतुल शौरा में रसूलों की दावत के ज़िमन में बार-बार यह अल्फ़ाज़ आये हैं:

فَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاَطِيْعُوْنِ

"पस अल्लाह का तक़वा इख़्तियार करो और मेरी इताअत करो।"

सूरह नूह में हज़रत नूह (अलै०) की दावत इन अल्फ़ाज़ में बयान हुई:

اَنِ اعۡبُدُوا اللّٰہَ وَ اتَّقُوۡہُ وَ اَطِیۡعُوۡنِ ۙ﴿۳﴾

"कि अल्लाह की बन्दगी करो, उसका तक़वा इख़्तियार करो और मेरी इताअत करो!"

फिर अज़रुए क़ुरान यही इबादते रब इन्सान की गायत-ए-तख्लीक़ (utmost creation) है (अज़्ज़ारियात):

وَ مَا خَلَقۡتُ الۡجِنَّ وَ الۡاِنۡسَ اِلَّا لِیَعۡبُدُوۡنِ ﴿۵۶﴾

"और हमने जिन्नों और इंसानों को पैदा ही सिर्फ़ इसलिये किया है कि हमारी बन्दगी करें।"

चुनाँचे तमाम रसूलों की दावत यही "इबादते रब" है और मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की दावत भी यही है, लेकिन यहाँ एक बहुत बड़ा फ़र्क़ वाक़ेअ हो गया है। वह यह कि बाक़ी तमाम रसूलों की दावत के ज़िमन में सीगा-ए-ख़िताब "या क़ौमी" है। यानि "ऐ मेरी क़ौम के लोगों!" जबकि यहाँ सीगा-ए-ख़िताब है "या अय्युहन्नास" यानि "ऐ बनी नौऐ इन्सान!" मालूम हुआ कि मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ से पहले तमाम रसूल (अलै०) सिर्फ़ अपनी-अपनी क़ौमों की तरफ़ आये, जबकि पैगम्बर आखिरुज़्ज़मान हज़रत मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ अल्लाह तआला के आखरी और कामिल रसूल हैं जिनकी दावत आफाक़ी (universal) है।

आम तौर पर लोग जो गलत रास्ता इख़्तियार कर लेते हैं उस पर इस दलील से जमे रहते हैं कि हमारे आबा व अजदाद का रास्ता यही था। { الَّذِیۡ خَلَقَکُمۡ وَ الَّذِیۡنَ

{ مِنۡ قَبۡلِکُمۡ } के अल्फ़ाज़ में इस दलील का रद्द भी मौजूद है कि जैसे तुम मख्लूक़ हो वैसे ही तुम्हारे आबा व अजदाद भी मख्लूक़ थे, जैसे तुम ख़ता कर सकते हो इसी तरह वह भी तो ख़ता कर सकते थे। लिहाज़ा यह ना देखो कि आबा व अजदाद का रास्ता क्या था, बल्कि यह देखो कि हक़ क्या है।

{لَعَلَّکُمۡ تَتَّقُوۡنَ ﴿۲۱﴾} "ताकि तुम बच सको।" यानि दुनिया में इफ़रात व तफ़रीत (inflation & deflation) के धोखों से बच सको और आख़िरत में अल्लाह के अज़ाब से बच सको। इन दोनों से अगर बचना है तो अल्लाह की बन्दगी की रविश इख़्तियार करो।

आयत 22

الَّذِیۡ جَعَلَ لَکُمُ الۡاَرۡضَ فِرَاشًا وَّالسَّمَآءَ بِنَآءً

"जिसने तुम्हारे लिये ज़मीन को फर्श बना दिया और आसमान को छत बना दिया।"

وَّاَنۡزَلَ مِنَ السَّمَآءِ مَآءً

"और आसमान से पानी बरसाया"

فَاَخْرَجَ بِهٖ مِنَ الثَّمَرٰتِ رِزْقًا لَّكُمْ ۚ

"फिर उस (पानी) के ज़रिये से (ज़मीन से) हर तरह की पैदावार निकाल कर तुम्हारे लिये रिज़्क़ बहम (provided) पहुँचाया।"

فَلَا تَجْعَلُوْا لِلّٰهِ اَنْدَادًا وَّاَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ۝۲۲

"तो हरगिज़ अल्लाह के मद्दे मुक़ाबिल ना ठहराओ जानते-बूझते।"

وَّاَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ का एक मतलब यह भी है कि जब तुम भी मानते हो कि इस कायनात का ख़ालिक़ अल्लाह के सिवा कोई नहीं, तो फिर उसके शरीक क्यों ठहराते हो? अहले अरब यह बात मानते थे कि कायनात का ख़ालिक़ सिर्फ़ और सिर्फ़ अल्लाह है, अलबत्ता जो उनके देवी-देवता थे उन्हें वह समझते थे कि यह अल्लाह के अवतार हैं या अल्लाह के यहाँ बहुत पसन्दीदा हैं, उसके महबूब हैं, उसके औलिया हैं, उसकी बेटियाँ हैं, लिहाज़ा यह शफाअत करेंगे तो हमारा बेड़ा पार हो जायेगा। उनसे कहा जा रहा है कि जब तुम यह मानते हो कि कायनात का ख़ालिक़ एक अल्लाह है, वही इसका मुदब्बिर (planner) है तो अब किसी को उसका मद्दे मुक़ाबिल ना बनाओ।

اَنْدَاد "نِدّ" की जमा है, इसके मायने मद्दे मुक़ाबिल है। ख़ुत्बा-ए-जुमा में आपने यह अल्फ़ाज़ सुने होंगे: "لَا ضِدَّ لَهٗ وَلَا نِدَّ لَهٗ" हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसूद (रजि०) बयान करते हैं कि मैंने रसूल अल्लाह ﷺ से दरयाफ्त किया: अल्लाह के

नज़दीक सबसे बड़ा गुनाह कौनसा है? आप ﷺ ने फरमाया: ((اَنْ تَجْعَلَ لِلّٰہِ نِدًّا وَھُوَ خَلَقَکَ))(1) "यह कि तू उसका कोई मद्दे मुक़ाबिल ठहराये हालाँकि उसने तुझे पैदा किया है।" अल्लाह सुब्हाना व तआला का किसी दर्जे में कोई शरीक या मद्दे मुक़ाबिल नहीं है। इस ज़िमन में रसूल अल्लाह ﷺ उम्मत को इस दर्जे तौहीद की बारीकियों तक पहुँचा कर गये हैं कि ऐसे तसव्वुरात की बिल्कुल जड़ कट जाती है। एक सहाबी (रजि०) ने आप ﷺ के सामने ऐसे ही कह दिया: "مَا شَاءَ اللّٰہُ وَمَا شِئْتَ" यानि जो अल्लाह चाहे और जो आप ﷺ चाहें। आप ﷺ ने उन्हें फ़ौरन टोक दिया और फरमाया: ((اَجَعَلْتَنِیْ لِلّٰہِ نِدًّا؟ مَا شَاءَ اللّٰہُ وَحْدَہٗ))(2) "क्या तूने मुझे अल्लाह का मद्दे मुक़ाबिल बना दिया है? (बल्कि वही होगा) जो तन्हा अल्लाह चाहे।" इस कायनात में मशीयत सिर्फ़ एक हस्ती की चलती है। किसी और की मशीयत उसकी मशीयत के ताबेअ पूरी हो जाये तो हो जाये, लेकिन मशीयते मुतलक़ सिर्फ़ उसकी है। यहाँ तक कि क़ुरान हकीम में रसूल अल्लाह ﷺ से फ़रमाया गया: {اِنَّكَ لَا تَهْدِيْ مَنْ اَحْبَبْتَ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ يَهْدِيْ مَنْ يَّشَاۗءُ} (अल क़सस:56) "(ऐ नबी ﷺ!) यक़ीनन आप जिसे चाहें उसे हिदायत नहीं दे सकते, बल्कि अल्लाह जिसे चाहता है हिदायत देता है।" अगर हिदायत का मामला रसूल अल्लाह ﷺ के इख़्तियार में होता तो अबु तालिब दुनिया से ईमान लाये बगैर रुख्सत ना होते।

इन दो आयतों में तौहीद के दोनों पहलू बयान हो गये, तौहीद नज़री भी और तौहीद अमली भी। तौहीद अमली

यह है कि बन्दगी सिर्फ़ उसी की है। अब अगली आयत में ईमान बिर्रिसालत का बयान आ रहा है।

आयत 23

وَاِنۡ كُنۡتُمۡ فِىۡ رَيۡبٍ مِّمَّا نَزَّلۡنَا عَلٰى عَبۡدِنَا

“और अगर तुम वाक़िअतन शक में हो इस कलाम के बारे में जो हमने उतारा अपने बन्दे पर (कि यह हमारा नाज़िलकर्दा है कि नहीं)”

فَاۡتُوۡا بِسُوۡرَةٍ مِّنۡ مِّثۡلِهٖ ۖ

“तो ले आओ एक ही सूरत इस जैसी।”

“तआरुफ़े क़ुरान” में यह बात तफ़सील से बयान की गयी थी कि क़ुरान हकीम में ऐसे पाँच मक़ामात है जहाँ पर यह चैलेंज मौजूद है कि अगर तुम्हारा यह ख्याल है कि यह कलाम मुहम्मद (ﷺ) की इख्तराअ (आविष्कार) है तो तुम भी मुक़ाबले में ऐसा ही कलाम पेश करो। सूरतुत्तूर की आयत 33, 34 में इरशाद हुआ: “क्या इनका यह कहना है कि इसे मुहम्मद (ﷺ) ने खुद गढ़ लिया है? बल्कि हक़ीक़त यह है कि यह मानने को तैयार नहीं। फिर चाहिये कि वह इसी तरह का कोई कलाम पेश करें अगर वह सच्चे हैं।” सूरह बनी इसराइल (आयत 88) में फ़रमाया गया कि “अगर तमाम जिन्न ओ इन्स जमा होकर भी इस क़ुरान जैसी किताब पेश करना चाहें तो हरगिज़ नहीं कर सकेंगे, चाहे वह सब एक दूसरे के मददगार ही क्यों न हो।” फिर सूरह

हूद (आयत 13) में फ़रमाया गया कि "(ऐ नबी ﷺ) इनसे कह दीजिये (अगर पूरे क़ुरान की नज़ीर नहीं ला सकते) तो ऐसी दस सूरतें ही गढ़ कर ले आओ!" इसके बाद मज़ीद नीचे उतर कर जिसे बर सबीले तन्ज़ील कहा जाता है, सूरह यूनुस (आयत 38) में इस जैसी एक ही सूरत बना कर ले आने का चैलेंज दिया गया। मज़कूरा बाला (उपरोक्त) तमाम मक़ामात मक्की सूरतों में हैं। पहली मदनी सूरत "अल-बक़रह" की आयत ज़ेरे मुतआला में यही बात बड़े अहतमाम के साथ फ़रमायी गयी कि अगर तुम लोगों को इस कलाम के बारे में कोई शक है जो हमने अपने बन्दे पर नाज़िल किया है (कि यह अल्लाह का कलाम नहीं है) तो इस जैसी एक सूरत तुम भी मौज़ू करके ले आओ! यह एक एक सूरत सूरतुल अस्र के मसावी (बराबर) भी हो सकती थी, सूरतुल कौसर के मसावी भी हो सकती थी।

وَادْعُوْا شُهَدَآءَكُمْ مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ﴿٢٣﴾

"और बुला लो अपने सारे मददगारों को अल्लाह के सिवा अगर तुम सच्चे हो।"

क़ुरैश का ख्याल यह था कि शौअरा (शायरों) के पास जिन्न होते हैं, जो उन्हें शेर सिखाते हैं, वरना आम आदमी तो शेर नहीं कह सकता। चुनाँचे फ़रमाया कि जो भी तुम्हारे मददगार हों, एक अल्लाह को छोड़ कर जिसकी भी तुम मदद हासिल कर सकते हो, जिन्नात हों या इन्सान हों, ख़तीब हों, शौअरा हों या अदीब (लेखक) हों, इन सबको

जमा कर लो और इस क़ुरान जैसी एक ही सूरत बना कर ले आओ, अगर तुम सच्चे हो।

क़ुरान का अन्दाज़ यह है कि वह अपने अन्दर झाँकने की दावत देता है। चुनाँचे यहाँ गोया आँखों में आँखे ड़ाल कर यह कहा जा रहा है कि हक़ीक़त में तुम्हें इस क़ुरान के कलामे इलाही होने में कोई शक नहीं है, यह तो तुम महज़ बात बना रहे हो। अगर तुम्हें वाक़िअतन शक है, अगर तुम अपने दावे में सच्चे हो तो आओ मैदान में और इस जैसी एक ही सूरत बना लाओ!

आयत 24

فَاِنْ لَّمْ تَفْعَلُوْا وَلَنْ تَفْعَلُوْا

"फिर अगर तुम ऐसा ना कर सको, और हरगिज़ ना कर सकोगे!"

ज़रा अन्दाज़ देखिये, कैसा तहदी (चुनौतीपूर्ण) और चैलेंज का है! और यह चैलेंज अल्लाह के सिवा कोई नहीं दे सकता। यह अन्दाज़ दुनिया की किसी किताब का नहीं है, यह दावा सिर्फ़ क़ुरान का है। कैसा दो टूक अन्दाज़ है: "फिर अगर तुम ना कर पाओ, और तुम हरगिज़ नहीं कर पाओगे।"

فَاتَّقُوا النَّارَ الَّتِیْ وَقُوْدُهَا النَّاسُ وَالْحِجَارَةُ ۖ

"तो फिर बचो उस आग से जिसका ईंधन बनेंगे इन्सान और पत्थर।"

जहन्नम के ईंधन के तौर पर पत्थरों का ज़िक्र ख़ास तौर पर किया गया है। इसके दो इमकानात हैं। एक तो यह कि आपको मालूम है पत्थर के कोयले की आग आम लकड़ी के कोयले के मुक़ाबले में बड़ी सख़्त होती है। लिहाज़ा जहन्नम की आग बहुत बड़े-बड़े पत्थरों से दहकायी जायेगी। दूसरे यह कि मुशरिकीन ने जो मअबूद तराश रखे थे वह पत्थर के होते थे। मुशरिकीन को आगाह किया जा रहा है कि तुम्हारे साथ तुम्हारे इन मअबूदों को भी जहन्नम में झोंका जायेगा ताकि तुम्हारी हसरत के अन्दर इज़ाफ़ा हो कि यह हैं वह मअबूदाने बातिल जिनसे हम दुआऐं माँगा करते थे, जिनके सामने माथे टेकते थे, जिनके सामने दण्डवत करते थे, जिनको चढ़ावे चढ़ाते थे!

أُعِدَّتْ لِلْكٰفِرِيْنَ ﴿٢٤﴾

“तैयार की गयी है काफ़िरों के लिये।”

यह जहन्नम मुनकिरीने हक़ के लिये तैयार की गयी है। अब यहाँ गोया ईमान बिल्लाह और ईमान बिर्रिसालत के बाद ईमान बिलआख़िरत का ज़िक्र आ गया।

आयत 25

وَبَشِّرِ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ

“और बशारत दे दीजिये (ऐ नबी ﷺ!) उन लोगों को जो ईमान लाये और जिन्होंने नेक अमल किये”

اَنَّ لَهُمْ جَنّٰتٍ تَجْرِىْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ؕ

"कि उनके लिये ऐसे बाग़ात हैं जिनके नीचे नदियाँ बहती होंगी।"

यह लफ्ज़ी तर्जुमा है। मुराद इससे यह है कि जिनके दामन में नदियाँ बहती होंगी। इसलिये कि फ़ितरी बाग़ आम तौर पर ऐसा होता है कि जिसमें ज़रा ऊँचाई पर दरख़्त लगे हुए हैं और दामन में नदी बह रही है, जिससे ख़ुद-ब-ख़ुद आबपाशी हो रही है और दरख़्तों की जड़ों तक पानी पहुँच रहा है।

كُلَّمَا رُزِقُوْا مِنْهَا مِنْ ثَمَرَةٍ رِّزْقًا ۙ

"जब भी उन्हें दिया जायेगा वहाँ का कोई भी फल रिज़्क़ के तौर पर (यानि खाने के लिये)"

قَالُوْا هٰذَا الَّذِىْ رُزِقْنَا مِنْ قَبْلُ ۙ

"वे कहेंगे यह तो वही है जो हमें पहले भी मिलता था"

وَاُتُوْا بِهٖ مُتَشَابِهًا ؕ

"और दिये जायेंगे उनको फल एक सूरत के।"

इसका एक मफ़हूम तो यह है कि जन्नत में अहले जन्नत की जो इब्तदाई दावत या इब्तदाई ज़ियाफ़त (नुज़ुल) होगी उसमें उन्हें वही फल पेश किये जायेंगे जो दुनिया में मारूफ़ हैं, मसलन अनार, अंगूर, सेब, खजूर वगैरह। अहले जन्नत उन्हें देख कर कहेंगे कि यह तो वही फल हैं जो हम दुनिया

में खाते आये हैं, लेकिन जब उन्हें चखेंगे तो ज़ाहिरी मुशाबिहत (समानता) के बावजूद ज़ायके़ में ज़मीन व आसमान का फ़र्क़ पायेंगे। और एक मफ़हूम यह भी लिया गया है कि अहले जन्नत को जन्नत में भी वही फल मिलते रहेंगे, लेकिन हर बार उनका ज़ायक़ा बदलता रहेगा। उनकी शक्ल व सूरत वही रहेगी, लेकिन ज़ायक़ा वह नहीं रहेगा। लिहज़ा यह दुनिया वाला मामला नहीं होगा कि एक ही शय को खाते-खाते इन्सान की तबीयत भर जाती है।

وَلَهُمْ فِيْهَآ اَزْوَاجٌ مُّطَهَّرَةٌ ۙ

"और उनके लिये उस (जन्नत) में निहायत पाकबाज़ बीवियाँ होंगी।"

وَّهُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ﴿٢٥﴾

"और वह उसमें रहेंगे हमेशा-हमेश।"

इन पाँच आयात (21 से 25) में ईमानियाते सलासा यानि ईमान बिल्लाह, ईमान बिर्रसूल और ईमान बिलआखिरा की दावत आ गयी। अब आगे कुछ ज़िमनी (incidental) मसाईल ज़ेरे बहस आयेंगे।

आयत 26

إِنَّ اللَّهَ لَا يَسْتَحْيِ أَنْ يَضْرِبَ مَثَلًا مَّا بَعُوضَةً فَمَا فَوْقَهَا ۚ

"यक़ीनन अल्लाह इससे नहीं शरमाता कि बयान करे कोई मिसाल मच्छर की या उस चीज़ की जो उससे बढ़ कर है।"

कुफ्फ़ार की तरफ़ से क़ुरान के बारे में कई ऐतराज़ात उठाये जाते थे। वह कभी भी उस चैलेंज का मुक़ाबला तो ना कर सके जो क़ुरान ने उन्हें فَأْتُوا بِسُورَةٍ مِّن مِّثْلِهِ के अल्फ़ाज़ में दिया था, लेकिन ख्वाह माख्वाह के ऐतराज़ात उठाते रहे। यह बिल्कुल ऐसी ही बात है जैसे किसी मुसव्विर की तस्वीर पर ऐतराज़ करने वाले तो बहुत थे लेकिन जब कहा गया कि यह ब्रुश लीजिये और ज़रा इसको ठीक कर दीजिये तो सब पीछे हट गये। क़ुरान के मुक़ाबले में कोई सूरत लाना तो उनके लिये मुमकिन नहीं था लेकिन इधर-उधर से ऐतराज़ात करने के लिये उनकी ज़बानें खुलती थीं। उनमें से उनका एक ऐतराज़ यहाँ नकल किया जा रहा है कि क़ुरान मजीद में मक्खी की तशबीह (तुलना) आयी है, यह तो बहुत हक़ीर शय (छोटी/तुच्छ चीज़) है। कोई आला मुतकल्लिम अपने आला कलाम में ऐसी हक़ीर चीज़ों का तज़किरा नहीं करता। क़ुरान मजीद में मकड़ी जैसी हक़ीर शय का भी ज़िक्र है, चुनाँचे यह कोई आला कलाम नहीं है। यहाँ इसका जवाब दिया जा रहा है। दरअसल तशबीह और तमसील के अन्दर मुमसिल लहू और मुमसिल बिही में मुनासबत और मुताबक़त होनी चाहिये। यानि कोई तमसील या तशबीह बयान करनी हो तो जिस शय के लिये तशबीह दी जा रही

है उससे मुताबक़त और मुनासबत रखने वाली शय से तशबीह दी जानी चाहिये। कोई शय अगर बहुत हक़ीर है तो उसे किसी अज़मत वाली शय से आखिर कैसे तशबीह दी जायेगी? उसे तो किसी हक़ीर शय ही से तशबीह दी जायेगी तो तशबीह का असल मक़सद पूरा होगा। चुनाँचे फ़रमाया कि अल्लाह तआला के लिये यह कोई शर्म या आर (लज्जा) की बात नहीं है कि वह मच्छर की मिसाल बयान करे या उस चीज़ की जो उससे बढ़ कर है। लफ्ज़ "فَوْقَهَا" (उससे ऊपर) में दोनो मायने मौजूद हैं। यानि कमतर और हक़ीर होने में उससे भी बढ़ कर या यह कि उससे ऊपर की कोई शय। इसलिये कि मक्खी या मकड़ी बहरहाल मच्छर से ज़रा बड़ी शय है।

فَاَمَّا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا فَيَعْلَمُوْنَ اَنَّهُ الْحَقُّ مِنْ رَّبِّهِمْ ۚ

"तो जो लोग साहिबे ईमान हैं वह जानते हैं कि यह यक़ीनन हक़ है उनके रब की तरफ से।"

وَاَمَّا الَّذِيْنَ كَفَرُوْا فَيَقُوْلُوْنَ مَاذَآ اَرَادَ اللّٰهُ بِهٰذَا مَثَلًا ۘ

"और जिन्होंने कुफ़्र किया सो वह कहते हैं कि क्या मतलब था अल्लाह का इस मिसाल से?"

हक़ के मुन्कर नाक भौं चढ़ा रहे हैं और ऐतराज़ कर रहे हैं कि इस मिसाल से अल्लाह ने क्या मुराद ली है? इस ज़िमन में अगला जुम्ला बहुत अहम है।

يُضِلُّ بِهٖ كَثِيْرًا ۙ وَّيَهْدِيْ بِهٖ كَثِيْرًا ۭ

"गुमराह करता है अल्लाह तआला इसके ज़रिये से बहुतों को और हिदायत देता है इसी के ज़रिये से बहुतों को।"

इन मिसालों के ज़रिये अल्लाह तआला बहुत सों को गुमराही में मुब्तला कर देता है और बहुत सों को राहे रास्त दिखा देता है। मालूम हुआ कि हिदायत और गुमराही का दारोमदार इन्सान की अपनी दाखिली कैफ़ियत (subjective condition) पर है। आपके दिल में ख़ैर है, भलाई है, आपकी नीयत तलबे हिदायत और तलबे इल्म की है तो आपको इस क़ुरान से हिदायत मिल जायेगी, और दिल में ज़ेग है, कजी है, नीयत में टेढ़ और फ़साद है तो इसी के ज़रिये से अल्लाह आपकी गुमराही में इज़ाफा कर देगा। लेकिन अल्लाह तआला का किसी को हिदायत देना और किसी को गुमराही में मुब्तला कर देना अललटप नहीं है, किसी क़ायदे और क़ानून के बगैर नहीं है।

وَمَا يُضِلُّ بِهٖٓ اِلَّا الْفٰسِقِيْنَ ۝ ٢٦ۙ

"और नहीं गुमराह करता वह इसके ज़रिये से मगर सिर्फ़ सरकश लोगों को।"

इससे गुमराही में वह सिर्फ़ उन्ही को मुब्तला करता है जिनमें सरकशी है, ताअद्दी (उल्लंघन) है, तकब्बुर है। अगली आयत में उनके औसाफ़ बयान कर दिये गये।

आयत 27

الَّذِيْنَ يَنْقُضُوْنَ عَهْدَ اللّٰهِ مِنْ بَعْدِ مِيْثَاقِهٖ

"जो तोड़ देते हैं अल्लाह के (साथ किये हुए) अहद को मज़बूत बाँध लेने के बाद।"

अल्लाह तआला और बन्दे के दरमियान सबसे बड़ा अहद "अहदे अलस्त" है, जिसका ज़िक्र सूरतुल आराफ़ में आयेगा। यह अहद आलमे अरवाह में तमाम अरवाहे इन्सानिया ने किया था, इनमें मैं भी था, आप भी थे, सब थे। अलगर्ज़ तमाम के तमाम इन्सान जितने आज तक दुनिया में आ चुके हैं और जो क़यामत तक अभी आने वाले हैं, इस अहद के वक़्त मौजूद थे, लेकिन सिर्फ़ अरवाह की शक्ल में थे, जिस्म मौजूद नहीं थे। और यह बात याद रखिये कि इन्सान का रूहानी वजूद मुकम्मल वजूद है और अव्वलन तख़्लीक़ उसी की हुई थी। "अहदे अलस्त" में तमाम बनी आदम से अल्लाह तआला ने दरयाफ्त फरमाया: अलस्तु बिरब्बिकुम (क्या मैं ही तुम्हारा रब्ब नहीं हूँ?) सबने एक ही जवाब दिया: बला (क्यों नहीं!) तो यह जो फ़ासिक़ हैं, नाफ़रमान हैं, सरकश हैं, इन्होंने इस अहद को तोड़ा और अल्लाह को अपना मालिक, अपना ख़ालिक़ और अपना हाकिम मानने की बजाय खुद हाकिम बन कर बैठ गये और इस तरह के दावे किये: {اَلَيْسَ لِيْ مُلْكُ مِصْرَ} "क्या मिस्र की बादशाही मेरी नहीं है?" गैरुल्लाह की हाकिमियत (sovereignty) को तस्लीम करना सबसे बड़ी बग़ावत, सरकशी, फिस्क़ (भ्रष्टाचार) और नाफ़रमानी है, ख्वाह वह मलूकियत की

सूरत में हो या अवामी हाकिमियत (Popular Soverignty) की सूरत में।

وَيَقْطَعُوْنَ مَآ اَمَرَ اللّٰهُ بِهٖٓ اَنْ يُّوْصَلَ

"और काटते हैं उस चीज़ को जिसे अल्लाह ने जोड़ने का हुक्म दिया है"

अल्लाह ने सिला रहमी (रिश्तेदारी जोड़ने) का हुक्म दिया है, यह क़ता रहमी (रिश्तेदारी ख़त्म) करते हैं। माल की तलब में, उसके माल को हथियाने के लिये भाई-भाई को ख़त्म कर देता है। इन्सान अपनी ज़ाती अगराज़ (ज़रूरतों) के लिये, अपने तकब्बुर और तअल्ली (बड़प्पन) की ख़ातिर तमाम अख़्लाक़ी हुदूद को पसे पुश्त ड़ाल देता है। हमारी शरीअत का फ़लसफ़ा यह है कि हमें दो तरह के ताल्लुक़ात जोड़ने का हुक्म दिया गया है। एक ताल्लुक़ है बन्दे का अल्लाह के साथ। उसका ताल्लुक़ "हुक़ूक़ुल्लाह" से है। जबकि एक ताल्लुक़ है बन्दों को बन्दों के साथ। यह "हुक़ूक़ुलइबाद" से मुताल्लिक़ है। अल्लाह का हक़ यह है कि उसे हाकिम और मालिक समझो और ख़ुद उसके बन्दे बनो। जबकि इन्सानों का हक़ यह है कि: ((كُوْنُوْا عِبَادَ اللّٰهِ اِخْوَانًا))(3) "सब आपस में भाई-भाई होकर अल्लाह के बन्दे बन जाओ।" इस ज़िमन में अहमतरीन रहमी रिश्ता है, यानि सगे बहन-भाई। फिर दादा-दादी की औलाद में तमाम चचाज़ाद वगैरह (cousins) आ जायेंगे। इसके ऊपर परदादा-परदादी की औलाद का दायरा मज़ीद वसी (बड़ा) हो जायेगा। इसी तरह ऊपर चलते जायें यहाँ तक कि आदम और हव्वा पर तमाम इन्सान जमा हो जायेंगे। तो रहमी रिश्ते की बड़ी अहमियत

है। यहाँ फ़ासिक़ीन की दो सिफ़ात बयान कर दी गयीं। एक यह कि वह अल्लाह के अहद को मज़बूती से बाँधनें के बाद तोड़ देते हैं और दूसरे यह कि जिन रिश्तों को अल्लाह ने जोड़ने का हुक्म दिया है यह उन्हें क़ता करते (काटते) हैं।

"और ज़मीन में फ़साद बरपा करते हैं।"	وَيُفْسِدُوْنَ فِي الْاَرْضِ ۭ

मुताज़क्किरा बाला दोनों चीज़ों के नतीजे में ज़मीन में फसाद पैदा होता है। इन्सान अल्लाह की इताअत से बाग़ी हो जायें या आपस में एक-दूसरे की गरदनें काटने लगें तो इसका नतीजा फ़साद फिल अर्द (ज़मीन में फ़साद) की सूरत में निकलता है।

"यही लोग नुक़सान उठाने वाले हैं।"	اُولٰۗىِٕكَ هُمُ الْخٰسِرُوْنَ ۝٢٧

यही लोग हैं जो बिलआखिर आखरी और दाईमी खसारे में रहने वाले हैं।

आयत 28

كَيْفَ تَكْفُرُوْنَ بِاللّٰهِ وَ كُنْتُمْ اَمْوَاتًا فَاَحْيَاكُمْ ۚ

"तुम कैसे कुफ़्र करते हो अल्लाह का हालाँकि तुम मुर्दा थे, फिर उसने तुम्हें ज़िन्दा किया।"

ثُمَّ يُمِيْتُكُمْ ثُمَّ يُحْيِيْكُمْ ثُمَّ اِلَيْهِ تُرْجَعُوْنَ ﴿٢٨﴾

"फिर वह तुम्हें मारेगा, फिर जिलायेगा, फिर तुम उसी की तरफ लौटा दिये जाओगे।"

इस मक़ाम पर एक बड़ी गहरी हिकमत और फ़लसफ़े की बात बयान की गयी है जो आज निगाहों से बिल्कुल ओझल हो चुकी है। वह यह कि हम दुनिया में आने से पहले मुर्दा थे (كُنْتُمْ اَمْوَاتًا)। इसके क्या मायने हैं?

यह मज़मून सूरह ग़ाफ़िर/सूरतुल मोमिन में ज़्यादा वज़ाहत से आया है, जो सूरतुल बक़रह से पहले नाज़िल हो चुकी थी। लिहाज़ा यहाँ इज्माली (संक्षिप्त) तज़किरा है। वहाँ अहले जहन्नम का क़ौल बाअल्फ़ाज़ नक़ल हुआ है:

رَبَّنَآ اَمَتَّنَا اثْنَتَيْنِ وَاَحْيَيْتَنَا اثْنَتَيْنِ فَاعْتَرَفْنَا بِذُنُوْبِنَا

"ऐ हमारे रब! तूने दो मर्तबा हम पर मौत वारिद की और दो मर्तबा हमें ज़िन्दा किया, अब हमने अपने गुनाहों का ऐतराफ़ कर लिया है, तो अब यहाँ से निकलने का भी कोई रास्ता है?"

فَهَلۡ اِلٰی خُرُوۡجٍ مِّنۡ سَبِیۡلٍ ﴿۱۱﴾

इससे यह हक़ीक़त वाज़ेह हुई कि इन्सान की तख़्लीक़े अव्वल आलमे अरवाह में सिर्फ़ अरवाह की हैसियत से हुई थी। अहादीस में अल्फ़ाज़ वारिद हुए हैं: ((اَلۡاَرۡوَاحُ جُنُوۡدٌ مُّجَنَّدَۃٌ)) (मुत्तफ़िक़ अलै०) यानि अरवाह जमाशुदा लश्करों की सूरत में थीं। इन अरवाह से वह अहद लिया गया जो "अहदे अलस्त" कहलाता है। फिर इन्हें सुला दिया गया। यह गोया पहली मौत थी जो हम गुज़ार आये हैं। (आप जानते हैं कि मुर्दा मादूम (अस्तित्वहीन) नहीं होता, बेजान होता है, एक तरह से सोया हुआ होता है। क़ुरान हकीम में मौत और नींद को बाहम तशबीह दी गयी है।) फिर दुनिया में आलमे ख़ल्क़ का मरहला आया, जिसमें तनासुल (प्रजनन) के ज़रिये से अज्सादे इन्सानिया (Human bodies) की तख़्लीक़ होती है और उनमें अरवाह फूँकी जाती हैं। हज़रत अब्दुल्लाह बिन मसूद (रजि०) से मरवी मुत्तफ़िक़ अलै हदीस के मुताबिक़ रहमे मादर (गर्भ) में जनीन (भ्रूण) जब चार माह का हो जाता है तो उसमें वह रूह लाकर फूँक दी जाती है। यह गोया पहली मर्तबा का ज़िन्दा किया जाना हो गया। हम इस दुनिया में अपने जसद (जिस्म) के साथ ज़िन्दा हो गये, हमें पहली मौत की नींद से जगा दिया गया। अब हमें जो मौत आयेगी वह हमारी दूसरी मौत होगी और इसके नतीजे में हमारा जसद वहीं चला जायेगा जहाँ से आया था (यानि मिट्टी में) और हमारी रूह भी जहाँ से आयी थी वहीं वापस

चली जायेगी। यह फ़लसफ़ा व हिकमते क़ुरानी का बहुत गहरा नुक्ता है।

आयत 29

هُوَ الَّذِیۡ خَلَقَ لَکُمۡ مَّا فِی الۡاَرۡضِ جَمِیۡعًا ٭

"वही है जिसने पैदा किया तुम्हारे लिये जो कुछ भी ज़मीन में हैं।"

इस आयत में ख़िलाफ़त का मज़मून शुरू हो गया है। हदीस में आता है: ((اِنَّ الدُّنْیَا خُلِقَتْ لَکُمْ وَاَنْتُمْ خُلِقْتُمْ لِلْاٰخِرَۃِ))[4] "यह दुनिया तुम्हारे लिये बनायी गयी है और तुम आख़िरत के लिये बनाये गये हो।" अगली आयत में हज़रत आदम (अलै०) की ख़िलाफ़ते अर्ज़ी का ज़िक्र है। गोया ज़मीन में जो कुछ भी पैदा किया गया है वह इन्सान की ख़िलाफ़त के लिये पैदा किया गया है।

ثُمَّ اسۡتَوٰۤی اِلَی السَّمَآءِ فَسَوّٰىہُنَّ سَبۡعَ سَمٰوٰتٍ ؕ

"फिर वह मुतवज्जा हुआ आसमानों की तरफ़ और उन्हें ठीक-ठीक सात आसमानों की शक्ल में बना दिया।"

यह आयत ताहाल (अभी तक) आयाते मुताशाबेहात में से है। सात आसमानों की क्या हक़ीक़त है, हम अभी तक पूरे तौर पर इससे वाक़िफ़ नहीं हैं।

وَ ہُوَ بِکُلِّ شَیۡءٍ عَلِیۡمٌ ﴿۲۹﴾

"और वह हर चीज़ का इल्म रखने वाला है।"

उसे हर शय का इल्मे हक़ीक़ी हासिल है।

आयात 30 से 39 तक

وَاِذۡ قَالَ رَبُّكَ لِلۡمَلٰٓـئِکَةِ اِنِّىۡ جَاعِلٌ فِى الۡاَرۡضِ
خَلِيۡفَةً ‌ؕ قَالُوۡٓا اَتَجۡعَلُ فِيۡهَا مَنۡ يُّفۡسِدُ فِيۡهَا وَيَسۡفِكُ
الدِّمَآءَ ۚ وَنَحۡنُ نُسَبِّحُ بِحَمۡدِكَ وَنُقَدِّسُ لَكَ‌ؕ قَالَ
اِنِّىۡٓ اَعۡلَمُ مَا لَا تَعۡلَمُوۡنَ ﴿۳۰﴾ وَعَلَّمَ اٰدَمَ الۡاَسۡمَآءَ
كُلَّهَا ثُمَّ عَرَضَهُمۡ عَلَى الۡمَلٰٓـئِکَةِ ۙ فَقَالَ اَنۡۢبِـئُوۡنِىۡ
بِاَسۡمَآءِ هٰٓؤُلَآءِ اِنۡ كُنۡتُمۡ صٰدِقِيۡنَ ﴿۳۱﴾ قَالُوۡا سُبۡحٰنَكَ
لَا عِلۡمَ لَنَآ اِلَّا مَا عَلَّمۡتَنَا ؕ اِنَّكَ اَنۡتَ الۡعَلِيۡمُ الۡحَكِيۡمُ
﴿۳۲﴾ قَالَ يٰٓـاٰدَمُ اَنۡۢبِئۡهُمۡ بِاَسۡمَآئِهِمۡ‌ۚ فَلَمَّآ اَنۡۢبَاَهُمۡ
بِاَسۡمَآئِهِمۡ ۙ قَالَ اَلَمۡ اَقُلۡ لَّكُمۡ اِنِّىۡٓ اَعۡلَمُ غَيۡبَ
السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضِۙ وَاَعۡلَمُ مَا تُبۡدُوۡنَ وَمَا كُنۡتُمۡ
تَكۡتُمُوۡنَ ﴿۳۳﴾ وَاِذۡ قُلۡنَا لِلۡمَلٰٓـئِكَةِ اسۡجُدُوۡا لِاٰدَمَ
فَسَجَدُوۡٓا اِلَّآ اِبۡلِيۡسَ ؕ اَبٰى وَاسۡتَكۡبَرَ ۖ وَكَانَ مِنَ

الْكٰفِرِيْنَ ﴿٣٤﴾ وَقُلْنَا يٰٓاٰدَمُ اسْكُنْ اَنْتَ وَزَوْجُكَ
الْجَنَّةَ وَكُلَا مِنْهَا رَغَدًا حَيْثُ شِئْتُمَا ۠ وَلَا تَقْرَبَا
هٰذِهِ الشَّجَرَةَ فَتَكُوْنَا مِنَ الظّٰلِمِيْنَ ﴿٣٥﴾ فَاَزَلَّهُمَا
الشَّيْطٰنُ عَنْهَا فَاَخْرَجَهُمَا مِمَّا كَانَا فِيْهِ ۠ وَقُلْنَا
اهْبِطُوْا بَعْضُكُمْ لِبَعْضٍ عَدُوٌّ ۚ وَلَكُمْ فِي الْاَرْضِ
مُسْتَقَرٌّ وَّمَتَاعٌ اِلٰى حِيْنٍ ﴿٣٦﴾ فَتَلَقّٰٓى اٰدَمُ مِنْ رَّبِّهٖ
كَلِمٰتٍ فَتَابَ عَلَيْهِ ۭ اِنَّهٗ هُوَ التَّوَّابُ الرَّحِيْمُ ﴿٣٧﴾
قُلْنَا اهْبِطُوْا مِنْهَا جَمِيْعًا ۚ فَاِمَّا يَاْتِيَنَّكُمْ مِّنِّىْ
هُدًى فَمَنْ تَبِعَ هُدَاىَ فَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ
يَحْزَنُوْنَ ﴿٣٨﴾ وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَكَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَآ اُولٰۗىِٕكَ
اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ﴿٣٩﴾

आयत 30

وَاِذۡ قَالَ رَبُّكَ لِلۡمَلٰٓـئِكَةِ اِنِّىۡ جَاعِلٌ فِى الۡاَرۡضِ خَلِيۡفَةً ؕ

“और याद करो जबकि कहा था तुम्हारे रब ने फ़रिश्तों से कि मैं बनाने वाला हूँ ज़मीन में एक ख़लीफ़ा।”

ख़लीफ़ा दर हक़ीक़त नायब को कहते हैं। आमतौर पर लोगों को मुग़ालता लाहक़ होता है कि ख़लीफ़ा और जानशीन किसी की मौत के बाद मुक़र्रर होता है, ज़िन्दगी में नहीं होता। लेकिन इस दुनिया में इन्सान की असल हक़ीक़त को समझने के लिये वायसराय का तसव्वुर ज़हन में रखिये। 1947 ई० से पहले हम अंग्रेज़ के गुलाम थे। हमारा असल हाकिम (बादशाह या मलिका) इन्गलिस्तान में था, जबकि देहली में वायसराय होता था। वायसराय का काम यह था कि His Majesty या Her Majesty की हुकूमत का जो भी हुकुम मौसूल (प्राप्त) हो उसे बिला चूं व चरा बगैर किसी तगय्युर (परिवर्तन) और तब्दील के नाफ़िज़ करे। अलबत्ता वायसराय को इख़्तियार हासिल था कि अगर किसी मामले में इन्गलिस्तान से हुकुम ना आये तो वह यहाँ के हालात के मुताबिक़ अपनी बेहतरीन राय क़ायम करे। वह गौरो फ़िक्र करे कि यहाँ की मसलहतें क्या हैं और जो चीज़ भी सल्तनत की मसलहत में हो उसके मुताबिक फ़ैसला करे। बैयन ही यही रिश्ता कायनात के असल हाकिम और ज़मीन पर उसके ख़लीफ़ा के माबैन है। कायनात का असल हाकिम और मालिक अल्लाह तआला है, लेकिन उसने अपने आप को ग़ैब के परदे में छुपा लिया है। ज़मीन पर इन्सान उसका ख़लीफ़ा है। अब इन्सान का काम यह है कि जो हिदायत अल्लाह की

तरफ़ से आ रही है उस पर तो बे चूं व चरा अमल करे और जिस मामलें में कोई वाज़ेह हिदायत नहीं है वहाँ गौरो फिक्र और सोच-विचार करे और इस्तमबात (अनुमान) व इज्तहाद (राय) से काम लेते हुए जो बात रूहे दीन से ज़्यादा से ज़्यादा मुताबक़त रखने वाली (मिलती) हो उसे इख़्तियार करे। यही दर हक़ीक़त रिश्ता-ए-ख़िलाफ़त है जो अल्लाह और इन्सान के माबैन है।

यह हैसियत तमाम इन्सानों को दी गयी है और बिलक़ुव्वा (Potentially) हर इन्सान अल्लाह का ख़लीफ़ा है, लेकिन जो अल्लाह का बागी हो जाये, जो खुद हाकिमियत का मुद्दई हो जाये तो वह इस ख़िलाफ़त के हक़ से महरूम हो जाता है। अगर किसी बादशाह का वली अहद अपने बाप की ज़िदगी ही में बग़ावत कर दे और हुकूमत हासिल करना चाहे तो अब वह वाजिबुल क़त्ल है। इसी तरह जो लोग भी इस दुनिया में अल्लाह तआला की हाकिमियते आला के मुन्कर होकर खुद हाकिमियत के मुद्दई हो गये अगरचे वह वाजिबुल क़त्ल हैं, लेकिन दुनिया में उन्हें मोहलत दी गयी है। इसलिये कि यह दुनिया दारुल इम्तिहान है। चुनाँचे अल्लाह तआला उन्हें फौरन ख़त्म नहीं करता। अज़रूए अल्फ़ाज़े क़ुरानी {وَلَوْلَا كَلِمَةٌ سَبَقَتْ مِن رَّبِّكَ إِلَىٰ أَجَلٍ مُّسَمًّى لَّقُضِيَ بَيْنَهُمْ} (अश्शूरा:14) "और अगर एक बात पहले से तय ना हो चुकी होती एक वक़्ते मुअय्यन तक तुम्हारे रब की तरफ़ से तो इनके दरमियान फ़ैसला चुका दिया जाता।" चूँकि अल्लाह तआला ने उन्हें एक वक़्ते मुअय्यन तक के लिये मोहलत दी है लिहाज़ा उन्हें फ़ौरी तौर पर ख़त्म नहीं किया जाता, लेकिन कम से कम इतनी सज़ा

ज़रूर मिलती है कि अब वह ख़िलाफ़त के हक़ से महरूम कर दिये गये हैं। गोया कि अब दुनिया में ख़िलाफ़त सिर्फ़ ख़िलाफ़तुल मुस्लिमीन होगी। सिर्फ़ वह शख़्स जो अल्लाह को अपना हाकिमे मुतलक़ (पूर्ण) माने, वही ख़िलाफ़त का अहल है। तो यह चन्द बातें ख़िलाफ़त की असल हक़ीक़त के ज़िमन में यहीं पर समझ लीजिये। {وَاِذْ قَالَ رَبُّكَ لِلْمَلٰٓئِكَةِ اِنِّيْ جَاعِلٌ فِي الْاَرْضِ خَلِيْفَةً ؕ} "और याद करो जब तुम्हारे रब ने कहा था फ़रिश्तों से कि मैं ज़मीन में एक ख़लीफ़ा बनाने वाला हूँ।"

قَالُوْٓا اَتَجْعَلُ فِيْهَا مَنْ يُّفْسِدُ فِيْهَا وَيَسْفِكُ الدِّمَآءَ ۚ	*"उन्होंने कहा: क्या आप ज़मीन में किसी ऐसे को मुक़र्रर करने वाले हैं जो उसमें फ़साद मचायेगा और ख़ूँरेज़ी करेगा?"*
وَنَحْنُ نُسَبِّحُ بِحَمْدِكَ وَنُقَدِّسُ لَكَ ؕ	*"और हम आपकी हम्दो सना के साथ तस्बीह और आपकी तक़दीस में लगे हुए हैं।"*
قَالَ اِنِّيْٓ اَعْلَمُ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ ۝۳۰	*"फ़रमाया: मैं जानता हूँ जो कुछ तुम नहीं जानते।"*

अब यहाँ यह सवाल पैदा होता है कि फ़रिश्तों को इन्सान के बारे में यह गुमान या यह ख्याल कैसे हुआ? इसके ज़िमन

में दो आरा (रायें) हैं। एक तो यह कि इन्सान की तख़्लीक़ से पहले इस ज़मीन पर जिन्नात मौजूद थे और उन्हें भी अल्लाह ने कुछ थोड़ा सा इख़्तियार दिया था और उन्होंने यहाँ फ़साद बरपा कर रखा था। उन्ही पर क़यास (अनुमान) करते हुए फ़रिश्तों ने समझा कि इन्सान भी ज़मीन में फ़साद मचायेगा और खूँरेज़ी करेगा। एक दूसरी उसूली बात यह कही गयी है कि जब ख़िलाफ़त का लफ्ज़ इस्तेमाल हुआ तो फ़रिश्ते समझ गये कि इन्सान को ज़मीन में कोई ना कोई इख़्तियार भी मिलेगा। जिन्नात के बारे में ख़िलाफ़त का लफ्ज़ कहीं नहीं आया, यह सिर्फ़ इन्सान के बारे में आ रहा है। और ख़लीफा बिल्कुल बे इख़्तियार नहीं होता। जैसा कि मैंने अर्ज़ किया जहाँ वाज़ेह हुक्म है उसका काम उसकी तन्फ़ीज़ है और जहाँ नहीं है वहाँ अपने ग़ौरो फिक्र और सोच-विचार की सलाहियतों को बरवयेकार लाकर उसे बेहतर से बेहतर राय क़ायम करनी होती है। ज़ाहिर बात है जहाँ इख़्तियार होगा वहाँ उसके सही इस्तेमाल का भी इम्कान है और गलत का भी। पॉलिटिकल साइन्स का तो यह मुसल्लमा उसूल (Axiom) है: “Authority tends to corrupt and absolute authority corrupts absolutely.” चुनाँचे इख़्तियार के अन्दर बदउन्वानी (भ्रष्टाचार) का रुझान मौजूद है। इस बिना पर उन्होंने क़यास किया कि इन्सान को ज़मीन में इख़्तियार मिलेगा तो यहाँ फसाद होगा, खूँरेज़ी होगी। अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि अपनी हिकमतों से मैं ख़ुद वाक़िफ़ हूँ। मैं इन्सान को ख़लीफ़ा क्यों बना रहा हूँ, यह मैं जानता हूँ तुम नहीं जानते।

आयत 31

وَعَلَّمَ اٰدَمَ الۡاَسۡمَآءَ كُلَّهَا

"और अल्लाह ने सिखा दिये आदम को तमाम के तमाम नाम"

मुफ़स्सिरीन का तक़रीबन इज्मा है कि इससे मुराद तमाम अशिया (चीज़ों) के नाम हैं और तमाम अशिया के नामों से मुराद उनकी हक़ीक़त का इल्म है। आप इन्सानी इल्म (Human Knowledge) का तजज़िया करें तो वह यही है कि इन्सान एक चीज़ को पहचानता है, फिर उसका एक नाम रखता है या उसके लिये कोई इस्तलाह (term) क़ायम करता है। वह उस नाम और उस इस्तलाह के हवाले से उस चीज़ के बारे में बहुत से हक़ाइक़ को अपने ज़हन में महफ़ूज़ करता है। तो अल्लाह तआला ने इन्सान को तमाम नाम सिखा दिये। गोया कुल माद्दी कायनात (Material World) के अन्दर जो कुछ वजूद में आने वाला था, उन सबकी हक़ीक़त से हज़रत आदम (अलै०) को इम्कानी तौर पर (Potentially) आगाह कर दिया। यह इन्सान का इकतसाबी इल्म (Acquired Knowledge) है जो उसे सम-ओ-बसर और अक़्ल व दिमाग से हासिल होता है।

इन्सान को हासिल होने वाले इल्म के दो हिस्से हैं। एक इल्हामी (Revealed Knowledge) है जो अल्लाह तआला वही के ज़रिये से भेजता है, जबकि एक इल्म बिलहवास या इकतसाबी इल्म (Acquired Knowledge) है जो इन्सान खुद हासिल करता है। उसने

आँखों से देखा, कानों से सुना, नतीजा निकाला और दिमाग़ के कम्प्यूटर ने उसको प्रोसेस करके उस नतीजे को कहीं हाफ़ज़े (memory) के अन्दर महफ़ूज़ कर लिया। फिर कुछ और देखा, कुछ और सुना, कुछ छू कर, कुछ चख कर, कुछ सूँघ कर मालूम हुआ और कुछ और नतीजा निकाला तो उसे साबक़ा याद्दाश्त के साथ टैली करके नतीजा निकाला। अज़रूए अल्फाज़ क़ुरानी (बनी इसराइल:36): {اِنَّ السَّمْعَ وَالْبَصَرَ وَالْفُؤَادَ كُلُّ اُولٰٓئِكَ كَانَ عَنْهُ مَسْـُٔوْلًا} इन्सान को यह इकतसाबी इल्म (Acquired Knowledge) तीन चीज़ों से हासिल हो रहा है: समाअत, बसारत और अक़्ल। अक़्ल उस तमाम sense data को जो उसे मुहैय्या होता है, हवास (sense organs) के ज़रिये से प्रोसेस करती है और फ़ायदा अख़ज़ करती है। यह इल्म है जो बिलक़ुव्वा (Potentially) हज़रत आदम (अलै०) को दे दिया गया। अब इसकी exfoliation हो रही है और दर्जा-ब-दर्जा वह इल्म फैल रहा है, बढ़ रहा है। बढ़ते-बढ़ते यह कहाँ तक पहुँचेगा, हम कुछ नहीं कह सकते। इन्सान कहाँ से कहाँ पहुँच गया है! इस निस्फ़े सदी में इल्मे इन्सानी में जो explosion हुआ है मैं और आप उसका तसव्वुर तक नहीं कर सकते। अक्सर बड़े-बड़े साइन्सदानों को भी इसका इदराक (अहसास) व शऊर नहीं है कि इन्सानी इल्म ने कितनी बड़ी ज़क़न्द (छलांग) लगायी है। इसलिये कि एक शख़्स अपनी लाईन के बारे में तो जानता है कि इसमें क्या कुछ हो गया। मसलन एक साइन्सदान सिर्फ़ फिज़िक्स या इसकी भी किसी शाख के बारे में जानता है, बाक़ी दूसरी शाखों के बारे में उसे कुछ मालूम नहीं। यह दौर स्पेशलाइजेशन का दौर है, लिहाज़ा

इल्म के मैदान में जो बड़ा धमाका (explosion) हुआ है उसका हमें कोई अन्दाज़ा नहीं है। एक चीज़ जो आज ईजाद होती है चन्द दिनों के अन्दर-अन्दर उसका नया version आ जाता है और यह चीज़ मतरूक (outdated) हो जाती है। इब्लाग और मवासलात (Communication) के अन्दर इन्क़लाबे अज़ीम बरपा हुआ है। आप यह समझिये कि इक़बाल ने जो यह शेर कभी कहा था, उसकी ताबीर क़रीब से क़रीब तर आ रही है:

उरूजे आदमे ख़ाकी से अन्जुमन सहमे जाते हैं
कि यह टूटा हुआ तारा मय कामिल ना बन जाये!

और यह "मयकामिल" उस वक़्त बनेगा जब दज्जाल की शक्ल इख़्तियार करेगा। दज्जाल वह शख़्स होगा जो इन तमाम क़वाइदे तबीइया (Physical Laws) के ऊपर काबू पा लेगा। जब चाहेगा, जहाँ चाहेगा बारिश बरसायेगा। वह रिज़्क़ के तमाम खज़ाने अपने हाथ में ले लेगा और ऐलान कर देगा कि जो उस पर ईमान लायेगा उसी को रिज़्क़ मिलेगा, किसी और को नहीं मिलेगा। उसकी आवाज़ पूरी दुनिया में सुनायी देगी। वह चन्द दिनों के अन्दर पूरी दुनिया का चक्कर लगा लेगा। यह सारी बातें हदीस में दज्जाल के बारे में आयी हैं। वह आदम के उस इकतसाबी इल्म (Acquired Knowledge) की उस हद को पहुँच जायेगा कि फ़ितरत के तमाम इसरार (mysteries) उस पर मुन्कशिफ़ हो जायें और उसे क़वाइदे तबीइया पर तसर्रुफ (ज़ब्त) हासिल हो जाये, वह इन्हें harness कर ले, क़ाबू में ले आये और उन्हें इस्तेमाल करे।

इन्सान ने जो सबसे पहला ज़रिया-ए-तवानाई (source of energy) दरयाफ्त किया वह आग था। आज से हज़ारों साल पहले हमारे किसी जद्दे अमजद ने देखा कि कोई चट्टान ऊपर से गिरी, पत्थर से पत्थर टकराया तो उसमें से आग का शोला निकला। उसका यह मुशाहिदा आग पैदा करने के लिये काफी हो गया कि पत्थरों को आपस में टकराओ और आग पैदा कर लो। चुनाँचे आग उस दौर की सबसे बड़ी ईजाद और अव्वलीन ज़रिया-ए-तवानाई थी। अब वह तवानाई (energy) कहाँ से कहाँ पहुँची! पहले उस आग ने भाप की शक्ल इख़्तियार की, फिर हमनें बिजली ईजाद की और अब एटमी तवानाई (Atomic Energy) हासिल कर ली है और अभी ना मालूम क्या-क्या हासिल होना है। वल्लाहु आलम! इन तमाम चीज़ों का ताल्लुक़ ख़िलाफ़ते अरज़ी के साथ है। लिहाज़ा फ़रिश्तों को बताया गया कि आदम को सिर्फ़ इख़्तियार ही नहीं, इल्म भी दिया जा रहा है।

ثُمَّ عَرَضَهُمْ عَلَى الْمَلٰٓئِكَةِ ۙ

"फिर उन (तमाम अशया) को पेश किया फ़रिश्तों के सामने"

فَقَالَ اَنْۢبِـُٔوْنِىْ بِاَسْمَاۗءِ هٰٓؤُلَاۗءِ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ۝

"और फ़रमाया कि बताओ मुझे इन चीज़ों के नाम अगर तुम सच्चे हो।"

अगर तुम्हारा यह ख्याल सही है कि किसी ख़लीफ़ा के तक़र्रुर (नियुक्ति) से ज़मीन का इन्तेज़ाम बिगड़ जायेगा।

आयत 32

قَالُوْا سُبْحٰنَكَ

"उन्होंने कहा (परवरदिगार!) नुक़्स से पाक तो आप ही की ज़ात है"

आप हर नुक़्स से, हर ऐब से, हर ज़ौफ़ से, हर अहतियाज (ग़रीबी) से मुबर्रा (रहित) और मुनज़्ज़ाह हैं, आला और अरफ़ाअ हैं।

لَا عِلْمَ لَنَآ اِلَّا مَا عَلَّمْتَنَا ؕ

"हमें कोई इल्म हासिल नहीं सिवाय उसके जो आपने हमें सिखा दिया है।"

इसकी यही ताबीर बेहतर मालूम होती है कि अल्लाह तआला की इस कायनाती हुकूमत में मलाइका की हैसियत दर हक़ीक़त उसके कारिन्दों (या Civil Servants) की है। चुनाँचे हर एक को सिर्फ़ उसके शौबे (क्षेत्र) के मुताल्लिक़ इल्म दिया गया है, उनका इल्म जामेअ नहीं है और उनके पास तमाम चीज़ों का मज्मुई इल्म हासिल करने की इस्तेअदाद
(क्षमता) नहीं है। मसलन कोई फ़रिश्ता बारिश के इन्तेज़ाम पर मामूर है, कोई पहाड़ों पर मामूर है, जिसका ज़िक्र सीरत में आता है कि जब ताईफ़ में रसूल अल्लाह ﷺ पर पथराव हुआ तो उसके बाद एक फ़रिश्ता हाज़िर हुआ कि मैं

मलाकुल जिबाल हूँ, अल्लाह ने मुझे पहाड़ों पर मामूर किया हुआ है, अगर आप ﷺ फ़रमायें तो मैं इन दो पहाड़ों को आपस में टकरा दूँ जिनके दरमियान ताईफ़ की यह वादी वाक़ेअ है और इस तरह अहले ताईफ़ पिस कर सुरमा बन जायें। आप ﷺ ने फ़रमाया कि नहीं, क्या अजब कि अल्लाह तआला इनकी आईन्दा नस्लों को हिदायत दे दे। तो फरिश्ते अल्लाह तआला की तरफ़ से मुख़्तलिफ़ ख़िदमात पर मामूर हैं और उनको जो इल्म दिया गया है वह सिर्फ़ उनके अपने फराइज़े मनसबी और उनके अपने-अपने शौबे से मुताल्लिक़ दिया गया है, जबकि हज़रत आदम (अलै०) को इल्म की जामियत बिलक़ुव्वा (Potentially) दे दी गयी, जो बढ़ते-बढ़ते अब एक बहुत तनावर दरख़्त बन चुका है।

اِنَّكَ اَنْتَ الْعَلِيْمُ الْحَكِيْمُ ﴿٣٢﴾

"यक़ीनन आप ही हैं जो सब कुछ जानने वाले कामिल हिकमत वाले हैं।"

आप ही की ज़ात है जो कुल के कुल इल्म की मालिक है और जिसकी हिकमत भी कामिल है। बाक़ी तो मख़लूक़ में से हर एक का इल्म नाक़िस (अधूरा) है।

आयत 33

قَالَ يٰۤاٰدَمُ اَنْۢبِئْهُمْ بِاَسْمَآىِٕهِمْ ۚ

"अल्लाह ने फ़रमाया कि ऐ आदम! इनको बताओ इन चीज़ों के नाम।"

فَلَمَّآ اَنۡۢبَاَهُمۡ بِاَسۡمَآىِٕهِمۡ ۙ

"तो जब उसने बता दिये उनको उन सबके नाम"

قَالَ اَلَمۡ اَقُلۡ لَّكُمۡ اِنِّىۡٓ اَعۡلَمُ غَيۡبَ السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضِ

"तो (अल्लाह ने) फ़रमाया: क्या मैंने तुमसे कहा ना था कि मैं जानता हूँ आसमानों और ज़मीन की तमाम छुपी हुई चीज़ों को"

जो तुम्हारी निगाहों से ओझल और मख़्फ़ी हैं।

مَا تُبۡدُوۡنَ وَمَا كُنۡتُمۡ تَكۡتُمُوۡنَ ۝٣٣

"और मैं जानता हूँ जो कुछ तुम ज़ाहिर कर रहे थे और जो कुछ तुम छुपा रहे थे।"

इन अल्फ़ाज़ से महसूस होता है कि फ़रिश्तों की ख़्वाहिश यह थी कि ख़िलाफ़त हमें मिले, हम खुद्दामे अदब हैं, हर वक़्त तस्बीह व तहमीद और तक़दीस में मसरूफ़ हैं, जो हुक्म मिलता है बजा लाते हैं, तो यह ख़िलाफ़त किसी और मख्लूक़ को क्यों दी जा रही है।

अब आगे चूँकि तीसरी मख्लूक़ का ज़िक्र भी आयेगा लिहाज़ा यहाँ नोट कर लीजिये कि अल्लाह तआला की तीन मख्लूक़ात ऐसी हैं जो साहिबे तशख्खुस (पहचान) और साहिबे शऊर हैं और जिनमें "अना" (मैं) का शऊर है। एक मलाका हैं, उनकी तख़्लीक़ नूर से हुई है। दूसरे इन्सान हैं, जिनकी तख़्लीक़ गारे से हुई है और तीसरे जिन्नात हैं,

जिनकी तख़्लीक़ आग से हुई है। बाक़ी हैवानात हैं, उनमें शऊर (consciousness) तो है, खुद शऊरी (self consciousness) नहीं है। इन्सान जब देखता है तो उसको यह भी मालूम होता है कि मैं देख रहा हूँ, जबकि कुत्ता या बिल्ला देखता है तो उसे यह अन्दाज़ा नहीं होता कि मैं देख रहा हूँ। हैवानात में "मैं" का शऊर नहीं है। यह अना, Self या Ego सिर्फ़ फ़रिश्तों में, इन्सान में और जिन्नात में है। इनमें से एक नूरी मख्लूक़ है, एक नारी मख्लूक़ है और एक ख़ाकी है, जो ज़मीन के इस क़शर (crust) में मिट्टी और पानी के मलगूबे यानि गारे से वजूद में आयी है।

आयत 34

وَاِذْ قُلْنَا لِلْمَلٰٓئِكَةِ اسْجُدُوْا لِاٰدَمَ فَسَجَدُوْٓا اِلَّآ اِبْلِيْسَ ؕ

"और याद करो जब हमने कहा फ़रिश्तों से कि सज्दा करो आदम को तो सब सज्दे में गिर पड़े सिवाय इब्लीस के।"

यहाँ एक बात तो यह समझिये कि आदम (अलै०) को तमाम मलाइका के सज्दे की ज़रूरत क्या थी? क्या यह सिर्फ़ ताज़ीमन था? और अगर ताज़ीमन था तो क्या आदमे ख़ाकी की ताज़ीम मक़सूद थी या किसी और शय की ताज़ीम थी? मक्की सूरतों मे यह बात दो जगह बाअल्फ़ाज़ वाज़ेह की गयी है: {فَاِذَا سَوَّيْتُهٗ وَنَفَخْتُ فِيْهِ مِنْ رُّوْحِيْ فَقَعُوْا لَهٗ سٰجِدِيْنَ} (अल हिज्र: 29 व सुआद:72) "फिर जब मैं इस (आदम) की तख़्लीक़ मुकम्मल कर लूँ और इसमें अपनी रूह में से फूँक दू

तब गिर पड़ना उसके सामने सज्दे में।” चुनाँचे ताज़ीम अगर है तो आदमे ख़ाकी की नहीं है, उसके अन्दर मौजूद “रूहे रब्बानी” की है, जो एक Divine Element या Divine Spark है, जिसे खुद ख़ालिक़ ने “मिन रूही” से ताबीर फ़रमाया है।

दूसरे यह कि इस सज्दे की हिकमत क्या है? इसकी इल्लत (कारण) और गरज़ (इरादा) व गायत (अंत) क्या है? जैसा कि मैंने अर्ज़ किया, इस कायनात यानि इस आफ़ाक़ी हुकूमत के कारिन्दे तो फ़रिश्ते हैं और ख़लीफ़ा बनाया जा रहा है इन्सान को। लिहाज़ा जब तक यह सारी सिविल सर्विस उसके ताबेअ ना हो जाये वह ख़िलाफ़त कैसे करेगा! जब हम किसी काम का इरादा करते हैं और कोई फ़अल करना चाहते हैं तो उस फ़अल के पूरा होने में, उसके ज़हूर पज़ीर होने में नामालूम कौन-कौन से अवामिल कारफ़रमा होते हैं और फ़ितरत की कौन-कौन सी क़ुव्वतें (forces) हमारे साथ मुवाफ़क़त (अनुकूलन) करती हैं तो हम वह काम कर सकते हैं, और उन सब पर फ़रिश्ते मामूर हैं। हर एक की अपनी अक़्लीम (domain) है। अगर वह इन्सान के ताबेअ ना हो तो ख़िलाफ़त के कोई मायने ही नहीं हैं। इसे ख़िलाफ़त दी गयी है, यह जिधर जाना चाहता है जाने दो, यह नमाज़ के लिये मस्जिद में जाना चाहता है जाने दो, यह चोरी के लिये निकला है निकलने दो। इन्सान को जो इख़्तियार दिया गया है उसके इस्तेमाल में यह तमाम क़ुव्वतें उसके साथ मुवाफ़क़त करती हैं तब ही उसका कोई इरादा, ख्वाह अच्छा हो या बुरा, पाये तकमील को पहुँच सकता है। इस

मुवाफ़क़त की अलामत के तौर पर तमाम फ़रिश्तों को इन्सान के आगे झुका दिया गया।

इस आयत में "اِلَّآ اِبۡلِيۡسَ" (सिवाय इब्लीस के) से यह मुगालता पैदा हो सकता है कि शायद इब्लीस भी फ़रिश्ता था। इसलिये कि सज्दे का हुक्म तो फ़रिश्तों को दिया गया था। इस मुगालते का इज़ाला (निवारण) सूरतुल कहफ़ में कर दिया गया जो सूरतुल बक़रह से बहुत पहले नाज़िल हो चुकी थी। वहाँ अल्फ़ाज़ आये हैं: {كَانَ مِنَ الۡجِنِّ فَفَسَقَ عَنۡ اَمۡرِ رَبِّهٖ} (आयत:50) "वह जिन्नों में से था, पस उसने सरकशी की अपने रब के हुक्म से।" फ़रिश्तों मे से होता तो नाफ़रमानी कर ही ना सकता। फ़रिश्तों की शान तो यह है कि वह अल्लाह के किसी हुक्म से सरताबी (हठधर्मी) नहीं कर सकते। अज़रूए अल्फ़ाज़ कुरानी: {لَّا يَعۡصُوۡنَ اللّٰهَ مَآ اَمَرَهُمۡ وَيَفۡعَلُوۡنَ مَا يُؤۡمَرُوۡنَ} (अल तहरीम:6) "वह अल्लाह के किसी हुक्म की नाफ़रमानी नहीं करते और जो हुक्म भी उन्हें दिया जाता है उसे बजा लाते हैं।" जिन्नात भी इन्सानों की तरह एक ज़ी इख़्तियार (सक्षम प्राधिकारी) मख़्लूक़ है जिसे ईमान-ओ-कुफ़्र और इताअत-ओ-माअसियत (आज्ञा व अवहेलना) दोनों की क़ुदरत बख़्शी गयी है। चुनाँचे जिन्नात में नेक भी हैं बद भी हैं, आला भी हैं, अदना भी हैं, जैसे इन्सानों में हैं। लेकिन यह "अज़ाज़ील" जो जिन्न था, इल्म व इबादत दोनों के ऐतबार से बहुत बुलन्द हो गया था और फ़रिश्तों का हमनशीन था। यह फ़रिश्तों के साथ इस तौर पर शामिल था जैसे बहुत से इन्सान भी अगर अपनी बन्दगी में, ज़ुहद में, नेकी में तरक़्क़ी करें तो उनका आलमे अरवाह

के साथ, आलमे मलाइका के साथ और मला-ए-आला के साथ एक राब्ता क़ायम होता है। इसी तरह अज़ाज़ील भी जिन्न होने के बावजूद अपनी नेकी, इबादत, पारसाई (धार्मिकता) और अपने इल्म में फ़रिश्तों से बहुत आगे था, इसलिये "मुअल्लिमुल मलाकूत" की हैसियत इख़्तियार कर चुका था और उसे अपनी इस हैसियत का बड़ा ज़अम (गुरूर) था।

जैसा कि अर्ज़ किया गया, क़ुरान हकीम में क़िस्सा आदम व इब्लीस के ज़िमन में यह बात सात मर्तबा आयी है कि फ़रिश्तों को हुक्म हुआ कि आदम को सज्दा करो, सब झुक गये मगर इब्लीस ने सज्दे से इन्कार कर दिया। आयत ज़ेरे मुतआला में क़िस्सा आदम व इब्लीस सातवीं मर्तबा आ रहा है। अगरचे मुसहफ़ में यह पहली मर्तबा आ रहा है लेकिन तरतीबे नुज़ूली के ऐतबार से यहाँ सातवीं मर्तबा आ रहा है। आदम व इब्लीस का यह क़िस्सा सूरतुल बक़रह के बाद सूरतुल आराफ़ में, फिर सूरतुल हिज्र में, फिर सूरह बनी इसराइल में, फिर सूरतुल कहफ़ में, फिर सूरह ताहा में और फिर सूरह सुआद में आयेगा। यानि यह क़िस्सा क़ुरान हकीम में छः मर्तबा मक्की सूरतों में आया है और एक मर्तबा मदनी सूरत सूरतुल बक़रह में आया है।

इब्लीस का असल नाम "अज़ाज़ील" था, इब्लीस अब इसका सिफ़ाती नाम है। इसलिये कि اَبۡلَسَ،يُبۡلِسُ के मायने होते हैं मायूस हो जाना। यह अल्लाह की रहमत से बिल्कुल मायूस है और जो अल्लाह की रहमत से मायूस हो जाये वह शैतान हो जाता है। वह सोचता है कि अब मेरा तो छुटकारा नहीं है, मेरी तो आक़बत (परिणाम) खराब हो ही चुकी है,

लिहाज़ा मैं अपने साथ और जितनों को बरबाद कर सकता हूँ कर लूँ। *"हम तो डूबे हैं सनम तुमको भी ले डूबेंगे!"* अब वह शैतान इस मायने में है कि इन्सान की अदावत (दुश्मनी) उसकी घुट्टी में पड़ गयी। उसने अल्लाह से इजाज़त भी ले ली कि मुझे मोहलत दे दे क़यामत के दिन तक के लिये {اِلٰی يَوۡمِ يُبۡعَثُوۡنَ} तो मैं साबित कर दूँगा कि यह आदम उस रुतबे का हक़दार ना था जो इसे दिया गया।

اَبٰى وَاسۡتَكۡبَرَ ۟

"उसने इन्कार किया और तकब्बुर किया।"

क़ुरान हकीम में दूसरे मक़ामात पर उसके यह अल्फ़ाज़ नक़ल हुए हैं: {اَنَا خَيۡرٌ مِّنۡهُ‌ۚ خَلَقۡتَنِىۡ مِنۡ نَّارٍ وَّخَلَقۡتَهٗ مِنۡ طِيۡنٍ} (अल आराफ़:12 व सुआद:76) "मैं उससे बेहतर हूँ, तूने मुझे आग से बनाया और उसे गारे से बनाया।" दर हक़ीक़त यही वह तकब्बुर है जिसने उसे रान्दाह दरगाहे हक़ कर दिया।

तकब्बुर अज़ाज़ील रा ख्वार कर्द, कि दर तौक़े लानत गिरफ्तार कर्द!

وَكَانَ مِنَ الۡكٰفِرِيۡنَ ۝٣٤

"और हो गया वह काफ़िरों में से।" या "और था वह काफ़िरों में से।"

كَانَ अरबी ज़बान में दो तरह का होता है: "ताम्मा" और "नाक़िसा।" كَانَ नाक़िसा के ऐतबार से यह मायने हो सकते हैं कि अपने उस इस्तकबार और इन्कार की वजह से वह काफ़िरों में से हो गया। जबकि كَانَ ताम्मा के ऐतबार से यह मायने होंगे कि वह था ही काफ़िरों में से। यानि उसके अन्दर

सरकशी छुपी हुई थी, अब ज़ाहिर हो गयी। ऐसा मामला कभी हमारे मुशाहिदे (अनुभव) में भी आता है कि किसी शख्स की बदनियती पर नेकी और ज़ुहद के परदे पड़े रहते हैं और किसी ख़ास वक़्त में आकर वह नंगा हो जाता है और उसकी बातिनी हक़ीक़त सामने आ जाती है।

आयत 35

وَقُلۡنَا يٰٓاٰدَمُ اسۡكُنۡ اَنۡتَ وَزَوۡجُكَ الۡجَنَّةَ

"और हमने कहा ऐ आदम! रहो तुम और तुम्हारी बीवी जन्नत में"

सवाल पैदा होता है कि यह जन्नत कौनसी है? अक्सर हज़रात के नज़दीक यह जन्नत कहीं आसमान ही में थी और आसमान ही में हज़रत आदम (अलै०) की तख़्लीक़ हुई। अलबत्ता यह सब मानते हैं कि यह वह जन्नतुल फ़िरदौस नहीं थी जिसमें जाने के बाद निकलने का कोई सवाल नहीं। उस जन्नत में तो आख़िरत में लोगों को जाकर दाखिल होना है और उसमें दाखिले के बाद फिर वहाँ से निकलने का कोई इम्कान नहीं है। एक राय यह भी है, और मेरा रुझान इसी राय की तरफ है, कि तख़्लीक़े आदम (अलै०) इसी ज़मीन पर हुई है। वह तख़्लीक़ जिन मराहिल से गुज़री वह इस वक़्त हमारा मौज़ू-ए-बहस नहीं है। बायोलॉजी और वही दोनों इस पर मुत्तफिक़ हैं कि क़शरे अर्ज़ (Crust of the Earth) यानि मिट्टी से इन्सान की तख़्लीक़ हुई है। इसके बाद किसी ऊँचे मक़ाम पर किसी सरसब्ज़ व शादाब इलाक़े

में हज़रत आदम (अलै०) को रखा गया, जहाँ हर क़िस्म के मेवे थे, हर शय बाफ़रागत (आराम से) मयस्सर थी। अज़रूए अल्फ़ाज़ क़ुरानी (सूरह ताहा):

اِنَّ لَكَ اَلَّا تَجُوْعَ فِيْهَا وَلَا تَعْرٰى ﴿١١٨﴾ وَاَنَّكَ لَا تَظْمَؤُا فِيْهَا وَلَا تَضْحٰى ﴿١١٩﴾

"यहाँ तुम्हारे लिये यह आसाईशें (सुविधायें) मौजूद हैं कि ना तुम्हें इसमें भूख लगेगी ना उरयानी (नग्नता) लाहक़ होगी। और यह कि ना तुम्हें इसमें प्यास तंग करेगी ना धूप सतायेगी।"

हज़रत आदम (अलै०) और उनकी बीवी को वहाँ हर तरह की आसाईशें हासिल थीं। अलबत्ता यह जन्नत यह सिर्फ़ एक demonstration के लिये थी कि उन्हें नज़र आ जाये कि शैतान उनका और उनकी औलाद का अज़ली (अनन्त काल से) दुश्मन है, वह उन्हें वरगलायेगा और तरह-तरह से वसवसा अन्दाज़ी करेगा। इसकी मिसाल यूँ समझिये कि किसी शख्स का इन्तख़ाब तो हो गया और वह CSP cadre में आ गया, लेकिन उसकी तैनाती (Posting) से पहले उसे सिविल सर्विस अकेडमी में ज़ेरे तरतीब रखा जाता है। वाज़ेह रहे कि यहाँ जो लफ्ज़ هبوط (उतरना) आ रहा है वह सिर्फ़ इसी एक मायने में नहीं आता, इसके दूसरे मायने भी हैं। यह चीज़ें फिर मुतशाबेहात में से रहेंगी। इसलिये इनके बारे में ग़ौरो फिक्र से कोई एक या दूसरी राय इख़्तियार की जा सकती है। वल्लाहु आलम!

وَكُلَا مِنْهَا رَغَدًا حَيْثُ شِئْتُمَا ۖ

"और खाओ इसमें से बाफ़रागत (आराम से) जहाँ से चाहो।"

यहाँ हर तरह के फल मौजूद हैं, जो चाहो बिला रोक-टोक खाओ।

وَلَا تَقْرَبَا هٰذِهِ الشَّجَرَةَ

"मगर उस दरख़्त के क़रीब मत जाना।"

यहाँ पर उस दरख़्त का नाम नहीं लिया गया, इशारा कर दिया गया कि उस दरख़्त के क़रीब भी मत जाना।

فَتَكُوْنَا مِنَ الظّٰلِمِيْنَ ﴿٣٥﴾

"वरना तुम ज़ालिमों में से हो जाओगे।"

तुम हद से गुज़रने वालों में से शुमार होगे।

अब इसकी भी हिकमत समझिये कि यह उस demonstration का हिस्सा है कि दुनिया में खाने-पीने की हज़ारों चीज़ें मुबाह (permissible) हैं, सिर्फ़ चन्द चीज़ें हराम हैं। अब अगर तुम हज़ारों मुबाह चीज़ों को छोड़ कर हराम में मुँह मारते हो तो यह नाफ़रमानी शुमार होगी। अल्लाह ने मुबाहात का दायरा बहुत वसी रखा है। चन्द रिश्ते हैं जो बयान कर दिये गये कि यह हराम हैं, मुहर्रमाते अब्दिया हैं, इनसे तो शादी नहीं हो सकती, बाक़ी एक मुस्लमान मर्द किसी मुस्लमान औरत से दुनिया के किसी भी कोने में शादी कर सकता है, उसके लिये करोड़ों options

खुले हैं। फिर एक नहीं, दो-दो, तीन-तीन, चार-चार तक औरतों से शादी की इजाज़त दी गयी है। इसके बावजूद इन्सान शादी ना करे और ज़िना करे, तो यह गोया उसकी अपनी खबासते नफ्स है। चुनाँचे आदम व हव्वा (अलै०) को बता दिया गया कि यह पूरा बाग़ तुम्हारे लिये मुबाह है, बस यह एक दरख़्त है, उसके पास ना जाना। दरख़्त का नाम लेने की कोई ज़रूरत नहीं थी। यह तो सिर्फ़ एक आज़माईश और उसकी demonstration थी।

आयत 36

فَاَزَلَّهُمَا الشَّيْطٰنُ عَنْهَا

"फिर फिसला दिया उन दोनों को शैतान ने उस दरख़्त के बारे में"

इसकी तफ़सील सूरह ताहा में आयी है कि शैतान ने उन्हें किस-किस तरीक़े से फिसलाया और उन्हें उस दरख़्त का फल चखने पर आमादा किया।

فَاَخْرَجَهُمَا مِمَّا كَانَا فِيْهِ ۠

"तो निकलवा दिया उन दोनों को उस कैफ़ियत में से जिसमें वह थे।"

वह क्या कैफ़ियत थी कि ना कोई मशक़्क़त है, ना कोई मेहनत है और इन्सान को हर तरह का अच्छे से अच्छा फल मिल रहा है, तमाम ज़रूरियात फ़राहम (प्रदान) हैं और ख़ास ख़लअते फ़ाख़रह (आलीशान पहनावे) से भी नवाज़ा गया है, जन्नत का खास लिबास अता किया गया है। लेकिन इन कैफ़ियात से निकाल कर उन्हें कहा गया कि अच्छा अब

जाओ और ज़िन्दगी के तल्ख हक़ाइक़ का सामना करो। याद रखना कि शैतान तुम्हारा और तुम्हारी नस्ल का दुश्मन है और वह तुम्हें फिसलायेगा जैसे आज फिसलाया है, तुम उसकी शरारतों से होशियार रहना: {اِنَّ الشَّيْطٰنَ لَكُمْ عَدُوٌّ فَاتَّخِذُوْهُ عَدُوًّا} (फ़ातिर:6) "यक़ीनन शैतान तुम्हारा दुश्मन है, इसलिये तुम भी उसे अपना दुश्मन ही समझो।" लेकिन अगर कुछ लोग उसे अपना दोस्त बना लें और उसके एजेन्ट और कारिन्दे बन जायें तो यह उनका इख़्तियार है जिसकी सज़ा उन्हें मिलेगी।

وَقُلْنَا اهْبِطُوْا بَعْضُكُمْ لِبَعْضٍ عَدُوٌّ ۚ

"और हमने कहा तुम सब उतरो, तुम एक-दूसरे के दुश्मन हो गये।"

नोट कीजिये यहाँ जमा का सीगा आया है कि तुम एक-दूसरे के दुश्मन हो गये। तो एक दुश्मनी तो शैतान और आदम और ज़ुर्रियते (औलाद) आदम की है, जबकि एक और दुश्मनी इन्सानों में मर्द और औरत के माबैन है। औरत मर्द को फिसलाती है और गलत रास्ते पर ड़ालती है और मर्द औरतों को गुमराह करते हैं। क़ुरान मजीद में फ़रमाया गया है: {يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِنَّ مِنْ اَزْوَاجِكُمْ وَاَوْلَادِكُمْ عَدُوًّا لَّكُمْ فَاحْذَرُوْهُمْ ۚ} (सूरह तगाबुन:14) "ऐ अहले ईमान! यक़ीनन तुम्हारी बीवियों और तुम्हारी औलाद में तुम्हारे दुश्मन हैं, इनसे होशियार रहो।" कहीं इनकी मोहब्बत तुम्हें राहे हक़ से मुनहरिफ़ (गुमराह) ना कर दे। शौहर एक अच्छा काम करना चाहता है लेकिन बीवी रुकावट बन गयी या

बीवी कोई अच्छा काम करना चाहती है और शौहर रुकावट बन गया तो यह मोहब्बत नहीं अदावत है।

وَلَكُمْ فِي الْأَرْضِ مُسْتَقَرٌّ وَّمَتَاعٌ إِلَىٰ حِينٍ ﴿٣٦﴾

"और तुम्हारे लिये अब ज़मीन में ठिकाना है और नफ़ा उठाना है एक ख़ास वक़्त तक।"

अब ज़मीन तुम्हारी जाये क़याम है और यहाँ ज़रूरत की तमाम चीज़ें हमने फ़राहम कर दी हैं, लेकिन यह एक वक़्ते मुअय्यन तक के लिये है, यह अब्दी (हमेशा के लिये) नहीं है, एक वक़्त आयेगा कि हम यह बिसात लपेट देंगे। {يَوْمَ نَطْوِي السَّمَاءَ كَطَيِّ السِّجِلِّ لِلْكُتُبِ ۚ} (सूरह अम्बिया:104) "जिस दिन कि हम तमाम आसमानों को इस तरह लपेट लेंगे जैसे औवराक़ का तूमार (कागज़ों का स्क्रॉल) लपेट लिया जाता है।" यह तख़्लीक़ अब्दी नहीं है, "إِلَىٰ أَجَلٍ مُّسَمًّى" है "إِلَىٰ حِينٍ" है।

आयत 37

فَتَلَقَّىٰ آدَمُ مِن رَّبِّهِ كَلِمَاتٍ فَتَابَ عَلَيْهِ ۚ

"फिर सीख लिये आदम ने अपने रब से चन्द कलिमात, तो अल्लाह ने उसकी तौबा क़ुबूल कर ली।"

इसकी वज़ाहत सूरतुल आराफ़ में है। जब हज़रत आदम (अलै०) ने अल्लाह तआला का हुक्मे अताब आमेज़

(अपमानजनक दोष) सुना और जन्नत से बाहर आ गये तो सख़्त पशेमानी (पछतावा) और नदामत (लज्जा) पैदा हुई कि यह मैंने क्या किया, मुझसे कैसी ख़ता सरज़द हो गयी कि मैंने अल्लाह के हुक्म की खिलाफ वर्ज़ी कर डाली। लेकिन उनके पास तो तौबा व इस्तगफ़ार के लिये अल्फ़ाज़ नहीं थे। वह नहीं जानते थे कि किन अल्फ़ाज़ में अल्लाह तआला से माफी चाहें। अल्लाह की रहमत यह हुई कि उसने अल्फ़ाज़ उन्हें खुद तल्क़ीन फ़रमा दिये। यह अल्लाह की शाने रहीमी है। तौबा की असल हक़ीक़त इन्सान के अन्दर गुनाह पर नदामत का पैदा हो जाना है। इक़बाल ने अन्फ़वाने शबाब में जो अशआर कहे थे उनमें से एक शेर को सुन कर उस वक़्त के उस्ताज़ाह भी फड़क उठे थे:

मोती समझ के शाने करीमी ने चुन लिये क़तरे जो थे मेरे अर्क़े इन्फ़िआल के!

यानि शर्मिन्दगी के बाइस मेरी पेशानी पर पसीने के जो क़तरे नमूदार (हाज़िर) हो गये मेरे परवरदिगार को वह इतने अज़ीज़ हुए कि उसने उन्हें मोतियों की तरह चुन लिया। हज़रत आदम व हव्वा अलै० को जब अपनी गलती पर नदामत हुई तो गिरया व ज़ारी (शोक-विलाप) में मशगूल हो गये। इस हालत में अल्लाह तआला ने अपनी रहमत से उन्हें चन्द कलिमात इलक़ा फ़रमाये (सिखाये) जिनसे उनकी तौबा क़ुबूल हुई। वह कलिमात सूरतुल आराफ़ में बयान हुए हैं: {رَبَّنَا ظَلَمْنَآ اَنْفُسَنَا ۫ وَاِنْ لَّمْ تَغْفِرْ لَنَا وَتَرْحَمْنَا لَنَكُوْنَنَّ مِنَ الْخٰسِرِيْنَ} (आयत:23) “ऐ हमारे रब! हमने अपनी जानों पर ज़ुल्म किया है, और अगर तूने हमें बख़्श

ना दिया और हम पर रहम ना फ़रमाया तो हम ज़रूर ख़सारा पाने वालों में हो जायेंगे।" तबाह व बर्बाद हो जायेंगे।

इस मक़ाम पर शैतानियत और आदमियत का फ़ौरी तक़ाबुल मौजूद है। गलती इब्लीस से भी हुई, अल्लाह के हुक्म से सरताबी हुई, लेकिन उसे उस पर नदामत नहीं हुई बल्कि वह तकब्बुर की बिना पर मज़ीद अड़ गया कि "اَنَا خَيۡرٌ مِّنۡهُ" और सरकशी का रास्ता इख़्तियार किया। दूसरी तरफ़ गलती आदम से भी हुई, नाफ़रमानी हुई, लेकिन वह उस पर पशेमान हुए और तौबा की। वह तर्ज़े अमल शैतानियत है और यह आदमियत है। वरना कोई इन्सान गुनाह से और माअसियत (गलती) से मुबर्रा (वंचित) नहीं है। रसूल अल्लाह ﷺ की एक हदीस है: ((كُلُّ بَنِیۡ آدَمَ خَطَّاءٌ وَ خَيۡرُ الۡخَطَّائِيۡنَ التَّوَّابُوۡنَ))(5) "आदम (अलै०) की तमाम औलाद ख़ताकार है, और उन ख़ताकारो में बेहतर वह हैं जो तौबा कर लें।" हज़रत आदम (अलै०) से गलती हुई। उन्हें उस पर नदामत हुई, उन्होंने तौबा की तो अल्लाह तआला ने उनकी तौबा क़ुबूल फ़रमा ली।

اِنَّهٗ هُوَ التَّوَّابُ الرَّحِیۡمُ ﴿۳۷﴾

"यक़ीनन वही तो है तौबा का बहुत क़ुबूल करने वाला, बहुत रहम फ़रमाने वाला।"

तौबा का लफ्ज़ दोनों तरफ़ से आता है। बन्दा भी तव्वाब है। अज़रूए अल्फ़ाज़े क़ुरानी: {اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ التَّوَّابِيۡنَ وَيُحِبُّ الۡمُتَطَهِّرِيۡنَ} (सूरतुल बक़रह:222) जबकि तव्वाब अल्लाह

तआला भी है। इसकी असल हक़ीक़त समझ लीजिये। बन्दे ने ख़ता की और अल्लाह से दूर हो गया तो अल्लाह ने अपनी रहमत की निगाह उससे फेर ली। बन्दे ने तौबा की तो अल्लाह फिर अपनी रहमत के साथ उसकी तरफ मुतवज्जा हो गया। तौबा के मायने हैं पलटना। बन्दा माअसियत से तौबा करके अपनी इस्लाह की तरफ़, बन्दगी की तरफ़, इताअत की तरफ़ पलट आया, और अल्लाह ने जो अपनी नज़रे रहमत बन्दे से फेर ली थी, फिर अपनी शाने गफ्फ़ारी और रहीमी के साथ बन्दे की तरफ़ तवज्जो फ़रमा ली। इसके लिये हदीस में अल्फ़ाज़ आते हैं:

((.... وَاِنْ تَقَرَّبَ اِلَیَّ بِشِبْرٍ تَقَرَّبْتُ اِلَیْهِ ذِرَاعًا وَاِنْ تَقَرَّبَ اِلَیَّ
ذِرَاعًا تَقَرَّبْتُ اِلَیْهِ بَاعًا، وَاِنْ اَتَانِیْ یَمْشِیْ اَتَیْتُهٗ هَرْوَلَةً))[6]

".....और अगर वह (मेरा बन्दा) बालिश्त भर मेरी तरफ़ आता है तो मैं हाथ भर उसकी तरफ़ आता हूँ, और अगर वह हाथ भर मेरी तरफ़ आता है तो मैं दो हाथ उसकी तरफ़ आता हूँ, और अगर वह चल कर मेरी तरफ़ आता है तो मैं दौड़ कर उसकी तरफ़ आता हूँ।"

हम तो माइल बा करम है कोई साइल ही नहीं
राह दिखलायें किसे राह रवे मंज़िल ही नहीं!

वह तो तव्वाब है। बस फ़र्क़ यह है कि "تَابَ" बन्दे के लिये आयेगा तो "اِلٰی" के सिला के साथ आयेगा। जैसे: {اِنِّیْ تُبْتُ اِلَیْكَ} और जब अल्लाह के लिये आयेगा तो "عَلٰی" के सिला के साथ "تَابَ عَلٰی" आयेगा, जैसे आयत ज़ेरे मुतआला में

आया: { فَتَابَ عَلَيۡهِ }। अल्लाह की शान बहुत बुलन्द है। इन्सान तौबा करता है तो उसकी तरफ़ तौबा करता है, जबकि अल्लाह की शान यह है कि वह बन्दे पर तौबा करता है।

आयत 38

"हमने कहा: तुम सबके सब यहाँ से उतर जाओ।"

قُلۡنَا اهۡبِطُوۡا مِنۡهَا جَمِيۡعًا ۚ

अब यहाँ लफ्ज़ "اهۡبِطُوۡا" आया है जो इससे पहले भी आया है। जो हज़रात यह समझते हैं कि तख़्लीक़े आदम (अलै०) आसमानों पर हुई है और वह जन्नत भी आसमानों पर ही थी जहाँ हज़रत आदम (अलै०) आज़माइश या तरबियत के लिये रखे गये थे वह "اهۡبِطُوۡا" का तर्जुमा करेंगे कि उन्हें आसमान से ज़मीन पर उतरने का हुक्म दिया गया। लेकिन जो लोग समझते हैं कि हज़रत आदम (अलै०) को ज़मीन पर ही किसी बुलन्द मक़ाम पर रखा गया था वह कहते हैं कि "اهۡبِطُوۡا" से मुराद बुलन्द जगह से नीचे उतरना है ना कि आसमान से ज़मीन पर उतरना। वह वह आज़माइशी जन्नत किसी ऊँची सतह मरतफ़अ (पठार) पर थी। वहाँ पर हुक्म दिया गया कि नीचे उतरो और जाओ, अब तुम्हें ज़मीन में हल चलाना पड़ेगा और रोटी हासिल करने के लिये मेहनत करना पड़ेगी। यह नेअमतों के दस्तरख्वान जो यहाँ बिछे हुए

थे अब तुम्हारे लिये नहीं हैं। इस मायने में इस लफ़्ज़ का इस्तेमाल इसी सूरतुल बक़रह के सातवें रुकूअ में हुआ है: {اِهۡبِطُوۡا مِصۡرًا فَاِنَّ لَكُمۡ مَّا سَاَلۡتُمۡ} (आयत:61)

فَاِمَّا يَاۡتِيَنَّكُمۡ مِّنِّىۡ هُدًى فَمَنۡ تَبِعَ هُدَاىَ فَلَا خَوۡفٌ عَلَيۡهِمۡ وَلَا هُمۡ يَحۡزَنُوۡنَ ۝٣٨

"तो जब भी आये तुम्हारे पास मेरी जानिब से कोई हिदायत, तो जो लोग मेरी उस हिदायत की पैरवी करेंगे उनके लिये ना कोई खौफ़ होगा और ना वह हुज़्न से दो-चार होंगे।"

यह है इल्मे इन्सानी का दूसरा गोशा, यानि इल्म बिलवही (Revealed Knowledge)। इस चौथे रुकूअ का हुस्न मुलाहिज़ा कीजिये कि इसके शुरू में इल्म बिलहवास या इकतसाबी इल्म (Acquired Knowledge) का ज़िक्र है जो बिलक़ुव्वा (Potentially) हज़रत आदम (अलै०) में रख दिया गया और जिसे इन्सान ने फिर अपनी मेहनत से, अपने हवास और अक़्ल के ज़रिये से आगे बढ़ाया। यह इल्म मुसलसल तरक़्क़ी पज़ीर है और आज मग़रबी अक़वाम इसमें हमसे बहुत आगे हैं। कभी एक ज़माने में मुस्लमान बहुत आगे निकल गये थे, लेकिन ज़ाहिर है कि इस दुनिया में उरूज तो उन्हीं को होगा जिन्हें सबसे ज़्यादा उसकी आगही (जागरूकता) हासिल होगी। अलबत्ता वह इल्म जो आसमान से नाज़िल होता है वह अताई (given) है, जो वही पर मब्नी है। और इन्सान के मक़ामे ख़िलाफ़त का तक़ाज़ा यह है कि अल्लाह तआला के जो अहकाम उसके

पास आयें, वह जो हिदायात भी भेजे उनकी पूरे-पूरे तौर पर पैरवी करे। अल्लाह तआला ने वाज़ेह फ़रमा दिया कि जो लोग मेरी इस हिदायत की पैरवी करेंगे उनके लिये किसी खौफ़ और रंज का मौक़ा ना होगा।

आयत 39

وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْا

"और जो कुफ़्र करेंगे"

हमारी इस हिदायत को क़ुबूल करने से इन्कार करेंगे, नाशुक्री करेंगे।

وَكَذَّبُوْا بِاٰيٰتِنَآ

"और हमारी आयात को झुठलायेंगे।"

اُولٰۤىِٕكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ﴿٣٩﴾

"वह आग वाले (जहन्नमी) होंगे, उसमें वह हमेशा-हमेश रहेंगे।"

यह गोया अल्लाह तआला की तरफ़ से नौए इन्सानी को अब्दी मन्शूर (charter) अता कर दिया गया जब ज़मीन पर ख़लीफ़ा की हैसियत से इन्सान का तक़र्रुर (नियुक्ति) किया गया।

जैसा कि पहले अर्ज़ किया जा चुका है, सूरतुल बक़रह के यह इब्तदाई चार रुकूअ क़ुरान की दावत और क़ुरान के बुनियादी फ़लसफ़े पर मुश्तमिल हैं, और इनमें मक्की सूरतों के मज़ामीन का खुलासा आ गया है।

आयात 40 से 46 तक

يٰبَنِىۡٓ اِسۡرَآءِيۡلَ اذۡكُرُوۡا نِعۡمَتِىَ الَّتِىۡٓ اَنۡعَمۡتُ عَلَيۡكُمۡ
وَاَوۡفُوۡا بِعَهۡدِىۡٓ اُوۡفِ بِعَهۡدِكُمۡ ۚ وَاِيَّاىَ فَارۡهَبُوۡنِ
﴿۴۰﴾ وَاٰمِنُوۡا بِمَآ اَنۡزَلۡتُ مُصَدِّقًا لِّمَا مَعَكُمۡ وَلَا
تَكُوۡنُوۡٓا اَوَّلَ كَافِرٍۢ بِهٖ ۖ وَلَا تَشۡتَرُوۡا بِاٰيٰتِىۡ ثَمَنًا قَلِيۡلًا
وَاِيَّاىَ فَاتَّقُوۡنِ ﴿۴۱﴾ وَلَا تَلۡبِسُوا الۡحَقَّ بِالۡبَاطِلِ
وَتَكۡتُمُوا الۡحَقَّ وَاَنۡتُمۡ تَعۡلَمُوۡنَ ﴿۴۲﴾ وَاَقِيۡمُوا الصَّلٰوةَ
وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ وَارۡكَعُوۡا مَعَ الرّٰكِعِيۡنَ ﴿۴۳﴾ اَتَاۡمُرُوۡنَ
النَّاسَ بِالۡبِرِّ وَتَنۡسَوۡنَ اَنۡفُسَكُمۡ وَاَنۡتُمۡ تَتۡلُوۡنَ
الۡكِتٰبَ ؕ اَفَلَا تَعۡقِلُوۡنَ ﴿۴۴﴾ وَاسۡتَعِيۡنُوۡا بِالصَّبۡرِ
وَالصَّلٰوةِ ؕ وَاِنَّهَا لَكَبِيۡرَةٌ اِلَّا عَلَى الۡخٰشِعِيۡنَ ﴿۴۵﴾
الَّذِيۡنَ يَظُنُّوۡنَ اَنَّهُمۡ مُّلٰقُوۡا رَبِّهِمۡ وَاَنَّهُمۡ اِلَيۡهِ
رٰجِعُوۡنَ ﴿۴۶﴾

अब यहाँ से बनी इसराइल से ख़िताब शुरू हो रहा है। यह ख़िताब पाँचवें रुकूअ से चौदहवें रुकूअ तक, मुसलसल

दस रुकूआत पर मुहीत (फैला हुआ) है। अलबत्ता इनमें एक तक़सीम है। पहला रुकूअ दावत पर मुश्तमिल है, और जब किसी गिरोह को दावत दी जाती है तो तशवीक़ व तरग़ीब (प्रोत्साहन), दिलजोई और नर्मी का अन्दाज़ इख़्तियार किया जाता है, जो दावत के अज्ज़ा-ए-ला यनफ़क (अभिन्न अंग) हैं। इस अन्दाज़ के बग़ैर दावत मौअस्सर (प्रभावी) नहीं होती। यूँ समझ लीजिये कि यह सात आयात (पाँचवा रुकूअ) इन दस रुकूओं के लिये बमंज़िला-ए-फ़ातिहा है। बनी इसराइल की हैसियत साबक़ा उम्मते मुस्लिमा की थी, जिनको यहाँ दावत दी जा रही है। वह भी मुस्लमान ही थे, लेकिन मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ का इन्कार करके काफ़िर हो गये। वरना वह हज़रत मूसा (अलै०) के मानने वाले थे, शरीअत उनके पास थी, बड़े-बड़े उलमा उनमें थे, इल्म का चर्चा उनमें था। गर्ज़ यह कि सब कुछ था। यहाँ उनको दावत दी जा रही है। इससे हमें यह रहनुमाई मिलती है कि आज मुस्लमानों में, जो अपनी हक़ीक़त को भूल गये हैं, अपने फर्ज़े मन्सबी से ग़ाफ़िल हो गये हैं और दुनिया की दीग़र क़ौमों की तरह एक क़ौम बन कर रह गये हैं, अगर कोई एक दाई गिरोह खड़ा हो तो ज़ाहिर बात है सबसे पहले उसे इसी उम्मत को दावत देनी होगी। इसलिये कि दुनिया तो इस्लाम को इसी उम्मत के हवाले से पहचानेगी (Physician heals thyself)। पहले यह खुद ठीक हो और सही इस्लाम का नमूना पेश करे तो दुनिया को दावत दे सकेगी कि आओ देखो यह है इस्लाम! चुनाँचे उनको दावत देने का जो असलूब होना चाहिये वह इस असलूब का अक्स होगा जो इन सात आयात में हमारे सामने आयेगा।

आयत 40

يٰبَنِيْٓ اِسْرَاۗءِيْلَ اذْكُرُوْا نِعْمَتِيَ الَّتِيْٓ اَنْعَمْتُ عَلَيْكُمْ

"ऐ बनी इसराइल! याद करो मेरे उस ईनाम को जो मैंने तुम पर किया"

"बनी इसराइल" की तरकीब को समझ लीजिये कि यह मुरक्कबे इज़ाफ़ी है। "अस्र" का मायना है बन्दा या गुलाम। इसी से "असीर" बना है जो किसी का क़ैदी होता है। और लफ्ज़ "ईल" इब्रानी में अल्लाह के लिये आता है। चुनाँचे बनी इसराइल का तुर्जमा होगा "अब्दुल्लाह" यानि अल्लाह का गुलाम, अल्लाह की इताअत के क़लादे के अन्दर बंधा हुआ। "इसराइल" लक़ब है हज़रत याक़ूब (अलै०) का। उनके बारह बेटे थे और उनसे जो नस्ल चली वह बनी इसराइल है। उन्ही में हज़रत मूसा (अलै०) की बेअसत हुई और उन्हें तौरात दी गयी। फिर यह एक बहुत बड़ी उम्मत बने। क़ुरान मजीद के नुज़ूल के वक़्त तक उन पर उरूज व ज़वाल के चार अदवार (काल) आ चुके थे। दो मर्तबा उन पर अल्लाह तआला की रहमत की बारिशें हुईं और उन्हें उरूज नसीब हुआ, जबकि दो मर्तबा दुनिया परस्ती, शहवत परस्ती और अल्लाह के अहकाम को पसे पुश्त (पीठ पीछे) डाल देने की सज़ा में उन पर अल्लाह के अज़ाब के कोड़े बरसे। इसका ज़िक्र सूरह बनी इसराइल के पहले रुकूअ में आयेगा। उस वक़्त जबकि क़ुरान नाज़िल हो रहा था वह अपने इस ज़वाल के दौर में थे। हाल

यह था कि मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की बेअसत से पहले ही उनका “मअबूदे सानी” (Second Temple) भी मुनहदिम (ध्वस्त) किया जा चुका था। हज़रत सुलेमान (अलै०) ने जो हैकले सुलेमानी बनाया था, जिसको यह “मअबूदे अव्वल” (First Temple) कहते हैं, उसे बख्तनसर (Nebukadnezar) ने हज़रत मसीह से भी छः सौ साल पहले गिरा दिया था। उसे उन्होंने दोबारा तामीर किया था जो “मअबूदे सानी” कहलाता था। लेकिन 70 ई० में मुहम्मदे अरबी ﷺ की विलादत से पाँच सौ साल पहले रोमियों ने हमला करके येरूशलम को तबाह व बरबाद कर दिया, यहूदियों का क़त्ले आम किया और जो “मअबूदे सानी” उन्होंने तामीर किया था उसे भी मसमार (विध्वंस) कर दिया, जो अब तक गिरा पड़ा है, सिर्फ़ एक दीवारे गिरया (Veiling Wall) बाक़ी है जिसके पास जाकर यहूदी मातम और गिरया व ज़ारी कर लेते हैं, और अब वह उसे सेबारा (तीसरी बार) बनाने पर तुले हुए हैं। चुनाँचे उनके “मअबूदे सालिस” (Third Temple) के नक़्शे बन चुके हैं, उसका इब्तदाई ख़ाका तैयार हो चुका है। बहरहाल जिस वक़्त क़ुरान नाज़िल हो रहा था उस वक़्त यह बहुत ही पस्ती में थे। उस वक़्त उनसे फ़रमाया गया: “ऐ बनी इसराइल! ज़रा याद करो मेरे उस ईनाम को जो मैंने तुम पर किया था।” वह ईनाम क्या है? मैंने तुमको अपनी किताब दी, नबुवत से सरफ़राज़ फ़रमाया, अपनी शरीअत तुम्हें अता फ़रमायी। तुम्हारे अन्दर दाऊद और सुलेमान (अलै०) जैसे बादशाह उठाये, जो बादशाह भी थे, नबी भी थे।

وَاَوۡفُوۡا بِعَهۡدِىۡۤ اُوۡفِ بِعَهۡدِكُمۡ‌ۚ

"और तुम मेरे वादे को पूरा करो ताकि मैं भी तुम्हारे वादे को पूरा करूँ।"

बनी इसराइल से नबी आखिरुज़्ज़माँ हज़रत मुहम्मद ﷺ पर ईमान लाने का अहद लिया गया था। तौरात में किताबे इस्तस्ना या सफर-ए-इस्तस्ना (Deuteronomy) के अट्ठारवें बाब की आयत 18-19 में अल्लाह तआला ने हज़रत मूसा (अलै०) से ख़िताब करके यह अल्फ़ाज़ फ़रमाये:

"मैं उनके लिये उन्हीं के भाईयों में से तेरी मानिन्द एक नबी बरपा करूँगा और अपना कलाम उसके मुँह में डालूँगा और जो कुछ मैं उसे हुक्म दूँगा वही वह उनसे कहेगा। और जो कोई मेरी उन बातों को जिनको वह मेरा नाम लेकर कहेगा, ना सुने तो मैं उनका हिसाब उससे लूँगा।"

यह गोया हज़रत मूसा (अलै०) की उम्मत को बताया जा रहा था कि नबी आखिरुज़्ज़माँ (ﷺ) आयेंगे और तुम्हें उनकी नबुवत को तस्लीम करना है। क़ुरान मजीद में इसका तफ्सीली ज़िक्र सूरतुल आराफ़ में आयेगा। यहाँ फ़रमाया कि तुम मेरा अहद पूरा करो, मेरे इस नबी ﷺ को तस्लीम करो, उस (ﷺ) पर ईमान लाओ, उसकी (ﷺ) की सदा पर लब्बैक कहो तो मेरे ईनाम व इकराम मज़ीद बढ़ते चले जायेंगे।

وَاِيَّاىَ فَارۡهَبُوۡنِ ۝۴۰

"और सिर्फ़ मुझ ही से डरो।"

आयत 41

وَاٰمِنُوْا بِمَآ اَنْزَلْتُ مُصَدِّقًا لِّمَا مَعَكُمْ

"और ईमान लाओ उस किताब पर जो मैंने नाज़िल की है जो तस्दीक़ करते हुए आयी है उस किताब की जो तुम्हारे पास है"

इन अल्फ़ाज़ के दो मायने हैं। एक तो यह कि ईमान लाओ इस क़ुरान पर जो तस्दीक़ करता है तौरात की और इन्जील की। अज़रूए अल्फ़ाज़े क़ुरानी: { اِنَّآ اَنْزَلْنَا التَّوْرٰىةَ فِيْهَا هُدًى وَّنُوْرٌ } (सूरतुल मायदा:44) "हमने नाज़िल की तौरात जिसमें हिदायत और रोशनी थी।" { وَاٰتَيْنٰهُ الْاِنْجِيْلَ فِيْهِ هُدًى وَّنُوْرٌ } (सूरतुल मायदा:46) "और हमने उस (ईसा अलै०) को दी इन्जील जिसमें हिदायत और रोशनी थी।" और दूसरे यह कि क़ुरान और मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ उन पेशनगोईयों के मिस्दाक़ बन कर आये हैं जो तौरात में थीं। वरना वह पेशनगोईयाँ झूठी साबित होती।

وَلَا تَكُوْنُوْٓا اَوَّلَ كَافِرٍۢ بِهٖ ۠

"और तुम ही सबसे पहले इसका कुफ़्र करने वाले ना बन जाओ।"

यानि क़ुरान की दीदाह व दानिस्ता (जानबूझ कर) तकज़ीब करने वालो में अव्वल मत हो। तुम्हें तो सब कुछ मालूम है। तुम जानते हो कि हज़रत मुहम्मद ﷺ अल्लाह के रसूल

हैं और यह किताब अल्लाह की तरफ़ से नाज़िल हुई है। तुम तो आखरी नबी ﷺ के इन्तेज़ार में थे और उनके हवाले से दुआयें किया करते थे कि ऐ अल्लाह! उस नबी आखिरुज़्ज़मान के वास्ते से हमारी मदद फ़रमा और काफ़िरों के मुक़ाबले में हमें फ़तह अता फ़रमा। (यह मज़मून आगे चल कर इसी सूरतुल बक़रह ही में आयेगा।) लेकिन अब तुम ही इसके अव्वलीन मुन्कर हो गये हो और तुम ही इसके सबसे बढ़ कर दुश्मन हो गये हो।

وَلَا تَشْتَرُوْا بِاٰيٰتِىْ ثَمَنًا قَلِيْلًا

“और मेरी आयात के एवज़ (बदले) हक़ीर (थोड़ी) सी क़ीमत क़ुबूल ना करो।”

यह आयाते इलाहिया हैं और तुम इनको सिर्फ़ इसलिये रद्द कर रहे हो कि कहीं तुम्हारी हैसियत, तुम्हारी मसनदों (गद्दी) और तुम्हारी चौधराहटों पर कोई आँच ना आ जाये। यह तो हक़ीर सी चीज़ें हैं। यह सिर्फ़ इस दुनिया का सामान है, इसके सिवा कुछ नहीं।

وَاِيَّاىَ فَاتَّقُوْنِ ۝

“और सिर्फ़ मेरा तक़वा इख़्तियार करो।” मुझ ही से बचते रहो!

आयत 42

وَلَا تَلۡبِسُوا الۡحَقَّ بِالۡبَاطِلِ وَتَكۡتُمُوا الۡحَقَّ وَاَنۡتُمۡ تَعۡلَمُوۡنَ ﴿۴۲﴾

"और ना गढ़मढ़ करो हक़ के साथ बातिल को और ना छुपाओ हक़ को दर हालाँकि तुम जानते हो।"

यह बात अच्छी तरह नोट कर लीजिये कि मुगालते में गलत राह पर पड़ जाना ज़लालत और गुमराही है, लेकिन जानते-बूझते हक़ को पहचान कर उसे रद्द करना और बातिल की रविश इख़्तियार करना अल्लाह तआला के गज़ब को दावत देना है। इसी सूरतुल बक़रह में आगे चल कर आयेगा कि उलमाये यहूद मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ को और क़ुरान को इस तरह पहचानते थे जैसे अपने बेटों को पहचानते थे: {يَعۡرِفُوۡنَهٗ كَمَا يَعۡرِفُوۡنَ اَبۡنَآءَهُمۡ} (आयत:146) लेकिन इसके बावजूद उन्होंने महज़ अपनी दुनयवी मसलहतों के पेशे नज़र आप ﷺ और क़ुरान की तकज़ीब की।

आयत 43

وَاَقِيۡمُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ

"और नमाज़ क़ायम करो और ज़कात अदा करो"

وَارۡكَعُوۡا مَعَ الرّٰكِعِيۡنَ ﴿۴۳﴾

"और झुको (नमाज़ में) झुकने वालो के साथ।"

यानि बा-जमात नमाज़ अदा किया करो।

अव्वल तो यहूद ने रुकूअ को अपने यहाँ से खारिज कर दिया था, सानियन बा-जमात नमाज़ उनके यहाँ खत्म हो गयी थी। चुनाँचे उन्हें रुकूअ करने वालो के साथ रुकूअ करने का हुक्म दिया जा रहा है। गोया सराहत की जा रही है कि नबी आखिरुज़्ज़मान ﷺ पर सिर्फ़ ईमान लाना ही निजात के लिये काफ़ी नहीं, बल्कि तमाम उसूल में आप ﷺ की पैरवी ज़रूरी है। नमाज़ भी आप ﷺ के तरीक़े पर पढ़ो जिसमें रुकूअ भी हो और जो बा-जमात हो।

आयत 44

اَتَاْمُرُوْنَ النَّاسَ بِالْبِرِّ وَتَنْسَوْنَ اَنْفُسَكُمْ

"क्या तुम लोगों को नेकी का हुक्म देते हो और खुद अपने आप को भूल जाते हो?"

इन आयात के असल मुख़ातिब उलमाये यहूद हैं, जो लोगों को तक़वा और पारसाई की तालीम देते थे लेकिन उनका अपना किरदार इसके बरअक्स (विपरीत) था। हमारे यहाँ भी उलमा और वाईज़ीन (प्रचारकों) का हाल अक्सर व बेशतर यही है कि ऊँचे से ऊँचा वाज़ (उपदेश) कहेंगे, आला से आला बात कहेंगे, लेकिन उनके अपने किरदार को उस बात से कोई मुनासबत ही नहीं होती जिसकी वह लोगों को दावत दे रहे होते हैं। यही दर हक़ीक़त उलमाये यहूद का किरदार बन चुका था। चुनाँचे उनसे कहा गया कि "क्या तुम लोगों को नेकी का रास्ता इख़्तियार करने के लिये कहते हो मगर खुद अपने आप को भूल जाते हो?"

وَاَنۡتُمۡ تَتۡلُوۡنَ الۡكِتٰبَ ؕ *"हालाँकि तुम किताब की तिलावत करते हो।"*

तुम यह कुछ कर रहे हो इस हाल में कि तुम अल्लाह की किताब भी पढ़ते हो। यानि तौरात पढ़ते हो, तुम साहिबे तौरात हो। हमारे यहाँ भी बहुत से उलमा का, जिन्हें हम उलमाये सू (बुरे उलमा) कहते हैं, यही हाल हो चुका है। बक़ौल इक़बाल:

खुद बदलते नहीं क़ुरान को बदल देते हैं
हुए किस दर्जा फक़ीहाने हरम बे तौफ़ीक़!

क़ुरान हकीम के तर्जुमे में, इसके मफ़हूम में, इसकी तफ़सीर में बड़ी-बड़ी तहरीफ़ें मौजूद हैं। अल्हमदुलिल्लाह कि इसका मतन (text) बचा हुआ है। इसलिये कि इसकी हिफ़ाज़त का ज़िम्मा खुद अल्लाह तआला ने ले रखा है।

اَفَلَا تَعۡقِلُوۡنَ ﴿۴۴﴾ *"क्या तुम अक़्ल से बिल्कुल ही काम नहीं लेते?"*

आयत 45

وَاسۡتَعِيۡنُوۡا بِالصَّبۡرِ وَالصَّلٰوةِ ؕ *"और मदद हासिल करो सब्र से और नमाज़ से।"*

यहाँ पर सब्र का लफ्ज़ बहुत बा-मायने है। उलमाये सू क्यों वजूद में आते हैं? जब वह सब्र और क़नाअत (सन्तुष्टि) का दामन हाथ से छोड़ देते हैं तो हुब्बे माल (माल की मोहब्बत) उनके दिल में घर कर लेती है और वह दुनिया के कुत्ते बन

जाते हैं। फिर वह दीन को बदनाम करने वाले होते हैं। बज़ाहिर दीनी मरासिम (प्रथाओं) के पाबन्द नज़र आते हैं लेकिन दरअसल उनके परदे में दुनियादारी का मामला होता है। चुनाँचे उन्हें सब्र की ताकीद की जा रही है। सूरतुल मायदा में यहूद के उलमा व मशाइख पर बा-अल्फ़ाज़ तनक़ीद (आलोचना) की गयी है: {لَوۡلَا يَنۡهٰهُمُ الرَّبّٰنِيُّوۡنَ وَالۡاَحۡبَارُ عَنۡ قَوۡلِهِمُ الۡاِثۡمَ وَاَكۡلِهِمُ السُّحۡتَ} (सूरतुल मायदा:63) “क्यों नहीं रोकते उन्हें उनके उलमा और सूफ़िया झूठ बोलने से और हराम खाने से?” अगर कोई आलिम या पीर अपने अरादत मन्दों को इन चीज़ों से रोकेगा तो फिर उसको नज़राने तो नहीं मिलेंगे, उसकी ख़िदमतें तो नहीं होंगी। चुनाँचे अगर तो दुनिया में सब्र इख़्तियार करना है, तब तो आप हक़ बात कह सकते हैं, और अगर दुनियवी ख्वाहिशात (ambitions) मुक़द्दम (इच्छित) हैं तो फिर आपको कहीं ना कहीं समझौता (compromise) करना पड़ेगा।

सब्र के साथ जिस दूसरी शय की ताकीद की गयी वह नमाज़ है। उलमाये यहूद वज़ूहे हक़ के बावजूद मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर ईमान ना लाते थे इसकी बड़ी वजह हुब्बे माल और हुब्बे जान थी। यहाँ दोनों का इलाज बता दिया गया कि हुब्बे माल का मदावा (इलाज) सब्र से होगा, जबकि नमाज़ से उबूदियत व तज़लील पैदा होगा और हुब्बे जान का खात्मा होगा।

وَاِنَّهَا لَكَبِيۡرَةٌ

“और यक़ीनन यह बहुत भारी शय है”

आमतौर पर यह ख्याल ज़ाहिर किया गया है कि इन्नहा की ज़मीर सिर्फ़ सलाह (नमाज़) के लिये है। यानि नमाज़ बहुत भारी और मुश्किल काम है। लेकिन एक राय यह है कि यह दरहक़ीक़त इस पूरे तर्ज़े अमल की तरफ़ इशारा है कि दुनिया के शदाईद (आपदाओं) और इबतलाआत (मोह) का मुक़ाबला सब्र और नमाज़ की मदद से किया जाये। मतलूब तर्ज़े अमल यह है कि दुनिया और दुनिया के मुताल्लिक़ात में कम से कम पर क़ानेअ (संतुष्ट) हो जाओ और हक़ का बोल-बाला करने के लिये मैदान में आ जाओ। इसके साथ-साथ नमाज़ को अपने मामलाते हयात का महवर (आधार) बनाओ, जो कि इमादुद्दीन है। फ़रमाया कि यह रविश यक़ीनन बहुत भारी है, और नमाज़ भी बहुत भारी है।

اِلَّا عَلَى الْخٰشِعِيْنَ ۝٤٥

"मगर उन आजिज़ों पर (भारी नहीं है)।"

उन खुशूअ (विनम्रता) रखने वालों पर, उन ड़रने वालों पर यह रविश भारी नहीं है जिनके दिल अल्लाह के आगे झुक गये हैं।

आयत 46

الَّذِيْنَ يَظُنُّوْنَ اَنَّهُمْ مُّلٰقُوْا رَبِّهِمْ

"जिन्हें यह यक़ीन है कि वह अपने रब से मुलाक़ात करने वाले हैं"

मैंने शुरु में {وَبِالۡاٰخِرَةِ هُمۡ یُوۡقِنُوۡنَ} (आयत:4) के ज़ैल में तवज्जो दिलायी थी कि यह ईमान बिल आख़िरत ही है जो इन्सान को अमल के मैदान में सीधा रखता है।

وَاَنَّهُمۡ اِلَیۡهِ رٰجِعُوۡنَ ﴿۴۶﴾

"और (जिन्हें यह यक़ीन है कि) बिलआखिर उन्हें उसी की तरफ़ लौट कर जाना है।"

उन्हें उसके रू-ब-रू हाज़िर होना है।

आयात 47 से 59 तक

یٰبَنِیۡۤ اِسۡرَآءِیۡلَ اذۡکُرُوۡا نِعۡمَتِیَ الَّتِیۡۤ اَنۡعَمۡتُ عَلَیۡکُمۡ
وَاَنِّیۡ فَضَّلۡتُکُمۡ عَلَی الۡعٰلَمِیۡنَ ﴿۴۷﴾ وَاتَّقُوۡا یَوۡمًا لَّا
تَجۡزِیۡ نَفۡسٌ عَنۡ نَّفۡسٍ شَیۡـًٔا وَّلَا یُقۡبَلُ مِنۡهَا
شَفَاعَةٌ وَّلَا یُؤۡخَذُ مِنۡهَا عَدۡلٌ وَّلَا هُمۡ یُنۡصَرُوۡنَ
﴿۴۸﴾ وَاِذۡ نَجَّیۡنٰکُمۡ مِّنۡ اٰلِ فِرۡعَوۡنَ یَسُوۡمُوۡنَکُمۡ سُوۡٓءَ
الۡعَذَابِ یُذَبِّحُوۡنَ اَبۡنَآءَکُمۡ وَیَسۡتَحۡیُوۡنَ نِسَآءَکُمۡ ؕ
وَفِیۡ ذٰلِکُمۡ بَلَآءٌ مِّنۡ رَّبِّکُمۡ عَظِیۡمٌ ﴿۴۹﴾ وَاِذۡ فَرَقۡنَا
بِکُمُ الۡبَحۡرَ فَاَنۡجَیۡنٰکُمۡ وَاَغۡرَقۡنَاۤ اٰلَ فِرۡعَوۡنَ وَاَنۡتُمۡ
تَنۡظُرُوۡنَ ﴿۵۰﴾ وَاِذۡ وٰعَدۡنَا مُوۡسٰۤی اَرۡبَعِیۡنَ لَیۡلَةً ثُمَّ

اتَّخَذْتُمُ الْعِجْلَ مِنْۢ بَعْدِهٖ وَاَنْتُمْ ظٰلِمُوْنَ ﴿۵۱﴾ ثُمَّ عَفَوْنَا
عَنْكُمْ مِّنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ﴿۵۲﴾ وَاِذْ
اٰتَيْنَا مُوْسَى الْكِتٰبَ وَالْفُرْقَانَ لَعَلَّكُمْ تَهْتَدُوْنَ
﴿۵۳﴾ وَاِذْ قَالَ مُوْسٰى لِقَوْمِهٖ يٰقَوْمِ اِنَّكُمْ ظَلَمْتُمْ
اَنْفُسَكُمْ بِاتِّخَاذِكُمُ الْعِجْلَ فَتُوْبُوْٓا اِلٰى بَارِىِٕكُمْ
فَاقْتُلُوْٓا اَنْفُسَكُمْ ۭ ذٰلِكُمْ خَيْرٌ لَّكُمْ عِنْدَ بَارِىِٕكُمْ ۭ
فَتَابَ عَلَيْكُمْ ۭ اِنَّهٗ هُوَ التَّوَّابُ الرَّحِيْمُ ﴿۵۴﴾ وَاِذْ
قُلْتُمْ يٰمُوْسٰى لَنْ نُّؤْمِنَ لَكَ حَتّٰى نَرَى اللّٰهَ جَهْرَةً
فَاَخَذَتْكُمُ الصّٰعِقَةُ وَاَنْتُمْ تَنْظُرُوْنَ ﴿۵۵﴾ ثُمَّ بَعَثْنٰكُمْ
مِّنْۢ بَعْدِ مَوْتِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ﴿۵۶﴾ وَظَلَّلْنَا
عَلَيْكُمُ الْغَمَامَ وَاَنْزَلْنَا عَلَيْكُمُ الْمَنَّ وَالسَّلْوٰى ۭ
كُلُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا رَزَقْنٰكُمْ ۭ وَمَا ظَلَمُوْنَا وَلٰكِنْ
كَانُوْٓا اَنْفُسَهُمْ يَظْلِمُوْنَ ﴿۵۷﴾ وَاِذْ قُلْنَا ادْخُلُوْا هٰذِهِ
الْقَرْيَةَ فَكُلُوْا مِنْهَا حَيْثُ شِئْتُمْ رَغَدًا وَّادْخُلُوا
الْبَابَ سُجَّدًا وَّقُوْلُوْا حِطَّةٌ نَّغْفِرْ لَكُمْ خَطٰيٰكُمْ ۭ

وَسَنَزِيْدُ الْمُحْسِنِيْنَ ۝ فَبَدَّلَ الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا قَوْلًا
غَيْرَ الَّذِيْ قِيْلَ لَهُمْ فَاَنْزَلْنَا عَلَى الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا
رِجْزًا مِّنَ السَّمَاۗءِ بِمَا كَانُوْا يَفْسُقُوْنَ ۝

जैसा कि अर्ज़ किया जा चुका है, सूरतुल बक़रह के पाँचवें रुकूअ से चौहदवें रुकूअ तक, बल्कि पन्द्रहवें रुकूअ की पहली दो आयात भी शामिल कर लीजिये, यह दस रुकूओं से दो आयात ज़ायद हैं कि जिनमें ख़िताब कुल का कुल बनी इसराइल से है। अलबत्ता इनमें से पहला रुकूअ दावत पर मुश्तमिल है, जिसमें उन्हें नबी करीम ﷺ पर ईमान लाने की पुरज़ोर दावत दी गयी है, जबकि बक़िया नौ रुकूअ उस फर्दे क़रारदारे जुर्म पर मुश्तमिल हैं जो बनी इसराइल पर आयद की जा रही है कि हमने तुम्हारे साथ यह अहसान व इकराम किया, तुम पर यह फ़ज़ल किया, तुम पर यह करम किया, तुम्हें यह हैसियत दी, तुम्हें यह मक़ाम दिया और तुमने इस-इस तौर से अपने उस मिशन की ख़िलाफ़ वर्ज़ी की जो तुम्हारे सुपुर्द किया गया था और अपने मक़ाम व मरतबे को छोड़ कर दुनिया परस्ती की रविश इख़्तियार की। इन नौ रुकूओं में बनी इसराइल की तारीख का तो एक बहुत बड़ा हिस्सा उसके खदोखाल (features) समेत आ गया है, लेकिन असल में यह उम्मते मुस्लिमा के लिये भी एक पेशगी तन्बीह (चेतावनी) है कि कोई मुस्लमान उम्मत जब बिगड़ती है तो उसमें यह और यह खराबियाँ आ जाती हैं। चुनाँचे इस बारे में रसूल अल्लाह ﷺ की अहादीस भी

मौजूद हैं। हज़रत अब्दुल्लाह बिन उमर (रजि०) से मरवी है कि रसूल अल्लाह ﷺ ने इरशाद फ़रमाया: ((لَيَأْتِيَنَّ عَلٰى أُمَّتِىْ مَا اَتٰى عَلٰى بَنِىْ اِسْرَاءِيْلَ حَذْوَ النَّعْلِ بِالنَّعْلِ))(7) "मेरी उम्मत पर भी वह सब हालात वारिद होकर रहेंगे जो बनी इसराइल पर आये थे, बिल्कुल ऐसे जैसे एक जूती दूसरी जूती से मुशाबा होती है।"

एक दूसरी हदीस में जो हज़रत अबु सईद खुदरी (रजि०) से मरवी है, रसूल अल्लाह ﷺ का इरशाद नक़ल हुआ है:

((لَتَتَّبِعُنَّ سَنَنَ مَنْ قَبْلَكُمْ شِبْرًا بِشِبْرٍ وَذِرَاعًا بِذِرَاعٍ حَتّٰى لَوْ سَلَكُوْا جُحْرَ ضَبٍّ لَسَلَكْتُمُوْهُ ، قُلْنَا: يَا رَسُوْلَ اللهِ الْيَهُوْدَ وَ النَّصَارٰى؟ قَالَ: فَمَنْ؟))(8)

"तुम लाज़िमन अपने से पहलों के तौर-तरीक़ों की पैरवी करोगे, बालिश्त के मुक़ाबले में बालिश्त और हाथ के मुक़ाबले में हाथ। यहाँ तक कि अगर वह गोह के बिल में घुसे होंगे तो तुम भी घुस कर रहोगे।" हमने अर्ज़ किया: ऐ अल्लाह के रसूल ﷺ! यहूद व नसारा की? आप ﷺ ने फरमाया: "तो और किसकी?"

तिरमिज़ की मज़कूरा बाला हदीस में तो यहाँ तक अल्फ़ाज़ आते हैं कि: ((حَتّٰى اِنْ كَانَ مِنْهُمْ مَّنْ اَتٰى اُمَّهٗ عَلَانِيَةً لَكَانَ فِىْ اُمَّتِىْ مَنْ يَصْنَعُ ذٰلِكَ)) यानि अगर उनमें कोई बदबख़्त ऐसा उठा होगा जिसने अपनी माँ से अलल ऐलान ज़िना किया था तो तुम में से भी कोई शकी ऐसा ज़रूर उठेगा जो

यह हरकत करेगा। इस ऐतबार से इन रुकूओं को पढ़ते हुए यह ना समझिये कि यह महज़ अगलों की दास्तान हैं, बल्कि:

"खुशतर आँ बाशिद कि सर दिलबराँ
गुफ्ता-ए-आयद दर हदीस दीगराँ"

के मिस्दाक़ यह हमारे लिये एक आईना है और हमें हर मरहले पर सोचना होगा, दरूँ बीनी (आत्मनिरीक्षण) करनी होगी कि कहीं इसी गुमराही में हम भी तो मुब्तला नहीं?

दूसरा अहम नुक्ता पहले से ही यह समझ लीजिये कि सूरतुल बक़रह की आयात 47-48 जिनसे इस छठे रुकूअ का आगाज़ हो रहा है, यह दो आयतें बैयन ही पन्द्रहवें रुकूअ के आगाज़ में फिर आयेंगी। इनमें से पहली आयत में तो शोशे भर का फ़र्क़ भी नहीं है, जबकि दूसरी आयत में सिर्फ़ अल्फ़ाज़ की तरतीब बदली है, मज़मून वही है। यूँ समझिये कि यह गोया दो ब्रेकेट्स हैं और नौ रुकूओं के मज़ामीन इन दो ब्रेकिटों के दरमियान हैं। और सूरतुल बक़रह का पाँचवा रुकूअ जो इन ब्रेकिटों से बाहर है, इसके मज़ामीन ब्रेकिटों के अन्दर के सारे मज़ामीन से ज़र्ब खा रहे हैं। यह हिसाब का बहुत ही आम-फ़हम सा क़ायदा है कि ब्रेकेट के बाहर लिखी हुई रक़म, जिसके बाद जमा या तफ़रीक़ वगैरह की कोई अलामत ना हो, वह ब्रेकिट के अन्दर मौजूद तमाम अक़्दार (values) के साथ ज़र्ब खायेगी। तो गोया इस पूरे मामले में हर-हर क़दम पर रसूल अल्लाह ﷺ पर ईमान लाने की दावत मौजूद है। यह वज़ाहत इसलिये ज़रूरी है कि इस हिस्से में बाज़ आयात ऐसी आ गयी है जिनसे कुछ लोगों को मुगालता पैदा हुआ या जिनसे कुछ लोगों ने जानबूझ कर फ़ितना पैदा किया कि निजाते उखरवी के लिये मुहम्मद

रसूल अल्लाह ﷺ पर ईमान ज़रूरी नहीं है। इस फ़ितने ने एक बार अकबर के ज़माने में "दीन-ए इलाही" की शक्ल में जन्म लिया था कि आख़िरत में निजात के लिये सिर्फ़ खुदा को मान लेना, आख़िरत को मान लेना और नेक आमाल करना काफ़ी है, किसी रसूल पर ईमान लाना ज़रूरी नहीं है। यह फ़ितना सूफ़िया में भी बहुत बड़े पैमाने पर फैला और "मस्जिद मन्दिर हिकड़ो नूर" के फ़लसफ़े की तशहीर (विज्ञापन) की गयी। यानि मस्जिद में और मन्दिर में एक ही नूर है, सब मज़ाहिब असल में एक ही हैं, सारा फ़र्क़ शरीअतों का और इबादात की ज़ाहिरी शक्ल का है। और वह रसूलों से मुताल्लिक़ है। चुनाँचे रसूलों को बीच में से निकाल दीजिये तो यह "दीन-ए-इलाही" (अल्लाह का दीन) रह जायेगा। यह एक बहुत बड़ा फ़ितना था जो हिन्दुस्तान में उस वक़्त उठा जब सियासी ऐतबार से मुस्लमानों का इक़्तदार चोटी (climax) पर था। यह फ़ितना जिस मुस्लमान हुक्मरान का उठाया हुआ था वह "अकबर-ए-आज़म" और "मुगल-ए-आज़म" कहलाता था। उसके पेशकरदा "दीन" का फ़लसफ़ा यह था कि दीने मुहम्मदी ﷺ का दौर ख़त्म हो गया (नाउज़ुबिल्लाह), वह एक हज़ार साल के लिये था, अब दूसरा हज़ार साल (अल्फ़े सानी) है और इसके लिये नया दीन है। उसे "दीने अकबरी" भी कहा गया और "दीने इलाही" भी। सूरतुल बक़रह के इस हिस्से में एक आयत आयेगी जिससे कुछ लोगों ने इस "दीने इलाही" के लिये इस्तदलाल (तर्क) किया था।

हिन्दुस्तान में बीसवीं सदी में यह फ़ितना फिर उठा जब गाँधी जी ने "मुत्तहिदा वतनी क़ौमियत" का नज़रिया पेश

किया। इस मौक़े पर मुस्लमानों मे से एक बहुत बड़ा नाबगा (genius) इन्सान अबुल कलाम आज़ाद भी इस फ़ितने का शिकार हो गया। गाँधी जी अपनी प्रार्थना में कुछ क़ुरान की तिलावत भी करवाते, कुछ गीता भी पढ़वाते, कुछ उपनिषदों से, कुछ बाईबल से और कुछ गुरुग्रन्थ से भी इस्तफ़ादा किया जाता। मुत्तहिदा वतनी क़ौमियत का तसव्वुर यह था कि एक वतन के रहने वाले लोग एक क़ौम हैं, लिहाज़ा उन सबको एक होना चाहिये, मज़हब तो इन्फ़रादी मामला है, कोई मस्जिद में चला जाये, कोई मन्दिर में चला जाये, कोई गुरुद्वारे में चला जाये, कोई कलैसा, सिनेगाग या चर्च में चला जाये तो इससे क्या फ़र्क़ वाक़ेअ होता है? इस तरह के नज़रियात और तसव्वुरात का तोड़ यही है कि यूँ समझ लीजिये कि पाँचवें रुकूअ की सात आयात ब्रेकेट के बाहर हैं और यह ब्रेकिटों के अन्दर के मज़मून से मुसलसल ज़र्ब खा रही हैं। चुनाँचे इन ब्रेकिटों के दरमियान जितना भी मज़मून आ रहा है वह इनके ताबेअ होगा। गोया जहाँ तक मुहम्मद रसूल अल्लाह صلى الله عليه وسلم पर ईमान लाने का मामला है वह हर मरहले पर मुक़द्दर (understood) समझा जायेगा। अब हम इन आयात का मुतअला शुरू करते हैं।

आयत 47

يٰبَنِيۡٓ اِسۡرَآءِيۡلَ اذۡكُرُوۡا نِعۡمَتِىَ الَّتِىۡٓ اَنۡعَمۡتُ عَلَيۡكُمۡ

"ऐ याक़ूब की औलाद! याद करो मेरे उस ईनाम को जो मैंने तुम पर किया"

इसकी वज़ाहत गुज़िश्ता (पिछले) रुकूअ में हो चुकी है, लेकिन यहाँ आगे जो अल्फ़ाज़ आ रहे हैं बहुत ज़ोरदार हैं:

وَاَنِّىۡ فَضَّلۡتُكُمۡ عَلَى الۡعٰلَمِيۡنَ ۝٤٧

"और यह कि मैंने तुम्हें फज़ीलत अता की तमाम जहानों पर।"

अरबी नहव (वाक्य-विन्यास) का यह क़ायदा है कि कहीं ज़र्फ का तज़किरा होता है (यानि जिसमें कोई शय है) लेकिन इससे मुराद मज़रूफ़ होता है (यानि ज़र्फ के अन्दर जो शय है)। यहाँ भी ज़र्फ की जमा लायी गयी है लेकिन इससे मज़रूफ़ की जमा मुराद है। "तमाम जहानों पर फज़ीलत" से मुराद "जहान वालों पर फज़ीलत" है। मतलब यह है कि हमने तुम्हें तमाम अक़वामे आलम पर फज़ीलत अता की। आलमे इन्सानियत के अन्दर जितने भी मुख़्तलिफ गिरोह, नस्लें और तबक़ात हैं उनमें फज़ीलत अता की।

आयत 48

وَاتَّقُوْا يَوْمًا لَّا تَجْزِىْ نَفْسٌ عَنْ نَّفْسٍ شَيْـًٔا

"और ड़रो उस दिन से कि जिस दिन काम ना आ सकेगी कोई जान किसी दूसरी जान के कुछ भी"

कब्ल अज़ यह बात अर्ज़ की जा चुकी है कि इन्सान के अमल के ऐतबार से सबसे मौअस्सर शय ईमान बिलआखिरा है। मुहासबा-ए-आख़िरत अगर मुस्तहज़र (जागरूक) रहेगा तो इन्सान सीधा रहेगा, और अगर इसमें ज़ौफ (कमी) आ जाये तो ईमान बिल्लाह और ईमान बिर्रिसालत भी ना मालूम क्या-क्या शक्लें इख़्तियार कर लें। इस आयत के अन्दर चार ऐतबारात से मुहासबा-ए-उखरवी पर ज़ोर दिया गया है। सबसे पहले फ़रमाया कि ड़रो उस दिन से जिस दिन कोई जान किसी दूसरी जान के कुछ भी काम ना आ सकेगी।

وَّلَا يُقْبَلُ مِنْهَا شَفَاعَةٌ

"और ना किसी से कोई सिफ़ारिश क़ुबूल की जायेगी"

وَّلَا يُؤْخَذُ مِنْهَا عَدْلٌ

"और ना किसी से कोई फ़िदया क़ुबूल किया जायेगा"

وَّلَا هُمْ يُنْصَرُوْنَ ﴿٤٨﴾

"और ना उन्हें कोई मदद मिल सकेगी।"

ईमान बिलआखिरा के ज़िमन में लोगो ने तरह-तरह के अक़ीदे गढ़ रखे हैं, जिनमें शफ़ाअते बातिला (झूठी हिमायत) का तसव्वुर भी है। अहले अरब समझते थे कि फ़रिश्ते खुदा की बेटियाँ हैं। उन्होंने लात, मनात और उज़्ज़ा वगैरह के

नाम से उनके बुत बना रखे थे, जिन्हें वह पूजते थे और यह अक़ीदा रखते थे कि अल्लाह की यह लाड़ली बेटियाँ हमें अपने "अब्बाजान" से छुडा लेंगी। (نعوذباللهمن ذلك) हमारे यहाँ भी शफ़ाअते बातिला का तसव्वुर मौजूद है कि औलिया अल्लाह हमें छुडा लेंगे। खुद रसूल अल्लाह صلى الله عليه وسلم की शफ़ाअत के बारे में गलत तसव्वुरात मौजूद हैं। एक शफ़ाअते हक़ है, जो बरहक़ है उसकी वज़ाहत का यह मौक़ा नहीं है। इसी सूरह मुबारका में जब हम आयतुल कुर्सी का मुतअला करेंगे तो इन्शाअल्लाह तो इसकी वज़ाहत भी होगी। यह सारे तसव्वुरात और ख्यालात जो हमने गढ़ रखे हैं, इनकी नफ़ी इस आयत के अन्दर दो टूक अन्दाज़ में कर दी गयी है।

इसके बाद अल्लाह तआला की तरफ़ से बनी इसराइल पर जो अहसानात व ईनामात हुए और उनकी तरफ़ से जो नाशुक्रियाँ हुईं उनका तज़किरा बड़ी तेज़ी के साथ किया गया है। वाज़ेह रहे कि यह वाक़िआत कई सौ बरस पर मुहीत हैं और इनकी तफ़सील मक्की सूरतों मे आ गयी है। इन वाक़िआत की सबसे ज़्यादा तफ़सील सूरतुल आराफ़ में मौजूद है। यहाँ पर तो वाक़िआत का पय-बा-पय तज़किरा किया जा रहा है, जैसे किसी मुलज़िम पर फ़र्दे क़रारदारे जुर्म आइद की जाती है तो उसमें सब कुछ गिनवाया जाता है कि तुमने यह किया, यह किया और यह किया।

आयत 49

وَاِذْ نَجَّيْنٰكُمْ مِّنْ اٰلِ فِرْعَوْنَ

"और ज़रा याद करो जबकि हमने तुम्हें निजात दी थी फ़िरऔन की क़ौम से"

يَسُوْمُوْنَكُمْ سُوْٓءَ الْعَذَابِ

"वह तुम्हें बदतरीन अज़ाब में मुबतला किये हुऐ थे"

يُذَبِّحُوْنَ اَبْنَآءَكُمْ وَيَسْتَحْيُوْنَ نِسَآءَكُمْ ۭ

"तुम्हारे बेटों को ज़िबह कर डालते थे और तुम्हारी औरतों को ज़िन्दा रखते थे।"

फ़िरऔन ने हुक्म दिया था कि बनी इसराइल में जो भी लड़का पैदा हो उसको क़त्ल कर दिया जाये और लड़कियों को ज़िन्दा रहने दिया जाये ताकि उनसे ख़िदमत ली जा सके और उन्हें लौंडियाँ (नौकरानी) बनाया जा सके। बनी इसराइल के साथ यह मामला दो मौक़ों पर हुआ है। इसकी तफ़सील इन्शा अल्लाह बाद में आयेगी।

وَفِيْ ذٰلِكُمْ بَلَاۗءٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ عَظِيْمٌ ﴿٤٩﴾

"और इसमें तुम्हारे रब की तरफ़ से तुम्हारे लिये बड़ी आज़माइश थी।"

आयत 50

وَإِذْ فَرَقْنَا بِكُمُ الْبَحْرَ

"और याद करो जबकि हमने तुम्हारी ख़ातिर समुन्दर को (या दरिया को) फाड़ दिया"

यह एक मुख़्तलिफ़ फ़ी बात है कि बनी इसराइल ने मिस्र से जज़ीरा नुमाये सीना आने के लिये किस समुन्दर या दरिया को उबूर (पार) किया था। एक राय यह है कि दरिया-ए-नील को उबूर करके गये थे, लेकिन यह बात इस ऐतबार से गलत है कि दरिया-ए-नील तो मिस्र के अन्दर बहता है, वही कभी भी मिस्र की हद नहीं बना। दूसरी राय यह है कि बनी इसराइल ने खलीज सुवेज़ को उबूर किया था। बहरा-ए-कुलज़ुम (Red Sea) ऊपर जाकर दो खाड़ियों में तब्दील हो जाता है, मशरिक़ की तरफ खलीज उक़बा और मग़रिब की तरफ खलीज सुवेज़ है और इनके दरमियान जज़ीरा नुमाये सीना (Sinai Peninsula) है। यह इसी तरह की तकवीन है जैसे जज़ीरा नुमाये हिन्द (Indian Peninsula) है। खलीज सुवेज़ और बहरा-ए-रूम के दरमियान कई बड़ी-बड़ी झीलें थी, जिनको बाहम जोड़-जोड़ कर, दरमियान में हाइल खुश्की को काट कर नहर सुवेज़ बनायी गयी है, जो अब एक मुसलसल राब्ता है। मालूम होता है कि हज़रत मूसा (अलै०) और बनी इसराइल ने खलीज सुवेज़ को उबूर किया था। मुझे खुद भी इसी राय से इत्तेफाक़ है। इस लिये कि कोहे तूर इस जज़ीरा नुमाये सीना की नोक (tip) पर वाक़ेअ है, जहाँ हज़रत मूसा (अलै०) को चालीस दिन-रात के लिये बुलाया गया और फिर उन्हें तौरात दी गयी। बनी इसराइल ने खलीज सुवेज़ को इस तरह उबूर किया कि हज़रत मूसा (अलै०) के असा की एक ज़र्ब से समुन्दर फट गया। अज़रूए

अल्फ़ाज़े क़ुरानी: {فَانۡفَلَقَ فَكَانَ كُلُّ فِرۡقٍ كَالطَّوۡدِ الۡعَظِيۡمِ ﴿۶۳﴾} (अशशौरा:63) "पस समुन्दर फट गया और हो गया हर हिस्सा जैसे बड़ा पहाड़।" समुन्दर का पानी दोनों तरफ़ पहाड़ की तरह खड़ा हो गया और बनी इसराइल उसके दरमियान में से निकल गये। उनके पीछे-पीछे जब फ़िरऔन अपना लश्कर लेकर आया तो उसने सोचा कि हम भी ऐसे ही निकल जायेंगे, लेकिन वे ग़र्क़ हो गये। इसलिये कि दोनों तरफ़ का पानी आपस में मिल गया। यह एक मौज्ज़ाना कैफ़ियत थी और यह बात फ़ितरत (nature) के क़वानीन के मुताबिक़ नहीं थी।

فَاَنۡجَيۡنٰكُمۡ وَاَغۡرَقۡنَاۤ اٰلَ فِرۡعَوۡنَ وَاَنۡتُمۡ تَنۡظُرُوۡنَ ﴿۵۰﴾

"फिर तुम्हें तो निजात दे दी और फ़िरऔन के लोगों को ग़र्क़ कर दिया जबकि तुम देख रहे थे।"

तुम्हारी निगाहों के सामने फ़िरऔन के लाव-लश्कर को ग़र्क़ कर दिया। बनी इसराइल खलीज सुवेज़ से गुज़र चुके थे और दूसरी जानिब खड़े थे। उन्होंने देखा कि इधर से फ़िरऔन और उसका लाव-लश्कर समुन्दर में दाखिल हुआ तो पानी दोनों तरफ़ से आकर मिल गया और यह सब ग़र्क़ हो गये।

आयत 51

وَاِذۡ وٰعَدۡنَا مُوۡسٰۤى اَرۡبَعِيۡنَ لَيۡلَةً

"और याद करो जब हमने वादा किया मूसा (अलै०) से चालीस रातों का"

अल्लाह तआला ने हज़रत मूसा (अलै०) को तौरात अता फ़रमाने के लिये चालीस दिन-रात के लिये कोहे तूर पर बुलाया।

"फिर तुमने बना लिया बछड़े को (मअबूद) उसके बाद" ثُمَّ اتَّخَذْتُمُ الْعِجْلَ مِنْۢ بَعْدِهٖ

बनी इसराइल ने हज़रत मूसा (अलै०) की ग़ैरहाज़री में बछड़े की परस्तिश शुरु कर दी और उसे मअबूद बना लिया।

"और तुम ज़ालिम थे।" وَاَنْتُمْ ظٰلِمُوْنَ ۝۵۱

बछड़े को मअबूद बना कर तुमने बहुत बड़े ज़ुल्म कर इरत्काब (commit) किया था। अल्फ़ाज़े क़ुरानी: {اِنَّ الشِّرْكَ لَظُلْمٌ عَظِيْمٌ} के मिस्दाक़ अज़ीम-तरीन ज़ुल्म जो है वह शिर्क है, और बनी इसराइल ने शिर्के जली की यह मकरूह तरीन शक्ल इख़्तियार की कि बछड़े की परस्तिश शुरु कर दी।

आयत 52

"फिर हमने तुम्हे इसके बाद भी माफ़ किया" ثُمَّ عَفَوْنَا عَنْكُمْ مِّنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ

यह हमारा करम रहा है, हमारी रहमत रही है।

لَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ۝۵۲

"ताकि तुम शुक्र करो।"

आयत 53

وَاِذْ اٰتَيْنَا مُوْسَى الْكِتٰبَ وَالْفُرْقَانَ لَعَلَّكُمْ تَهْتَدُوْنَ ۝۵۳

"और याद करो जबकि हमने मूसा (अलै०) को किताब और फ़ुरक़ान अता फ़रमायी ताकि तुम हिदायत पाओ।"

"फ़ुरक़ान" से मुराद हक़ और बातिल के दरमियान फ़र्क़ कर देने वाली चीज़ है और किताब का लफ़्ज़ आमतौर पर शरीअत के लिये आता है।

आयत 54

وَاِذْ قَالَ مُوْسٰى لِقَوْمِهٖ

"और याद करो जबकि कहा था मूसा (अलै०) ने अपनी क़ौम से"

يٰقَوْمِ اِنَّكُمْ ظَلَمْتُمْ اَنْفُسَكُمْ بِاتِّخَاذِكُمُ الْعِجْلَ

"ऐ मेरी क़ौम के लोगों! यक़ीनन तुमने अपने ऊपर बड़ा जुल्म किया है बछड़े को मअबूद बना कर"

فَتُوْبُوْٓا اِلٰی بَارِىِٕكُمْ

"पस अब तौबा करो अपने पैदा करने वाले की जनाब में"

فَاقْتُلُوْٓا اَنْفُسَكُمْ ۭ

"तो क़त्ल करो अपने आपको।"

यह वाक़िआ तौरात में तफ़सील से आया है, क़ुरान में इसकी तफ़सील मज़कूर नहीं है। बहुत से वाक़िआत जिनका क़ुरान में इजमालन (संक्षिप्त) ज़िक्र है उनकी तफ़सील के लिये हमें तौरात से रुजूअ करना पड़ता है, वरना बाज़ आयात का सही-सही मफ़हूम वाज़ेह नहीं होता। यहाँ अल्फ़ाज़ आये हैं: {فَاقْتُلُوْٓا اَنْفُسَكُمْ ۭ} "मार डालो अपनी जानें" या "क़त्ल करो अपने आपको।" इसके क्या मायने हैं? यह दरअसल क़त्ले मुरतद की सज़ा है। बनी इसराइल के बारह क़बीले थे। हर क़बीले में से कुछ लोगों ने यह कुफ़्र और शिर्क किया कि बछड़े को मअबूद बना लिया, बाक़ी लोगों ने ऐसा नहीं किया। बनी इसराइल को हुक्म दिया गया कि हर क़बीले के वह लोग जो इस शिर्क में मुलव्विस (शामिल) नहीं हुए अपने-अपने क़बीले के उन लोगों को क़त्ल करें जो इस कुफ़्र व शिर्क के मुरतकिब (दोषी) हुए। "فَاقْتُلُوْٓا اَنْفُسَكُمْ ۭ" से मुराद यह है कि तुम अपने क़बीले के लोगों को क़त्ल करो। इसलिये कि क़बाइली ज़िन्दगी बड़ी हस्सास (संवेदनशील) होती है और किसी दूसरे क़बीले की मुदाखलत (हस्तक्षेप) से क़बाइली असबियत (दुश्मनी) भड़क उठने का अन्देशा होता है। हज़रत मूसा (अलै०) इस हुक्म पर अमल दर आमद (implementation) के नतीजे में सत्तर हज़ार यहूदी क़त्ल

हुए। इससे बड़ी तौबा और इससे बड़ी ततहीर (purge) मुमकिन नहीं है। किसी भी नज़रियाती जमात के अन्दर तज़किया और ततहीर का अमल बहुत ज़रूरी होता है। कुछ लोग एक नज़रिये को क़ुबूल करके जमात से वाबस्ता (सम्बंधित) हो जाते हैं, लेकिन रफ्ता-रफ्ता नज़रिया औझल हो जाता है और अपने मफ़ादात और चौधराहटें मुक़द्दम हो जाती हैं। इसी से जमातें खराब होती हैं और गलत रास्ते पर पड़ जाती हैं। चुनाँचे नज़रियाती जमातों में यह अमल बहुत ज़रूरी होता है कि जो अफ़राद नज़रिये से मुनहरिफ़ (गुमराह) हो जायें उनको जमात से काट कर अलैहदा कर दिया जाये।

क़ुरान हकीम के इस मक़ाम से क़त्ले मुरतद की सज़ा साबित होती है, जबकि क़त्ले मुरतद का वाज़ेह हुक्म हदीसे नबवी ﷺ में मौजूद है। हमारे बाज़ जदीद दानिश्वर इस्लाम में क़त्ले मुरतद की हद को तस्लीम नहीं करते, लेकिन मेरे नज़दीक यह शरीअते मूसवी (अलै०) का तसलसुल है। शरीअते मूसवी (अलै०) के जिन अहकाम के बारे में सराहतन (निश्चित रूप से) यह मालूम नहीं कि उन्हें तब्दील कर दिया गया है वह शरीअते मुहम्मदी ﷺ का जुज़ (हिस्सा) बन गये हैं। शादी-शुदा ज़ानी पर हद्दे रज्म का मामला भी यही है। क़ुरान मजीद में हद्दे रज्म की कोई सरीह आयत मौजूद नहीं है, लेकिन अहादीस में यह सज़ा मौजूद है। इसी तरह क़ुरान मजीद में मुरतद के क़त्ल की कोई सरीह आयत मौजूद नहीं है, लेकिन यह हदीस और सुन्नत से साबित है। अलबत्ता इन दोनों सज़ाओ का मिम्बा (स्रोत) और माखज़ (निकास) दरअसल तौरात है। इस ऐतबार से

क़ुरान हकीम का यह मक़ाम बहुत अहम है, लेकिन अक्सर लोग यहाँ से बहुत सरसरी तौर पर गुज़र जाते हैं।

बनी इसराइल जब मिस्र से निकले तो उनकी तादाद छ: लाख थी। जज़ीरा नुमाये सीना पहुँचने के बाद उनकी तादाद मज़ीद बढ़ गयी होगी। उनमें से सत्तर हज़ार अफ़राद को शिर्क की पादाश (इल्ज़ाम) में क़त्ल किया गया, और हर क़बीले ने जो अपने मुरतद थे उनको अपने हाथ से क़त्ल किया।

ذٰلِكُمۡ خَيۡرٌ لَّكُمۡ عِنۡدَ بَارِئِكُمۡ ؕ

"यही तुम्हारे लिये तुम्हारे रब के नज़दीक बेहतर बात है।"

فَتَابَ عَلَيۡكُمۡ ؕ

"तो (अल्लाह ने) तुम्हारी तौबा क़ुबूल कर ली।"

बनी इसराइल की तौबा इस तरह क़ुबूल हुई कि उम्मत का तज़किया हुआ और उनमें से जिन लोगों ने इतनी बड़ी गलत हरकत की थी उनको ज़िबह करके, क़त्ल करके उम्मत से काट कर फेंक दिया गया।

اِنَّهٗ هُوَ التَّوَّابُ الرَّحِيۡمُ ۝٥٤

"यक़ीनन वह तो है ही तौबा का बहुत क़ुबूल फ़रमाने वाला, बहुत रहम फ़रमाने वाला।"

आयत 55

وَاِذۡ قُلۡتُمۡ یٰمُوۡسٰی لَنۡ نُّؤۡمِنَ لَکَ حَتّٰی نَرَی اللّٰہَ جَہۡرَۃً

"और याद करो जबकि तुमने कहा था ऐ मूसा (अलै०)! हम तुम्हारा हरगिज़ यक़ीन नहीं करेंगे जब तक हम अल्लाह को सामने ना देख लें"

یُؤۡمِنُ اٰمَنَ के बाद "بِ" का सिला हो तो इसके मायने ईमान लाने के होते हैं, जबकि "لِ" के सिले के साथ इसके मायने सिर्फ़ तस्दीक़ के होते हैं। बनी इसराइल ने हज़रत मूसा (अलै०) से कहा था कि हम आपकी बात की तस्दीक़ नहीं करेंगे जब तक हम अपनी आँखों से अल्लाह को आपसे कलाम करते ना देख लें। हम कैसे यक़ीन कर लें कि अल्लाह ने यह किताब आपको दी है? आप (अलै०) तो हमारे सामने पत्थर की कुछ तख्तियाँ लेकर आ गये हैं जिन पर कुछ लिखा हुआ है। हमें क्या पता कि यह किसने लिखा है? देखिये, एक ख़्वाहिश हज़रत मूसा (अलै०) की भी थी कि {رَبِّ اَرِنِیۡۤ اَنۡظُرۡ اِلَیۡکَ} (आराफ़:143) "ऐ मेरे रब! मुझे याराये नज़र दे कि मैं तुझको देखूँ।" वह कुछ और शय थी, वह *"तू मेरा शौक देख मेरा इन्तेज़ार देख!"* की कैफ़ियत थी, लेकिन यह तखरीबी (विनाशकारी) ज़हन की सोच है कि हम भी चाहते हैं कि अल्लाह को अपनी आँखों से देखें और हमें मालूम हो कि वाक़ई उसने आपको यह किताब दी है।

فَاَخَذَتۡكُمُ الصّٰعِقَةُ وَاَنۡتُمۡ تَنۡظُرُوۡنَ ۝٥٥

“तो तुम्हें आ पकड़ा एक बहुत बड़ी कड़क ने और तुम देख थे।”

तुम्हारे देखते-देखते एक बहुत बड़ी कड़क ने तुम्हें आलिया (पकड़ लिया) और तुम सबके सब मुर्दा हो गये।

आयत 56

ثُمَّ بَعَثۡنٰكُمۡ مِّنۡۢ بَعۡدِ مَوۡتِكُمۡ

“फिर हमने तुम्हें दोबारा उठाया तुम्हारी मौत के बाद”

बाज़ लोग इसकी एक तावील करते हैं कि यह मौत नहीं थी, बल्कि ज़बरदस्त कड़क की वजह से सबके सब बेहोश होकर गिर पड़े थे, लेकिन मेरे नज़दीक यहाँ तावील की ज़रूरत नहीं है, बाअस बाद अल मौत (मौत के ज़िन्दा करना) अल्लाह के लिये कुछ मुश्किल नहीं है। {مِّنۡۢ بَعۡدِ مَوۡتِكُمۡ} के अल्फ़ाज़ अपने मफ़हूम के ऐतबार से बिल्कुल सरीह (साफ़) हैं, इन्हें ख्वाह माख्वाह कोई और मायने पहनाना दुरुस्त नहीं है।

لَعَلَّكُمۡ تَشۡكُرُوۡنَ ۝٥٦

“ताकि तुम (इस अहसान पर हमारा) शुक्र करो।”

आयत 57

وَظَلَّلۡنَا عَلَيۡكُمُ الۡغَمَامَ

"और हमने तुम पर अब्र (बादल) का साया किया"

जज़ीरा नुमाये सीना के लक़ व दक़ सहरा (ऐसा चटियल व सुनसान रेगिस्तान जिसमें कोई पेड़-पौधा ना हो) में छः लाख का काफ़िला चल रहा है, कोई ओट नहीं, कोई साया नहीं, धूप की तपिश से बचने का कोई इन्तेज़ाम नहीं। इन हालात में उन पर अल्लाह तआला का यह फ़ज़ल हुआ कि तमाम दिन एक बादल उन पर साया किये रहता और जहाँ-जहाँ वह जाते वह बादल उनके साथ होता।

وَاَنۡزَلۡنَا عَلَيۡكُمُ الۡمَنَّ وَالسَّلۡوٰى ؕ

"और उतारा तुम पर मन्न व सलवा।"

सहराये सीना में बनी इसराइल के पास खाने को कुछ नहीं था तो उनके लिये मन्न व सलवा नाज़िल किये गये। "मन्न" रात के वक़्त शबनम के क़तरों की मानिन्द उतरता था, जिसमें शीरीनी (मिठास) भी होती थी, और उसके क़तरे ज़मीन पर आकर जम जाते थे और दानों की सूरत इख़्तियार कर लेते थे। यह गोया उनका अनाज हो गया, जिससे कार्ब्रोहाईड्रेट्स की ज़रूरत पूरी हो गयी। "सलवा" एक ख़ास क़िस्म का बटेर की शक्ल का परिन्दा था। शाम के वक़्त उन परिन्दों के बड़े-बड़े झुण्ड आते और जहाँ बनी इसराइल डेरा डाले होते उसके गिर्द उतर आते थे। रात की तारीकी (अँधेरे) में यह उन परिन्दों को आसानी से पकड़ लेते थे और भून कर

खाते थे। चुनाँचे उनकी प्रोटीन की ज़रूरत भी पूरी हो रही थी। इस तरह अल्लाह तआला ने उनको मुकम्मल गिज़ा फ़राहम कर दी थी।

كُلُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا رَزَقْنٰكُمْ ؕ

"(हमने कहा) खाओ इन पाकीज़ा चीज़ों को जो हमने तुमको अता की है।"

وَمَا ظَلَمُوْنَا وَلٰكِنْ كَانُوْٓا اَنْفُسَهُمْ يَظْلِمُوْنَ ۝۵۷

"और उन्होंने हमारा कुछ नुक़सान ना किया, बल्कि वह खुद अपने ऊपर ज़ुल्म ढाते रहे।"

हर क़दम पर नाफ़रमानी और नाशुक्री बनी इसराइल का वतीराह (आदत) थी। चुनाँचे उन्होंने "मन्न व सलवा" जैसी नेअमत की क़द्र भी ना की और नाशुक्री की रविश अपनाये रखी। इसका ज़िक्र अगली आयात में आ जायेगा।

आयत 58

وَاِذْ قُلْنَا ادْخُلُوْا هٰذِهِ الْقَرْيَةَ فَكُلُوْا مِنْهَا حَيْثُ شِئْتُمْ رَغَدًا

"और याद करो जबकि हमने तुमसे कहा था कि दाखिल हो जाओ इस शहर में और फिर खाओ उसमें से बाफ़राग़त जहाँ से चाहो जो चाहो"

وَّادۡخُلُوا الۡبَابَ سُجَّدًا وَّقُوۡلُوۡا حِطَّةٌ نَّغۡفِرۡ لَکُمۡ خَطٰیٰکُمۡ ؕ

"लेकिन देखना (बस्ती के) दरवाज़े में दाखिल होना झुक कर और कहते रहना मग़फिरत-मग़फिरत, तो हम तुम्हारी खताओं से दरगुज़र फ़रमायेंगे।"

وَسَنَزِیۡدُ الۡمُحۡسِنِیۡنَ ﴿۵۸﴾

"और मोहसीनीन को हम मज़ीद फ़ज़्ल व करम से नवाज़ेंगे।"

बनी इसराइल के सहराये सीना में आने और तौरात अता किये जाने के बाद हज़रत मूसा (अलै०) ही के ज़माने में उन्हें जिहाद और क़िताल का हुक्म हुआ, लेकिन इससे पूरी क़ौम ने इन्कार कर दिया। इस पर अल्लाह तआला ने उन पर यह सज़ा मुसल्लत कर दी कि यह चालीस बरस तक इसी सहरा में भटकते फिरेंगे। अल्लाह तआला ने फ़रमाया कि अगर यह अभी जिहाद और क़िताल करते तो हम पूरा फ़लस्तीन इनके हाथ से अभी फ़तह करा देते। लेकिन चूँकि इन्होंने बुज़दिली दिखाई है लिहाज़ा अब इनकी सज़ा यह है: {فَاِنَّهَا مُحَرَّمَةٌ عَلَیۡهِمۡ اَرۡبَعِیۡنَ سَنَةً یَتِیۡهُوۡنَ فِی الۡاَرۡضِ} (मायदा:26) यानि अर्दे फ़लस्तीन जो उनके लिये अर्दे मौऊद (वादा की हुई) थी वह उन पर चालीस साल के लिये हराम कर दी गयी है, अब यह चालीस साल तक इसी सहरा में भटकते फिरेंगे। सहरानावरदी (cross-country) के इस अर्से में हज़रत मूसा (अलै०) का भी इन्तेक़ाल हो गया और हज़रत हारून (अलै०) का भी। इस अर्से में एक नयी नस्ल पैदा हुई और

वह नस्ल जो मिस्र से गुलामी का दाग़ उठाये हुए आयी थी वह पूरी की पूरी ख़त्म हो गयी। गुलामी का यह असर होता है कि गुलाम क़ौम के अन्दर अख़्लाक़ व किरदार की कमज़ोरियाँ पैदा हो जाती हैं। सहरानावरदी के ज़माने में जो नस्ल पैदा हुई और सहरा ही में परवान चढ़ी वह एक आज़ाद नस्ल थी जो उन कमज़ोरियों से पाक थी और उनमें एक जज़्बा था। बनी इसराइल की इस नयी नस्ल ने हज़रत मूसा (अलै०) के ख़लीफ़ा यूशा बिन नून [तौरात में इनका नाम येशूआ (Joshua) आया है] की क़यादत में क़िताल किया और पहला शहर जो फतह हुआ वह "अरीहा" था। यह शहर आज भी जेरिका (Jericho) के नाम से मौजूद है।

यहाँ पर इस फ़तह के बाद का तज़किरा हो रहा है कि याद करो जबकि हमने तुमसे कहा था कि इस शहर में फ़ातेह की हैसियत से दाखिल हो जाओ और फिर जो कुछ नेअमतें यहाँ हैं उनसे मुतमताअ (आनंदित) हो, खूब खाओ-पीयो, लेकिन शहर के दरवाज़े से सज्दा करते हुए दाखिल होना। मुराद यह है कि झुक कर, सज्दाये शुक्र बजालाते हुए दाखिल होना। ऐसा ना हो कि तकब्बुर की वजह से तुम्हारी गरदनें अकड़ जायें। अल्लाह का अहसान मानते हुए गरदनें झुका कर दाखिल होना। यह ना समझना कि यह फ़तह तुमने ब-ज़ोरे बाज़ू हासिल की है। इसका नक़्शा हमें मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की शख्सियत में नज़र आता है कि जब फ़तह मक्का के मौक़े पर आप ﷺ मक्का में दाखिल हुए तो जिस सवारी पर आप ﷺ बैठे हुए थे आप ﷺ की पेशानी मुबारक उसकी गर्दन के साथ जुड़ी हुई थी। यह वक़्त होता है जबकि एक फ़ातेह तकब्बुर और तअल्ली (बड़प्पन) का

मुज़ाहिरा करता है, लेकिन बन्दा-ए-मोमिन के लिये यही वक़्त तवाज़े (विनम्रता) का और झुकने का है।

इसके साथ ही उन्हें हुक्म दिया गया: {وَّقُوْلُوْا حِطَّةٌ} "और कहते जाओ मग़फ़िरत-मग़फ़िररत।" حِطَّةٌ का वज़न فِعْلَةٌ और माद्दा "ح ط ط" है। حَطَّ يَحُطُّ حَطًّا के मुतअद्दिद (कई) मायने हैं, जिनमें से एक "पत्ते झाड़ना" है। मसलन कहेंगे حَطَّ وَرَقَ الشَّجَرِ (उसने दरख़्त के पत्ते झाड़ दिये)। حِطَّةٌ के मायने "अस्तग़फ़ार, तलब-ए-मग़फ़िररत और तौबा" के किये जाते हैं। गोया इसमें गुनाहों को झाड़ देने और ख़ताओं को माफ़ कर देने का मफ़हूम है। चुनाँचे "وَّقُوْلُوْا حِطَّةٌ" का मफ़हूम यह होगा कि मफ़तूह बस्ती में दाखिल होते वक़्त जहाँ तुम्हारी गरदनें आजिज़ी के साथ झुकी होनी चाहिये वहीं तुम्हारी ज़ुबान पर भी इस्तग़फ़ार होना चाहिये कि ऐ अल्लाह हमारे गुनाह झाड़ दे, हमारी मग़फ़िरत फ़रमा दे, हमारी ख़ताओं को बख़्श दे! अगर तुम हमारे इस हुक्म पर अमल करोगे तो हम तुम्हारी ख़तायें माफ़ फ़रमा देंगे, और तुम में जो मोहसिन और नेकोकार होंगे उन्हें मज़ीद फ़ज़ल व करम और ईनाम व इकराम से नवाज़ेंगे।

आयत 59

فَبَدَّلَ الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا قَوْلًا غَيْرَ الَّذِىْ قِيْلَ لَهُمْ

"फिर बदल डाला ज़ालिमों ने बात को खिलाफ़ उसके जो उनसे कह दी गयी थी"

उनमें से जो ज़ालिम थे, बदकार थे उन्होंने एक और क़ौल इख़्तियार कर लिया उस क़ौल की जगह जो उनसे कहा गया था। उनसे कहा गया था कि "हित्तातुन-हित्तातुन" कहते हुए दाखिल होना, लेकिन उन्होंने इसकी बजाय "हिन्तातुन-हिन्तातुन" कहना शुरू कर दिया, यानि हमें तो गेहूँ चाहिये, गेहूँ चाहिये! अगले रुकूअ में यह बात आ जायेगी कि मन्न व सलवा खाते-खाते बनी इसराइल की तबीयतें भर गयी थीं, एक ही चीज़ खा-खा कर वह उकता गये थे और अब वह कह रहे थे कि हमें ज़मीन की रूईदगी और पैदावार में से कोई चीज़ खाने को मिलनी चाहिये। इस ख़्वाहिश का इज़हार उनकी ज़बानों पर "हिन्तातुन-हिन्तातुन" की सूरत में आ गया। इस तरह उन्होंने अल्लाह तआला के उस हुक्म का इस्तेहज़ाअ व तमस्खुर किया जो उन्हें "وَّقُوْلُوْا حِطَّةٌ" के अल्फ़ाज़ में दिया गया था। इसी तरह शहर में सज्दारेज़ होते हुए दाखिल होने की बजाय उन्होंने अपने सरीनों पर फिसलना शुरू किया।

فَاَنْزَلْنَا عَلَى الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا رِجْزًا مِّنَ السَّمَاۗءِ

"फिर हमने उतारा ज़ुल्म करने वालों पर एक बड़ा अज़ाब आसमान से"

जिन ज़ालिमों ने अल्लाह तआला के हुक्म का इस्तेहज़ाअ व तमस्ख़ुर किया था उन पर आसमान से एक बहुत बड़ा अज़ाब नाज़िल हुआ। तौरात से मालूम होता है कि अरीहा शहर में पहुँचने के बाद उन्हें ताऊन की वबा (महामारी) ने आलिया (पकड़ लिया) और जिन्होंने यह हरकत की थी वह सबके सब हलाक़ हो गये।

بِمَا كَانُوْا يَفْسُقُوْنَ ۝٥٩

"ब-सबब उस नाफ़रमानी के जो उन्होंने की।"

यह उन नाफ़रमानियों और हुक्म अदलियों (उल्लंघन) की सज़ा थी जो वह कर रहे थे।

आयात 60 से 61 तक

وَاِذِ اسْتَسْقٰى مُوْسٰى لِقَوْمِهٖ فَقُلْنَا اضْرِبْ بِّعَصَاكَ
الْحَجَرَ ۭ فَانْفَجَرَتْ مِنْهُ اثْنَتَا عَشْرَةَ عَيْنًا ۭ قَدْ
عَلِمَ كُلُّ اُنَاسٍ مَّشْرَبَهُمْ ۭ كُلُوْا وَاشْرَبُوْا مِنْ رِّزْقِ
اللّٰهِ وَلَا تَعْثَوْا فِى الْاَرْضِ مُفْسِدِيْنَ ۝٦٠ وَاِذْ قُلْتُمْ
يٰمُوْسٰى لَنْ نَّصْبِرَ عَلٰى طَعَامٍ وَّاحِدٍ فَادْعُ لَنَا رَبَّكَ

يُخْرِجْ لَنَا مِمَّا تُنْبِتُ الْاَرْضُ مِنْۢ بَقْلِهَا وَقِثَّآىِٕهَا وَفُوْمِهَا وَعَدَسِهَا وَبَصَلِهَا ؕ قَالَ اَتَسْتَبْدِلُوْنَ الَّذِیْ هُوَ اَدْنٰی بِالَّذِیْ هُوَ خَیْرٌ ؕ اِهْبِطُوْا مِصْرًا فَاِنَّ لَكُمْ مَّا سَاَلْتُمْ ؕ وَضُرِبَتْ عَلَیْهِمُ الذِّلَّةُ وَالْمَسْكَنَةُ ۗ وَبَآءُوْ بِغَضَبٍ مِّنَ اللّٰهِ ؕ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ كَانُوْا یَكْفُرُوْنَ بِاٰیٰتِ اللّٰهِ وَیَقْتُلُوْنَ النَّبِیّٖنَ بِغَیْرِ الْحَقِّ ؕ ذٰلِكَ بِمَا عَصَوْا وَّكَانُوْا یَعْتَدُوْنَ ﴿۶۱﴾

अब यहाँ फिर सहराये सीना के वाक़िआत बयान हो रहे हैं। इन वाक़िआत में तरतीबे ज़मानी नहीं है। अरीहा की फ़तह मूसा अलै० के बाद हुई, जिसका ज़िक्र गुज़िश्ता आयात में हुआ, लेकिन अब यहाँ फिर उस दौर के वाक़िआत आ रहे हैं जब बनी इसराइल सहराये तईहा में भटक रहे थे।

आयत 60

وَاِذِ اسْتَسْقٰی مُوْسٰی لِقَوْمِهٖ فَقُلْنَا اضْرِبْ بِّعَصَاكَ الْحَجَرَ ؕ

“और जब पानी माँगा मूसा (अलै०) ने अपनी क़ौम के लिये तो हमने कहा ज़र्ब (चोट) लगाओ अपने असा (लाठी) से चट्टान पर।”

सहराये सीना में छ: लाख से ज़ायद बनी इसराइल पड़ाव डाले हुए थे और वहाँ पानी नहीं था। उन्होंने हज़रत मूसा अलै० से पानी तलब किया। हज़रत मूसा अलै० ने अल्लाह तआला से अपनी क़ौम के लिये पानी की दुआ की तो उन्हें अल्लाह तआला ने हुक्म दिया कि अपने असा से चट्टान पर ज़र्ब लगाओ।

فَانْفَجَرَتْ مِنْهُ اثْنَتَا عَشْرَةَ عَيْنًا ؕ

"तो उससे बारह चश्में फूट बहे।"

"فَجَرَ" कहते हैं कोई चीज़ फट कर उससे किसी चीज़ का बरामद होना। फज्र के वक़्त को फज्र इसी लिये कहते हैं कि उस वक़्त रात की तारीकी का परदा चाक होता है और सफेदा सहर नमोदार होता है।

قَدْ عَلِمَ كُلُّ اُنَاسٍ مَّشْرَبَهُمْ ؕ

"हर क़बीले ने अपना घाट जान लिया (और मुअय्यन कर लिया)।"

बनी इसराइल के बारह क़बीले थे, अगर उनके लिये अलैहदा-अलैहदा घाट ना होता तो उनमें बाहम लड़ाई झगड़े का मामला होता। उन्हें बारह चश्में इसी लिये दिये गये थे कि आपस में लड़ाई झगड़ा ना हो। पानी तो बहुत बड़ी चीज़ है और क़बाइली ज़िन्दगी में इसकी बुनियाद पर जंग व जदल का आगाज़ हो सकता है।

कहीं पानी पीने-पिलाने पे झगड़ा
कहीं घोड़ा आगे बढ़ाने पे झगड़ा

तो इस ऐतबार से अल्लाह तआला ने उनके लिये यह सहुलत मुहैय्या की कि बारह चश्में फूट बहे और हर क़बीले ने अपना घाट मुअय्यन कर लिया।

كُلُوْا وَاشْرَبُوْا مِنْ رِّزْقِ اللّٰهِ

"(गोया उनसे यह कह दिया गया कि) खाओ और पियो अल्लाह के रिज़्क़ में से"

وَلَا تَعْثَوْا فِي الْاَرْضِ مُفْسِدِيْنَ ۝٦٠

"और ज़मीन में फ़साद मचाते ना फिरो।"

सहरा में उनके लिये पीने को पानी भी मुहैय्या कर दिया गया और खाने के लिये मन्न व सलवा उतार दिया गया, लेकिन उन्होंने नाशुक्री का मामला किया, जिसका ज़िक्र मुलाहिज़ा हो।

आयत 61

وَاِذْ قُلْتُمْ يٰمُوْسٰى لَنْ نَّصْبِرَ عَلٰى طَعَامٍ وَّاحِدٍ

"और याद करो जबकि तुमने कहा था ऐ मूसा !हम एक ही खाने पर सब्र नहीं कर सकते"

मन्न व सलवा खा-खा कर अब हम उकता गये हैं।

فَادْعُ لَنَا رَبَّكَ

"तो ज़रा अपने रब से हमारे लिये दुआ करो"

يُخْرِجْ لَنَا مِمَّا تُنْۢبِتُ الْاَرْضُ

"कि निकाले हमारे लिये उससे कि जो ज़मीन उगाती है"

यानि ज़मीन की पैदावार में से, नबाताते अर्ज़ी में से हमें रिज़्क़ दिया जाये।

مِنْۢ بَقْلِهَا

"उसकी तरकारियाँ"

وَقِثَّاۗىِٕهَا

"और ककड़ियाँ"

यह लफ्ज़ खीरे और ककड़ी वगैरह सबके लिये इस्तेमाल होता है।

وَفُوْمِهَا

"और लहसुन"

फ़ूम का एक तर्जुमा गेहूँ किया गया है, लेकिन मेरे नज़दीक ज़्यादा सही तर्जुमा लहसुन है। अरबी में इसके लिये बिल्उमूम लफ्ज़ "ثُوم" इस्तेमाल किया जाता है। लहसुन को फ़ारसी में तूम और पंजाबी, सराइकी और सिन्धी में "थूम" कहते हैं और यह फ़ूम और सूम ही की बदली हुई शक्ल है, इसलिये कि अरबों की आमद के बाइस उनकी ज़बान के बहुत से अल्फ़ाज़ सिन्धी और सराइकी ज़बान में शामिल हो गये, जो थोड़ी सी तब्दीली के साथ काफ़ी तादाद में अब भी मौजूद हैं।

وَعَدَسِهَا

"और मसूर"

وَبَصَلِهَا ؕ

"और प्याज़।"

अब जो सालन के चटखारे इन चीज़ों से बनते हैं उनकी ज़बानें वह चटखारे माँग रही थीं। बनी इसराइल सहराये सीना में एक ही तरह की गिज़ा "मन्न व सलवा" खाते-खाते उकता गये थे, लिहाज़ा वह हज़रत मूसा अलै० से कहने लगे कि हमें ज़मीन से उगने वाली चटखारेदार चीज़ें चाहिये।

قَالَ اَتَسْتَبْدِلُوْنَ الَّذِیْ هُوَ اَدْنٰی بِالَّذِیْ هُوَ خَیْرٌ ؕ

"हज़रत मूसा अलै० ने फ़रमाया: क्या तुम वह शय लेना चाहते हो जो कमतर है उसके बदले में जो बेहतर है?"

मन्न व सलवा नबाताते अर्ज़ी से कहीं बेहतर है जो अल्लाह की तरफ़ से तुम्हें दिया गया है। तो इससे तुम्हारा जी भर गया है और इसको हाथ से देकर चाहते हो कि यह अदना चीज़ें तुम्हें मिलें?

اِهْبِطُوْا مِصْرًا فَاِنَّ لَكُمْ مَّا سَاَلْتُمْ ؕ

"उतरो किसी शहर में तो तुमको मिल जायेगा जो कुछ तुम माँगते हो।"

लफ्ज़ "اِهْبِطُوْا" पर आयत 38 के ज़ैल में बात हो चुकी है कि इसका मायने बुलन्दी से उतरने का है। ज़ाहिर बात है यहाँ

यह लफ्ज़ आसमान से ज़मीन पर उतरने के लिये नहीं आया, बल्कि इसका सही मफ़हूम यह होगा कि किसी बस्ती में जाकर आबाद हो जाओ! (settle down somewhere) अगर तुम्हें ज़मीन की पैदावार में से यह चीज़ें चाहियें तो कहीं आबाद (settle) हो जाओ और काश्तकारी करो, यह सारी चीज़ें तुम्हें मिल जायेगी।

وَضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ الذِّلَّةُ وَالْمَسْكَنَةُ ۗ

"और उन पर ज़िल्लत व ख्वारी और मोहताजी व कम हिम्मती थोप दी गयी।"

وَبَآءُوْ بِغَضَبٍ مِّنَ اللّٰهِ ۭ

"और वह अल्लाह का गज़ब लेकर लौटे।"

वह अल्लाह के ग़ज़ब में घिर गये।

बनी इसराइल वह उम्मत थी जिसके बारे में फ़रमाया गया (बक़रह:47) {وَاَنِّىْ فَضَّلْتُكُمْ عَلَى الْعٰلَمِيْنَ ۝} उसी उम्मत का फिर यह हश्र हुआ तो क्यों हुआ? अल्लाह तआला की नाफ़रमानी की वजह से! उन्हें किताब दी गयी थी कि उसकी पैरवी करें और उसे क़ायम करें। सूरतुल मायदा (आयत:66) में फ़रमाया गया:

وَلَوْ اَنَّهُمْ اَقَامُوا التَّوْرٰىةَ وَالْاِنْجِيْلَ وَمَآ اُنْزِلَ اِلَيْهِمْ مِّنْ رَّبِّهِمْ

"अगर यह (अहले किताब) तौरात और इन्जील और उन दूसरी किताबों को क़ायम करते जो उनकी जानिब उनके रब की तरफ़ से उतारी गयीं तो खाते

لَاَكَلُوْا مِنْ فَوْقِهِمْ وَمِنْ تَحْتِ اَرْجُلِهِمْ ؕ

अपने ऊपर से और अपने क़दमों के नीचे से।"

यानि उनके सरों के ऊपर से भी नेअमतों की बारिश होती और ज़मीन भी उनके लिये नेअमतें उगलती। लेकिन उन्होंने इसको छोड़ कर अपनी ख्वाहिशात, अपने नज़रियात, अपने ख्यालात, अपनी अक़्ल और अपनी मसलहतों को मुक़द्दम किया, और अपने तमर्रुद (विद्रोह), अपनी सरकशी और अपनी हाकमियत को बालातर किया। जो क़ौम दुनिया में अल्लाह के क़ानून, अल्लाह की हिदायत और अल्लाह की किताब की अमीन होती है वह अल्लाह की नुमाइन्दा (representative) होती है, और अगर वह अपने अमल से गलत नुमाइन्दगी (misrepresent) करे तो वह अल्लाह के नज़दीक काफ़िरों से बढ़ कर मग़ज़ूब (तुच्छ) और मबग़ूज़ (घृणित) हो जाती है। इसलिये कि काफ़िरों को दीन पहुँचाना तो इस मुस्लमान उम्मत के ज़िम्मे था। अगर यह खुद ही दीन से मुन्हरिफ़ हो गये तो किसी और को क्या दीन पहुँचायेंगे? आज इस मक़ाम पर मौजूदा उम्मते मुस्लिमा खड़ी है कि तादाद में सवा अरब या डेढ़ अरब होने के बावजूद उनके हिस्से में इज़्ज़त नाम की कोई शय नहीं है। दुनिया के सारे मामलात जी-7 और जी-15 मुमालिक के हाथ में हैं। सिक्योरिटी काउंसिल के मुस्तक़िल अरकान को वीटो का हक़ हासिल है, लेकिन कोई मुस्लमान मुल्क ना तो सिक्योरिटी काउंसिल का मुस्तक़िल रुकन है और ना ही जी-7, जी-9 या जी-15 में शामिल है। गोया *"किस नमी पुरसद*

के भैया कैस्ती!" हमारी अपनी पालिसियाँ कहीं और तय होती हैं, हमारे अपने बजट कहीं और बनते हैं, हमारी सुलह और जंग किसी और के इशारे से रिमोर्ट कन्ट्रोल अन्दाज़ में होती हैं। यह ज़िल्लत और मसकनत है जो आज हम पर थोप दी गयी है। हम कहते हैं कश्मीर हमारी शह रग है, लेकिन उसके लिये जंग करने को हम तैयार नहीं हैं। यह ख़ौफ नहीं है तो क्या है? यह मसकनत नहीं है तो क्या है? अगर अल्लाह पर यक़ीन है और अपने हक़ पर होने का यक़ीन है तो अपनी शह रग दुश्मन के कब्ज़े से आज़ाद कराने के लिये हिम्मत करो। लेकिन नहीं, हम में यह हिम्मत मौजूद नहीं है। हमारे रेडियो और टेलीविज़न पर ख़बरें आती रहेंगी कि काबिज़ भारतीय फौज ने रियासती दहशतगर्दी की कार्यवाहियों में इतने कश्मीरियों को शहीद कर दिया, इतनी मुस्लमान औरतों की बेहुरमती कर दी, लेकिन हम यहाँ अपने-अपने धन्धों में, अपने-अपने कारोबार में, अपनी-अपनी मुलाज़मतों में और अपने-अपने कैरियर्ज़ में मगन हैं। बहरहाल मुताज़क्किरह बिलअल्फ़ाज़ अगरचे बनी इसराइल के लिये आये हैं कि उन पर ज़िल्लत व ख्वारी और मोहताजी व कम हिम्मती मुसल्लत कर दी गयी, लेकिन इसमें आज की उम्मते मुस्लिमा का नक़्शा भी मौजूद है।

खुशतर आं बाशिद कि सर दिलबरां
गुफ्ता आयद दर हदीस दीगरां!

ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ كَانُوْا يَكْفُرُوْنَ بِاٰيٰتِ اللّٰهِ

"यह इसलिये हुआ कि वह अल्लाह की आयात का इन्कार करते रहे"

وَيَقْتُلُوْنَ النَّبِيّٖنَ بِغَيْرِ الْحَقِّ ۭ

"और अल्लाह के नबियों को नाहक़ क़त्ल करते रहे।"

हमारे यहाँ भी मुजद्दिदे दीने उम्मत को क़त्ल भी किया गया और उनमे से कितने हैं जो जेलों में ड़ाले गये। मुतअद्दिद सहाबा किराम (रजि०) और सैंकडों ताबईन मुस्तबद (कट्टरपंथी) हुक्मरानों के हाथों मौत के घाट उतार दिये गये। अइम्मा-ए-दीन को ऐसी-ऐसी मार पड़ी है कि कहा जाता है कि हाथी को भी ऐसी मार पड़े तो वह बर्दाश्त ना कर सके। इमाम अहमद बिन हम्बल (रहि०) के साथ क्या कुछ हुआ! इमाम अबु हनीफ़ा (रहि०) ने जेल में इन्तेक़ाल किया और वहाँ से उनका जनाज़ा उठा। इमामे दारुल हिजरत इमाम मालिक (रहि०) के कन्धें खींच दिये गये और मुँह काला करके उन्हें ऊँट पर बिठा कर फिराया गया। हज़रत मुजद्दि अल्फ़े सानी शेख अहमद सरहन्दी (रहि०) को पसे दीवार ज़िन्दा ड़ाला गया। सय्यद अहमद बरेलवी (रहि०) और उनके साथियों को खुद मुस्लमानों ने शहीद करवा दिया। हमारी तारीख ऐसी दास्तानों से भरी पड़ी है। अब नबी तो कोई नहीं आयेगा। उनके यहाँ नबी थे, हमारे यहाँ मुजद्दिदीन हैं, उलमाये हक़ हैं। उन्होंने जो कुछ अम्बिया (अलै०) के साथ किया वही हमने मुजद्दिदे दीन के साथ किया।

ذٰلِكَ بِمَا عَصَوْا وَّكَانُوْا يَعْتَدُوْنَ ۝۶۱ؑ

"और यह इसलिये हुआ कि वह नाफ़रमान थे और हद से तजावुज़ करते थे।"

उनको यह सज़ा उनकी नाफ़रमानियों की वजह से और हद से तजावुज़ करने की वजह से दी गयी। अल्लाह तआला तो ज़ालिम नहीं है (नाऊज़ुबिल्लहा), अल्लाह तआला ने तो उन्हें ऊँचा मक़ाम दिया था। अल्लाह तआला ने हमें भी "ख़ैर उम्मत" क़रार दिया। हमने भी जब अपना मिशन छोड़ दिया तो ज़िल्लत और मसकनत हमारा मुक़द्दर बन गयी। अल्लाह का क़ानून और अल्लाह का अद्ल बे लाग है। यह सबके लिये एक है, हर उम्मत के लिये अलग-अलग नहीं है। अल्लाह की सुन्नत बदलती नहीं। चुनाँचे बनी इसराइल की बद आमालियों के सबब उनका जो हश्र हुआ आज वह हमारा हो रहा है। इस ज़िमन में मेरीकिताब "साबक़ा और मौजूदा मुस्लमान उम्मतों का माज़ी, हाल और मुस्तक़बिल" के नाम से मौजूद है, उसका मुतअला कीजिये!

आयात 62 से 66 तक

إِنَّ الَّذِينَ آمَنُوا وَالَّذِينَ هَادُوا وَالنَّصَارَىٰ
وَالصَّابِئِينَ مَنْ آمَنَ بِاللَّهِ وَالْيَوْمِ الْآخِرِ وَعَمِلَ
صَالِحًا فَلَهُمْ أَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ وَلَا خَوْفٌ
عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُونَ ﴿٦٢﴾ وَإِذْ أَخَذْنَا مِيثَاقَكُمْ
وَرَفَعْنَا فَوْقَكُمُ الطُّورَ خُذُوا مَا آتَيْنَاكُمْ بِقُوَّةٍ
وَاذْكُرُوا مَا فِيهِ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُونَ ﴿٦٣﴾ ثُمَّ تَوَلَّيْتُمْ مِنْ

بَعۡدِ ذٰلِكَ ۚ فَلَوۡلَا فَضۡلُ اللّٰهِ عَلَيۡكُمۡ وَرَحۡمَتُهٗ لَكُنۡتُمۡ
مِّنَ الۡخٰسِرِيۡنَ ۞ وَلَقَدۡ عَلِمۡتُمُ الَّذِيۡنَ اعۡتَدَوۡا مِنۡكُمۡ
فِى السَّبۡتِ فَقُلۡنَا لَهُمۡ كُوۡنُوۡا قِرَدَةً خٰسِـِٔيۡنَ ۞
فَجَعَلۡنٰهَا نَكَالًا لِّمَا بَيۡنَ يَدَيۡهَا وَمَا خَلۡفَهَا وَمَوۡعِظَةً
لِّلۡمُتَّقِيۡنَ ۞

अब वह आयत आ रही है कि जिससे बाज़ लोगों ने यह इस्तदलाल किया है कि निजाते उखरवी के लिये ईमान बिर्रिसालत ज़रूरी नहीं है।

आयत 62

"यक़ीनन जो लोग ईमान लाये" اِنَّ الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا

और इससे मुराद है जो ईमान लाये मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर।

"और जो यहूदी हो गये और नसरानी" وَالَّذِيۡنَ هَادُوۡا

وَالنَّصٰرٰى

"और साबी" وَالصّٰبِـِٔيۡنَ

साबी वह लोग थे जो ईराक़ के इलाक़े में रहते थे और उनका कहना था कि हम दीने इब्राहीमी पर हैं। लेकिन उनके यहाँ भी बहुत कुछ बिगड़ गया था। जैसे हज़रत इब्राहीम (अलै०) की नस्ल बिगाड़ का शिकार हो गयी थी इसी तरह वह भी बिगड़ गये थे और उनके यहाँ ज़्यादातर सितारा परस्ती रिवाज पा गयी थी।

مَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ

"जो कोई भी ईमान लाया (उनमें से) अल्लाह पर और यौमे आखिर पर"

وَعَمِلَ صَالِحًا

"और उसने अच्छे अमल किये"

فَلَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ

"तो उनके लिये (महफ़ूज़) है उनका अज्र उनके रब के पास"

وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ۝٦٢

"और ना उन पर कोई ख़ौफ़ होगा और ना ग़मगीन होंगे।"

उन लोगों को ना तो कोई ख़ौफ़ दामनगीर होगा और ना ही वह किसी हज़्न से दो चार होंगे। ज़ाहिर अल्फ़ाज़ के ऐतबार से देखें तो यहाँ ईमान बिर्रिसालत का ज़िक्र नहीं है। अगर कोई इससे गलत इस्तदलाल करता है तो इसका पहला उसूली जवाब तो यह है कि बाज़ अहादीस में ऐसे अल्फ़ाज़

भी मौजूद हैं: ((مَنْ قَالَ لَا اِلٰہَ اِلَّا اللّٰہُ دَخَلَ الْجَنَّۃَ)) तो क्या इसके यह मायने हैं कि सिर्फ़ ला इलाहा इल्लल्लाह कहने से जन्नत में दाखिल हो जायेंगे, किसी अमल की ज़रूरत नहीं? बल्कि किसी हदीस का मफ़हूम अखज़ करने के लिये पूरे क़ुरान को और पूरे ज़खीरा-ए-अहादीस को सामने रखना होगा। किसी एक जगह से कोई नतीजा निकाल लेना सही नहीं है। लेकिन इसके अलावा छठे रुकूअ के आगाज़ में यह उसूली बात भी बयान की जा चुकी है कि सूरतुल बक़रह का पाँचवा रुकूअ छठे रुकूअ से शुरू होने वाले सारे मज़ामीन से ज़र्ब खा रहा है, जिसमें मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ और आप ﷺ पर नाज़िल होने वाले क़ुरान पर ईमान लाने की पुरज़ोर दावत बा-अल्फाज़ (आयत:41) मौजूद है: {وَاٰمِنُوْا بِمَآ اَنْزَلْتُ مُصَدِّقًا لِّمَا مَعَكُمْ وَلَا تَكُوْنُوْٓا اَوَّلَ كَافِرٍۢ بِهٖ} "और ईमान लाओ इस किताब पर जो मैंने नाज़िल की है, जो तस्दीक़ करते हुए आयी है उस किताब की जो तुम्हारे पास है, और तुम ही सबसे पहले इसका कुफ़्र करने वाले ना बन जाओ।" अब फ़साहत और बलागत का यह तक़ाज़ा है कि एक बात बार-बार ना दोहरायी जाये। अलबत्ता यह बात हर जगह मुक़द्दर (understood) समझी जायेगी। इसलिये कि सारी गुफ्तुगू इसी के हवाले से हो रही है। इस हवाले से अब यूँ समझिये कि आयते ज़ेरे मुतआला में "فِیْ اَیَّامِهِمْ" या "فِیْ اَزْمِنَتِهِمْ" (अपने-अपने दौर में) के अल्फ़ाज़ महज़ूफ़ माने जायेंगे। गोया:

اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَالَّذِيْنَ هَادُوْا وَالنَّصٰرٰى وَالصّٰبِــِٕيْنَ مَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَعَمِلَ صَالِحًا ﴿فِىْ اٰيَامِهِمْ﴾ فَلَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿٦٢﴾

यानि निजाते उखरवी के लिये अल्लाह तआला और रोज़े क़यामत पर ईमान के साथ-साथ अपने दौर के नबी पर ईमान लाना भी ज़रूरी है। चुनाँचे जब तक हज़रत ईसा (अलै०) नहीं आये थे तो हज़रत मूसा (अलै०) के मानने वाले जो भी यहूदी मौजूद थे, जो अल्लाह पर ईमान रखते थे, आख़िरत को मानते थे और नेक अमल करते थे उनकी निजात हो जायेगी। लेकिन जिन्होंने हज़रत ईसा (अलै०) के आने के बाद उन (अलै०) को नहीं माना तो अब वह काफ़िर क़रार पाये। मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की बेअसत से क़ब्ल हज़रत ईसा (अलै०) तक तमाम रसूलों पर ईमान निजाते उखरवी के लिये काफ़ी था, लेकिन मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की बेअसत के बाद आप ﷺ पर ईमान ना लाने वाले काफ़िर क़रार पायेंगे।

आयते ज़ेरे मुतअला में असल ज़ोर इस बात पर है कि यह ना समझो कि किसी गिरोह में शामिल होने से निजात पाओगे, निजात किसी गिरोह में शामिल होने की वजह से नहीं है, बल्कि निजात की बुनियाद ईमान और अमल सालेह है। अपने दौर के रसूल पर ईमान लाना तो लाज़िम है,

लेकिन इसके साथ अगर अमल सालेह नहीं है तो निजात नहीं होगी। क़ुरान मजीद के एक मक़ाम पर आया है: {وَلِكُلِّ اُمَّةٍ اَجَلٌ} (आराफ़:34) "और हर उम्मत के लिये एक खास मुअय्यन मुद्दत है।" हर उम्मत इस मुअय्यना मुद्दत ही की मुकल्लिफ़ है। ज़ाहिर है कि जो लोग मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की बेअसत से पहले फ़ौत हो गये उन पर तो आप ﷺ पर ईमान लाने की कोई ज़िम्मेदारी नहीं थी। बेअसते नबवी ﷺ से क़ब्ल ऐसे मुवह्हिदीन मक्का मुकर्रमा में मौजूद थे जो काबा के परदे पकड़-पकड़ कर यह कहते थे कि ऐ अल्लाह! हम सिर्फ़ तेरी बन्दगी करना चाहते हैं, लेकिन जानते नहीं कि कैसे करें। हज़रत उमर (रज़ि०) के बहनोई और फ़ातिमा (रज़ि०) बिन्ते खत्ताब के शौहर हज़रत सईद बिन ज़ैद (रज़ि०) (जो अशरा-ए-मुबश्शरा में से हैं) के वालिद ज़ैद का यही मामला था। वह यह कहते हुए दुनिया से चले गये कि: "ऐ अल्लाह! मैं सिर्फ़ तेरी बन्दगी करना चाहता हूँ, मगर नहीं जानता कि कैसे करूँ।"

सूरतुल फ़ातिहा के मुताअले के दौरान मैंने कहा था कि एक सलीमुल फ़ितरत और सलीमुल अक़्ल इन्सान तौहीद तक पहुँच जाता है, आख़िरत को पहचान लेता है, लेकिन आगे वह नहीं जानता कि अब क्या करे। अहकामे शरीअत की तफ़सील के लिये वह "रब्बुल आलामीन" और "मालिकी यौमइद्दीन" के हज़ूर दस्ते सवाल-दराज़ करने पर मजबूर है कि: {اِهۡدِنَا الصِّرَاطَ الۡمُسۡتَقِيۡمَ ۙ﴿۵﴾} उसी सिराते मुस्तक़ीम की दुआ का जवाब यह क़ुरान हकीम है, और इसमें सूरतुल बक़रह ही से अहकामे शरीअत का सिलसिला शुरू किया जा

रहा है कि यह करो, यह ना करो, यह फ़र्ज़ है, यह तुम पर लाज़िम किया गया है और यह चीज़ें हराम की गयी हैं।

आयत 63

وَاِذْ اَخَذْنَا مِيْثَاقَكُمْ وَرَفَعْنَا فَوْقَكُمُ الطُّوْرَ ۭ

"और ज़रा याद करो जब हमने तुमसे क़ौल व क़रार लिया और तुम्हारे ऊपर उठा दिया कोहे तूर को।"

बनी इसराइल को जब तौरात दी गयी तो उस वक़्त उनके दिलों में अल्लाह और उसकी किताब की हैबत (दहशत) डालने और ख़शियत (डर) पैदा करने के लिये मौज्ज़ाना तौर पर एक ऐसी कैफ़ियत पैदा की गयी कि उनके ऊपर कोहे तूर उठा कर मुअल्लक़ (लटका) कर दिया गया। उस वक़्त उनसे कहा गया:

خُذُوْا مَآ اٰتَيْنٰكُمْ بِقُوَّةٍ

"पकड़ो इसको मज़बूती के साथ जो हमने तुमको दिया है।"

इस किताब तौरात को और इसमें बयान करदा अहकामे शरीअत को मज़बूती के साथ थाम लो।

وَّاذْكُرُوْا مَا فِيْهِ

"और याद रखो उसे जो कुछ कि इसमें है"

لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ۝٦٣

"ताकि तुम बच सको।"

आयत 64

ثُمَّ تَوَلَّيْتُمْ مِّنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ ۚ

"फिर तुमने रू-गरदानी की उसके बाद।"

यानि जो मीसाक़े शरीअत तुमसे लिया गया था उसको तोड़ डाला।

فَلَوْلَا فَضْلُ اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَرَحْمَتُهٗ لَكُنْتُمْ مِّنَ الْخٰسِرِيْنَ ۝٦٤

"फिर अगर तुम पर अल्लाह का फ़ज़ल और उसकी मेहरबानी ना होती तो तुम (उसी वक़्त) खसारा पाने वाले हो जाते।"

अगर अल्लाह तआला का फ़ज़ल तुम्हारे शामिले हाल ना होता और उसकी रहमत तुम्हारी दस्तगीरी ना करती रहती, तुम्हें बार-बार माफ़ ना किया जाता और तुम्हें बार-बार मोहलत ना दी जाती तो तुम उसी वक़्त तबाह हो जाते।

आयत 65

وَلَقَدْ عَلِمْتُمُ الَّذِيْنَ اعْتَدَوْا مِنْكُمْ فِي السَّبْتِ

"और तुम उन्हें खूब जान चुके हो जिन्होंने तुम में से ज़्यादती की थी हफ्ते के दिन में"

तुम्हें खूब मालूम है कि तुम में से वह कौन लोग थे जिन्होंने सब्त के क़ानून को तोड़ा था और हद से तजावुज़ किया था। यहूद की शरीअत में हफ्ते का रोज़ इबादत के लिये मुअय्यन कर दिया गया था और इस रोज़ दुनियावी काम-काज की इजाज़त नहीं थी। आज भी जो मज़हबी यहूदी (Practicing Jews) हैं वह इसकी पाबन्दी बड़ी शिद्दत से करते हैं। लेकिन एक ज़माने में उनके एक ख़ास क़बीले ने एक शरई हीला ईजाद करके इस क़ानून की धज्जियाँ बिखेर दी थीं। इस वाक़िये की तफ़सील सूरतुल आराफ़ में आयेगी।

فَقُلْنَا لَهُمْ كُوْنُوْا قِرَدَةً خٰسِئِيْنَ ﴿٦٥﴾

"तो हमने कह दिया उनसे कि हो जाओ ज़लील बन्दर।"

उनकी शक्लें मस्ख (विरूपण) करके उन्हें बन्दरों की सूरत में तब्दील कर दिया गया। तीन दिन के बाद यह सब मर गये।

आयत 66

فَجَعَلْنٰهَا نَكَالًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهَا وَمَا خَلْفَهَا

"फिर हमने इस (वाक़िये को या इस बस्ती) को इबरत का सामान बना दिया उनके लिये भी जो सामने मौजूद थे (उस ज़माने के लोग) और उनके लिये भी जो बाद में आने वाले थे"

وَمَوْعِظَةً لِّلْمُتَّقِيْنَ ﴿٦٦﴾

"और एक नसीहत (और सबक आमोज़ी की बात) बना दिया अहले तक़वा के लिये।"

आयात 67 से 74 तक

وَاِذْ قَالَ مُوْسٰى لِقَوْمِهٖٓ اِنَّ اللّٰهَ يَاْمُرُكُمْ اَنْ تَذْبَحُوْا
بَقَرَةً ؕ قَالُوْٓا اَتَتَّخِذُنَا هُزُوًا ؕ قَالَ اَعُوْذُ بِاللّٰهِ اَنْ
اَكُوْنَ مِنَ الْجٰهِلِيْنَ ﴿٦٧﴾ قَالُوا ادْعُ لَنَا رَبَّكَ يُبَيِّنْ لَّنَا
مَا هِيَ ؕ قَالَ اِنَّهٗ يَقُوْلُ اِنَّهَا بَقَرَةٌ لَّا فَارِضٌ وَّلَا
بِكْرٌ ؕ عَوَانٌۢ بَيْنَ ذٰلِكَ ؕ فَافْعَلُوْا مَا تُؤْمَرُوْنَ ﴿٦٨﴾
قَالُوا ادْعُ لَنَا رَبَّكَ يُبَيِّنْ لَّنَا مَا لَوْنُهَا ؕ قَالَ اِنَّهٗ
يَقُوْلُ اِنَّهَا بَقَرَةٌ صَفْرَآءُ ۙ فَاقِعٌ لَّوْنُهَا تَسُرُّ النّٰظِرِيْنَ
﴿٦٩﴾ قَالُوا ادْعُ لَنَا رَبَّكَ يُبَيِّنْ لَّنَا مَا هِيَ ۙ اِنَّ الْبَقَرَ

تَشٰبَهَ عَلَيْنَا ؕ وَاِنَّاۤ اِنْ شَآءَ اللّٰهُ لَمُهْتَدُوْنَ ۝۷۰ قَالَ
اِنَّهٗ يَقُوْلُ اِنَّهَا بَقَرَةٌ لَّا ذَلُوْلٌ تُثِيْرُ الْاَرْضَ وَلَا
تَسْقِى الْحَرْثَ ۚ مُسَلَّمَةٌ لَّا شِيَةَ فِيْهَا ؕ قَالُوا الْـٰٔنَ
جِئْتَ بِالْحَقِّ ؕ فَذَبَحُوْهَا وَمَا كَادُوْا يَفْعَلُوْنَ ۝۷۱ؑ وَاِذْ
قَتَلْتُمْ نَفْسًا فَادّٰرَءْتُمْ فِيْهَا ؕ وَاللّٰهُ مُخْرِجٌ مَّا كُنْتُمْ
تَكْتُمُوْنَ ۝۷۲ۚ فَقُلْنَا اضْرِبُوْهُ بِبَعْضِهَا ؕ كَذٰلِكَ يُحْىِ
اللّٰهُ الْمَوْتٰى ۙ وَيُرِيْكُمْ اٰيٰتِهٖ لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ۝۷۳ ثُمَّ
قَسَتْ قُلُوْبُكُمْ مِّنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ فَهِىَ كَالْحِجَارَةِ اَوْ
اَشَدُّ قَسْوَةً ؕ وَاِنَّ مِنَ الْحِجَارَةِ لَمَا يَتَفَجَّرُ مِنْهُ
الْاَنْهٰرُ ؕ وَاِنَّ مِنْهَا لَمَا يَشَّقَّقُ فَيَخْرُجُ مِنْهُ الْمَآءُ ؕ
وَاِنَّ مِنْهَا لَمَا يَهْبِطُ مِنْ خَشْيَةِ اللّٰهِ ؕ وَمَا اللّٰهُ
بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُوْنَ ۝۷۴

इन आयात के मुताअले से क़ब्ल इनका पसमन्ज़र जान लीजिये। बनी इसराइल में आमील नामी एक शख़्स क़त्ल हो गया था और क़ातिल का पता नहीं चल रहा था। अल्लाह तआला ने हज़रत मूसा (अलै०) के ज़रिये से हुक्म दिया कि एक गाय ज़िबह करो और उसके गोश्त का एक टुकड़ा मुर्दा

शख़्स के जिस्म पर मारो तो वह जी उठेगा और बता देगा कि मेरा क़ातिल कौन है।

बनी इसराइल की तारीख में हमें मौज्ज़ात का अमल-दखल बहुत ज़्यादा मिलता है। यह भी उन्हीं मौज्ज़ात में से एक मौज्ज़ाह था। गाय को ज़िबह कराने का एक मक़सद यह भी था कि बनी इसराइल के क़ुलूब व अज़्हान (दिलों व दिमागों) में गाय का जो तक़द्दुस रासिख हो चुका था उस पर तलवार चलायी जाये। और फिर उन्हें यह भी दिखा दिया गया कि एक मुर्दा आदमी ज़िन्दा भी हो सकता है, इस तरह बाअसे बाद अल मौत का एक नक़्शा उन्हें इस दुनिया में दिखा दिया गया। बनी इसराइल को जब गाय ज़िबह करने का हुक्म मिला तो उनके दिलों में जो बछड़े की मोहब्बत और गाय की तक़दीस जड़ पकड़ चुकी थी उसके बाइस उन्होंने इस हुक्म से किसी तरह से बच निकलने के लिये मीन-मेख निकालनी शुरू की और तरह-तरह के सवाल करने लगे कि वह कैसी गाय हो? उसका क्या रंग हो? किस तरह की हो? किस उम्र की हो? बिलआख़िर जब हर तरफ़ से उनका घेराव हो गया और सब चीज़ें उनके सामने वाज़ेह कर दी गयीं तब उन्होंने चार व नाचार बा दिले नाख्वास्ता (ना चाहते हुए) इस हुक्म पर अमल किया। अब हम इन आयात का एक रवा तर्जुमा कर लेते हैं।

आयत 67

وَاِذۡ قَالَ مُوۡسٰی لِقَوۡمِہٖۤ اِنَّ اللّٰہَ یَاۡمُرُکُمۡ اَنۡ تَذۡبَحُوۡا بَقَرَۃً ؕ

"और याद करो जब मूसा (अलै०) ने कहा अपनी क़ौम से कि अल्लाह तुम्हें हुक्म देता है कि एक गाय को ज़िबह करो।"

قَالُوۡۤا اَتَتَّخِذُنَا ہُزُوًا ؕ

"उन्होंने कहा: क्या आप (अलै०) हमसे कुछ ठठ्हा कर रहे हैं?"

क्या आप (अलै०) यह बात हँसी-मज़ाक में कह रहे हैं?

قَالَ اَعُوۡذُ بِاللّٰہِ اَنۡ اَکُوۡنَ مِنَ الۡجٰہِلِیۡنَ ﴿۶۷﴾

"फ़रमाया: मैं अल्लाह की पनाह तलब करता हूँ इससे कि मैं जाहिलों में से हो जाऊँ।"

हँसी-मज़ाक और तमस्खुर व इस्तेहज़ा तो जाहिलों का काम है और अल्लाह के नबी से यह बईद है कि वह दीन के मामलात के अन्दर इन चीज़ों को शामिल कर ले।

आयत 68

قَالُوا ادۡعُ لَنَا رَبَّکَ یُبَیِّنۡ لَّنَا مَا ہِیَ ؕ

"उन्होंने कहा (अच्छा ऐसी ही बात है तो) हमारे लिये ज़रा अपने रब से दुआ कीजिये कि वह हम पर वाज़ेह कर दे कि वह कैसी हो।"

قَالَ اِنَّهٗ يَقُوْلُ اِنَّهَا بَقَرَةٌ لَّا فَارِضٌ وَّلَا بِكْرٌ ؕ

"(हज़रत मूसा अलै० ने) फ़रमाया: अल्लाह तआला फ़रमाता है कि वह एक ऐसी गाय होनी चाहिये जो ना बूढ़ी हो ना बिल्कुल बछिया।"

عَوَانٌۢ بَيْنَ ذٰلِكَ ؕ

"बुढ़ापे और जवानी के बैन-बैन हो।"

فَافْعَلُوْا مَا تُؤْمَرُوْنَ ۞٦٨

"तो अब कर गुज़रो जो तुम्हें हुक्म दिया जा रहा है।"

आयत 69

قَالُوا ادْعُ لَنَا رَبَّكَ يُبَيِّنْ لَّنَا مَا لَوْنُهَا ؕ

"अब उन्होंने कहा (ज़रा एक दफ़ा फिर) हमारे लिये दुआ कीजिये अपने रब से कि वह हमें बता दे कि उसका रंग कैसा हो?"

قَالَ اِنَّهٗ يَقُوْلُ اِنَّهَا بَقَرَةٌ صَفْرَآءُ ۙ فَاقِعٌ لَّوْنُهَا تَسُرُّ النّٰظِرِيْنَ ۞٦٩

"फरमाया: अल्लाह तआला फ़रमाता है वह गाय होनी चाहिये ज़र्द रंग की, जिसका रंग ऐसा शोख हो कि देखने वालों को खूब अच्छी लगे।"

यह खूबियाँ उस गाय की थी जो उनके यहाँ ज़्यादा से ज़्यादा मुक़द्दस समझी जाती थी। अगर पहले ही हुक्म पर अमल पैरा हो जाते तो किसी भी गाय को ज़िबह कर सकते थे। लेकिन एक के बाद दीगर सवालात के बाइस रफ्ता-रफ्ता उनका घेराव होता गया कि जिस गाय के तक़द्दुस का तास्सुर (प्रभाव) उनके ज़हन में ज़्यादा से ज़्यादा था उसी को focus कर दिया गया।

आयत 70

قَالُوا ادْعُ لَنَا رَبَّكَ يُبَيِّنْ لَّنَا مَا هِيَ ۙ

"उन्होंने कहा (ज़रा फिर) अल्लाह से हमारे लिये दुआ कीजिये कि वह हम पर वाज़ेह कर दे कि वह गाय कैसी हो"

إِنَّ الْبَقَرَ تَشٰبَهَ عَلَيْنَا ۭ

"क्योंकि गाय का मामला यक़ीनन हम पर कुछ मुशतबा (संदिग्ध) हो गया है।"

हमें गाय की ताअयीन (selection) में इश्तबाह (चूक) हो गया है।

وَإِنَّآ إِنْ شَآءَ اللّٰهُ لَمُهْتَدُوْنَ ۝

"और अगर अल्लाह ने चाहा तो हम ज़रूर राह पा लेंगे।"

आयत 71

قَالَ اِنَّهٗ يَقُوْلُ اِنَّهَا بَقَرَةٌ لَّا ذَلُوْلٌ تُثِيْرُ الْاَرْضَ وَلَا تَسْقِي الْحَرْثَ ۚ

"फ़रमाया कि अल्लाह फ़रमाता है वह एक ऐसी गाय होनी चाहिये कि जिससे कोई मशक़्क़त ना ली जाती हो, ना वह ज़मीन में हल चलाती हो और ना खेती को पानी देती हो।"

مُسَلَّمَةٌ لَّا شِيَةَ فِيْهَا ۭ

"वह सही सालिम एक रंग होनी चाहिये, उसमें (किसी दूसरे रंग का) कोई दाग तक ना हो।"

قَالُوا الْـٰٔنَ جِئْتَ بِالْحَقِّ ۭ

"उन्होंने कहा अब आप लाये हैं ठीक बात।"

अब तो आप (अलै०) ने बात पूरी तरह वाज़ेह कर दी है।

فَذَبَحُوْهَا وَمَا كَادُوْا يَفْعَلُوْنَ ؀

"तब उन्होंने उसको ज़िबह किया और वह लगते ना थे कि ऐसा कर लेंगे।"

अब वह क्या करते, पे-बा-पे सवालात करते-करते वह घेराव में आ चुके थे, लिहाज़ा बा दिले ना ख्वास्ता वह अपनी मुक़द्दस सुनहरी गाय को ज़िबह करने पर मजबूर हो गये।

यहाँ वाक़िये की तरतीब तौरात से मुख़्तलिफ़ है और ज़िबह बक़रह का जो सबब था वह बाद में बयान हो रहा है, जबकि तौरात में तरतीब दूसरी है।

आयत 72

وَاِذۡ قَتَلۡتُمۡ نَفۡسًا فَادّٰرَءۡتُمۡ فِیۡهَا ؕ

"और याद करो जब तुमने एक शख़्स को क़त्ल कर दिया था, और उसका इल्ज़ाम तुम एक-दूसरे पर लगा रहे थे।"

चुनाँचे पता नहीं चल रहा था कि क़ातिल कौन है।

وَاللّٰهُ مُخۡرِجٌ مَّا كُنۡتُمۡ تَكۡتُمُوۡنَ ﴿ۚ۷۲﴾

"और अल्लाह को ज़ाहिर करना था जो कुछ तुम छुपाते थे।"

अल्लाह तआला फ़ैसला कर चुका था कि जो कुछ तुम छुपा रहे हो उसे निकाल कर रहेगा और वाज़ेह कर देगा।

आयत 73

فَقُلۡنَا اضۡرِبُوۡهُ بِبَعۡضِهَا ؕ

"तो हमने हुक्म दिया कि मक़तूल की लाश को उस गाय के एक टुकड़े से ज़र्ब लगाओ।"

इस तरह वह मुर्दा शख़्स बा-हुक्मे इलाही थोड़ी देर के लिये ज़िन्दा हो गया और उसने अपने क़ातिल का नाम बता दिया।

كَذٰلِكَ يُحۡىِ اللّٰهُ الۡمَوۡتٰى ۙ

"देखो, इसी तरह अल्लाह मुर्दों को ज़िन्दा कर देगा"

وَيُرِيْكُمْ اٰيٰتِهٖ لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ۝۷۳

"और वह तुम्हें अपनी निशानियाँ (अपनी क़ुदरत के नमूने) दिखाता है ताकि तुम अक़्ल से काम लो।"

अब जो अल्फ़ाज़ आगे आ रहे हैं बहुत सख़्त हैं। लेकिन इनको पढ़ते हुए दरूँ बीनी (आत्मनिरीक्षण) ज़रूर कीजियेगा, अपने अन्दर ज़रूर झाँकियेगा।

आयत 74

ثُمَّ قَسَتْ قُلُوْبُكُمْ مِّنْۢ بَعْدِ ذٰلِكَ

"फिर तुम्हारे दिल सख़्त हो गये इस सबके बाद"

जब दीन में हीले बहाने निकाले जाने लगें और हीलों बहानों से शरीअत के अहकाम से बचने और अल्लाह को धोखा देने की कोशिश की जाये तो उसका जो नतीजा निकलता है वह दिल की सख़्ती है।

فَهِيَ كَالْحِجَارَةِ اَوْ اَشَدُّ قَسْوَةً ۭ

"पस अब तो वह पत्थरों की मानिन्द हैं, बल्कि सख़्ती में उनसे भी ज़्यादा शदीद हैं।"

यह फ़साहत और बलागत के ऐतबार से भी क़ुरान हकीम का एक बड़ा उम्दा मक़ाम है।

وَاِنَّ مِنَ الْحِجَارَةِ لَمَا يَتَفَجَّرُ مِنْهُ الْاَنْهٰرُ ۭ

"और पत्थरों में से तो यक़ीनन ऐसे भी होते हैं जिनसे चश्में फूट बहते हैं।"

وَاِنَّ مِنۡهَا لَمَا يَشَّقَّقُ فَيَخۡرُجُ مِنۡهُ الۡمَآءُ ؕ	*“और उन (पत्थरों और चट्टानों) में से बेशक ऐसे भी होते हैं जो शक़ हो (फट) जाते हैं और उनमें से पानी बरामद हो जाता है।”*
وَاِنَّ مِنۡهَا لَمَا يَهۡبِطُ مِنۡ خَشۡيَةِ اللّٰهِ ؕ	*“और उनमें से यक़ीनन वह भी होते हैं जो अल्लाह के ख़ौफ़ से गिर पड़ते हैं।”*
وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعۡمَلُوۡنَ ﴿۷۴﴾	*“और अल्लाह तआला ग़ाफ़िल नहीं है उससे कि जो तुम कर रहे हो।”*

क़सावते क़ल्बी की यह कैफ़ियत उस उम्मत के अफ़राद की बयान की जा रही है जिसे कभी अहले आलम पर फज़ीलत अता की गयी थी। इस उम्मत पर चौदह सौ बरस ऐसे गुज़रे कि कोई लम्हा ऐसा ना था कि इनके यहाँ कोई नबी मौजूद ना हो। इन्हें तीन किताबें दी गयीं। लेकिन यह अपनी बदअमली के बाइस क़ाअरे मुज़ल्लत (ज़िल्लत की गहराई) में जा गिरी। अक़ाइद में मिलावट, अल्लाह और उसके रसूल के अहकाम में मीन-मेख निकाल कर अपने आपको बचाने के रास्ते निकालने और आमाल में भी “किताबुल हियल” के ज़रिये से अपने आपको ज़िम्मेदारियों से मुबर्रा कर लेने की रविश का नतीजा फिर यही निकलता है। अल्लाह तआला मुझे और आपको इस अन्जामे बद से बचाये। आमीन!

आयात 75 से 82 तक

اَفَتَطْمَعُوْنَ اَنْ يُّؤْمِنُوْا لَكُمْ وَقَدْ كَانَ فَرِيْقٌ مِّنْهُمْ
يَسْمَعُوْنَ كَلٰمَ اللّٰهِ ثُمَّ يُحَرِّفُوْنَهٗ مِنْۢ بَعْدِ مَا عَقَلُوْهُ
وَهُمْ يَعْلَمُوْنَ ﴿٧٥﴾ وَاِذَا لَقُوا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا قَالُوْٓا
اٰمَنَّا ښ وَاِذَا خَلَا بَعْضُهُمْ اِلٰى بَعْضٍ قَالُوْٓا
اَتُحَدِّثُوْنَهُمْ بِمَا فَتَحَ اللّٰهُ عَلَيْكُمْ لِيُحَاۗجُّوْكُمْ بِهٖ
عِنْدَ رَبِّكُمْ ۭ اَفَلَا تَعْقِلُوْنَ ﴿٧٦﴾ اَوَلَا يَعْلَمُوْنَ اَنَّ اللّٰهَ
يَعْلَمُ مَا يُسِرُّوْنَ وَمَا يُعْلِنُوْنَ ﴿٧٧﴾ وَمِنْهُمْ اُمِّيُّوْنَ
لَا يَعْلَمُوْنَ الْكِتٰبَ اِلَّآ اَمَانِىَّ وَاِنْ هُمْ اِلَّا يَظُنُّوْنَ
﴿٧٨﴾ فَوَيْلٌ لِّلَّذِيْنَ يَكْتُبُوْنَ الْكِتٰبَ بِاَيْدِيْهِمْ ۤ ثُمَّ
يَقُوْلُوْنَ هٰذَا مِنْ عِنْدِ اللّٰهِ لِيَشْتَرُوْا بِهٖ ثَمَنًا قَلِيْلًا ۭ
فَوَيْلٌ لَّهُمْ مِّمَّا كَتَبَتْ اَيْدِيْهِمْ وَوَيْلٌ لَّهُمْ مِّمَّا
يَكْسِبُوْنَ ﴿٧٩﴾ وَقَالُوْا لَنْ تَمَسَّنَا النَّارُ اِلَّآ اَيَّامًا
مَّعْدُوْدَةً ۭ قُلْ اَتَّخَذْتُمْ عِنْدَ اللّٰهِ عَهْدًا فَلَنْ يُّخْلِفَ
اللّٰهُ عَهْدَهٗٓ اَمْ تَقُوْلُوْنَ عَلَى اللّٰهِ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿٨٠﴾ بَلٰى

مَنۡ كَسَبَ سَيِّئَةً وَّ اَحَاطَتۡ بِهٖ خَطِيۡٓـــَٔتُهٗ فَاُولٰٓـئِكَ اَصۡحٰبُ النَّارِ‌ۚ هُمۡ فِيۡهَا خٰلِدُوۡنَ ﴿٨١﴾ وَالَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ اُولٰٓـئِكَ اَصۡحٰبُ الۡجَـنَّةِ‌ۚ هُمۡ فِيۡهَا خٰلِدُوۡنَ ﴿٨٢﴾

अब तक हमने सूरतुल बक़रह के आठ रुकूअ और उन पर मुस्तज़ाद तीन आयात का मुतअला मुकम्मल किया है। साबक़ा उम्मते मुस्लिमा यानि बनी इसराइल के साथ ख़िताब का सिलसिला सूरतुल बक़रह के दस रुकूओं पर मुहीत है। यह सिलसिला पाँचवे रुकूअ से शुरू हुआ था और पन्द्रहवें रुकूअ के आगाज़ तक चलेगा। इस सिलसिला-ए-ख़िताब के बारे में यह बात अच्छी तरह ज़हननशीं रहनी चाहिये कि इसमें से पहला रुकूअ दावत पर मुश्तमिल है और वह बहुत फ़ैसलाकुन है, जबकि अगले रुकूअ से असलूबे कलाम तब्दील हो गया है और तहदीद और धमकी का अन्दाज़ इख़्तियार किया गया है। मैंने अर्ज़ किया था कि पाँचवा रुकूअ इस पूरे सिलसिला-ए-ख़िताब में बमंज़िला-ए-फ़ातिहा बहुत अहम है और जो बक़िया नौ (9) रुकूअ हैं उनके आगाज़ व इख्तताम पर ब्रेकेट का अन्दाज़ है कि दो आयतों से ब्रेकेट शुरू होती है और उन्ही दो आयतों पर ब्रेकेट ख़त्म होती है, जबकि पाँचवे रुकूअ के मज़ामीन इस पूरे सिलसिला-ए-ख़िताब से ज़र्ब खा रहे हैं। इन रुकूओं में बनी इसराइल के ख़िलाफ़ एक मुफ़स्सल फर्दे क़रारदारे जुर्म

आइद की गयी है, जिसके नतीजे में वह उस मंसबे जलीला से माज़ूल कर दिये गये जिस पर दो हज़ार बरस से फाइज़ थे और उनकी जगह पर अब नयी उम्मते मुस्लिमा यानि उम्मते मुहम्मद (صلی اللہ علیہ وسلم) का इस मंसब पर तक़र्रुर अमल में आया (नियुक्ति हुई) और इस मसनद नशीनी की तक़रीब (Installation Ceremony) के तौर पर तहवीले क़िब्ला का मामला हुआ। यह रब्ते कलाम अगर सामने ना रहे तो इन्सान क़ुरान मजीद की तवील सूरतों को पढते हुए खो जाता है कि बात कहाँ से चली थी और अब किधर जा रही है।

इन रुकूओं के मज़ामीन में कुछ तो तारीख बनी इसराइल के वाक़िआत बयान हुए हैं कि तुमने यह किया, तुमने यह किया! लेकिन इन वाक़िआत को बयान करते हुए बाज़ ऐसे अज़ीम अब्दी हक़ाइक़ और Universal Truths बयान हुए हैं कि उनका ताल्लुक़ किसी वक़्त से, किसी क़ौम से या किसी ख़ास गिरोह से नहीं है। वह तो ऐसे उसूल हैं जिन्हें हम सुन्नतुल्लाह कह सकते हैं। इस कायनात में एक तो क़वानीने तबीई (Physical Laws) हैं, जबकि एक Moral Laws हैं जो अल्लाह की तरफ़ से इस दुनिया में कारफरमां हैं। सूरतुल बक़रह के ज़ेरे मुतअला नौ रुकूओं में तारीख बनी इसराइल के वाक़िआत के बयान के दौरान थोड़े-थोड़े वक़्फे के बाद ऐसी आयात आती हैं जो इस सिलसिला-ए-कलाम के अन्दर इन्तहाई अहमियत की हामिल हैं। उनमें दर हक़ीक़त मौजूदा उम्मते मुस्लिमा के लिये रहनुमाई पौशिदा है। मिसाल के तौर पर इस सिलसिला-ए-खिताब के दौरान आयत 61 में वारिद शुदा यह अल्फ़ाज़ याद कीजिये: {

{وَضُرِبَتۡ عَلَيۡهِمُ الذِّلَّةُ وَالۡمَسۡكَنَةُ ۗ وَبَآءُوۡ بِغَضَبٍ مِّنَ اللّٰهِ ؕ} "और उन पर ज़िल्लत व ख्वारी और मोहताजी व कमहिम्मती थोप दी गयी और वह अल्लाह का ग़ज़ब लेकर लौटे।" मालूम हुआ कि ऐसा हो सकता है कि एक मुस्लमान उम्मत जिस पर अल्लाह के बड़े फ़ज़ल हुए हों, उसे बड़े ईनाम और इकराम से नवाज़ा गया हो, और फिर वह अपनी बेअमली या बदअमली के बाइस अल्लाह तआला के ग़ज़ब की मुस्तहिक़ हो जाये और ज़िल्लत व मसकनत उस पर थोप दी जाये। यह एक अब्दी हक़ीक़त है जो इन अल्फ़ाज़ में बयान हो गयी। उम्मते मुस्लिमा के लिये यह एक लम्हा-ए-फ़िक्रिया है कि क्या आज हम तो उस मक़ाम पर नहीं पहुँच गये?

दूसरा इसी तरह का मक़ाम गज़िश्ता आयत (74) में गुज़रा है, जहाँ एक अज़ीम अब्दी हक़ीक़त बयान हुई है: {ثُمَّ قَسَتۡ قُلُوۡبُكُمۡ مِّنۡۢ بَعۡدِ ذٰلِكَ فَهِىَ كَالۡحِجَارَةِ اَوۡ اَشَدُّ قَسۡوَةً ؕ} "फिर तुम्हारे दिल सख़्त हो गये इस सबके बाद, पस अब तो वह पत्थरों की मानिन्द हैं, बल्कि सख़्ती में उनसे भी शदीदतर हैं।" गोया इसी उम्मते मुस्लिमा का यह हाल भी हो सकता है कि उनके दिल इतने सख़्त हो जायें कि सख़्ती में पत्थरों और चट्टानों को मात दे जायें। हालाँकि यह वही उम्मत है जिसके बारे में फ़रमाया: { وَاَنِّىۡ فَضَّلۡتُكُمۡ عَلَى الۡعٰلَمِيۡنَ ۝٤٧} *"बबीं तफ़ावते राह अज़ कजास्त ताबे कजा!"* अलबत्ता यहाँ एक बात वाज़ेह रहे कि इस क़सावते क़ल्बी में पूरी उम्मत मुब्तला नहीं हुआ करती, बल्कि इस कैफ़ियत में उम्मत के क़ायदीन मुब्तला हो जाते हैं और उम्मते

मुस्लिमा के क़ायदीन उसके उलमा होते हैं। चुनाँचे सबसे ज़्यादा शिद्दत के साथ यह खराबी उनमें दर आती है। इसलिये कि बाक़ी लोग तो पैरोकार हैं, उनके पीछे चलते हैं, उन पर ऐतमाद करते हैं कि यह अल्लाह की किताब के पढ़ने वाले और उसके जानने वाले हैं। लेकिन जो लोग जान-बूझ कर अल्लाह की किताब में तहरीफ़ कर रहे हों और जानते-बूझते हक़ को पहचान कर उसका इन्कार कर रहे हों उन्हें तो पता है कि हम क्या कर रहे हैं! दरहक़ीक़त यह सज़ा उन पर आती है। यह बात इन आयात में जो आज हम पढ़ने चले हैं, बहुत ज़्यादा वाज़ेह हो जायेगी (इन्शा अल्लाह)। फ़रमाया:

आयत 75

اَفَتَطۡمَعُوۡنَ اَنۡ یُّؤۡمِنُوۡا لَکُمۡ

"तो क्या (ऐ मुस्लमानों!) तुम यह तवक़्क़ो रखते हो कि यह तुम्हारी बात मान लेंगे?"

आम मुस्लमानों को यह तवक़्क़ो थी कि यहूद दीने इस्लाम की मुखालफ़त नहीं करेंगे। इसलिये कि मुशरिकीने मक्का तो दीने तौहीद से बहुत दूर थे, रिसालत का उनके यहाँ कोई तसव्वुर ही नहीं था, कोई किताब उनके पास थी ही नहीं। जबकि यहूद तो अहले किताब थे, हामिलीने तौरात थे, मूसा (अलै०) के मानने वाले थे, तौहीद के अलम्बरदार थे और आख़िरत का भी इक़रार करते थे। चुनाँचे आम मुस्लमान का ख़्याल था कि उन्हें तो मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ और आप ﷺ की दावत को झटपट मान लेना चाहिये। तो

मुस्लमानों के दिलों में यहूद के बारे में जो हुस्ने ज़न था, यहाँ उसका पर्दा चाक किया जा रहा है और मुस्लमानों को इसकी हक़ीक़त से आगाह किया जा रहा है कि मुस्लमानों! तुम्हें बड़ी तम्आ (लालच) है, तुम्हारी यह ख़्वाहिश है, आरज़ू है, तमन्ना है, तुम्हें तवक़्क़ो है कि यह तुम्हारी बात मान लेंगे।

وَقَدْ كَانَ فَرِيقٌ مِّنْهُمْ يَسْمَعُونَ كَلَامَ اللَّهِ ثُمَّ يُحَرِّفُونَهُ مِنْ بَعْدِ مَا عَقَلُوهُ وَهُمْ يَعْلَمُونَ ﴿٧٥﴾

"जबकि हाल यह है कि इनमें एक गिरोह वह भी था कि जो अल्लाह का कलाम सुनता था और फिर खूब समझ-बूझ कर दानिस्ता उसमें तहरीफ़ करता था।"

ज़ाहिर बात है वह गिरोह उनके उलमा ही का था। आम आदमी तो अल्लाह की किताब में तहरीफ़ नहीं कर सकता।

अब अगली आयत में बड़ी अजीब बात सामने आ रही है। जिस तरह मुस्लमानों के दरम्यिान मुनाफ़िक़ीन मौजूद थे उसी तरह यहूद में भी मुनाफ़िक़ीन थे। यहूद में से कुछ लोग ऐसे थे कि जब उन पर हक़ मुनकशिफ़ हो गया तो अब वह इस्लाम की तरफ आना चाहते थे। लेकिन उनके लिये अपने ख़ानदान को, घर-बार को, अपने कारोबार को और अपने क़बीले को छोड़ना भी मुमकिन नहीं था, जबकि क़बीलों की सरदारी उनके उलमा के पास थी। ऐसे लोगों के दिल कुछ-कुछ अहले ईमान के क़रीब आ चुके थे। ऐसे लोग जब अहले ईमान से मिलते थे तो कभी-कभी वह बातें भी

बता जाते थे जो उन्होंने उलमाये यहूद से नबी आख़िरुज़्ज़मान ﷺ और उनकी तालीमात के बारे में सुन रखी थीं कि तौरात उनकी गवाही देती है। इसके बाद जब वह अपने "श्यातीन" यानि उलमा के पास जाते थे तो वह उन्हें डाँट-डपट करते थे कि बेवकूफों! यह क्या कर रहे हो? तुम उन्हें यह बातें बता रहे हो ताकि अल्लाह के यहाँ जाकर वह तुम पर हुज्जत क़ायम करें कि उन्हें पता था और फिर भी उन्होंने नहीं माना!

आयत 76

وَاِذَا لَقُوا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا قَالُوْٓا اٰمَنَّا ښ

"और (उनमें से कुछ लोग हैं कि) जब मिलते हैं अहले ईमान से तो कहते हैं कि हम ईमान ले आये।"

وَاِذَا خَلَا بَعْضُهُمْ اِلٰى بَعْضٍ

"और जब वह ख़लवत (अकेले) में होते हैं एक-दूसरे के साथ"

قَالُوْٓا اَتُحَدِّثُوْنَهُمْ بِمَا فَتَحَ اللّٰهُ عَلَيْكُمْ

"तो कहते हैं क्या तुम बता रहे हो उनको वह बातें जो अल्लाह ने खोली हैं तुम पर?"

لِيُحَاۗجُّوْكُمْ بِهٖ عِنْدَ رَبِّكُمْ ۭ

"ताकि वह उनके ज़रिये तुम पर हुज्जत क़ायम करे तुम्हारे रब के पास!"

أَفَلَا تَعْقِلُونَ ۝٧٦

"क्या तुम्हें अक़्ल नहीं है?"

तुम ज़रा अक़्ल से काम लो और यह हक़ीक़तें जो तौरात के ज़रिये से हमें मालूम हैं, मुस्लमानों को मत बताओ। क्या तुम्हें अक़्ल नहीं है कि ऐसा बेवकूफ़ी का काम कर रहे हो?

उनके इस मकालमे पर अल्लाह तआला का तबसिरा यह है:

आयत 77

أَوَلَا يَعْلَمُونَ أَنَّ اللَّهَ يَعْلَمُ مَا يُسِرُّونَ وَمَا يُعْلِنُونَ ۝٧٧

"और क्या यह जानते नही हैं कि अल्लाह को तो मालूम है वह सब कुछ भी जो वह छुपाते हैं और वह सब कुछ भी जिसे वह ज़ाहिर करते हैं।""

तुम चाहे यह बातें मुस्लमानों को बताओ या ना बताओ, अल्लाह की तरफ़ से तो तुम्हार मुहासबा होकर रहना है। लिहाज़ा यह भी उनकी नासमझी की दलील है।

आयत 78

وَمِنْهُمْ أُمِّيُّونَ

"और उनमें बाज़ अनपढ़ हैं"

"أُمِّی" का लफ्ज़ क़ुरान मजीद में असलन तो मुशरिकीने अरब के लिये आता है। इसलिये कि उनके अन्दर पढ़ने-लिखने का रिवाज ही नहीं था। कोई आसमानी किताब भी उनके पास

नहीं थी। लेकिन यहाँ यहूद के बारे में कहा जा रहा है कि उनमें से भी एक तबक़ा अनपढ़ लोगों पर मुश्तमिल है। जैसे आज मुस्लमानों का हाल है कि अक्सर व बेशतर जाहिल हैं, उनमें से बाज़ अगरचे पी.एच.डी. होंगे, लेकिन उन्हें क़ुरान की "ا،ب،ت" नहीं आती, दीन के "मबादी" (आधार) तक से नावाक़िफ़ हैं। चुनाँचे आज पढ़े-लिखे मुस्लमानों की भी अज़ीम अक्सरियत "पढ़े-लिखे जाहिलों" पर मुश्तमिल है। जबकि हमारी अक्सरियत वैसे ही बगैर पढ़ी-लिखी है। तो अब उन्हें दीन का क्या पता? वो तो सारा ऐतमाद करेंगे उलमा पर! कोई बरेलवी है तो बरेलवी उलमा पर ऐतमाद करेगा, कोई देवबन्दी है तो देवबन्दी उलमा पर ऐतमाद करेगा, कोई अहले हदीस है तो अहले हदीस उलमा पर ऐतमाद करेगा। अब उम्मियों का सहारा क्या होता है?

لَا يَعْلَمُوْنَ الْكِتٰبَ اِلَّآ اَمَانِيَّ

"वह किताब का इल्म नहीं रखते, सिवाय बे बुनियाद आरज़ुओं के"

ऐसे लोग किताब से तो वाक़िफ़ नहीं होते, बस अपनी कुछ ख़्वाहिशात और आरज़ुओं पर तकिया किये हुए होते हैं। उन ख़्वाहिशात का ज़िक्र आगे आ जायेगा। यहूद को यह ज़अम (घमण्ड) था कि हम तो इसराइली हैं, हम अल्लाह के महबूब हैं और उसके बेटों की मानिन्द चहेते हैं, हमारी तो शफ़ाअत हो ही जायेगी। हमें तो जहन्नम में दाखिल किया भी गया तो थोड़े से अरसे के लिये किया जायेगा, फिर हमें निकाल लिया जायेगा। यह उनकी "اَمَانِيَّ" हैं। "اُمْنِيَّةٌ" कहते हैं बे बुनियाद

ख़्वाहिश को, اَمَانِیَّ इसकी जमा (plural) है। इसकी सही ताबीर के लिये अंग्रेज़ी का लफ्ज़ wishful thinkings है। यह अपनी उन बे बुनियाद ख़्वाहिशात और झूठी आरज़ुओं के सहारे जी रहे हैं, किताब का इल्म इनके पास है ही नहीं।

وَاِنۡ هُمۡ اِلَّا يَظُنُّوۡنَ ۝٧٨

"और वह कुछ नहीं कर रहे मगर ज़न्न (संदेह) व तख़्मीन (अनुमान) पर चले जा रहे हैं।"

उनके पास महज़ वहम व गुमान और उनके अपने मनघड़त ख़्यालात हैं।

आयत 79

فَوَيۡلٌ لِّلَّذِيۡنَ يَكۡتُبُوۡنَ الۡكِتٰبَ بِاَيۡدِيۡهِمۡ ۙ

"पस हलाकत और बरबादी है उनके लिये जो किताब लिखते हैं अपने हाथ से।"

"وَيۡلٌ" के बारे में बाज़ रिवायात में आता है कि यह जहन्नम का वह तबक़ा है जिससे खुद जहन्नम पनाह माँगती है।

ثُمَّ يَقُوۡلُوۡنَ هٰذَا مِنۡ عِنۡدِ اللّٰهِ

"फिर कहते हैं यह अल्लाह की तरफ़ से है"

لِيَشْتَرُوْا بِهٖ ثَمَنًا قَلِيْلًا ؕ

"ताकि हासिल कर लें उसके बदले हक़ीर सी क़ीमत।"

यानि लोग उलमाये यहूद से शरई मसाइल दरयाफ्त करते तो वह अपने पास से मसले गढ़ कर फ़तवा लिख देते और लोगों को बावरकराते (यक़ीन दिलाते) कि यह अल्लाह की तरफ़ से है, यही दीन का तक़ाज़ा है। अब इस फतवा नवेसी में कितनी कुछ वाक़िअतन उन्होंने सही बात कही, कितनी हठधर्मी से काम लिया और किस क़दर किसी रिश्वत पर मबनी कोई राय दी, अल्लाह के हुज़ूर सब दूध का दूध और पानी का पानी अलग हो जायेगा। अल्लामा इक़बाल ने उलमाये सू का नक़्शा इन अल्फ़ाज़ में खींचा है:

खुद बदलते नहीं क़ुरान को बदल देते हैं
हुए किस दर्जा फ़क़ीहाने हरम बे तौफीक़!

उलमाये यहूद का किरदार इसी तरह का था।

فَوَيْلٌ لَّهُمْ مِّمَّا كَتَبَتْ اَيْدِيْهِمْ

"तो हलाकत और बरबादी है उनके लिये उस चीज़ से कि जो उनके हाथों ने लिखी"

وَوَيْلٌ لَّهُمْ مِّمَّا يَكْسِبُوْنَ ﴿٧٩﴾

"और उनके लिये हलाकत और बरबादी है उस कमाई से जो वह कर रहे हैं।"

यह फतवा फ़रोशी और दीन फ़रोशी का जो सारा धन्धा है इससे वह अपने लिये तबाही और बर्बादी मोल ले रहे हैं,

इससे उनको अल्लाह तआला के यहाँ कोई अज्रो सवाब नहीं मिलेगा। अब आगे उनकी बाज़ "اَمَانِیَّ" का तज़किरा है।

आयत 80

"और वह कहते हैं हमें तो आग हरगिज़ छू नहीं सकती, मगर गिनती के चन्द दिन।"	وَقَالُوْا لَنْ تَمَسَّنَا النَّارُ اِلَّآ اَيَّامًا مَّعْدُوْدَةً ؕ

गोया सिर्फ़ दूसरों की आँखों में धूल झोंकने के लिये हमें चन्द दिन की सज़ा दे दी जायेगी कि कोई ऐतराज़ ना कर दे कि "ऐ अल्लाह! हमें आग में फेंका जा रहा है और इन्हें नहीं फेंका जा रहा, जबकि यह किरदार में हमसे भी बदतर थे।" चुनाँचे उनका मुँह बन्द करने के लिये शायद हमें चन्द दिन के लिये आग में डाल दिया जाये, फिर फौरन निकाल लिया जायेगा।

"इनसे कहिये क्या तुमने अल्लाह से कोई अहद ले लिया है?"	قُلْ اَتَّخَذْتُمْ عِنْدَ اللّٰهِ عَهْدًا

क्या तुम्हारा अल्लाह से कोई क़ौल व क़रार हो गया है?

"कि अब (तुम्हें यह यक़ीन है कि) अल्लाह अपने अहद के ख़िलाफ़ नहीं करेगा?"	فَلَنْ يُّخْلِفَ اللّٰهُ عَهْدَهٗٓ

اَمۡ تَقُوۡلُوۡنَ عَلَى اللّٰهِ مَا لَا تَعۡلَمُوۡنَ ۝۸۰

"या तुम अल्लाह के ज़िम्मे वह बातें लगा रहे हो जिन्हें तुम नहीं जानते?"

हक़ीक़त यही है कि तुम अल्लाह की तरफ़ उस बात की निस्बत कर रहे हो जिसके लिये तुम्हारे पास कोई इल्म नहीं है।

बनी इसराइल की फर्दे क़रारदारे जुर्म के दौरान गाहे-बगाहे जो अहम तरीन अब्दी हक़ाइक़ बयान हो रहे हैं, उनमें से एक अज़ीम हक़ीक़त अगली आयत में आ रही है। फ़रमाया:

आयत 81

بَلٰى مَنۡ كَسَبَ سَيِّئَةً

"क्यों नहीं, जिस शख़्स ने जान-बूझ कर एक गुनाह कमाया"

लेकिन इससे मुराद कबीरा गुनाह है, सगीरा नहीं। سَيِّئَةً की तन्कीर "**تفخیم**" का फ़ायदा भी दे रही है।

وَّاَحَاطَتۡ بِهٖ خَطِيۡٓـــَٔتُهٗ

"और उसका घेराव कर लिया उसके गुनाह ने"

मसलन एक शख़्स सूदखोरी से बाज़ नहीं आ रहा, बाक़ी वह नमाज़ का भी पाबन्द है और तहज्जुद का भी इल्तज़ाम कर रहा है तो इस एक गुनाह की बुराई उसके गिर्द इस तरह छा जायेगी कि फिर उसकी यह सारी नेकियाँ ख़त्म होकर रह जायेंगी। हमारे मुफ़स्सिरीन ने लिखा है कि गुनाह के इहाता

कर लेने से मुराद यह है कि गुनाह उस पर ऐसा ग़लबा कर ले कि कोई जानिब ऐसी ना हो कि गुनाह का ग़लबा ना हो, हत्ता कि दिल से ईमान व तस्दीक़ रुख़सत हो जाये। उलमा के यहाँ यह उसूल माना जाता है कि "اَلْمَعَاصِيْ بَرِيْدُ الْكُفْرِ" यानि गुनाह तो कुफ़्र की डाक होते हैं। गुनाह पर मदावमत (दृढ़ता) का नतीजा बिलआखिर यह निकलता है कि दिल से ईमान रुख़सत हो जाता है। एक शख्स अपने आप को मुस्लमान समझता है, लेकिन अन्दर से ईमान ख़त्म हो चुका होता है। जिस तरह किसी दरवाज़े की चौखट को दीमक चाट जाती है और ऊपर लकड़ी की एक बारीक परत (veneer) छोड़ जाती है।

فَاُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ

"पस यही हैं आग वाले"

هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ﴿٨١﴾

"वह उसी में हमेशा रहेंगे।"

आयत 82

وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ

"और (इसके बरअक्स) जो लोग ईमान लायें और नेक अमल करें"

अब नेक अमल के बारे में हर शख्स ने अपना एक तसव्वुर और नज़रिया बना रखा है। जबकि नेक अमल से क़ुरान मजीद की मुराद दीन के सारे तक़ाज़ों को पूरा करना है।

महज़ कोई खैराती इदारा या कोई यतीम खाना खोल देना या बेवाओं की फ़लाह व बहबूद (कल्याण) का इन्तेज़ाम कर देना और खुद सूदी लेन-देन और धोखा फ़रेब पर मब्नी कारोबार तर्क ना करना नेकी का मस्खशुदा तसव्वुर है। जबकि नेकी का जामेअ (व्यापक) तसव्वुर यह है कि अल्लाह तआला की तरफ़ से आयद करदा तमाम फ़राइज़ की बजाआवरी (कार्यान्वित) हो, दीन के तमाम तक़ाज़े पूरे किये जायें, अपने माल और जान के साथ अल्लाह के रास्ते में जिहाद और मुजाहदा किया जाये और उसके दीन को क़ायम और सरबुलन्द करने की जद्दो जहद की जाये।

أُولَٰئِكَ أَصْحَابُ الْجَنَّةِ ۖ	*"यही हैं जन्नत वाले"*
هُمْ فِيهَا خَالِدُونَ ﴿٨٢﴾	*"वह उसी में हमेशा-हमेश रहेंगे।"*

आयात 83 से 86 तक

وَإِذْ أَخَذْنَا مِيثَاقَ بَنِي إِسْرَائِيلَ لَا تَعْبُدُونَ إِلَّا
اللَّهَ وَبِالْوَالِدَيْنِ إِحْسَانًا وَذِي الْقُرْبَىٰ وَالْيَتَامَىٰ
وَالْمَسَاكِينِ وَقُولُوا لِلنَّاسِ حُسْنًا وَأَقِيمُوا الصَّلَاةَ
وَآتُوا الزَّكَاةَ ثُمَّ تَوَلَّيْتُمْ إِلَّا قَلِيلًا مِنْكُمْ وَأَنْتُمْ
مُعْرِضُونَ ﴿٨٣﴾ وَإِذْ أَخَذْنَا مِيثَاقَكُمْ لَا تَسْفِكُونَ

دِمَآءَكُمْ وَلَا تُخْرِجُوْنَ اَنْفُسَكُمْ مِّنْ دِيَارِكُمْ ثُمَّ
اَقْرَرْتُمْ وَاَنْتُمْ تَشْهَدُوْنَ ﴿٨٤﴾ ثُمَّ اَنْتُمْ هٰٓؤُلَآءِ تَقْتُلُوْنَ
اَنْفُسَكُمْ وَتُخْرِجُوْنَ فَرِيْقًا مِّنْكُمْ مِّنْ دِيَارِهِمْ ۡ
تَظٰهَرُوْنَ عَلَيْهِمْ بِالْاِثْمِ وَالْعُدْوَانِ ؕ وَاِنْ يَّاْتُوْكُمْ
اُسٰرٰى تُفٰدُوْهُمْ وَهُوَ مُحَرَّمٌ عَلَيْكُمْ
اِخْرَاجُهُمْ ؕ اَفَتُؤْمِنُوْنَ بِبَعْضِ الْكِتٰبِ وَتَكْفُرُوْنَ
بِبَعْضٍ ۚ فَمَا جَزَآءُ مَنْ يَّفْعَلُ ذٰلِكَ مِنْكُمْ اِلَّا خِزْيٌ
فِى الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۚ وَيَوْمَ الْقِيٰمَةِ يُرَدُّوْنَ اِلٰٓى اَشَدِّ
الْعَذَابِ ؕ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُوْنَ ﴿٨٥﴾ اُولٰٓئِكَ
الَّذِيْنَ اشْتَرَوُا الْحَيٰوةَ الدُّنْيَا بِالْاٰخِرَةِ فَلَا يُخَفَّفُ
عَنْهُمُ الْعَذَابُ وَلَا هُمْ يُنْصَرُوْنَ ﴿٨٦﴾

आयत 83

وَاِذْ اَخَذْنَا مِيْثَاقَ بَنِيْٓ اِسْرَآءِيْلَ لَا تَعْبُدُوْنَ اِلَّا اللّٰهَ

"और याद करो जब हमने बनी इसराइल से अहद लिया था कि तुम नहीं इबादत करोगे किसी की सिवाय अल्लाह के।"

وَبِالْوَالِدَيْنِ اِحْسَانًا

"और वालिदैन के साथ नेक सुलूक करोगे"

अल्लाह के हक़ के फ़ौरन बाद वालिदैन के हक़ का ज़िक्र क़ुरान मजीद में चार मक़ामात पर आया है। उनमें से एक मक़ाम यह है।

وَّذِی الْقُرْبٰى

"और क़राबतदारों के साथ भी (नेक सुलूक करोगे)"

وَالْيَتٰمٰى

"और यतीमों के साथ भी"

وَالْمَسٰكِيْنِ

"और मोहताजों के साथ भी"

وَقُوْلُوْا لِلنَّاسِ حُسْنًا

"और लोगों से अच्छी बात कहो"

अम्र बिलमारूफ़ करते रहो। नेकी की दावत देते रहो।

وَّاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ

"और नमाज़ क़ायम रखो और ज़कात अदा करो।"

यह बनी इसराइल से मुआहिदा (अनुबंध) हो रहा है।

ثُمَّ تَوَلَّيْتُمْ إِلَّا قَلِيلًا مِّنكُمْ

"फिर तुम (इससे) फिर गये सिवाय तुम में से थोड़े से लोगों के"

وَأَنتُم مُّعْرِضُونَ ﴿٨٣﴾

"और तुम हो ही फिर जाने वाले।"

तुम्हारी यह आदत गोया तबीयते सानिया है।

अल्लाह तआला ने उनसे इसके अलावा एक और अहद भी लिया था, जिसका ज़िक्र बाअल्फ़ाज़ किया जा रहा है:

आयत 84

وَإِذْ أَخَذْنَا مِيثَاقَكُمْ

"और जब हमने तुमसे यह अहद भी लिया था कि"

لَا تَسْفِكُونَ دِمَاءَكُمْ

"तुम अपना ख़ून नहीं बहाओगे"

यानि आपस में जंग नहीं करोगे, बाहम ख़ूँरेज़ी नहीं करोगे। तुम बनी इसराइल एक वाहदत बन कर रहोगे, तुम सब भाई-भाई बन कर रहोगे। जैसा कि क़ुरान मजीद में आया है: {إِنَّمَا الْمُؤْمِنُونَ إِخْوَةٌ} (अल हुजरात:10)

وَلَا تُخْرِجُونَ أَنفُسَكُم مِّن دِيَارِكُمْ

"और ना ही तुम निकालोगे अपने लोगों को उनके घरों से"

ثُمَّ اَقۡرَرۡتُمۡ وَاَنۡتُمۡ تَشۡهَدُوۡنَ ﴿۸۴﴾

"फिर तुमने इसका इक़रार किया था मानते हुए।"

यानि तुमने इस क़ौल व क़रार को पूरे शऊर के साथ माना था।

हज़रत मूसा और हज़रत हारून (अलै०) की वफ़ात के बाद बनी इसराइल ने हज़रत यूशा बिन नून की क़यादत में फ़लस्तीन को फ़तह करना शुरू किया। सबसे पहला शहर अरीहा (Jericko) फ़तह किया गया। उसके बाद जब सारा फ़लस्तीन फ़तह कर लिया तो उन्होंने एक मरकज़ी हुकूमत क़ायम नहीं की, बल्कि बारह क़बीलों ने अपनी-अपनी बारह हुकूमतें बना ली। इन हुकूमतों की बाहमी आवेज़िश (झगड़ों) के नतीजे में उनकी आपस में जंगें होती थीं और यह एक-दूसरे पर हमला करके वहाँ के लोगों को निकाल बाहर करते थे, उन्हें भागने पर मजबूर कर देते थे। लेकिन अगर उनमें से कुछ लोग फ़रार होकर किसी काफ़िर मुल्क में चले जाते और कुफ्फ़ार उन्हें गुलाम या क़ैदी बना लेते और यह इस हालत में उनके सामने लाये जाते तो फ़िदया देकर उन्हें छुड़ा लेते कि हमें हुक्म दिया गया है कि तुम्हारा इसराइली भाई अगर कभी असीर (क़ैदी) हो जाये तो उसको फ़िदया देकर छुड़ा लो। यह उनका जुज़्वी (आंशिक) इताअत का तर्ज़े अमल था कि एक हुक्म को तो माना नहीं और दूसरे पर अमल हो रहा है। असल हुक्म तो यह था कि आपस में खूँरेज़ी मत करो और अपने भाई-बन्दों को उनके घरों से मत निकालो। इस हुक्म की तो परवाह नहीं की और इसे तोड़

दिया, लेकिन इस वजह से जो इसराइली गुलाम बन गये या असीर हो गये अब उनको बड़े मुत्तक़ियाना अन्दाज़ में छुड़ा रहे हैं कि यह अल्लाह का हुक्म है, शरीअत का हुक्म है। यह है वह तज़ाद (विरोध) जो मुस्लमान उम्मतों के अन्दर पैदा हो जाता है।

आयत 85

“फिर तुम ही वह लोग हो कि अपने ही लोगों को क़त्ल भी करते हो”	ثُمَّ اَنۡتُمۡ هٰٓؤُلَآءِ تَقۡتُلُوۡنَ اَنۡفُسَكُمۡ
“और अपने ही लोगों में से कुछ को उनके घरों से निकाल देते हो”	وَتُخۡرِجُوۡنَ فَرِيۡقًا مِّنۡكُمۡ مِّنۡ دِيَارِهِمۡ
“उन पर चढ़ायी करते हो गुनाह और ज़ुल्म व ज़्यादती के साथ।”	تَظٰهَرُوۡنَ عَلَيۡهِمۡ بِالۡاِثۡمِ وَالۡعُدۡوَانِ
“और अगर वह क़ैदी बन कर तुम्हारे पास आयें तो तुम फ़िदया देकर उन्हें छुड़ाते हो”	وَاِنۡ يَّاۡتُوۡكُمۡ اُسٰرٰى تُفٰدُوۡهُمۡ

وَهُوَ مُحَرَّمٌ عَلَيۡكُمۡ اِخۡرَاجُهُمۡ ؕ

"हालाँकि उनका निकाल देना ही तुम पर हराम किया गया था।"

अब देखिये इस वाक़िये से जो अख़्लाक़ी सबक (Moral Lesson) दिया जा रहा है वह अब्दी है। और जहाँ भी यह तर्ज़े अमल इख़्तियार किया जायेगा तावीले आम के ऐतबार से यह आयत उस पर मुन्तबिक़ (लागू) होगी।

اَفَتُؤۡمِنُوۡنَ بِبَعۡضِ الۡكِتٰبِ وَتَكۡفُرُوۡنَ بِبَعۡضٍ ۚ

"तो क्या तुम किताब के एक हिस्से को मानते हो और एक को नहीं मानते?"

فَمَا جَزَآءُ مَنۡ يَّفۡعَلُ ذٰلِكَ مِنۡكُمۡ

"तो नहीं है कोई सज़ा इसकी जो यह हरकत करे तुममें से"

اِلَّا خِزۡىٌ فِى الۡحَيٰوةِ الدُّنۡيَا ۚ

"सिवाय ज़िल्लत व रुसवाई के दुनिया की ज़िन्दगी में।"

وَيَوۡمَ الۡقِيٰمَةِ يُرَدُّوۡنَ اِلٰٓى اَشَدِّ الۡعَذَابِ ؕ

"और क़यामत के रोज़ वह लौटा दिये जायेंगे शदीद तरीन अज़ाब की तरफ़।"

وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعۡمَلُوۡنَ ﴿۸۵﴾

"और अल्लाह तआला ग़ाफ़िल नहीं है उससे जो तुम कर रहे हो।"

यह एक बहुत बड़ी आफ़ाक़ी सच्चाई (Universal Truth) बयान कर दी गयी है, जो आज उम्मते मुस्लिमा पर सद फ़ीसद मुन्तबिक़ हो रही है। आज हमारा तर्ज़े अमल भी यही है कि हम पूरे दीन पर चलने को तैयार नहीं हैं। हममें से हर गिरोह ने कोई एक शय अपने लिये हलाल कर ली है। मुलाज़मत पेशा तबक़ा रिश्वत को इस बुनियाद पर हलाल समझ बैठा है कि क्या करें, इसके बगैर गुज़ारा नहीं होता। कारोबारी तबक़े के नज़दीक सूद हलाल है कि इसके बगैर कारोबार नहीं चलता। यहाँ तक कि यह जो तवायफें "बाज़ारे हुस्न" सजा कर बैठी हैं वह भी कहती हैं कि क्या करें, हमारा यह धन्धा है, हम भी मेहनत करती हैं, मशक़्क़त करती हैं। उनके यहाँ भी नेकी का एक तसव्वुर मौजूद है। चुनाँचे मोहर्रम के दिनों में यह अपना धन्धा बन्द कर देती हैं, सियाह कपड़ें पहनती हैं और मातमी जुलूसों के साथ भी निकलती हैं। उनमें से बाज़ मजारों पर धमाल भी डालती हैं। उनके यहाँ इस तरह के काम नेकी शुमार होते हैं और जिस्म फ़रोशी को यह अपनी कारोबारी मजबूरी समझती हैं। चुनाँचे हमारे यहाँ हर तबक़े में नेकी और बदी का एक इम्तिज़ाज (संयोजन) है। जबकि अल्लाह तआला का मुतालबा कुल्ली इताअत का है, जुज़्वी इताअत उसके यहाँ क़ुबूल नहीं की जाती, बल्कि उल्टा मुँह पर दे मारी जाती है। आज उम्मते मुस्लिमा आलमी सतह पर जिस ज़िल्लत व

रुसवाई का शिकार है उसकी वजह यही जुज़्वी इताअत है कि दीन के एक हिस्से को माना जाता है और एक हिस्से को पाँव तले रौन्द दिया जाता है। इस तर्ज़े अमल की पादाश में आज हम "ضُرِبَتْ عَلَيْهِمُ الذِّلَّةُ وَالْمَسْكَنَةُ" का मिस्दाक़ बन गये हैं और ज़िल्लत व मसकनत हम पर थोप दी गयी है। बाक़ी रह गया क़यामत का मामला तो वहाँ शदीद तरीन अज़ाब की वईद (चेतावनी) है। अपने तर्ज़े अमल से तो हम उसके मुस्तहिक़ हो गये हैं, ताहम अल्लाह तआला की रहमत दस्तगीरी (हिमायत) फ़रमा ले तो उसका इख़्तियार है। आयत के आख़िर में फ़रमाया:

وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُوْنَ ﴿٨٥﴾

"और अल्लाह ग़ाफ़िल नहीं है उससे जो तुम कर रहे हो।"

सेठ साहब हर साल उमरह फ़रमा कर आ रहे हैं, लेकिन अल्लाह को मालूम है कि यह उमरे हलाल कमाई से किये जा रहे हैं या हराम से! वह तो समझते हैं कि हम नहा धोकर आ गये हैं और साल भर जो भी हराम कमायी की थी सब पाक हो गयी। लेकिन अल्लाह तआला तुम्हारी करतूतों से नावाक़िफ़ नहीं है। वह तुम्हारी दाढियों से, तुम्हारे अमामों से और तुम्हारी अबा और क़बा से धोखा नहीं खायेगा। वह तुम्हारे आमाल का अहतसाब (जवाबदेही) करके रहेगा।

आयत 86

أُولَٰٓئِكَ الَّذِيْنَ اشْتَرَوُا الْحَيٰوةَ الدُّنْيَا بِالْاٰخِرَةِ

“यह वो लोग हैं जिन्होंने दुनिया की ज़िन्दगी इख़्तियार कर ली है आख़िरत को छोड़ कर।”

فَلَا يُخَفَّفُ عَنْهُمُ الْعَذَابُ وَلَا هُمْ يُنْصَرُوْنَ ﴿٨٦﴾

“सो अब ना तो उनसे अज़ाब हल्का किया जायेगा और ना ही उनकी कोई मदद की जायेगी।”

आयात 87 से 96 तक

وَلَقَدْ اٰتَيْنَا مُوْسَى الْكِتٰبَ وَقَفَّيْنَا مِنْۢ بَعْدِهٖ
بِالرُّسُلِ ۡ وَاٰتَيْنَا عِيْسَى ابْنَ مَرْيَمَ الْبَيِّنٰتِ وَاَيَّدْنٰهُ
بِرُوْحِ الْقُدُسِ ؕ اَفَكُلَّمَا جَاۗءَكُمْ رَسُوْلٌۢ بِمَا لَا تَهْوٰٓى
اَنْفُسُكُمُ اسْتَكْبَرْتُمْ ۚ فَفَرِيْقًا كَذَّبْتُمْ ۡ وَفَرِيْقًا
تَقْتُلُوْنَ ﴿٨٧﴾ وَقَالُوْا قُلُوْبُنَا غُلْفٌ ؕ بَلْ لَّعَنَهُمُ اللّٰهُ
بِكُفْرِهِمْ فَقَلِيْلًا مَّا يُؤْمِنُوْنَ ﴿٨٨﴾ وَلَمَّا جَاۗءَهُمْ
كِتٰبٌ مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ مُصَدِّقٌ لِّمَا مَعَهُمْ ۙ وَكَانُوْا مِنْ
قَبْلُ يَسْتَفْتِحُوْنَ عَلَى الَّذِيْنَ كَفَرُوْا ښ فَلَمَّا جَاۗءَهُمْ

مَّا عَرَفُوۡا كَفَرُوۡا بِهٖ فَلَعۡنَةُ اللّٰهِ عَلَى الۡكٰفِرِيۡنَ ﴿۸۹﴾
بِئۡسَمَا اشۡتَرَوۡا بِهٖۤ اَنۡفُسَهُمۡ اَنۡ يَّكۡفُرُوۡا بِمَاۤ اَنۡزَلَ
اللّٰهُ بَغۡيًا اَنۡ يُّنَزِّلَ اللّٰهُ مِنۡ فَضۡلِهٖ عَلٰى مَنۡ يَّشَآءُ مِنۡ
عِبَادِهٖ‌ۚ فَبَآءُوۡ بِغَضَبٍ عَلٰى غَضَبٍ‌ؕ وَلِلۡكٰفِرِيۡنَ
عَذَابٌ مُّهِيۡنٌ ﴿۹۰﴾ وَاِذَا قِيۡلَ لَهُمۡ اٰمِنُوۡا بِمَاۤ اَنۡزَلَ اللّٰهُ
قَالُوۡا نُؤۡمِنُ بِمَاۤ اُنۡزِلَ عَلَيۡنَا وَيَكۡفُرُوۡنَ بِمَا وَرَآءَهٗ‌
وَهُوَ الۡحَـقُّ مُصَدِّقًا لِّمَا مَعَهُمۡ‌ؕ قُلۡ فَلِمَ تَقۡتُلُوۡنَ
اَنۡۢبِيَآءَ اللّٰهِ مِنۡ قَبۡلُ اِنۡ كُنۡتُمۡ مُّؤۡمِنِيۡنَ ﴿۹۱﴾ وَلَقَدۡ
جَآءَكُمۡ مُّوۡسٰى بِالۡبَيِّنٰتِ ثُمَّ اتَّخَذۡتُمُ الۡعِجۡلَ مِنۡۢ
بَعۡدِهٖ وَاَنۡتُمۡ ظٰلِمُوۡنَ ﴿۹۲﴾ وَاِذۡ اَخَذۡنَا مِيۡثَاقَكُمۡ
وَرَفَعۡنَا فَوۡقَكُمُ الطُّوۡرَؕ خُذُوۡا مَاۤ اٰتَيۡنٰكُمۡ بِقُوَّةٍ
وَّاسۡمَعُوۡا‌ؕ قَالُوۡا سَمِعۡنَا وَعَصَيۡنَا وَاُشۡرِبُوۡا فِىۡ
قُلُوۡبِهِمُ الۡعِجۡلَ بِكُفۡرِهِمۡ‌ؕ قُلۡ بِئۡسَمَا يَاۡمُرُكُمۡ بِهٖۤ
اِيۡمَانُكُمۡ اِنۡ كُنۡتُمۡ مُّؤۡمِنِيۡنَ ﴿۹۳﴾ قُلۡ اِنۡ كَانَتۡ لَـكُمُ
الدَّارُ الۡاٰخِرَةُ عِنۡدَ اللّٰهِ خَالِصَةً مِّنۡ دُوۡنِ النَّاسِ

فَتَمَنَّوُا الْمَوْتَ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ۝٩٤ وَلَنْ يَّتَمَنَّوْهُ
اَبَدًاۢ بِمَا قَدَّمَتْ اَيْدِيْهِمْ ۭ وَاللّٰهُ عَلِيْمٌۢ بِالظّٰلِمِيْنَ ۝٩٥
وَلَتَجِدَنَّهُمْ اَحْرَصَ النَّاسِ عَلٰي حَيٰوةٍ ۚ وَمِنَ
الَّذِيْنَ اَشْرَكُوْا ۚ يَوَدُّ اَحَدُھُمْ لَوْ يُعَمَّرُ اَلْفَ سَنَةٍ ۚ وَمَا
ھُوَ بِمُزَحْزِحِهٖ مِنَ الْعَذَابِ اَنْ يُّعَمَّرَ ۭ وَاللّٰهُ بَصِيْرٌۢ بِمَا
يَعْمَلُوْنَ ۝٩٦

आयत 87

وَلَقَدْ اٰتَيْنَا مُوْسَى الْكِتٰبَ

"और हमने मूसा को किताब दी (यानि तौरात)"

وَقَفَّيْنَا مِنْۢ بَعْدِهٖ بِالرُّسُلِ ۡ

"और उसके बाद पे दर पे रसूल भेजे।"

एक बात नोट कर लीजिये कि यहाँ लफ्ज़ "الرُّسُل" अम्बिया के मायने में आया है। नबी और रसूल में कुछ फ़र्क़ है, इसे इख्तिसार (संक्षिप्तता) के साथ समझ लीजिये। क़ुरान मजीद की इस्तलाहात के तीन जोड़े ऐसे हैं कि वह तीनों मुतरादिफ़ (बराबर) के तौर पर भी इस्तेमाल हो जाते हैं और अपना

अलैहदा-अलैहदा मफ़हूम भी रखते हैं। इनके ज़िमन में उलमाये किराम ने यह उसूल वज़अ (तैयार) किया है कि "اِذَا اجْتَمَعَا تَفَرَّقَا وَاِذَا تَفَرَّقَا اجْتَمَعَا" यानि जब (एक जोड़े के) दोनों लफ्ज़ इकट्ठे इस्तेमाल होंगे तो दोनों का मफ़हूम मुख़्तलिफ़ होगा, और जब यह दोनों अलग-अलग इस्तेमाल होंगे तो एक मायने में इस्तेमाल हो जायेंगे। इनमें से एक जोड़ा "इस्लाम" और "ईमान" या "मुस्लिम" और "मोमिन" का है। आम तौर पर मुस्लिम की जगह मोमिन और मोमिन की जगह मुस्लिम इस्तेमाल हो जाता है, लेकिन सूरतुल हुजरात में यह दोनों अल्फ़ाज़ इकट्ठे इस्तेमाल हुए हैं तो इनका फ़र्क़ वाज़ेह हो गया है। फ़रमाया: {قَالَتِ الْاَعْرَابُ اٰمَنَّا ۭ قُلْ لَّمْ تُؤْمِنُوْا وَلٰكِنْ قُوْلُوْٓا اَسْلَمْنَا} (आयत:14) "बद्दू कहते हैं कि हम ईमान ले आये हैं। इनसे कहिये कि तुम हरगिज़ ईमान नहीं लाये हो, अलबत्ता यह कहो कि हमने इस्लाम क़ुबूल कर लिया है...." इसी तरह "जिहाद" और "क़िताल" का मामला है। यह दो मुख़्तलिफ़ अल्फ़ाज़ हैं, जिनका मफ़हूम जुदा भी है लेकिन एक-दूसरे की जगह भी आ जाते हैं।

इस ज़िमन में तीसरा जोड़ा "नबी" और "रसूल" का है। यह दोनों लफ्ज़ भी अक्सर एक-दूसरे की जगह आ जाते हैं, लेकिन इनमें फ़र्क़ भी है। हर नबी रसूल नहीं होता, अलबत्ता हर रसूल लाज़िमन नबी होता है। यानि नबी आम है रसूल ख़ास है। नबी को जब किसी ख़ास क़ौम की तरफ़ मुअय्यन तौर पर भेज दिया जाता है तब उसकी हैसियत रसूल की हो जाती है। इससे पहले उसकी हैसियत इन्तहाई आला

मरतबे पर फ़ाइज़ एक वली अल्लाह की है, जिस पर वही नाज़िल हो रही है। आम वली अल्लाह में और नबी में फ़र्क़ यही है कि नबी पर वही आती है, वली पर वही नहीं आती। लेकिन किसी नबी को जब किसी मुअय्यन क़ौम की तरफ मबऊस (नियुक्त) कर दिया जाता था तो फिर वह रसूल होता था। जैसे हज़रत मूसा और हज़रत हारून (अलै०) को हुक्म दिया गया: { اِذۡهَبَاۤ اِلٰى فِرۡعَوۡنَ اِنَّهٗ طَغٰى ۝٤٣ } (ताहा) "तुम दोनों फ़िरऔन की तरफ़ जाओ, यक़ीनन वह सरकशी पर उतर आया है।" इसी तरह दूसरे रसूलों के बारे में आया है कि वह अपनी-अपनी क़ौम की तरफ मबऊस फ़रमाये गये थे। मसलन { وَاِلٰى مَدۡيَنَ اَخَاهُمۡ شُعَيۡبًا } (अल आराफ़:85) "और मदयन की तरफ़ भेजा हमने उनके भाई शुऐब (अलै०) को।" यह फ़र्क़ है नबी और रसूल का। महज़ समझाने के लिये बतौर मिसाल अर्ज़ कर रहा हूँ कि जैसे आपके यहाँ खुसूसी तरबियत याफ्ता अफ़राद पर मुश्तमिल CSP Cadre है, उनमें से कोई डिप्टी कमिश्नर लगा दिया जाता है, किसी को जॉइंट सेक्रेट्री की ज़िम्मेदारी तफ़वीज़ की (सौंपी) जाती है, तो कोई बतौर O.S.D. ख़िदमात अन्जाम देता है, लेकिन उसका काड़र (CSP) बरक़रार रहता है। इसी ऐतबार से हर नबी हर हाल में नबी होता था, लेकिन उसे "रसूल" की हैसियत से एक इज़ाफ़ी ज़िम्मेदारी और इज़ाफ़ी मरतबा अता किया जाता था।

नबी और रसूल के फ़र्क़ के ज़िमन में एक बात यह नोट कर लीजिये कि नबियों को क़त्ल भी किया गया है, जबकि रसूल क़त्ल नहीं हो सकते। अल्लाह का फ़ैसला यह है कि {

لَاَغۡلِبَنَّ اَنَا وَرُسُلِیۡ } (अल मुजादला:21) "लाज़िमन ग़ालिब रहेंगे मैं और मेरे रसूल।" चुनाँचे जब भी किसी क़ौम ने किसी रसूल (अलै०) की जान लेने की कोशिश की तो उस क़ौम को हलाक कर दिया गया और रसूल (अलै०) और उसके साथियों को बचा लिया गया। लेकिन यह मामला नबियों के साथ नहीं हुआ। हज़रत याहिया (अलै०) नबी थे, क़त्ल कर दिये गये, जबकि हज़रत ईसा (अलै०) रसूल थे, लिहाज़ा क़त्ल नहीं किये जा सकते थे, उनको ज़िन्दा आसमान पर उठा लिया गया, जो क़यामत से क़ब्ल दोबारा ज़मीन पर नुज़ूल फ़रमायेंगे। मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ को अल्लाह के रास्ते में शहीद होने की शदीद तमन्ना थी। आप ﷺ ने अपनी इस तमन्ना और आरज़ू का इज़हार इन अल्फ़ाज़ में फ़रमाया है:

((وَالَّذِیْ نَفْسِیْ بِیَدِہٖ لَوَدِدْتُ اَنْ اُقَاتِلَ فِیْ سَبِیْلِ اللّٰہِ فَاُقْتَلَ ثُمَّ اُحْیَا ثُمَّ اُقْتَلَ ثُمَّ اُحْیَا ثُمَّ اُقْتَلَ ثُمَّ اُحْیَا ثُمَّ اُقْتَلَ))[9]

"क़सम है उस ज़ात की जिसके क़ब्ज़ा-ए-क़ुदरत में मेरी जान है! मेरी बड़ी ख्वाहिश है कि मैं अल्लाह की राह में जंग करूँ तो उसमें क़त्ल कर दिया जाऊँ, फिर मैं ज़िन्दा किया जाऊँ, फिर क़त्ल किया जाऊँ, फिर मैं ज़िन्दा किया जाऊँ, फिर अल्लाह की राह में क़त्ल किया जाऊँ, फिर मैं ज़िन्दा किया जाऊँ, फिर अल्लाह की राह में क़त्ल किया जाऊँ!"

लेकिन अल्लाह तआला ने आप ﷺ की यह ख़्वाहिश पूरी नहीं की। इसलिये कि आप ﷺ अल्लाह के रसूल थे। आयत ज़ेरे मुताअला में नोट कीजिये कि अगरचे यहाँ लफ्ज़ रसूल

आ गया है लेकिन यह नबी के मायने में आया है: {وَقَفَّيۡنَا مِنۢ بَعۡدِهٖ بِالرُّسُلِ} "और हमने मूसा (अलै०) के बाद लगातार पैगम्बर भेजे।" हज़रत मूसा (अलै०) के बाद रसूल तो हज़रत ईसा (अलै०) ही हैं, दरमियान में जो पैगम्बर (Prophets) हैं यह सब अम्बिया हैं।

وَاٰتَيۡنَا عِيۡسَى ابۡنَ مَرۡيَمَ الۡبَيِّنٰتِ

"और हमने ईसा इब्ने मरयम को बड़ी वाज़ेह निशानियाँ दीं"

हिस्सी मौज्ज़ात (संवेदनात्मक चमत्कार) जिस क़दर हज़रत मसीह (अलै०) को दिये गये वैसे और किसी नबी को नहीं दिये गये। उनका तज़किरा आगे चल कर सूरह आले इमरान में आयेगा।

وَاَيَّدۡنٰهُ بِرُوۡحِ الۡقُدُسِؕ

"और हमने मदद की उनकी रूहुल क़ुदुस के साथ।"

हज़रत ईसा (अलै०) को हज़रत जिब्राईल (अलै०) की ख़ास ताइद (समर्थन) व नुसरत (मदद) हासिल थी। मौज्ज़ात का ज़हूर किसी नबी या रसूल की अपनी ताक़त से नहीं होता, इसी तरह करामत किसी वली अल्लाह के अपने इख़्तियार में नहीं होती, यह मामला अल्लाह की तरफ़ से होता है और इसका ज़हूर फ़रिश्तों के ज़रिये से होता है।

اَفَكُلَّمَا جَآءَكُمْ رَسُوْلٌۢ بِمَا لَا تَهْوٰٓى اَنْفُسُكُمُ اسْتَكْبَرْتُمْ ۚ

"फिर भला क्या जब भी आया तुम्हारे पास कोई रसूल वह चीज़ लेकर जो तुम्हारी ख्वाहिशाते नफ्स के ख़िलाफ़ थी तो तुमने तकब्बुर किया।"

अम्बिया व रुसुल (अलै०) के साथ यहूद ने जो तर्ज़े अमल रवा (अपनाये) रखा, ख़ास तौर पर हज़रत ईसा (अलै०) के साथ जो कुछ किया, यहाँ उस पर तबसिरा (टिपण्णी) हो रहा है कि जब भी कभी तुम्हारे पास कोई रसूल तुम्हारी ख्वाहिशाते नफ्स के ख़िलाफ़ कोई चीज़ लेकर आया तो तुम्हारी रविश यही रही कि तुमने इस्तकबार किया और सरकशी की, वही इस्तकबार और सरकशी जिसके बाइस अज़ाज़ील इब्लीस बन गया था।

فَفَرِيْقًا كَذَّبْتُمْ ۡ وَفَرِيْقًا تَقْتُلُوْنَ ۝٨٧

"फिर एक जमात को तुमने झुठलाया और एक जमात को क़त्ल कर दिया।"

अल्लाह के रसूल चूँकि क़त्ल नहीं हो सकते लिहाज़ा यहाँ नबियों का क़त्ल मुराद है। मज़ीद बरां एक राय यह भी दी गयी है कि यहाँ माज़ी का सीगा "قَتَلْتُمْ" नहीं आया, बल्कि फ़अल मुज़ारेअ "تَقْتُلُوْنَ" आया है और मुज़ारेअ के अन्दर फ़अल जारी रहने की खासियत होती है। गोया तुम उनको क़त्ल करने की कोशिश करते रहे, बाज़ रसूलों की तो जान के दर पे हो गये।

आयत 88

وَقَالُوْا قُلُوْبُنَا غُلْفٌ ؕ

“और उन्होंने कहा कि हमारे दिल तो गिलाफ़ों में बन्द हैं।”

उनके इस जवाब को आयत 75 के साथ मिलाईये जो हम पढ़ आये हैं। वहाँ अल्फ़ाज़ आये हैं: {اَفَتَطْمَعُوْنَ اَنْ يُّؤْمِنُوْا لَكُمْ} “तो ऐ मुस्लमानों! तो क्या तुम यह तवक़्क़ो रखते हो कि यह तुम्हारी बात मान लेंगे?” बाज़ मुस्लमानों की इस ख़्वाहिश के जवाब में यहूद का यह क़ौल नक़ल हुआ है कि हमारे दिल तो गिलाफ़ों में महफ़ूज़ हैं, तुम्हारी बात हम पर असर नहीं कर सकती। इस तरह के अल्फ़ाज़ आपको आज भी सुनने को मिल जायेंगे कि हमारे दिल बड़े महफ़ूज़ हैं, बड़े मज़बूत और मुस्तहकम (स्थिर) हैं, तुम्हारी बात इनमें घर कर ही नहीं सकती।

بَلْ لَّعَنَهُمُ اللّٰهُ بِكُفْرِهِمْ

“बल्कि (हक़ीक़त में तो) उन पर लानत हो चुकी है अल्लाह की तरफ़ से उनके कुफ़्र की वजह से”

यह उनके इस क़ौल पर तबसिरा है कि हमारे दिल महफ़ूज़ हैं और गिलाफ़ों में बन्द हैं।

فَقَلِيْلًا مَّا يُؤْمِنُوْنَ ۝۸۸

“पस अब कम ही) होंगे उनमें से जो (ईमान लायेंगे।”

आयत 89

وَلَمَّا جَآءَهُمۡ كِتَٰبٞ مِّنۡ عِندِ ٱللَّهِ

"और जब आ गयी उनके पास एक किताब (यानि क़ुरान) अल्लाह के पास से"

مُصَدِّقٞ لِّمَا مَعَهُمۡ

"जो उसकी तस्दीक़ करने वाली है जो उनके पास (पहले से मौजूद) है"

यह वज़ाहत क़ब्ल अज़ की जा चुकी है कि क़ुरान करीम एक तरफ़ तो तौरात और इन्जील की तस्दीक़ करता है और दूसरी तरफ़ वह तौरात और इन्जील की पेशनगोईयों का मिस्दाक़ बन कर आया है।

وَكَانُواْ مِن قَبۡلُ يَسۡتَفۡتِحُونَ عَلَى ٱلَّذِينَ كَفَرُواْ

"और वह पहले से कुफ्फ़ार के मुक़ाबले में फ़तह की दुआयें माँगा करते थे।"

उनका हाल यह था कि वह इसकी आमद से पहले अल्लाह की आखरी किताब और आखरी नबी ﷺ के हवाले और वास्ते से अल्लाह तआला से काफ़िरों के ख़िलाफ़ फ़तह व नुसरत की दुआयें किया करते थे। यहूद के तीन क़बाइल बनू क़ैनक़ाअ, बनू नज़ीर और बनू क़ुरेज़ा मदीना में आकर आबाद हो गये थे। वहाँ औस और खज़रज के क़बाइल भी आबाद थे जो यमन से आये थे और असल अरब क़बाइल थे। फिर आस-पास के क़बाइल भी थे। वह सब उम्मिय्यीन में से

थे, उनके पास ना कोई किताब थी, ना कोई शरीअत और ना वह किसी नबुवत से आगाह थे। उनकी जब आपस में लड़ाईयाँ होती थीं तो यहूदी चूँकि सरमायेदार होने की वजह से बुज़दिल थे लिहाज़ा हमेशा मार खाते थे। इस पर वह कहा करते थे कि अभी तो तुम हमें मार लेते हो, दबा लेते हो, नबी आखिरुज़्ज़मान (صلی اللہ علیہ وسلم) के आने का वक़्त आ चुका है जो नयी किताब लेकर आयेंगे। जब वह आयेंगे और हम उनके साथ होकर जब तुमसे जंग करेंगे तो तुम हमें शिकस्त नहीं दे सकोगे, हमें फ़तह पर फ़तह हासिल होगी। वह दुआ किया करते थे कि ऐ अल्लाह! उस नबी आखिरुज़्ज़मान का ज़हूर जल्दी हो ताकि उसके वास्ते से और उसके सदक़े हमें फ़तह मिल सके।

ख़ज़रज और औस के क़बाइल ने यहूद की यह दुआयें और उनकी ज़ुबान से नबी आखिरुज़्ज़मान صلی اللہ علیہ وسلم की आमद की पेशनगोईयाँ सुन रखी थीं। यही वजह है कि 11 नबवी के हज के मौक़े पर जब मदीना से जाने वाले ख़ज़रज के छः अफ़राद को रसूल अल्लाह صلی اللہ علیہ وسلم ने अपनी दावत पेश की तो उन्होंने कन्खियों से एक-दूसरे को देखा कि मालूम होता है यह वही नबी (صلی اللہ علیہ وسلم) हैं जिनका यहूदी ज़िक्र करते हैं, तो इससे पहले कि यहूद इन पर ईमान लायें, तुम ईमान ले आओ! इस तरह वह इल्म जो बिलवास्ता (अप्रत्यक्ष) तौर पर उन तक पहुँचा था उनके लिये एक अज़ीम सरमाया और ज़रिया-ए-निजात बन गया। मगर वही यहूदी जो आने वाले नबी के इन्तेज़ार में घड़ियाँ गिन रहे थे, आप صلی اللہ علیہ وسلم की आमद पर अपने तास्सुब और तकब्बुर की वजह से आप صلی اللہ علیہ وسلم के सबसे बढ़ कर मुखालिफ़ बन गये।

فَلَمَّا جَآءَهُمۡ مَّا عَرَفُوۡا كَفَرُوۡا بِهٖ‌ۚ

"फिर जब उनके पास आ गयी वह चीज़ जिसे उन्होंने पहचान लिया तो वह उसके मुन्कर हो गये।"

فَلَعۡنَةُ اللّٰهِ عَلَى الۡكٰفِرِيۡنَ﴿۸۹﴾

"पस अल्लाह की लानत है उन मुन्करीन पर।"

आयत 90

بِئۡسَمَا اشۡتَرَوۡا بِهٖۤ اَنۡفُسَهُمۡ

"बहुत बुरी शय है जिसके एवज़ इन्होंने अपनी जानों को फ़रोख़्त कर दिया"

यानि दुनिया का हक़ीर सा फ़ायदा, यहाँ की हक़ीर सी मन्फ़अतें (लाभ), यहाँ की मसनदें (गद्दियाँ) और चौधराहटें उनके पाँव की ज़न्जीर बन गयी हैं और वह अपनी फ़लाह व सआदत और निजात की ख़ातिर इन हक़ीर सी चीज़ों की क़ुरबानी देने को तैयार नहीं हैं।

اَنۡ يَّكۡفُرُوۡا بِمَآ اَنۡزَلَ اللّٰهُ

"कि वह इन्कार कर रहे हैं उस हिदायत का जो अल्लाह ने नाज़िल की है"

بَغۡيًا اَنۡ يُّنَزِّلَ اللّٰهُ مِنۡ فَضۡلِهٖ عَلٰى مَنۡ يَّشَآءُ مِنۡ عِبَادِهٖ

“सिर्फ़ इस ज़िद की बिना पर कि अल्लाह तआला नाज़िल फ़रमाता है अपने फ़ज़ल (वही व रिसालत) में से अपने बन्दों में से जिस पर चाहता है।”

यहूद इस उम्मीद में थे कि आखरी नबी भी इसराइली ही होगा, इसलिये कि चौदह सौ बरस तक नबुवत हमारे पास रही है, यह “फ़तरा” का ज़माना है, जिसे छ: सौ बरस गुज़र गये, अब आखरी नबी आने वाले हैं। उनको यह गुमान था कि वह नबी इसराइल ही में से होंगे। लेकिन हुआ यह कि अल्लाह तआला की यह रहमत और यह फ़ज़ल बनी इस्माईल पर हो गया। इस ज़िद्दम-ज़िद्दा कि वजह से यहूद अनाद (विरोध) और सरकशी पर उतर आये। इस “بَغۡيًا” के लफ्ज़ को अच्छी तरह समझ लीजिये। दीन में जो इख्तलाफ़ होता है उसका असल सबब यही ज़िद्दम-ज़िद्दा वाला रवैय्या होता है, जिसे क़ुरान मजीद में “بَغۡيًا” कहा गया है। यह लफ्ज़ क़ुरान में कई बार आया है।

अहदे हाज़िर में इल्मे नफ्सियात (Psychology) में ऐडलर के मकतबा-ए-फिक्र (विचारधारा) को एक ख़ास मक़ाम हासिल है। उसका नुक़्ता-ए-नज़रिया यह है कि इन्सान के जिबिल्ली अफ़आल (instincts) और मोहर्रिकात (motives) में एक निहायत ताक़तवर मुहर्रिक ग़ालिब होने की तलब (urge to dominate) है। चुनाँचे किसी दूसरे की बात मानना नफ्से इन्सानी पर बहुत गिराँ (तकलीफ़ देह)

गुज़रता है, वह चाहता है कि मेरी बात मानी जाये! "بَغۡیًا" के मायने भी हद से बढ़ने और तजावुज़ करने के हैं। दूसरों पर ग़ालिब होने की ख्वाहिश में इन्सान अपनी हद से तजावुज़ कर जाता है। यही मामला यहूद का था कि उन्होंने दूसरों पर रौब गाँठने के लिये ज़िद्दम-ज़िद्दा की रविश इख़्तियार की, महज़ इस वजह से कि अल्लाह तआला ने बनी इस्माईल के एक शख्स मुहम्मदे अरबी ﷺ को अपने फ़ज़ल से नवाज़ दिया।

فَبَآءُوۡ بِغَضَبٍ عَلٰی غَضَبٍ ؕ

"तो वह लौटे ग़ज़ब पर ग़ज़ब लेकर।"

यानि वह अल्लाह तआला के ग़ज़ब बलाये ग़ज़ब के मुस्तहिक़ हो गये।

وَلِلۡکٰفِرِیۡنَ عَذَابٌ مُّہِیۡنٌ ﴿۹۰﴾

"और ऐसे काफ़िरों के लिये सख़्त ज़िल्लत आमेज़ (अपमानजनक) अज़ाब है।"

"مُّہِیۡنٌ" अहानत से बना है। उनकी इस रविश की वजह से उनके लिये अहानत आमेज़ अज़ाब मुक़र्रर है।

आयत 91

وَاِذَا قِیۡلَ لَهُمۡ اٰمِنُوۡا بِمَاۤ اَنۡزَلَ اللّٰهُ

"और जब उनसे कहा जाता है ईमान लाओ उस पर जो अल्लाह ने नाज़िल फ़रमाया है"

قَالُوۡا نُؤۡمِنُ بِمَاۤ اُنۡزِلَ عَلَیۡنَا

"तो कहते हैं हम ईमान रखते हैं उस पर जो हम पर नाज़िल हुआ"

وَیَكۡفُرُوۡنَ بِمَا وَرَآءَهٗ

"और वह कुफ़्र कर रहे हैं उसका जो उसके पीछे है।"

चुनाँचे उन्होंने पहले इन्जील का कुफ़्र किया और हज़रत मसीह (अलै०) को नहीं माना, और अब उन्होंने मुहम्मद ﷺ का कुफ़्र किया है और क़ुरान को नहीं माना।

وَهُوَ الۡحَقُّ مُصَدِّقًا لِّمَا مَعَهُمۡ ؕ

"हालाँकि वह हक़ है, तस्दीक़ करते हुए आया है उसकी जो उनके पास है।"

قُلۡ فَلِمَ تَقۡتُلُوۡنَ اَنۡۢبِیَآءَ اللّٰهِ مِنۡ قَبۡلُ

"(ऐ नबी ﷺ ! इनसे) कहिये: तो फिर तुम क्यों क़त्ल करते रहे हो अल्लाह के नबियों को इससे पहले?"

اِنۡ كُنۡتُمۡ مُّؤۡمِنِیۡنَ ﴿۹۱﴾

"अगर तुम वाक़िअतन ईमान रखने वाले हो!"

अगर तुम ऐसे ही हक़परस्त हो और जो कुछ तुम पर नाज़िल किया गया है उस पर ईमान रखने वाले हो तो तुम उन पैगम्बरों को क्यों क़त्ल करते रहे हो जो खुद बनी इसराइल में पैदा हुए थे? तुमने ज़करिया (अलै०) को क्यों क़त्ल किया? याहिया (अलै०) को क्यों क़त्ल किया? ईसा (अलै०) के क़त्ल की प्लानिंग क्यों की? तुम्हारे तो हाथ नबियों के खून से आलूदह (दूषित) हैं और तुम दावेदार हो ईमान के!

आयत 92

وَلَقَدْ جَآءَكُمْ مُّوْسٰى بِالْبَيِّنٰتِ	*"और आ चुके तुम्हारे पास मूसा (अलै०) सरीह (स्पष्ट) मौज्जज़े और वाज़ेह तालिमात लेकर"*
ثُمَّ اتَّخَذْتُمُ الْعِجْلَ مِنْۢ بَعْدِهٖ	*"फिर तुमने उसकी गैरहाज़री में बछ्ड़े को अपना मअबूद बना लिया"*
وَاَنْتُمْ ظٰلِمُوْنَ ۹۲	*"और तुम ज़ालिम हो।"*

आयत 93

وَاِذْ اَخَذْنَا مِيْثَاقَكُمْ وَرَفَعْنَا فَوْقَكُمُ الطُّوْرَ ۭ	*"और याद करो जबकि हमने तुमसे अहद लिया था और तुम्हारे ऊपर कोहे तूर को*

मौअल्लक़ कर (लटका) दिया था।”

خُذُوۡا مَاۤ اٰتَیۡنٰکُمۡ بِقُوَّۃٍ وَّاسۡمَعُوۡا ؕ

“पकड़ो इसको जो हमने तुमको दिया है मज़बूती के साथ और सुनो!”

हमने ताकीद की थी कि जो हिदायत हम दे रहे हैं उनकी सख्ती के साथ पाबन्दी करो और कान लगा कर सुनो।

قَالُوۡا سَمِعۡنَا وَعَصَیۡنَا ٭

“उन्होंने कहा हमने सुना और नाफ़रमानी की।”

यानि हमने सुन तो लिया है, मगर मानेंगे नहीं! क़ौमे यहूद की यह भी एक देरीना (कठिन) बीमारी थी कि ज़बान को ज़रा सा मरोड़ कर अल्फ़ाज़ को इस तरह बदल देते थे कि बात का मफ़हूम ही यकसर (मौलिक) बदल जाये। चुनाँचे “سَمِعۡنَا وَاَطَعۡنَا” के बजाये “سَمِعۡنَا وَعَصَیۡنَا” कहते। हज़रत मूसा (अलै०) के साथ जो मुनाफ़िक़ीन थे उनका भी ही वतीरा (व्यवहार) था। उनकी जब सरज़निश (डांट) की जाती तो कहते थे कि हमने तो कहा था “سَمِعۡنَا وَاَطَعۡنَا” आपकी अपनी समाअत में कोई खलल होगा।

وَاُشۡرِبُوۡا فِیۡ قُلُوۡبِہِمُ الۡعِجۡلَ بِکُفۡرِہِمۡ ؕ

“और पिला दी गयी उनके दिलों में बछड़े की मोहब्बत उनके इस कुफ़्र की पादाश में।”

قُلۡ بِئۡسَمَا يَاۡمُرُكُمۡ بِهٖۤ اِيۡمَانُكُمۡ

"कहिये: बहुत ही बुरी हैं यह बातें जिनका हुक्म दे रहा है तुम्हें तुम्हारा ईमान"

اِنۡ كُنۡتُمۡ مُّؤۡمِنِيۡنَ ﴿۹۳﴾

"अगर तुम मोमिन हो!"

यह अजीब ईमान है जो तुम्हें ऐसी बुरी हरकात का हुक्म देता है। क्या ईमान के साथ ऐसी हरकतें मुमकिन होती हैं?

आगे फिर एक बहुत अहम आफ़ाक़ी सच्चाई (universal truth) का बयान हो रहा है, जिसको पढ़ते हुए खुद दरूं बीनी (introspection) की ज़रूरत है। यहूद को यह ज़अम (दावा) था कि हम तो अल्लाह के बड़े चहेते हैं, लाड़ले हैं, उसके बेटों की मानिन्द हैं, हम औलिया अल्लाह हैं, हम उसके पसन्दीदा और चुनिन्दा लोग हैं, लिहाज़ा आख़िरत का घर हमारे ही लिये है। चुनाँचे उनके सामने एक लिटमस टेस्ट (litmus test) रखा जा रहा है। वाज़ेह रहे कि यह टेस्ट मेरे और आपके लिये भी है।

आयत 94

قُلۡ اِنۡ كَانَتۡ لَكُمُ الدَّارُ الۡاٰخِرَةُ عِنۡدَ اللّٰهِ

"(ऐ नबी ﷺ ! इनसे) कहिये: अगर तुम्हारे लिये आख़िरत का घर अल्लाह के पास खालिस कर दिया गया है दूसरे लोगों को छोड़ कर"

خَالِصَةً مِّنْ دُوْنِ النَّاسِ

यानि तुम्हारे लिये जन्नत मख़सूस (reserve) हो चुकी है और तुम मरते ही जन्नत में पहुँचा दिये जाओगे।

فَتَمَنَّوُا الْمَوْتَ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ﴿٩٤﴾

“तब तो तुम्हें मौत की तमन्ना करनी चाहिये अगर तुम (अपने इस ख्याल में) सच्चे हो।”

अगर तुम्हें जन्नत में दाखिल होने का इतना ही यक़ीन है फिर तो दुनिया में रहना तुम पर गिरां होना चाहिये। यहाँ तो बहुत सी तकलीफ़ें हैं, यहाँ तो इन्सान को बड़ी मशक़्क़त और शदीद कौफ्फत (चालबाज़ी) उठानी पड़ जाती है। जिस शख्स को यह यक़ीन हो कि इस दुनिया के बाद आख़िरत की ज़िन्दगी है और वहाँ मेरा मक़ाम जन्नत में है तो उसे यह ज़िन्दगी असासा (asset) नहीं, ज़िम्मेदारी (liability) मालूम होनी चाहिये। उसे तो दुनिया क़ैदखाना नज़र आनी चाहिये, जैसे हदीस है कि नबी करीम ﷺ ने फ़रमाया: ((اَلدُّنْيَا سِجْنُ الْمُؤْمِنِ وَجَنَّةُ الْكَافِرِ))(10) “दुनिया मोमिन के लिये क़ैदखाना और काफ़िर के लिये जन्नत है।” अगर किसी शख्स का आख़िरत पर ईमान है और अल्लाह के साथ उसका मामला खुलूस पर मब्नी है ना कि धोखेबाज़ी पर तो उसका कम से कम तक़ाज़ा यह है कि उसे दुनिया में ज़्यादा देर तक ज़िन्दा रहने की आरज़ू तो ना हो। इसका जायज़ा हर शख्स

खुद लगा सकता है, अज़रुए अल्फ़ाज़े क़ुरानी: { بَلِ الۡاِنۡسَانُ عَلٰی نَفۡسِہٖ بَصِیۡرَۃٌ ﴿۱۴﴾} (अल क़ियामा) “बल्कि आदमी अपने लिये आप दलील है।” हर इन्सान को खूब मालूम है कि मैं कहाँ खड़ा हूँ। आपका दिल आपको बता देगा कि आप अल्लाह के साथ धोखेबाज़ी कर रहे हैं या आपका मामला खुलूस व इख्लास पर मब्नी है। अगर वाक़िअतन खुलूस और इख्लास वाला मामला है तो फिर तो यह कैफ़ियत होनी चाहिये जिसका नक़्शा इस हदीसे नबवी में ﷺ में खींचा गया है: ((كُنْ فِي الدُّنْيَا كَأَنَّكَ غَرِيبٌ أَوْ عَابِرُ سَبِيلٍ))(11) “दुनिया में इस तरह रहो गोया तुम अजनबी हो या मुसाफ़िर हो।” फिर तो यह दुनिया बाग़ नहीं क़ैदखाना नज़र आनी चाहिये, जिसमें इन्सान मजबूरन रहता है। फिर ज़ावया-ए-निगाह (दृष्टिकोण) यह होना चाहिये कि अल्लाह ने मुझे यहाँ भेजा है, लिहाज़ा एक मुअय्यन मुद्दत के लिये यहाँ रहना है और जो-जो ज़िम्मेदारियाँ उसकी तरफ़ आयद की गयी हैं वह अदा करनी हैं। लेकिन अगर यहाँ रहने की ख्वाहिश दिल में मौजूद है तो फिर या तो आख़िरत पर ईमान नहीं या अपना मामला अल्लाह के साथ खुलूस व इख्लास पर मब्नी नहीं। यह गोया लिटमस टेस्ट है।

आयत 95

وَلَنۡ یَّتَمَنَّوۡهُ اَبَدًۢا

“और यह हरगिज़ आरज़ू नहीं करेंगे मौत की”

بِمَا قَدَّمَتْ اَيْدِيْهِمْ ۭ

"बसबब उन करतूतों के जो इनके हाथों ने आगे भेजे हुए हैं।"

हर शख्स को खुद मालूम है कि मैंने क्या कमाई की है, क्या आगे भेजा है।

وَاللّٰهُ عَلِيْمٌۢ بِالظّٰلِمِيْنَ ۝95

"और अल्लाह इन ज़ालिमों से बखूबी वाक़िफ़ है।"

आयत 96

وَلَتَجِدَنَّهُمْ اَحْرَصَ النَّاسِ عَلٰي حَيٰوةٍ ۚ

"और तुम इन्हें पाओगे तमाम इन्सानों से ज़्यादा हरीस इस (दुनिया की) ज़िन्दगी पर।"

وَمِنَ الَّذِيْنَ اَشْرَكُوْا ۚ

"हत्ता कि मुशरिकों से भी ज़्यादा हरीस।"

यह इस मामले में मुशरिकों से भी बढ़े हुए हैं। मुशरिकीन ने अहले ईमान के साथ मुक़ाबला किया तो खुल कर किया, मैदान में आकर डट कर किया, अपनी जानें अपने बातिल मअबूदों के लिये क़ुरबान कीं, जबकि यहूदियों में यह हिम्मत व जुर्रात क़तअन नहीं थी कि वह जान हथेली पर रख कर मैदान में आ सकें। इनके बारे में सूरतुल हश्र में अल्फ़ाज़ वारिद हुए हैं: { لَا يُقَاتِلُوْنَكُمْ جَمِيْعًا اِلَّا فِيْ قُرًى مُّحَصَّنَةٍ اَوْ مِنْ وَّرَاۗءِ جُدُرٍ ۭ} (आयत:14) "यह सब मिल कर भी तुमसे जंग ना कर सकेंगे मगर क़िला बन्द बस्तियों में या दीवारों की ओट से।" चुनाँचे यहूद कभी भी सामने आकर

मुस्लमानों का मुक़ाबला नहीं कर सके। इसलिये कि उन्हें अपनी जानें बहुत अज़ीज़ थीं।

يَوَدُّ اَحَدُهُمْ لَوْ يُعَمَّرُ اَلْفَ سَنَةٍ

"इनमें से हर एक की यह ख्वाहिश है कि किसी तरह उसकी उम्र हज़ार बरस हो जाये।"

وَمَا هُوَ بِمُزَحْزِحِهٖ مِنَ الْعَذَابِ اَنْ يُّعَمَّرَ

"हालाँकि नहीं है इसको बचाने वाला अज़ाब से इस क़दर जीना।"

अगर इनको इनकी ख्वाहिश के मुताबिक़ तवील ज़िन्दगी दे भी दी जाये तो यह इन्हें अज़ाब से तो छुटकारा नहीं दिला सकेगी। आख़िरत तो बिलआखिर आनी है और इन्हें इनके करतूतों की सज़ा मिल कर रहनी है।

وَاللّٰهُ بَصِيْرٌ بِمَا يَعْمَلُوْنَ ﴿٩٦﴾

"और अल्लाह देख रहा है जो कुछ यह कर रहे हैं।"

आयात 97 से 103 तक

قُلْ مَنْ كَانَ عَدُوًّا لِّجِبْرِيْلَ فَاِنَّهٗ نَزَّلَهٗ عَلٰى قَلْبِكَ
بِاِذْنِ اللّٰهِ مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ وَهُدًى وَّبُشْرٰى
لِلْمُؤْمِنِيْنَ ﴿٩٧﴾ مَنْ كَانَ عَدُوًّا لِّلّٰهِ وَمَلٰٓئِكَتِهٖ وَرُسُلِهٖ

وَجِبْرِيْلَ وَمِيْكٰىلَ فَاِنَّ اللّٰهَ عَدُوٌّ لِّلْكٰفِرِيْنَ ﴿٩٨﴾
وَلَقَدْ اَنْزَلْنَآ اِلَيْكَ اٰيٰتٍۭ بَيِّنٰتٍ ۚ وَمَا يَكْفُرُ بِهَآ اِلَّا
الْفٰسِقُوْنَ ﴿٩٩﴾ اَوَكُلَّمَا عٰهَدُوْا عَهْدًا نَّبَذَهٗ فَرِيْقٌ
مِّنْهُمْ ۭ بَلْ اَكْثَرُھُمْ لَا يُؤْمِنُوْنَ ﴿١٠٠﴾ وَلَمَّا جَاۗءَھُمْ
رَسُوْلٌ مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ مُصَدِّقٌ لِّمَا مَعَھُمْ نَبَذَ فَرِيْقٌ
مِّنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ ڎ كِتٰبَ اللّٰهِ وَرَاۗءَ ظُهُوْرِهِمْ
كَاَنَّھُمْ لَا يَعْلَمُوْنَ ﴿١٠١﴾ وَاتَّبَعُوْا مَا تَتْلُوا الشَّيٰطِيْنُ
عَلٰي مُلْكِ سُلَيْمٰنَ ۚ وَمَا كَفَرَ سُلَيْمٰنُ وَلٰكِنَّ
الشَّيٰطِيْنَ كَفَرُوْا يُعَلِّمُوْنَ النَّاسَ السِّحْرَ ۤ وَمَآ
اُنْزِلَ عَلَي الْمَلَكَيْنِ بِبَابِلَ ھَارُوْتَ وَمَارُوْتَ ۭ وَمَا
يُعَلِّمٰنِ مِنْ اَحَدٍ حَتّٰى يَقُوْلَآ اِنَّمَا نَحْنُ فِتْنَةٌ فَلَا
تَكْفُرْ ۭ فَيَتَعَلَّمُوْنَ مِنْهُمَا مَا يُفَرِّقُوْنَ بِهٖ بَيْنَ الْمَرْءِ
وَزَوْجِهٖ ۭ وَمَا ھُمْ بِضَاۗرِّيْنَ بِهٖ مِنْ اَحَدٍ اِلَّا بِاِذْنِ اللّٰهِ ۭ
وَيَتَعَلَّمُوْنَ مَا يَضُرُّھُمْ وَلَا يَنْفَعُھُمْ ۭ وَلَقَدْ عَلِمُوْا
لَمَنِ اشْتَرٰىهُ مَا لَهٗ فِي الْاٰخِرَةِ مِنْ خَلَاقٍ ڤ وَلَبِئْسَ

مَا شَرَوْا بِهٖٓ اَنْفُسَهُمْ ۭ لَوْ كَانُوْا يَعْلَمُوْنَ ﴿١٠٢﴾ وَلَوْ اَنَّهُمْ
اٰمَنُوْا وَاتَّقَوْا لَمَثُوْبَةٌ مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ خَيْرٌ ۭ لَوْ كَانُوْا
يَعْلَمُوْنَ ﴿١٠٣﴾

जैसा कि क़ब्ल अज़ अर्ज़ किया जा चुका है, मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की बेअसत यहूद के लिये बहुत बड़ी आज़माइश साबित हुई। उनका ख्याल था कि आख़री नबुवत का वक़्त क़रीब है और यह नबी भी हस्बे साबिक़ बनी इसराइल में से मबऊस होगा। लेकिन नबी अखिरुज़्ज़मान ﷺ की बेअसत बनी इस्माईल में से हो गयी। यहूद जिस अहसासे बरतरी का शिकार थे उसकी रू से वह बनी इस्माईल को हक़ीर समझते थे। उनका कहना था कि यह उम्मी लोग हैं, अनपढ़ हैं, इनके पास ना कोई किताब है ना शरीअत है और ना कोई क़ानून और ज़ाब्ता (नियम) है, लिहाज़ा अल्लाह तआला ने उनमें से एक शख्स को कैसे चुन लिया? उनका ख्याल था कि यह सब जिब्राईल की “शरारत” है कि वह वही लेकर मुहम्मदे अरबी (ﷺ) के पास चला गया। लिहाज़ा वह हज़रत जिब्राईल को अपना दुश्मन तसव्वुर करते थे और उन्हें गालियाँ देते थे।

यह बात शायद आपको बड़ी अजीब लगे कि अहले तशय्यो में से फ़िरक़ा “गराबिया” का अक़ीदा भी कुछ इसी तरह का था। हजरत मुजद्दिद अल्फे सानी शेख अहमद सरहन्दी (रहि०) ने अपने मकातीब में इस फ़िरक़े के बारे में लिखा है कि उनका अक़ीदा यह था कि हज़रत मुहम्मद

ﷺ और हज़रत अली (रजि०) दोनों की अरवाह एक-दूसरे के बिल्कुल ऐसे मुशाबेह थीं जैसे एक गुर्राब (कव्वा) दूसरे गुर्राब के मुशाबेह होता है। चुनाँचे हज़रत जिब्राईल (अलै०) धोखा खा गये। अल्लाह ने तो वही भेजी थी हज़रत अली (रजि०) के पास, लेकिन वह ले गये हज़रत मुहम्मद ﷺ के पास। यहूद के यहाँ यह अक़ीदा मौजूद था कि अल्लाह ने तो जिब्राईल (अलै०) को बनी इसराइल में से किसी के पास भेजा था, लेकिन वह मुहम्मद (ﷺ) के पास चले गये, और यही मफ़रूज़ा (कल्पना) उनकी हज़रत जिब्राईल (अलै०) से दुश्मनी की बुनियाद था। रसूल अल्लाह ﷺ ने फ़रमाया था:

لَيَاْتِيَنَّ عَلٰى اُمَّتِیْ مَا اَتٰى عَلٰى بَنِیْ اِسْرَاءِيْلَ حَذْوَ النَّعْلِ بِالنَّعْلِ

"मेरी उम्मत पर भी वह तमाम अहवाल (अफ़साने) लाज़िमन वारिद होकर रहेंगे जो बनी इसराइल पर वारिद हुए थे, जैसे एक जूता दूसरे जूते के मुशाबेह होता है।" (12)

चुनाँचे उम्मते मुस्लिमा में से किसी फ़िरक़े का इस तरह के अक़ाइद अपना लेना कुछ बईद नहीं है। इससे इस हदीस की हक़ीक़त मुन्कशिफ़ होती है।

आयत 97

قُلْ مَنْ كَانَ عَدُوًّا لِّجِبْرِيْلَ

"(ऐ नबी ﷺ!) कह दीजिये जो कोई भी दुश्मन हो जिब्राईल (अलै०) का"

فَاِنَّهٗ نَزَّلَهٗ عَلٰى قَلْبِكَ بِاِذْنِ اللّٰهِ

"तो (वह यह जान ले कि) उसने तो नाज़िल किया है इस क़ुरान को आप ﷺ के दिल पर अल्लाह के हुक्म से"

इस मामले में जिब्राईल (अलै०) को तो कुछ इख़्तियार हासिल नहीं। फ़रिश्ते जो कुछ करते हैं अल्लाह के हुक्म से करते हैं, अपने इख़्तियार से कुछ नहीं करते।

مُصَدِّقًا لِّمَا بَيْنَ يَدَيْهِ

"यह तस्दीक़ करते हुए आया है उस कलाम की जो इसके सामने मौजूद है"

وَهُدًى وَّبُشْرٰى لِلْمُؤْمِنِيْنَ ۝97

"और हिदायत और बशारत है अहले ईमान के लिये।"

इसके बाद अब फ़रमाया जा रहा है कि अल्लाह, उसके रसूल ﷺ और उसके मलाइका सब एक हयातयाती वहादत (organic whole) की हैसियत रखते हैं, यह एक जमाअत हैं, इनमें कोई इख्तिलाफ़ या इफ़तराक़ (विभाजन) नहीं हो सकता। अगर कोई जिब्राईल (अलै०) का दुश्मन है तो वह अल्लाह का दुश्मन है, और अगर कोई अल्लाह के सच्चे रसूल ﷺ का दुश्मन है तो वह अल्लाह का भी दुश्मन है और जिब्राईल (अलै०) का भी दुश्मन है।

आयत 98

مَنۡ کَانَ عَدُوًّا لِّلّٰہِ وَمَلٰٓئِکَتِہٖ وَرُسُلِہٖ وَجِبۡرِیۡلَ وَمِیۡکٰلَ فَاِنَّ اللّٰہَ عَدُوٌّ لِّلۡکٰفِرِیۡنَ ﴿۹۸﴾

"(तो कान खोल कर सुन लो) जो कोई भी दुश्मन है अल्लाह का और उसके फ़रिश्तों का और उसके रसूलों का और जिब्राईल और मीकाईल का तो (अल्लाह तआला की तरफ़ से भी ऐलान है कि) अल्लाह ऐसे काफ़िरों का दुश्मन है।"

आयत 99

وَلَقَدۡ اَنۡزَلۡنَاۤ اِلَیۡکَ اٰیٰتٍۭ بَیِّنٰتٍ ۚ

"और (ऐ नबी ﷺ) हमने आप ﷺ की तरफ़ नाज़िल कर दी हैं रोशन आयात।"

وَمَا یَکۡفُرُ بِہَاۤ اِلَّا الۡفٰسِقُوۡنَ ﴿۹۹﴾

"और इन्कार नहीं करते इनका मगर वही जो सरकश हैं।"

याद कीजिये सूरतुल बक़रह के तीसरे रुकूअ में यह अल्फ़ाज़ आये थे: {وَمَا یُضِلُّ بِہٖۤ اِلَّا الۡفٰسِقِیۡنَ ﴿۲۶﴾ۙ} "और वह गुमराह नहीं करता इसके ज़रिये से मगर फ़ासिक़ों को।"

आयत 100

اَوَ كُلَّمَا عٰهَدُوْا عَهْدًا

“तो क्या) हमेशा ऐसा ही नहीं होता रहा है कि (जब कभी भी इन्होंने कोई अहद किया”

अल्लाह से कोई मीसाक़ किया या अल्लाह के रसूलों से कोई अहद किया।

نَّبَذَهٗ فَرِيْقٌ مِّنْهُمْ ۭ

“इनमें से एक गिरोह ने उसे उठा कर फेंक दिया।”

بَلْ اَكْثَرُھُمْ لَا يُؤْمِنُوْنَ ۝١٠٠

“बल्कि इनमें से अक्सर ऐसे हैं जो यक़ीन नहीं रखते।”

इनकी अक्सरियत ईमान व यक़ीन की दौलत से तही दामन (नष्ट) है।

यही हाल आज उम्मते मुस्लिमा का है कि मुस्लमान तो सब हैं, लेकिन ईमाने हक़ीक़ी, ईमाने क़ल्बी यानि यक़ीन वाला ईमान कितने लोगों को हासिल है? *“ढूँढ अब उनको चिरागे रुख़ ज़ेबा लेकर!”*

आयत 101

وَلَمَّا جَاۗءَھُمْ رَسُوْلٌ مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ

“और जब आया उनके पास अल्लाह की तरफ़ से एक रसूल (यानि मुहम्मद ﷺ)”

مُصَدِّقٌ لِّمَا مَعَهُمْ	*"तस्दीक़ करने वाला उस किताब की जो उनके पास मौजूद है"*
نَبَذَ فَرِيْقٌ مِّنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ ۙ كِتٰبَ اللّٰهِ وَرَآءَ ظُهُوْرِهِمْ	*"तो अहले किताब में से एक जमात ने अल्लाह की किताब को पीठों के पीछे फेंक दिया"*
كَاَنَّهُمْ لَا يَعْلَمُوْنَ ۝١٠١	*"गोया कि वह जानते ही नहीं।"*

उलमाये यहूद ने नबी आखिरुज़्ज़मान ﷺ की आमद की पेशनगोईयाँ छुपाने की खातिर खुद तौरात को पसे-पुश्त डाल दिया और बिल्कुल अन्जाने से होकर रह गये। उनके अवाम पूछते होंगे कि क्या यह वही नबी है जिनका ज़िक्र तुम किया करते थे? लेकिन यह जवाब में कहते कि यक़ीन से नहीं कह सकते, अभी तेल देखो तेल की धार देखो! उन्होंने ऐसा रवैय्या अपना लिया जैसे उन्हें कुछ इल्म नहीं है।

अब एक और हक़ीक़त नोट कीजिये। जब किसी मुस्लमान उम्मत में दीन की असल हक़ीक़त और असल तालीमात से बाअदु (फ़ासला) पैदा होता है तो लोगों का रुझान जादू, टोने, टोटके, तावीज़ और अम्लियात वगैरह की तरफ़ हो जाता है। अल्लाह की किताब तो हिदायत का सरचश्मा बन कर उतरी थी, लेकिन यह उसको अपनी दुनयवी ख्वाहिशात की तकमील का ज़रिया बनाते हैं। चुनाँचे दुश्मन को ज़ेर करने और महबूब को क़दमों में गिराने

के लिये “अम्लियाते क़ुरानी” का सहारा लिया जाता है। यह धन्धे हमारे यहाँ भी खूब चल रहे हैं और शायद सबसे ज़्यादा मुनफ़अत बख्श कारोबार यही है, जिसमें ना तो कोई मेहनत करने की ज़रूरत है और ना ही किसी सरमायाकारी की। बनी इसराइल का भी यही हाल था कि वह दीन की असल हक़ीक़त को छोड़ कर जादू के पीछे चल पड़े थे। फ़रमाया:

आयत 102

وَاتَّبَعُوْا مَا تَتْلُوا الشَّيٰطِيْنُ عَلٰى مُلْكِ سُلَيْمٰنَ ۚ

“उन्होंने पैरवी की उस इल्म की जो श्यातीन पढ़ा करते थे सुलेमान (अलै०) की बादशाहत के वक़्त”

अल्लाह तआला ने जिन्नात को हज़रत सुलेमान (अलै०) के ताबेअ कर दिया था। उस वक़्त चूँकि उनका इन्सानों के साथ ज़्यादा मेल-जोल रहता था, लिहाज़ा यह इन्सानों को जादू वगैरह सिखाते रहते थे।

وَمَا كَفَرَ سُلَيْمٰنُ وَلٰكِنَّ الشَّيٰطِيْنَ كَفَرُوْا

“और सुलेमान (अलै०) ने कभी कुफ़्र नहीं किया, बल्कि यह तो श्यातीन थे जो कुफ़्र करते थे”

يُعَلِّمُوْنَ النَّاسَ السِّحْرَ ۝

"वह लोगों को जादू सिखाते थे।"

जादू कुफ़्र है, लेकिन आपको आज भी "नक़्शे सुलेमानी" की इस्तलाह सुनने को मिलेगी। इस तरह बाज़ मुस्लमान भी इन चीज़ों को हज़रत सुलेमान (अलै०) की तरफ़ मन्सूब कर रहे हैं और वह ज़ुल्म अब भी जारी है।

وَمَآ اُنْزِلَ عَلَى الْمَلَكَيْنِ بِبَابِلَ هَارُوْتَ وَمَارُوْتَ ؕ

"और (वह उस इल्म के पीछे पड़े) जो नाज़िल किया गया दो फ़रिश्तों हारूत और मारूत पर बाबुल में।"

बाबुल (Babylonia) ईराक़ का पुराना नाम था। येरूशलम पर हमला करने वाला बख्तनसर (Nebuchadnezar) भी यहीं का बादशाह था और नमरूद भी बाबुल ही का बादशाह था। नमरूद ईराक़ के बादशाहों का लक़ब होता था, जिसकी जमा "نمَاردة" है। हज़रत सुलेमान (अलै०) के दौरे हुकूमत में जिन्नात और इन्सानों का बाहम मेल-जोल होने की वजह से जिन्नात लोगों को जादूगरी की तालीम देते थे। अल्लाह तआला ने लोगों की आखरी आज़माइश के लिये दो फ़रिश्तों को ज़मीन पर उतारा जो इन्सानी शक्ल व सूरत में लोगों को जादू सिखाते थे। वह खुद ही यह वाज़ेह कर देते थे कि देखो जादू कुफ़्र है, हमसे ना सीखो। लेकिन इसके बावजूद

लोग सीखते थे। गोया उन पर इत्मामे हुज्जत हो गया कि अब उनके अन्दर खबासत पूरे तरीक़े से घर कर चुकी है।

وَمَا يُعَلِّمٰنِ مِنْ اَحَدٍ

"और वह नहीं सिखाते थे किसी को भी"

حَتّٰى يَقُوْلَآ اِنَّمَا نَحْنُ فِتْنَةٌ فَلَا تَكْفُرْ ۭ

"यहाँ तक कि वह कह देते थे कि देखो हम तो आज़माइश के लिये भेजे गये हैं, पस तुम कुफ़्र मत करो।"

فَيَتَعَلَّمُوْنَ مِنْهُمَا مَا يُفَرِّقُوْنَ بِهٖ بَيْنَ الْمَرْءِ وَزَوْجِهٖ ۭ

"फिर वह सीखते थे उन दोनों से वह शय जिनके ज़रिये से आदमी और उसकी बीवी के दरमियान जुदाई डालते थे।"

शौहर और बीवी के दरमियान जुदाई ड़ालना और लोगों के घरों में फ़साद ड़ालना, इस तरह के काम अब भी बाज़ औरतें बड़ी सरगर्मी से सरअन्जाम देती हैं। इस मक़सद के लिये तावीज़, गन्ड़े, धागे और ना जाने क्या कुछ ज़राये (साधन) इख़्तियार किये जाते हैं।

وَمَا هُمْ بِضَاۗرِّيْنَ بِهٖ مِنْ اَحَدٍ اِلَّا بِاِذْنِ اللّٰهِ ۭ

"और नहीं थे वह ज़र्र (चोट) पहुँचाने वाले इसके ज़रिये किसी को भी अल्लाह के इज़्न (आज्ञा) के बगैर।"

ईमान का तक़ाज़ा यह है कि बन्दा-ए-मोमिन को यह यक़ीन हो कि अल्लाह के इज़्न के बगैर ना कोई चीज़ फ़ायदा पहुँचा

सकती है और ना ही नुक़सान। चाहे कोई दवा हो वह भी बिइज़्ने रब काम करेगी वरना नहीं। जो कोई भी असबाबे तबीआ (फिज़ियोथेरेपी) हैं उनके असरात तभी ज़ाहिर होंगे अगर अल्लाह चाहेगा, इसके बगैर कुछ नहीं हो सकता। जादू का असर भी अगर होगा तो अल्लाह के इज़्न से होगा। चुनाँचे बन्दा-ए-मोमिन को अल्लाह के भरोसे पर ड़ते रहना चाहिये और मसाईब (मुसीबतों) व मुश्किलात का मुक़ाबला करना चाहिये।

وَيَتَعَلَّمُوْنَ مَا يَضُرُّهُمْ وَلَا يَنْفَعُهُمْ ۭ

"और वे सीखते थे वह चीज़ें जो खुद उनको भी ज़र्र पहुँचाने वाली थीं और उन्हें नफ़ा नहीं पहुँचाती थीं।"

وَلَقَدْ عَلِمُوْا لَمَنِ اشْتَرٰىهُ مَا لَهٗ فِي الْاٰخِرَةِ مِنْ خَلَاقٍ ڜ

"हालाँकि वह खूब जान चुके थे कि जो भी इस चीज़ का खरीदार बना (यानि जादू सीखा) उसके लिये आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं है।"

وَلَبِئْسَ مَا شَرَوْا بِهٖٓ اَنْفُسَهُمْ ۭ

"और बहुत ही बुरी थी वह चीज़ जिसके बदले इन्होंने अपने आपको फ़रोख्त कर दिया।"

لَوْ كَانُوْا يَعْلَمُوْنَ ۝١٠٢

"काश इन्हें इल्म होता।"

आयत 103

وَلَوْ اَنَّهُمْ اٰمَنُوْا وَاتَّقَوْا

“और अगर वह ईमान रखते और तक़वा की रविश इख़्तियार करते”

لَمَثُوْبَةٌ مِّنْ عِنْدِ اللّٰهِ خَيْرٌ

“तो बदला पाते अल्लाह की तरफ़ से बहुत ही अच्छा।”

لَوْ كَانُوْا يَعْلَمُوْنَ ﴿١٠٣﴾

“काश उनको मालूम होता।”

आयात 104 से 112 तक

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تَقُوْلُوْا رَاعِنَا وَقُوْلُوا انْظُرْنَا
وَاسْمَعُوْا ۭ وَلِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿١٠٤﴾ مَا يَوَدُّ الَّذِيْنَ
كَفَرُوْا مِنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ وَلَا الْمُشْرِكِيْنَ اَنْ يُّنَزَّلَ
عَلَيْكُمْ مِّنْ خَيْرٍ مِّنْ رَّبِّكُمْ ۭ وَاللّٰهُ يَخْتَصُّ بِرَحْمَتِهٖ
مَنْ يَّشَاۗءُ ۭ وَاللّٰهُ ذُو الْفَضْلِ الْعَظِيْمِ ﴿١٠٥﴾ مَا نَنْسَخْ مِنْ
اٰيَةٍ اَوْ نُنْسِهَا نَاْتِ بِخَيْرٍ مِّنْهَآ اَوْ مِثْلِهَا ۭ اَلَمْ تَعْلَمْ اَنَّ

اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَیْءٍ قَدِیْرٌ ﴿۱۰۶﴾ اَلَمْ تَعْلَمْ اَنَّ اللّٰهَ لَهٗ
مُلْكُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ؕ وَمَا لَكُمْ مِّنْ دُوْنِ اللّٰهِ
مِنْ وَّلِیٍّ وَّلَا نَصِیْرٍ ﴿۱۰۷﴾ اَمْ تُرِیْدُوْنَ اَنْ تَسْـَٔلُوْا
رَسُوْلَكُمْ كَمَا سُئِلَ مُوْسٰى مِنْ قَبْلُ ؕ وَمَنْ یَّتَبَدَّلِ
الْكُفْرَ بِالْاِیْمَانِ فَقَدْ ضَلَّ سَوَآءَ السَّبِیْلِ ﴿۱۰۸﴾ وَدَّ
كَثِیْرٌ مِّنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ لَوْ یَرُدُّوْنَكُمْ مِّنْۢ بَعْدِ
اِیْمَانِكُمْ كُفَّارًا ۚۖ حَسَدًا مِّنْ عِنْدِ اَنْفُسِهِمْ مِّنْۢ بَعْدِ
مَا تَبَیَّنَ لَهُمُ الْحَقُّ ۚ فَاعْفُوْا وَاصْفَحُوْا حَتّٰى یَاْتِیَ اللّٰهُ
بِاَمْرِهٖ ؕ اِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَیْءٍ قَدِیْرٌ ﴿۱۰۹﴾ وَاَقِیْمُوا
الصَّلٰوةَ وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ ؕ وَمَا تُقَدِّمُوْا لِاَنْفُسِكُمْ مِّنْ
خَیْرٍ تَجِدُوْهُ عِنْدَ اللّٰهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِیْرٌ ﴿۱۱۰﴾
وَقَالُوْا لَنْ یَّدْخُلَ الْجَنَّةَ اِلَّا مَنْ كَانَ هُوْدًا اَوْ
نَصٰرٰى ؕ تِلْكَ اَمَانِیُّهُمْ ؕ قُلْ هَاتُوْا بُرْهَانَكُمْ اِنْ
كُنْتُمْ صٰدِقِیْنَ ﴿۱۱۱﴾ بَلٰى ۚ مَنْ اَسْلَمَ وَجْهَهٗ لِلّٰهِ وَهُوَ

مُحۡسِنٌ فَلَهٗۤ اَجۡرُهٗ عِنۡدَ رَبِّهٖ وَلَا خَوۡفٌ عَلَيۡهِمۡ وَلَا هُمۡ يَحۡزَنُوۡنَ ﴿۱۱۲﴾

आयत 104

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا لَا تَقُوۡلُوۡا رَاعِنَا

“ऐ ईमान वालों तुम رَاعِنَا मत कहा करो”

وَقُوۡلُوا انۡظُرۡنَا

“बल्कि اُنۡظُرۡنَا कहा करो”

وَاسۡمَعُوۡا ؕ

“और तवज्जो से बात को सुनो!”

क़ब्ल अज़ मुनाफ़िक़ीन बनी इसराइल का ज़िक्र हुआ था, जिनका क़ौल था: “سَمِعۡنَا وَ عَصَيۡنَا”। अब यहाँ उन मुनाफ़िक़ीन का तर्ज़े अमल बयान हो रहा है जो मुस्लमानों में शामिल हो गये थे और यहूद के ज़ेरे असर थे। यहूदी और उनके ज़ेरे असर मुनाफ़िक़ीन जब रसूल अल्लाह ﷺ की महफ़िल में बैठते थे तो अगर आप ﷺ की कोई बात उन्हें सुनाई ना देती या समझ में ना आती तो वह رَاعِنَا कहते थे, जिसका मफ़हूम यह है कि हुज़ूर (ﷺ) ज़रा हमारी रिआयत कीजिये, बात को दोबारा दोहरा दीजिये, हमारी समझ में नहीं आई। अहले ईमान भी यह लफ्ज़ इस्तेमाल करने लगे थे। लेकिन यहूद और मुनाफ़िक़ीन अपने खबसे

बातिन का इज़हार इस तरह करते कि इस लफ़्ज़ को ज़बान दबा कर कहते तो "رَاعِيْنَا" हो जाता (यानि ऐ हमारे चरवाहे!) इस पर दिल ही दिल में खुश होते और इस तरह अपनी खबासते नफ्स को गिज़ा मुहैय्या करते। अगर कोई उनको टोक देता कि यह तुम क्या कह रहे हो तो जवाब में कहते हमने तो رَاعِنَا कहा था, मालूम होता है आपकी समाअत में कोई खलल पैदा हो चुका है। चुनाँचे मुस्लमानों से कहा जा रहा है कि तुम इस लफ़्ज़ ही को छोड़ दो, इसकी जगह कहा करो: اُنْظُرْنَا। यानि ऐ नबी ﷺ हमारी तरफ़ तवज्जो फ़रमाइये! या हमें मोहलत दीजिये कि हम बात को समझ लें। और दूसरे यह कि तवज्जो से बात को सुना करो ताकि दोबारा पूछने की ज़रूरत ही पेश ना आये।

وَلِلْكٰفِرِيْنَ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿١٠٤﴾

"और इन काफ़िरों के लिये दर्दनाक अज़ाब है।"

आयत 105

مَا يَوَدُّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا مِنْ اَهْلِ الْكِتٰبِ وَلَا

"और नहीं चाहते वह लोग जिन्होंने कुफ़्र किया है अहले किताब में से और मुशरिकीन में

الْمُشْرِكِيْنَ اَنْ يُّنَزَّلَ عَلَيْكُمْ مِّنْ خَيْرٍ مِّنْ رَّبِّكُمْ ؕ

से कि नाज़िल हो तुम पर कोई भी खैर तुम्हारे रब की तरफ से।"

जिन लोगों ने दावाते हक़ को क़ुबूल करने से इन्कार कर दिया है, ख्वाह अहले किताब में से हो या मुशरिकीने मक्का में से, वह इस बात पर हसद की आग में जल रहे हैं कि यह कलामे पाक आप ﷺ पर क्यों नाज़िल हो गया और "खातमुन्न नबिय्यीन" का यह मंसब आप ﷺ को क्यों मिल गया। वह नहीं चाहते कि अल्लाह की तरफ़ से कोई भी खैर आपको मिले।

وَاللّٰهُ يَخْتَصُّ بِرَحْمَتِهٖ مَنْ يَّشَآءُ ؕ

"और अल्लाह ख़ास कर लेता है अपनी रहमत के साथ जिसको चाहता है।"

यह तो उसका इख़्तियार और उसका फ़ैसला है।

وَاللّٰهُ ذُو الْفَضْلِ الْعَظِيْمِ ۝١٠٥

"और अल्लाह तआला बड़े फ़ज़्ल वाला है।"

आयत 106

مَا نَنۡسَخۡ مِنۡ اٰيَةٍ اَوۡ نُنۡسِهَا

"जो भी हम मंसूख (cancel) करते हैं कोई आयत या उसे भुला देते हैं"

एक तो है नस्ख यानि किसी आयत को मंसूख कर देना और एक है हाफ़िज़े से ही किसी शय को महव कर (निकाल) देना।

نَاۡتِ بِخَيۡرٍ مِّنۡهَآ اَوۡ مِثۡلِهَا ؕ

"तो हम (उसकी जगह पर) ले आते हैं उससे बेहतर या (कम अज़ कम) वैसी ही।"

اَلَمۡ تَعۡلَمۡ اَنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَىۡءٍ قَدِيۡرٌ ﴿١٠٦﴾

"क्या तुम यह नहीं जानते कि अल्लाह हर शय पर क़ुदरत रखता है?"

उसे हर शय का इख़्तियार हासिल है।

इस आयत का असल मफ़हूम और और पसमंज़र समझ लीजिये। आपको मालूम है कि अल्लाह का दीन आदम अलैहिस्सलाम से लेकर इदम तक एक ही है। नूह अलैहिस्सलाम का दीन, मूसा अलैहिस्सलाम का दीन, ईसा अलैहिस्सलाम का दीन और मुहम्मद रसूल अल्लाह صلى الله عليه وسلم का दीन एक ही है, जबकि शरीअतों में फ़र्क़ रहा है। इस फ़र्क़ का असल सबब यह है कि नौए इंसानी मुख्तलिफ़ ऐतबारात से इरतक़ाअ (विकास) के मराहिल तय कर रही थी। ज़हनी पुख्तगी, शऊर की पुख्तगी और फिर तमद्दुनी इरतक़ाअ (सामाजिक विकास) मुसलसल जारी था। लिहाज़ा उस इरतक़ाअ के जिस मरहले में रसूल आये उसी की मुनासबत

से उनको तालीमात दे दी गयीं। इन तालीमात के कुछ हिस्से ऐसे थे जो अब्दी (eternal) हैं, वह हमेशा रहेंगे, जबकि कुछ हिस्से ज़माने की मुनासबत से थे। चुनाँचे जब अगला रसूल आता तो उनमे से कुछ चीज़ों में तगय्युर (परिवर्तन) व तबद्दुल (बदलाव) हो जाता, कुछ चीज़ें नयी आ जाती और कुछ पुरानी साक़ित (अस्वीकार) हो जाती। यह मामला नस्ख कहलाता है। या तो अल्लाह तआला तअय्युन (निर्धारण) के साथ किसी हुक्म को मंसूख फ़रमा देते हैं और उसकी जगह नया हुक्म भेज देते हैं, या किसी शय को सिरे से लोगों के ज़हनों से ख़ारिज कर देते हैं। यहूदी यह ऐतराज़ कर रहे थे कि अगर यह दीन वही है जो मूसा अलैहिस्सलाम का था तो फिर शरीअत पूरी वही होनी चाहिये। यहाँ इस ऐतराज़ का जवाब दिया जा रहा है।

फिर नासिख व मंसूख का मसला क़ुरान में भी है। क़ुरान में भी तदरीज (क्रम) के साथ शरीअत की तकमील हुई है। जैसा कि मैंने पहले अर्ज़ किया था, शरीअत का इब्तदाई खाका (blue print) सूरतुल बक़रह में मिल जाता है, लेकिन शरीअत की तकमील सूरतुल मायदा में हुई है। यह जो तक़रीबन पाँच-छ: साल का अरसा है इसमें कुछ अहकाम किये गये, फिर उनमे रद्दो-बदल करके नये अहकाम दिये गये और फिर आख़िर में यह इरशाद फ़रमा दिया गया: {اَلۡيَوۡمَ اَ كۡمَلۡتُ لَـكُمۡ دِيۡنَكُمۡ وَاَتۡمَمۡتُ عَلَيۡكُمۡ نِعۡمَتِىۡ وَرَضِيۡتُ لَـكُمُ الۡاِسۡلَامَ دِيۡنًا‌ ؕ} (अल मायदा:3) "आज मैंने तुम्हारे दीन को तुम्हारे लिये मुकम्मल कर दिया है और अपनी नेअमत तुम पर तमाम कर दी है और तुम्हारे लिये इस्लाम को बहैसियत

दीन पसंद कर लिया है।" तो यह नासिख व मंसूख का मसला सिर्फ़ साबक़ा शरीअतों और शरीअते मुहम्मदी ﷺ के माबैन ही नहीं है, बल्कि खुद शरीअते मुहम्मदी (علٰی صاحبہا الصلوٰۃ والسلام) में भी ज़मानी ऐतबार से इरतक़ाअ हुआ है। मिसाल के तौर पर पहले शराब के बारे में हुक्म दिया गया कि इसमें गुनाह का पहलु ज़्यादा है, अगरचे कुछ फ़ायदे भी हैं। इसके बाद हुक्म आया कि अगर शराब के नशे में हो तो नमाज़ के क़रीब मत जाओ। फिर सूरतुल मायदा में आखरी हुक्म आ गया और उसे गन्दा शैतानी काम क़रार देकर फ़रमाया गया: { فَهَلْ اَنْتُمْ مُّنْتَهُوْنَ ۝۹۱ } "तो क्या अब भी बाज़ आते हो या नहीं?" इस तरह तदरीजन (क्रमानुसार) अहकाम आये और आखरी हुक्म में शराब हराम कर दी गयी। यहाँ फ़रमाया कि अगर हम किसी हुक्म को मंसूख करते हैं या उसे भुला देते हैं तो उससे बेहतर ले आते हैं या कम अज़ कम उस जैसा दूसरा हुक्म ले आते हैं। इसलिये कि अल्लाह तआला क़ादिरे मुतलक़ है, उसका इख़्तियार कामिल है, वह मालिकुल मुल्क है, दीन उसका है, उसमें वह जिस तरह चाहे तब्दीली कर सकता है।

आयत 107

اَلَمۡ تَعۡلَمۡ اَنَّ اللّٰہَ لَہٗ مُلۡکُ السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضِ ؕ	*“क्या तुम नहीं जानते कि अल्लाह ही के लिये बादशाही है आसमानों की और ज़मीन की?”*
وَمَا لَکُمۡ مِّنۡ دُوۡنِ اللّٰہِ مِنۡ وَّلِیٍّ وَّلَا نَصِیۡرٍ ﴿۱۰۷﴾	*“और नहीं है तुम्हारे लिये अल्लाह के सिवा कोई भी हिमायती और ना कोई मददगार।”*

आयत 108

اَمۡ تُرِیۡدُوۡنَ اَنۡ تَسۡـَٔلُوۡا رَسُوۡلَکُمۡ کَمَا سُئِلَ مُوۡسٰی مِنۡ قَبۡلُ ؕ	*“क्या तुम मुस्लमान भी यह चाहते हो कि सवालात (और मुतालबे) करो अपने रसूल ﷺ से उसी तरह जैसे इससे पहले मूसा अलैहिस्सलाम से किये जा चुके हैं?”*

मसलन उनसे कहा गया कि हम आपकी बात नहीं मानेंगे जब तक कि अल्लाह को अपनी आँखों से ना देख लें। इसी तरह के और बहुत से मुतालबे (माँग) हज़रत मूसा अलै० से किये जाते थे। यहाँ मुस्लमानों को आगाह किया जा रहा है कि उस रविश से बाज़ रहो, ऐसी बात तुम्हारे अन्दर पैदा नहीं होनी चाहिये।

وَمَنۡ يَّتَبَدَّلِ الۡكُفۡرَ بِالۡاِيۡمَانِ فَقَدۡ ضَلَّ سَوَآءَ السَّبِيۡلِ ۝١٠٨

"और जो कोई ईमान के बदले कुफ़्र ले लेगा वह तो भटक चुका सीधी राह से।"

ज़ाहिर है कि जो मुनाफ़िक़ीन अहले ईमान की सफ़ों में शामिल थे वही ऐसी हरकतें कर रहे होंगे। इसलिये फ़रमाया कि जो कोई ईमान को हाथ से देकर कुफ़्र को इख़्तियार कर लेगा वह तो रहे रास्त से भटक गया। मुनाफ़िक़ का मामला दो तरफ़ा होता है, चुनाँचे क़ुरान हकीम में मुनाफ़िक़ीन के लिये "مُذَبۡذَبِيۡنَ بَيۡنَ ذٰلِكَ" के अल्फ़ाज़ आये हैं। अब इसका भी इम्कान होता है कि वह कुफ़्र की तरफ़ यक्सु हो जाये और इसका भी इम्कान होता है कि बिलआख़िर ईमान की तरफ़ यक्सु हो जाये। जो शख्स ईमान और कुफ़्र के दरमियान मुअल्लिक़ (लटका) है उसके लिये यह दोनों इम्कानात मुमकिन हैं। जो कुफ़्र की तरफ़ जाकर मुस्तक़िल (स्थायी) तौर पर उधर रागिब हो गया यहाँ उसका ज़िक्र है।

आयत 109

وَدَّ كَثِيۡرٌ مِّنۡ اَهۡلِ الۡكِتٰبِ لَوۡ يَرُدُّوۡنَكُمۡ

"अहले किताब में से बहुत से लोग यह चाहते हैं कि किसी तरह तुम्हें फेर कर तुम्हारे ईमान के बाद तुम्हें फिर काफ़िर बना दें।"

مِّنۡۢ بَعۡدِ اِيۡمَانِكُمۡ كُفَّارًا ۖۚ

यह ऐसे ही है जैसे किसी बिल्ली की दुम कट जाये तो वह यह चाहेगी कि सारी बिल्लियों की दुमें कट जायें ताकि वह अलैहदा से नुमाया (प्रतीत) ना रहे। चुनाँचे अहले किताब यह चाहते थे कि अहले ईमान को भी वापस कुफ़्र में ले आया जाये।

حَسَدًا مِّنۡ عِنۡدِ اَنۡفُسِهِمۡ

"बसबब उनके दिली हसद के"

उनका यह तर्ज़े अमल उनके हसद की वजह से है कि यह नेअमत मुस्लमानों को क्यों दे दी गयी?

مِّنۡۢ بَعۡدِ مَا تَبَيَّنَ لَهُمُ الۡحَقُّ ۚ

"इसके बाद कि उन पर हक़ बिल्कुल वाज़ेह हो चुका है।"

वह हक़ को जान चुके हैं और पहचान चुके हैं, किसी मुगालते या गलतफ़हमी में नहीं हैं।

فَاعۡفُوۡا وَاصۡفَحُوۡا

"तो (ऐ मुस्लमानों!) तुम माफ़ करते रहो और सर्फ़े नज़र (बेपरवाही) से काम लो"

यह बहुत अहम मक़ाम है। मुस्लमानों को बावर कराया (दिखाया) जा रहा है कि अभी तो मदनी दौर का आगाज़ हो रहा है, अभी कशमकश, कशाकश और मुक़ाबला व तसादुम के बड़े सख्त मराहिल आ रहे हैं। क्योंकि तम्हारा सबसे पहला महाज़ (सामना) कुफ्फ़ारे मक्का के खिलाफ़ है और वही सबसे बढ़ कर तुम पर हमले करेंगे और उनसे तुम्हारी जंगे होंगी, लिहाज़ा यह जो आस्तीन के साँप हैं, यानि यहूद, इनको अभी मत छेड़ो। जब तक यह ख्वाबेदाह (dormant) पड़े रहें इन्हें पड़ा रहने दो। फ़िलहाल इनके तर्ज़े अमल के बारे में ज़्यादा तवज्जो ना दो, बल्कि अफ़व (माफ़ी) व दरगुज़र और चशमपोशी से काम लेते रहो।

حَتّٰى يَاْتِيَ اللّٰهُ بِاَمْرِهٖ

"यहाँ तक कि अल्लाह अपना फ़ैसला ले आये।"

एक वक़्त आयेगा जब ऐ मुस्लमानों तुम्हें आखरी गलबा हासिल हो जायेगा और जब तुम बहार के दुश्मनों से निमट लोगे तो फिर इन अंदरूनी दुश्मनों के खिलाफ़ भी तुम्हें आज़ादी दी जायेगी कि इनको भी केफ़र-ए-किरदार तक पहुँचा दो।

اِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ﴿١٠٩﴾

"यक़ीनन अल्लाह हर चीज़ पर क़ादिर है।"

आयत 110

وَاَقِيْمُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتُوا الزَّكٰوةَ

"और नमाज़ क़ायम रखो और ज़कात देते रहो।"

وَمَا تُقَدِّمُوْا لِاَنْفُسِكُمْ مِّنْ خَيْرٍ تَجِدُوْهُ عِنْدَ اللّٰهِ

"और जो भलाई भी तुम अपने लिये आगे भेजोगे उसे अल्लाह के यहाँ मौजूद पाओगे।"

जो माल तुम अल्लाह की राह में खर्च कर रहे हो वह अल्लाह के बैंक में जमा हो जाता है और मुसलसल बढ़ता रहता है। लिहाज़ा उसके बारे में फ़िक्र करने की कोई ज़रूरत नहीं।

اِنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ﴿١١٠﴾

"यक़ीनन जो कुछ तुम कर रहे हो अल्लाह उसे देख रहा है।"

आयत 111

وَقَالُوْا لَنْ يَّدْخُلَ الْجَنَّةَ اِلَّا مَنْ كَانَ هُوْدًا اَوْ نَصٰرٰى

"और यह कहते हैं हरगिज़ दाख़िल ना होगा जन्नत में मगर वही जो यहूदी हो या नसरानी हो।"

जब यह नयी उम्मते मुस्लिमा तशकील (निर्मित) पा रही थी तो यहूदी और नसरानी, जो एक दूसरे के दुश्मन थे, मुस्लमानों के मुक़ाबले में जमा हो गये। उन्होंने मिल कर यह कहना शुरू किया कि जन्नत में कोई हरगिज़ नहीं दाख़िल होगा सिवाय उसके जो या तो यहूदी हो या नसरानी हो। इस तरह की मज़हबी जत्थे बन्दियाँ हमारे यहाँ भी बन जाती है। मसलन अहले हदीस के मुक़ाबले में बरेलवी और देवबन्दी जमा हो जाएँगे, अगरचे उनका आपस में एक-दूसरे के साथ बैर अपनी जगह है। जब एक मुश्तरका (संयुक्त) दुश्मन नज़र आता है तो फिर वह लोग जिनके अपने अन्दर बड़े इख्तलाफ़ात होते हैं वह भी एक मुत्तहिदा महाज़ बना लेते हैं। यहूद व नसारा के इस मुश्तरका बयान के जवाब में फ़रमाया:

"यह इनकी तमन्नायें हैं।"

تِلْكَ اَمَانِيُّهُمْ ؕ

यह इनकी ख्वाहिशात हैं, मनघडत ख्यालात हैं, खुशनुमा आरज़ुएँ (wishful thinkings) हैं।

"उनसे कहो अपनी दलील पेश करो अगर तुम (अपने दावे में) सच्चे हो।"

قُلْ هَاتُوْا بُرْهَانَكُمْ اِنْ كُنْتُمْ صٰدِقِيْنَ ﴿١١١﴾

किसी आसमानी किताब से दलील लाओ। कहीं तौरात में लिखा हो या इन्जील में लिखा हो तो हमें दिखा दो! अब यहाँ पर फिर एक अलमगीर सदाक़त (universal truth) बयान हो रही है:

आयत 112

بَلٰی٭ مَنۡ اَسۡلَمَ وَجۡہَہٗ لِلّٰہِ وَ ہُوَ مُحۡسِنٌ

"क्यों नहीं, हर वह शख्स जो अपना चेहरा अल्लाह के सामने झुका दे और वह मोहसिन हो"

उसका सरे तस्लीम ख़म कर देने (सर झुकाने) का रवैय्या सदक़ व सच्चाई और हुस्ने किरदार पर मब्नी हो। सर का झुकाना मुनाफ़िक़ाना अंदाज़ में ना हो, उसकी इताअत जुज़्वी ना हो कि कुछ माना कुछ नहीं माना।

فَلَہٗۤ اَجۡرُہٗ عِنۡدَ رَبِّہٖ

"तो उसके लिये उसका अज्र महफ़ूज़ है उसके रब के पास।"

وَ لَا خَوۡفٌ عَلَیۡہِمۡ وَ لَا ہُمۡ یَحۡزَنُوۡنَ ﴿۱۱۲﴾

"और ऐसे लोगों को ना तो कोई खौफ़ लाहक़ होगा और ना ही वह किसी हुज़्न (शोक) व मलाल से दो-चार होंगे।"

यह दूसरी आयत है कि जिससे कुछ लोगों ने इस्तेदाल किया है कि निजाते उखरवी के लिये ईमान बिर्रिसालत ज़रूरी नहीं है। इसका जवाब पहले अर्ज़ किया जा चुका है। मुख्तसरन यह कि:

अव्वलन- क़ुरान हकीम में हर मक़ाम पर सारी चीज़ें बयान नहीं की जाती। कोई शय एक जगह बयान की गयी है तो कोई कहीं दूसरी जगह बयान की गयी है। इससे हिदायत हासिल करनी है तो इसको पूरे का पूरा एक किताब की हैसियत से लेना होगा।

सानियन- यह सारा सिलसिला-ए-कलाम दो ब्रेकिटों के दरमियान आ रहा है और इससे पहले यह अल्फ़ाज़ वाज़ेह तौर पर आ चुके हैं: {وَاٰمِنُوْا بِمَآ اَنْزَلْتُ مُصَدِّقًا لِّمَا مَعَكُمْ وَلَا تَكُوْنُوْٓا اَوَّلَ كَافِرٍۢ بِهٖ} (आयत:41) चुनाँचे यह इबारत ज़र्ब खा रही है इस पूरे के पूरे सिलसिला-ए-मज़ामीन से जो इन दो ब्रेकिटों के

दरमियान आ रहा है।

आयात 113 से 123 तक

وَقَالَتِ الْيَهُوْدُ لَيْسَتِ النَّصٰرٰى عَلٰى شَيْءٍ ۠ وَّقَالَتِ النَّصٰرٰى لَيْسَتِ الْيَهُوْدُ عَلٰى شَيْءٍ ۙ وَّهُمْ يَتْلُوْنَ الْكِتٰبَ ۭ كَذٰلِكَ قَالَ الَّذِيْنَ لَا يَعْلَمُوْنَ مِثْلَ قَوْلِهِمْ ۚ فَاللّٰهُ يَحْكُمُ بَيْنَهُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ فِيْمَا كَانُوْا فِيْهِ يَخْتَلِفُوْنَ ﴿١١٣﴾ وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ مَسٰجِدَ اللّٰهِ اَنْ يُّذْكَرَ فِيْهَا اسْمُهٗ وَسَعٰى فِيْ خَرَابِهَا ۭ اُولٰۗىِٕكَ مَا كَانَ لَهُمْ اَنْ يَّدْخُلُوْهَآ اِلَّا خَاۗىِٕفِيْنَ ڛ لَهُمْ فِي الدُّنْيَا خِزْيٌ وَّلَهُمْ فِي الْاٰخِرَةِ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ﴿١١٤﴾ وَلِلّٰهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ ۤ فَاَيْنَمَا تُوَلُّوْا فَثَمَّ وَجْهُ اللّٰهِ ۭ اِنَّ

اللّٰہَ وَاسِعٌ عَلِیْمٌ ﴿۱۱۵﴾ وَقَالُوا اتَّخَذَ اللّٰہُ وَلَدًا ۙ سُبْحٰنَہٗ ؕ بَلْ
لَّہٗ مَا فِی السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ؕ کُلٌّ لَّہٗ قٰنِتُوْنَ ﴿۱۱۶﴾
بَدِیْعُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ؕ وَاِذَا قَضٰۤی اَمْرًا فَاِنَّمَا
یَقُوْلُ لَہٗ کُنْ فَیَکُوْنُ ﴿۱۱۷﴾ وَقَالَ الَّذِیْنَ لَا یَعْلَمُوْنَ
لَوْلَا یُکَلِّمُنَا اللّٰہُ اَوْ تَاْتِیْنَاۤ اٰیَۃٌ ؕ کَذٰلِکَ قَالَ الَّذِیْنَ
مِنْ قَبْلِہِمْ مِّثْلَ قَوْلِہِمْ ؕ تَشَابَہَتْ قُلُوْبُہُمْ ؕ قَدْ
بَیَّنَّا الْاٰیٰتِ لِقَوْمٍ یُّوْقِنُوْنَ ﴿۱۱۸﴾ اِنَّاۤ اَرْسَلْنٰکَ بِالْحَقِّ
بَشِیْرًا وَّنَذِیْرًا ۙ وَّلَا تُسْـَٔلُ عَنْ اَصْحٰبِ الْجَحِیْمِ ﴿۱۱۹﴾ وَلَنْ
تَرْضٰی عَنْکَ الْیَہُوْدُ وَلَا النَّصٰرٰی حَتّٰی تَتَّبِعَ
مِلَّتَہُمْ ؕ قُلْ اِنَّ ہُدَی اللّٰہِ ہُوَ الْہُدٰی ؕ وَلَئِنِ اتَّبَعْتَ
اَہْوَآءَہُمْ بَعْدَ الَّذِیْ جَآءَکَ مِنَ الْعِلْمِ ۙ مَا لَکَ مِنَ
اللّٰہِ مِنْ وَّلِیٍّ وَّلَا نَصِیْرٍ ﴿۱۲۰﴾ اَلَّذِیْنَ اٰتَیْنٰہُمُ الْکِتٰبَ
یَتْلُوْنَہٗ حَقَّ تِلَاوَتِہٖ ؕ اُولٰٓئِکَ یُؤْمِنُوْنَ بِہٖ ؕ وَمَنْ
یَّکْفُرْ بِہٖ فَاُولٰٓئِکَ ہُمُ الْخٰسِرُوْنَ ﴿۱۲۱﴾ ع یٰبَنِیْۤ
اِسْرَآءِیْلَ اذْکُرُوْا نِعْمَتِیَ الَّتِیْۤ اَنْعَمْتُ عَلَیْکُمْ وَاَنِّیْ

فَضَّلْتُكُمْ عَلَى الْعٰلَمِيْنَ ﴿١٢٢﴾ وَاتَّقُوْا يَوْمًا لَّا تَجْزِيْ
نَفْسٌ عَنْ نَّفْسٍ شَيْـًٔا وَّلَا يُقْبَلُ مِنْهَا عَدْلٌ وَّلَا
تَنْفَعُهَا شَفَاعَةٌ وَّلَا هُمْ يُنْصَرُوْنَ ﴿١٢٣﴾

आयत 113

وَقَالَتِ الْيَهُوْدُ لَيْسَتِ النَّصٰرٰى عَلٰى شَيْءٍ

"यहूदी कहते हैं कि नसारा किसी बुनियाद पर नहीं हैं"

उनकी कोई हैसियत नहीं है, कोई जड़ बुनियाद नहीं है।

وَّقَالَتِ النَّصٰرٰى لَيْسَتِ الْيَهُوْدُ عَلٰى شَيْءٍ

"और नसारा कहते हैं कि यहूद किसी बुनियाद पर नहीं हैं"

उनकी कोई बुनियाद नहीं है, यह बेबुनियाद लोग हैं, इनकी कोई हक़ीक़त नहीं है।

وَّهُمْ يَتْلُوْنَ الْكِتٰبَ

"हालांकि दोनों ही किताब पढ़ रहे हैं।"

अहदनामा-ए-क़दीम (Old Testament) यहूदियों और ईसाईयों में मुश्तरक (common) है। यह बहुत अहम नुक्ता है और अमेरिका में जदीद ईसाइयत की सूरत में एक बहुत

बड़ी ताक़त जो उभर रही है वह ईसाइयत को यहूदियत के रंग में रंग रही है। रोमन कैथोलिक मज़हब ने तो बाइबल से अपना रिश्ता तोड़ लिया था और सारा इख़्तियार पॉप के हाथ में आ गया था, लेकिन प्रोटेस्टेन्टस (Protestants) ने फिर बाइबल को क़ुबूल किया। अब इसकी मन्तक़ी (logical) इन्तहा यह है कि अहदनामा-ए-क़दीम पर भी उनकी तवज्जो हो रही है और वह कह रहे हैं कि इसे भी हम अपनी किताब मानते हैं और इसमें जो कुछ लिखा है उसे हम नज़र अंदाज़ नहीं कर सकते। अमेरिका में हमने एक सेमिनार मुनअक़िद (आयोजित) किया था, जिसमें एक यहूदी आलिम ने कहा था कि इस वक़्त इसराइल को सबसे बड़ी नुसरत व हिमायत अमेरिका के उन ईसाईयों से मिल रही है जो Evengelists कहलाते हैं और वहाँ पर एक बड़ा फ़िरक़ा बन कर उभर रहे हैं। बहरहाल यह उनका तर्ज़े अमल बयान हुआ है।

كَذٰلِكَ قَالَ الَّذِيْنَ لَا يَعْلَمُوْنَ مِثْلَ قَوْلِهِمْ ۚ

"इसी तरह कही थी उन लोगों ने जो कुछ भी नहीं जानते, इन्हीं की सी बात।"

यहाँ इशारा है मुशरिकीने मक्का की तरफ़।

فَاللّٰهُ يَحْكُمُ بَيْنَهُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ فِيْمَا كَانُوْا فِيْهِ يَخْتَلِفُوْنَ ﴿١١٣﴾

"पस अल्लाह तआला फ़ैसला कर देगा इनके माबैन क़यामत के दिन उन तमाम बातों का जिनमें यह इख़्तिलाफ़ कर रहे थे।"

अब देखिये इस सिलसिला-ए-कलाम की बक़िया आयात में भी अगरचे ख़िताब तो बनी इसराइल ही से है, लेकिन अब यहाँ पर अहले मक्का से कुछ ताअरीज़ (लड़ाई) शुरू हो गयी है। इसके बाद हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम का तज़किरा आयेगा, फिर तहवीले क़िब्ला का ज़िक्र आयेगा। बैतुल्लाह चूँकि उस वक़्त मुशरिकीने मक्का के कब्ज़े में था, लिहाज़ा इस हवाले से कुछ मुताल्लिक़ा (सम्बंधित) मज़ामीन आ रहे हैं और तहवीले क़िब्ला की तम्हीद बाँधी जा रही है। “तहवीले क़िब्ला” दरअसल इस बात की अलामत थी कि अब वह साबक़ा उम्मते मुस्लिमा माज़ूल की जा रही है और इस मक़ाम पर एक नयी उम्मत, उम्मते मुहम्मद ﷺ की तक़ररी (नियुक्ति) अमल में लायी जा रही है। इस हवाले से { كَذٰلِكَ قَالَ الَّذِيْنَ لَا يَعْلَمُوْنَ مِثْلَ قَوْلِهِمْ ۚ } के अल्फ़ाज़ में मुशरिकीने मक्का की तरफ़ इशारा किया गया।

आयत 114

وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ مَّنَعَ مَسٰجِدَ اللّٰهِ اَنْ يُّذْكَرَ فِيْهَا اسْمُهٗ

“और उस शख्स से बढ़ कर ज़ालिम कौन होगा जो अल्लाह तआला की मस्जिदों से (लोगों को) रोके कि उनमे उसका नाम लिया जाये?”

मुशरिकीने मक्का ने मुस्लमानों को मस्जिदे हराम में हाज़री से महरूम कर दिया था और उनको वहाँ जाने की इजाज़त ना थी। 6 हिजरी में रसूल अल्लाह ﷺ ने सहाबा किराम रज़िअल्लाहुअन्हुम के हमराह उमरे के इरादे से मक्का का

सफ़र फ़रमाया, लेकिन मुशरिकीन ने आप ﷺ और आप ﷺ के साथियों को मक्का में दाख़िल होने की इजाज़त नहीं दी। इस मौक़े पर सुलह हुदैबिया हुई और आप ﷺ को उमरा किये बगैर वापस आना पड़ा। फिर अगले बरस 7 हिजरी में आप ﷺ ने सहाबा किराम रज़िअल्लाहुअन्हुम के हमराह उमरा अदा किया। तो यह सात बरस मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ और अहले ईमान पर बहुत शाक़ (कठिन) गुज़रे हैं। यहाँ मुशरिकीने मक्का के इस ज़ुल्म का ज़िक्र हो रहा है कि उन्होंने अहले ईमान को मस्जिदे हराम से रोक रखा है।

"और वह उनकी तखरीब के दर पे हो?" وَسَعٰى فِيْ خَرَابِهَا ۭ

ख़राब और तख़रीब का माद्दाये असली एक ही है। तख़रीब दो तरह की होती है। एक ज़ाहिरी तख़रीब कि मस्जिद को गिरा देना, और एक बातिनी और मानवी (सचमुच) तख़रीब कि अल्लाह के घर को तौहीद के बजाये शिर्क का अड्डा बना देना। मुशरिकीने मक्का ने बैतुल्लाह को बुतकदा बना दिया था:

दुनिया के बुतकदों में पहला वह घर ख़ुदा का
हम उसके पासबाँ हैं वह पासबाँ हमारा!

खाना-ए-काबा में 360 बुत रख दिये गये थे, जिसे इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने तौहीदे खालिस के लिये तामीर किया था। मसाजिद के साथ लफ्ज़ "ख़राब" एक हदीस में भी आया है। यह बड़ी दिलदोज़ हदीस है और मैं चाहता हूँ कि आप इसे ज़हन नशीन कर लें। हज़रत अली रज़िअल्लाहुअन्हु से रिवायत है कि रसूल अल्लाह ﷺ ने फ़रमाया:

يُوْشِكُ اَنْ يَّاْتِيَ عَلَى النَّاسِ زَمَانٌ

"अंदेशा है कि लोगों पर (यानि मेरी उम्मत पर) एक ज़माना ऐसा भी आयेगा कि"

لَا يَبْقٰى مِنَ الْاِسْلَامِ اِلَّا اسْمُهٗ

"इस्लाम में से इसके नाम के सिवा कुछ नहीं बचेगा"

وَلَا يَبْقٰى مِنَ الْقُرْاٰنِ اِلَّا رَسْمُهٗ

"और क़ुरान में से इसके रस्मुल ख़त (अल्फ़ाज़ और हुरूफ़) के सिवा कुछ नहीं बचेगा।"

अल्लाह तआला ने इसी की ज़मानत दी है कि क़ुरान हकीम के अल्फ़ाज़ व हुरूफ़ मन व अन महफ़ूज़ रहेंगे।

مَسَاجِدُهُمْ عَامِرَةٌ وَهِيَ خَرَابٌ مِنَ الْهُدٰى

"उनकी मस्जिदें आबाद तो बहुत होंगी लेकिन हिदायत से खाली हो जाएँगी।"

यहाँ भी लफ्ज़ "ख़राब" नोट कीजिये। गोया मानवी ऐतबार से यह वीरान हो जाएँगी।

عُلَمَاؤُهُمْ شَرٌّ مَنْ تَحْتَ اَدِيْمِ السَّمَاءِ

"उनके उलमा आसमान की छत के नीचे के बदतरीन इन्सान होंगे।"

مِنْ عِنْدِهِمْ تَخْرُجُ الْفِتْنَةُ وَفِيْهِمْ تَعُوْدُ (13)

"फितना उन्हीं के अन्दर से बरामद होगा और उन्हीं में घुस जायेगा।"

यानि उनका काम ही फ़ितना अन्गेज़ी, मुखालफ़त और जंग व जिदाल होगा। अपने-अपने फ़िरक़े के लोगों के जज़्बात को भड़काते रहना और मुस्लमानों के अन्दर इख्तलाफ़ात को हवा देना ही उनका काम रह जायेगा।

आज जिनको हम उलमा कहते हैं उनकी अज़ीम अक्सरियत इस कैफ़ियत से दो-चार हो चुकी है। जब मज़हब और दीन पेशा बन जाये तो उसमें कोई खैर बाक़ी नहीं रहता। दीन और मज़हब पेशा नहीं था, लेकिन इसे पेशा बना लिया गया। इस्लाम में कोई पेशवाइयत नहीं, कोई पापाइयत नहीं, कोई ब्रह्मनियत नहीं। इस्लाम तो एक खुली किताब की मानिंद हैं। हर शख्स किताबुल्लाह पढ़े, हर शख्स अरबी सीखे और किताबुल्लाह को समझे। हर शख्स को इबादात के क़ाबिल होना चाहिये। हर शख्स अपनी बच्ची का निकाह खुद पढ़ाये, अपने वालिद का जनाज़ा खुद पढ़ाये। हमने खुद इसे पेशा बना दिया है और इबादात के मामले में एक ख़ास तबक़े के मोहताज हो गये हैं। मिर्ज़ा ग़ालिब ने कहा था:

पेशे में ऐब नहीं, रखिये ना फ़रहाद को नाम!

एक चीज़ जब पेशा बन जाती है तो उसमें पेशा वाराना चश्मकें और रक़ाबतें दर आती हैं। लेकिन साथ ही यह बात वाज़ेह रहे कि दुनिया कभी उल्माये हक़ से खाली नहीं होगी। चुनाँचे यहाँ उल्माये हक़ भी हैं और उल्माये सू भी हैं, लेकिन हक़ीक़त यह है कि उनकी अक्सरियत का हाल वही हो चुका है जो हदीस में बयान हुआ है, वरना उम्मत का यूँ बेड़ा ग़र्क़ ना होता।

أُولَٰٓئِكَ مَا كَانَ لَهُمۡ أَن يَدۡخُلُوهَآ إِلَّا خَآئِفِينَۚ

“ऐसे लोगों को तो उनमें दाख़िल ही नहीं होना चाहिये मगर डरते हुए।”

इन लोगों को लायक़ नहीं है कि अल्लाह की मस्जिदों में दाख़िल हों, यह अगर वहाँ जायें भी तो डरते हुए जायें।

لَهُمْ فِي الدُّنْيَا خِزْيٌ

"उनके लिये दुनिया में भी ज़िल्लत व रुसवाई है"

وَّلَهُمْ فِي الْاٰخِرَةِ عَذَابٌ عَظِيْمٌ ﴿١١٤﴾

"और आख़िरत में उनके लिये अज़ाबे अज़ीम है।"

अगली आयत में तहवीले क़िब्ला के लिये तम्हीद (प्रस्तावना) बाँधी जा रही है। क़िब्ले की तब्दीली बड़ा हस्सास (संवेदनशील) मामला था। जिन लोगों को येरुशलम और बैतुलमक़दस के साथ दिलचस्पी थी उनके दिलों में उसकी अक़ीदत जागज़ी (विरासत में प्राप्त) थी, जबकि मक्का मुकर्रमा और बैतुल्लाह के साथ जिनको दिलचस्पी थी उनके दिलों में उसकी मोहब्बत व अक़ीदत थी। तो इस हवाले से क़िब्ले की तब्दीली कोई मामूली बात ना थी। हिजरत के बाद क़िब्ला दो दफ़ा बदला है। मक्का मुकर्रमा में मुस्लमानों का क़िब्ला बैतुल्लाह था। मदीने में आकर रसूल अल्लाह ﷺ ने सौलह महीने तक बैतुलमक़दस की तरफ़ रुख करके नमाज़ पढ़ी और फिर बैतुल्लाह की तरफ़ नमाज़ पढ़ने का हुक्म आया। इस तरह अहले ईमान के कई इम्तिहान हो गये, उनका ज़िक्र आगे आ जायेगा। लेकिन यहाँ उसकी तम्हीद बयान हो रही है। फ़रमाया:

आयत 115

وَلِلّٰهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ

"और मशरिक़ और मग़रिब सब अल्लाह के हैं।"

यानि अगर हम मग़रिब की तरफ़ रुख करते हैं तो इसके मायने यह नहीं हैं कि अल्लाह मग़रिब में है (मआज़ अल्लाह)। अल्लाह तो जोहत (दिशा) और मक़ाम से मा वरा है, वरा उल वरा सुम्मा वरा उल वरा है (High, Higher, Highest)। यह तो यक्सानियत (समानता) पैदा करने के लिये और इज्तमाई रंग देने के लिये एक चीज़ को क़िब्ला बना दिया गया है। यह तो एक अलामत है। ग़ालिब ने क्या खूब कहा है:

है परे सरहद इदराक से अपना मसजूद
क़िब्ले को अहले नज़र क़िब्ला नुमा कहते हैं!

क़िब्ला हमारा मसजूद तो नहीं है!

فَاَيْنَمَا تُوَلُّوْا فَثَمَّ وَجْهُ اللّٰهِ

"पस जिधर भी तुम रुख करोगे उधर ही अल्लाह का रुख है।"

اِنَّ اللّٰهَ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ﴿۱۱۵﴾

"यक़ीनन अल्लाह बहुत वुसअत (विस्तार) वाला, सब कुछ जानने वाला है।"

वह बहुत वुसअत वाला है, वह किसी भी सिम्त में महदूद नहीं है, और हर शय का जानने वाला है।

तहवीले क़िब्ला की तम्हीद के तौर पर एक आयत कह कर अब फिर असल सिलसिला-ए-कलाम जोड़ा जा रहा है:

आयत 116

وَقَالُوا اتَّخَذَ اللّٰهُ وَلَدًا ۙ سُبْحٰنَهٗ ۭ

"और इन (में वह भी हैं जिन) का क़ौल है कि अल्लाह ने किसी को बेटा बनाया है। वह तो इन बातों से पाक है।"

ज़ाहिर बात है यहाँ फिर अहले मक्का ही की तरफ़ इशारा हो रहा है जिनका यह क़ौल था कि अल्लाह ने अपने लिये औलाद इख़्तियार की है। वह कहते थे कि फ़रिश्ते अल्लाह की बेटियाँ हैं। नसारा कहते थे कि मसीह अलैहिस्सलाम अल्लाह के बेटे हैं, और यहूदियों का भी एक गिरोह ऐसा था जो हज़रत उज़ैर अलैहिस्सलाम को अल्लाह का बेटा कहता था।

بَلْ لَّهٗ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضِ ۭ

"बल्कि आसमानों और ज़मीन में जो कुछ है उसी की मिलकियत है।"

सब मख्लूक़ और ममलूक हैं, खालिक़ और मालिक सिर्फ़ वह है।

كُلٌّ لَّهٗ قٰنِتُوْنَ ﴿١١٦﴾

"सबके सब उसी के मुतीअ फ़रमान हैं।"

बड़े से बड़ा रसूल हो या बड़े से बड़ा वली या बड़े से बड़ा फ़रिश्ता या बड़े बड़े अजरामे समाविया (खगोलीय पिंड), सब उसी के हुक्म के पाबन्द हैं।

आयत 117

بَدِيۡعُ السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضِ‌ؕ

"वह नया पैदा करने वाला है आसमानों और ज़मीन का।"

वह बगैर किसी शय के आसमानों और ज़मीन को पैदा करने वाला है। "ابداع" और "خلق" में फ़र्क़ नोट कीजिये। शाह वलीउल्लाह देहलवी रहीमुल्लाह ने हुज्जतुल्लाह अलबाल्गा के पहले बाब में लिखा है कि अल्लाह तआला के अफ़आल बुनियादी तौर पर तीन हैं: इब्दाअ, खल्क़ और तदबीर। इब्दाअ से मुराद है अदम-ए-महज़ से किसी चीज़ को वजूद में लाना, जिसे अंग्रेज़ी में "creation ex nihilo" से ताबीर किया जाता है। जबकि खल्क़ एक चीज़ से दूसरी चीज़ का बनाना है, जैसे अल्लाह तआला ने गारे से इन्सान बनाया, आग से जिन्नात बनाये और नूर से फ़रिश्ते बनाये, यह तख्लीक़ है। तो "بدیع" वह ज़ात है जिसने किसी माद्दा-ए-तख्लीक़ के बगैर एक नयी कायनात पैदा फ़रमा दी। हमारे यहाँ "बिदअत" वह शय कहलाती है जो दीन में नहीं थी और ख्वाह माख्वाह लाकर शामिल कर दी गयी। जिस बात की जड़ बुनियाद दीन में नहीं है वह बिदअत है।

وَاِذَا قَضٰٓى اَمۡرًا فَاِنَّمَا يَقُوۡلُ لَهٗ كُنۡ فَيَكُوۡنُ ﴿۱۱۷﴾

"और जब वह किसी मामले का फ़ैसला कर लेता है तो उससे बस यही कहता है कि हो जा और वह हो जाता है।"

आयत 118

وَقَالَ الَّذِيْنَ لَا يَعْلَمُوْنَ

"और कहा उन लोगों ने जो इल्म नहीं रखते"

यहाँ पर मुशरिकीने मक्का की तरफ़ रूए सुखन है।

لَوْلَا يُكَلِّمُنَا اللّٰهُ اَوْ تَاْتِيْنَآ اٰيَةٌ ؕ

"क्यों नहीं बात करता हमसे अल्लाह या क्यों नहीं आ जाती हमारे पास कोई निशानी?"

मुशरिकीने मक्का का रसूल अल्लाह ﷺ से बड़ी शिद्दत के साथ यह मुतालबा था कि आप कोई ऐसे मौज्ज़ात ही दिखा दें जैसे आप कहते हैं कि ईसा अलैहिस्सलाम ने दिखाये थे या मूसा अलैहिस्सलाम ने दिखाये थे। अगर आप हमारे यह मुतालबे पूरे कर दें तो हम आपको अल्लाह का रसूल मान लेंगे। यह मज़मून तफ़सील के साथ सूरतुल अनआम में और फिर सूरह बनी इसराइल में आयेगा।

كَذٰلِكَ قَالَ الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِهِمْ مِّثْلَ قَوْلِهِمْ ؕ

"इसी तरह की बातें जो लोग इनसे पहले थे वह भी कहते रहे हैं।"

تَشَابَهَتْ قُلُوْبُهُمْ ؕ

"इनके दिल एक-दूसरे से मुशाबेह हो गये हैं।"

قَدْ بَيَّنَّا الْاٰيٰتِ لِقَوْمٍ يُّوْقِنُوْنَ ﴿١١٨﴾

"हम तो अपनी आयात वाज़ेह कर चुके हैं उन लोगों के लिये जो यक़ीन करना चाहें।"

आयत 119

اِنَّآ اَرْسَلْنٰكَ بِالْحَقِّ بَشِيْرًا وَّنَذِيْرًا ۙ

"(ऐ नबी ﷺ!) बेशक हमने आपको भेजा है हक़ के साथ बशीर और नज़ीर बना कर"

आप ﷺ की बुनियादी हैसियत यह है कि आप ﷺ अहले हक़ को जन्नत और उसकी तमाम तर नेअमतों की बशारत दें, और जो गलत रास्ते पर चल पड़ें, कुफ़्र करें, मुनाफ़क़त में मुब्तला हों, मुल्हिद (नास्तिक) हों और बदअमली करें उनको आप ﷺ ख़बरदार कर दें कि उनके लिये जहन्नम तैयार कर दी गयी है। आप ﷺ का काम दावत, इब्लाग, तब्लीग और नसीहत है।

وَّلَا تُسْـَٔلُ عَنْ اَصْحٰبِ الْجَحِيْمِ ﴿١١٩﴾

"और आप ﷺ से सवाल नहीं किया जायेगा जहन्नमियों के बारे में।"

जो लोग अपने तर्ज़े अमल की बिना पर जहन्नम के मुस्तहिक़ (हक़दार) क़रार पा गये हैं उनके बारे में आप ﷺ ज़िम्मेदार नहीं हैं। आप ﷺ से यह नहीं पूछा जायेगा कि यह क्यों जहन्नम में पहुँच गये? आप ﷺ के होते हुए यह जहन्नमी क्यों हो गये? नहीं, यह आप ﷺ की ज़िम्मेदारी

नहीं है। कौन जन्नत में जाना चाहता है और कौन जहन्नम में, यह आदमी का अपना फ़ैसला है। आप ﷺ का काम हक़ को वाज़ेह कर देना है, इसकी वज़ाहत में कमी ना रह जाये, हक़ वाज़ेह हो जाये, कोई इश्तबाह (गलती) बाक़ी ना रहे, बस यह ज़िम्मेदारी आप ﷺ की है, इससे ज़्यादा नहीं। इन्सान अगर अपनी असल मसूलियत (उत्तरदायित्व) से ज़्यादा ज़िम्मेदारी अपने सर पर डाल ले तो ख्वाह माख्वाह मुश्किल में फँस जाता है। हमारे यहाँ की बहुत सी जमातें इसी तरह की गलतियों की वजह से गलत रास्ते पर पड़ गईं और पूरी की पूरी तहरीकें बर्बाद हो गईं। रसूल अल्लाह ﷺ चाहते थे कि किसी तरह यह उल्माये यहूद ईमान ले आयें और जहन्नम का ईंधन ना बनें। उनके लिये आप ﷺ ने अल्लाह के हुज़ूर दुआएँ की होगी। जैसे मक्की दौर में आप ﷺ दुआएँ माँगते थे कि ऐ अल्लाह! उमर बिन हिशाम और उमर बिन ख़त्ताब में से किसी एक को तू मेरी झोली में डाल दे और उसके ज़रिये से इस्लाम को क़ुव्वत अता फ़रमा!

आयत 120

وَلَنْ تَرْضٰى عَنْكَ الْيَهُوْدُ وَلَا النَّصٰرٰى حَتّٰى تَتَّبِعَ مِلَّتَهُمْ ؕ

“और (ऐ नबी ﷺ! आप किसी मुगालते में ना रहिये) हरगिज़ राज़ी ना होंगे आप ﷺ से यहूदी और नसरानी जब तक कि आप ﷺ पैरवी ना करें उनकी मिल्लत की।”

लिहाज़ा आप उनसे उम्मीद मुन्क़तअ (अलग) कर लीजिये। इसलिये कि ज़्यादा उम्मीद हो तो फिर मायूसी हो जाती है। इक़बाल ने बंदा-ए-मोमिन के बारे में बहुत खूब कहा है:

उसकी उम्मीदें क़लील, उसके मक़ासिद जलील!

मक़सद ऊँचा हो, लेकिन उम्मीद क़लील (कम) रहनी चाहिये। अल्लाह चाहेगा तो हो जायेगा, नहीं चाहेगा तो नहीं होगा। बंदा-ए-मोमिन का काम अपनी हद तक अपना फ़र्ज़ अदा कर देना है। इससे ज़्यादा की ख्वाहिश अगर अपने दिल में पालेंगे तो किसी उजलतपसन्दी (जल्दीबाज़ी) में गिरफ्तार हो जाएँगे और किसी राहे यसीर (आसान) या राहे कसीर (short cut) के ज़रिये मंज़िल तक पहुँचने की कोशिश करेंगे और अपने आपको भी बर्बाद कर लेंगे।

قُلْ اِنَّ هُدَى اللّٰهِ هُوَ الْهُدٰىؕ

"कह दीजिये हिदायत तो बस अल्लाह की हिदायत है।"

जो अल्लाह ने बतलाया है वही सीधा रास्ता है।

وَلَىِٕنِ اتَّبَعْتَ اَهْوَآءَهُمْ بَعْدَ الَّذِیْ جَآءَكَ مِنَ الْعِلْمِ ۙ

"और (ऐ नबी ﷺ!) अगर आप ﷺ ने इनकी ख्वाहिशात की पैरवी की उस इल्म के बाद जो आपके पास आ चुका है"

अगर बफर्ज़े महाल (असम्भव मान लीजिये) आप ﷺ ने इनकी ख्वाहिशात की पैरवी की कि चलो कुछ लो कुछ दो का मामला कर लो, कुछ इनकी बात मानो कुछ अपनी बात

मनवा लो, तो यह तर्ज़े अमल अल्लाह तआला के यहाँ क़ाबिले क़ुबूल ना होगा। मक्का में क़ुरैश की तरफ़ से इस तरह की पेशकश की जाती थी कि कुछ अपनी बात मनवा लीजिये, कुछ हमारी मान लीजिये, compromise कर लीजिये, और अब मदीना में यहूद के साथ भी यही मामला था। चुनाँचे इस पर मुतनब्बा किया (ध्यान दिलाया) जा रहा है।

مَا لَكَ مِنَ اللّٰهِ مِنْ وَّلِيٍّ وَّلَا نَصِيْرٍ ﴿١٢٠﴾

"तो नहीं होगा अल्लाह के मुक़ाबले में आप ﷺ के लिये कोई मददगार और ना हिमायती।" (माज़ अल्लाह)

हक़ की तलवार बिल्कुल उरियाँ (नग्न) है। अल्लाह का अद्ल हर फ़र्द के लिये अलग नहीं है, यह फ़र्द से फ़र्द तक बदलता नहीं है। ऐसे ही हर क़ौम और हर उम्मत के लिये क़ानून तब्दील नहीं होता। ऐसा नहीं है कि किसी एक क़ौम से कोई एक मामला हो और दूसरी क़ौम से कोई दूसरा मामला। अल्लाह के उसूल और क़वानीन गैर मुबद्दल हैं। इस ज़िमन में इसकी एक सुन्नत है जिसके बारे में फ़रमाया: {فَلَنْ تَجِدَ لِسُنَّتِ اللّٰهِ تَبْدِيْلًا ۚ وَلَنْ تَجِدَ لِسُنَّتِ اللّٰهِ تَحْوِيْلًا ﴿٤٣﴾} (फ़ातिर) "पस तुम अल्लाह के तरीक़े में हरगिज़ कोई तब्दीली ना पाओगे, और तुम अल्लाह के तरीक़े को हरगिज़ टलता हुआ नहीं पाओगे।"

आयत 121

اَلَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ يَتْلُوْنَهٗ حَقَّ تِلَاوَتِهٖ

"वह लोग जिन्हें हमने किताब दी है वह उसकी तिलावत करते हैं जैसा कि उसकी तिलावत का हक़ है।"

इस पर मैंने अपने किताबचे "मुस्लमानों पर क़ुरान मजीद के हुक़ूक़" में बहस की है कि तिलावत का असल हक़ क्या है। एक बात जान लीजिये कि तिलावत का लफ्ज़, जो क़ुरान ने अपने लिये इख़्तियार किया है, बड़ा जामेअ लफ्ज़ है। "تَلَا يَتْلُوْ" का मायना पढ़ना भी है और "تَلَا يَتْلُوْ" किसी के पीछे-पीछे चलने (to follow) को भी कहते हैं। सुरतुश्शम्स की पहली दो आयात मुलाहिज़ा कीजिये:

وَالشَّمْسِ وَضُحٰىهَا ۝۱ وَالْقَمَرِ اِذَا تَلٰىهَا ۝۲

"क़सम है सूरज की और उसकी धूप की। और क़सम है चाँद की जब वह उसके पीछे आता है।"

जब आप कोई किताब पढ़ते हैं तो आप उसके मतन (text) के पीछे-पीछे चल रहे होते हैं। चुनाँचे बाज़ लोग जो ज़्यादा माहिर नहीं होते, किताब पढ़ते हुए अपनी ऊँगली साथ-साथ चलाते हैं ताकि निगाह इधर से उधर ना हो जाये, एक सतर (लाइन) से दूसरी सतर पर ना पहुँच जाये। अल्लाह तआला की तरफ से नाज़िल करदा किताब की तिलावत का असल हक़ यह होगा कि आप इस किताब को follow करें, इसे अपना इमाम बनायें, इसके पीछे चलें, इसका इत्तेबाअ (पालन) करें, इसकी पैरवी (अनुसरण) करें, जिसकी हम

दुआ करते हैं: وَاجْعَلْهُ لِيْ اِمَامًا وَّنُوْرًا وَّهُدًى وَّرَحْمَةً "और इसे मेरे लिये इमाम और रोशनी और हिदायत और रहमत बना दे!" अल्लाह तआला इस क़ुरान को हमारा इमाम उसी वक़्त बनायेगा जब हम फ़ैसला कर लें कि हम इस किताब के पीछे चलेंगे।

أُولَٰٓئِكَ يُؤْمِنُوْنَ بِهٖ ۗ

"वही हैं जो इस पर ईमान रखते हैं।"

यानि जो अल्लाह की किताब की तिलावत का हक़ अदा करें और उसकी पैरवी भी करें। और जो ना तो तिलावत का हक़ अदा करें और ना किताब की पैरवी करें, लेकिन वह दावा करें कि हमारा ईमान है इस किताब पर तो यह दावा झूठा है। अज़रूए हदीसे नबवी ﷺ: ((مَا آمَنَ بِالْقُرْآنِ مَنِ اسْتَحَلَّ مَحَارِمَهٗ))(14) "जिस शख्स ने क़ुरान की हराम करदा चीज़ों को अपने लिये हलाल कर लिया उसका क़ुरान पर कोई ईमान नहीं है।"

وَمَنْ يَّكْفُرْ بِهٖ فَأُولَٰٓئِكَ هُمُ الْخٰسِرُوْنَ ﴿١٢١﴾

"और जो इसका कुफ़्र करेगा तो वही लोग हैं खसारे में रहने वाले।"

अब यहूद के साथ इस सिलसिला-ए-कलाम का इख्तताम (अंत) हो रहा है जिसका आगाज़ छठे रुकूअ से हुआ था। इस सिलसिला-ए-कलाम के आगाज़ में जो दो आयात आयी थीं उन्हें मैंने ब्रेकेट से ताबीर किया था। वही दो आयात यहाँ दोबारा आ रही हैं और इस तरह गोया ब्रेकेट बंद हो रही है। फ़रमाया:

आयत 122

يٰبَنِيۡٓ اِسۡرَآءِيۡلَ اذۡكُرُوۡا نِعۡمَتِيَ الَّتِيۡٓ اَنۡعَمۡتُ عَلَيۡكُمۡ وَاَنِّيۡ فَضَّلۡتُكُمۡ عَلَى الۡعٰلَمِيۡنَ ﴿۱۲۲﴾

"ऐ औलादे याक़ूब! याद करो मेरे उस ईनाम को जो मैंने तुम पर किया, और यह कि मैंने तुम्हें फ़ज़ीलत दी थी अहले आलम पर।"

यह आयत बैन ही इन अल्फ़ाज़ में छठे रुकूअ के आगाज़ में आ चुकी है। (आयत 47) दूसरी आयत भी ज्यों की त्यों आ रही है, सिर्फ़ अल्फ़ाज़ की तरतीब थोड़ी सी बदली है। इबारत के शुरू और आखिर वाली ब्रेकेट्स एक दूसरे का अक्स (mirror) होती हैं। एक की गोलाई दायीं तरफ़ होती है तो दूसरी की बायीं तरफ़। इसी तरह यहाँ दूसरी आयत की तरतीब दरमियान से थोड़ी सी बदल दी गयी है। फ़रमाया:

आयत 123

وَاتَّقُوۡا يَوۡمًا لَّا تَجۡزِىۡ نَفۡسٌ عَنۡ نَّفۡسٍ شَيۡـًٔا

"और डरो उस दिन से कि जिस दिन कोई जान किसी दूसरी जान के कुछ भी काम ना आ सकेगी"

وَّلَا يُقۡبَلُ مِنۡهَا عَدۡلٌ

"और ना उससे कोई फ़िदया क़ुबूल किया जायेगा"

वहाँ अल्फ़ाज़ थे {وَّلَا يُقْبَلُ مِنْهَا شَفَاعَةٌ} "और ना उसे कोई सिफ़ारिश क़ुबूल की जायेगी।"

وَّلَا تَنْفَعُهَا شَفَاعَةٌ

"और ना उसे कोई सिफ़ारिश ही फ़ायदा दे सकेगी"

यहाँ अद्ल पहले और शफ़ाअत बाद में है, वहाँ शफ़ाअत पहले है और अद्ल बाद में। बस यही एक तब्दीली है।

وَّلَا هُمْ يُنْصَرُوْنَ ﴿١٢٣﴾

"और ना उन्हें कोई मदद मिल सकेगी।"

यह टुकड़ा भी ज्यों का त्यों वही है जिस पर छठे रुकूअ की दूसरी आयत ख़त्म हुई थी।

आयात 124 से 129 तक

وَاِذِ ابْتَلٰٓى اِبْرٰهٖمَ رَبُّهٗ بِكَلِمٰتٍ فَاَتَمَّهُنَّ ۭ قَالَ اِنِّىْ
جَاعِلُكَ لِلنَّاسِ اِمَامًا ۭ قَالَ وَمِنْ ذُرِّيَّتِىْ ۭ قَالَ لَا
يَنَالُ عَهْدِى الظّٰلِمِيْنَ ﴿١٢٤﴾ وَاِذْ جَعَلْنَا الْبَيْتَ
مَثَابَةً لِّلنَّاسِ وَاَمْنًا ۭ وَاتَّخِذُوْا مِنْ مَّقَامِ اِبْرٰهٖمَ
مُصَلًّى ۭ وَعَهِدْنَآ اِلٰٓى اِبْرٰهٖمَ وَاِسْمٰعِيْلَ اَنْ طَهِّرَا بَيْتِىَ
لِلطَّاۗىِٕفِيْنَ وَالْعٰكِفِيْنَ وَالرُّكَّعِ السُّجُوْدِ ﴿١٢٥﴾ وَاِذْ قَالَ
اِبْرٰهٖمُ رَبِّ اجْعَلْ هٰذَا بَلَدًا اٰمِنًا وَّارْزُقْ اَهْلَهٗ مِنَ

الثَّمَرٰتِ مَنْ اٰمَنَ مِنْهُمْ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۭ قَالَ
وَمَنْ كَفَرَ فَاُمَتِّعُهٗ قَلِيْلًا ثُمَّ اَضْطَرُّهٗٓ اِلٰى عَذَابِ
النَّارِ ۭ وَبِئْسَ الْمَصِيْرُ ﴿١٢٦﴾ وَاِذْ يَرْفَعُ اِبْرٰهٖمُ
الْقَوَاعِدَ مِنَ الْبَيْتِ وَاِسْمٰعِيْلُ ۭ رَبَّنَا تَقَبَّلْ مِنَّا ۭ
اِنَّكَ اَنْتَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ﴿١٢٧﴾ رَبَّنَا وَاجْعَلْنَا
مُسْلِمَيْنِ لَكَ وَمِنْ ذُرِّيَّتِنَآ اُمَّةً مُّسْلِمَةً لَّكَ ۠ وَاَرِنَا
مَنَاسِكَنَا وَتُبْ عَلَيْنَا ۚ اِنَّكَ اَنْتَ التَّوَّابُ الرَّحِيْمُ
﴿١٢٨﴾ رَبَّنَا وَابْعَثْ فِيْهِمْ رَسُوْلًا مِّنْهُمْ يَتْلُوْا عَلَيْهِمْ
اٰيٰتِكَ وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَيُزَكِّيْهِمْ ۭ اِنَّكَ
اَنْتَ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ ﴿١٢٩﴾ۧ

सूरतुल बक़रह के इब्तदाई अट्ठारह रुकूओं में रुए सुखन मज्मुई तौर पर साबक़ा उम्मते मुस्लिमा यानि बनी इसराइल की जानिब है। इब्तदाई चार रुकूअ अगरचे उमूमी नौइयत के हामिल हैं, लेकिन उनमें भी यहूद की तरफ़ रुए सुखन के इशारे मौजूद हैं। चौथे रुकूअ के आगाज़ से पंद्रहवे रुकूअ की इब्तदाई दो आयात तक, इन दस रुकूओं में सारी गुफ्तगू सराहत के साथ (विशेष रूप से) बनी इसराइल ही से है, इल्ला यह कि एक जहग अहले ईमान से ख़िताब किया

गया और कुछ मुशरिकीने मक्का का भी तारीज़ के असलूब में तज़किरा हो गया।

इसके बाद अब हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम का ज़िक्र शुरू हो रहा है। हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की नस्ल से बनी इस्माइल और बनी इसराइल दो शाखें हैं। हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की ज़ौजा मोहतरमा हज़रत हाजरा से हज़रत इस्माइल अलैहिस्सलाम पैदा हुए, जो बड़े थे, जबकि दूसरी बीवी हज़रत सारा से इसहाक़ अलैहिस्सलाम पैदा हुए। उनके बेटे याक़ूब अलैहिस्सलाम थे, जिनका लक़ब इसराइल था। उनके बारह बेटों से बनी इसराइल के बारह क़बीले वजूद में आये। हज़रत इस्माइल अलैहिस्सलाम को हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने खाना काबा के पास, वादी-ए-गैर ज़ी ज़रअ (बंज़र ज़मीन) में आबाद किया था, जिनसे एक नस्ल बनी इस्माइल चली। हज़रत इब्राहीम अलै० के बाद नबुवत हज़रत इस्माइल अलै० को तो मिली, लेकिन उसके बाद तक़रीबन तीन हज़ार साल का फ़ासला है कि इस शाख में कोई नबुवत नहीं आई। नबुवत का सिलसिला दूसरी शाख में चला। हज़रत इसहाक़ के बेटे हज़रत याक़ूब और उनके बेटे हज़रत युसुफ अलैहिस्सलाम सब नबी थे। फिर हज़रत मूसा और हज़रत हारून अलैहिस्सलाम से शुरू होकर हज़रत ईसा और हज़रत याहया अलैहिस्सलाम तक चौदह सौ बरस मुसलसल ऐसे हैं कि बनी इसराइल में नबुवत का तार टूटा ही नहीं। हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की नस्ल से एक तीसरी शाख बनी क़तूरा भी थी। यह आप अलैहिस्सलाम की तीसरी अहलिया क़तूरा से थी। इन्हीं में से बनी मदयन (या बनी मदयान) थे,

जिनमें हज़रत शोएब अलैहिस्सलाम की बेअसत हुई थी। इस तरह हज़रत शोएब अलैहिस्सलाम भी हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की नस्ल में से हैं।

जैसा कि अर्ज़ किया गया, हज़रत इस्माइल अलैहिस्सलाम के बाद बनी इस्माइल में नबुवत का सिलसिला मुनक़तअ (कटा) रहा। यहाँ तक कि तक़रीबन तीन हज़ार साल बाद मुहम्मदे अरबी ﷺ की बेअसत हुई। आप ﷺ की बेअसत के बाद इमामतुन्नास साबक़ा उम्मते मुस्लिमा (बनी इसराइल) से मौजूदा उम्मते मुस्लिमा (उम्मते मुहम्मदी अला साहिबहुमा अस्सलातु वस्सलाम) को मुन्तक़िल हो गयी। इस इन्तेक़ाले इमामत के वक़्त बनी इसराइल से ख़िताब करते हुए उनके और बनी इस्माइल के माबैन क़द्र मुश्तरक (common ground) का तज़किरा किया जा रहा है ताकि उनके लिये बात का समझना आसान हो जाये। उन्हें बताया जा रहा है कि तुम्हारे जद्दे अमजद भी इब्राहीम अलैहिस्सलाम ही थे और यह दूसरी नस्ल भी इब्राहीम अलैहिस्सलाम ही की है। इस हवाले से यह समझ लिया जाये कि हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने खाना काबा की तामीर की थी और अब इसे अहले तौहीद का मरकज़ बनाया जा रहा है, चुनाँचे पंद्रहवें रुकूअ से अट्ठाहरवें रुकूअ तक यह सारी गुफ्तगू जो हो रही है इसका असल मज़मून “तहवीले क़िब्ला” है।

आयत 124

وَاِذِ ابۡتَلٰۤی اِبۡرٰهٖمَ رَبُّهٗ بِكَلِمٰتٍ فَاَتَمَّهُنَّ

"और ज़रा याद करो जब इब्राहीम अलै० को आज़माया उसके रब ने बहुत सी बातों में तो उसने उन सबको पूरा कर दिखाया।"

"ईद-उल-अज़हा और फ़लसफ़ा-ए-क़ुरबानी" के उन्वान से हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की शख्सियत पर मेरा एक किताब्चा है जो मेरी एक तक़रीर और एक तहरीर (लेखन) पर मुश्तमिल है। तहरीर का उन्वान है: "हज और ईद-उल-अज़हा और उनकी असल रूह।" अपनी यह तहरीर मुझे बहुत पसंद है। इसमें मैंने हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलातु वस्सलाम के इम्तिहानात और आज़माइशों का ज़िक्र किया है। आप अलैहिस्सलाम के तवील सफ़रे हयात का खुलासा और लुब्बे लुबाब (सार) ही "इम्तिहान व आज़माइश" है, जिसके लिये क़ुरान की इस्तलाह (मुहावरा) "इबतला" है। इस आयत मुबारका में इनकी पूरी दास्ताने इबतला को चंद अल्फ़ाज़ में समो दिया गया है, और "فَاَتَمَّهُنَّ" का लफ्ज़ इन तमाम इम्तिहानात का नतीजा ज़ाहिर कर रहा है कि वह इन सबमें पूरा उतरे, इन सबमें पास हो गये, हर इम्तिहान में नुमाया हैसियत से कामयाबी हासिल की।

قَالَ اِنِّیۡ جَاعِلُكَ لِلنَّاسِ اِمَامًا

"तब फ़रमाया: (ऐ इब्राहीम अलै०!) अब मैं तुम्हें नौए इंसानी का इमाम बनाने वाला हूँ!"

قَالَ وَمِنۡ ذُرِّيَّتِىۡ‌ؕ

"उन्होंने कहा: और मेरी औलाद में से भी!"

यानि मेरी नस्ल के बारे में भी यह वादा है या नहीं?

قَالَ لَا يَنَالُ عَهۡدِى الظّٰلِمِيۡنَ ﴿۱۲۴﴾

"फ़रमाया: मेरा यह अहद ज़ालिमों से मुताल्लिक़ नहीं होगा।"

यानि तुम्हारी नस्ल में से जो साहिबे ईमान होंगे, नेक होंगे, सीधे रास्ते पर चलेंगे, उनसे मुताल्लिक़ हमारा यह वादा है। लेकिन यह अहद नस्लियत की बुनियाद पर नहीं है कि जो भी तुम्हारी नस्ल से हो वह इसका मिस्दाक़ बन जाये।

आयत 125

وَاِذۡ جَعَلۡنَا الۡبَيۡتَ مَثَابَةً لِّلنَّاسِ وَاَمۡنًا ؕ

"और याद करो जब हमने इस घर (बैतुल्लाह) को क़रार दे दिया लोगों के लिये इज्तमाअ (और ज़ियारत) की जगह और उसे अमन का घर क़रार दे दिया।"

وَاتَّخِذُوۡا مِنۡ مَّقَامِ اِبۡرٰهٖمَ مُصَلًّى ؕ

"और (हमने हुक्म दिया कि) मक़ामे इब्राहीम अलै० को अपनी नमाज़ पढ़ने की जगह बना लो।"

दौरे जदीद के बाज़ उलमा ने यह कहा है कि मक़ामे इब्राहीम अलैहिस्सलाम से मुराद कोई ख़ास पत्थर नहीं है, बल्कि असल में वह पूरी जगह ही "मक़ामे इब्राहीम" है जहाँ हज़रत

इब्राहीम अलैहिस्सलाम आबाद हुए थे। लेकिन सही बात वही है जो हमारे सलफ़ से चली आ रही है और इसके बारे में पुख्ता रिवायात हैं कि जिस तरह हज्रे अस्वद जन्नत से आया था ऐसे ही यह भी एक पत्थर था जो हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम के लिये जन्नत से लाया गया था। खाना काबा की तामीर के दौरान आप अलैहिस्सलाम इस पर खड़े होते थे और जैसे-जैसे तामीर ऊपर जा रही थी उसके लिये यह पत्थर खुद-ब-खुद ऊँचा होता जाता है। इस पत्थर पर आप अलैहिस्सलाम के क़दमों का निशान है। यही पत्थर "मक़ामे इब्राहीम" है जो अब भी महफ़ूज़ है। बैतुल्लाह का तवाफ़ मुकम्मल करके इसके क़रीब दो रकअत नमाज़ अदा की जाती है।

وَعَهِدۡنَآ إِلَىٰٓ إِبۡرَٰهِـۧمَ وَإِسۡمَٰعِيلَ أَن طَهِّرَا بَيۡتِيَ لِلطَّآئِفِينَ وَٱلۡعَٰكِفِينَ وَٱلرُّكَّعِ ٱلسُّجُودِ ﴿١٢٥﴾

"और हमने हुक्म किया था इब्राहीम अलै० और इस्माइल अलै० को कि तुम दोनों मेरे इस घर को पाक रखो तवाफ़ करने वालों, ऐताकाफ़ करने वालों और रुकूअ व सुजूद करने वालों के लिये।"

इससे दोनों तरह की ततहीर (सफ़ाई) मुराद है। ज़ाहिरी सफाई भी हो, गन्दगी ना हो, ताकि ज़ायरीन आयें तो उनके दिलों में कदुरत (नफ़रत) पैदा ना हो, उन्हें कोफ्त (ऊब) ना हो। और ततहीर बातिनी का भी अह्तमाम हो कि वहाँ

तौहीद का चर्चा हो, किसी तरह का कोई कुफ़्र व शिर्क दर ना आने पाये।

आयत 126

وَاِذْ قَالَ اِبْرٰهٖمُ رَبِّ اجْعَلْ هٰذَا بَلَدًا اٰمِنًا

"और याद करो जबकि इब्राहीम अलै० ने दुआ की थी: ऐ मेरे परवरदिगार! इस घर को अमन की जगह बना दे"

وَّارْزُقْ اَهْلَهٗ مِنَ الثَّمَرٰتِ مَنْ اٰمَنَ مِنْهُمْ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۭ

"और यहाँ आबाद होने वालों (यानि बनी इस्माइल अलै०) को फ़लों का रिज़्क़ अता कर, जो कोई उनमें से ईमान लाये अल्लाह पर और यौमे आख़िर पर।"

यहाँ हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने खुद ही अहतियात बरती और अपनी सारी औलाद के लिये यह दुआ नहीं की, बल्कि सिर्फ़ उनके लिये जो अल्लाह पर और यौमे आख़िर पर ईमान रखते हों। इसलिये कि पहली दुआ में "وَمِنْ ذُرِّيَّتِيْ" के जवाब में अल्लाह तआला ने इरशाद फ़रमाया था: {لَا يَنَالُ عَهْدِي الظّٰلِمِيْنَ ۝١٢٤} लेकिन यहाँ मामला मुख्तलिफ़ (अलग) नज़र आता है।

قَالَ وَمَنْ كَفَرَ فَأُمَتِّعُهٗ قَلِيْلًا

"अल्लाह तआला ने फ़रमाया: और (तुम्हारी औलाद में से) जो कुफ़्र करेगा तो उसको भी मैं दुनिया की चंद रोज़ा ज़िन्दगी का साज़ो सामान तो दूँगा"

जो लोग ईमान से महरूम होंगे उन्हें मैं इमामत में शामिल नहीं करूँगा, लेकिन बहरहाल दुनियवी ज़िन्दगी का माल व मताअ (उपयोगी सामान) तो मैं उनको भी दूँगा।

ثُمَّ أَضْطَرُّهٗٓ إِلٰى عَذَابِ النَّارِ ۭ

"फिर उसे कशां-कशां ले आऊँगा जहन्नम के अज़ाब की तरफ़।"

وَبِئْسَ الْمَصِيْرُ ١٢٦

"और वह बहुत बुरी जगह है लौटने की।"

आयत 127

وَإِذْ يَرْفَعُ إِبْرٰهٖمُ الْقَوَاعِدَ مِنَ الْبَيْتِ وَإِسْمٰعِيْلُ ۭ

"और याद करो जब इब्राहीम अलै० और इस्माइल अलै० हमारे घर की बुनियादों को उठा रहे थे।"

बाप-बेटा दोनों बैतुल्लाह की तामीर में लगे हुए थे। यहाँ लफ्ज़ "قَوَاعِدَ" जो आया है इसे नोट कीजिये, यह "قاعدہ" की जमा है और बुनियादों को कहा जाता है। इस लफ्ज़ से

यह इशारा मिलता है कि हज़रत इब्राहीम अलै० खाना काबा के असल मअमार (Architect) और बानी (संस्थापक) नहीं हैं। काबा सबसे पहले हज़रत आदम अलैहिस्सलाम ने तामीर किया था। सूरह आले इमरान (आयत 96) में अल्फाज़ आये हैं: {اِنَّ اَوَّلَ بَيۡتٍ وُّضِعَ لِلنَّاسِ لَلَّذِىۡ بِبَكَّةَ} "बेशक सबसे पहला घर जो लोगों के लिये मुक़र्रर किया गया यही है जो मक्का में है।" अब यह कैसे मुमकिन था कि हज़रत आदम अलैहिस्सलाम के ज़माने से लेकर हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम तक, कम-ओ-बेश चार हज़ार बरस के दौरान, रुए अर्ज़ी पर कोई मस्जिद तामीर ना हुई हो? अल्लाह तआला की इबादत के लिये तामीर किया गया सबसे पहला घर यही काबा था। इम्तदादे ज़माने (वक़्त गुज़रने) से इसकी सिर्फ़ बुनियादें बाक़ी रह गयी थीं, और चूँकि यह वादी में वाक़ेअ था जो सैलाब का रास्ता था, लिहाज़ा सैलाब की वजह से इसकी सब दीवारें बह गयी थीं। हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माइल अलै० ने इन बुनियादों को फिर से उठाया। सूरतुल हज में यह मज़मून तफ़सील से आया है।

जब वह इन बुनियादों को उठा रहे थे तो अल्लाह तआला से दुआयें माँग रहे थे:

رَبَّنَا تَقَبَّلۡ مِنَّا ؕ

"ऐ हमारे रब! हमसे यह ख़िदमत क़ुबूल फ़रमा ले।"

हमारी इस कोशिश और हमारी इस मेहनत व मशक्क़त को क़ुबूल फ़रमा! जिस वक़्त हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम बैतुल्लाह की तामीर कर रहे थे उस वक़्त हज़रत इस्माइल

अलैहिस्सलाम की उम्र लगभग तेरह बरस थी, आप अलैहिस्सलाम इस काम में अपने वालिद मोहतरम का हाथ बटा रहे थे।

اِنَّكَ اَنْتَ السَّمِيْعُ الْعَلِيْمُ ۝١٢٧

"यक़ीनन तू सब कुछ सुनने वाला जानने वाला है।"

आयत 128

رَبَّنَا وَاجْعَلْنَا مُسْلِمَيْنِ لَكَ

"और ऐ हमारे रब! हमें अपना मुतीअ फ़रमान बनाये रख"

नोट कीजिये, यह दुआ इब्राहीम अलैहिस्सलाम कर रहे हैं। तो मैं और आप अगर अपने बारे में मुत्मईन हो जायें कि मेरी मौत लाज़िमन हक़ पर होगी, इस्लाम पर होगी तो यह बहुत बड़ा धोखा है। चुनाँचे डरते रहना चाहिये और अल्लाह की पनाह तलब करते रहना चाहिये।

وَمِنْ ذُرِّيَّتِنَآ اُمَّةً مُّسْلِمَةً لَّكَ

"और हम दोनों की नस्ल से एक उम्मत उठाइयो जो तेरी फ़रमाबरदार हो।"

وَاَرِنَا مَنَاسِكَنَا

"और हमें हज करने के क़ायदे बतला दे"

ऐ परवरदिगार! तेरा यह घर तो हमने बना दिया, अब इसकी ज़ियारत से मुताल्लिक़ जो रसूमात हैं, जो मनासिके हज हैं वह हमें सिखा दे।

وَتُبْ عَلَيْنَا

"और हम पर अपनी तवज्जो फ़रमा।"

हम पर अपनी शफक्क़त की नज़र फ़रमा।

إِنَّكَ أَنْتَ التَّوَّابُ الرَّحِيمُ ﴿١٢٨﴾

"यक़ीनन तू ही है बहुत ज़्यादा तौबा का क़ुबूल फ़रमाने वाला (और शफक्क़त के साथ रुजूअ करने वाला) और रहम फ़रमाने वाला।"

आयत 129

رَبَّنَا وَابْعَثْ فِيهِمْ رَسُولًا مِّنْهُمْ

"और ऐ हमारे परवरदिगार! उन लोगों में उठाइयो एक रसूल ख़ुद उन्हीं में से"

فِيهِمْ से हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माइल अलैहिस्सलाम की नस्ल यानि बनी इस्माइल मुराद है। वह दोनों दुआ कर रहे थे कि परवरदिगार! हमारी इस नस्ल में एक रसूल मबऊस (नियुक्त) फ़रमाना जो उन्हीं में से हो, बाहर का ना हो, ताकि उनके और उसके दरमियान मुगायरत (टकराव) और अजनबियत का कोई पर्दा हाईल (रुकावट) ना हो।

يَتْلُوْا عَلَيْهِمْ اٰيٰتِكَ

"जो उन्हें तेरी आयात पढ़ कर सुनाये"

وَيُعَلِّمُهُمُ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ

"और उन्हें किताब और हिकमत की तालीम दे"

किताब का सिर्फ़ पढ़ कर सुना देना तो बहुत आसान काम है। इसके बाद किताब और उसमें मौजूद हिकमत की तालीम देना और उसे दिलों में बिठाना अहमतर है।

وَيُزَكِّيْهِمْ ۭ

"और उनको पाक करे।"

उनका तज़किया करे और उनके दिलों में तेरी मोहब्बत और आख़िरत की तलब की सिवा कोई तलब बाक़ी ना रहने दे।

اِنَّكَ اَنْتَ الْعَزِيْزُ الْحَكِيْمُ ١٢٩ۧ

"यक़ीनन तू ही है ज़बरदस्त और कमाले हिकमत वाला।"

आयात 130 से 141 तक

وَمَنْ يَّرْغَبُ عَنْ مِّلَّةِ اِبْرٰهٖمَ اِلَّا مَنْ سَفِهَ نَفْسَهٗ ۭ

وَلَقَدِ اصْطَفَيْنٰهُ فِي الدُّنْيَا ۚ وَاِنَّهٗ فِي الْاٰخِرَةِ لَمِنَ

الصّٰلِحِيْنَ ١٣٠ اِذْ قَالَ لَهٗ رَبُّهٗٓ اَسْلِمْ ۙ قَالَ اَسْلَمْتُ

لِرَبِّ الْعٰلَمِیْنَ ﴿۱۳۱﴾ وَوَصّٰی بِهَآ اِبْرٰهٖمُ بَنِیْهِ
وَیَعْقُوْبُ ؕ یٰبَنِیَّ اِنَّ اللّٰهَ اصْطَفٰی لَكُمُ الدِّیْنَ فَلَا
تَمُوْتُنَّ اِلَّا وَاَنْتُمْ مُّسْلِمُوْنَ ﴿۱۳۲﴾ اَمْ كُنْتُمْ شُهَدَآءَ اِذْ
حَضَرَ یَعْقُوْبَ الْمَوْتُ ۙ اِذْ قَالَ لِبَنِیْهِ مَا تَعْبُدُوْنَ
مِنْۢ بَعْدِیْ ؕ قَالُوْا نَعْبُدُ اِلٰهَكَ وَاِلٰهَ اٰبَآئِكَ اِبْرٰهٖمَ
وَاِسْمٰعِیْلَ وَاِسْحٰقَ اِلٰهًا وَّاحِدًا ۚۖ وَّنَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ
﴿۱۳۳﴾ تِلْكَ اُمَّةٌ قَدْ خَلَتْ ۚ لَهَا مَا كَسَبَتْ وَلَكُمْ مَّا
كَسَبْتُمْ ۚ وَلَا تُسْـَٔلُوْنَ عَمَّا كَانُوْا یَعْمَلُوْنَ ﴿۱۳۴﴾ وَقَالُوْا
كُوْنُوْا هُوْدًا اَوْ نَصٰرٰی تَهْتَدُوْا ؕ قُلْ بَلْ مِلَّةَ اِبْرٰهٖمَ
حَنِیْفًا ؕ وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِیْنَ ﴿۱۳۵﴾ قُوْلُوْٓا اٰمَنَّا بِاللّٰهِ
وَمَآ اُنْزِلَ اِلَیْنَا وَمَآ اُنْزِلَ اِلٰٓی اِبْرٰهٖمَ وَاِسْمٰعِیْلَ
وَاِسْحٰقَ وَیَعْقُوْبَ وَالْاَسْبَاطِ وَمَآ اُوْتِیَ مُوْسٰی
وَعِیْسٰی وَمَآ اُوْتِیَ النَّبِیُّوْنَ مِنْ رَّبِّهِمْ ۚ لَا نُفَرِّقُ
بَیْنَ اَحَدٍ مِّنْهُمْ ۫ۖ وَنَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ ﴿۱۳۶﴾ فَاِنْ اٰمَنُوْا
بِمِثْلِ مَآ اٰمَنْتُمْ بِهٖ فَقَدِ اهْتَدَوْا ۚ وَاِنْ تَوَلَّوْا فَاِنَّمَا

هُمْ فِيْ شِقَاقٍ ۚ فَسَيَكْفِيْكَهُمُ اللّٰهُ ۚ وَهُوَ السَّمِيْعُ
الْعَلِيْمُ ﴿۱۳۷﴾ صِبْغَةَ اللّٰهِ ۚ وَمَنْ اَحْسَنُ مِنَ اللّٰهِ صِبْغَةً ۫
وَّنَحْنُ لَهٗ عٰبِدُوْنَ ﴿۱۳۸﴾ قُلْ اَتُحَآجُّوْنَنَا فِي اللّٰهِ وَهُوَ
رَبُّنَا وَرَبُّكُمْ ۚ وَلَنَآ اَعْمَالُنَا وَلَكُمْ اَعْمَالُكُمْ ۚ وَنَحْنُ
لَهٗ مُخْلِصُوْنَ ﴿۱۳۹﴾ اَمْ تَقُوْلُوْنَ اِنَّ اِبْرٰهٖمَ وَاِسْمٰعِيْلَ
وَاِسْحٰقَ وَيَعْقُوْبَ وَالْاَسْبَاطَ كَانُوْا هُوْدًا اَوْ
نَصٰرٰى ۭ قُلْ ءَاَنْتُمْ اَعْلَمُ اَمِ اللّٰهُ ۭ وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ كَتَمَ
شَهَادَةً عِنْدَهٗ مِنَ اللّٰهِ ۭ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُوْنَ
﴿۱۴۰﴾ تِلْكَ اُمَّةٌ قَدْ خَلَتْ ۚ لَهَا مَا كَسَبَتْ وَلَكُمْ مَّا
كَسَبْتُمْ ۚ وَلَا تُسْئَلُوْنَ عَمَّا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ﴿۱۴۱﴾

आयत 130

وَمَنْ يَّرْغَبُ عَنْ مِّلَّةِ اِبْرٰهٖمَ

"और कौन होगा जो इब्राहीम अलैहिस्सलाम के तरीक़े से मुँह मोड़े?"

रग़बत का लफ्ज़ अरबी ज़बान में दोनों तरह इस्तेमाल होता है। "رَغِبَ اِلٰی" का मफ़हूम है किसी शय की तरफ़ रग़बत

होना, मोहब्बत होना, मीलान होना, जबकि “رَغِبَ عَنْ” का मतलब है किसी शय से मुतनफ्फ़िर (नफ़रत) होना, किसी शय से इबा (इन्कार) करना, उसको छोड़ देना। जैसा कि हदीस में आया है: ((فَمَنْ رَّغِبَ عَنْ سُنَّتِيْ فَلَيْسَ مِنِّيْ))(15) “पस जिसे मेरी सुन्नत नापसंद हो तो वह मुझसे नहीं है।”

اِلَّا مَنْ سَفِهَ نَفْسَهٗ

“सिवाय उसके जिसने अपने आपको हिमाक़त ही में मुब्तला करने का फ़ैसला कर लिया हो!”

उसके सिवा और कौन होगा जो इब्राहीम अलै० के तरीक़े से मुँह मोड़े?

وَلَقَدِ اصْطَفَيْنٰهُ فِي الدُّنْيَا ۚ

“और हमने तो उन्हें दुनिया में भी मुन्तखब कर लिया था।”

وَاِنَّهٗ فِي الْاٰخِرَةِ لَمِنَ الصّٰلِحِيْنَ ۝۱۳۰

“और यक़ीनन आख़िरत में भी वह हमारे सालेह बन्दों में से होंगे।”

आयत 131

اِذۡ قَالَ لَہٗ رَبُّہٗۤ اَسۡلِمۡ ۙ قَالَ اَسۡلَمۡتُ لِرَبِّ الۡعٰلَمِیۡنَ ﴿۱۳۱﴾

"जब भी कहा उससे उसके परवरदिगार ने कि मुतीअ (विनम्र) फ़रमान होजा तो उसने कहा मैं मुतीअ फ़रमान हूँ तमाम जहानों के परवरदिगार का।"

यहाँ तक कि इकलौते बेटे को ज़िबह करने का हुक्म आया तो उस पर भी सरे तस्लीम ख़म कर दिया। यह हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम के सिलसिलाये इम्तिहानात का आखरी इम्तिहान था जो अल्लाह तआला ने उनका सौ बरस की उम्र में लिया। अल्लाह तआला से दुआएँ माँग-माँग कर सतासी बरस की उम्र में बेटा (इस्माइल अलैहिस्सलाम) लिया था और अब वह तेरह बरस का हो चुका था, बाप का दस्तो बाज़ू बन गया था। उस वक़्त उसे ज़िबह करने का हुक्म हुआ तो आप अलैहिस्सलाम फ़ौरन तैयार हो गये। यहाँ फ़रमाया जा रहा है कि जब भी हमने इब्राहीम अलैहिस्सलाम से कहा कि हमारा हुक्म मानो तो उसे हुक्म बरदारी के लिये सरापा तैयार पाया। अल्लाह तआला हमें भी इस तर्ज़े अमल की पैरवी की तौफ़ीक़ अता फ़रमाये। आमीन!

आयत 132

وَوَصّٰی بِہَاۤ اِبۡرٰہٖمُ بَنِیۡہِ وَیَعۡقُوۡبُ ؕ

"और इसी की वसीयत की थी इब्राहीम अलै० ने अपने बेटों को और याक़ूब ने भी।"

आगे वह नसीहत बयान हो रही है:

يٰبَنِيَّ اِنَّ اللّٰهَ اصْطَفٰى لَكُمُ الدِّيْنَ

"ऐ मेरे बेटों! अल्लाह ने तुम्हारे लिये यही दीन पसंद फ़रमाया है"

فَلَا تَمُوْتُنَّ اِلَّا وَاَنْتُمْ مُّسْلِمُوْنَ ۝١٣٢

"पस तुम हरगिज़ ना मरना मगर मुस्लमान!"

देखना तुम्हें मौत ना आने पाये, मगर फ़रमाबरदारी की हालत में! यही बात सूरह आले इमरान (आयत:102) में मुस्लमानों से ख़िताब करके फ़रमायी गयी: {يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ حَقَّ تُقٰتِهٖ وَلَا تَمُوْتُنَّ اِلَّا وَاَنْتُمْ مُّسْلِمُوْنَ ۝١٠٢} "ऐ लोगों जो ईमान लाये हो! अल्लाह का तक़वा इख़्तियार करो जैसा कि उसके तक़वे का हक़ है और तुमको मौत ना आये, मगर इस हाल में कि तुम मुस्लिम हो।" और फ़रमाया: {اِنَّ الدِّيْنَ عِنْدَ اللّٰهِ الْاِسْلَامُ ۣ} (आयत:19) "यक़ीनन दीन तो अल्लाह के नज़दीक सिर्फ़ इस्लाम है।" मज़ीद फ़रमाया: {وَمَنْ يَّبْتَغِ غَيْرَ الْاِسْلَامِ دِيْنًا فَلَنْ يُّقْبَلَ مِنْهُ ۚ} (आयत:85) "और जो कोई इस्लाम के सिवा कोई और दीन इख़्तियार करना चाहे तो उससे वह हरगिज़ क़ुबूल ना किया जायेगा।"

आयत 133

اَمْ كُنْتُمْ شُهَدَآءَ اِذْ حَضَرَ يَعْقُوْبَ الْمَوْتُ ۙ

"क्या तुम उस वक़्त मौजूद थे जब आ धमकी याक़ूब पर मौत"

यानि जब याक़ूब अलैहिस्सलाम की मौत का वक़्त आया। उस वक़्त हज़रत याक़ूब अलैहिस्सलाम और उनके सब बेटे हज़रत युसुफ़ अलैहिस्सलाम के ज़रिये मिस्र में पहुँच चुके थे। यह सारा वाक़िया सूरह युसुफ़ में बयान हुआ है। हज़रत याक़ूब अलैहिस्सलाम का इन्तेक़ाल मिस्र में हुआ। दुनिया से रुख्सत होने से पहले उन्होंने अपने बारह के बारह बेटों को जमा किया।

اِذْ قَالَ لِبَنِيْهِ مَا تَعْبُدُوْنَ مِنْۢ بَعْدِيْ ۭ

"जब कहाँ अपने बेटों से कि तुम किसकी इबादत करोगे मेरे बाद?"

किसकी पूजा करोगे? किसकी परस्तिश करोगे? यह बात नहीं थी कि उन्हें मालूम ना था कि उन्हें किसकी इबादत करनी है, बल्कि आप अलैहिस्सलाम ने क़ौल व क़रार को मज़ीद पुख्ता करने के लिये यह अंदाज़ इख़्तियार फ़रमाया।

قَالُوْا نَعْبُدُ اِلٰهَكَ وَاِلٰهَ اٰبَاۗىِٕكَ اِبْرٰهٖمَ وَاِسْمٰعِيْلَ وَاِسْحٰقَ

"उन्होंने कहा हम बन्दगी करेंगे आपके मअबूद की और आपके आबा इब्राहीम, इस्माइल और इसहाक़ के मअबूद की"

اِلٰـهًا وَّاحِدًا ۚۖ

"वही एक मअबूद है"

وَّنَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ ﴿۱۳۳﴾

"और हम सब उसी के मुतीअ फ़रमान हैं।"

हम उसी के सामने सर झुकाते हैं और उसी की फ़रमाबरदारी का इक़रार करते हैं।

आयत 134

تِلْكَ اُمَّةٌ قَدْ خَلَتْ ۚ

"यह एक जमाअत थी जो गुज़र चुकी।"

यह आयत इस रुकूअ में दो मरतबा आयी है। यह इन्सानों का एक गिरोह था जो गुज़र गया। इब्राहीम, इस्माइल, इसहाक़, याक़ूब अलैहिस्सलाम और उनकी औलाद सब गुज़र चुके।

لَهَا مَا كَسَبَتْ وَلَكُمْ مَّا كَسَبْتُمْ ۚ

"उनके लिये था जो उन्होंने कमाया और तुम्हारे लिये होगा जो तुम कमाओगे।"

यहाँ "पदरम सुल्तान बूद" का दावा कोई मक़ाम नहीं रखता। हर शख्स के लिये अपना ईमान, अपना अमल और अपनी कमाई ही काम आयेगी।

وَلَا تُسۡـَٔلُوۡنَ عَمَّا كَانُوۡا يَعۡمَلُوۡنَ ۝١٣٤

"तुमसे यह नहीं पूछा जायेगा कि वह क्या करते थे।"

तुमसे तो यही पूछा जायेगा कि तुम क्या करके लाये हो? तुम्हारा बाप सुल्तान होगा, लेकिन तुम अपनी बात करो कि तुम क्या हो?

इस पसमंज़र में अब यहूद की खबासत को नुमाया किया जा रहा है कि इब्राहीम और याक़ूब अलैहिस्सलाम की वसीयत तो यह थी, मगर उस वक़्त के यहूद व नसारा का क्या रवैय्या है। उन्होंने अल्लाह के रसूल ﷺ के खिलाफ़ मुत्तहिदा महाज़ बना रखा है।

आयत 135

وَقَالُوۡا كُوۡنُوۡا هُوۡدًا اَوۡ نَصٰرٰى تَهۡتَدُوۡا ؕ

"और वह कहते हैं या तो यहूदी हो जाओ या नसरानी तो हिदायत पर हो जाओगे।"

قُلۡ بَلۡ مِلَّةَ اِبۡرٰهٖمَ حَنِيۡفًا ؕ

"कह दीजिये नहीं, बल्कि (हम तो पैरवी करेंगे) इब्राहीम के तरीक़े की बिल्कुल यक्सु होकर।"

مِلَّةَ से क़ब्ल फ़अल نَتَّبِعُ महज़ूफ़ है। गोया: "بَلۡ نَتَّبِعُ مِلَّةَ اِبۡرٰهٖمَ حَنِيۡفًا"।

وَمَا كَانَ مِنَ الْمُشْرِكِيْنَ ﴿١٣٥﴾

"और वह मुशरिकों में से नहीं थे।"

अब मुस्लमानों को हुक्म दिया जा रहा है कि यहूद व नसारा जो कुछ कहते हैं उसके जवाब में तुम यह कहो"

आयत 136

قُوْلُوْٓا اٰمَنَّا بِاللّٰهِ

"कहो हम ईमान रखते हैं अल्लाह पर"

وَمَآ اُنْزِلَ اِلَيْنَا

"और जो कुछ नाज़िल किया गया हमारी जानिब"

وَمَآ اُنْزِلَ اِلٰٓى اِبْرٰهٖمَ وَاِسْمٰعِيْلَ وَاِسْحٰقَ وَيَعْقُوْبَ وَالْاَسْبَاطِ

"और जो कुछ नाज़िल किया गया इब्राहीम, इस्माइल, इसहाक़, याक़ूब और औलादे याक़ूब की तरफ़"

وَمَآ اُوْتِيَ مُوْسٰى وَعِيْسٰى

"और जो कुछ दिया गया मूसा और ईसा को"

وَمَآ اُوْتِيَ النَّبِيُّوْنَ مِنْ رَّبِّهِمْ ۚ

"और जो कुछ दिया गया तमाम नबियों को उनके रब की तरफ से।"

لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ اَحَدٍ مِّنْهُمْ ۡ ۖ

"हम उनमें से किसी के माबैन तफ़रीक़ नहीं करते।"

हम सबको मानते हैं, किसी का इन्कार नहीं करते। एक बात समझ लीजिये कि एक है "تفضیل" यानि किसी एक को दूसरे से ज़्यादा अफ़ज़ल समझना, यह और बात है, इसकी नफ़ी नहीं है। सूरतुल बक़रह (आयत:253) ही में अल्फ़ाज़ आये हैं: {تِلْكَ الرُّسُلُ فَضَّلْنَا بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ ۘ} "यह सब रसूल फ़ज़ीलत दी हमने बाज़ को बाज़ पर।" जबकि तफ़रीक़ यह है कि एक को माना जाये और एक का इन्कार कर दिया जाये। और रसूलों में से किसी एक का इन्कार गोया सबका इन्कार है।

وَنَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ ۝١٣٦

"और हम उसी के मुतीअ फ़रमान हैं।"

हमने तो उसी की फ़रमाबरदारी का क़लादा अपनी गर्दन में डाल लिया है।

आयत 137

فَاِنۡ اٰمَنُوۡا بِمِثۡلِ مَاۤ اٰمَنۡتُمۡ بِهٖ

"फिर (ऐ मुस्लमानों) अगर वह (यहूद व नसारा) भी उसी तरह ईमान ले आयें जिस तरह तुम ईमान लाये हो"

यानि वह ज़िद और हठधर्मी की रविश तर्क कर दें और ठीक-ठीक वही दीन और वही रास्ता इख़्तियार करें जो मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ के ज़रिये से तुम्हें दिया गया है।

فَقَدِ اهۡتَدَوۡا ۚ

"तब वह हिदायत पर होंगे।"

وَاِنۡ تَوَلَّوۡا

"और अगर वह पीठ मोड़ लें"

فَاِنَّمَا هُمۡ فِىۡ شِقَاقٍ ۚ

"तो फिर वही हैं ज़िद पर।"

अगर वह ईमान नहीं लाते तो इसके मायने यह हैं कि वह हठधर्मी और ज़िद्दम ज़िद्दा में मुब्तला हो चुके हैं और दुश्मनी और मुखालफ़त पर अड़े हुए हैं।

فَسَيَكۡفِيۡكَهُمُ اللّٰهُ ۚ

"तो (ऐ नबी ﷺ!) आपके लिये इनके मुक़ाबले में अल्लाह काफी है।"

आप फ़िक्र ना करें, आप ﷺ मदाहनत (compromise) की किसी दावत की तरफ़ तवज्जो ही ना करें, कुछ दो कुछ लो का मामला आप बिल्कुल भी ना सोचें। आप इनकी मुखाल्फ़तों से मरऊब (भयभीत) ना हों और इनकी

धमकियों का कोई असर ना लें। अल्लाह तआला आपकी हिमायत के लिये इन सबके मुक़ाबले में काफ़ी रहेगा।

وَهُوَ السَّمِيعُ الْعَلِيمُ ﴿١٣٧﴾

"और वह सब कुछ सुनने वाला जानने वाला है।"

ऐसा नहीं है कि उसे मालूम ना हो कि आप ﷺ इस वक़्त किन हालात में हैं, कैसी मुश्किलात में हैं, किस तरह की नाज़ुक सूरते हाल है जो दिन-ब-दिन शक्ल बदल रही है। अल्लाह तआला हर तरह के हालात में आपका मुहाफ़िज़ और मददगार है।

[हज़रत उस्मान रज़िअल्लाहुअन्हु शहादत के वक़्त क़ुरान हकीम के जिस नुस्खे पर तिलावत फ़रमा रहे थे उसमें इन अल्फ़ाज़ पर खून का धब्बा आज भी मौजूद है। बागियों ने आप रज़ि० को क़ुरान की तिलावत करते हुए शहीद किया था। आप रज़ि० की ज़ौजा मोहतरमा नाईला रज़िअल्लाहुअन्हा ने आपको बचाना चाहा तो उनकी उँगलियाँ कट गईं और खून इन अल्फ़ाज़ पर पड़ा।]

आयत 138

صِبْغَةَ اللّٰهِ

"हमने तो इख़्तियार कर लिया है अल्लाह के रंग को।"

"مِلَّةَ اِبْرٰهِيمَ" की तरह "صِبْغَةَ اللّٰهِ" में भी मुज़ाफ की नसब बता रही है कि यह मुरक्कबे इज़ाफ़ी मफ़ऊल है और इसका फ़अल महज़ूफ़ है।

وَمَنۡ اَحۡسَنُ مِنَ اللّٰهِ صِبۡغَةً ۫

"और अल्लाह के रंग से बेहतर और किसका रंग होगा?"

وَّنَحۡنُ لَهٗ عٰبِدُوۡنَ ۝١٣٨

"और हम तो बस उसी की बन्दगी करने वाले लोग हैं।"

आयत 139

قُلۡ اَتُحَآجُّوۡنَنَا فِى اللّٰهِ

"(ऐ नबी ﷺ इनसे) कहिये क्या तुम हमसे झगड़ रहे हो (दलील बाज़ी कर रहे हो) अल्लाह के बारे में?"

وَهُوَ رَبُّنَا وَرَبُّكُمۡ ۚ

"हालाँकि वही हमारा रब भी है और तुम्हारा रब भी।"

रब भी एक है और उसका दीन भी एक है, हाँ शरीअतों में फ़र्क़ ज़रूर हुआ है।

وَلَنَآ اَعۡمَالُنَا وَلَكُمۡ اَعۡمَالُكُمۡ ۚ

"और हमारे लिये होंगे हमारे अमल और तुम्हारे लिये होंगे तुम्हारे अमल।"

وَنَحۡنُ لَهٗ مُخۡلِصُوۡنَ ۝١٣٩

"और हम तो खालिस उसी के हैं।"

हम उसके लिये अपने आपको और अपनी बन्दगी को खालिस कर चुके हैं।

यहाँ पे-दर-पे आने वाले तीन अल्फ़ाज़ को नोट कीजिये। यह मक़ाम मेरे और आपके लिये लम्हा-ए-फिक्रिया है। आयत 136 इन अल्फ़ाज़ पर ख़त्म हुई थी: { وَنَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ ۝۱۳۶ } "हम उसी के सामने सरे तस्लीम ख़म करते हैं।" इनमें तो हम भी शामिल हैं। इसके बाद आयत 138 के इख्तताम पर यह अल्फ़ाज़ आये: { وَّنَحْنُ لَهٗ عٰبِدُوْنَ ۝۱۳۸ } "और हम उस ही की बन्दगी करते हैं।" सिर्फ़ इस्लाम नहीं, इबादत यानि पूरी ज़िन्दगी में उसके हर हुक्म की पैरवी और इताअत दरकार है। इससे आगे यह बात आयी: {وَنَحْنُ لَهٗ مُخْلِصُوْنَ ۝۱۳۹} यह इबादत अगर इख्लास के साथ नहीं है तो मुनाफ़क़त है। इस इबादत से कोई दुनयवी मनफ़अत पेशे नज़र ना हो। *"सौदागरी नहीं, यह इबादत ख़ुदा की है!"* दीन को दुनिया बनाने और दुनिया कमाने का ज़रिया बनाने से बढ़ कर गिरी हुई हरकत और कोई नहीं है। रसूल अल्लाह ﷺ का इर्शादे गरामी है:

((مَنْ صَلّٰى يُرَائِيْ فَقَدْ اَشْرَكَ وَمَنْ صَامَ يُرَائِيْ فَقَدْ اَشْرَكَ وَمَنْ تَصَدَّقَ يُرَائِيْ فَقَدْ اَشْرَكَ))

"जिसने दिखावे के लिये नमाज़ पढ़ी उसने शिर्क किया, जिसने दिखावे के लिये रोज़ा रखा उसने शिर्क किया, और जिसने दिखावे के लिये सदक़ा व खैरात किया उसने शिर्क किया।" (मसनद अहमद)

इन तीनों अल्फ़ाज़ को हर्ज़े जान (तावीज़) बना लीजिये:

نَحۡنُ لَهٗ مُسۡلِمُوۡنَ، نَحۡنُ لَهٗ عٰبِدُوۡنَ، نَحۡنُ لَهٗ مُخۡلِصُوۡنَ۔ اَللّٰهُمَّ رَبَّنَا اجۡعَلۡنَا مِنۡهُمۡ! اَللّٰهُمَّ رَبَّنَا اجۡعَلۡنَا مِنۡهُمۡ!!

आयत 140

اَمۡ تَقُوۡلُوۡنَ اِنَّ اِبۡرٰهٖمَ وَاِسۡمٰعِيۡلَ وَاِسۡحٰقَ وَيَعۡقُوۡبَ وَالۡاَسۡبَاطَ كَانُوۡا هُوۡدًا اَوۡ نَصٰرٰى ؕ

"क्या तुम्हारा कहना यह है कि इब्राहीम, इस्माइल, इसहाक़ और याक़ूब और उनकी औलाद सब यहूदी थे या नसरानी थे?"

तुम जो कहते हो कि यहूदी हो जाओ या नसरानी तब हिदायत पाओगे, तो क्या इब्राहीम अलैहिस्सलाम यहूदी थे या नसरानी? और इसहाक़, याक़ूब, युसुफ़, मूसा और ईसा अलैहिस्सलाम कौन थे? यही बात आज मुस्लमानों को सोचनी चाहिये कि मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ और आप ﷺ के असहाब रज़िअल्लाहुअन्हुम देवबन्दी थे, बरेलवी थे, अहले हदीस थे, या शिया थे? अल्लाह तआला के साथ इख्लास का तक़ाज़ा यह है कि इन तक़सीमों से बालातर (ऊपर) रहा जाये। ठीक है एक शख्स किसी फ़िक्ही मसलक की पैरवी कर रहा है, लेकिन उस मसलक को अपनी शिनाख्त बना लेना, उसे दीन पर मुक़द्दम रखना, उस मसलक ही के लिये है सारी मेहनत व मशक्क़त और भाग-दौड़ करना, और उसी की दावत व तब्लीग करना, दीन की

असल हक़ीक़त और रूह के यक्सर (पूरी तरह से) खिलाफ़ है।

قُلْ ءَاَنْتُمْ اَعْلَمُ اَمِ اللّٰهُ ؕ

"कहिये: तुम ज़्यादा जानते हो या अल्लाह?"

وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ كَتَمَ شَهَادَةً عِنْدَهٗ مِنَ اللّٰهِ ؕ

"और (कान खोल कर सुन लो) उस शख्स से बढ़ कर ज़ालिम और कौन होगा जिसके पास अल्लाह की तरफ़ से एक गवाही थी जिसे उसने छुपा लिया?"

उल्माये यहूद जानते थे कि मुहम्मद ﷺ अल्लाह के रसूल हैं, जिनके वह मुन्तज़िर थे। लेकिन वह इस गवाही को छुपाये बैठे थे।

وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُوْنَ ۝١٤٠

"और अल्लाह हरगिज़ ग़ाफ़िल नहीं है उससे जो तुम कर रहे हो।"

आयत 141

تِلْكَ اُمَّةٌ قَدْ خَلَتْ ۚ

"वह एक जमाअत थी जो गुज़र चुकी।"

यह उस मुक़द्दस जमाअत के गुले सरसब्द थे जिनका तज़किरा हुआ।

لَهَا مَا كَسَبَتْ وَلَكُمْ مَّا كَسَبْتُمْ

"उनके लिये है जो कमाई उन्होंने की और तुम्हारे लिये है जो कमाई तुमने की।"

जो अमल उन्होंने कमाये वह उनके लिये हैं, तुम्हारे लिये नहीं। तुम्हारे लिये वही होगा जो तुम कमाओगे।

وَلَا تُسْـَٔلُوْنَ عَمَّا كَانُوْا يَعْمَلُوْنَ ﴿١٤١﴾

"और तुमसे उनके आमाल के बारे में सवाल नहीं होगा।"

तुमसे यह नहीं पूछा जायेगा कि उन्होंने क्या किया, तुमसे तो यह सवाल होगा कि तुमने क्या किया!

आयात 142 से 152 तक

سَيَقُوْلُ السُّفَهَآءُ مِنَ النَّاسِ مَا وَلّٰىهُمْ عَنْ
قِبْلَتِهِمُ الَّتِيْ كَانُوْا عَلَيْهَا ۭ قُلْ لِّلّٰهِ الْمَشْرِقُ
وَالْمَغْرِبُ ۭ يَهْدِيْ مَنْ يَّشَاۗءُ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ١٤٢
وَكَذٰلِكَ جَعَلْنٰكُمْ اُمَّةً وَّسَطًا لِّتَكُوْنُوْا شُهَدَاۗءَ عَلَي
النَّاسِ وَيَكُوْنَ الرَّسُوْلُ عَلَيْكُمْ شَهِيْدًا ۭ وَمَا
جَعَلْنَا الْقِبْلَةَ الَّتِىْ كُنْتَ عَلَيْهَآ اِلَّا لِنَعْلَمَ مَنْ
يَّتَّبِعُ الرَّسُوْلَ مِمَّنْ يَّنْقَلِبُ عَلٰي عَقِبَيْهِ ۭ وَاِنْ كَانَتْ
لَكَبِيْرَةً اِلَّا عَلَي الَّذِيْنَ ھَدَى اللّٰهُ ۭ وَمَا كَانَ اللّٰهُ
لِيُضِيْعَ اِيْمَانَكُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ بِالنَّاسِ لَرَءُوْفٌ رَّحِيْمٌ
١٤٣ قَدْ نَرٰى تَقَلُّبَ وَجْهِكَ فِي السَّمَاۗءِ ۚ فَلَنُوَلِّيَنَّكَ
قِبْلَةً تَرْضٰىھَا ۠ فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ
الْحَرَامِ ۭ وَحَيْثُ مَا كُنْتُمْ فَوَلُّوْا وُجُوْھَكُمْ شَطْرَهٗ ۭ
وَاِنَّ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ لَيَعْلَمُوْنَ اَنَّهُ الْحَقُّ مِنْ
رَّبِّهِمْ ۭ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا يَعْمَلُوْنَ ١٤٤ وَلَىِٕنْ

اٰتَيْتَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ بِكُلِّ اٰيَةٍ مَّا تَبِعُوْا
قِبْلَتَكَ ۚ وَمَآ اَنْتَ بِتَابِعٍ قِبْلَتَهُمْ ۚ وَمَا بَعْضُهُمْ
بِتَابِعٍ قِبْلَةَ بَعْضٍ ۭ وَلَىِٕنِ اتَّبَعْتَ اَهْوَاۗءَهُمْ مِّنْۢ بَعْدِ
مَا جَاۗءَكَ مِنَ الْعِلْمِ ۙ اِنَّكَ اِذًا لَّمِنَ الظّٰلِمِيْنَ ١٤٥
اَلَّذِيْنَ اٰتَيْنٰهُمُ الْكِتٰبَ يَعْرِفُوْنَهٗ كَمَا يَعْرِفُوْنَ
اَبْنَاۗءَهُمْ ۭ وَاِنَّ فَرِيْقًا مِّنْهُمْ لَيَكْتُمُوْنَ الْحَقَّ وَھُمْ
يَعْلَمُوْنَ ١٤٦ اَلْحَقُّ مِنْ رَّبِّكَ فَلَا تَكُوْنَنَّ مِنَ
الْمُمْتَرِيْنَ ١٤٧ وَلِكُلٍّ وِّجْهَةٌ ھُوَ مُوَلِّيْهَا فَاسْتَبِقُوا
الْخَيْرٰتِ ړ اَيْنَ مَا تَكُوْنُوْا يَاْتِ بِكُمُ اللّٰهُ جَمِيْعًا ۭ اِنَّ
اللّٰهَ عَلٰي كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ١٤٨ وَمِنْ حَيْثُ خَرَجْتَ
فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ۭ وَاِنَّهٗ لَلْحَقُّ مِنْ
رَّبِّكَ ۭ وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعْمَلُوْنَ ١٤٩ وَمِنْ حَيْثُ
خَرَجْتَ فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ۭ
وَحَيْثُ مَا كُنْتُمْ فَوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ شَطْرَهٗ ۙ لِئَلَّا
يَكُوْنَ لِلنَّاسِ عَلَيْكُمْ حُجَّةٌ ڎ اِلَّا الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا مِنْهُمْ ۤ

فَلَا تَخْشَوْهُمْ وَاخْشَوْنِيْ وَلِاُتِمَّ نِعْمَتِيْ عَلَيْكُمْ
وَلَعَلَّكُمْ تَهْتَدُوْنَ ﴿١٥٠﴾ كَمَآ اَرْسَلْنَا فِيْكُمْ رَسُوْلًا
مِّنْكُمْ يَتْلُوْا عَلَيْكُمْ اٰيٰتِنَا وَيُزَكِّيْكُمْ وَيُعَلِّمُكُمُ
الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ وَيُعَلِّمُكُمْ مَّا لَمْ تَكُوْنُوْا تَعْلَمُوْنَ
﴿١٥١﴾ فَاذْكُرُوْنِيْٓ اَذْكُرْكُمْ وَاشْكُرُوْا لِيْ وَلَا تَكْفُرُوْنِ
﴿١٥٢﴾

दो रुकूओं पर मुश्तमिल तम्हीद (प्रस्तावना) के बाद अब तहवीले क़िब्ला का मज़मून बराहे रास्त आ रहा है, जो पूरे दो रुकूओं पर फैला हुआ है। किसी के ज़हन में यह सवाल पैदा हो सकता है कि यह कौनसी ऐसी बड़ी बात थी जिसके लिये क़ुरान मजीद में इतने शद्दो-मद (उत्साह) के साथ और इस क़दर तफ़सील बल्कि तकरार के साथ बात की गयी है? इसको यूँ समझिये कि एक ख़ास मज़हबी ज़हनियत होती है, जिसके हामिल लोगों की तवज्जो आमाल के ज़ाहिर पर ज़्यादा मरकूज़ हो जाती है और आमाल की रूह उनकी तवज्जो का मरकज़ नहीं बनती। अवामुन्नास का मामला बिल उमूम यही हो जाता है कि उनके यहाँ असल अहमियत दीन के ज़वाहिर (दिखावे) और मरासिमे उबूदियत (इबादत की रस्मों) को हासिल हो जाती है और जो असल रूहे दीन है, जो मक़ासिदे दीन हैं, उनकी तरफ़ तवज्जो नहीं होती। नतीजतन ज़वाहिर में ज़रा सा फ़र्क़ भी उन्हें बहुत ज़्यादा महसूस होता है। हमारे यहाँ इसकी मिसाल यूँ सामने आती

है कि अहनाफ़ (हनफ़ियों) की मस्जिद में अगर किसी ने रफ़ा यदैन कर लिया या किसी ने आमीन ज़रा ऊँची आवाज़ में कह दिया तो गोया क़यामत आ गयी। यूँ महसूस हुआ जैसे हमारी मस्जिद में कोई और ही आ गया। इस मज़हबी ज़हनियत के पसमंज़र में यह कोई छोटा मसला नहीं था।

इसके अलावा यह मसला क़बाइली और क़ौमी पसमंज़र के हवाले से भी समझना चाहिये। मक्का मुकर्रमा में जो लोग ईमान लाये थे ज़ाहिर है उन सबको खाना काबा के साथ बड़ी अक़ीदत थी। ख़ुद नबी अकरम ﷺ ने जब मक्का से हिजरत फ़रमायी तो आप ﷺ रोते हुए वहाँ से निकले थे और आप ﷺ ने फ़रमाया था कि ऐ काबा! मुझे तुझसे बड़ी मोहब्बत है, लेकिन तेरे यहाँ के रहने वाले मुझे यहाँ रहने नहीं देते। मालूम होता है कि जब तक आप ﷺ मक्का में थे तो आप ﷺ काबा की जुनूबी (दक्षिणी) दीवार की तरफ़ रुख करके खड़े होते। यूँ आप ﷺ का रुख शिमाल (उत्तर) की तरफ़ होता, काबा आप ﷺ के सामने होता और उसकी सीध में बैतुल मुक़द्दस भी आ जाता। इस तरह "इस्तक़बाल अल क़िब्लातैन" का अहतमाम हो जाता। लेकिन मदीना में आकर आप ﷺ ने रुख बदल दिया और बैतुल मुक़द्दस की तरफ़ रुख करके नमाज़ पढ़ने लगे। यहाँ "इस्तक़बाल अल क़िब्लातैन" मुमकिन ना था, इसलिये कि येरुशलम मदीना मुनव्वरा के शिमाल में है, जबकि मक्का मुकर्रमा जुनूब में है। अब अगर खाना काबा की तरफ़ रुख करेंगे तो येरुशलम की तरफ़ पीठ होगी और येरुशलम की तरफ़ रुख करेंगे तो काबा की तरफ़ पीठ होगी। चुनाँचे अब अहले ईमान का इम्तिहान हो गया कि आया वह मुहम्मद

रसूल अल्लाह ﷺ के फ़रमान की पैरवी करते हैं या अपनी पुरानी अक़ीदतों और पुरानी रिवायात को ज़्यादा अहमियत देते हैं। जो लोग मक्का मुकर्रमा से आये थे उनकी इतनी तरबियत हो चुकी थी कि उनमें से किसी के लिये यह मसला पैदा नहीं हुआ। बक़ौल इक़बाल:

ब-मुस्तफ़ा ﷺ ब-रसाँ ख़्वेश रा कि दीं हमा ऊस्त
अगर बाव ना रसीदी तमाम बू लहबी ईस्त!

हालाँकि क़ुरान मजीद में कहीं मन्क़ूल नहीं है कि अल्लाह ने अपने नबी ﷺ को बैतुल मुक़द्दस की तरफ़ रुख करने का हुक्म दिया था। हो सकता है यह हुक्म वहिये ख़फ़ी के ज़रिये से दिया गया हो, ताहम वहिये जली में यह हुक्म कहीं नहीं है कि अब येरुशलम की तरफ़ रुख करके नमाज़ पढ़िये। यह मुसलमानों का इत्तेबा-ए-रसूल ﷺ के हवाले से एक इम्तिहान था जिसमें वह सुर्ख रू हुए। फिर जब यह हुक्म आया कि अपने रुख मस्जिदे हराम की तरफ़ फेर दो तो यह अब उन मुसलमानों का इम्तिहान था जो मदीना के रहने वाले थे। इसलिये कि उनमें से बाज़ यहूदियत तर्क तरके ईमान लाये थे। मसलन अब्दुल्लाह बिन सलाम रज़ि० उल्माये यहूद में से थे, लेकिन जो और दूसरे लोग थे वह भी उल्माये यहूद के ज़ेरे असर थे और उनके दिल में भी येरुशलम की अज़मत थी। अब जब उन्हें बैतुल्लाह की तरफ़ रुख करने का हुक्म हुआ तो उनके ईमान का इम्तिहान हो गया।

मज़ीद बराँ बाज़ लोगों के दिलों में यह ख्याल भी पैदा हुआ होगा कि अगर असल क़िब्ला बैतुल्लाह था तो हमने अब तक बैतुल मुक़द्दस की तरफ़ रुख करके जो नमाज़ें पढ़ी

हैं उनका क्या बनेगा? क्या वह नमाज़ें ज़ाया हो गयीं। नमाज़ तो ईमान का रुकने रकीन है! चुनाँचे इस ऐतबार से भी बड़ी तशवीश पैदा हुई। इसके साथ ही एक मसला सियासी ऐतबार से यह पैदा हुआ कि यहूद अब तक यह समझ रहे थे कि मुसलमानों और मुहम्मद ﷺ ने हमारा क़िब्ला इख़्तियार कर लिया है, तो यह गोया हमारे ही पैरोकार हैं, लिहाज़ा हमें इनकी तरफ़ से कोई ख़ास अन्देशा नहीं है। लेकिन अब जब तहवीले क़िब्ला का हुक्म आ ग़या तो उनके कान खड़े हो गये कि यह तो कोई नयी मिल्लत है और एक नयी उम्मत की तशकील हो रही है। चुनाँचे उनकी तरफ़ से मुखालफ़त के अन्दर शिद्दत पैदा हो गयी। यह सारे मज़ामीन यहाँ पर ज़ेरे बहस आ रहे हैं।

आयत 142

سَيَقُوْلُ السُّفَهَاۗءُ مِنَ النَّاسِ

"अनक़रीब कहेंगे लोगों में से अहमक़ और बेवक़ूफ़ लोग"

مَا وَلّٰىھُمْ عَنْ قِبْلَتِهِمُ الَّتِىْ كَانُوْا عَلَيْهَا ۭ

"किस चीज़ ने फेर दिया इन्हें उस क़िब्ले से जिस पर यह थे?"

यानि सौलह-सत्रह महीनों तक इन्होंने बैतुल मुक़द्दस की तरफ़ रुख़ करके नमाज़ पढ़ी है, अब इन्हें बैतुल्लाह की तरफ़ किसने फेर दिया?

قُلْ لِّلّٰهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ ط

"कह दीजिये कि अल्लाह ही के हैं मशरिक़ और मग़रिब!"

यह वही अल्फ़ाज़ हैं जो चौदहवें रुकूअ में तहवीले क़िब्ला की तम्हीद के तौर पर आये थे। अल्लाह तआला किसी एक सिम्त (दिशा) में महदूद नहीं हैं, बल्कि मशरिक़ व मग़रिब और शिमाल व जुनूब सब उसी के हैं।

يَهْدِيْ مَنْ يَّشَآءُ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ﴿١٤٢﴾

"वह जिसको चाहता है सीधे रास्ते की तरफ़ हिदायत दे देता है।"

आयत 143

وَكَذٰلِكَ جَعَلْنٰكُمْ اُمَّةً وَّسَطًا

"और (ऐ मुसलमानों!) इसी तरह तो हमने तुम्हें एक उम्मते वस्त (दरमियानी उम्मत) बनाया है"

अब यह ख़ास बात कही जा रही है कि ऐ मुसलमानों! तुम इस तहवीले क़िब्ला को मामूली बात ना समझो, यह अलामत है इस बात की कि अब तुम्हें वह हैसियत हासिल हो गई है:

لِّتَكُوْنُوْا شُهَدَآءَ عَلَى النَّاسِ وَيَكُوْنَ

"ताकि तुम लोगों पर गवाह हो और रसूल ﷺ तुम पर गवाह हो।"

الرَّسُوْلُ عَلَيْكُمْ

شَهِيْدًا

अब यह तुम्हारा फ़र्ज़े मन्सबी (कर्तव्य) है कि रसूल ﷺ ने जिस दीन की गवाही तुम पर अपने क़ौल व अमल से दी है उसी दीन की गवाही तुम्हें अपने क़ौल और अमल से पूरी नौए इंसानी पर देनी है। अब तुम मुहम्मद रसूल ﷺ और नौए इंसानी के दरमियान वास्ता (link) बन गये हो। अब तक नबुवत का सिलसिला जारी था। एक नबी की तालीम ख़त्म हो जाती या उसमें तहरीफ़ हो जाती तो दूसरा नबी आ जाता। इस तरह पे दर पे अम्बिया व रुसुल अलै० चले आ रहे थे और हर दौर में यह मामला तसलसुल (निरंतरता) के साथ चल रहा था। अब मुहम्मद रसूल ﷺ पर नबुवत ख़त्म हो रही है, लेकिन नस्ले इंसानी का सिलसिला तो क़यामत तक जारी रहना है। लिहाज़ा अब आगे लोगों को तब्लीग़ करना, उन तक दीन पहुँचाना, उन पर हुज्जत क़ायम करना और शहादत अलन्नास का फ़रीज़ा सर अंजाम देना किसकी ज़िम्मेदारी होगी? पहले तो हमेशा यही होता रहा कि अल्लाह की तरफ़ से जिब्राइल अलै० वही लाये और नबी के पास आ गये, नबी ने लोगों को सिखा दिया। अब यह मामला इस तरह है कि अल्लाह से जिब्राइल अलै० वही लाये मुहम्मद रसूल ﷺ के पास और मुहम्मद ﷺ ने सिखाया तुम्हें, और अब तुम्हें सिखाना है पूरी नौए इंसानी को! तो अब तुम्हारी हैसियत दरमियानी वास्ते की है। यह

मज़मून सूरतुल हज की आखरी आयत में ज़्यादा वज़ाहत के साथ आयेगा।

وَكَذٰلِكَ (इसी तरह) से मुराद यह है कि तहवीले क़िब्ला इसका एक मज़हर (प्रदर्शन) है। इससे अब तुम अपनी ज़िम्मेदारियों का अंदाज़ा करो। सिर्फ़ ख़ुशियाँ ना मनाओ, बल्कि एक बहुत बड़ी ज़िम्मेदारी का जो बोझ तुम पर आ गया है उसका इदराक (अहसास) करो। यही बोझ जब हमने अपने बंदे मुहम्मद ﷺ के कंधों पर रखा था तो उनसे भी कहा था (अल् मुज़्ज़मिल:5): {اِنَّا سَنُلْقِيْ عَلَيْكَ قَوْلًا ثَقِيْلًا} "(ऐ नबी! ﷺ) हम आप पर एक भारी बात डालने वाले है।" वही भारी बात बहुत बड़े पैमाने पर अब तुम्हारे कंधों पर आ गई है।

وَمَا جَعَلْنَا الْقِبْلَةَ الَّتِيْ كُنْتَ عَلَيْهَآ

"और नहीं मक़र्रर किया था हमने वह क़िब्ला जिस पर (ऐ नबी!) आप पहले थे"

اِلَّا لِنَعْلَمَ مَنْ يَّتَّبِعُ الرَّسُوْلَ مِمَّنْ يَّنْقَلِبُ عَلٰى عَقِبَيْهِ ۭ

"मग़र यह जानने के लिये (यह ज़ाहिर करने के लिये) कि कौन रसूल ﷺ का इत्तेबा करता है और कौन फिर जाता है उल्टे पाँव!"

यहाँ अल्लाह तआला ने बैतुल मुक़द्दस को क़िब्ला मुक़र्रर करने की निस्बत अपनी तरफ़ की है। यह भी हो सकता है कि अल्लाह तआला ने हिजरत के बाद वहिये ख़फ़ी के ज़रिये नबी अकरम ﷺ को बैतुल मुक़द्दस की तरफ़ रुख़ करके

नमाज़ पढ़ने का हुक्म दिया हो, और यह भी हो सकता है कि यह आँहुज़ूर ﷺ का इज्तेहाद (विचार) हो, और उसे अल्लाह ने क़ुबूल फ़रमा लिया हो। रसूल अल्लाह ﷺ के इज्तेहाद पर अगर अल्लाह की तरफ़ से नफ़ी ना आये तो वह गोया अल्लाह ही की तरफ़ से है। बैतुल मुक़द्दस को क़िब्ला मुक़र्रर किया जाना एक इम्तिहान क़रार दिया गया कि कौन इत्तेबा-ए-रसूल ﷺ की रविश पर ग़ामजन रहता है और कौन दीन से फिर जाता है। इस आज़माइश में तमाम मुसलमान कामयाब रहे और उनमें से किसी ने यह नहीं कहा कि ठीक है, हमारा क़िब्ला वह था, अब आपने अपना क़िब्ला बदल लिया है तो आपका रास्ता और है और हमारा रास्ता और!

وَاِنْ كَانَتْ لَكَبِيْرَةً اِلَّا عَلَى الَّذِيْنَ هَدَى اللّٰهُ ۭ

“और यक़ीनन यह बहुत बड़ी बात थी मगर उनके लिये (दुश्वार ना थी) जिनको अल्लाह ने हिदायत दी।”

वाक़्या यह है कि इतनी बड़ी तब्दीली क़ुबूल कर लेना आसान बात नहीं होती। यह बड़ा हस्सास मसला होता है।

ۭ وَمَا كَانَ اللّٰهُ لِيُضِيْعَ اِيْمَانَكُمْ ۭ

“और अल्लाह हरगिज़ तुम्हारे ईमान को ज़ाया करने वाला नहीं है।”

ईमान से यहाँ मुराद नमाज़ है जिसे दीन का सतून क़रार दिया गया है। यह बात उस तशवीश (चिंता) के जवाब में फ़रमायी गयी जो बाज़ मुसलमानों को लाहक़ हो गयी थी कि हमारी उन नमाज़ों का क्या बनेगा जो हमने सौलह

महीने बैतुल मुक़द्दस की तरफ़ रुख़ करके पढ़ी हैं? मुसलमान तो रसूल अल्लाह ﷺ के हुक्म का पाबंद है, उस वक़्त रसूल का वह हुक्म था, वह अल्लाह के यहाँ मक़बूल ठहरा, इस वक़्त यह हुक्म है जो तुम्हे रसूल की जानिब से मिल रहा है, अब तुम इसकी पैरवी करो।

اِنَّ اللّٰهَ بِالنَّاسِ لَرَءُوْفٌ رَّحِيْمٌ ﴿١٤٣﴾

"यक़ीनन अल्लाह तआला इंसानों के हक़ में बहुत ही शफ़ीक़ और बहुत ही रहीम है।"

आयत 144

قَدْ نَرٰى تَقَلُّبَ وَجْهِكَ فِي السَّمَآءِ ۚ

"(ऐ नबी ﷺ!) बिला शुबह हम आपके चेहरे का बार-बार आसमान की तरफ़ उठाना देखते रहे हैं।"

मालूम होता है कि ख़ुद रसूल अल्लाह ﷺ को तहवीले क़िब्ला के फ़ैसले का इन्तेज़ार था और आप ﷺ पर भी यह वक़्फ़ा (अन्तराल) शाक़ (कठिन) गुज़र रहा था जिसमें नमाज़ पढ़ते हुए बैतुल्लाह की तरफ़ पीठ हो रही थी। चुनाँचे आपकी निगाहें बार-बार आसमान की तरफ़ उठती थीं कि कब जिब्रीले अमीन तहवीले क़िब्ला का हुक्म लेकर नाज़िल हों।

فَلَنُوَلِّيَنَّكَ قِبْلَةً تَرْضٰىهَا

"सो हम फेर देते हैं आपको उसी क़िब्ले की तरफ़ जो आपको पसंद है।"

इस आयत में मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ के लिये अल्लाह की तरफ़ से बड़ी मोहब्बत, बड़ी शफक्क़त और बड़ी इनायत का इज़हार हो रहा है। ज़ाहिर बात है कि रसूल अल्लाह ﷺ को बैतुल्लाह के साथ बड़ी मोहब्बत थी, उसके साथ आप ﷺ का एक रिश्ता क़ल्बी था।

فَوَلِّ وَجْهَكَ شَطْرَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ ؕ

"तो बस अब फेर दीजिये अपने रुख़ को मस्जिदे हराम की तरफ़!"

وَحَيْثُ مَا كُنْتُمْ فَوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ شَطْرَهٗ ؕ

"और (ऐ मुसलमानों!) जहाँ कहीं भी तुम हो अब अपना चेहरा (नमाज़ में) उसी की तरफ़ फेरा।"

وَاِنَّ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ لَيَعْلَمُوْنَ اَنَّهُ الْحَقُّ مِنْ رَّبِّهِمْ ؕ

"और यह लोग जिन्हें किताब दी गई थी, जानते हैं कि यह (तहवीले क़िब्ला का हुक्म) हक़ है उनके परवरदिगार की तरफ़ से।"

तौरात में भी यह मज़कूर था कि असल क़िब्ला इब्राहिमी अलै० बैतुल्लाह ही था। बैतुल मुक़द्दस को तो हज़रत इब्राहीम अलै० के एक हज़ार साल बाद हज़रत सुलेमान

अलै० ने तामीर किया था, जिसे “हैकले सुलेमानी” से मौसूम (मनोनीत) किया जाता है। ٱلۡحَقُّ से मुराद यहाँ बैतुल्लाह का इस उम्मत के लिये क़िब्ला होना है। इस बात का हक़ होना और अल्लाह तआला की तरफ़ से होना यहूद पर वाज़ेह था और इसके इशारात व क़राइन (सबूत) तौरात में मौजूद थे, लेकिन यहूद अपने हसद और अनाद (विरोध) के सबब इस हक़ीक़त को भी दूसरे बहुत से हक़ाइक़ की तरह जानते-बूझते छुपाते थे। इस मौज़ू को समझने के लिये मौलाना हमीदुद्दीन फ़राही साहब का रिसाला (पत्रिका) “الرأی الصحیح فی من ھو الذبیح” बहुत अहम है, जिसका उर्दू तर्जुमा मौलना अमीन अहसन इस्लाही साहब ने “ज़बीह कौन है?” के उन्वान से किया है।

وَمَا ٱللَّهُ بِغَٰفِلٍ عَمَّا يَعۡمَلُونَ ١٤٤

“और अल्लाह ग़ाफ़िल नहीं है उससे जो वह कर रहे हैं।”

आयत 145

وَلَئِنۡ أَتَيۡتَ ٱلَّذِينَ أُوتُواْ ٱلۡكِتَٰبَ بِكُلِّ ءَايَةٖ مَّا تَبِعُواْ قِبۡلَتَكَۚ

“और (ऐ नबी ﷺ!) अगर आप इन अहले किताब के सामने हर क़िस्म की निशानियाँ पेश कर दें तब भी यह आपके क़िब्ले की पैरवी नहीं करेंगे।”

وَمَآ اَنۡتَ بِتَابِعٍ قِبۡلَتَهُمۡ ۚ

"और ना ही अब आप पैरवी करने वाले हैं इनके क़िब्ले की।"

यह तो { لَكُمۡ دِيۡنُكُمۡ وَلِيَ دِيۡنِ } वाला मामला हो गया।

وَمَا بَعۡضُهُمۡ بِتَابِعٍ قِبۡلَةَ بَعۡضٍ ؕ

"और ना ही वह एक-दूसरे के क़िब्ले की पैरवी करने वाले हैं।"

हद यह है कि यह ख़ुद आपस में एक-दूसरे के क़िब्ले की पैरवी नहीं करते। अग़रचे यहूद व नसारा सबका क़िब्ला येरुशलम है, लेकिन ऐन येरुशसल में जाकर यहूदी हैकल सुलेमानी का मग़रबी गोशा इख़्तियार करते थे और मग़रिब की तरफ़ रुख़ करते थे, जबकि नसारा मशरिक़ की तरफ़ रुख़ करते थे, इसलिये कि हज़रत मरियम सलामुनअलैहा ने जिस मकान में ऐतक़ाफ़ किया था और जहाँ फ़रिश्ता उनके पास आया था वह हैकल के मशरिक़ी गोशे में था, जिसके लिये क़ुरान हकीम में "مَكَانًا شَرۡقِيًّا" का लफ़्ज़ आया है। ईसाईयों ने इसी मशरिक़ी घर को अपना क़िब्ला बना लिया।

وَلَئِنِ اتَّبَعۡتَ اَهۡوَآءَهُمۡ

"और (ऐ नबी ﷺ! बिलफ़र्ज़) अगर आपने इनकी ख़्वाहिशात की पैरवी की"

مِّنۢ بَعۡدِ مَا جَآءَكَ مِنَ الۡعِلۡمِ ۙ

"उस इल्म के बाद जो आप के पास आ चुका है"

اِنَّكَ اِذًا لَّمِنَ الظّٰلِمِيۡنَ ۝۱۴۵

"तो बिला शुबह आप भी ज़ुल्म करने वालों में से हो जायेंगे।" (मआज़ अल्लाह)

आयत 146

اَلَّذِيۡنَ اٰتَيۡنٰهُمُ الۡكِتٰبَ يَعۡرِفُوۡنَهٗ كَمَا يَعۡرِفُوۡنَ اَبۡنَآءَهُمۡ ؕ

"जिन लोगों को हमने किताब दी है वह इसको ऐसे पहचानते हैं जैसा कि अपने बेटों को पहचानते हैं।"

यहाँ यह नुक्ता नोट कर लीजिये कि क़ुरान हकीम में तौरात और इंजील के मानने वालों में से ग़लतकारों के लिये मजहूल का सीग़ा आता है {اُوۡتُوا الۡكِتٰبَ} "जिन्हें किताब दी गई थी" और जो उनमें से सालेहीन थे, सही रुख़ पर थे, उनके लिये मारूफ़ का सीग़ा आता है, जैसे यहाँ आया है। { يَعۡرِفُوۡنَهٗ } में ज़मीर (ہٗ) का मरजा क़िब्ला भी है, क़ुरान भी है और मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ भी हैं।

وَاِنَّ فَرِيْقًا مِّنْهُمْ

“अलबत्ता उनमें से एक ग़िरोह वह है”

لَيَكْتُمُوْنَ الْحَقَّ وَهُمْ يَعْلَمُوْنَ ﴿١٤٦﴾

“जो जानते-बूझते हक़ को छुपाता है।”

आयत 147

اَلْحَقُّ مِنْ رَّبِّكَ

“यह हक़ है आप ﷺ के रब की तरफ़ से”

इसका तर्जुमा यूँ भी किया गया है: “हक़ वही है जो आपके रब की तरफ़ से है।”

فَلَا تَكُوْنَنَّ مِنَ الْمُمْتَرِيْنَ ﴿١٤٧﴾

“तो आप हरग़िज़ शक करने वालों में से ना बनें।”

ख़िताब का रुख़ रसूल अल्लाह ﷺ की तरफ़ है और आप ﷺ की वसातत (ज़रिये) से दरअसल हर मुसलमान से यह बात कही जा रही है कि इस बारे में कोई शक व शुबह अपने पास मत आने दो कि यही तो हक़ है तुम्हारे परवरदिगार की तरफ़ से।”

आयत 148

وَلِكُلٍّ وِّجْهَةٌ هُوَ مُوَلِّيْهَا

"हर एक के लिये एक सिम्त है जिसकी तरफ़ वह रुख़ करता है"

فَاسْتَبِقُوا الْخَيْرٰتِ

"तो (मुसलमानों!) तुम नेकियों में सबक़त (बढ़त) करो।"

हमने तुम्हारे लिये एक रुख़ मुअय्यन कर दिया, यानि बैतुल्लाह। और एक बातिनी रुख़ तुम्हें यह इख़्तियार करना है कि नेकियों की राह में एक-दूसरे से आगे बढ़ने की कोशिश करो। जैसे नमाज़ का एक ज़ाहिर और एक बातिन है। ज़ाहिर यह है कि आपने बावुज़ू होकर क़िब्ले की तरफ़ रुख कर लिया और अरकाने नमाज़ अदा किये, जबकि नमाज़ का बातिन ख़ुशुअ व ख़ुज़ूअ, हुज़ूरे क़ल्ब और रक़्त है। इंसान को यह अहसास हो कि वह परवरदिगारे आलम के रू-ब-रू हाज़िर हो रहा है।

اَيْنَ مَا تَكُوْنُوْا يَاْتِ بِكُمُ اللّٰهُ جَمِيْعًا

"जहाँ कहीं भी तुम होगे अल्लाह तुम सबको जमा करके ले आयेगा।"

اِنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ﴿١٤٨﴾

"यक़ीनन अल्लाह तआला हर चीज़ पर क़ादिर है।"

आयत 149

وَمِنۡ حَيۡثُ خَرَجۡتَ فَوَلِّ وَجۡهَكَ شَطۡرَ الۡمَسۡجِدِ الۡحَرَامِ ؕ

"और जहाँ कहीं से भी आप ﷺ निकलें तो (नमाज़ के वक़्त) आप अपना रुख़ फेर लीजिये मस्जिदे हराम की तरफ़।"

وَاِنَّهٗ لَلۡحَقُّ مِنۡ رَّبِّكَ ؕ

"और यक़ीनन यह हक़ है आप ﷺ के रब की तरफ़ से"

وَمَا اللّٰهُ بِغَافِلٍ عَمَّا تَعۡمَلُوۡنَ ﴿۱۴۹﴾

"और अल्लाह ग़ाफ़िल नहीं है उससे जो तुम कर रहे हो।"

जैसा कि पहले अर्ज़ किया गया, यहाँ कलाम बज़ाहिर आँहुज़ूर ﷺ से है, मगर असल में आप ﷺ की वसातत से तमाम मुसलमानों से ख़िताब है। दोबारा फ़रमाया गया:

आयत 150

وَمِنۡ حَيۡثُ خَرَجۡتَ فَوَلِّ وَجۡهَكَ شَطۡرَ الۡمَسۡجِدِ الۡحَرَامِ ؕ

"और जहाँ कहीं से भी आप निकलें तो आप अपना रुख़ (नमाज़ के वक़्त) मस्जिदे हराम ही की तरफ़ कीजिये।"

وَحَيْثُ مَا كُنْتُمْ فَوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ شَطْرَهٗ

"और (ऐ मुसलमानों!) जहाँ कहीं भी तुम हो तो (नमाज़ के वक़्त) अपने चेहरों को उसी की जानिब फेर दो"

तुम ख़्वाह अमेरिका में हो या रूस में, नमाज़ के वक़्त तुम्हें बैतुल्लाह ही की तरफ़ रुख़ करना होगा।

لِئَلَّا يَكُوْنَ لِلنَّاسِ عَلَيْكُمْ حُجَّةٌ

"ताकि बाक़ी ना रहे लोगों के पास तुम्हारे ख़िलाफ़ कोई दलील"

यानि अहले किताब बिलख़ुसूस यहूद के लिये तुम्हारे ख़िलाफ़ बदगुमानी फैलाने का कोई मौक़ा बाक़ी ना रह जाये। तौरात में मज़कूर था कि नबी आखिरुज्ज़मा का क़िबला ख़ाना काबा होगा। अगर आँहुज़ूर ﷺ यह क़िबला इख़्तियार ना करते तो उल्माये यहूद मुसलमानों पर हुज्जत क़ायम करते। तो यह गोया उनके ऊपर इत्मामे हुज्जत भी हो रहा है और क़ता उज़्र भी।

اِلَّا الَّذِيْنَ ظَلَمُوْا مِنْهُمْ

"सिवाय उनके जो उनमें से ज़ालिम हैं।"

शरीर (दुष्ट) लोग इस क़ता हुज्जत के बाद भी बाज़ आने वाले नहीं और वह ऐतराज़ करने के लिये लाख हीले बहाने बनाएँगे, उनकी ज़बान किसी हाल में बंद ना होगी।

فَلَا تَخْشَوْهُمْ

"तो (ऐ मुसलमानों!) उनसे ना डरो"

وَاخْشَوْنِيْ

"और मुझसे डरो।"

وَلِاُتِمَّ نِعْمَتِيْ عَلَيْكُمْ

"और इसलिये कि मैं तुम पर अपनी नेअमत तमाम कर दूँ"

यह जो तहवीले क़िब्ला का मामला हुआ है और मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की बेअसत की बुनियाद पर एक नयी उम्मत तश्कील दी जा रही है, उसे इमामतुन्नास से सरफ़राज़ किया जा रहा है और विरासते इब्राहिमीअलै० अब इसे मुन्तक़िल हो गयी है, यह इसलिये है ताकि ऐ मुसलमानों! मैं तुम पर अपनी नेअमत पूरी कर दूँ।

وَلَعَلَّكُمْ تَهْتَدُوْنَ ۝١٥٠

"और ताकि तुम हिदायत याफ़्ता बन जाओ।"

आयत 151

كَمَآ اَرْسَلْنَا فِيْكُمْ رَسُوْلًا مِّنْكُمْ

"जैसे कि हमने भेज दिया है तुम्हारे दरमियान एक रसूल ख़ुद तुम में से"

يَتْلُوْا عَلَيْكُمْ اٰيٰتِنَا

"वह तिलावत करता है तुम पर हमारी आयात"

وَيُزَكِّيْكُمْ

"और तुम्हें पाक करता है" (तुम्हारा तज़किया करता है)

وَيُعَلِّمُكُمُ الْكِتٰبَ وَالْحِكْمَةَ

"और तुम्हें तालीम देता है किताब और हिकमत की"

وَيُعَلِّمُكُمْ مَّا لَمْ تَكُوْنُوْا تَعْلَمُوْنَ ﴿١٥١﴾

"और तुम्हें तालीम देता है उन चीज़ों की जो तुम्हें मालूम नहीं थीं।"

यहाँ हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल अलै० की दुआ याद कर लीजिये जो आयत 129 में मज़कूर हुई है। उस दुआ का ज़हूर तीन हज़ार बरस बाद बेअसते मुहम्मदी ﷺ की शक्ल में हो रहा है। यहाँ एक नुक्ता बड़ा अहम है कि हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईल अलै० की दुआ में जो तरतीब थी, यहाँ अल्लाह ने उसको बदल दिया है। दुआ में तरतीब यह थी: तिलावते आयात, तालीमे किताब व हिकमत, फिर तज़किया। यहाँ पहले तिलावते आयात, फिर तज़किया और फिर तालीमे किताब व हिकमत आया है। ज़ाहिर बात है कि हज़रत इब्राहीम और हज़रत इस्माईलअलै० ने जो बात कही वह भी ग़लत तो नहीं हो सकती, लेकिन हम यह कह सकते हैं कि इसकी तन्फ़ीज़शुदा (imposed) सूरत यह है जो अल्लाह तआला की तरफ़ से दी गयी। इसलिये कि तज़किया मुक़द्दम है, अगर नीयत सही नहीं है तो तालीमे किताब व हिकमत मुफ़ीद नहीं होगी, बल्कि गुमराही में इज़ाफ़ा होगा। नीयत कज (टेढ़ी) है तो गुमराही बढ़ती चली जायेगी। तज़किये का हासिल इख़्लास है, यानि नीयत दुरुस्त हो जाये। अगर यह नहीं है तो कोई जितना बड़ा आलिम होगा

वह उतना बड़ा शैतान भी बन सकता है। वाक़्या यह है कि बड़े-बड़े फ़ितने आलिमों ने ही उठाये हैं। "दीने अकबरी" या "दीने इलाही" की तद्वीन का ख़्याल तो अकबर के बाप दादा को भी नहीं आ सकता था, यह तो अबुल फ़ज़ल और फ़ैज़ी जैसे उलमा थे जिन्होंने उसे यह पट्टी पढ़ाई। इसी तरह ग़ुलाम अहमद क़ादयानी को भी उल्टी पट्टियाँ पढ़ाने वाला हकीम नूरुद्दीन था, जो बहुत बड़ा अहले हदीस आलिम था। तो दरहक़ीक़त कोई जितना बड़ा आलिम होगा अग़र उसकी नीयत कज हो गई तो वह उतना ही बड़ा फ़ितना उठा देगा। इस पहलु से तज़किया मुक़द्दम है। और इसका सबूत यह है कि यही मज़मून सूरह आले इमरान में और फिर सूरतुल जुमा में भी आया है, वहाँ भी तरतीब यही है:

(1) तिलावते आयात

(2) तज़किया

(3) तालीमे किताब व हिकमत।

आयत 152

فَاذْكُرُوْنِيْٓ اَذْكُرْكُمْ

"पस तुम मुझे याद रखो, मैं तुम्हें याद रखूँगा"

यह अल्लाह तआला और बंदों के दरमियान एक बहुत बड़ा मीसाक़ और मुआहिदा है। इसकी शरह (विवरण) हदीसे क़ुदसी में बाअलफ़ाज़ आयी है: ((اَنَا مَعَهٗ اِذَا ذَكَرَنِيْ، فَاِنْ ذَكَرَنِيْ فِيْ نَفْسِهٖ ذَكَرْتُهٗ فِيْ نَفْسِيْ، وَاِنْ ذَكَرَنِيْ فِيْ مَلَاءٍ ذَكَرْتُهٗ فِيْ مَلَاءٍ خَيْرٍ مِّنْهُمْ))(16) "मेरा बंदा जब मुझे याद करता है तो मैं उसके

पास होता हूँ, अगर वह मुझे अपने दिल में याद करता है तो मैं भी उसे अपने जी में याद करता हूँ, और अगर वह मुझे किसी महफ़िल में याद करता है तो मैं उसे उससे बहुत बेहतर महफ़िल में याद करता हूँ।" उसकी महफ़िल तो बहुत बुलंद व बाला है, वह मला-उल-आला की महफ़िल है, मलाइका मुक़र्रबीन की महफ़िल है। अमीर ख़ुसरो मालूम नहीं किस आलम में ये शेर कह गये थे:

ख़ुदा ख़ुद मेरे महफ़िल बुद अंदर ला मकान ख़ुसरो
मुहम्मद ﷺ शमा महफ़िल बुद शब जाये कि मन बुदम!

وَاشۡكُرُوۡا لِىۡ وَلَا تَكۡفُرُوۡنِ ۞١٥٢

"और मेरा शुक्र करो, मेरी नाशुक्री मत करना।"

मेरी नेअमतों का इदराक करो, उनका शऊर हासिल करो। ज़बान से भी मेरी नेअमतों का शुक्र अदा करो और अपने अमल से भी, अपने आज़ा व जवारह (अंगों) से भी इन नेअमतों का हक़ अदा करो।

यहाँ इस सूरह मुबारक का निस्फ़े अव्वल मुकम्मल हो गया है जो अट्ठारह रुकूओं पर मुश्तमिल है।

आयात 153 से 163 तक

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوا اسۡتَعِيۡنُوۡا بِالصَّبۡرِ وَالصَّلٰوةِ ؕ اِنَّ
اللّٰهَ مَعَ الصّٰبِرِيۡنَ ۞١٥٣ وَلَا تَقُوۡلُوۡا لِمَنۡ يُّقۡتَلُ فِىۡ

سَبِيْلِ اللّٰهِ اَمْوَاتٌ ؕ بَلْ اَحْيَآءٌ وَّلٰكِنْ لَّا تَشْعُرُوْنَ
﴿١٥٤﴾ وَلَنَبْلُوَنَّكُمْ بِشَیْءٍ مِّنَ الْخَوْفِ وَالْجُوْعِ وَنَقْصٍ
مِّنَ الْاَمْوَالِ وَالْاَنْفُسِ وَالثَّمَرٰتِ ؕ وَبَشِّرِ
الصّٰبِرِيْنَ ۙ﴿١٥٥﴾ الَّذِيْنَ اِذَآ اَصَابَتْهُمْ مُّصِيْبَةٌ ۙ قَالُوْٓا
اِنَّا لِلّٰهِ وَاِنَّآ اِلَيْهِ رٰجِعُوْنَ ؕ﴿١٥٦﴾ اُولٰٓئِكَ عَلَيْهِمْ صَلَوٰتٌ
مِّنْ رَّبِّهِمْ وَرَحْمَةٌ ۫ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُهْتَدُوْنَ ﴿١٥٧﴾ اِنَّ
الصَّفَا وَالْمَرْوَةَ مِنْ شَعَآئِرِ اللّٰهِ ۚ فَمَنْ حَجَّ الْبَيْتَ اَوِ
اعْتَمَرَ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِ اَنْ يَّطَّوَّفَ بِهِمَا ؕ وَمَنْ
تَطَوَّعَ خَيْرًا ۙ فَاِنَّ اللّٰهَ شَاكِرٌ عَلِيْمٌ ﴿١٥٨﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ
يَكْتُمُوْنَ مَآ اَنْزَلْنَا مِنَ الْبَيِّنٰتِ وَالْهُدٰى مِنْۢ بَعْدِ
مَا بَيَّنّٰهُ لِلنَّاسِ فِی الْكِتٰبِ ۙ اُولٰٓئِكَ يَلْعَنُهُمُ اللّٰهُ
وَيَلْعَنُهُمُ اللّٰعِنُوْنَ ۙ﴿١٥٩﴾ اِلَّا الَّذِيْنَ تَابُوْا وَاَصْلَحُوْا
وَبَيَّنُوْا فَاُولٰٓئِكَ اَتُوْبُ عَلَيْهِمْ ۚ وَاَنَا التَّوَّابُ
الرَّحِيْمُ ﴿١٦٠﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا وَمَاتُوْا وَهُمْ كُفَّارٌ
اُولٰٓئِكَ عَلَيْهِمْ لَعْنَةُ اللّٰهِ وَالْمَلٰٓئِكَةِ وَالنَّاسِ

اَجۡمَعِيۡنَ ۝١٦١ خٰلِدِيۡنَ فِيۡهَا ۚ لَا يُخَفَّفُ عَنۡهُمُ الۡعَذَابُ
وَلَا هُمۡ يُنۡظَرُوۡنَ ۝١٦٢ وَاِلٰهُكُمۡ اِلٰهٌ وَّاحِدٌ ۚ لَآ اِلٰهَ اِلَّا
هُوَ الرَّحۡمٰنُ الرَّحِيۡمُ ۝١٦٣

सूरतुल बक़रह के उन्नीसवें रुकूअ से अब उम्मते मुस्लिमा से बराहे रास्त ख़िताब है। इससे क़ब्ल इस उम्मत की ग़र्ज़े तासीस (स्थापना) बाअल्फ़ाज़ बयान की जा चुकी है: { لِّتَكُوۡنُوۡا شُهَدَآءَ عَلَى النَّاسِ وَيَكُوۡنَ الرَّسُوۡلُ عَلَيۡكُمۡ شَهِيۡدًا} (आयत:143) "ताकि तुम लोगों पर गवाही देने वाले बनो और रसूल ﷺ तुम पर गवाही देने वाले बने।" गोया अब तुम हमेशा-हमेश के लिये मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ और नौए इंसानी के दरमियान वास्ता हो। एक हदीस में उल्माये हक़ के बारे में फ़रमाया गया है: ((اِنَّ الۡعُلَمَاءَ هُمۡ وَرَثَةُ الۡاَنۡبِيَاءِ))(17) "यक़ीनन उलमा ही अम्बिया के वारिस है।" इसलिये कि अब नबुवत तो ख़त्म हो गई ख़ातिमुल मुर्सलीन मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर, लेकिन यह आख़री किताब क़यामत तक रहेगी, इसको पहुँचाना है, इसको आम करना है, और सिर्फ़ तब्लीग़ से नहीं अमल करके दिखाना है। वह निज़ाम अमलन क़ायम करके दिखाना है जो मुहम्मद अरबी ﷺ ने क़ायम किया था, तब हुज्जत क़ायम होगी। इसके लिये तुम्हें क़ुर्बानियाँ देनी होंगी, मुश्किलात झेलनी होंगी, जान व माल का नुक़सान बर्दाश्त करना

होगा। आराम से घर बैठे, ठन्डे पेटों हक़ नहीं आ जायेगा, कुफ़्र इस तरह जगह नहीं छोड़ेगा। कुफ़्र को हटाने के लिये, बातिल को ख़त्म करने के लिये और हक़ को क़ायम करने के लिये तुम्हें तन-मन-धन लगाने होंगे। चुनाँचे अब पुकार आ रही है:

आयत 153

يَاَيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوا اسۡتَعِيۡنُوۡا بِالصَّبۡرِ وَالصَّلٰوةِ ؕ

“ऐ ईमान वालो! सब्र और नमाज़ से मदद चाहो।”

पाँचवें रुकूअ की सात आयतों को मैंने बनी इसराइल से ख़िताब के ज़िमन में बमंज़िला-ए-फ़ातिहा क़रार दिया था। वहाँ पर यह अल्फ़ाज़ आये थे:

وَاسۡتَعِيۡنُوۡا بِالصَّبۡرِ وَالصَّلٰوةِ ؕ وَاِنَّهَا لَكَبِيۡرَةٌ اِلَّا عَلَى الۡخٰشِعِيۡنَ ۝٤٥ الَّذِيۡنَ يَظُنُّوۡنَ اَنَّهُمۡ مُّلٰقُوۡا

“और मदद चाहो सब्र और नमाज़ से, और यक़ीनन यह भारी चीज़ है मगर उन लोगों के लिये जो डरने वाले हैं, जो ग़ुमान रखते हैं कि वह अपने रब से मुलाक़ात करने वालें हैं और वह उसी की तरफ़ लौटने वाले हैं।”

رَبِّهِمۡ وَاَنَّهُمۡ اِلَيۡهِ
رٰجِعُوۡنَ ﴿۴۶﴾

अब यही बात अहले ईमान से कही जा रही है।

اِنَّ اللّٰهَ مَعَ الصّٰبِرِيۡنَ ﴿۵۳﴾

"जान लो कि अल्लाह सब्र करने वालों के साथ है।"

अल्लाह तआला की मईयत (साथ) से क्या मुराद है! एक बात तो मुत्तफ़िक़ अलैय है कि अल्लाह की मदद, अल्लाह की ताईद (समर्थन), अल्लाह की नुसरत उनके शामिले हाल है। बाक़ी यह है कि जहाँ कहीं भी हम हैं अल्लाह हमारे साथ है। उसकी कैफ़ियत हम नहीं जानते, लेकिन ख़ुद उसका फ़रमान है कि "हम तो इंसान से उसकी रगेजान से भी ज़्यादा क़रीब हैं।"(क़ॉफ़:16)

आयत 154

وَلَا تَقُوۡلُوۡا لِمَنۡ يُّقۡتَلُ
فِىۡ سَبِيۡلِ اللّٰهِ اَمۡوَاتٌ ؕ

"और मत कहो उनको जो अल्लाह की राह में क़त्ल हो जाएं कि वह मुर्दा हैं।"

अब पहले ही क़दम पर अल्लाह की राह में क़त्ल होने की बात आ गई *"शर्ते अव्वल क़दम ईं अस्त कि मजनून बाशी!"* ईमान का अव्वलीन तक़ाज़ा यह है कि जानें देने के लिये तैयार हो जाओ।

بَلْ اَحْيَآءٌ وَّلٰكِنْ لَّا تَشْعُرُوْنَ ﴿١٥٤﴾

"(वो मुर्दा नहीं हैं) बल्कि ज़िन्दा हैं, लेकिन तुम्हें इसका शऊर नहीं है।"

जो अल्लाह की राह में क़त्ल हो जाएँ उनको जन्नत में दाख़िले के लिये यौमे आख़िरत तक इन्तेज़ार नहीं करना होगा, शहीदों को तो उसी वक़्त बराहे रास्त जन्नत में दाख़िला मिलता है, लिहाज़ा वह तो ज़िन्दा हैं। यही मज़मून सूरह आले इमरान में और ज़्यादा निख़र कर सामने आयेगा।

आयत 155

وَلَنَبْلُوَنَّكُمْ بِشَيْءٍ مِّنَ الْخَوْفِ وَالْجُوْعِ

"और हम तुम्हें लाज़िमन आज़माऐंगे किसी क़द्र ख़ौफ़ और भूख से"

देख लो, जिस राह में तुमने क़दम रखा है यहाँ अब आज़माइशें आयेंगी, तकलीफ़ें आयेंगी। रिश्तेदार नाराज़ होंगे, शौहर और बीबी के दरमियान तफ़रीक़ होगी, औलाद वालिदैन से जुदा होगी, फ़साद होगा, फ़तूर होगा तसादुम होगा, जान व माल का नुक़सान होगा। हम ख़ौफ़ की कैफ़ियत से भी तुम्हारी आज़माइश करेंगे और भूख़ से भी। चुनाँचे सहाबा किराम रज़ि० ने कैसी-कैसी सख़्तियाँ झेलीं और कई-कई रोज़ के फ़ाक़े बर्दाशत किये। ग़ज़वा-ए-अहज़ाब में क्या हालात पेश आये हैं! उसके बाद जैशुल असरा (ग़ज़वा-ए-तबूक) में क्या कुछ हुआ है!

وَنَقۡصٍ مِّنَ الۡاَمۡوَالِ وَالۡاَنۡفُسِ وَالثَّمَرٰتِ ؕ

"और मालों और जानों और समारात (फ़लों) के नुक़सान से।"

माली और जानी नुक़सान भी होंगे और समारात का नुक़सान भी होगा। "समारात" यहाँ दो मायने दे रहा है। मदीने वालों की मईशत (अर्थव्यवस्था) का दारोमदार ज़राअत (कृषि) और बाग़वानी पर था। ख़ासतौर पर खजूर उनकी पैदावार थी, जिसे आज की इस्तलाह में cash crop कहा जायेगा। अब ऐसा भी हुआ कि फ़सल पक कर तैयार खड़ी है और अगर उसे दरख़्तों से उतारा ना गया तो ज़ाया हो जायेगी, उधर से ग़ज़वा-ए-तबूक का हुक्म आ गया कि निकलो अल्लाह की राह में! तो यह इम्तिहान है समारात के नुक़सान का। इसके अलावा समारात का एक और मफ़हूम है। इंसान बहुत मेहनत करता है, जद्दो-जहद करता है, एक कैरियर अपनाता है और उसमें अपना एक मक़ाम बना लेता है। लेकिन जब वह दीन के रास्ते पर आता है तो कुछ और ही शक्ल इख़्तियार करनी पड़ती है। चुनाँचे अपनी तिजारत के ज़माने में या किसी प्रोफ़ेशन में अपना मक़ाम बनाने में उसने जो मेहनत की थी वह सब की सब सिफ़र होकर रह जाती है, और अपनी मेहनत के समारात से बिल्कुल तहे दामन होकर उसे इस वादी में आना पड़ता है।

وَبَشِّرِ الصّٰبِرِيۡنَ ۝١٥٥ۙ

"और (ऐ नबी ﷺ!) बशारत दीजिये इन सब्र करने वालों को।"

आयत 156

"वह लोग कि जिनको जब भी कोई मुसीबत आये"	الَّذِيْنَ اِذَآ اَصَابَتْهُمْ مُّصِيْبَةٌ ۙ
"तो वह कहते हैं कि बेशक हम अल्लाह ही के हैं और उसी की तरफ़ हमें लौट जाना है।"	قَالُوْٓا اِنَّا لِلّٰهِ وَاِنَّآ اِلَيْهِ رٰجِعُوْنَ ١٥٦ۭ

आख़िरकार तो यहाँ से जाना है, अगर कल की बजाये हमें आज ही बुला लिया जाये तब भी हाज़िर हैं। बक़ौल इक़बाल:

निशाने मर्दे मोमिन बा तो गोयम
चूँ मर्ग आयद तबस्सुम बर लबे ऊस्त!

यानि मर्दे मोमिन की तो निशानी ही यही है कि जब मौत आती है तो मुसर्रत (ख़ुशी) के साथ उसके होठों पर मुस्कुराहट आ जाती है। वह दुनिया से मुस्कुराता हुआ रुख़सत होता है। यह ईमान की अलामत है और बंदा-ए-मोमिन इस दुनिया में ज़्यादा देर तक रहने की ख़्वाहिश नहीं कर सकता। उसे मालूम है कि वह दुनिया में जो लम्हा भी गुज़ार रहा है उसे इसका हिसाब देना होगा। तो जितनी उम्र बढ़ रही है हिसाब बढ़ रहा है। चुनाँचे हदीस में दुनिया को मोमिन के लिये क़ैदखाना और काफ़िर के लिये जन्नत क़रार दिया गया है: ((اَلدُّنْيَا سِجْنُ الْمُؤْمِنِ وَجَنَّةُ الْكَافِرِ))(18)

आयत 157

أُولَٰئِكَ عَلَيْهِمْ صَلَوَاتٌ مِّن رَّبِّهِمْ وَرَحْمَةٌ ۖ

"यही हैं वह लोग कि जिन पर उनके रब की इनायतें हैं और रहमत।"

इन पर हर वक़्त अल्लाह की इनायतों का नुज़ूल होता रहता है और रहमत की बारिश होती रहती है।

وَأُولَٰئِكَ هُمُ الْمُهْتَدُونَ ﴿١٥٧﴾

"और यही लोग हिदायत याफ़्ता हैं।"

यह वह लोग हैं जिन्होंने वाक़िअतन हिदायत को इख़्तियार किया है। और जो ऐसे मरहले पर ठिठक कर खड़े रह जायें, पीछे हट कर बैठ जायें, पीठ मोड़ लें तो गोया वह हिदायत से तहे दामन हैं।

आयत 158

إِنَّ الصَّفَا وَالْمَرْوَةَ مِن شَعَائِرِ اللَّهِ ۖ

"यक़ीनन सफ़ा और मरवा अल्लाह के शआइर (निशानियों) में से हैं।"

यह आयत असल सिलसिला-ए-बहस यानि क़िब्ले की बहस से मुताल्लिक़ है। बाज़ लोगों के ज़हनों में यह सवाल पैदा हुआ कि हज के मनासिक में यह जो सफ़ा और मरवा की सई

है तो इसकी क्या हक़ीक़त है? फ़रमाया कि यह भी अल्लाह के शआइर में से हैं। शआइर, शईराह की जमा है जिसके मायने ऐसी चीज़ के हैं जो शऊर बख्शे, जो किसी हक़ीक़त का अहसास दिलाने वाली और उसका मज़हर और निशान हो। चुनाँचे वह मज़ाहिर जिनके साथ उलुल अज़्म पैगम्बरों या उलुल अज़्म औलिया अल्लाह के हालात व वाक़िआत का कोई ज़हनी सिलसिला क़ायम होता हो और जो अल्लाह और रसूल ﷺ की तरफ़ से बतौर एक निशान और अलामत मुक़र्रर किये गये हों शआइर कहलाते हैं। वह गोया बाज़ मानवी हक़ाइक़ का शऊर दिलाने वाले और ज़हन को अल्लाह की तरफ़ ले जाने वाले होते हैं। इस ऐतबार से बैतुल्लाह, हज्रे अस्वद, जमरात और सफ़ा व मरवा अल्लाह तआला के शआइर में से हैं।

فَمَنۡ حَجَّ الۡبَيۡتَ اَوِ اعۡتَمَرَ فَلَا جُنَاحَ عَلَيۡهِ اَنۡ يَّطَّوَّفَ بِهِمَا ؕ

"तो जो कोई भी बैतुल्लाह का हज करे या उमरा करे तो उस पर कोई हर्ज नहीं है कि उन दोनों का तवाफ़ भी करे।"

सफ़ा व मरवा के तवाफ़ से मुराद वह सई है जो इन दोनों पहाड़ियों के दरमियान सात चक्करों की सूरत में की जाती है।

وَمَنۡ تَطَوَّعَ خَيۡرًا ۙ

"और जो शख़्स ख़ुशदिली से कोई भलाई का काम करत है"

فَاِنَّ اللّٰهَ شَاكِرٌ عَلِيْمٌ ﴿١٥٨﴾

"तो (जान लो कि) अल्लाह बड़ा क़द्रदान है, जानने वाला है।"

यहाँ अल्लाह तआला के लिये लफ़्ज़ "शाकिर" आया है। लफ़्ज़ शुक्र की निस्बत जब बंदे की तरफ़ हो तो इसके मायने शुक्रगुज़ारी और अहसानमंदी के होते हैं, लेकिन जब इसकी निस्बत अल्लाह तआला की तरफ़ हो तो इसके मायने क़द्रदानी और क़ुबूल करने के हो जाते हैं। "शाकिर" के साथ दूसरी सिफ़त "अलीम" आई है कि वह सब कुछ जानने वाला है। चाहे किसी और को पता ना लगे उसे तो ख़ूब मालूम है। अगर तुमने अल्लाह की रज़ाजोई के लिये किसी को कोई माली मदद दी है, इस हाल में कि दाहिने हाथ ने जो कुछ दिया है उसकी बायें हाथ को भी ख़बर नहीं होने दी, बजाय यह कि किसी और इंसान के सामने उसका तज़किरा हो, तो यह अल्लाह के तो इल्म में है, चुनाँचे अगर अल्लाह से अज्रो सवाब चाहते हो तो अपनी नेकियों का ढिंढोरा पीटने की कोई ज़रुरत नहीं, लेकिन अगर तुमने यह सब कुछ लोगों को दिखाने के लिये किया था तो गोया वह शिर्क हो गया।

आयत 159

اِنَّ الَّذِيْنَ يَكْتُمُوْنَ مَآ اَنْزَلْنَا مِنَ الْبَيِّنٰتِ وَالْهُدٰى

"यक़ीनन वह लोग जो छुपाते हैं उस शय को जो हमने नाज़िल की बय्यिनात में से और हिदायत में से"

مِنۢ بَعۡدِ مَا بَيَّنّٰهُ لِلنَّاسِ فِى الۡكِتٰبِۙ

"बाद इसके कि हमने उसको वाज़ेह कर दिया है लोगों के लिये किताब में"

اُولٰٓـئِكَ يَلۡعَنُهُمُ اللّٰهُ وَيَلۡعَنُهُمُ اللّٰعِنُوۡنَ ﴿۱۵۹﴾

"तो वही लोग हैं कि जिन पर लानत करता है अल्लाह और लानत करते हैं तमाम लानत करने वाले।

इस आयत में यहूद की तरफ़ इशारा है, जिनकी मआनदाना (दुश्मनी की) रविश का ज़िक्र पहले गुज़र चुका है। यहाँ अब गोया आख़री क़तई सफ़ाई (mopping up operation) के तौर पर उनके बारे में चंद बातों का मज़ीद इज़ाफ़ा किया जा रहा है। यहाँ बय्यिनात और हुदा से ख़ास तौर पर वह निशानियाँ मुराद हैं जो अल्लाह तआला ने तौरात में नबी आख़िरुज़्ज़मा ﷺ के बारे में यहूद की रहनुमाई के लिये वाज़ेह फ़रमायी थी। लेकिन यहूद ने उन निशानियों से रहनुमाई हासिल करने के बजाय उनको छुपाने की कोशिश की। आयत 140 में हम पढ़ आये हैं: {وَمَنۡ اَظۡلَمُ مِمَّنۡ كَتَمَ شَهَادَةً عِنۡدَهٗ مِنَ اللّٰهِ} "और उस शख़्स से बढ़ कर ज़ालिम और कौन होगा जिसके पास अल्लाह की तरफ़ से एक गवाही थी जिसे उसने छुपा लिया।" यहाँ इसकी वज़ाहत हो रही है कि तौरात और इंजील में कैसी-कैसी ख़ुली शहादते थीं, और उनको यह छुपाये फिर रहे हैं!

आयत 160

إِلَّا الَّذِينَ تَابُوا وَأَصْلَحُوا وَبَيَّنُوا	*"सिवाय उनके जो तौबा करें और इस्लाह कर लें और (जो कुछ छुपाते थे उसे) वाज़ेह तौर पर बयान करने लगें"*
فَأُولَٰئِكَ أَتُوبُ عَلَيْهِمْ ۚ	*"तो उनकी तौबा मैं क़ुबूल करुँगा।"*

मैं अपनी निगाहे उल्तफ़ात (प्यार भारी निगाह) उनकी तरफ़ मुतवज्जह कर दूँगा।

وَأَنَا التَّوَّابُ الرَّحِيمُ ﴿١٦٠﴾	*"और मैं तो हूँ ही तौबा का क़ुबूल करने वाला, रहम फ़रमाने वाला।"*

आयत 161

إِنَّ الَّذِينَ كَفَرُوا وَمَاتُوا وَهُمْ كُفَّارٌ	*"यक़ीनन जिन लोगों ने कुफ़्र किया और वह इसी हाल में मर गये कि कुफ़्र पर क़ायम थे"*
أُولَٰئِكَ عَلَيْهِمْ لَعْنَةُ اللَّهِ وَالْمَلَائِكَةِ وَالنَّاسِ أَجْمَعِينَ ﴿١٦١﴾	*"उन पर लानत है अल्लाह की भी और फ़रिश्तों की भी और तमाम इंसानों की भी।"*

आयत 162

خٰلِدِيْنَ فِيْهَا ۚ

"इसी (लानत की कैफ़ियत) में वह हमेशा रहेंगे।"

لَا يُخَفَّفُ عَنْهُمُ الْعَذَابُ

"ना उन पर से अज़ाब में कोई कमी की जायेगी"

وَلَا هُمْ يُنْظَرُوْنَ ﴿١٦٢﴾

"और ना उनको मोहलत ही मिलेगी।"

अज़ाब का तसलसुल हमेशा क़ायम रहेगा। ऐसा नहीं होगा कि ज़रा सी देर के लिए वक़्फ़ा हो जाये या साँस लेने की मोहलत ही मिल जाये।

आयत 163

وَاِلٰـهُكُمْ اِلٰهٌ وَّاحِدٌ ۚ

"और तुम्हारा इलाह एक ही इलाह है।"

لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ الرَّحْمٰنُ الرَّحِيْمُ ﴿١٦٣﴾

"उसके सिवा कोई इलाह नहीं है, वह रहमान है, रहीम है।"

रहमान और रहीम की वज़ाहत सूरतुल फ़ातिहा में गुज़र चुकी है।

आयात 164 से 167 तक

اِنَّ فِيۡ خَلۡقِ السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضِ وَاخۡتِلَافِ الَّيۡلِ
وَالنَّهَارِ وَالۡفُلۡكِ الَّتِيۡ تَجۡرِيۡ فِي الۡبَحۡرِ بِمَا يَنۡفَعُ
النَّاسَ وَمَآ اَنۡزَلَ اللّٰهُ مِنَ السَّمَآءِ مِنۡ مَّآءٍ فَاَحۡيَا
بِهِ الۡاَرۡضَ بَعۡدَ مَوۡتِهَا وَبَثَّ فِيۡهَا مِنۡ كُلِّ دَآبَّةٍ ۖ
وَّتَصۡرِيۡفِ الرِّيٰحِ وَالسَّحَابِ الۡمُسَخَّرِ بَيۡنَ السَّمَآءِ
وَالۡاَرۡضِ لَاٰيٰتٍ لِّقَوۡمٍ يَّعۡقِلُوۡنَ ﴿۱۶۴﴾ وَمِنَ النَّاسِ
مَنۡ يَّتَّخِذُ مِنۡ دُوۡنِ اللّٰهِ اَنۡدَادًا يُّحِبُّوۡنَهُمۡ كَحُبِّ اللّٰهِ ؕ
وَالَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡۤا اَشَدُّ حُبًّا لِّلّٰهِ ؕ وَلَوۡ يَرَى الَّذِيۡنَ ظَلَمُوۡۤا
اِذۡ يَرَوۡنَ الۡعَذَابَ ۙ اَنَّ الۡقُوَّةَ لِلّٰهِ جَمِيۡعًا ۙ وَّاَنَّ اللّٰهَ
شَدِيۡدُ الۡعَذَابِ ﴿۱۶۵﴾ اِذۡ تَبَرَّاَ الَّذِيۡنَ اتُّبِعُوۡا مِنَ
الَّذِيۡنَ اتَّبَعُوۡا وَرَاَوُا الۡعَذَابَ وَتَقَطَّعَتۡ بِهِمُ
الۡاَسۡبَابُ ﴿۱۶۶﴾ وَقَالَ الَّذِيۡنَ اتَّبَعُوۡا لَوۡ اَنَّ لَنَا كَرَّةً
فَنَتَبَرَّاَ مِنۡهُمۡ كَمَا تَبَرَّءُوۡا مِنَّا ؕ كَذٰلِكَ يُرِيۡهِمُ اللّٰهُ
اَعۡمَالَهُمۡ حَسَرٰتٍ عَلَيۡهِمۡ ؕ وَمَا هُمۡ بِخٰرِجِيۡنَ مِنَ
النَّارِ ﴿۱۶۷﴾ ع

अब जो बात आ रही है इसका मुताअले से पहले एक बात समझ लीजिये कि सूरतुल बक़रह का निस्फ़े सानी जो बाईस रुकूओं पर मुश्तमिल है और जिसका आग़ाज़ उन्नीसवें रुकूअ से हुआ है, उसमें तरतीब क्या है। सूरतुल बक़रह के पहले अट्ठारह रुकूओं की तक़सीम उमूदी (verticle) है। यानि चार रुकूअ इधर, दस दरमियान में, फिर चार उधर। लेकिन उन्नीसवें रुकूअ से अब उफ़क़ी (horizontal) तक़सीम का आग़ाज़ हो गया है। इस हिस्से में चार मज़ामीन ताने-बाने की तरह बुने हुए हैं। या यूँ कह लें कि चार लड़ियाँ हैं जिनको बट कर रस्सी बना दिया गया है। इन चार में से दो लड़ियाँ तो शरीअत की हैं, जिनमें से एक इबादात की और दूसरी अहकाम व शराए की है कि यह वाजिब है, यह करना है, यह हलाल है और यह हराम है। नमाज़ फ़र्ज़ है, रोज़ा फ़र्ज़ है वगैरह-वगैरह। अहकाम व शराए में ख़ासतौर पर शौहर और बीवी के ताल्लुक़ को बहुत ज़्यादा अहमियत दी गई है। इसलिये कि मआशरते इंसानी की बुनियाद यही है। लिहाज़ा इस सूरत में आप देखेगें कि आइली क़वानीन (familiy laws) के ज़िमन में तफ़सीली अहकाम आएँगे। जबकि दूसरी दो लड़ियाँ जिहाद बिल् माल व जिहाद बिल् नफ़्स की हैं। जिहाद बिल् नफ़्स की आख़री इन्तहा क़िताल है जहाँ इंसान नक़द जान हथेली पर रख कर मैदाने कारज़ार (जंग) में हाज़िर हो जाता है।

अब इन चारों मज़ामीन या चारों लड़ियों को एक मिसाल से समझ लीजिये। फ़र्ज़ कीजिये एक सुर्ख़ लड़ी है, एक पीली है, एक नीली है और एक सब्ज़ (हरी) है, और इन

चारों लड़ियों को एक रस्सी की सूरत में बट दिया गया है। आप रस्सी को देखेगें तो चारो रंग कटे-फटे नज़र आएँगे। पहले सुर्ख़, फिर पीला, फिर नीला और फिर सब्ज़ नज़र आयेगा। लेकिन अगर रस्सी के बल खोल दें तो हर लड़ी मुसलसल नज़र आयेगी। चुनाँचे सूरतुल बक़रह के निस्फ़े आख़िर में इबादात, अहकामे शरीअत, जिहाद बिल् माल और जिहाद बिल् नफ़्स के चार मज़ामीन चार लड़ियों के मानिन्द गुथे हुए हैं। ये चारों लड़ियाँ ताने-बाने की तरह बुनी हुई हैं। लेकिन इसी बुन्ति में बहुत बड़े-बड़े फूल मौजूद हैं। यह फूल क़ुरान मजीद की अज़ीम तरीन और तवील आयात हैं, जिनकी नुमाया तरीन मिसाल आयतल कुर्सी की है। इन अज़ीम आयतों में से एक आयत यहाँ बीसवें रुकूअ के आग़ाज़ में आ रही है, जिसे मैंने "आयतुल आयात" का उन्वान दिया है। इसलिये कि क़ुरान मजीद की किसी और आयत में इस क़द्र मज़ाहिरे फ़ितरत (phenomena of nature) यक्जा (इकट्ठे) नहीं हैं। अल्लाह तआला तमाम मज़ाहिरे फ़ितरत को अपनी आयात क़रार देता है। आसमान और ज़मीन की तख़्लीक़, रात और दिन का उलट-फेर, आसमान के सितारे और ज़मीन की नबातात (वनस्पति), यह सब आयात हैं जिनका ज़िक्र क़ुरान मजीद में मुख़्तलिफ़ मक़ामात पर किया गया है, लेकिन यहाँ बहुत से मज़ाहिरे फ़ितरत को जिस तरह एक आयत में समोया गया है यह हिकमते क़ुरानी का एक बहुत बड़ा फूल है जो इन चारों लड़ियों की बुन्ति के अंदर आ गया है।

आयत 164

اِنَّ فِیۡ خَلۡقِ السَّمٰوٰتِ وَالۡاَرۡضِ وَاخۡتِلَافِ الَّیۡلِ وَالنَّهَارِ

“यक़ीनन आसमान और ज़मीन की तख्लीक़ में और रात और दिन के उलट-फेर में”

وَالۡفُلۡكِ الَّتِیۡ تَجۡرِیۡ فِی الۡبَحۡرِ بِمَا یَنۡفَعُ النَّاسَ

“और उन कश्तियों (और जहाज़ों) में जो समुन्दर में (या दरियाओं में) लोगों के लिये नफ़ा बख़्श सामान लेकर चलती हैं”

وَمَاۤ اَنۡزَلَ اللّٰهُ مِنَ السَّمَآءِ مِنۡ مَّآءٍ

“और उस पानी में कि जो अल्लाह ने आसमान से उतारा है”

فَاَحۡیَا بِهِ الۡاَرۡضَ بَعۡدَ مَوۡتِهَا

“फिर उससे ज़िन्दगी बख़्शी ज़मीन को उसके मुर्दा हो जाने के बाद”

बे आबो गयाह (बेरंग) ज़मीन पड़ी थी, बारिश हुई तो उसी में से रुईदगी (वनस्पति) आ गई।

وَبَثَّ فِیۡهَا مِنۡ كُلِّ دَآبَّةٍ ۪

“और हर क़िस्म के हैवानात (और चरिंदे परिंदे) इसके अंदर फैला दिये।”

وَّتَصۡرِيۡفِ الرِّيٰحِ

"और हवाओं की गर्दिश में"

हवाओं की गर्दिश के मुख़्तलिफ़ अंदाज़ और मुख़्तलिफ़ पहलू हैं। कभी शिमालन जुनुबन चल रही, कभी मशरिक़ से आ रही है, कभी मग़रिब से आ रही है। इस गर्दिश में बड़ी हिकमतें कारफ़रमा हैं।

وَالسَّحَابِ الۡمُسَخَّرِ بَيۡنَ السَّمَآءِ وَالۡاَرۡضِ

"और उन बादलों में जो मुअल्लिक़ कर दिये गये हैं आसमान और ज़मीन के दरमियान"

لَاٰيٰتٍ لِّقَوۡمٍ يَّعۡقِلُوۡنَ ﴿١٦٤﴾

"यक़ीनन निशानियाँ हैं उन लोगों के लिये जो अक़्ल से काम लें।"

इन मज़ाहिरे फ़ितरत को देखो और इनके ख़ालिक़ और मुदब्बिर (रचनाकार) को पहचानो! इन आयाते आफ़ाक़ी पर ग़ौरो फ़िक्र और इनके ख़ालिक़ को पहचानने का जो अमली नतीजा निकलना चाहिये और जिस तक आमतौर पर लोग नहीं पहुँच पाते अब अगली आयत में उसका तज़किरा है। नतीजा तो यह निकलना चाहिये कि फिर महबूब अल्लाह ही हो, शुक्र उसी का हो, इताअत उसी की हो, इबादत उसी की हो। जब सूरज में अपना कुछ नहीं, उसे अल्लाह ने बनाया है और उसे हरारत (गर्मी) अता की है, चाँद में कुछ नहीं, हवायें चलाने वाला भी वही है तो और किसी शय के लिये कोई शुक्र नहीं, कोई इबादत नहीं, कोई

दंडवत नहीं, कोई सजदा नहीं। चुनाँचे अल्लाह तआला ही मतलूब व मक़सूद बन जाये, वही महबूब हो। *"ला महबूबा इल्लल्लाह, ला मक़सूदा इल्लल्लाह, ला मतलूबा इल्लल्लाह"* जिन लोगों की यहाँ तक रसाई नहीं हो पाती वह किसी और शय को अपना महबूब व मतलूब बना कर उसकी परस्तिश शुरू कर देते हैं। ख़ुदा तक नहीं पहुँचे तो *"अपने ही हुस्न का दीवाना बना फिरता हूँ"* के मिस्दाक़ अपने नफ़्स ही को मअबूद बना लिया और ख़्वाहिशाते नफ़्स की पैरवी में लग गये। कुछ लोगों ने अपनी क़ौम को मअबूद बना लिया और क़ौम की बरतरी और सरबुलंदी के लिये जाने भी दे रहे हैं। बाज़ ने वतन को मअबूद बना लिया। इस हक़ीक़त को अल्लामा इक़बाल ने समझा है कि इस दौर का सबसे बड़ा बुत वतन है। उनकी नज़्म "वतनियत" मुलाहिज़ा कीजिये:

इस दौर में मय और है, जाम और है, जम और
साक़ी ने बिना की रविशे लुत्फ़ो सितम और
तहज़ीब के आज़र ने तरशवाये सनम और
मुस्लिम ने भी तामीर किया अपना हरम और
इन ताज़ा ख़ुदाओं में बड़ा सबसे वतन है
जो पैरहन इसका है वो मज़हब का कफ़न है!

अगली आयत में तमाम मअबूदाने बातिल की नफ़ी करके एक अल्लाह को अपना महबूब और मतलूबो मक़सूद बनाने की दावत दी गई है।

आयत 165

وَمِنَ النَّاسِ مَنۡ يَّتَّخِذُ مِنۡ دُوۡنِ اللّٰهِ اَنۡدَادًا	*"और लोगों में से कुछ ऐसे भी हैं जो अल्लाह को छोड़ कर कुछ और चीज़ों को उसका हमसर और मद्दे मुक़ाबिल बना देते हैं"*
يُّحِبُّوۡنَهُمۡ كَحُبِّ اللّٰهِ ؕ	*"वह उनसे ऐसी मुहब्बत करने लगते हैं जैसी अल्लाह से करनी चाहिये।"*

यह दरअसल एक फ़लसफ़ा है कि हर बाशऊर इंसान किसी शय को अपना आईडियल, नस्बुलऐन (लक्ष्य) या आदर्श ठहराता है और फिर उससे भरपूर मोहब्बत करता है, उसके लिये जीता है, उसके लिये मरता है, क़ुर्बानियाँ देता है, इसार (त्याग) करता है। चुनाँचे कोई क़ौम के लिये, कोई वतन के लिये, और कोई ख़ुद अपनी ज़ात के लिये क़ुर्बानी देता है। लेकिन बंदा-ए-मोमिन यह सारे काम अल्लाह के लिये करता है। वो अपना मतलूबो मक़सूद और महबूब सिर्फ़ अल्लाह को बनाता है। वह उसी के लिये जीता है, उसी के लिये मरता है: {قُلۡ اِنَّ صَلَاتِىۡ وَنُسُكِىۡ وَمَحۡيَاىَ وَمَمَاتِىۡ لِلّٰهِ رَبِّ الۡعٰلَمِيۡنَۙ ۝١٦٢} (अल् अनआम) "बेशक मेरी नमाज़, मेरी क़ुर्बानी, मेरा जीना और मेरा मरना अल्लाह ही के लिये है जो तमाम जहानों का परवरदिग़ार है।" इसके बरअक्स आम इंसानों का मामला यही होता है कि:

मी तराशद फ़िक्र मा हर दम ख़ुदा बंदे दीगर
रस्त अज़ यक बंद ता उफ़ताद दर बंदे दीगर

इंसान अपने ज़हन से मअबूद तराशता रहता है, उनसे मुहब्बत करता है और उनके लिये क़ुर्बानियाँ देता है। यह मज़मून सूरतुल हज के आख़री रुकूअ में ज़्यादा वज़ाहत के साथ आयेगा।

وَالَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡۤا اَشَدُّ حُبًّا لِّلّٰهِ ؕ

"और जो लोग वाक़िअतन साहिबे ईमान होते हैं उनकी शदीद तरीन मुहब्बत अल्लाह के साथ होती है।"

"ग़र यह नहीं तो बाबा फिर सब कहानियाँ है!" यह गोया लिट्मस टेस्ट है। कोई शय अगर अल्लाह से बढ़ कर महबूब हो गई तो वह तुम्हारी मअबूद है। तुमने अल्लाह को छोड़ कर उसको अपना मअबूद बना लिया, चाहे वह दौलत ही हो। हदीसे नबवी ﷺ है: ((تَعِسَ عَبۡدُ الدِّيۡنَارِ وَ عَبۡدُ الدِّرۡهَمِ))(19) "हलाक और बर्बाद हो जाये दिरहम व दीनार का बंदा।" नाम ख़्वाह अब्दुल रहमान हो, हक़ीक़त में वो अब्दुल दीनार है। इसलिये कि वह यह ख़्वाहिश रखता है कि दीनार आना चाहिये, ख़्वाह हराम से आये या हलाल से, जायज़ ज़राए से आये या नाजायज़ ज़राए से। चुनाँचे उसका मअबूद अल्लाह नहीं, दीनार है। हिन्दुओं ने लक्ष्मी देवी की मूर्ती बना कर उसे पूजना शुरू कर दिया कि यह लक्ष्मी देवी अगर ज़रा मेहरबान हो जायेगी तो दौलत की रेल-पेल हो जायेगी। हमने इस दरमियान वास्ते को भी हटा कर बराहे रास्त डॉलर और पेट्रो डॉलर को पूजना शुरू कर दिया और उसकी ख़ातिर अपने वतन और अपने माँ-बाप को छोड़ दिया। चुनाँचे यहाँ कितने ही लोग सिसक-सिसक कर मर

जाते हैं और आख़री लम्हात में उनका बेटा या बेटी उनके पास मौजूद नहीं होता बल्कि दियारे ग़ैर में डॉलर की पूजा में मसरूफ़ होता है।

وَلَوۡ یَرَی الَّذِیۡنَ ظَلَمُوۡۤا اِذۡ یَرَوۡنَ الۡعَذَابَ ۙ اَنَّ الۡقُوَّۃَ لِلّٰہِ جَمِیۡعًا ۙ

"और अगर यह ज़ालिम लोग उस वक़्त को देख लें जब यह देखेंगे अज़ाब को, तो (इन पर यह बात वाज़ेह हो जाएगी कि) क़ुव्वत तो सारी की सारी अल्लाह के पास है"

यहाँ ज़ुल्म शिर्क के मायने में आया है और ज़ालिम से मुराद मुशरिक हैं।

وَّ اَنَّ اللّٰہَ شَدِیۡدُ الۡعَذَابِ ﴿۱۶۵﴾

"और यह कि अल्लाह सज़ा देने में बहुत सख़्त है।"

उस वक़्त आँखे खुलेगी तो क्या फ़ायदा होगा? अब आँख खुले तो फ़ायदा है।

आयत 166

اِذۡ تَبَرَّاَ الَّذِیۡنَ اتُّبِعُوۡا مِنَ الَّذِیۡنَ اتَّبَعُوۡا

"उस वक़्त वह लोग जिनकी (दुनिया में) पैरवी की गई थी अपने पैरूओं से इज़हारे बराअत करेंगे"

हर इंसानी मआशरे में कुछ ऐसे लोग ज़रूर होते हैं जो दूसरे लोगों को अपने पीछे लगा लेते हैं, चाहे अरबाबे इक़्तदार हों चाहे मज़हबी मसनदों के वाली हों। लोग उन्हें अपने पेशवा और रहनुमा मान कर उनकी पैरवी करते हैं और

उनकी हर सच्ची-झूठी बात पर सरे तस्लीम ख़म करते हैं। जब अज़ाबे आख़िरत ज़ाहिर होगा तो यह पेशवा और रहनुमा अज़ाब से बचाने में अपने पैरूओं के कुछ भी काम ना आएँगे और उनसे साफ़-साफ़ इज़हारे बराअत और ऐलाने ला ताल्लुक़ी कर देंगे।

وَرَاَوُا الْعَذَابَ وَتَقَطَّعَتْ بِهِمُ الْاَسْبَابُ ﴿١٦٦﴾

"और वह अज़ाब से दो-चार होंगे और उनके तमाम ताल्लुक़ात मुन्क़तअ (अलग) हो जाएँगे।"

जब जहन्नम उनकी निगाहों के सामने आ जायेगी तो तमाम रिश्ते मुन्क़तअ हो जाएँगे। सूरह अबस में इस नफ़्सा-नफ़्सी का नक़्शा यूँ खींचा गया है:

يَوْمَ يَفِرُّ الْمَرْءُ مِنْ اَخِيْهِ ﴿٣٤﴾ وَاُمِّهٖ وَاَبِيْهِ ﴿٣٥﴾ وَصَاحِبَتِهٖ وَبَنِيْهِ ﴿٣٦﴾ لِكُلِّ امْرِئٍ مِّنْهُمْ يَوْمَىِٕذٍ شَاْنٌ يُّغْنِيْهِ ﴿٣٧﴾

"उस रोज़ आदमी भागेगा अपने भाई से, और अपनी माँ और अपने बाप से, और अपनी बीवी और अपनी औलाद से। उनमें से हर शख़्स पर उस दिन ऐसा वक़्त आ पड़ेगा कि उसे अपने सिवा किसी का होश ना होगा।"

इसी तरह सूरतुल मआरिज में फ़रमाया गया है:

يَوَدُّ الْمُجْرِمُ لَوْ يَفْتَدِيْ مِنْ عَذَابِ يَوْمِىِٕذٍۭ بِبَنِيْهِ ۝ وَصَاحِبَتِهٖ وَاَخِيْهِ ۝ وَفَصِيْلَتِهِ الَّتِيْ تُـْٔوِيْهِ ۝ وَمَنْ فِي الْاَرْضِ جَمِيْعًا ۙ ثُمَّ يُنْجِيْهِ ۝

"मुजरिम चाहेगा कि उस दिन के अज़ाब से बचने के लिये अपनी औलाद को, अपनी बीवी को, अपने भाई को, अपने क़रीब तरीन ख़ानदान को जो उसे पनाह देने वाला था, और रूए ज़मीन के सब इंसानों को फ़िदये में दे दे और यह तदबीर उसे निजात दिला दे।"

यहाँ फ़रमाया: {تَقَطَّعَتْ بِهِمُ الْاَسْبَابُ ۝} "उनके सारे रिश्ते मुन्क़तअ हो जाएँगे" यह लम्हा-ए-फ़िक्रिया है कि जिन रिश्तों की वजह से हम हराम को हलाल और हलाल को हराम कर रहे हैं, जिनकी दिलजोई के लिये हराम की कमाई करते हैं और जिनकी नाराज़गी के ख़ौफ़ से दीन के रास्ते पर आगे नहीं बढ़ रहे हैं, यह सारे रिश्ते इसी दुनिया तक महदूद हैं और उख़रवी ज़िन्दगी में यह कुछ काम ना आयेंगे।

आयत 167

وَقَالَ الَّذِيْنَ اتَّبَعُوْا لَوْ اَنَّ لَنَا كَرَّةً

"और जो उनके पैरोकार थे वह कहेंगे कि अगर कहीं हमें दुनिया

में एक बार लौटना नसीब हो जाए”

فَنَتَبَرَّاَ مِنْهُمْ كَمَا تَبَرَّءُوْا مِنَّا ۗ

“तो हम भी इनसे इसी तरह इज़हारे बराअत करेंगे जैसे आज यह हमसे बेज़ारी ज़ाहिर कर रहे हैं।”

كَذٰلِكَ يُرِيْهِمُ اللّٰهُ اَعْمَالَهُمْ حَسَرٰتٍ عَلَيْهِمْ ۭ

“इस तरह अल्लाह उनको उनके आमाल हसरतें बना कर दिखायेगा।”

वह कहेंगे काश हमने समझा होता, काश हमने इनकी पैरवी ना की होती, काश हमने इनको अपना लीडर और अपना हादी व रहनुमा ना माना होता!!

وَمَا هُمْ بِخٰرِجِيْنَ مِنَ النَّارِ ١٦٧

“लेकिन वह अब आग से निकलने वाले नहीं होंगे।”

अब उनको दोज़ख़ से निकलना नसीब नहीं होगा।

आयात 168 से 176 तक

يٰٓاَيُّهَا النَّاسُ كُلُوْا مِمَّا فِي الْاَرْضِ حَلٰلًا طَيِّبًا ڮ وَّلَا
تَتَّبِعُوْا خُطُوٰتِ الشَّيْطٰنِ ۭ اِنَّهٗ لَكُمْ عَدُوٌّ مُّبِيْنٌ ١٦٨
اِنَّمَا يَاْمُرُكُمْ بِالسُّوْۗءِ وَالْفَحْشَاۗءِ وَاَنْ تَقُوْلُوْا عَلَي
اللّٰهِ مَا لَا تَعْلَمُوْنَ ١٦٩ وَاِذَا قِيْلَ لَهُمُ اتَّبِعُوْا مَآ
اَنْزَلَ اللّٰهُ قَالُوْا بَلْ نَتَّبِعُ مَآ اَلْفَيْنَا عَلَيْهِ اٰبَاۗءَنَا ۭ
اَوَلَوْ كَانَ اٰبَاۗؤُھُمْ لَا يَعْقِلُوْنَ شَـيْـــًٔـا وَّلَا يَهْتَدُوْنَ
١٧٠ وَمَثَلُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا كَمَثَلِ الَّذِيْ يَنْعِقُ بِمَا لَا
يَسْمَعُ اِلَّا دُعَاۗءً وَّنِدَاۗءً ۭ صُمٌّۢ بُكْمٌ عُمْيٌ فَهُمْ لَا
يَعْقِلُوْنَ ١٧١ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُلُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا
رَزَقْنٰكُمْ وَاشْكُرُوْا لِلّٰهِ اِنْ كُنْتُمْ اِيَّاهُ تَعْبُدُوْنَ ١٧٢
اِنَّمَا حَرَّمَ عَلَيْكُمُ الْمَيْتَةَ وَالدَّمَ وَلَحْمَ الْخِنْزِيْرِ
وَمَآ اُهِلَّ بِهٖ لِغَيْرِ اللّٰهِ ۚ فَمَنِ اضْطُرَّ غَيْرَ بَاغٍ وَّلَا عَادٍ
فَلَآ اِثْمَ عَلَيْهِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ١٧٣ اِنَّ الَّذِيْنَ
يَكْتُمُوْنَ مَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ مِنَ الْكِتٰبِ وَيَشْتَرُوْنَ بِهٖ
ثَـمَنًا قَلِيْلًا ۙ اُولٰۗىِٕكَ مَا يَاْكُلُوْنَ فِيْ بُطُوْنِهِمْ اِلَّا النَّارَ

وَلَا يُكَلِّمُهُمُ اللّٰهُ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ وَلَا يُزَكِّيْهِمْ ۚۖ وَلَهُمْ
عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿١٧٤﴾ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ اشْتَرَوُا الضَّلٰلَةَ
بِالْهُدٰى وَالْعَذَابَ بِالْمَغْفِرَةِ ۚ فَمَآ اَصْبَرَهُمْ عَلَى
النَّارِ ﴿١٧٥﴾ ذٰلِكَ بِاَنَّ اللّٰهَ نَزَّلَ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ ۗ وَاِنَّ
الَّذِيْنَ اخْتَلَفُوْا فِى الْكِتٰبِ لَفِىْ شِقَاقٍ بَعِيْدٍ ﴿١٧٦﴾

आयत 168

يٰٓاَيُّهَا النَّاسُ كُلُوْا مِمَّا فِى الْاَرْضِ حَلٰلًا طَيِّبًا ۡۖ

"ऐ लोगों! ज़मीन में जो कुछ हलाल और तय्यब (पाकीज़ा) है उसे खाओ"

وَّلَا تَتَّبِعُوْا خُطُوٰتِ الشَّيْطٰنِ ۭ

"और शैतान के नक़्शे क़दम की पैरवी ना करो।"

اِنَّهٗ لَكُمْ عَدُوٌّ مُّبِيْنٌ ﴿١٦٨﴾

"यक़ीनन वह तुम्हारा खुला दुश्मन है।"

यह बहस दरअसल सूरतुल अनआम में ज़्यादा वज़ाहत से आयेगी। अरब में यह रिवाज़ था कि बुतों के नाम पर कोई जानवर छोड़ देते थे, जिसको ज़िबह करना वह हराम समझते थे। ऐसी रिवायात हिन्दुओं में भी थीं जिन्हें हमने बचपन में देखा है। मसलन कोई साँड छोड़ दिया, किसी के

कान चीर दिये कि यह फ़लाँ बुत के लिये या फ़लाँ देवी के लिये है। ऐसे जानवर जहाँ चाहे मुँह मारें, उन्हें कोई कुछ नहीं कह सकता था। ज़ाहिर है उनका गोश्त कैसे खाया जा सकता था! तो अरब में भी यह रिवाज थे और ज़हूरे इस्लाम के बाद भी उनके कुछ ना कुछ असरात अभी बाक़ी थे। आबा व अजदाद की रस्में जो क़रनों (सदियों) से चली आ रही हों वह आसानी से छुटती नहीं हैं, कुछ ना कुछ असरात रहते हैं। जैसे आज भी हमारे यहाँ हिन्दुआना असरात मौजूद हैं। तो ऐसे लोगों से कहा जा रहा है कि मुशरिकाना तोहमात की बुनियाद पर तुम्हारे मुशरिक बाप-दादा ने अगर कुछ चीज़ों को हराम ठहरा लिया था और कुछ को हलाल क़रार दे लिया था तो इसकी कोई हैसियत नहीं। तुम शैतान की पैरवी में मुशरिकाना तोहमात के तहत अल्लाह तआला की हलाल ठहराई हुई चीज़ों को हराम मत ठहराओ। जो चीज़ भी असलन हलाल और पाकीज़ा व तय्यब है उसे खाओ।

आयत 169

إِنَّمَا يَأْمُرُكُم بِالسُّوٓءِ وَالْفَحْشَآءِ

“वह (शैतान) तो बस तुम्हें बदी और बेहयाई का हुक्म देता है”

وَأَن تَقُولُوا عَلَى اللَّهِ مَا لَا تَعْلَمُونَ ﴿١٦٩﴾

“और इसका कि तुम अल्लाह की तरफ़ वह बातें मन्सूब करो जिनके बारे में तुम्हें कोई इल्म नहीं है।”

आयत 170

وَاِذَا قِيۡلَ لَهُمُ اتَّبِعُوۡا مَآ اَنۡزَلَ اللّٰهُ	*"और जब उनसे कहा जाता है कि पैरवी करो उसकी जो अल्लाह ने नाज़िल किया है"*
قَالُوۡا بَلۡ نَتَّبِعُ مَآ اَلۡفَيۡنَا عَلَيۡهِ اٰبَآءَنَا ؕ	*"वह जवाब में कहते हैं कि हम तो पैरवी करेंगे उस तरीक़े की जिस पर हमने अपने आबा व अजदाद को पाया है।"*
اَوَلَوۡ كَانَ اٰبَآؤُهُمۡ لَا يَعۡقِلُوۡنَ شَيۡـًٔا وَّلَا يَهۡتَدُوۡنَ ﴿۱۷۰﴾	*"अग़रचे उनके आबा व अजदाद ना किसी बात को समझ पाये हों और ना हिदायत याफ़्ता हुए हों (फिर भी वह अपने आबा व अजदाद ही की पैरवी करते रहेंगे?)"*

सूरतुल बक़रह के तीसरे रुकूअ की पहली आयत (जहाँ नौए इंसानी को ख़िताब करके इबादते रब की दावत दी गई) के ज़िमन में वज़ाहत की गई थी कि जो लोग तुमसे पहले गुज़र चुके हैं वह भी तो मख्लूक़ थे जैसे तुम मख्लूक़ हो, जैसे तुमसे ख़ता हो सकती है उनसे भी हुई, जैसे तुम ग़लती कर सकते हो उन्होंने भी की।

आयत 171

وَمَثَلُ الَّذِيْنَ كَفَرُوْا كَمَثَلِ الَّذِىْ يَنْعِقُ بِمَا لَا يَسْمَعُ اِلَّا دُعَاۤءً وَّنِدَاۤءً ؕ

"और उन लोगों की मिसाल जिन्होंने कुफ़्र किया, ऐसी है जैसे कोई शख़्स ऐसी चीज़ को पकारे जो पुकार और आवाज़ के सिवा कुछ ना समझती हो।"

जो लोग महज़ बाप-दादा की तक़लीद (नक़ल) में अपने कुफ़्र पर अड़ गये हैं उनकी तश्बीह (तुलना) जानवरों से दी गई है जिन्हें पुकारा जाये तो वह पुकारने वाले की पुकार और आवाज़ तो सुनते हैं, लेकिन सोचने-समझने की सलाहियत से बिल्कुल आरी (वंचित) होते हैं। तमसील (कहानी) से मुराद यह है कि रसूल अल्लाह ﷺ और मुसलमान उन लोगों को समझाने की कोशिश कर रहे हैं लेकिन वह इस दावत पर कान धरने को तैयार नहीं हैं।

صُمٌّۢ بُكْمٌ عُمْىٌ فَهُمْ لَا يَعْقِلُوْنَ ﴿١٧١﴾

"वो बहरे भी हैं, गूँगे भी हैं, अंधे भी हैं, पस वो अक़्ल से काम नहीं लेते।"

आयत 172

يَاَيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا كُلُوۡا مِنۡ طَيِّبٰتِ مَا رَزَقۡنٰكُمۡ

"ऐ अहले ईमान! खाओ उन तमाम पाकीज़ा चीज़ों में से जो हमने तुम्हें दी हैं"

وَاشۡكُرُوۡا لِلّٰهِ

"और अल्लाह का शुक्र अदा करो"

اِنۡ كُنۡتُمۡ اِيَّاهُ تَعۡبُدُوۡنَ ﴿١٧٢﴾

"अगर तुम वाक़िअतन उसी की इबादत करने वाले हो।"

जैसा कि मैंने अर्ज़ किया सूरतुल अनआम में यह सारी चीजें तफ़सील से आयेंगी।

आयत 173

اِنَّمَا حَرَّمَ عَلَيۡكُمُ الۡمَيۡتَةَ وَالدَّمَ

"उसने तो तुम पर यही हराम किया है, मुर्दार और ख़ून"

जो जानवर अपनी मौत आप मर गया, ज़िबह नहीं किया गया वह हराम है और ख़ून हराम है, नजिस (अशुद्ध) है। इसी लिये अहले इस्लाम का ज़िबह करने का तरीक़ा यह है कि सिर्फ़ गर्दन को काटा जाये, ताकि उसमें शरयानें (साँस की नली) वगैरह कट जायें और जिस्म का अक्सर ख़ून निकल जाये। लेकिन अगर झटका किया जाये, यानि तेज़ धार आले

(हथियार) के एक ही वार से जानवर की गर्दन अलग कर दी जाये, जैसे सिख़ करते हैं या जैसे यूरोप वग़ैरह में होता है, तो फिर ख़ून जिस्म के अंदर रह जाता है। इस तरीक़े से मारा गया जानवर हराम है।

وَلَحْمَ الْخِنْزِيْرِ

"और ख़न्ज़ीर का गोश्त"

وَمَآ اُهِلَّ بِهٖ لِغَيْرِ اللّٰهِ

"और जिस पर अल्लाह के सिवा किसी का नाम पुकारा गया हो।"

यानि किसी जानवर को ज़िबह करते हुए किसी बुत का, किसी देवी का, किसी देवता का, अल् ग़र्ज़ अल्लाह के सिवा किसी का भी नाम लिया गया तो वह हराम हो गया, उसका गोश्त ख़ाना हरामे मुत्लक़ (बिल्कुल हराम) है, लेकिन इसके ताबेअ (अधीन) यह सूरत भी है कि किसी बुज़ुर्ग का क़ुर्ब हासिल करने के लिये जानवर को उसके मज़ार पर ले जाकर वहाँ ज़िबह किया जाये, अग़रचे दावा यह हो कि यह साहिबे मज़ार के ईसाले सवाब की ख़ातिर अल्लाह तआला के लिये ज़िबह किया जा रहा है। इसलिये कि ईसाले सवाब के ख़ातिर तो यह अमल घर पर भी किया जा सकता है।

वह खाने जो अहले अरब में उस वक़्त राइज (प्रचलित) थे, अल्लाह तआला ने बुनियादी तौर पर उनमें से चार चीज़ों की हुरमत का क़ुरान हकीम में बार-बार ऐलान किया है। मक्की सूरतों में भी इन चीज़ों की हुरमत का मुतअद्दिद (कई) दो बार बयान हुआ है और यहाँ सूरतुल बक़रह में भी जो मदनी सूरत है। इसके बाद सूरतुल मायदा में यह मज़मून फिर आयेगा। इन चार चीज़ों की हुरमत के बयान से हलाल

व हराम की तफ़सील पेश करना हरगिज़ मक़सूद नहीं है, बल्कि मुशरिकीन की तरदीद (इन्कार) है।

فَمَنِ اضْطُرَّ غَيْرَ بَاغٍ وَّلَا عَادٍ فَلَآ اِثْمَ عَلَيْهِ ۭ

"फिर जो कोई मजबूर हो जाये और वह ख़्वाहिशमंद और हद से आगे बढ़ने वाला ना हो तो उस पर कोई गुनाह नहीं।"

अगर कोई शख़्स भूख से मजबूर हो गया है, जान निकल रही है और कोई शय खाने को नहीं है तो वह जान बचाने के लिये हरामकर्दा चीज़ भी खा सकता है। लेकिन इसके लिये दो शर्तें आयद (लागू) की गई हैं, एक तो वह उस हराम की तरफ़ रग़बत और मैलान ना रखता हो और दूसरे यह कि जान बचाने के लिये जो नागज़ीर मिक़्दार (ज़रूरी मात्रा) है उससे आगे ना बढ़े। इन दो शर्तों के साथ जान बचाने के लिये हराम चीज़ भी खाई जा सकती है।

اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ١٧٣

"यक़ीनन अल्लाह बख़्शने वाला, रहम करने वाला है।"

आयत 174

اِنَّ الَّذِيْنَ يَكْتُمُوْنَ مَآ اَنْزَلَ اللّٰهُ مِنَ الْكِتٰبِ وَيَشْتَرُوْنَ بِهٖ ثَـمَنًا قَلِيْلًا ۙ

"यक़ीनन वह लोग जो छुपाते हैं उसको जो अल्लाह ने नाज़िल किया है किताब में से और फ़रोख़्त करते हैं उसे बहुत हक़ीर सी कीमत पर"

यानि उसके एवज़ दुनियवी फ़ायदों की सूरत में हक़ीर क़ीमत क़ुबूल करते हैं।

أُولٰٓئِكَ مَا يَأْكُلُونَ فِىْ بُطُوْنِهِمْ اِلَّا النَّارَ

"यह लोग नहीं भर रहे अपने पेटों में मगर आग़"

وَلَا يُكَلِّمُهُمُ اللّٰهُ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ

"और अल्लाह इनसे कलाम नहीं करेगा क़यामत के दिन।"

وَلَا يُزَكِّيْهِمْ ۚ

"और ना इन्हें पाक करेगा।"

وَلَهُمْ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿١٧٤﴾

"और इनके लिये दर्दनाक अज़ाब है।"

आयत 175

أُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ اشْتَرَوُا الضَّلٰلَةَ بِالْهُدٰى

"यह हैं वह लोग जिन्होंने हिदायत देकर गुमराही ख़रीद ली है"

وَالْعَذَابَ بِالْمَغْفِرَةِ ۚ

"और (अल्लाह की) मग़फ़िरत हाथ से देकर अज़ाब ख़रीद लिया है।"

فَمَآ اَصۡبَرَهُمۡ عَلَى النَّارِ ﴿۱۷۵﴾

"तो यह किस क़द्र सब्र करने वाले हैं दोज़ख़ पर!"

इनका कितना हौसला है कि जहन्नम का अज़ाब बर्दाश्त करने के लिये तैयार हैं! उसके लिये किस तरह तैयारी कर रहे हैं!

आयत 176

ذٰلِكَ بِاَنَّ اللّٰهَ نَزَّلَ الۡكِتٰبَ بِالۡحَقِّ ؕ

"यह इसलिये कि अल्लाह ने तो किताब नाज़िल की हक़ के साथ।"

وَاِنَّ الَّذِيۡنَ اخۡتَلَفُوۡا فِى الۡكِتٰبِ لَفِىۡ شِقَاقٍۢ بَعِيۡدٍ ﴿۱۷۶﴾

"और यक़ीनन जिन लोगों ने किताब में इख़्तलाफ़ डाला वह ज़िद और मुख़ालफ़त में बहुत दूर निकल गये।"

जिन लोगों ने अल्लाह की किताब और शरीअत में इख़्तलाफ़ की पगडंडियाँ निकालीं वह ज़िद, हठधर्मी, शक़ावत (मुसीबत) और दुश्मनी में मुब्तला हो गये और इसमें बहुत दूर निकल गये। اعاذنا اللّٰہ من ذٰلِكَ!

आयात 177 से 182 तक

لَيْسَ الْبِرَّ اَنْ تُوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ قِبَلَ الْمَشْرِقِ
وَالْمَغْرِبِ وَلٰكِنَّ الْبِرَّ مَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ
وَالْمَلٰٓئِكَةِ وَالْكِتٰبِ وَالنَّبِيّٖنَ ۚ وَاٰتَى الْمَالَ عَلٰى حُبِّهٖ
ذَوِي الْقُرْبٰى وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنَ وَابْنَ السَّبِيْلِ ۙ
وَالسَّآئِلِيْنَ وَفِي الرِّقَابِ ۚ وَاَقَامَ الصَّلٰوةَ وَاٰتَى
الزَّكٰوةَ ۚ وَالْمُوْفُوْنَ بِعَهْدِهِمْ اِذَا عٰهَدُوْا ۚ وَالصّٰبِرِيْنَ
فِي الْبَاْسَآءِ وَالضَّرَّآءِ وَحِيْنَ الْبَاْسِ ؕ اُولٰٓئِكَ الَّذِيْنَ
صَدَقُوْا ؕ وَاُولٰٓئِكَ هُمُ الْمُتَّقُوْنَ ﴿١٧٧﴾ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ
اٰمَنُوْا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِصَاصُ فِي الْقَتْلٰى ؕ اَلْحُرُّ
بِالْحُرِّ وَالْعَبْدُ بِالْعَبْدِ وَالْاُنْثٰى بِالْاُنْثٰى ؕ فَمَنْ عُفِيَ لَهٗ
مِنْ اَخِيْهِ شَيْءٌ فَاتِّبَاعٌ ۢ بِالْمَعْرُوْفِ وَاَدَآءٌ اِلَيْهِ
بِاِحْسَانٍ ؕ ذٰلِكَ تَخْفِيْفٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَرَحْمَةٌ ؕ فَمَنِ
اعْتَدٰى بَعْدَ ذٰلِكَ فَلَهٗ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿١٧٨﴾ وَلَكُمْ فِي
الْقِصَاصِ حَيٰوةٌ يّٰٓاُولِي الْاَلْبَابِ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ
﴿١٧٩﴾ كُتِبَ عَلَيْكُمْ اِذَا حَضَرَ اَحَدَكُمُ الْمَوْتُ اِنْ

تَرَكَ خَيْرًا ۖۚ الْوَصِيَّةُ لِلْوَالِدَيْنِ وَالْاَقْرَبِيْنَ
بِالْمَعْرُوْفِ ۚ حَقًّا عَلَى الْمُتَّقِيْنَ ۝١٨٠ فَمَنْۢ بَدَّلَهٗ بَعْدَ
مَا سَمِعَهٗ فَاِنَّمَآ اِثْمُهٗ عَلَى الَّذِيْنَ يُبَدِّلُوْنَهٗ ۭ اِنَّ اللّٰهَ
سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝١٨١ۭ فَمَنْ خَافَ مِنْ مُّوْصٍ جَنَفًا اَوْ اِثْمًا
فَاَصْلَحَ بَيْنَهُمْ فَلَآ اِثْمَ عَلَيْهِ ۭ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝١٨٢ۧ

जैसा कि अर्ज़ किया जा चुका है, इस सूरह मुबारका में कई ऐसी अज़ीम आयतें आई हैं जो हज्म के ऐतबार से भी और मायने व हिकमत के ऐतबार से भी बहुत अज़ीम हैं, जैसे दो रुकूअ पहले "आयतुल आयात" गुज़र चुकी है। इसी तरह से अब यह "आयतुल बिर्र" आ रही है, जिसमें नेकी की हक़ीक़त वाज़ेह की गई है। लोगों के ज़हनों में नेकी के मुख़्तलिफ़ तसव्वुरात होते हैं। हमारे यहाँ एक तबक़ा वह है जिसका नेकी का तसव्वुर यह है कि बस सच बोलना चाहिये, किसी को धोखा नहीं देना चाहिये, किसी का हक़ नहीं मारना चाहिये, यह नेकी है, बाक़ी कोई नमाज़ रोज़े की पाबंदी करे या ना करे, इससे क्या फ़र्क़ पड़ता है! एक तबक़ा वह है जिसमें चोर उचक्के, गिरोह कट, डाकू और बदमाश शामिल हैं। उनमें बहुत से लोग ऐसे हैं जो यतीमों और बेवाओं की मदद भी करते हैं और यह काम उनके यहाँ नेकी शुमार होते हैं। यहाँ तक कि जिस्मफ़रोश ख्वातीन भी अपने यहाँ नेकी का एक तसव्वुर रखती है, वह ख़ैरात भी करती हैं और मस्जिदें भी तामीर कराती हैं। हमारे यहाँ

मज़हबी तबक़ात में एक तबक़ा वह है जो मज़हब के ज़ाहिर को लेकर बैठ जाता है और वह उसकी रूह से नाआशना (अन्जान) होता है। उनका हाल यह होता है कि "मच्छर छानते हैं और समूचे ऊँट निगल जाते हैं।" उनके इख़्तलाफ़ात इस नौइयत (स्वभाव) के होते हैं कि रफ़ा यदैन के बग़ैर नमाज़ हुई या नहीं? तरावीह आठ हैं या बीस हैं? बाक़ी यह कि सूदी कारोबार तुम भी करो और हम भी, इससे किसी की हन्फ़ियत या अहले हदीसियत पर कोई आँच नहीं आयेगी। नेकी के यह सारे तसव्वुरात मस्ख़शुदा (perverted) हैं। इसकी मिसाल ऐसी है जैसे अंधों ने एक हाथी को देख कर अंदाज़ा करना चाहा था कि वह कैसा है। किसी ने उसके पैर को टटोल कर कहा कि यह तो सतून की मांनिन्द है, जिसका हाथ उसके कान पर पड़ गया उसने कहा यह छाज की तरह है। इसी तरह हमारे यहाँ नेकी का तसव्वुर तक़सीम होकर रह गया है। बक़ौल इक़बाल:

उड़ाये कुछ वर्क़ लाले ने, कुछ नर्गिस ने, कुछ गुल ने
चमन में हर तरफ़ बिखरी हुई है दास्ताँ मेरी!

यह आयत इस ऐतबार से क़ुरान मजीद की अज़ीम तरीन आयत है कि नेकी की हक़ीक़त क्या है, इसकी जड़ बुनियाद क्या है, इसकी रूह क्या है, इसके मज़ाहिर क्या हैं? फिर इन मज़ाहिर में अहमतरीन कौनसे है और सानवी हैसियत किनकी है? चुनाँचे इस एक आयत की रोशनी में क़ुरान के इल्मुल अख्लाक़ पर एक जामेअ किताब तसनीफ़ की जा सकती है। गोया अख़्लाक़ियाते क़ुरानी (Quranic Ethics) के लिये यह आयत जड़ और बुनियाद है। लेकिन यह समझ लीजिये कि यह आयत यहाँ क्योंकर आई है। इसके पसमंज़र

में भी वही तहवीले क़िब्ला है। तहवीले क़िब्ला के बारे में चार रुकूअ (15 से 18) तो मुसलसल हैं। इससे पहले चौदहवें रुकूअ में आयत आयी है: {وَلِلّٰهِ الْمَشْرِقُ وَالْمَغْرِبُ فَاَيْنَمَا تُوَلُّوْا فَثَمَّ وَجْهُ اللّٰهِ} (आयत:115) इधर भी अट्ठारहवें रुकूअ के बाद इतनी आयतें छोड़ कर यह आयत आ रही है। फ़रमाया:

आयत 177

لَيْسَ الْبِرَّ اَنْ تُوَلُّوْا وُجُوْهَكُمْ قِبَلَ الْمَشْرِقِ وَالْمَغْرِبِ

"नेकी यही नहीं है कि तुम अपने चेहरे मशरिक़ और मग़रिब की तरफ़ फेर दो"

इस अमल के नेकी होने की नफ़ी नहीं की गई। यह नहीं कहा गया कि यह कोई नेकी ही नहीं है। यह भी नेकी है। नेकी का जो ज़ाहिर है वह भी नेकी है, लेकिन असल शय इसका बातिन है। अगर बातिन सही है तो हक़ीक़त में नेकी नेकी है वरना नहीं।

وَلٰكِنَّ الْبِرَّ

"बल्कि नेकी तो उसकी है"

مَنْ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ وَالْمَلٰۗىِٕكَةِ وَالْكِتٰبِ وَالنَّبِيّٖنَ ۚ

“जो ईमान लाये अल्लाह पर, यौमे आख़िरत पर, फ़रिश्तों पर, किताब पर और नबियों पर।”

सबसे पहले नेकी की जड़ बुनियाद बयान कर दी गयी कि यह ईमान है, ताकि तसहीहे नीयत (नीयत का सुधार) हो जाये। ईमानियात में सबसे पहले अल्लाह पर ईमान है यानि जो नेकी कर रहा है वह सिर्फ़ अल्लाह से अज्र का तालिब है। फिर क़यामत के दिन पर ईमान का ज़िक्र हुआ कि इस नेकी का अज्र दुनिया में नहीं बल्कि आख़िरत में मतलूब है। वरना तो यह सौदागरी हो गई। और आदमी अगर सौदागरी और दुकानदारी करे तो दुनिया की चीज़ें बेचे, दीन तो ना बेचे। दीन का काम कर रहा है तो उसके लिये सिवाय उख़रवी निजात के और अल्लाह की रज़ा के कोई और शय मक़सूद ना हो। यौमे आख़िरत के बाद फ़रिश्तों, किताबों और अम्बिया (अलैहिमुस्सलाम) पर ईमान का ज़िक्र किया गया। यह तीनों मिल कर एक यूनिट बनते हैं। फ़रिश्ता वही की सूरत में किताब लेकर आया, जो अम्बिया-ए-किराम (अलै०) पर नाज़िल हुई। ईमान बिल् रिसालत का ताल्लुक़ नेकी के साथ यह है कि नेकी का एक मुजस्समा, एक मॉडल, एक आइडियल “उस्वा-ए-रसूल” की सूरत में इंसानो के सामने रहे। ऐसा ना हो कि ऊँच-नीच हो जाये। नेकियों के मामले में भी ऐसा होता है कि कोई जज़्बात में एक तरफ़ को निकल गया और कोई दूसरी तरफ़ को निकल गया। इस गुमराही से बचने की एक ही शक्ल है कि एक मुकम्मल

उस्वा सामने रहे, जिसमें तमाम चीज़ें मौत्दल (मर्यादित) हों और वह उस्वा हमारे लिए मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की शख़्सियत है। नेकी के ज़ाहिर के लिये हम आप ﷺ ही को मैयार (कसौटी) समझेगें। जो शय जितनी आप ﷺ की सीरत में है, उससे ज़्यादा ना हो और उससे कम ना हो। कोशिश यह हो कि इंसान बिल्कुल रसूल अल्लाह ﷺ के उस्वा-ए-कामिला की पैरवी करे।

وَاٰتَى الْمَالَ عَلٰى حُبِّهٖ

"और वह ख़र्च करें माल उसकी मुहब्बत के बावजूद"

यानि माल की मुहब्बत के अललरग्म (बावजूद)। "عَلٰى حُبِّهٖ" में ज़मीर मुत्तसिल अल्लाह के लिये नहीं है बल्कि माल के लिये है। माल अग़रचे महबूब है, फिर भी वह ख़र्च कर रहा है।

ذَوِي الْقُرْبٰى وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنَ وَابْنَ السَّبِيْلِ ۙ وَالسَّاۗىِٕلِيْنَ وَفِي الرِّقَابِ ۚ

"क़राबतदारों, यतीमों, मोहताजों, मसाफ़िरों और माँगने वालों पर और गर्दनों के छुड़ाने में।"

गोया नेकी के मज़ाहिर में अव्वलीन मज़हर इंसानी हमदर्दी है। अगर यह नहीं है तो नेकी का वुजूद नहीं है। इबादात के अम्बार लगे हों मगर दिल में शक़ावत (क्लेश) हो, इंसान को हाजत में देख कर दिल ना पसीजे, किसी को तकलीफ़ में देख कर तिजोरी की तरफ़ हाथ ना बढ़े, हालाँकि तिजोरी में

माल मौजूद हो, तो यह तर्ज़े अमल दीन की रूह से बिल्कुल खाली है। सूरह आले इमरान (आयत:92) में अल्फ़ाज़ आये हैं: {لَنْ تَنَالُوا الْبِرَّ حَتّٰى تُنْفِقُوْا مِمَّا تُحِبُّوْنَ} "तुम नेकी के मक़ाम को पहुँच ही नहीं सकते जब तक कि ख़र्च ना करो उसमें से जो तुम्हें महबूब है।" यह नहीं कि जिस शय से तबियत उकता गई हो, जो कपड़े बोसीदा (फटे-पुराने) हो गये हों वह किसी को देकर हातिम ताई की क़ब्र पर लात मार दी जाये। जो शय ख़ुद को पसंद हो, अज़ीज़ हो, अगर उसमें से नहीं देते तो तुम नेकी को पहुँच ही नहीं सकते।

وَاَقَامَ الصَّلٰوةَ وَاٰتَى الزَّكٰوةَ *"और क़ायम करे नमाज़ और अदा करे ज़कात।"*

हिकमते दीन मुलाहिज़ा कीजिये कि नमाज़ और ज़कात का ज़िक्र ईमान और इंसानी हमदर्दी के बाद आया है। इसलिये कि रूहे दीन "ईमान" है और नेकी के मज़ाहिर में से मज़हरे अव्वल इंसानी हमदर्दी है। यह भी नोट कीजिये कि यहाँ "ज़कात" का अलैहदा ज़िक्र किया गया है, जबकि इससे क़ब्ल ईताए माल का ज़िक्र हो चुका है। रसूल अल्लाह ﷺ ने इर्शाद फ़रमाया:

((اِنَّ فِی الْمَالِ لَحَقًّا سِوَی الزَّکَاۃِ))[20] *"यक़ीनन माल में ज़कात के अलावा भी हक़ है।"*

यानि अगर कुछ लोगों ने यह समझा है कि बस हमने अपने माल में से ज़कात निकाल दी तो पूरा हक़ अदा हो गया, तो

यह उन ख़ाम ख़्याली है, माल में ज़कात के सिवा भी हक़ है। और आप ﷺ ने यही मज़कूरा बाला आयत पढ़ी।

ईमान और इंसानी हमदर्दी के बाद नमाज़ और ज़कात का ज़िक्र करने की हिकमत यह है कि ईमान को तरोताज़ा रखने के लिये नमाज़ है। अज़रूए अल्फ़ाज़े क़ुरानी: {اَقِمِ الصَّلٰوةَ لِذِكْرِيْ ⑭} (ताहा) "नमाज़ क़ायम करो मेरी याद के लिये।" और इंसानी हमदर्दी में माल ख़र्च करने के जज़्बे को परवान चढ़ाने और बरक़रार रखने के लिये ज़कात है कि इतना तो कम से कम देना होगा, ताकि बोतल का मुँह तो खुले। अगर बोतल का कॉर्क निकल जायेगा तो उम्मीद है कि उसमें से कोई शर्बत और भी निकल आयेगा। चुनाँचे ढ़ाई फ़ीसद तो फ़र्ज़ ज़कात है। जो यह भी नहीं देता वह मज़ीद क्या देगा?

وَالْمُوْفُوْنَ بِعَهْدِهِمْ اِذَا عٰهَدُوْا ۚ

"और जो पूरा करने वाले हैं अपने अहद को जब कोई अहद कर लें।"

इंसान ने सबसे बड़ा अहद अपने परवरदिग़ार से किया था जो "अहदे अलस्त" कहलाता है, फिर शरीअत का अहद है जो हमने अल्लाह के साथ कर रखा है। फिर आपस में जो भी मुआहिदे हों उनका पूरा करना भी ज़रूरी है। मामलाते इंसानी सारे के सारे मुआहिदात की शक्ल में हैं। शादी भी शौहर और बीवी के माबैन एक समाजी मुआहिदा (social contract) है। शौहर की भी कुछ ज़िम्मेदारियाँ और फ़राइज़ हैं और बीवी की भी कुछ ज़िम्मेदारियाँ और

फ़राइज़ हैं। शौहर के बीवी पर हुक़ूक़ हैं, बीवी के शौहर पर हुक़ूक़ हैं। फिर आजर और मुस्तआजर (employer & employee) का जो बाहमी ताल्लुक़ है वह भी एक मुआहिदा है। तमाम बड़े-बड़े कारोबार मुआहिदों पर ही चलते हैं। फिर हमारा जो सियासी निज़ाम है वह भी मुआहिदों पर मब्नी है। तो अगर लोगों में एक चीज़ पैदा हो जाये कि जो अहद कर लिया है उसे पूरा करना है तो तमाम मामलात सुधर जाएँगे, उनकी stream lining हो जायेगी।

وَالصّٰبِرِيْنَ فِي الْبَاْسَاۗءِ وَالضَّرَّاۗءِ وَحِيْنَ الْبَاْسِ ۭ

"और ख़ासतौर पर सब्र करने वाले फ़क़रो फ़ाक़ा में, तकालीफ़ में और जंग की हालत में।"

यह नेकी बुद्धमत के भिक्षुओं की नेकी से मुख़्तलिफ़ है। यह नेकी बातिल को चैलेंज करती है। यह नेकी ख़ानक़ाओं तक महदूद नहीं होती, सिर्फ़ इन्फ़रादी सतह तक महदूद नहीं रहती, बल्कि अल्लाह को जो नेकी मतलूब है वह यह है कि अब बातिल का सर कुचलने के लिये मैदान में आओ। और जब बातिल का सर कुचलने के लिये मैदान में आओगे तो ख़ुद भी तकलीफ़ें उठानी पड़ेंगी। इस राह में सहाबा किराम रज़ि० को भी तकलीफ़ें उठानी पड़ी हैं और जाने देनी पड़ी हैं। अल्लाह का कलमा सरबुलंद करने के लिये सैकड़ों सहाबा किराम रज़ि० ने जामे शहादत नौश किया (पिया) है। दुनिया के हर निज़ामे अख़्लाक़ में "खैरे आला" (summum bonum) का एक तसव्वुर होता है कि सबसे ऊँची नेकी क्या है! क़ुरान की रू से सबसे आला नेकी यह है कि हक़ के

ग़लबे के लिये, सदाक़त, दियानत और अमानत की बालादस्ती के लिये अपनी गर्दन कटा दी जाये। वह आयत याद कर लीजिये जो चंद रुकूअ पहले हम पढ़ चुके हैं: {وَلَا تَقُوۡلُوۡا لِمَنۡ یُّقۡتَلُ فِیۡ سَبِیۡلِ اللّٰہِ اَمۡوَاتٌؕ بَلۡ اَحۡیَآءٌ وَّلٰکِنۡ لَّا تَشۡعُرُوۡنَ﴿۱۵۴﴾} "और जो अल्लाह की राह में क़त्ल किये जाएँ (जामे शहादत नौश कर लें) उन्हें मुर्दा मत कहो, बल्कि वह ज़िन्दा हैं लेकिन तुम्हें (उनकी ज़िन्दगी का) शऊर हासिल नहीं है।"

اُولٰٓئِکَ الَّذِیۡنَ صَدَقُوۡا ؕ

"यह हैं वह लोग हैं सच्चे हैं।"

रास्तबाज़ी (धार्मिकता) और नेकोकारी का दावा तो बहुत सों को है, लेकिन यह वह लोग हैं जो अपने दावे में सच्चे हैं।

وَاُولٰٓئِکَ هُمُ الۡمُتَّقُوۡنَ ﴿۱۷۷﴾

"और यही हक़ीक़त में मुत्तक़ी हैं।"

हमारे ज़हनों में नेकी और तक़वा के कुछ और नक़्शे बैठे हुए हैं कि शायद तक़वा किसी मख़्सूस लिबास और ख़ास वज़अ-क़तअ (प्रारूप) का नाम है। यहाँ क़ुरान हकीम ने नेकी और तक़वा की हामिल इंसानी शख़्सियत का एक ह्यूला (ढाँचा) और उसके किरदार का पूरा नक़्शा खींच दिया है कि उसके बातिन में रूहे ईमान मौजूद है और ख़ारिज में इस तरतीब के साथ दीन के यह तक़ाज़े और नेकी के यह मज़ाहिर मौजूद हैं।

اَللّٰھُمَّ رَبَّنَا اجْعَلْنَا مِنْھُمْ! اَللّٰھُمَّ رَبَّنَا اجْعَلْنَا مِنْھُمْ!! (آمین یا ربّ العالمین)

इसके बाद वही जो इंसानी मामलात हैं उन पर बहस चलेगी। सूरतुल बक़रह के निस्फ़े सानी के मज़ामीन के बारे में यह बात अर्ज़ की जा चुकी है कि यह गोया चार लड़ियों पर मुश्तमिल हैं, जिनमें से दो लड़ियाँ इबादात और अहकाम व शराए की है।

आयत 178

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِصَاصُ فِي الْقَتْلٰى ۭ

"ऐ अहले ईमान! तुम पर लाज़िम कर दिया गया है कि मक़तूलों का बदला लेना।"

قَتْلٰى "قَتِيْلٌ" की जमा है जिसके मायने मक़तूल के हैं। "كُتِبَ" के बाद "عَلٰى" फ़र्ज़ियत के लिये आता है, यानि तुम पर यह फ़र्ज़ कर दिया गया है, इस मामले में सहल अंगारी सही नहीं है। जब किसी मआशरे में इंसान का ख़ून बहाना आम हो जाये तो तमद्दुन (सभ्यता) की जड़ कट जायेगी, लिहाज़ा क़िसास तुम पर वाजिब है।

اَلْحُرُّ بِالْحُرِّ

"आज़ाद आज़ाद के बदले"

अग़र किसी आज़ाद आदमी ने क़त्ल किया है तो क़िसास में वह आज़ाद ही क़त्ल होगा। यह नहीं कि वह कह दे मेरा ग़ुलाम ले जाओ, या मेरी जगह मेरे दो ग़ुलाम ले जाकर क़त्ल कर दो।

وَالْعَبْدُ بِالْعَبْدِ

"और ग़ुलाम ग़ुलाम के बदले"

अगर ग़ुलाम क़ातिल है तो वह ग़ुलाम ही क़त्ल किया जायेगा।

وَالْاُنْثٰى بِالْاُنْثٰى ؕ

"और औरत औरत के बदले।"

अगर क़त्ल करने वाली औरत है तो वह औरत ही क़त्ल होगी। क़िसास व देयत के मामले में इस्लाम से पहले अरब में मुख़्तलफ़ मैयारात (मापदण्ड) क़ायम थे। मसलन अगर औसी ख़ज़रजी को क़त्ल कर दें तो तीन गुना ख़ून बहा वसूल किया जायेगा और अगर ख़ज़रजी औसी को क़त्ल करे तो एक तिहाई ख़ून बहा अदा किया जायेगा। यह उनका क़ानून था। इसी तरह आज़ाद और ग़ुलाम में भी फ़र्क़ रवा रखा जाता था। लेकिन शरीअते इस्लामी ने इस ज़िमन में कामिल मुसावात (बराबरी) क़ायम की और ज़माना-ए-जाहिलियत की हर तरह की अदमे मुसावात का ख़ात्मा कर दिया। इस बारे में इमाम अबू हनीफ़ा रहि० का क़ौल यही है कि तमाम मुसलमान आपस में "कुफ़ु" (बराबर) हैं, लिहाज़ा क़त्ल के मुक़दमात में कोई फ़र्क़ नहीं किया जायेगा।

فَمَنْ عُفِيَ لَهٗ مِنْ اَخِيْهِ شَيْءٌ

"फिर जिसको माफ़ कर दिया जाये कोई शय उसके भाई की जानिब से"

यानि मक़तूल के वुरसा अगर क़ातिल को कुछ रिआयत दे दें कि हम इसकी जान बख्शी करने को तैयार हैं, चाहे वह ख़ून बहा ले लें, चाहे वैसे ही माफ़ कर दें, तो जो भी ख़ून बहा तय हुआ हो उसके बारे में इर्शाद हुआ:

فَاتِّبَاعٌۢ بِالْمَعْرُوْفِ وَاَدَاۗءٌ اِلَيْهِ بِاِحْسَانٍ ۭ

"तो (उसकी) पैरवी की जाये मारूफ़ तरीक़े पर और अदायगी की जाये ख़ूबसूरती के साथ।"

ذٰلِكَ تَخْفِيْفٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَرَحْمَةٌ ۭ

"यह तुम्हारे रब की तरफ़ से एक तख्फ़ीफ़ (छूट) व रहमत है।"

इसका रहमत होना बहुत वाज़ेह है। अगर यह शक्ल ना हो तो फिर क़त्ल दर क़त्ल का सिलसिला जारी रहता है। लेकिन अगर क़ातिल को लाकर मक़तूल के वुरसा के सामने खड़ा कर दिया जाये कि अब तुम्हारे हाथ में इसकी जान है, तुम चाहो तो इसको क़त्ल कर दिया जायेगा, और अगर तुम अहसान करना चाहो, इसकी जान बख़्शी करना चाहो तो तुम्हें इख़्तियार हासिल है। चाहो तो वैसे ही बख़्श दो, चाहो तो ख़ून बहा ले लो। इससे यह होता है कि दुश्मनों का दायरा सिमट जाता है, बढ़ता नहीं है। इसमें अल्लाह की तरफ़ से बड़ी रहमत है। इस्लामी मआशरे में क़ातिल की गिरफ़्तारी

और क़िसास की तन्फ़ीज़ (परिपालन) हुकूमत की ज़िम्मेदारी होती है, लेकिन इसमें मुद्दई रियासत नहीं होती। आज-कल हमारे निज़ाम में ग़लती यह है कि रियासत ही मुद्दई बन जाती है, हालाँकि मुद्दई तो मक़तूल के वुरसा हैं। इस्लामी निज़ाम में किसी सदर या वज़ीरे आज़म को इख़्तियार नहीं है कि किसी क़ातिल को माफ़ कर दे। क़ातिल को माफ़ करने का इख़्तियार सिर्फ़ मक़तूल के वारिसों को है। लेकिन हमारे मुल्की दस्तूर की रू से सदरे ममलकत को सज़ा-ए-मौत माफ़ करने का हक़ दिया गया है।

فَمَنِ اعْتَدٰى بَعْدَ ذٰلِكَ فَلَهٗ عَذَابٌ اَلِيْمٌ ﴿١٧٨﴾

"तो इसके बाद भी जो हद से तजावुज़ करेगा तो उसके लिये दर्दनाक अज़ाब है।"

यानि जो लोग इस रिआयत से फ़ायदा उठाने के बाद ज़ुल्म व ज़्यादती का तरीका अपनाएँगे उनके लिये आख़िरत में दर्दनाक अज़ाब है।

आयत 179

وَلَكُمْ فِي الْقِصَاصِ حَيٰوةٌ يّٰٓاُولِي الْاَلْبَابِ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ﴿١٧٩﴾

"और ऐ होशमंदों! तुम्हारे लिये क़िसास में ज़िन्दगी है, ताकि तुम बच सको।"

मआशरती ज़िन्दगी में अफ़व व दरग़ुज़र अग़रचे एक अच्छी क़दर है और इस्लाम इसकी तालीम देता है:

{وَاِنۡ تَعۡفُوۡا وَتَصۡفَحُوۡا وَتَغۡفِرُوۡا فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوۡرٌ رَّحِيۡمٌ ﴿۱۴﴾ }

(तग़ाबुन:14) "और अगर तुम माफ़ कर दिया करो और चश्मपोशी (अनदेखी) से काम लो और बख़्श दिया करो तो बेशक अल्लाह भी बख़्शने वाला, रहम करने वाला है। लेकिन क़त्ल के मुक़दमात में सहल अंगारी और चश्मपोशी को क़िसास की राह में हाइल नहीं होने देना चाहिये, बल्कि शिद्दत के साथ पैरवी होनी चाहिये, ताकि इसके आगे क़त्ल का सिलसिला बंद हो। आयत के आख़िर में फ़रमाया: {} "ताकि तुम बच सको।" यानि अल्लाह की हुदूद की ख़िलाफ़ वर्ज़ी और एक-दूसरे पर ज़ुल्म व तअद्दी (दुश्मनी) से बचो।

आयत 180

كُتِبَ عَلَيۡكُمۡ اِذَا حَضَرَ اَحَدَكُمُ الۡمَوۡتُ اِنۡ تَرَكَ خَيۡرَا ۖۚ اۨلۡوَصِيَّةُ لِلۡوَالِدَيۡنِ وَالۡاَقۡرَبِيۡنَ بِالۡمَعۡرُوۡفِ ۚ

"जब तुममें से किसी की मौत का वक़्त आ पहुँचे और वह कुछ माल छोड़ रहा हो तो तुम पर फ़र्ज़ कर दिया गया है वालिदैन और रिश्तेदारों के हक़ में इंसाफ़ के साथ वसीयत करना।"

अभी क़ानूने विरासत नाज़िल नहीं हुआ था, इस ज़िमन में यह इब्तदाई क़दम उठाया गया। दौरे जाहिलियत में विरासत की तक़सीम इस तरह होती थी, जैसे आज भी हिन्दुओं में होती है, कि मरने वाले की सारी जायदाद का

मालिक बड़ा बेटा बन जाता था। उसकी बीवी, बेटियाँ, हत्ता कि दूसरे बेटे भी विरासत से महरूम रहते। चुनाँचे यहाँ विरासत के बारे में पहला हुक्म दिया गया कि मरने वाला वालिदैन और अक़रबाअ (रिश्तेदारों) के बारे में वसीयत कर जाये ताकि उनके हुक़ूक़ का तहफ्फ़ुज़ हो सके। फिर जब सूरह अल् निसा में पूरा क़ानूने विरासत आ गया तो अब यह आयत मन्सूख़ शुमार होती है। अलबत्ता इसके एक ज़ुज़्व को रसूल अल्लाह ﷺ ने बाक़ी रखा है कि मरने वाला अपने एक तिहाई माल के बारे में वसीयत कर सकता है, इससे ज़्यादा नहीं, और यह कि जिस शख़्स का विरासत में हक़ मुक़र्रर हो चुका है, उसके लिये वसीयत नहीं होगी। वसीयत ग़ैर वारिस के लिये होगी। मरने वाला किसी यतीम को, किसी बेवा को, किसी यतीमख़ाने को या किसी दीनी इदारे को अपनी विरासत में से कुछ देना चाहे तो उसे हक़ हासिल है कि एक तिहाई की वसीयत कर दे। बाक़ी दो तिहाई में लाज़िमी तौर पर क़ानूनी विरासत की तन्फ़ीज़ होगी।

حَقًّا عَلَى الْمُتَّقِيْنَ ۝١٨٠

"अल्लाह तआला का तक़वा रखने वालों पर यह हक़ है।"

उन पर वाजिब और ज़रुरी है कि वह वसीयत कर जाएँ कि हमारे वालिदैन को यह मिल जाये, फलाँ रिश्तेदार को यह मिल जाये, बाक़ी जो भी वुरसा हैं उनके हिस्से में यह आ जाये।

आयत 181

فَمَنۢ بَدَّلَهٗ بَعۡدَ مَا سَمِعَهٗ

"तो जिसने बदल दिया इस वसीयत को इसके बाद कि इसको सुना था"

فَاِنَّمَاۤ اِثۡمُهٗ عَلَى الَّذِيۡنَ يُبَدِّلُوۡنَهٗ ؕ

"तो इसका गुनाह उन्हीं पर आयेगा जो इसे तब्दील करते हैं।"

वसीयत करने वाला उनके इस गुनाह से बरी है, उसने तो सही वसीयत की थी। अगर गवाहों ने बाद में वसीयत में तहरीफ़ और तब्दीली की तो उसका बवाल और उसका बोझ उन्हीं पर आयेगा।

اِنَّ اللّٰهَ سَمِيۡعٌ عَلِيۡمٌ ؕ ﴿۱۸۱﴾

"यक़ीनन अल्लाह तआला सब कुछ सुनने वाला (और) जानने वाला है।"

आयत 182

فَمَنۡ خَافَ مِنۡ مُّوۡصٍ جَنَفًا اَوۡ اِثۡمًا

"फिर जिसको अंदेशा हो किसी वसीयत करने वाले की तरफ़ से जानिब दारी या हक़तल्फ़ी का"

अगर किसी को यह अंदेशा हो और दयानतदारी (ईमानदारी) के साथ उसकी यह राय हो कि वसीयत करने वाले ने ठीक वसीयत नहीं की, बल्कि बेजा (गलत) जानिबदारी का मुज़ाहिरा किया है या किसी की हक़तल्फ़ी करके गुनाह कमाया है।

فَاَصۡلَحَ بَيۡنَهُمۡ

"और वह उनके माबैन सुलह करा दे"

इस तरह के अंदेशे के बाद किसी ने व़ुरसा को जमा किया और उनसे कहा कि देखो, इनकी वसीयत तो यह थी, लेकिन इसमें यह ज़्यादती वाली बात है, अगर तुम लोग मुत्तफ़िक़ हो जाओ तो इसमें इतनी तब्दीली कर दी जाये।

فَلَاۤ اِثۡمَ عَلَيۡهِ‌ؕ

"तो उस पर कोई गुनाह नहीं है।"

यानि ऐसी बात नहीं है कि इस वसीयत को ऐसा तक़द्दुस हासिल हो गया कि अब इसमें कोई तब्दीली नहीं हो सकती, बल्कि बाहमी मशवरे से और इस्लाह के जज़्बे से वसीयत में तगय्युर (बदलाव) व तब्दील हो सकता है।

اِنَّ اللّٰهَ غَفُوۡرٌ رَّحِيۡمٌ ۝١٨٢

"यक़ीनन अल्लाह तआला बख़्शने वाला रहम फ़रमाने वाला है।"

आयात 183 से 188 तक

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا كُتِبَ عَلَيۡکُمُ الصِّيَامُ کَمَا
كُتِبَ عَلَى الَّذِيۡنَ مِنۡ قَبۡلِکُمۡ لَعَلَّكُمۡ تَتَّقُوۡنَۙ ۝١٨٣
اَيَّامًا مَّعۡدُوۡدٰتٍؕ فَمَنۡ كَانَ مِنۡكُمۡ مَّرِيۡضًا اَوۡ عَلٰى
سَفَرٍ فَعِدَّةٌ مِّنۡ اَيَّامٍ اُخَرَ‌ؕ وَعَلَى الَّذِيۡنَ يُطِيۡقُوۡنَهٗ
فِدۡيَةٌ طَعَامُ مِسۡكِيۡنٍؕ فَمَنۡ تَطَوَّعَ خَيۡرًا فَهُوَ خَيۡرٌ لَّهٗ‌ؕ

وَاَنۡ تَصُوۡمُوۡا خَيۡرٌ لَّكُمۡ اِنۡ كُنۡتُمۡ تَعۡلَمُوۡنَ ﴿۱۸۴﴾ شَهۡرُ
رَمَضَانَ الَّذِىۡٓ اُنۡزِلَ فِيۡهِ الۡقُرۡاٰنُ هُدًى لِّلنَّاسِ وَ
بَيِّنٰتٍ مِّنَ الۡهُدٰى وَالۡفُرۡقَانِ‌ۚ فَمَنۡ شَهِدَ مِنۡكُمُ
الشَّهۡرَ فَلۡيَـصُمۡهُ‌ ؕ وَمَنۡ كَانَ مَرِيۡضًا اَوۡ عَلٰى سَفَرٍ
فَعِدَّةٌ مِّنۡ اَيَّامٍ اُخَرَ‌ؕ يُرِيۡدُ اللّٰهُ بِكُمُ الۡيُسۡرَ وَلَا يُرِيۡدُ
بِكُمُ الۡعُسۡرَ وَلِتُكۡمِلُوا الۡعِدَّةَ وَلِتُكَبِّرُوا اللّٰهَ عَلٰى مَا
هَدٰٮكُمۡ وَلَعَلَّكُمۡ تَشۡكُرُوۡنَ ﴿۱۸۵﴾ وَاِذَا سَاَلَكَ
عِبَادِىۡ عَنِّىۡ فَاِنِّىۡ قَرِيۡبٌ‌ؕ اُجِيۡبُ دَعۡوَةَ الدَّاعِ اِذَا
دَعَانِ فَلۡيَسۡتَجِيۡبُوۡا لِىۡ وَلۡيُؤۡمِنُوۡا بِىۡ لَعَلَّهُمۡ
يَرۡشُدُوۡنَ ﴿۱۸۶﴾ اُحِلَّ لَـكُمۡ لَيۡلَةَ الصِّيَامِ الرَّفَثُ اِلٰى
نِسَآٮِٕكُمۡ‌ؕ هُنَّ لِبَاسٌ لَّـكُمۡ وَاَنۡتُمۡ لِبَاسٌ لَّهُنَّ‌ؕ عَلِمَ
اللّٰهُ اَنَّكُمۡ كُنۡتُمۡ تَخۡتَانُوۡنَ اَنۡفُسَكُمۡ فَتَابَ عَلَيۡكُمۡ
وَعَفَا عَنۡكُمۡ‌ۚ فَالۡـٰٔنَ بَاشِرُوۡهُنَّ وَابۡتَغُوۡا مَا كَتَبَ
اللّٰهُ لَـكُمۡ‌ۚ وَكُلُوۡا وَاشۡرَبُوۡا حَتّٰى يَتَبَيَّنَ لَـكُمُ الۡخَـيۡطُ
الۡاَبۡيَضُ مِنَ الۡخَـيۡطِ الۡاَسۡوَدِ مِنَ الۡفَجۡرِ‌ۚ ثُمَّ اَتِمُّوا

الصِّيَامَ اِلَى الَّيْلِ ۚ وَلَا تُبَاشِرُوْهُنَّ وَاَنْتُمْ عٰكِفُوْنَ ۙ
فِي الْمَسٰجِدِ ۭ تِلْكَ حُدُوْدُ اللّٰهِ فَلَا تَقْرَبُوْهَا ۭ كَذٰلِكَ
يُبَيِّنُ اللّٰهُ اٰيٰتِهٖ لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَتَّقُوْنَ ﴿١٨٧﴾ وَلَا
تَاْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ وَتُدْلُوْا بِهَآ اِلَى
الْحُكَّامِ لِتَاْكُلُوْا فَرِيْقًا مِّنْ اَمْوَالِ النَّاسِ بِالْاِثْمِ
وَاَنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ ﴿١٨٨﴾ ۧ

सूरतुल बक़रह के निस्फ़े आख़िर के मज़ामीन के बारे में अर्ज़ किया जा चुका है कि यह चार लड़ियों की मानिन्द हैं जो आपस में गुथी हुई हैं। अब इनमें से इबादात वाली लड़ी आ रही है और ज़ेरे मुताअला रुकूअ में "सौम" की इबादत का तज़किरा है। जहाँ तक "सलाह" (नमाज़) का ताल्लुक़ है तो इसका ज़िक्र मक्की सूरतों में बेताहाशा आया है, लेकिन मक्की दौर में "सौम" बतौर इबादत कोई तज़किरा नहीं मिलता।

अरबों के यहाँ सौम या सियाम के लफ़्ज़ का इत्लाक़ और मफ़हूम क्या था और उससे वह क्या मुराद लेते थे, इसे ज़रा समझ लीजिये! अरब ख़ुद तो रोज़ा नहीं रखते थे, अलबत्ता अपने घोड़ों को रखवाते थे। उसकी वजह यह थी कि अक्सर अरबों का पेशा ग़ारतगरी और लूटमार था। फिर मुख़्तलिफ़ क़बीलों के माबैन वक़्फ़े-वक़्फ़े से जंगें होती रहती थीं। इन कामों के लिये उनको घोड़ों की ज़रूरत थी और

घोड़ा इस मक़सद के लिये निहायत मौज़ूँ (उचित) जानवर था कि उस पर बैठ कर तेज़ी से जायें, लूटमार करें, शब ख़ून मारें और तेज़ी से वापस आ जायें। ऊँट तेज़ रफ़्तार जानवर नहीं है, फिर वह घोड़े के मुक़ाबले में तेज़ी से अपना रुख़ भी नहीं फेर सकता। मगर घोड़ा जहाँ तेज़ रफ़्तार जानवर है, वहाँ तुनक मिज़ाज और नाज़ुक मिज़ाज भी है। चुनाँचे वह तरबियत के लिये उन घोड़ों से यह मशक़्क़त करवाते थे कि उनको भूखा-प्यासा रखते थे और उनके मुँह पर एक "तोबड़ा" चढ़ा देते थे। इस अमल को वह "सौम" कहते थे और जिस घोड़े पर यह अमल किया जाये उसे वह "साइम" कहते थे, यानि यह रोज़े से है। इस तरह वह घोड़ों को भूख-प्यास झेलने का आदी बनाते थे कि कहीं ऐसा ना हो कि मुहिम के दौरान घोड़ा भूख-प्यास बर्दाश्त ना कर सके और जी हार दे। इस तरह तो सवार की जान शदीद ख़तरे में पड़ जायेगी और उसे ज़िन्दगी के लाले पड़ जायेंगे! मज़ीद यह कि अरब इस तौर पर घोड़ों को भूखा-प्यासा रख कर मौसम गरमा और लू की हालत में उन्हें लेकर मैदान में जा खड़े होते थे। वह अपनी हिफ़ाज़त के लिये अपने सरों पर डढ़ाटे बाँध कर और जिस्म पर कपड़े वग़ैरह लपेट कर उन घोड़ों की पीठ पर सवार रहते थे और उन घोड़ों का मुँह सीधा लू और बादे सरसर के थपेड़ों की तरफ़ रखते थे, ताकि उनके अंदर भूख-प्यास के साथ-साथ लू के इन थपेड़ों को बर्दाश्त करने की आदत भी पड़ जाये, ताकि किसी डाके के मुहिम या क़बाइली जंग के मौक़े पर घोड़ा सवार के क़ाबू में रहे और भूख-प्यास या बादे सरसर के थपेड़ों को बर्दाश्त करके सवार की मर्ज़ी के मुताबिक़ मतलूबा रुख़ बरक़रार रखे और उससे

मुँह ना फेरे। तो अरब अपने घोड़ों को भूखा-प्यासा रख कर जो मशक़्क़त कराते थे इस पर वह "सौम" के लफ़्ज़ यानि रोज़ा का, इत्लाक़ करते थे।

लेकिन रसूल अल्लाह ﷺ जब मदीना तशरीफ़ लाये तो यहाँ यहूद के यहाँ रोज़ा रखने का रिवाज था। वह आशूरा का रोज़ा भी रखते थे, इसलिये कि इस रोज़ बनी इसराइल को फ़िरऔनियों से निजात मिली थी। रसूल अल्लाह ﷺ ने मुसलमानों को इब्तदाअन हर महीने "अय्यामे बैज़" *[अय्यामे बैज़: इस्लामी महीनों की 13, 14 और 15 तारीख]* के तीन रोज़े रखने का हुक्म दिया। इस रुकूअ की इब्तदाई दो आयात में ग़ालिबन इसी की तौसीक़ है। अगर इब्तदा ही में पूरे महीने के रोज़े फ़र्ज़ कर दिये जाते तो वह यक़ीनन शाक़ गुज़रते। ज़ाहिर बात है कि महीने सख़्त गर्म भी हो सकते हैं। अब अगर तीस के तीस रोज़े एक ही महीने में फ़र्ज़ कर दिये गये होते और वह जून जुलाई के होते तो जान ही तो निकल जाती। चुनाँचे बेहतरीन तदबीर यह की गई कि हर महीने में तीन दिन के रोज़े रखने का हुक्म दिया गया और यह रोज़े मुख़्तलिफ़ मौसमों में आते रहे। फिर कुछ अरसे के बाद रमज़ान के रोज़े फ़र्ज़ किये गये। हर महीने में तीन दिन के रोज़ों का जो इब्तदाई हुक्म था उसमें अलल इत्लाक़ यह इजाज़त थी कि जो शख़्स यह रोज़े ना रखे वह इसका फ़िदया दे दे, अगरचे वह बीमार या मुसाफ़िर ना हो और रोज़ा रखने की ताक़त भी रखता हो। जब रमज़ान के रोज़ों की फ़र्ज़ियत का हुक्म आ गया तो अब यह रुख्सत ख़त्म कर दी गई। अलबत्ता रसूल अल्लाह ﷺ ने फ़िदये की इस रुख्सत को ऐसे शख़्स के लिये बाक़ी रखा जो बहुत बूढ़ा है,

या किसी ऐसी सख़्त बीमारी में मुब्तला है कि रोज़ा रखने से उसके लिये जान की हलाकत का अंदेशा हो सकता है। यह है इन आयतों की तावील जिस पर मैं बहुत अरसा पहले पहुँच गया था, लेकिन चूँकि अक्सर मुफ़स्सिरीन ने यह बात नहीं लिखी इसलिये मैं इसे बयान करने से झिझकता रहा। बाद में मुझे मालूम हुआ कि मौलाना अनवर शाह काश्मीरी रहि० की राय यही है तो मुझे अपनी राय पर ऐतमाद हो गया। फिर मुझे इसका ज़िक्र तफ़्सीरे कबीर में इमाम राज़ी रहि० के यहाँ भी मिल गया कि मुतक़द्दमीन के यहाँ यह राय मौजूद है कि रोज़े से मुताल्लिक़ पहली दो आयतें (183,184) रमज़ान के रोज़े से मुताल्लिक़ नहीं हैं, बल्कि वह अय्यामे बैज़ के रोज़ों से मुताल्लिक़ हैं। अय्यामे बैज़ के रोज़े रसूल अल्लाह ﷺ ने रमज़ान के रोज़ों की फ़र्ज़ियत के बाद भी नफ़लन रखे हैं।

रोज़े के अहकाम पर मुश्तमिल यह रुकूअ छ: आयतों पर मुश्तमिल है और इस ऐतबार से एक अजीब मक़ाम है कि इस एक जगह रोज़े का तज़किरा जामियत के साथ आ गया है। क़ुरान मजीद में दीग़र अहकाम बहुत दफ़ा आये हैं। नमाज़ के अहकाम बहुत से मक़ामात पर आये हैं। कहीं वुज़ू के अहकाम आये हैं तो कहीं तयम्मुम के, कहीं नमाज़े कसर और नमाज़े ख़ौफ़ का ज़िक्र है। लेकिन "सौम" की इबादत पर यह कुल छ: आयात हैं, जिनमें इसकी हिकमत, इनकी ग़र्ज़ व ग़ायत और इसके अहकाम सबके सब एक जगह आ गये हैं। फ़रमाया:

आयत 183

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا كُتِبَ عَلَيْكُمُ الصِّيَامُ كَمَا كُتِبَ عَلَى الَّذِيْنَ مِنْ قَبْلِكُمْ لَعَلَّكُمْ تَتَّقُوْنَ ﴿۱۸۳﴾

"ऐ ईमान वालों! तुम पर भी रोज़ा रखना फ़र्ज़ किया गया है जैसे कि फ़र्ज़ किया गया था तुमसे पहलों पर ताकि तुम्हारे अंदर तक़वा पैदा हो जाये।"

वह जंग के लिये घोड़े को तैयार करवाते थे, तुम्हें तक़वे के लिये अपने आपको तैयार करना है। रोज़े की मश्क़ तुमसे इसलिये कराई जा रही है ताकि तुम भूख को क़ाबू में रख सको, शहवत को क़ाबू में रख सको, प्यास को बर्दाश्त कर सको। तुम्हें अल्लाह तआला की राह में जंग के लिये निकलना होगा, उसमें भूख भी आयेगी, प्यास भी आयेगी। अपने आपको जिहाद व क़िताल के लिये तैयार करो। सूरतुल बक़रह के अगले रुकूअ से क़िताल की बहस शुरू हो जायेगी। चुनाँचे रोज़े की यह बहस गोया क़िताल के लिये बतौरे तम्हीद आ रही है।"

आयत 184

اَيَّامًا مَّعْدُوْدٰتٍ ؕ

"गिनती के चंद दिन है।"

"مَعۡدُوۡدٰت" जमा क़िल्लत है, जो तीन से नौ तक के लिये आती है। यह गोया इसका सुबूत है कि यहाँ महीने भर के रोज़े मुराद नहीं है।

فَمَنۡ کَانَ مِنۡکُمۡ مَّرِیۡضًا اَوۡ عَلٰی سَفَرٍ

"इस पर भी जो कोई तुममें से बीमार हो या सफ़र पर हो"

فَعِدَّۃٌ مِّنۡ اَیَّامٍ اُخَرَ ؕ

"तो वह तादाद पूरी कर ले दूसरे दिनों में।"

وَعَلَی الَّذِیۡنَ یُطِیۡقُوۡنَہٗ فِدۡیَۃٌ طَعَامُ مِسۡکِیۡنٍ ؕ

"और जो इसकी ताक़त रखते हों (और वह रोज़ा ना रखें) उन पर फ़िदया है एक मिस्कीन का खाना खिलाना।"

इन आयात की तफ़्सीर में, जैसा कि अर्ज़ किया गया, मुफ़स्सिरीन के बहुत से अक़वाल हैं। मैंने अपने मुताअले के बाद जो राय क़ायम की है मैं सिर्फ़ वही बयान कर रहा हूँ कि उस वक़्त इमाम राज़ी रहि० के बक़ौल यह फ़र्ज़ियत علی التّعیین नहीं थी बल्कि علی التّخییر थी। यानि रोज़ा फ़र्ज़ तो किया गया है लेकिन उसका बदल भी दिया जा रहा है कि अगर तुम रोज़ा रखने की इस्तताअत के बावजूद नहीं रखना चाहते तो एक मिस्कीन को खाना खिला दो। चूँकि रोज़े के वह पहले से आदी नहीं थे, लिहाज़ा उन्हें तदरीजन इसका ख़ूग़र बनाया जा रहा था।

فَمَنۡ تَطَوَّعَ خَيۡرًا فَهُوَ خَيۡرٌ لَّهٗ ؕ

"और जो अपनी मर्ज़ी से कोई ख़ैर करना चाहे तो उसके लिये ख़ैर है।"

अगर कोई रोज़ा भी रखे और मिस्कीन को खाना भी खिलाये तो यह उसके लिए बेहतर होगा।

وَاَنۡ تَصُوۡمُوۡا خَيۡرٌ لَّكُمۡ اِنۡ كُنۡتُمۡ تَعۡلَمُوۡنَ ۝۱۸۴

"और रोज़ा रखो, यह तुम्हारे लिये बेहतर है अगर तुम जानों।"

यहाँ भी एक तरह की रिआयत का अंदाज़ है। यह दो आयतें हैं जिनमें मेरे नज़दीक रोज़े का पहला हुक्म दिया गया, जिसके तहत रसूल अल्लाह ﷺ और अहले ईमान ने हर महीने में तीन दिन के रोज़े रखे। यह भी हो सकता है कि इन रोज़ों का हुक्म रसूल अल्लाह ﷺ ने अहले ईमान को अपने तौर पर दिया हो और बाद में इन आयतों ने उसकी तौसीक़ (पुष्टी) कर दी हो।

अब वह आयतें आ रही हैं जो ख़ास रमज़ान के रोज़े से मुताल्लिक़ हैं। इनमे से दो आयतों में रोज़े की हिकमत और ग़र्ज़ व ग़ायत बयान की गई है। फिर एक तवील आयत रोज़े के अहकाम पर मुश्तमिल है और आख़िर में एक आयत गोया लिट्मस टेस्ट है।

आयत 185

شَهْرُ رَمَضَانَ الَّذِیٓ اُنْزِلَ فِیْهِ الْقُرْاٰنُ

“रमज़ान का महीना वह है जिसमें क़ुरान नाज़िल किया गया”

هُدًی لِّلنَّاسِ وَ بَیِّنٰتٍ مِّنَ الْهُدٰی وَالْفُرْقَانِ

“लोगों के लिये हिदायत बना कर और हिदायत और हक़ व बातिल के दरमियान इम्तियाज़ की रोशन दलीलों के साथ।”

فَمَنْ شَهِدَ مِنْكُمُ الشَّهْرَ فَلْیَصُمْهُ

“तो जो कोई भी तुममें से इस महीने को पाये (या जो शख़्स भी इस महीने में मुक़ीम हो) उस पर लाजिम है कि रोज़ा रखे।”

अब वह वुजूब अलल तस्खीर का मामला ख़त्म हो गया और वुजूब अलल तअय्युन हो गया कि यह लाज़िम है, यह रखना है।

وَمَنْ كَانَ مَرِیْضًا اَوْ عَلٰی سَفَرٍ فَعِدَّةٌ مِّنْ اَیَّامٍ اُخَرَ

“और जो बीमार हो या सफ़र पर हो तो वह तादाद पूरी कर ले दूसरे दिनों में।”

यह रिआयत हसबे साबक़ (पहले की तरह) बरक़रार रखी गई।

يُرِيْدُ اللّٰهُ بِكُمُ الْيُسْرَ وَلَا يُرِيْدُ بِكُمُ الْعُسْرَ

"अल्लाह तुम्हारे साथ आसानी चाहता है और वह तुम्हारे साथ सख़्ती नहीं चाहता।"

लोग ख़्वाह माख़्वाह अपने ऊपर सख़्तियाँ झेलते हैं, शदीद सफ़र के अंदर भी रोज़े रखते हैं, हालाँकि अल्लाह तआला ने दूसरे दिनों में गिनती पूरी करने की इजाज़त दी है। रसूल अल्लाह ﷺ ने एक सफ़र में उन लोगों पर काफ़ी सरज़निश (डांट) की जिन्होंनें रोज़ा रखा हुआ था। आप ﷺ सहाबा किराम रज़ि० के हमराह जिहाद व क़िताल के लिये निकले थे कि कुछ लोगों ने इस सफ़र में भी रोज़ा रख लिया। नतीजा यह हुआ कि सफ़र के बाद जहाँ मंज़िल पर जाकर ख़ेमे लगाने थे वह निढ़ाल होकर गिर गये और जिन लोगों का रोज़ा नहीं था उन्होंने ख़ेमे लगाये। इस पर रसूल अल्लाह ﷺ ने फ़रमाया: ((لَيْسَ مِنَ الْبِرِّ الصَّوْمُ فِي السَّفَرِ))(21) "सफ़र में रोज़ा रखना कोई नेकी का काम नहीं है।" लेकिन हमारा नेकी का तसुव्वर मुख़्तलिफ़ है। कुछ लोग ऐसे भी हैं कि ख़्वाह 105 बुख़ार चढ़ा हुआ हो वह कहेंगे कि रोज़ा तो नहीं छोडूंगा। हालाँकि अल्लाह तआला की तरफ़ से दी गई रिआयत से फ़ायदा ना उठाना एक तरह का कुफ़राने नेअमत है।

وَلِتُكْمِلُوا الْعِدَّةَ

"ताकि तुम तादाद पूरी करो"

मर्ज़ या सफ़र के दौरान जो रोज़े छूट जाएँ तुम्हें दूसरे दिनों में उनकी तादाद पूरी करनी होगी। वह जो एक रिआयत थी कि फ़िदया देकर फ़ारिग़ हो जाओ वह अब मन्सूख़ हो गई।

وَلِتُكَبِّرُوا اللّٰهَ عَلٰى مَا هَدٰىكُمْ

"और ताकि तुम बड़ाई करो अल्लाह की उस पर जो हिदायत उसने तुम्हें बख़्शी है"

وَلَعَلَّكُمْ تَشْكُرُوْنَ ﴿١٨٥﴾

"और ताकि तुम शुक्र कर सको।"

वह नेअमते उज़मा जो क़ुरान हकीम की शक़्ल में तुम्हें दी गई है, तुम उसका शुक्र अदा करो। इस मौज़ू पर मेरे दो किताबचों "अज़मते सौम" और "अज़मते सियाम व क़ियामे रमज़ाने मुबारक" का मुताअला मुफ़ीद साबित होगा। उनमें यह सारे मज़ामीन तफ़सील से आये हैं कि रोज़े की क्या हिकमत है, क्या ग़र्ज़ व ग़ायत है, क्या मक़सद है और आख़री मंज़िल क्या है। मतलूब तो यह है कि तुम्हारा यह जो जिस्मे हैवानी है, यह कुछ कमज़ोर पड़े और रूहे रब्बानी जो तुम में फूँकी गई है उसे तक़्वियत हासिल हो। चुनाँचे दिन में रोज़ा रखो और इस हैवानी वुजूद को ज़रा कमज़ोर करो, इसके तक़ाज़ों को दबाओ। फिर रातों को खड़े हो जाओ और अल्लाह का कलाम सुनो और पढ़ो, ताकि तुम्हारी रूह की आबयारी (पोषण) हो, इस पर आबे हयात का तरशह (छिड़काव) हो। नतीजा यह निकलेगा कि ख़ुद तुम्हारे अंदर से तक़र्रुब इलल्लाह की एक प्यास उभरेगी।

आयत 186

وَاِذَا سَاَلَكَ عِبَادِىْ عَنِّىْ فَاِنِّىْ قَرِيْبٌ

"और (ऐ नबी ﷺ!) जब मेरे बंदे आपसे मेरे बारे में सवाल करें तो (उनको बता दीजिये कि) मैं क़रीब हूँ।"

मेरे नज़दीक यह दुनिया में हुक़ूक़े इंसानी का सबसे बड़ा मन्शूर (Magna Carta) है कि अल्लाह और बंदे के दरमियान कोई फ़सल (दूरी) नहीं है। फ़सल अगर है तो वह तुम्हारी अपनी ख़बासत है। अगर तुम्हारी नीयत में फ़साद है कि हरामख़ोरी तो करनी ही करनी है तो अब किस मुँह से अल्लाह से दुआ करोगे? लिहाज़ा किसी पीर के पास जाओगे कि आप दुआ कर दीजिये, यह नज़राना हाज़िर है। बंदे और ख़ुदा के दरमियान ख़ुद इंसान का नफ़्स हाइल है और कोई नहीं, वरना अल्लाह तआला का मामला तो यह है कि:

हम तो माईल ब करम हैं कोई साइल ही नहीं
राह दिखलाएँ किसे, राह रवे मंज़िल ही नहीं!

उस तक पहुँचने का वास्ता कोई पोप नहीं, कोई पादरी नहीं, कोई पंडित नहीं, कोई पुरोहित नहीं, कोई पीर नहीं। जब चाहो अल्लाह से हम कलाम हो जाओ। अल्लामा इक़बाल ने क्या ख़ूब कहा है:

क्यों ख़ालिक़ और मख़्लूक़ में हाइल रहें पर्दे?
पीराने कलीसा को कलीसा से उठा दो!

अल्लाह तआला ने वाज़ेह फ़रमा दिया है कि मेरा बंदा जब चाहे, जहाँ चाहे मुझसे हम कलाम हो सकता है।

أُجِيبُ دَعْوَةَ الدَّاعِ إِذَا دَعَانِ

"मैं तो हर पुकारने वाले की पुकार का जवाब देता हूँ जब भी (और जहाँ भी) वह मुझे पुकारे"

"**اجابت**" के मफ़हूम में किसी की पुकार का सुनना, उसका जवाब देना और उसे क़ुबूल करना, यह तीनों चीज़ें शामिल हैं। लेकिन इसके लिये एक शर्त आयद की जा रही है:

فَلْيَسْتَجِيبُوا لِي

"पस उन्हें चाहिये कि वह मेरा हुक्म मानें"

وَلْيُؤْمِنُوا بِي

"और मुझ पर ईमान रखें"

यह एक तरफ़ा बात नहीं है, बल्कि यह दो तरफ़ा मामला है। जैसे हम पढ़ चुके हैं: { فَاذْكُرُونِي أَذْكُرْكُمْ } "पस तुम मुझे याद रखो मैं तुम्हें याद रखूँगा" तुम मेरा शुक्र करोगे तो मैं तुम्हारी क़द्रदानी करूँगा। तुम मेरी तरफ़ चल कर आओगे तो मैं दौड़ कर आऊँगा। तुम बालिश्त भर आओगे तो मैं हाथ भर आऊँगा। लेकिन अगर तुम रुख़ मोड़ लोगे तो हम भी रुख़ मोड़ लेंगे। हमारी तो कोई ग़र्ज़ नहीं है, ग़र्ज़ तो तुम्हारी है। तुम रुजूअ करोगे तो हम भी रुजूअ करेंगे। तुम तौबा करोगे तो हम भी अपनी नज़रे करम तुम पर मुतवज्जा कर देंगे। सूरह मुहम्मद ﷺ में अल्फ़ाज़ आये हैं" { إِنْ تَنْصُرُوا اللَّهَ يَنْصُرْكُمْ } (आयत:7) "अगर तुम अल्लाह की मदद करोगे तो वह तुम्हारी मदद करेगा।" लेकिन अगर तुम अल्लाह के दुश्मनों के साथ दोस्ती की पींगें बढ़ाओ, उनके साथ तुम्हारी

साज़-बाज़ हो और खड़े हो जाओ क़ुनूते नाज़िला में अल्लाह से मदद माँगने के लिये तो तुमसे बड़ा बेवक़ूफ़ कौन होगा? पहले अल्लाह की तरफ़ अपना रुख़ तो करो, अल्लाह से अपना मामला तो दुरुस्त करो। इसमें यह कोई शर्त नहीं है कि पहले वली-ए-कामिल बन जाओ, बल्कि उसी वक़्त ख़ुलूसे नियत से तौबा करो, सारे पर्दे हट जाएँगे। आयत के आख़िर में फ़रमाया:

لَعَلَّهُمْ يَرْشُدُوْنَ ﴿١٨٦﴾

"ताकि वह सही राह पर रहें।"

अल्लाह तआला पर ईमान रखने और उसके अहकाम पर चलने का यह नतीजा निकलेगा कि वह रुशदो हिदायत की राह पर गामज़न हो जाएँगे।

आयत 187

اُحِلَّ لَكُمْ لَيْلَةَ الصِّيَامِ الرَّفَثُ اِلٰى نِسَآئِكُمْ ؕ

"हलाल कर दिया गया है तुम्हारे लिये रोज़े की रातों में बेहिजाब होना अपनी बीवियों से।"

अहकामे रोज़े से मुताल्लिक़ यह आयत बड़ी तवील है। यहूद के यहाँ शरीअते मूसवी में रोज़ा शाम को ही शुरु हो जाता था और रात भी रोज़े में शामिल थी। चुनाँचे ताल्लुक़े ज़न व शौ (मियाँ-बीवी का ताल्लुक़) भी क़ायम नहीं हो सकता था। उनके यहाँ सेहरी वग़ैरह का भी कोई तसुव्वर नहीं था। जैसे ही रात को सोते रोज़ा शुरु हो जाता और अगले दिन ग़ुरूबे आफ़ताब तक रोज़ा रहता। हमारे यहाँ रोज़े में नरमी की

गई है। एक तो यह कि रात को रोज़े से ख़ारिज कर दिया गया। रोज़ा बस दिन का है और रात के वक़्त रोज़े की सारी पाबंदियाँ ख़त्म हो जाती हैं। चुनाँचे रात को ताल्लुक़े ज़न व शौ भी क़ायम किया जा सकता है और खाने-पीने की भी इजाज़त है। लेकिन बाज़ मुसलमान यह समझ रहे थे कि शायद हमारे यहाँ भी रोज़े के वही अहकाम हैं जो यहूद के यहाँ हैं। इसलिये ऐसा भी होता था कि रोज़ों की रातों में बाज़ लोग जज़्बात में बीवियों से मुक़ारबत (संभोग) कर लेते थे, लेकिन दिल में समझते थे कि शायद हमनें गलत काम किया है। यहाँ अब उनको इत्मिनान दिलाया जा रहा है कि तुम्हारे लिये रोज़े की रातों में अपनी बीवियों के पास जाना हलाल कर दिया गया है।

هُنَّ لِبَاسٌ لَّكُمْ وَاَنْتُمْ لِبَاسٌ لَّهُنَّ ۭ

"वह पोशाक हैं तुम्हारे लिये और तुम पोशाक हो उनके लिये।"

यह बड़ा लतीफ़ किनायह (इशारा) है कि वह तुम्हारे लिये बमंज़िला-ए-लिबास हैं और तुम उनके लिये बमंज़िला-ए-लिबास हो। जैसे लिबास में और जिस्म में कोई पर्दा नहीं ऐसे ही बीवी में और शौहर में कोई पर्दा नहीं है। ख़ुद लिबास ही तो पर्दा है। वैसे भी मर्द के अख्लाक़ की हिफ़ाज़त करने वाली बीवी है और बीवी के अख्लाक़ की हिफ़ाज़त करने वाला मर्द है। मुझे इक़बाल का शेर याद आ गया:

ने पर्दा ने तालीम, नई होकर पुरानी
निस्वानियते ज़न का निगहबान है फ़क़त मर्द

बहरहाल मर्द व औरत एक दूसरे के लिये एक ज़रुरत भी हैं और एक दूसरे की पर्दापोशी भी करते हैं।

عَلِمَ اللّٰهُ اَنَّكُمْ كُنْتُمْ تَخْتَانُوْنَ اَنْفُسَكُمْ

"अल्लाह के इल्म में है कि तुम अपने आपके साथ ख्यानत कर रहे थे"

तुम एक काम कर रहे थे जो गुनाह नहीं है, लेकिन तुम समझते थे कि गुनाह है, फिर भी उसका इरतकाब कर रहे थे। इस तरह तुम अपने आप से ख्यानत के मुरतकिब हो रहे थे।

فَتَابَ عَلَيْكُمْ

"तो अल्लाह ने तुम पर नज़रे रहमत फ़रमाई"

وَعَفَا عَنْكُمْ ۚ

"और तुम्हें माफ़ कर दिया"

इस सिलसले में जो भी ख़ताएँ हो गई हैं वह सबकी सब माफ़ समझो।

فَالْئٰنَ بَاشِرُوْهُنَّ

"तो अब तुम उनके साथ ताल्लुक़े ज़न व शौ क़ायम करो"

وَابْتَغُوْا مَا كَتَبَ اللّٰهُ لَكُمْ ۠

"और तलाश करो उसको जो कुछ अल्लाह तआला ने तुम्हारे लिख दिया है।"

यानि औलाद, जो ताल्लुक़े ज़न व शौ का असल मक़सद है। दूसरे यह कि अल्लाह तआला ने इस ताल्लुक़े ज़न व शौ को सुकून व राहत का ज़रिया बनाया है। जैसे क़ुरान मजीद में

{لِتَسْكُنُوْٓا اِلَيْهَا} के अल्फ़ाज़ आये हैं। इस ताल्लुक़ के बाद आसाब (नसों) के तनाव में एक सुकून की कैफ़ियत पैदा हो जाती है। और इसमें यही हिकमत है कि रसूल अल्लाह ﷺ अपने हर सफ़र में एक ज़ौजा-ए-मोहतरमा को ज़रूर साथ रखते थे। इसलिये की क़ायद और सिपहसलार को किसी वक़्त किसी ऐसी परेशानकुन सूरते हाल में फ़ैसले करने पड़ते हैं कि जज़्बात पर और आसाब पर दबाव होता है।

وَكُلُوْا وَاشْرَبُوْا حَتّٰى يَتَبَيَّنَ لَكُمُ الْخَيْطُ الْاَبْيَضُ مِنَ الْخَيْطِ الْاَسْوَدِ مِنَ الْفَجْرِ

“और खाओ-पियो यहाँ तक कि वाज़ेह हो जाये तुम्हारे लिये फ़ज्र की सफ़ेद धारी (रात की) स्याह धारी से।”

यह पौ फटने के लिये इस्तआरा (लक्षण) है। यानि जब सुपैदा सहर नुमाया होता है, सुबह सादिक़ होती है उस वक़्त तक खाने-पीने की छूट है। बल्कि यहाँ {وَكُلُوْا وَاشْرَبُوْا} “और खाओ और पियो” अम्र के सीगे आये हैं। सहरी करने की हदीस में भी ताकीद आई है और रसूल अल्लाह ﷺ ने यह भी फ़रमाया है कि हमारे और यहूद के रोज़े के माबैन सेहरी का फ़र्क़ है। एक हदीस में आया है: ((تَسَحَّرُوْا فَاِنَّ فِى السَّحُوْرِ بَرَكَةً))(22) “सहरी ज़रूर किया करो, इसलिये कि सहरी में बरकत है।”

ثُمَّ اَتِمُّوا الصِّيَامَ اِلَى الَّيْلِ ۚ

“फिर रात तक रोज़े को पूरा करो।”

“रात तक” से अक्सर फ़ुक़हा के नज़दीक ग़ुरूबे आफ़ताब मुराद है। अहले तशय्य (शिया) इससे ज़रा आगे जाते हैं कि ग़ुरूबे आफ़ताब पर चंद मिनट मज़ीद गुज़र जाएँ।

وَلَا تُبَاشِرُوْهُنَّ وَاَنْتُمْ عٰكِفُوْنَ ۙ فِى الْمَسٰجِدِ ۭ

“और उनसे मुबाशरत मत करो जबकि तुम मस्जिदों में हालते ऐतकाफ़ में हो।”

यह रिआयत जो तुम्हें दी जा रही है इसमें एक इस्तशना (exception) है कि जब तुम मस्जिदों में मौतकिफ़ हो तो फिर अपनी बीवियों से रात के दौरान भी कोई ताल्लुक़ क़ायम ना करो।

تِلْكَ حُدُوْدُ اللّٰهِ فَلَا تَقْرَبُوْهَا ۭ

“यह अल्लाह की (मुक़र्रर की हुई) हुदूद हैं, पस इनके क़रीब भी मत जाओ।”

बाज़ मक़ामात पर आता है: { تِلْكَ حُدُوْدُ اللّٰهِ فَلَا تَعْتَدُوْهَا } “यह अल्लाह की मुक़र्रर कर्दा हुदूद हैं, पस इनसे तजावुज़ ना करो” इनको उबूर ना करो। इस्लाहन हराम तो वही शय होगी कि हुदूद से तजावुज़ किया जाये। लेकिन बहरहाल अहतियात इसमें है कि इन हुदूद से दूर रहा जाये (to keep at a safe distance) आख़री हद तक चले जाओगे तो अंदेशा है कि कहीं इस हद को उबूर ना कर जाओ।

كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ اٰيٰتِهٖ لِلنَّاسِ

“इसी तरह अल्लाह वाज़ेह करता है अपनी निशानियाँ लोगों के लिये”

لَعَلَّهُمْ يَتَّقُوْنَ ﴿١٨٧﴾

“ताकि वह तक़वा की रविश इख़्तियार कर सकें।”

अब इस रुकूअ की आख़री आयत में बताया जा रहा है कि तक़वा का मैयार और उसकी कसौटी क्या है। रोज़ा इसलिये फ़र्ज़ किया गया है और यह सारे अहकाम तुम्हें इसी लिये दिये जा रहे हैं ताकि तुम में तक़वा पैदा हो जाए- और तक़वा का लिट्मस टेस्ट है “अकल हलाल (हलाल खाना)” अगर यह नहीं है तो कोई नेकी नेकी नहीं है। फ़रमाया:

आयत 188

وَلَا تَاْكُلُوْٓا اَمْوَالَكُمْ بَيْنَكُمْ بِالْبَاطِلِ

“और तुम अपने माल आपस में बातिल तरीक़ों से हड़प ना करो”

وَتُدْلُوْا بِهَآ اِلَى الْحُكَّامِ

“और इसको ज़रिया ना बनाओ हुक्काम तक पहुँचने का”

لِتَاْكُلُوْا فَرِيْقًا مِّنْ اَمْوَالِ النَّاسِ بِالْاِثْمِ

“ताकि तुम लोगों के माल का कुछ हिस्सा हड़प कर सको गुनाह के साथ”

وَاَنۡتُمۡ تَعۡلَمُوۡنَ ﴿۱۸۸﴾

"और तुम उसको जानते बूझते कर रहे हो।

यह तक़वा के लिये मैयार और कसौटी है। जो शख़्स अकले हलाल पर क़ानेअ (संतुष्ट) हो गया और हराम ख़ोरी से बच गया वो मुत्तक़ी है। वरना नमाज़ों और रोज़ों के अम्बार के साथ-साथ जो शख़्स हरामख़ोरी की रविश इख़्तियार किये हुए है वह मुत्तक़ी नहीं है। मैं हैरान होता हूँ कि लोगों ने इस बात पर ग़ौर नहीं किया कि अहकाम की आयतों के दरमियान यह आयत क्योंकर आई है। इससे पहले रोज़े के अहकाम आये हैं, आगे हज के अहकाम आ रहे हैं, फिर क़िताल के अहकाम आएँगे। इनके दरमियान में इस आयत की क्या हिकमत है? वाक़्या यह है कि जैसे रोज़े की हिकमत का नुक़्ता-ए-उरूज यह है कि रूहे इंसानी में तक़र्रुब इलल्लाह की तलब पैदा हो जाये इसी तरह अहकामे सौम का नुक़्ता-ए-उरूज "अकल हलाल" (हलाल खाना) है।

आयात 189 से 196 तक

يَسۡـَٔلُوۡنَكَ عَنِ الۡاَهِلَّةِ ؕ قُلۡ هِىَ مَوَاقِيۡتُ لِلنَّاسِ
وَالۡحَجِّ ؕ وَلَيۡسَ الۡبِرُّ بِاَنۡ تَاۡتُوا الۡبُيُوۡتَ مِنۡ ظُهُوۡرِهَا
وَلٰكِنَّ الۡبِرَّ مَنِ اتَّقٰىۚ وَاۡتُوا الۡبُيُوۡتَ مِنۡ اَبۡوَابِهَا ۚ
وَاتَّقُوا اللّٰهَ لَعَلَّكُمۡ تُفۡلِحُوۡنَ ﴿۱۸۹﴾ وَقَاتِلُوۡا فِىۡ سَبِيۡلِ
اللّٰهِ الَّذِيۡنَ يُقَاتِلُوۡنَكُمۡ وَلَا تَعۡتَدُوۡا ؕ اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ

الْمُعْتَدِيْنَ ﴿۱۹۰﴾ وَاقْتُلُوْهُمْ حَيْثُ ثَقِفْتُمُوْهُمْ
وَاَخْرِجُوْهُمْ مِّنْ حَيْثُ اَخْرَجُوْكُمْ وَالْفِتْنَةُ اَشَدُّ
مِنَ الْقَتْلِ ۚ وَلَا تُقٰتِلُوْهُمْ عِنْدَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ
حَتّٰى يُقٰتِلُوْكُمْ فِيْهِ ۚ فَاِنْ قٰتَلُوْكُمْ
فَاقْتُلُوْهُمْ ۭ كَذٰلِكَ جَزَاۗءُ الْكٰفِرِيْنَ ﴿۱۹۱﴾ فَاِنِ انْتَهَوْا
فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿۱۹۲﴾ وَقٰتِلُوْهُمْ حَتّٰى لَا تَكُوْنَ
فِتْنَةٌ وَّيَكُوْنَ الدِّيْنُ لِلّٰهِ ۭ فَاِنِ انْتَهَوْا فَلَا عُدْوَانَ اِلَّا
عَلَى الظّٰلِمِيْنَ ﴿۱۹۳﴾ اَلشَّهْرُ الْحَرَامُ بِالشَّهْرِ الْحَرَامِ
وَالْحُرُمٰتُ قِصَاصٌ ۭ فَمَنِ اعْتَدٰى عَلَيْكُمْ فَاعْتَدُوْا
عَلَيْهِ بِمِثْلِ مَا اعْتَدٰى عَلَيْكُمْ ۠ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا
اَنَّ اللّٰهَ مَعَ الْمُتَّقِيْنَ ﴿۱۹۴﴾ وَاَنْفِقُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَلَا
تُلْقُوْا بِاَيْدِيْكُمْ اِلَى التَّهْلُكَةِ ۖ وَاَحْسِنُوْا ۚ اِنَّ اللّٰهَ
يُحِبُّ الْمُحْسِنِيْنَ ﴿۱۹۵﴾ وَاَتِمُّوا الْحَجَّ وَالْعُمْرَةَ لِلّٰهِ ۭ فَاِنْ
اُحْصِرْتُمْ فَمَا اسْتَيْسَرَ مِنَ الْهَدْيِ ۚ وَلَا تَحْلِقُوْا
رُءُوْسَكُمْ حَتّٰى يَبْلُغَ الْهَدْيُ مَحِلَّهٗ ۭ فَمَنْ كَانَ مِنْكُمْ

مَّرِيۡضًا اَوۡ بِهٖۤ اَذًى مِّنۡ رَّاۡسِهٖ فَفِدۡيَةٌ مِّنۡ صِيَامٍ اَوۡ
صَدَقَةٍ اَوۡ نُسُكٍ‌ۚ فَاِذَآ اَمِنۡتُمۡ‌ۥ فَمَنۡ تَمَتَّعَ بِالۡعُمۡرَةِ اِلَى
الۡحَجِّ فَمَا اسۡتَيۡسَرَ مِنَ الۡهَدۡىِ‌ۚ فَمَنۡ لَّمۡ يَجِدۡ فَصِيَامُ
ثَلٰثَةِ اَيَّامٍ فِى الۡحَجِّ وَسَبۡعَةٍ اِذَا رَجَعۡتُمۡ‌ؕ تِلۡكَ عَشَرَةٌ
كَامِلَةٌ‌ؕ ذٰلِكَ لِمَنۡ لَّمۡ يَكُنۡ اَهۡلُهٗ حَاضِرِى الۡمَسۡجِدِ
الۡحَرَامِ‌ؕ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعۡلَمُوۡۤا اَنَّ اللّٰهَ شَدِيۡدُ الۡعِقَابِ

ع
١٩٦

आयत 189

يَسۡـَٔلُوۡنَكَ عَنِ الۡاَهِلَّةِ‌ؕ

"(ऐ नबी ﷺ!) यह आप ﷺ से पूछ रहे हैं चाँद की घटती-बढ़ती सूरतों के बारे में।"

قُلۡ هِىَ مَوَاقِيۡتُ لِلنَّاسِ وَالۡحَجِّ‌ؕ

"कह दीजिये यह लोगों के लिये अवक़ात का तअय्युन है और हज के लिये है।"

यह अल्लाह तआला ने एक कैंडल लटका दिया है। हिलाल को देख कर मालूम हो गया कि चाँद की पहली तारीख़ हो गई। कुछ दिनों के बाद निस्फ़ चाँद देख कर पता चल गया कि अब एक हफ़्ता गुज़र गया है। दो हफ़्ते हो गये तो पूरा

चाँद हो गया। अब इसने घटना शुरू किया। तो यह निज़ाम गोया लोगों के लिये अवक़ाते कार की तअय्युन के लिये है और इस ज़िमन में ख़ासतौर पर सबसे अहम मामला हज का है। यह नोट कीजिये की सौम के बाद हज और हज के साथ ही क़िताल का ज़िक्र आ रहा है। इसलिये कि "हज" वह इबादत है जो एक ख़ास जगह पर हो सकती है। नमाज़ और रोज़ा हर जगह हो सकते हैं, ज़कात हर जगह दी जा सकती है, लेकिन "हज" तो मक्का मुकर्रमा ही में होगा, और वह मुशरिकीन के ज़ेरे तसल्लुत (एकाधिकार) था और उसे मुशरिकीन के तसल्लुत से निकालने के लिये क़िताल लाज़िम था। क़िताल के लिये पहले सब्र का पैदा होना ज़रूरी है। चुनाँचे पहले रोज़े का हुक्म दिया गया कि जैसे अपने घोड़ों को रोज़ा रखवाते थे ऐसे ही ख़ुद रोज़ा रखो। सूरतुल बक़रह में सौम, हज और क़िताल के अहकाम के दरमियान यह तरतीब और रब्त है।

وَلَيْسَ الْبِرُّ بِاَنْ تَاْتُوا الْبُيُوْتَ مِنْ ظُهُوْرِهَا وَلٰكِنَّ الْبِرَّ مَنِ اتَّقٰى ۚ

"और यह कोई नेकी नहीं है कि तुम घरों में उनकी पुश्त की तरफ़ से दाख़िल हो, बल्कि नेकी तो उसकी है जिसने तक़वा इख़्तियार किया।"

अहले अरब अय्यामे जाहिलियत में भी हज तो कर रहे थे, मनासिके हज की कुछ बिगड़ी हुई शक्लें भी मौजूद थीं, और इसके साथ उन्होंने कुछ बिद्आत व रस्मों का इज़ाफ़ा भी कर लिया था। उनमें से एक बिद्अत यह थी कि जब वह अहराम बाँध कर घर से निकल पड़ते तो उसके बाद अगर उन्हें घरों में दाख़िल होने की ज़रूरत पेश आती तो घरों के

दरवाज़ों से दाख़िल ना होते बल्कि पिछवाड़े से दीवार फलाँद कर आते थे और समझते थे कि यह बड़ा तक़वा है। फ़रमाया यह सिरे से कोई नेकी की बात नहीं है कि तुम घरों में उनके पिछवाड़ों से दाख़िल हो, बल्कि असल नेकी तो उसकी नेकी है जो तक़वा की रविश इख़्तियार करे और हुदूदे इलाही का अहतराम मलहूज़ रखे। यहाँ पूरी आयत "आयतुल बिर्र" को ज़हन में रख लीजिये जिसके आख़िर में अल्फ़ाज़ आये थे: {وَاُولٰٓىِٕكَ هُمُ الْمُتَّقُوْنَ ﴿١٧٧﴾} चुनाँचे आयत ज़ेरे मुताअला में {وَلٰكِنَّ الْبِرَّ مَنِ اتَّقٰى ۚ} के अल्फ़ाज़ में नेकी का वह पूरा तसव्वुर मुज़मर है जो आयतुल बिर्र में बयान हो चुका है।

وَاْتُوا الْبُيُوْتَ مِنْ اَبْوَابِهَا ۠

"और घरों में दाख़िल हो उनके दरवाज़ों से।"

وَاتَّقُوا اللّٰهَ لَعَلَّكُمْ تُفْلِحُوْنَ ﴿١٨٩﴾

"और अल्लाह का तक़वा इख़्तियार करो ताकि तुम फ़लाह पाओ।"

आयत 190

وَقَاتِلُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ الَّذِيْنَ يُقَاتِلُوْنَكُمْ

"और क़िताल करो अल्लाह की राह में उनसे जो तुमसे क़िताल कर रहे हैं"

लीजिये क़िताल का हुक्म आ गया। सूरतुल बक़रह के निस्फ़े सानी के मज़ामीन की जो चार लड़ियाँ मैंने गिनवाई थीं- यानि इबादात, मामलात, इन्फ़ाक़ और क़िताल- यह उनमें से चौथी लड़ी है। फ़रमाया कि अल्लाह की राह में उनसे क़िताल करो जो तुमसे क़िताल कर रहे हैं।

وَلَا تَعْتَدُوْا ۭ

"लेकिन हद से तजावुज़ ना करो।"

اِنَّ اللّٰهَ لَا يُحِبُّ الْمُعْتَدِيْنَ ١٩٠

"बेशक अल्लाह तआला हद से तजावुज़ करने वालों को पंसद नहीं करता।"

आयत 191

وَاقْتُلُوْھُمْ حَيْثُ ثَقِفْتُمُوْھُمْ

"और उन्हें क़त्ल करो जहाँ कहीं भी उन्हें पाओ"

وَاَخْرِجُوْھُمْ مِّنْ حَيْثُ اَخْرَجُوْكُمْ

"और निकालो उनको वहाँ से जहाँ से उन्होंने तुमको निकाला है"

मुहाजरीन मक्का मुकर्रमा से निकाले गये थे, वहाँ पर मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ और आप ﷺ के साथी अहले ईमान पर क़ाफ़िया-ए-हयात तंग (जीना दूभर) कर दिया गया था। तभी तो आप ﷺ ने हिजरत की। अब हुक्म दिया जा रहा

है कि निकालो उन्हें वहाँ से जहाँ से उन्होंने तुम्हें निकाला है।

وَالْفِتْنَةُ اَشَدُّ مِنَ الْقَتْلِ ۚ

"और फ़ितना क़त्ल से भी बढ़ कर है।"

कुफ्फ़ार व मुशरिकीन से क़िताल के ज़िमन में कहीं यह ख़्याल ना आये कि क़त्ल और ख़ूँरेज़ी बुरी बात है। याद रखो कि फ़ितना इससे भी ज़्यादा बुरी बात है। फ़ितना क्या है? ऐसे हालात जिनमें इंसान ख़ुदाये वाहिद की बन्दगी ना कर सके, ऐसे ग़लत कामों पर मजबूर किया जाये, वह हरामख़ोरी पर मजबूर हो गया हो, यह सारे हालात फ़ितना हैं। तो वाज़ेह रहे कि क़त्ल और ख़ूँरेज़ी इतनी बुरी शय नहीं है जितनी फ़ितना है।

وَلَا تُقٰتِلُوْهُمْ عِنْدَ الْمَسْجِدِ الْحَرَامِ حَتّٰى يُقٰتِلُوْكُمْ فِيْهِ ۚ

"हाँ मस्जिदे हराम के पास (जिसे अमन की जगह बना दिया गया है) उनसे जंग मत करो जब तक वह तुमसे उसमें जंग ना छेड़ें।"

فَاِنْ قٰتَلُوْكُمْ فَاقْتُلُوْهُمْ ۭ

"फिर अगर वह तुमसे जंग करें तो उनको क़त्ल करो।"

كَذٰلِكَ جَزَآءُ الْكٰفِرِيْنَ ۝١٩١

"यही बदला है काफ़िरों का।"

आयत 192

فَاِنِ انْتَهَوْا فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝١٩٢

"फिर अगर वह बाज़ आ जाएँ तो यक़ीनन अल्लाह बख़्शने वाला बहुत मेहरबान है।"

आयत 193

وَقٰتِلُوْهُمْ حَتّٰى لَا تَكُوْنَ فِتْنَةٌ وَّيَكُوْنَ الدِّيْنُ لِلّٰهِ ۭ

"और लड़ो उनसे यहाँ तक कि फ़ितना बाक़ी ना रहे और दीन अल्लाह का हो जाये।"

فَاِنِ انْتَهَوْا فَلَا عُدْوَانَ اِلَّا عَلَى الظّٰلِمِيْنَ ۝١٩٣

"फिर अगर वह बाज़ आ जाएँ तो कोई ज़्यादती जायज़ नहीं है मगर ज़ालिमों पर।"

दावते मुहम्मदी ﷺ के ज़िमन में अब यह जंग का मरहला शुरू हो गया है। मुसलमानों जान लो, एक दौर वह था कि बारह-तेरह बरस तक तुम्हें हुक्म था {كُفُّوْٓا اَيْدِيَكُمْ} "अपने

हाथ बाँधे रखो!” मारे खाओ मगर हाथ मत उठाना। अब तुम्हारी दावत और तहरीक नए दौर में दाख़िल हो गई है। अब जब तुम्हारी तलवारें म्यान से बाहर आ गई हैं तो म्यान में ना जाएँ जब तक कि फ़ितना बिल्कुल ख़त्म ना हो जाये और दीन अल्लाह ही के लिये हो जाये, अल्लाह का दीन क़ायम हो जाये, पूरी ज़िन्दगी में उसके अहकाम की तन्फ़ीज़ हो रही हो। यह आयत दोबारा सूरतुल अन्फ़ाल में ज़्यादा निखरी हुई शान के साथ आई है: {وَقَاتِلُوهُمْ حَتّٰى لَا تَكُونَ فِتْنَةٌ وَّيَكُونَ الدِّيْنُ كُلُّهٗ لِلّٰهِ} (आयत:39) “और जंग करो उनसे यहाँ तक कि फ़ितना बाक़ी ना रहे और दीन कुल का कुल अल्लाह के लिये हो जाये।” दीन की बालादस्ती (प्रधानता) जुज़्वी (आंशिक) तौर पर नहीं बल्कि कुल्ली तौर पर पूरी इंसानी ज़िन्दगी पर क़ायम हो जाये, इन्फ़रादी ज़िन्दगी पर भी और इज्तमाई ज़िन्दगी पर भी। और इज्तमाई ज़िन्दगी के भी सारे पहलू (Politico-Socio-Economic System) कुल्ली तौर पर अल्लाह के अहकाम के ताबेअ हों।

आयत 194

اَلشَّهْرُ الْحَرَامُ بِالشَّهْرِ الْحَرَامِ

“हुरमत वाला महीना बदला है हुरमत वाले महीने का”

وَالْحُرُمٰتُ قِصَاصٌ

“और हुरमात के अंदर भी बदला है।”

यानि अगर उन्होंने अशहरे हुरुम की बेहुरमती की है तो उसके बदले में यह नहीं होगा कि हम तो हाथ पर हाथ बाँध कर खड़े रहें कि यह तो अशहरे हुरुम हैं। हुदूदे हरम और अशहरे हुरुम की हुरमत अहले अरब के यहाँ मुसल्लम (मान्य) थी। उनके यहाँ यह तय था कि इन चार महीनों में कोई खूँरेज़ी, कोई जंग नहीं होगी, यहाँ तक कि कोई अपने बाप के क़ातिल को पा ले तो वह उसको भी क़त्ल नहीं करेगा। यहाँ वज़ाहत की जा रही है कि अशहरे हुरुम व हुदूदे हरम में जंग वाक़िअतन बहुत बड़ा गुनाह है, लेकिन अगर कुफ़्फ़ार की तरफ़ से उनकी हुरमत का लिहाज़ ना रखा जाये और वह इक़्दाम (कार्यवाही) करें तो अब यह नहीं होगा कि हाथ-पाँव बाँध कर अपने आपको पेश कर दिया जाये, बल्कि जवाबी कार्यवाही करना होगी। इस जवाबी इक़्दाम में अगर हुदूदे हरम या अशहरे हुरुम की बेहुरमती करनी पड़े तो इसका बवाल भी उन पर आयेगा जिन्होंने इस मामले में पहल की।

فَمَنِ اعْتَدٰى عَلَيْكُمْ فَاعْتَدُوْا عَلَيْهِ بِمِثْلِ مَا اعْتَدٰى عَلَيْكُمْ

“तो जो कोई भी तुम पर ज़्यादती करता है तो तुम भी उसके ख़िलाफ़ कार्यवाही करो (इक़्दाम करो) जैसे कि उसने तुम पर ज़्यादती की।”

وَاتَّقُوا اللّٰهَ

“और अल्लाह का तक़वा इख़्तियार करो”

وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ مَعَ الْمُتَّقِيْنَ ۝۱۹۴

"और जान लो कि अल्लाह मुत्तक़ियों के साथ है।"

यानि अल्लाह की ताईद व नुसरत और उसकी मदद अहले तक़वा के लिये आयेगी। अब आगे "इन्फ़ाक़" का हुक्म आ रहा है जो मज़ामीन की चार लड़ियों में से तीसरी लड़ी है। क़िताल के लिये इन्फ़ाक़े माल लाज़िम है। अगर फ़ौज के साज़ो सामान ना हो, रसद का अहतमाम ना हो, हथियार ना हों, सवारियाँ ना हों तो जंग कैसे होगी?

आयत 195

وَاَنْفِقُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَلَا تُلْقُوْا بِاَيْدِيْكُمْ اِلَى التَّهْلُكَةِ ۛ

"और ख़र्च करो अल्लाह की राह में और मत डालो अपने आपको अपने हाथों हलाकत में।"

यानि जिस वक़्त अल्लाह के दीन को रूपये-पैसे की ज़रुरत हो उस वक़्त जो लोग अल्लाह की राह में जान व माल की क़ुर्बानी से जी चुराते हैं और अपने आपको अपने हाथों से हलाकत में डालते हैं। जैसे रसूल अल्लाह ﷺ ने ग़ज़वा-ए-तबूक के मौक़े पर आम अपील की और उस वक़्त जो लोग अपने माल को समेट कर बैठे रहे तो गोया उन्होंने अपने आपको ख़ुद हलाकत में डाल दिया।

وَاَحۡسِنُوۡا ۛۚ *"और अहसान की रविश इख़्तियार करो।"*

अपने दीन के अंदर ख़ूबसूरती पैदा करो। दीन में बेहतर से बेहतर मक़ाम हासिल करने की कोशिश करो। हमारा मामला यह है कि दुनिया में आगे से आगे और दीन में पीछे से पीछे रहने की कोशिश करते हैं। दीन में यह देखेंगे कि कम से कम पर गुज़ारा हो जाये, जबकि दुनिया के मामले में आगे से आगे निकलने की कोशिश होगी *"है जुस्तजू कि ख़ूब से है ख़ूब तर कहाँ!"* यह जुस्तजू जो दुनिया में है इससे कहीं बढ़ कर दीन में होनी चाहिये, अज़रुए अल्फ़ाज़े क़ुरानी: {فَاسۡتَبِقُوا الۡخَيۡرٰتِ} "पस तुम नेकियों में एक-दूसरे से बाज़ी ले जाने की कोशिश करो।"

اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ الۡمُحۡسِنِيۡنَ ۝۱۹۵ *"यक़ीनन अल्लाह तआला मोहसिनीन को (उन लोगों को दर्जा-ए-अहसान पर फ़ाइज़ हो जाएँ) पसंद करता है।"*

हदीसे जिब्राइल (जिसे उम्मुस सुन्नाह कहा जाता है) में हज़रत जिब्राइल अलै० ने रसूल अल्लाह صلی اللہ علیہ وسلم से तीन सवाल किये थे: (1) اَخۡبِرۡنِيۡ عَنِ الۡاِسۡلَامِ "मुझे इस्लाम के बारे में बताइये (कि इस्लाम क्या है?)" (2) اَخۡبِرۡنِيۡ عَنِ الۡاِيۡمَانِ "मुझे ईमान के बारे में बताइये (कि ईमान क्या है?)" (3) اَخۡبِرۡنِيۡ عَنِ الۡاِحۡسَانِ "मुझे अहसान के बारे में बताइये (कि अहसान क्या है?)" अहसान के बारे में रसूल अल्लाह

ﷺ ने इर्शाद फ़रमाया: (اَنۡ تَعۡبُدَ اللّٰہَ کَاَنَّکَ تَرَاہُ فَاِنۡ لَمۡ تَکُنۡ تَرَاہُ فَاِنَّہٗ یَرَاکَ) (23) "(अहसान यह है) कि तू अल्लाह तआला की इबादत ऐसे करे गोया तू उसे देख रहा है, फिर अगर तू उसे ना देख सके (यानि यह कैफ़ियत हासिल ना हो सके) तो (कम से कम यह ख़्याल रहे कि) वह तो तुझे देख रहा है।" दीन के सारे काम, इबादात, इन्फ़ाक़ और जिहाद व क़िताल ऐसी कैफ़ियत में और ऐसे इख़्लास के साथ हों गोया तुम अपनी आँखों से अल्लाह को देख रहे हो, और अगर यह मक़ाम और कैफ़ियत हासिल ना हो तो कम से कम यह कैफ़ियत तो हो जाये कि तुम्हें मुस्तहज़र (अहसास) रहे कि अल्लाह तुम्हें देख रहा है। यह अहसान है। आमतौर पर इसका तर्जुमा इस अंदाज़ में नहीं किया गया। इसको अच्छी तरह समझ लीजिये। वैसे यह मज़मून ज़्यादा वज़ाहत के साथ सूरतुल मायदा में आयेगा।

आयत 196

وَاَتِمُّوا الۡحَجَّ وَالۡعُمۡرَۃَ لِلّٰہِ ؕ

"और हज और उमरा मुकम्मल करो अल्लाह के लिये।"

उमरा के लिये अहराम तो मदीना मुनव्वरा से सात मील बाहर निकल कर ही बाँध लिया जायेगा, लेकिन हज मुकम्मल तब होगा जब तवाफ़ भी होगा, वक़ूफ़े अरफ़ा भी होगा और उसके सारे मनासिक अदा किये जाएँगे। लिहाज़ा जो शख़्स भी हज या उमरा की नीयत कर ले तो फिर उसे

तमाम मनासिक को मुकम्मल करना चाहिये, कोई कमी ना रहे।

فَإِنۡ أُحۡصِرۡتُمۡ

"फिर अगर तुम्हें घेर लिया जाये"

यानि रोक दिया जाये, जैसा कि 6 हिजरी में हुआ कि मुसलमानों को सुलह हुदेबिया करनी पड़ी और उमरा अदा किये बग़ैर वापस जाना पड़ा। मुशरिकीने मक्का अड़ गये थे कि मुसलमानों को मक्का में दाख़िल नहीं होने देंगे।

فَمَا ٱسۡتَيۡسَرَ مِنَ ٱلۡهَدۡيِۖ

"तो जो कोई भी क़ुर्बानी मयस्सर हो वह पेश कर दो।"

यह दमे अहसार कहलाता है कि चूँकि अब हम आगे नहीं जा सकते, हमें यहीं अहराम खोलना पड़ रहा है तो हम अल्लाह के नाम पर यह जानवर दे रहे हैं। यह एक तरह से इसका कफ़्फ़ारा है।

وَلَا تَحۡلِقُواْ رُءُوسَكُمۡ حَتَّىٰ يَبۡلُغَ ٱلۡهَدۡيُ مَحِلَّهُۥۚ

"और अपने सिर उस वक़्त तक ना मूँडो जब तक कि क़ुर्बानी अपनी जगह ना पहुँच जाये।"

यानि जहाँ जाकर क़ुर्बानी का जानवर ज़िबह होना है वहाँ पहुँच ना जाये। अगर आपको हज या उमरा से रोक दिया गया और आपने क़ुर्बानी के जानवर आगे भेज दिये तो आपको रोकने वाले उन जानवरों को नहीं रोकेगें, इसलिये कि उनका गोश्त तो उन्हें खाने को मिलेगा। अब अंदाज़ा कर

लिया जाये कि इतना वक़्त गुज़र गया है कि क़ुर्बानी का जानवर अपने मक़ाम पर पहुँच गया होगा।

فَمَنۡ کَانَ مِنۡکُمۡ مَّرِیۡضًا اَوۡ بِہٖۤ اَذًی مِّنۡ رَّاۡسِہٖ

"फिर जो कोई तुममें से बीमार हो या उसके सिर में कोई तकलीफ़ हो"

यानि सिर में कोई ज़ख़्म वग़ैरह हो और उसकी वजह से बाल कटवाने ज़रूरी हो जायें।

فَفِدۡیَۃٌ مِّنۡ صِیَامٍ اَوۡ صَدَقَۃٍ اَوۡ نُسُکٍ ۚ

"तो वह फ़िदये के तौर पर रोज़े रखे या सदक़ा दे या क़ुर्बानी करे।"

अगर उस हदी के जानवर के काबा पहुँचने से पहले-पहले तुम्हें अपने बाल काटने पड़ें तो फ़िदया अदा करना होगा। यानि एक कमी जो रह गई है उसकी तलाफ़ी के लिये कफ़्फ़ारा अदा करना होगा। इस कफ़्फ़ारे की तीन सूरतें बयान हुई हैं: रोज़े, या सदक़ा या क़ुर्बानी। इसकी वज़ाहत अहादीससे नबवी ﷺ से होती है कि या तो तीन दिन के रोज़े रखे जायें, या छ: मिस्कीनों को खाना खिलाया जाये या कम से कम एक बकरी की क़ुर्बानी दी जाये। इस क़ुर्बानी को दमे जनायत कहते हैं।

فَاِذَاۤ اَمِنۡتُمۡ ٝ

"फिर जब तुम्हें अमन हासिल हो (और तुम सीधे बैतुल्लाह पहुँच सकते हो)"

فَمَنْ تَمَتَّعَ بِالْعُمْرَةِ إِلَى الْحَجِّ فَمَا اسْتَيْسَرَ مِنَ الْهَدْيِ

"तो जो कोई भी फ़ायदा उठाये उमरे का हज से क़ब्ल तो वह क़ुर्बानी पेश करे जो भी उसे मयस्सर हो।"

रसूल अल्लाह ﷺ की बेअसत से पहले अहले अरब के यहाँ एक सफ़र में हज और उमरा दोनों करना गुनाह समझा जाता था। उनके नज़दीक यह काबा की तौहीन थी। उनके यहाँ हज के लिये तीन महीने शवाल, ज़िल क़ादा और ज़िल हिज्जा थे, जबकि रज्जब का महीना उमरे के लिये मख़सूस था। वह उमरे के लिये अलैहदा सफ़र करते और हज के लिये अलैहदा। यह बात हुदूदे हरम में रहने वालों के लिये तो आसान थी, लेकिन इस उम्मत को तो पूरी दुनिया में फैलना था और दूर दराज़ से सफ़र करके आने वालों के लिये इसमें मशक़्क़त थी। लिहाज़ा शरीअते मुहम्मदी ﷺ में लोगों के लिये जहाँ और आसानियाँ पैदा की गईं वहाँ हज व उमरे के ज़िमन में यह आसानी भी पैदा की गई कि एक ही सफ़र में हज और उमरा दोनों को जमा कर लिया जाये। इसकी दो सूरतें हैं। एक यह कि पहले उमरा करके अहराम खोल दिया जाये और फिर आठवें ज़िल हिज्जा को हज का अहराम बाँध लिया जाये। यह "हज्जे तमत्तोअ" कहलाता है। दूसरी सूरत यह है कि हज के लिये अहराम बाँधा था, जाते ही उमरा भी कर लिया, लेकिन अहराम खोला नहीं और उसी अहराम मे हज भी कर लिया। यह "हज्जे क़िरान" कहलाता है। लेकिन अगर शुरू ही से सिर्फ़ हज का अहराम बाँधा जाये और उमरा ना किया जाये तो यह "हज्जे अफ़राद" कहलाता है।

क़िरान या तमत्तोअ करने वाले पर क़ुर्बानी ज़रूरी है। इमाम अबु हनीफ़ा रहि० इसे दमे शुक्र कहते हैं और क़ुर्बानी करने वाले को इसमें से खाने की इजाज़त देते हैं। इमाम शाफ़ई रहि० के नज़दीक यह दमे जबर है और क़ुर्बानी करने वाले को इसमें से खाने की इजाज़त नहीं है।

فَمَنۡ لَّمۡ یَجِدۡ فَصِیَامُ ثَلٰثَةِ اَیَّامٍ فِی الۡحَجِّ

"जिसको क़ुर्बानी ना मिले तो वह तीन दिन के रोज़े अय्यामे हज में रखे"

यानि ऐन अय्यामे हज में सातवें, आठवें और नौवें ज़िल हिज्जा को रोज़ा रखे। दसवें का रोज़ा नहीं हो सकता, वह ईद का दिन (यौमुल नहर) है।

وَسَبۡعَةٍ اِذَا رَجَعۡتُمۡ ؕ

"और सात रोज़े रखो जबकि तुम वापस पहुँच जाओ।"

अपने घरों में जाकर सात रोज़े रखो।

تِلۡكَ عَشَرَةٌ كَامِلَةٌ ؕ

"यह कुल दस (रोज़े) होंगे।"

ذٰلِكَ لِمَنۡ لَّمۡ یَكُنۡ اَهۡلُهٗ حَاضِرِی الۡمَسۡجِدِ الۡحَرَامِ ؕ

"यह (रिआयत) उसके लिये है जिसके घर वाले मस्जिदे हराम के क़रीब ना रहते हो।"

यानि एक ही सफ़र में हज और उमरा को जमा करने की रिआयत, ख़्वाह तमत्तोअ की सूरत में हो या क़िरान की सूरत

में, सिर्फ़ आफ़ाक़ी के लिये है, जिसके अहलो अयाल जवारे हरम में ना रहते हों, यानि जो हुदूदे ह़रम के बाहर से हज करने आया हो।

وَاتَّقُوا اللّٰهَ	*"और अल्लाह का तक़वा इख़्तियार करो"*
وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ شَدِيْدُ الْعِقَابِ ﴿١٩٦﴾	*"और ख़ूब जान लो कि अल्लाह तआला सज़ा देने में भी बहुत सख़्त है।"*

आयात 197 से 203 तक

اَلْحَجُّ اَشْهُرٌ مَّعْلُوْمٰتٌ ۚ فَمَنْ فَرَضَ فِيْهِنَّ الْحَجَّ فَلَا
رَفَثَ وَلَا فُسُوْقَ ۙ وَلَا جِدَالَ فِي الْحَجِّ ؕ وَمَا تَفْعَلُوْا
مِنْ خَيْرٍ يَّعْلَمْهُ اللّٰهُ ؕ وَتَزَوَّدُوْا فَاِنَّ خَيْرَ الزَّادِ
التَّقْوٰى ۡ وَاتَّقُوْنِ يٰٓاُولِي الْاَلْبَابِ ﴿١٩٧﴾ لَيْسَ عَلَيْكُمْ
جُنَاحٌ اَنْ تَبْتَغُوْا فَضْلًا مِّنْ رَّبِّكُمْ ؕ فَاِذَآ اَفَضْتُمْ
مِّنْ عَرَفٰتٍ فَاذْكُرُوا اللّٰهَ عِنْدَ الْمَشْعَرِ الْحَرَامِ ۠
وَاذْكُرُوْهُ كَمَا هَدٰىكُمْ ۚ وَاِنْ كُنْتُمْ مِّنْ قَبْلِهٖ لَمِنَ

الضَّآلِّيۡنَ ﴿۱۹۸﴾ ثُمَّ اَفِيۡضُوۡا مِنۡ حَيۡثُ اَفَاضَ النَّاسُ
وَاسۡتَغۡفِرُوا اللّٰهَ ‌ؕ اِنَّ اللّٰهَ غَفُوۡرٌ رَّحِيۡمٌ ﴿۱۹۹﴾ فَاِذَا
قَضَيۡتُمۡ مَّنَاسِكَكُمۡ فَاذۡكُرُوا اللّٰهَ كَذِكۡرِكُمۡ
اٰبَآءَكُمۡ اَوۡ اَشَدَّ ذِكۡرًا ‌ؕ فَمِنَ النَّاسِ مَنۡ يَّقُوۡلُ رَبَّنَآ
اٰتِنَا فِى الدُّنۡيَا وَمَا لَهٗ فِى الۡاٰخِرَةِ مِنۡ خَلَاقٍ ﴿۲۰۰﴾
وَمِنۡهُمۡ مَّنۡ يَّقُوۡلُ رَبَّنَآ اٰتِنَا فِى الدُّنۡيَا حَسَنَةً وَّفِى
الۡاٰخِرَةِ حَسَنَةً وَّقِنَا عَذَابَ النَّارِ ﴿۲۰۱﴾ اُولٰٓـئِكَ لَهُمۡ
نَصِيۡبٌ مِّمَّا كَسَبُوۡا ‌ؕ وَاللّٰهُ سَرِيۡعُ الۡحِسَابِ ﴿۲۰۲﴾
وَاذۡكُرُوا اللّٰهَ فِىۡٓ اَيَّامٍ مَّعۡدُوۡدٰتٍ‌ؕ فَمَنۡ تَعَجَّلَ فِىۡ
يَوۡمَيۡنِ فَلَاۤ اِثۡمَ عَلَيۡهِ‌ۚ وَمَنۡ تَاَخَّرَ فَلَاۤ اِثۡمَ عَلَيۡهِ ‌ۙ لِمَنِ
اتَّقٰى ‌ؕ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعۡلَمُوۡٓا اَنَّكُمۡ اِلَيۡهِ تُحۡشَرُوۡنَ ﴿۲۰۳﴾

पिछले रुकूअ से मनासिके हज का तज़किरा शुरू हो चुका है। अब इस पच्चीसवीं रुकूअ में हज का असल फ़लसफ़ा, उसकी असल हिकमत और उसकी असल रूह का बयान है। फ़रमाया:

आयत 197

اَلۡحَجُّ اَشۡهُرٌ مَّعۡلُوۡمٰتٌ ۚ

"हज के मालूम महीने हैं"

यानि अरब में जो भी पहले से रिवाज चला आ रहा था उसकी तौसीक़ (पुष्टी) फ़रमा दी गई कि वाक़ई हज के मवाक़ीत (टाइम) का तअय्युन अल्लाह तआला की तरफ़ से है।

فَمَنۡ فَرَضَ فِيۡهِنَّ الۡحَجَّ

"तो जिसने अपने ऊपर लाज़िम कर लिया इन महीनों में हज को"

लाज़िम करने से मुराद हज का अज़म और नियत पुख़्ता करना है और इसकी अलामत अहराम बाँध लेना है।

فَلَا رَفَثَ وَلَا فُسُوۡقَ ۙ وَلَا جِدَالَ فِى الۡحَجِّ ؕ

"तो (उसको ख़बरदार रहना चाहिये कि) दौराने हज ना तो शहवत की कोई बात करनी है, ना फ़िस्क़ व फ़जूर की और ना लड़ाई-झगड़े की।"

ज़माना-ए-हज में जिन बातों से रोका गया है उनमें अव्वलीन यह है कि शहवत की कोई बात नहीं होनी चाहिये। मियाँ-बीवी भी अगर साथ हज कर रहे हों तो अहराम की हालात में उनके लिये वही क़ैद है जो ऐतक़ाफ़ की हालात में है। बाक़ी यह कि फ़िसूक़ व जिदाल यानि अल्लाह की नाफ़रमानी और बाहम लड़ाई-झगड़ा तो वैसे ही नाजायज़ है, दौराने हज इससे ख़ासतौर पर रोक दिया गया। इसलिये कि बहुत बड़ी तादात में लोगों का इज्तमा होता है, सफ़र में भी लोग साथ होते हैं। इस हालत में लोगों के गुस्सों के पारे जल्दी चढ़ जाने का इम्कान होता है।

लिहाज़ा इससे ख़ासतौर पर रोका गया ताकि मनासिके हज की अदायगी के दौरान अमन व सुकून हो। वाक़्या यह है कि आज भी यह बात मौज्ज़ात में से है कि दुनिया भर से इतनी बड़ी तादात में लोगों के जमा होने के बावजूद वहाँ अमन व सुकून रहता है और जंग व जिदाल और झगड़ा व फ़साद वग़ैरह कहीं नज़र नहीं आता। मुझे अल्हम्दुलिल्लाह पाँच-छ: मर्तबा हज की सआदत हालिस हुई है, लेकिन वहाँ पर झगड़ा और गाली-ग़लौज की कैफ़ियत मैंने कभी अपनी आँखों से नहीं देखी।

وَمَا تَفْعَلُوْا مِنْ خَيْرٍ يَّعْلَمْهُ اللّٰهُ ؕ

"और नेकी के जो काम भी तुम करोगे अल्लाह उसको जानता है।"

हज के दौरान मनासिके हज पर मुस्तज़ाद (उच्चतम) जो भी नेकी के काम कर सको, मसलन नवाफ़िल पढ़ो या इज़ाफ़ी तवाफ़ करो तो तुम्हारी यह नेकियाँ अल्लाह के इल्म में होंगी, किसी और को दिखाने की ज़रुरत नहीं।

وَتَزَوَّدُوْا فَاِنَّ خَيْرَ الزَّادِ التَّقْوٰى ۫

"और ज़ादेराह साथ ले लिया करो, यक़ीनन बेहतरीन ज़ादेराह तक़वा है।"

इसके दो मायने लिये गये हैं। एक तो यह कि बेहतरीन ज़ादेराह तक़वा है। यानि सफ़रे हज में माद्दी ज़ादेराह के अलावा तक़वा की पूँजी भी ज़रूरी है। अगर आपने अख़राजाते सफ़र के लिये रुपया-पैसा तो वाफ़र (पर्याप्त) ले लिया, लेकिन तक़वा की पूँजी से तही दामन (खाली) रहे तो

दौराने हज अच्छी सहूलियात तो हासिल कर लेंगे मगर हज की रूह और उसकी बरकात से महरूम रहेंगे।

लेकिन इसका एक दूसरा मफ़हूम भी बहुत अहम है कि अगर इंसान ख़ुद अपना ज़ादेराह साथ ना ले तो फिर वहाँ दूसरों से माँगना पड़ता है। इस तरह यहाँ "तक़वा" से मुराद सवाल से बचना है। यानि बेहतर यह है कि ज़ादेराह लेकर चलो ताकि तुम्हें किसी के सामने साइल ना बनना पड़े। अगर तुम साहिबे इस्तताअत नहीं हो तो हज तुम पर फ़र्ज़ ही नहीं है। और एक शय जो तुम पर फ़र्ज़ नहीं है उसके लिये ख़्वाह मख़्वाह वहाँ जाकर भीख माँगना या यहाँ से भीख माँग कर या चंदा इकट्ठा करके जाना क़तअन ग़लत हरकत है।

التَّقْوٰى ۡ وَاتَّقُوْنِ يٰٓاُولِي الْاَلْبَابِ ﴿١٩٧﴾	*"और मेरा ही तक़वा इख़्तियार करो ऐ होशमंदो!"*

आयत 198

لَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَنْ تَبْتَغُوْا فَضْلًا مِّنْ رَّبِّكُمْ ؕ	*"तुम पर इस अम्र में कोई गुनाह नहीं है कि तुम (सफ़रे हज के दौरान) अपने रब का फ़ज़ल भी तलाश करो।"*

आदमी हिन्दुस्तान या पाकिस्तान से हज के लिये जा रहा है और वह अपने साथ कुछ ऐसी अजनास (चीज़ें) साथ ले जाये

जिन्हें वहाँ पर बेच कर कुछ नफ़ा हासिल कर ले तो यह तक़्वा के मनाफ़ी नहीं है।

فَاِذَآ اَفَضۡتُمۡ مِّنۡ عَرَفٰتٍ فَاذۡكُرُوا اللّٰهَ عِنۡدَ الۡمَشۡعَرِ الۡحَرَامِ

"पस जब तुम अराफ़ात से वापस लौटो तो अल्लाह को याद करो मशअरे हराम के नज़दीक।"

वक़ूफ़े अराफ़ात (अराफ़ात में ठहरना) हज का रुकने आज़म है। रसूल अल्लाह ﷺ का इर्शाद है: ((اَلْحَجُّ عَرَفَةٌ))(24) यानि असल हज तो अरफ़ा ही है। अगर किसी से हज के बाक़ी तमाम मनासिक रह जायें, सिर्फ़ क़यामे अरफ़ा में शमूलियत हो जाये तो उसका हज हो गया, बाक़ी जो चीज़ें रह गई हैं उनका कफ़्फ़ारा अदा किया जायेगा। लेकिन अगर कोई शख़्स अराफ़ात के क़याम में ही शरीक नहीं हुआ तो फिर उसका हज नहीं हुआ। अय्यामे हज का टाइम टेबल नोट कीजिये कि 8 ज़िल हिज्जा को मक्का मुकर्रमा से निकल कर रात मिना में गुज़ारना होती है। अग़ला दिन 9 ज़िल हिज्जा यौमे अरफ़ा है। इस रोज़ सुबह को अराफ़ात के लिये क़ाफ़िले चलते हैं और कोशिश यह होती है कि दोपहर से पहले वहाँ पहुँच जाया जाये। वहाँ पर ज़ुहर के वक़्त ज़ुहर और अस्र दोनों नमाज़े मिला कर पढ़ी जाती हैं। इसके बाद से ग़ुरूबे आफ़ताब तक अराफ़ात का क़याम है, जिसमें कोई नमाज़ नहीं। यानि रिवायती इबादात के सब दरवाज़े बंद हैं। अब तो सिर्फ़ दुआ है। अगर आपके अन्दर दुआ की एक रूह पैदा हो चुकी है, आप अपने रब से हम कलाम हो सकते हैं और

आपको हलावते मुनाजात हासिल हो गई है तो बस दुआ माँगते रहिये। क़यामे अरफ़ा के दौरान खड़े होकर या बैठे हुए, जिस तरह भी हो अल्लाह से मुनाजात की जाये। या इसमें अगर किसी वजह से कमी हो जाये तो आदमी तिलावत करे। लेकिन आम नमाज़ अब कोई नहीं। 9 ज़िल हिज्जा को वक़ूफ़े अराफ़ात के बाद मग़रिब की नमाज़ का वक़्त हो चुकने के बाद अराफ़ात से रवानगी है, लेकिन वहाँ मग़रिब की नमाज़ पढ़ने की इजाज़त नहीं है। बल्कि अब मुज़्दलफ़ा में जाकर मग़रिब और इशा दोनों नमाज़ें जमा करके अदा करनी हैं और रात वहीं खुले आसमान तले बसर करनी है। यह मुज़्दलफ़ा का क़याम है। मशअरे हराम एक पहाड़ का नाम है जो मुज़्दलफ़ा में वाक़ेअ है।

وَاذْكُرُوْهُ كَمَا هَدٰىكُمْ

"और याद करो उसे जैसे कि उसने तुम्हें हिदायत की है।"

यानि अल्लाह का ज़िक्र करो जिस तरह अल्लाह ने तुम्हें अपने रसूल ﷺ के ज़रिये सिखाया है। ज़िक्र के जो तौर तरीक़े रसूल ﷺ ने सिखाये हैं उन्हें इख़्तियार करो और ज़माना-ए-जाहिलियत के तरीक़े तर्क कर दो।

وَاِنْ كُنْتُمْ مِّنْ قَبْلِهٖ لَمِنَ الضَّاۗلِّيْنَ ۝١٩٨

"और यक़ीनन इससे पहले तो तुम गुमराह लोगों में से थे।"

तुम हज की हक़ीक़त से नावाक़िफ़ थे। हज की बस शक़्ल बाक़ी रह गई थी, इसकी रूह ख़त्म हो गई थी, इसके मनासिक़ भी रद्दोबदल कर दिया गया था।

आयत 199

ثُمَّ اَفِيْضُوْا مِنْ حَيْثُ اَفَاضَ النَّاسُ

"फिर तुम भी वहीं से पलटो जहाँ से सब लोग पलटते हैं"

ज़माना-ए-जाहिलियत में क़ुरैशे मक्का अराफ़ात तक ना जाते थे। उनका कहना था कि हमारी ख़ास हैसियत है, लिहाज़ा हम मिना ही में मुक़ीम रहेंगे, बाहर से आने वाले लोग अराफ़ात जाएँ और वहाँ से तवाफ़ के लिये वापस लौटें, यह सारे मनासिक हमारे लिये नहीं हैं। यहाँ फ़रमाया गया कि यह एक ग़लत बात है जो तुमने इजाद कर ली है। तुम भी वहीं से तवाफ़ के लिये वापिस लौटो जहाँ से दूसरे लोग लौटते हैं, यानि अराफ़ात से।

وَاسْتَغْفِرُوا اللّٰهَ ؕ

"और अल्लाह से इस्तग़फ़ार करते रहो।"

अपनी अगली तक़सीर (ग़लती) पर नादम (खेद) हो और अल्लाह से अपने गुनाहों की मग़फ़िरत चाहो।

اِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ﴿١٩٩﴾

"यक़ीनन अल्लाह बख़्शने वाला रहम फ़रमाने वाला है।"

आयत 200

فَاِذَا قَضَيْتُمْ مَّنَاسِكَكُمْ

"और जब तुम अपने मनासिके हज अदा कर चुको"

فَاذْكُرُوا اللّٰهَ كَذِكْرِكُمْ اٰبَآءَكُمْ

"तो अब अल्लाह का ज़िक्र करो जैसे कि तुम अपने आबा व अजदाद का ज़िक्र करते रहे हो"

اَوْ اَشَدَّ ذِكْرًا ۭ

"बल्कि उससे भी ज़्यादा शद्दोमद के साथ अल्लाह का ज़िक्र करो।"

यानि दसवीं ज़िल हिज्जा को जब अफ़आले हज से फ़रागत पा चुको तो क़यामे मिना के दौरान अल्लाह का ख़ूब ज़िक्र करो जैसे ज़माना-ए-जाहिलियत में अपने आबा व अजदाद का ज़िक्र किया करते थे, बल्कि इससे भी बढ़-चढ़ कर अल्लाह का ज़िक्र करो। उनका क़दीम दस्तूर था कि हज से फ़ारिग़ होकर तीन दिन मिना में क़याम करते और बाज़ार लगाते। वहाँ मेले का सा समाँ होता जहाँ मुख़्तलिफ़ क़बीलों के शायर अपने क़बीलों की मदह सराई (गुणगान) करते थे और अपने अस्लाफ़ की अज़मत बयान करते थे। अल्लाह का ज़िक्र ख़त्म हो चुका था। फ़रमाया कि जिस शद्दोमद के साथ तुम अपने आबा व अजदाद का ज़िक्र करते रहे हो अब उसी अंदाज़ से, बल्कि उससे भी ज़्यादा शद्दोमद के साथ, अल्लाह का ज़िक्र करो।

فَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّقُوْلُ رَبَّنَآ اٰتِنَا فِي الدُّنْيَا

"लोगों में से वह भी हैं जो यही कहते रहते हैं कि ऐ हमारे रब! हमें दुनिया ही में दे दे, और ऐसे लोगों के लिये आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं है।"

وَمَا لَهٗ فِی الْاٰخِرَةِ مِنْ خَلَاقٍ ۝۲۰۰

यानि अर्ज़े हरम में पहुँच कर दौराने हज भी उनकी सारी दुआएँ दुनयवी चीजों ही के लिये हैं। चुनाँचे वह माल के लिये, औलाद के लिये, तरक़्क़ी के लिये, दुनयवी ज़रूरियात के लिये और अपनी मुश्किलात के हल के लिये दुआ करते हैं। इसलिये कि उनके दिलों में दुनिया रची-बसी हुई है। जैसे बनी इसराइल के दिलों में बछड़े का तक़द्दुस और उसकी मुहब्बत जागज़ें (inherit) कर दी गई थी उसी तरह हमारे दिलों में दुनिया की मुहब्बत घर कर चुकी है, लिहाज़ा वहाँ जाकर भी दुनिया ही की दुआएँ माँगते हैं। यहाँ वाज़ेह फ़रमा दिया गया कि ऐसे लोगों के लिये फिर आख़िरत में कोई हिस्सा नहीं है।

आयत 201

وَمِنْهُمْ مَّنْ يَّقُوْلُ

"और उनमें से वह भी हैं जो यह कहते हैं"

رَبَّنَآ اٰتِنَا فِی الدُّنْيَا حَسَنَةً وَّفِی الْاٰخِرَةِ

"परवरदिगार! हमें इस दुनिया में भी ख़ैर अता फ़रमा और आख़िरत में भी ख़ैर अता फ़रमा और हमें बचा ले आग के अज़ाब से।"

حَسَنَةً وَّقِنَا عَذَابَ

النَّارِ ۝٢٠١

यही वह दुआ है जो तवाफ़ के हर चक्कर में रुकने यमानी से हजरे असवद के दरमियान चलते हुए माँगी जाती है। दुनिया का सबसे बड़ा ख़ैर ईमान और हिदायत है। दुनिया का कोई ख़ैर ख़ैर नहीं है जब तक कि उसके साथ हिदायत और ईमान ना हो। चुनाँचे सबसे पहले इंसान हिदायत, ईमान और इस्तक़ामत (दृढ़ता) तलब करे, फिर उसके साथ अल्लाह तआला से दुनिया में कुशादगी (विस्तार) और रिज़्क़ में कशाइश (आसानी) की दुआ भी करे तो यह बात पसंदीदा है।

आयत 202

أُولَٰٓئِكَ لَهُمۡ نَصِيبٌ مِّمَّا كَسَبُواْۚ

“उन्हीं लोगों के लिये हिस्सा होगा उसमें से जो उन्होंने कमाया।”

यह अल्फ़ाज़ बहुत अहम हैं। महज़ दुआ काफ़ी नहीं हो जायेगी, बल्कि अपना अमल भी ज़रूरी है। यहाँ पर यह जो फ़रमाया कि “उनके लिये हिस्सा है उसमें से जो उन्होंने कमाया” इस पर सवाल पैदा होता है कि उसमें से क्यों? वह तो सारा मिलना चाहिये! लेकिन नहीं, बंदे को अने आमाल पर ग़रह (संतुष्ट) नहीं होना चाहिये, उसे डरते रहना चाहिये कि कहीं किसी मसले में मेरी नीयत में फ़साद ना आ गया

हो, मुमकिन है मेरे किसी अमल के अंदर कोई कमी या कोताही हो गई हो। इसलिये यह ना समझ लें कि जो कुछ भी किया गया है उसका अजर लाज़िमन मिलेगा। जो कुछ उन्होंने कमाया है उसमें अगर ख़ुलूस है, रियाकारी नहीं है, उसके तमाम आदाब और शराइत मलहूज़ रखे गये हैं तो उनको उनका हिस्सा मिलेगा।

وَاللّٰهُ سَرِيْعُ الْحِسَابِ ﴿٢٠٢﴾

"और अल्लाह जल्द हिसाब चुकाने वाला है।"

अल्लाह तआला को हिसाब चुकाने में देर नहीं लगती, वह बहुत जल्दी हिसाब कर लेगा। अब तो हमारे लिये यह समझ लेना कुछ मुश्किल नहीं रहा, हमारे यहाँ कम्पयूटर्ज़ पर कितनी जल्दी हिसाब हो जाता है, अल्लाह के यहाँ तो पता नहीं कैसा सुपर कम्प्यूटर होगा कि उसे हिसाब निकालने में ज़रा भी देर नहीं लगेगी!

आयत 203

وَاذْكُرُوا اللّٰهَ فِيْٓ اَيَّامٍ مَّعْدُوْدٰتٍ ۭ

"और ज़िक्र करो अल्लाह का गिनती के चंद दिनों में।"

इससे मुराद जिल हिज्जा की ग्याहरवीं, बारहवीं और तेरहवीं तारीख़ें हैं जिनमें यौमे नहर के बाद मिना में क़याम किया जाता है। इन तीनों दिनों में कंकरियाँ मारने के वक़्त और हर नमाज़ के बाद तकबीर कहने का हुक्म है। दीग़र

अवक़ात में भी इन दिनों में तकबीर और ज़िक्रे इलाही कसरत से करना चाहिये।

فَمَنۡ تَعَجَّلَ فِیۡ یَوۡمَیۡنِ فَلَاۤ اِثۡمَ عَلَیۡہِ

"तो जो कोई दो दिन ही में जल्दी से वापस आ जाये तो उस पर कोई गुनाह नहीं।"

यानि जो कोई तीन दिन पूरे नहीं करता, बल्कि दो दिन ही में वापसी इख़्तियार कर लेता है तो उस पर कोई गुनाह नहीं है।

وَمَنۡ تَاَخَّرَ

"और जो पीछे रहे"

यानि मिना में ठहरा रहे और तीन दिन की मिक़दार पूरी करे।

فَلَاۤ اِثۡمَ عَلَیۡہِ ۙ لِمَنِ اتَّقٰی ؕ

"तो उस पर भी कोई गुनाह नहीं, बशर्ते कि वह तक़वा इख़्तियार करे।"

असल चीज़ तक़वा है। जो कोई ज़माना-ए-हज में परहेज़गारी की रविश इख़्तियार किये रखे तो उस पर इस बात में कोई गुनाह नहीं कि मिना में दो दिन क़याम करे या तीन दिन। अल्लाह तआला के यहाँ उसका अजर महफ़ूज़ है। अगर किसी शख़्स ने मिना में क़याम तो तीन दिन का किया, लेकिन तीसरे दिन उसने कुछ और ही हरकतें शुरू कर दीं, इसलिये की जी उकताया हुआ है और तबीयत के अंदर ठहराव नहीं है तो वह तीसरा दिन उसके लिये कुछ ख़ास मुफ़ीद साबित नहीं होगा। असल शय जो अल्लाह के यहाँ

क़ुबूलियत के लिए शर्तें लाज़िम है, वह तक़वा है। आगे फिर फ़रमाया:

وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّكُمْ اِلَيْهِ تُحْشَرُوْنَ ۝٢٠٣

"और अल्लाह का तक़वा इख़्तियार करो और ख़ूब जान रखो कि यक़ीनन तुम्हें उसी की जानिब जमा कर दिया जायेगा।"

तुम सबके सब हाँक कर उसी की जनाब में ले जाये जाओगे।

आयात 204 से 210 तक

وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يُّعْجِبُكَ قَوْلُهٗ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا
وَيُشْهِدُ اللّٰهَ عَلٰي مَا فِيْ قَلْبِهٖ ۙ وَھُوَ اَلَدُّ الْخِصَامِ ۝٢٠٤
وَاِذَا تَوَلّٰى سَعٰى فِي الْاَرْضِ لِيُفْسِدَ فِيْهَا وَيُهْلِكَ
الْحَرْثَ وَالنَّسْلَ ۭ وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ الْفَسَادَ ۝٢٠٥ وَاِذَا
قِيْلَ لَهُ اتَّقِ اللّٰهَ اَخَذَتْهُ الْعِزَّةُ بِالْاِثْمِ فَحَسْبُهٗ جَهَنَّمُ ۭ
وَلَبِئْسَ الْمِهَادُ ۝٢٠٦ وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّشْرِيْ نَفْسَهُ
ابْتِغَاۗءَ مَرْضَاتِ اللّٰهِ ۭ وَاللّٰهُ رَءُوْفٌۢ بِالْعِبَادِ ۝٢٠٧

يَاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا ادْخُلُوْا فِى السِّلْمِ كَآفَّةً ۠ وَلَا
تَتَّبِعُوْا خُطُوٰتِ الشَّيْطٰنِ ۭ اِنَّهٗ لَكُمْ عَدُوٌّ مُّبِيْنٌ ۲۰۸
فَاِنْ زَلَلْتُمْ مِّنْۢ بَعْدِ مَا جَاۗءَتْكُمُ الْبَيِّنٰتُ فَاعْلَمُوْٓا
اَنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ۲۰۹ هَلْ يَنْظُرُوْنَ اِلَّآ اَنْ يَّاْتِيَهُمُ
اللّٰهُ فِيْ ظُلَلٍ مِّنَ الْغَمَامِ وَالْمَلٰۗىِٕكَةُ وَقُضِيَ الْاَمْرُ ۭ
وَاِلَى اللّٰهِ تُرْجَعُ الْاُمُوْرُ ۲۱۰

आयत 204

وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يُّعْجِبُكَ قَوْلُهٗ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا

"और लोगों में से कोई शख़्स ऐसा भी है जिसकी बातें तुम्हें बहुत अच्छी लगती हैं दुनिया की ज़िन्दगी में"

यह मुनाफ़िक़ीन में से एक ख़ास गिरोह का तज़किरा हो रहा है। मुनाफ़िक़ीन में से बाज़ तो ऐसे थे कि उनकी ज़बानों पर भी निफ़ाक़ वाज़ेह तौर पर ज़ाहिर हो जाता था, जबकि मुनाफ़िक़ीन की एक क़िस्म वह थी कि बड़े चापलूस और चर्प ज़बान थे। उनकी गुफ़्तुगू ऐसी होती थी गोया वह तो बड़े ही मुख़्लिस और बड़े ही फ़िदाकार हैं। अपना मौक़फ़ इस अंदाज़ से पेश करते कि यूँ लगता था कि बड़ी ही नेक नियती पर मब्नी है, लेकिन उनका किरदार इन्तहाई घिनौना

था। उनकी सारी भाग-दौड़ रसूल अल्लाह ﷺ और इस्लाम की मुख़ालफ़त की राह में होती थी। उनके बारे में फ़रमाया कि बाज़ लोग ऐसे भी हैं कि जिनकी बातें दुनिया की ज़िन्दगी में तुम्हें बहुत अच्छी लगती हैं।

وَيُشْهِدُ اللّٰهَ عَلٰى مَا فِيْ قَلْبِهٖ ۙ

"और वह अल्लाह को भी गवाह ठहराता है अपने दिल की बात पर।"

उसका अंदाज़े कलाम यह होता है कि मैं जो कुछ कह रहा हूँ अल्लाह जानता है कि ख़ुलूस से कह रहा हूँ, पूरी नेक नियती से कह रहा हूँ। मुनाफ़िक़ की एक ख़ुसूसियत यह भी है कि वह अपने आपको क़ाबिले ऐतबार साबित करने के लिये बात-बात पर क़सम खाता है।

وَهُوَ اَلَدُّ الْخِصَامِ ۝٢٠٤

"हालाँकि फ़िल वाक़ेअ वह शदीद तरीन दुश्मन है।"

आयत 205

وَاِذَا تَوَلّٰى سَعٰى فِي الْاَرْضِ

"और जब वह पीठ फेर कर जाता है तो ज़मीन में भाग-दौड़ करता है"

لِيُفْسِدَ فِيْهَا وَيُهْلِكَ الْحَرْثَ وَالنَّسْلَ ۭ

"ताकि उसमें फ़साद मचाये और खेती और नस्ल को तबाह करे।"

यह लोग जब आप ﷺ के पास से हटते हैं तो उनकी सारी भाग-दौड़ इसलिये होती है कि ज़मीन में फ़साद मचायें और लोगों की खेतियाँ और जानें तबाह व बर्बाद करें।"

وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ الْفَسَادَ ﴿٢٠٥﴾

"और अल्लाह तआला को फ़साद बिल्कुल पसंद नहीं है।"

आयत 206

وَإِذَا قِيلَ لَهُ اتَّقِ اللّٰهَ أَخَذَتْهُ الْعِزَّةُ بِالْإِثْمِ

"और जब उससे कहा जाता है कि अल्लाह से डरो तो झूठी इज़्ज़ते नफ़्स उसको गुनाह पर और जमा देती है।"

जब ऐसे शख़्स से कहा जाता है कि तुम अल्लाह का ख़ौफ़ करो, अल्लाह से डरो, तुम बातें ऐसी ख़ूबसूरत करते हो और अमल तुम्हारा इतना घिनौना है, ज़रा सोचो तो सही, तो उसको अपनी झूठी अना और इज़्ज़ते नफ़्स गुनाह पर और जमा देती है। एक शख़्स वह होता है जिससे ख़ता हो गई तो उसने अपनी ग़लती तस्लीम कर ली और अपनी इस्लाह कर ली। जबकि एक शख़्स वह है जिसका तर्ज़े अमल यह होता है कि मैं कैसे मान लूँ कि मेरी ग़लती है? उसकी झूठी अना और झूठी इज़्ज़ते नफ़्स उसे गुनाह से हटने नहीं देती बल्कि मज़ीद आमादा करती है।

فَحَسْبُهُ جَهَنَّمُ

"उसके लिये जहन्नम काफ़ी है।"

وَلَبِئْسَ الْمِهَادُ ۝٢٠٦

"और यक़ीनन वह बुरा ठिकाना है।"

रिवायात में आता है कि मुनाफ़क़ीन मदीना में एक शख़्स अख़नस बिन शरीक़ था, यह उसका किरदार बयान हुआ है। शाने नुज़ूल के ऐतबार से यह बात ठीक है और तावीले ख़ास में इसको भी सामने रखा जायेगा, लेकिन दरहक़ीक़त यह एक किरदार है जो आपको हर जगह मिलेगा। असल में इस किरदार को पहचानना चाहिये और इसके हवाले से अल्लाह तआला से हिदायत तलब करना चाहिये कि इस किरदार से अल्लाह तआला हमें अपने हिफ़्ज़ो अमान में रखे।

आयत 207

وَمِنَ النَّاسِ مَنْ يَّشْرِيْ نَفْسَهُ ابْتِغَاۗءَ مَرْضَاتِ اللّٰهِ ۭ

"और लोगों में एक शख़्स वह है जो बेच देता है अपनी जान को अल्लाह की रज़ा के लिये।"

क़ुरान का यह आम अस्लूब है कि किरदारों का फ़ौरी तक़ाबुल (simultaneo-us contrast) करता है। चुनाँचे एक नपसंदीदा किरदार के ज़िक्र के फ़ौरन बाद पसंदीदा किरदार का ज़िक्र किया गया कि लोगों में से वह भी हैं जो अपने आपको अल्लाह की रज़ाजोई के लिये बेच देते हैं और अपना तन-मन-धन क़ुर्बान करने को हर वक़्त तैयार रहते हैं। {اِنَّ صَلَاتِيْ وَنُسُكِيْ وَمَحْيَايَ وَمَمَاتِيْ لِلّٰهِ رَبِّ الْعٰلَمِيْنَ}

وَاللّٰهُ رَءُوْفٌۢ بِالْعِبَادِ ۝٢٠٧

"और अल्लाह अपने ऐसे बंदों के हक़ में बहुत शफ़ीक़ है।"

जिस शख़्स ने अल्लाह की रज़ाजोई के लिये अपना सब कुछ बेच देने का ईरादा कर लिया हो, नीयत कर ली हो, उससे भी कभी कोई कोताही हो सकती है, कभी जज़्बात में आकर कोई ग़लत क़दम उठ सकता है। अपने ऐसे बंदों को अल्लाह तआला बड़ी शफ़्क़त और मेहरबानी के साथ माफ़ फ़रमायेगा।

आयत 208

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا ادْخُلُوْا فِي السِّلْمِ كَاۗفَّةً ۠

"ऐ अहले ईमान! इस्लाम में दाख़िल हो जाओ पूरे के पूरे।"

अहले ईमान से अब वह बात कही जा रही है जिसका माकूस (converse) हम बनी इसराइल से ख़िताब के ज़ेल में (आयत:85 में) पढ़ चुके हैं:

اَفَتُؤْمِنُوْنَ بِبَعْضِ الْكِتٰبِ وَتَكْفُرُوْنَ بِبَعْضٍ ۚ فَمَا جَزَاۗءُ مَنْ يَّفْعَلُ ذٰلِكَ مِنْكُمْ اِلَّا خِزْيٌ فِي الْحَيٰوةِ الدُّنْيَا ۚ وَيَوْمَ الْقِيٰمَةِ يُرَدُّوْنَ اِلٰٓى اَشَدِّ الْعَذَابِ

“क्या तुम हमारी किताब (और दीन व शरीअत) के एक हिस्से को मानते हो और एक को रद्द कर देते हो? सो जो कोई भी तुममें से यह रविश इख़्तियार करें उनकी कोई सज़ा इसके सिवा नहीं है कि दुनिया में ज़िल्लत व ख्वारी उन पर मुसल्लत कर दी जाये और क़यामत के दिन उनको शदीद तरीन अज़ाब में झोंक दिया जाये।”

अब मुसबत पैराए (सकारात्मक अंदाज़) में मुसलमानों से कहा जा रहा है कि अल्लाह की इताअत में पूरे के पूरे दाख़िल हो जाओ- तहफ्फ़ुज़ात (reservati-ons) और इस्तसनात (exceptions) के साथ नहीं। यह तर्ज़े अमल ना हो कि अल्लाह की बंदगी तो करनी है, मगर फ़लाँ मामले में नहीं। अल्लाह का हुक्म को मानना है लेकिन यह हुक्म मैं नहीं मान सकता। अल्लाह के अहकाम में से किसी एक की नफ़ी से कुल की नफ़ी हो जायेगी। अल्लाह तआला जुज़्वी इताअत क़ुबूल नहीं करता।

وَلَا تَتَّبِعُوْا خُطُوٰتِ الشَّيْطٰنِ ۭ

“और शैतान के नक़्शे क़दम की पैरवी ना करो।”

اِنَّهٗ لَكُمْ عَدُوٌّ مُّبِيْنٌ ۝۲۰۸

“वह यक़ीनन तुम्हारा बड़ा खुला दुश्मन है।”

आयत 209

فَاِنۡ زَلَلۡتُمۡ مِّنۡۢ بَعۡدِ مَا جَآءَتۡكُمُ الۡبَيِّنٰتُ

“फिर अगर तुम फ़िसल गये इसके बाद भी कि तुम्हारे पास यह वाज़ेह तालीमात आ चुकी हैं।”

فَاعۡلَمُوۡٓا اَنَّ اللّٰهَ عَزِيۡزٌ حَكِيۡمٌ ۝٢٠٩

“तो जान लो कि अल्लाह तआला ज़बरदस्त है, हिकमत वाला है।”

इसमें तहदीद (हद) और धमकी का पहलू है कि फिर अल्लाह की पकड़ भी बहुत सख़्त होगी। और फिर यह कि वह हकीम भी है, उसकी पकड़ में भी हिकमत है, अगर उसकी तरफ़ से पकड़ का मामला ना हो तो फिर दीन का पूरा निज़ाम बे मायने होकर रह जाता है। अगर अल्लाह की तरफ़ से किसी गुनाह पर पकड़ ही नहीं है तो फिर आज़माइश क्या हुई? फिर जज़ा व सज़ा और जन्नत व दोज़ख़ का मामला क्या हुआ?

आयत 210

هَلۡ يَنۡظُرُوۡنَ اِلَّآ اَنۡ يَّاۡتِيَهُمُ اللّٰهُ فِىۡ ظُلَلٍ مِّنَ الۡغَمَامِ وَالۡمَلٰٓئِكَةُ وَقُضِىَ الۡاَمۡرُ ؕ

“क्या यह इसी का इन्तेज़ार कर रह हैं कि आ जाये इन पर अल्लाह तआला बादलों के सायबानों में और फ़रिश्ते और फ़ैसला चुका दिया जाये?”

यानि जो लोग अल्लाह तआला की तरफ़ से वाज़ेह अहकामात और तम्बिहात आ जाने के बाद भी कजरवी से बाज़ नहीं आते तो क्या वह इस बात के मुन्तज़िर हैं कि अल्लाह तआला उनको अपना जलाल दिखाये और फ़रिश्तों की अफ़वाजे क़ाहरा के साथ ज़ाहिर होकर उनका हिसाब चुका दे?

इंसान का नफ़्स उसे एक तो यह पट्टी पढ़ाता है कि दीन के इस हिस्से पर तो आराम से अमल करते रहो जो आसान है, बाक़ी फिर देखा जायेगा। गोया *"मीठा-मीठा हप और कड़वा कड़वा थू।"* दूसरी पट्टी यह पढ़ाता है कि ठीक है यह भी अल्लाह का हुक्म है और दीन का भी तक़ाज़ा है, लेकिन अभी ज़रा ज़िम्मेदारियों से फ़ारिग़ हो जायें, अभी ज़रा बच्चों के मामलात हैं, बच्चे बरसरे रोज़गार हो जायें, बच्चियों के हाथ पीले हो जायें, मैं रिटायरमेंट ले लूँ, और अपना मकान बना लूँ, फिर मैं अपने आपको दीन के लिये ख़ालिस कर लूँगा। यह नफ़्स का सबसे बड़ा धोखा है। इस तरह वक़्त गुज़रते-गुज़रते इंसान मौत की वादी में चला जाता है। क्या मालूम मौत की घड़ी कब आ जाये! यह मोहलते उम्र तो अचानक ख़त्म हो सकती है। पूरी दुनिया की क़यामत भी जब आयेगी अचानक ही आयेगी और हर शख़्स की ज़ाति क़यामत तो उसके सर पर तलवार की तरह लटकी हुई है। अज़रुए हदीसे नबवी ﷺ:

((مَنْ مَّاتَ فَقَدْ قَامَتْ قِيَامَتُهٗ))(25)

"जो मर गया तो उसकी क़यामत तो आ गई!"

तो क्या तुम्हारे पास कोई गारंटी है कि यह सारे काम कर लोगे और यह सारे काम कर चुकने के बाद ज़िन्दा रहोगे

और तुम्हारे जिस्म में तवानाई (ताक़त) की कोई रमक़ (कण) भी बाक़ी रह जायेगी कि दीन का कोई काम कर सको? तो फिर तुम किस चीज़ का इन्तेज़ार कर रह हो? हो सकता है अचानक अल्लाह की तरफ़ से मोहलत ख़त्म हो जाये।

وَاِلَی اللّٰہِ تُرۡجَعُ الۡاُمُوۡرُ ع ﴿۲۱۰﴾

“और यक़ीनन तमाम मामलात अल्लाह ही की तरफ़ लौटा दिये जाएँगे।”

आयात 211 से 216 तक

سَلۡ بَنِیۡۤ اِسۡرَآءِیۡلَ کَمۡ اٰتَیۡنٰہُمۡ مِّنۡ اٰیَۃٍۭ بَیِّنَۃٍ ؕ وَ مَنۡ
یُّبَدِّلۡ نِعۡمَۃَ اللّٰہِ مِنۡۢ بَعۡدِ مَا جَآءَتۡہُ فَاِنَّ اللّٰہَ شَدِیۡدُ
الۡعِقَابِ ﴿۲۱۱﴾ زُیِّنَ لِلَّذِیۡنَ کَفَرُوا الۡحَیٰوۃُ الدُّنۡیَا
وَ یَسۡخَرُوۡنَ مِنَ الَّذِیۡنَ اٰمَنُوۡا وَ الَّذِیۡنَ اتَّقَوۡا فَوۡقَہُمۡ
یَوۡمَ الۡقِیٰمَۃِ ؕ وَ اللّٰہُ یَرۡزُقُ مَنۡ یَّشَآءُ بِغَیۡرِ حِسَابٍ
﴿۲۱۲﴾ کَانَ النَّاسُ اُمَّۃً وَّاحِدَۃً ۟ فَبَعَثَ اللّٰہُ النَّبِیّٖنَ
مُبَشِّرِیۡنَ وَ مُنۡذِرِیۡنَ ۪ وَ اَنۡزَلَ مَعَہُمُ الۡکِتٰبَ بِالۡحَقِّ
لِیَحۡکُمَ بَیۡنَ النَّاسِ فِیۡمَا اخۡتَلَفُوۡا فِیۡہِ ؕ وَ مَا اخۡتَلَفَ
فِیۡہِ اِلَّا الَّذِیۡنَ اُوۡتُوۡہُ مِنۡۢ بَعۡدِ مَا جَآءَتۡہُمُ الۡبَیِّنٰتُ

بَغْيًا بَيْنَهُمْ ۚ فَهَدَى اللّٰهُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لِمَا اخْتَلَفُوْا
فِيْهِ مِنَ الْحَقِّ بِاِذْنِهٖ ؕ وَاللّٰهُ يَهْدِيْ مَنْ يَّشَآءُ اِلٰى
صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ﴿٢١٣﴾ اَمْ حَسِبْتُمْ اَنْ تَدْخُلُوا الْجَنَّةَ
وَلَمَّا يَاْتِكُمْ مَّثَلُ الَّذِيْنَ خَلَوْا مِنْ قَبْلِكُمْ ؕ مَسَّتْهُمُ
الْبَاْسَآءُ وَالضَّرَّآءُ وَزُلْزِلُوْا حَتّٰى يَقُوْلَ الرَّسُوْلُ
وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مَعَهٗ مَتٰى نَصْرُ اللّٰهِ ؕ اَلَآ اِنَّ نَصْرَ اللّٰهِ
قَرِيْبٌ ﴿٢١٤﴾ يَسْــَٔلُوْنَكَ مَاذَا يُنْفِقُوْنَ ؕ۬ قُلْ مَآ اَنْفَقْتُمْ
مِّنْ خَيْرٍ فَلِلْوَالِدَيْنِ وَالْاَقْرَبِيْنَ وَالْيَتٰمٰى
وَالْمَسٰكِيْنِ وَابْنِ السَّبِيْلِ ؕ وَمَا تَفْعَلُوْا مِنْ خَيْرٍ
فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيْمٌ ﴿٢١٥﴾ كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِتَالُ وَهُوَ
كُرْهٌ لَّكُمْ ۚ وَعَسٰٓى اَنْ تَكْرَهُوْا شَيْـًٔا وَّهُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ ۚ
وَعَسٰٓى اَنْ تُحِبُّوْا شَيْـًٔا وَّهُوَ شَرٌّ لَّكُمْ ؕ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ
وَاَنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿٢١٦﴾ ع

आयत 211

سَلْ بَنِیْٓ اِسْرَآءِیْلَ کَمْ اٰتَیْنٰھُمْ مِّنْ اٰیَۃٍۢ بَیِّنَۃٍ ؕ

"पूछ लो बनी इस्राईल से, हमने उन्हें कितनी रौशन निशानियाँ दीं।

यानि ऐ मुसलमानों! देखो कहीं तुम भी उन्हीं के रास्ते पर ना चलना। जैसा कि रसूल अल्लाह ﷺ ने आगाह फ़रमाया था:

((لَتَتَّبِعُنَّ سَنَنَ مَنْ قَبْلَكُمْ شِبْرًا بِشِبْرٍ وَذِرَاعًا بِذِرَاعٍ حَتّٰى لَوْ سَلَكُوْا جُحْرَ ضَبٍّ لَسَلَكْتُمُوْهُ ، قُلْنَا: يَا رَسُوْلَ اللهِ الْيَهُوْدَ وَ النَّصَارٰى؟ قَالَ: فَمَنْ؟))(26)

"तुम लाज़िमन अपने से पहलों के तौर-तरीक़ों की पैरवी करोगे, बालिश्त के मुक़ाबले में बालिश्त और हाथ के मुक़ाबले में हाथ। यहाँ तक कि अगर वह गोह के बिल में घुसे होंगे तो तुम भी घुस कर रहोगे।" हमने अर्ज़ किया: ऐ अल्लाह के रसूल ﷺ! यहूद व नसारा की? आप ﷺ ने फरमाया: "तो और किसकी?"

وَمَنْ یُّبَدِّلْ نِعْمَۃَ اللّٰہِ مِنْۢ بَعْدِ مَا جَآءَتْہُ فَاِنَّ اللّٰہَ شَدِیْدُ الْعِقَابِ ﴿۲۱۱﴾

"और जो कोई बदल डाले अल्लाह की नेअमत को, बाद इसके कि वह उसके पास आ गई हो तो (वो जान ले कि) अल्लाह सज़ा देने में भी सख़्त है।"

जो कोई अल्लाह की नेअमत को पाने के बाद उसमें तब्दीली करता है, या उसमें तहरीफ़ करता है या ख़ुद ग़लत रविश इख़्तियार करता है तो उसको जान लेना चाहिये कि अल्लाह

तआला इस तर्ज़े अमल पर बहुत सख़्त सज़ा देता है। बनी इसराइल ही की मिसाल हमारे सामने मौजूद है कि क़ुरान हकीम (सूरतुल बक़रह, आयत:47) में उनसे दो मर्तबा फ़रमाया गया: {يٰبَنِیۡۤ اِسۡرَآءِیۡلَ اذۡکُرُوۡا نِعۡمَتِیَ الَّتِیۡۤ اَنۡعَمۡتُ عَلَیۡکُمۡ وَاَنِّیۡ فَضَّلۡتُکُمۡ عَلَی الۡعٰلَمِیۡنَ ﴿۴۷﴾} "ऐ बनी इसराइल! याद करो मेरे उस ईनाम को जो मैंने तुम पर किया और यह कि मैंने तुम्हें फ़ज़ीलत अता की तमाम अहले आलम पर।" लेकिन फिर उन्हीं के बारे में फ़रमाया गया:{وَضُرِبَتۡ عَلَیۡہِمُ الذِّلَّۃُ وَالۡمَسۡکَنَۃُ ٭ وَبَآءُوۡ بِغَضَبٍ مِّنَ اللّٰہِ} (आयत:67) "उन पर ज़िल्लत व ख़्वारी और मोहताजी व कम हिम्मती थोप दी गई और वह अल्लाह का गज़ब लेकर लौटे।" और यह मज़मून भी सूरह आले इमरान में दोबारा आयेगा।

आयत 212

زُیِّنَ لِلَّذِیۡنَ کَفَرُوا الۡحَیٰوۃُ الدُّنۡیَا

"इन काफ़िरों के लिये दुनिया की ज़िन्दगी बड़ी मुज़य्यन कर दी गई है"

यहाँ की चमक-दमक और शानो-शौकत उनके लिये बड़ी महबूब व दिल पसंद बना दी गई है। वैसे तो नये मॉडल की लम्बी-लम्बी चमकीली कारें, ऊँची-ऊँची इमारतें और वसीअ व अरीज़ (लम्बी-चौड़ी) कोठियाँ किसको अच्छी नहीं लगतीं, लेकिन कुफ़्फ़ार के दिलों में माल व असबाबे दुनवयी की मुहब्बत इतनी घर कर जाती है कि फिर कोई अच्छी बात उनकी ज़िन्दगी में नहीं रहती, और ना ही कोई

अच्छी बात उनके ऊपर असर करती है। अहले ईमान को भी अगर ईमान के साथ यह नेअमतें मिलें तो यह मुस्तहसिन हैं। अज़रुए अल्फ़ाज़े क़ुरानी: { قُلْ مَنْ حَرَّمَ زِيْنَةَ اللّٰهِ الَّتِيْٓ اَخْرَجَ لِعِبَادِهٖ وَالطَّيِّبٰتِ مِنَ الرِّزْقِ ۭ} (अल् आराफ़:32) "(ऐ नबी ﷺ! इनसे) कहिये, किसने अल्लाह की उस ज़ीनत को हराम कर दिया जिसे अल्लाह ने अपने बंदों के लिये निकाला था और खाने-पीने की पाकीज़ा चीज़ें?" अच्छा खाना, अच्छा पीना, अच्छा पहनना हराम नहीं है। अल्लाह ने इसको लोगों के लिए ममनूअ नहीं किया। एक मुसलमान दीन के तक़ाज़े अदा करके, अल्लाह का हक़ अदा करके और हलाल से कमा कर इन चीज़ों को हासिल तो कोई हर्ज नहीं। लेकिन इसके साथ वह हदीस भी ज़हन में ले आयें: (اَلدُّنْيَا سِجْنُ الْمُؤْمِنِ وَجَنَّةُ الْكَافِرِ)(27) "दुनिया मोमिन के लिये एक क़ैदख़ाना और काफ़िर के लिये बाग है।"

وَيَسْخَرُوْنَ مِنَ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا

"और वह मज़ाक़ उड़ाते हैं अहले ईमान का।"

ऐसे लोग ईमान की राह इख़्तियार करने वालों का मज़ाक़ उड़ाते हैं कि ज़रा इन पागलों को, इन बेवक़ूफ़ों को, इन fanatics को देखो, जिन्हें अपने नफ़ा व नुक़सान का कोई होश नहीं।

وَالَّذِيْنَ اتَّقَوْا فَوْقَهُمْ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ ۭ

"और जिन लोगों ने तक़वा की रविश इख़्तियार की थी क़यामात के दिन वह उनके ऊपर होंगे।"

वह इन काफ़िरों के मुक़ाबले आली मरतबत और आली मक़ाम होंगे, बल्कि सूरतुल मुतफ्फ़िफ़ीन में तो यहाँ तक आया है कि जन्नत में जाने के बाद अहले ईमान कुफ़्फ़ार का मज़ाक़ उड़ाएँगे।

وَاللّٰهُ يَرْزُقُ مَنْ يَّشَاۗءُ بِغَيْرِ حِسَابٍ ۝٢١٢

"और अल्लाह तआला रिज़्क़ अता फ़रमायेगा जिसको चाहेगा बेहिसाब।"

यह जन्नत की तरफ़ इशारा है। अब फिर एक तवील आयत आ रही है जिसमें एक अहम मज़मून बयान हो रहा है। मैंने अर्ज़ किया था कि सूरतुल बक़रह में जा-बजा इल्म व हिकमत और मार्फ़ते इलाही के बड़े हसीन और ख़ुशनुमा फूल आये हैं जो इस बन्ती में बुन दिये गये हैं। दो लड़ियाँ शरीअत की हैं, यानि इबादात और मामलात, जबकि दो लड़ियाँ जिहाद की, यानि जिहाद बिल् माल (इन्फ़ाक़) और जिहाद बिल् नफ़्स (क़िताल), और इनके दरमियान यह अज़ीम फूल आ जाते हैं। इस आयत को मैंने "आयतुल इख्तलाफ़" का उन्वान दिया है। इसमें बयान किया गया है कि लोगों के दरमियान इख़्तलाफ़ क्यों होता रहा है, और यह बहुत अहम मज़मून है। इलसिये कि दुनिया में वहदते अदयान (सर्व धर्म एकता) का जो फ़लसफ़ा कुछ लोगों की तरफ़ से पेश होता है उसका एक हिस्सा सही है और हिस्सा ग़लत है। सही

कौनसा है और ग़लत कौनसा है, वह इस आयत से मालूम होगा।

आयत 213

"तमाम इंसान एक ही उम्मत थे।"

كَانَ النَّاسُ اُمَّةً وَّاحِدَةً ۣ

इसमें कोई शक नहीं कि इब्तदा में सबके सब इंसान एक ही उम्मत थे। तमाम इंसान हज़रत आदम अलै० की नस्ल से हैं और हज़रत आदम अलै० नबी हैं। चुनाँचे उम्मत तो एक ही थी। जब तक उनमें गुमराही पैदा नहीं हुई, इख़्तलाफ़ात पैदा नहीं हुए, शैतान ने कुछ लोगों को नहीं वरग़लाया, उस वक़्त तक तो तमाम इंसान एक ही उम्मत थे। अब यहाँ पर एक लफ़्ज़ महज़ूफ़ है: "ثُمَّ اخْتَلَفُوْا" (फिर उनमें इख़्तलाफ़ात हुए)। इख़्तलाफ़ के नतीजे में फ़साद पैदा हुआ और कुछ लोगों ने गुमराही की रविश इख़्तियार कर ली। आदम अलै० का एक बेटा अगर हाबील था तो दूसरा क़ाबील भी था।

"तो अल्लाह ने (अपने) नबी भेजे जो ख़ुश ख़बरी सुनाते और ख़बरदार करते हुए आये।"

فَبَعَثَ اللّٰهُ النَّبِيّٖنَ مُبَشِّرِيْنَ وَمُنْذِرِيْنَ ۠

अल्लाह तआला ने अम्बिया किराम अलै० का सिलसिला जारी फ़रमाया जो नेकूकारों को बशारत देते और ग़लतकारों को ख़बरदार करते थे।

وَاَنْزَلَ مَعَهُمُ الْكِتٰبَ بِالْحَقِّ لِيَحْكُمَ بَيْنَ النَّاسِ فِيْمَا اخْتَلَفُوْا فِيْهِ ۭ

“और उनके साथ (अपनी) किताब नाज़िल फ़रमाई हक़ के साथ, ताकि वह फ़ैसला कर दें लोगों के माबैन उन उमूर में जिनमें उन्होंने इख़्तलाफ़ किया था।”

وَمَا اخْتَلَفَ فِيْهِ اِلَّا الَّذِيْنَ اُوْتُوْهُ مِنْۢ بَعْدِ مَا جَاۗءَتْهُمُ الْبَيِّنٰتُ بَغْيًۢا بَيْنَهُمْ ۚ

“और किताब में इख़्तलाफ़ नहीं किया मगर उन्हीं लोगों ने जिन्हें यह दी गई थी, इसके बाद कि उनके पास रोशन हिदायात आ चुकी थीं, महज़ बाहमी ज़िद्दम-ज़िद्दा के सबब से।”

“بَغْيًا” का लफ़्ज़ क़ब्ल अज़ आयत 90 में आ चुका है। वहाँ मैंने वज़ाहत की थी कि दीन में इख़्तलाफ़ का असल सबब यही ज़िद्दम-ज़िद्दा वाला रवैया होता है। इंसान में ग़ालिब (प्रमुख) होने की जो तलब और उमंग (The urge to dominate) मौजूद है वह हक़ को क़ुबूल करने में मुज़ाहिम (प्रतिरोधी) हो जाती है। दूसरे की बात मानना नफ़्से इंसानी पर बहुत गिरां गुज़रता है। आदमी कहता मैं इसकी बात क्यों मानूँ, यह मेरी क्यों ना माने? इंसान के अंदर जहाँ अच्छे मैलानात रखे गये हैं वहाँ बुरी उमंगें और मैलानात भी रखे गए हैं। चुनाँचे इंसान के बातिन में हक़ व बातिल की एक कशाकश चलती है। इस तरह की कशाकश ख़ारिज

में भी चलती है। तो फ़रमाया कि जब इंसानों में इख़्तलाफ़ात रुनमा (उत्पन्न) हुए तो अल्लाह तआला ने अपने नबियों को भेजा जो मुबश्शिर और मुन्ज़िर बन कर आये।

فَهَدَى اللّٰهُ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لِمَا اخْتَلَفُوْا فِيْهِ مِنَ الْحَقِّ بِاِذْنِهٖ

"पस अल्लाह ने हिदायत बख़्शी उन लोगों को जो ईमान लाये उस हक़ के मामले में जिसमें लोगों ने इख़्तलाफ़ किया था, अपने हुक्म से।"

وَاللّٰهُ يَهْدِىْ مَنْ يَّشَآءُ اِلٰى صِرَاطٍ مُّسْتَقِيْمٍ ﴿٢١٣﴾

"और अल्लाह हिदायत देता है जिसको चाहता है सीधे रास्ते की तरफ़।"

सिलसिला-ए-अम्बिया व रुसुल के आख़िर में अल्लाह तआला ने नबी आख़िरुज़्ज़मान ﷺ पर क़ुरान हकीम नाज़िल फ़रमा कर, अपनी तौफ़ीक़ से, इस नज़ाअ व इख़्तलाफ़ में हक़ की राह अहले ईमान पर खोली है। और अल्लाह ही है जो अपनी माशियत और हिकमत के तक़ाज़ों के मुताबिक़ जिसको चाहता है राहे रास्त दिखा देता है।

अब बड़ी सख़्त आयत आ रही है, जो बड़ी लरज़ा देने वाली आयत है। सहाबा किराम रज़ि० में से एक बड़ी तादाद मुहाजरीन की थी जो मक्के की सख़्तियाँ झेल कर आये थे। उनके लिये तो अब जो भी मराहिल आइंदा आने वाले थे वह भी कोई ऐसे मुश्किल नहीं थे। लेकिन जो हज़रात मदीना मुनव्वरा में ईमान लाये थे, यानि अंसार, उनके लिये तो यह नई-नई बात थी। इसलिये कि उन्होंने तो वह सख़्तियाँ नहीं

झेली थीं जो मक्के में मुहाजरीन ने झेली थीं। तो अब रुए सुख़न ख़ासतौर पर उनसे है, अग़रचे ख़िताब आम है। क़ुरान मजीद में यह असलूब आमतौर पर मिलता है कि अल्फ़ाज़ आम हैं, लेकिन रुए सुख़न किसी ख़ास तबक़े की तरफ़ है। तो दरहक़ीक़त यहाँ अंसार को बताया जा रहा है कि मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ पर ईमान लाना फूलों की सेज नहीं है।

आयत 214

"क्या तुमने यह समझ रखा है कि यूँ ही जन्नत में दाख़िल हो जाओगे"	اَمْ حَسِبْتُمْ اَنْ تَدْخُلُوا الْجَنَّةَ
"हालाँकि अभी तक तुम्हारे ऊपर वह हालात व वाक़्यात वारिद नहीं हुए जो तुमसे पहलों पर हुए थे।"	وَلَمَّا يَاْتِكُمْ مَّثَلُ الَّذِيْنَ خَلَوْا مِنْ قَبْلِكُمْ ؕ
"पहुँची उनको सख़्ती भूख की और तकलीफ़ और वह हिला मारे गये"	مَسَّتْهُمُ الْبَاْسَآءُ وَالضَّرَّآءُ وَزُلْزِلُوْا

حَتّٰی یَقُوْلَ الرَّسُوْلُ وَالَّذِیْنَ اٰمَنُوْا مَعَهٗ مَتٰی نَصْرُ اللّٰهِ ؕ

"यहाँ तक कि (वक़्त का) रसूल और उसके साथी अहले ईमान पुकार उठे कि कब आयेगी अल्लाह की मदद?"

اَلَآ اِنَّ نَصْرَ اللّٰهِ قَرِیْبٌ ﴿۲۱۴﴾

"(अब उन्हें यह ख़ुशख़बरी दी गई कि) आगाह हो जाओ, यक़ीनन अल्लाह की मदद क़रीब है।"

यानि अल्लाह तो अहले ईमान को आज़माता है, उसे खोटे और खरे को अलग करना है। यह वही बात है जो इससे पहले उन्नीसवें रुकूअ के बिल्कुल आग़ाज़ में आ चुकी है: {وَلَنَبْلُوَنَّكُمْ بِشَیْءٍ مِّنَ الْخَوْفِ وَالْجُوْعِ وَنَقْصٍ مِّنَ الْاَمْوَالِ وَالْاَنْفُسِ وَالثَّمَرٰتِ ؕ} (आयत:155) "और हम तुम्हें लाज़िमन आज़माएँगे किसी क़दर ख़ौफ़ और भूख से और माल व जान और समारात के नुक़सान से।" यह कोई फूलों भरा रास्ता नहीं है, फूलों की सेज नहीं है, हक़ का रास्ता काँटो भरा रास्ता है, इसके लिये ज़हनन तैयार हो जाओ।

दर रहे मंज़िले लैय्ला कि ख़तरहास्त बसे
शर्ते अव्वल क़दम ऐन अस्त कि मजनून बाशी!

और:

यह शहादत गह उल्फ़त में क़दम रखना है
लोग आसान समझते हैं मुसलमाँ होना!

इस रास्ते में अल्लाह की मदद ज़रूर आती है, लेकिन आज़माइशों और क़ुर्बानियों के बाद। चुनाँचे सहाबा किराम

रज़ि० को फिर सूरह अस्सफ़ में फ़तह व नुसरत की ख़ुशख़बरी सुनाई गई, जबकि ग़ज़वा-ए-अहज़ाब वाक़ेअ हो चुका था और मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ और आप ﷺ के साथी अहले ईमान रज़ि० शदीद तरीन इम्तिहान से कामयाबी के साथ गुज़र चुके थे। तब उन्हें बाअल्फ़ाज़ ख़ुशख़बरी दी गई: { وَّاُخْرٰى تُحِبُّوْنَهَا ۭ نَصْرٌ مِّنَ اللّٰهِ وَفَتْحٌ قَرِيْبٌ ۭ } (आयत:13) "और जो दूसरी चीज़ तुम्हें पसंद है (वह भी तुम्हें मिलेगी), अल्लाह की तरफ़ से नुसरत और क़रीब ही में हासिल हो जाने वाली फ़तह।" {وَبَشِّرِ الْمُؤْمِنِيْنَ ⑬} "और (ऐ नबी ﷺ!) अहले ईमान को बशारत दे दीजिये!" अपने अहले ईमान साथियों को बशारत दे दीजिये कि अब वह वक़्त आ गया है कि अल्लाह के नुसरत के दरवाज़े खुलते चले जाएँगे।

आयत 215

يَسْـَٔلُوْنَكَ مَاذَا يُنْفِقُوْنَ ڛ

"ये आप ﷺ से पूछते हैं कि क्या ख़र्च करें?"

यानि इन्फ़ाक़ के लिये जो कहा जा रहा है तो हम क्या ख़र्च करें? कितना ख़र्च करें? इंसान भलाई के लिये जो भी ख़र्च करे तो उसमें सबसे पहला हक़ किन का है?

قُلْ مَآ اَنْفَقْتُمْ مِّنْ خَيْرٍ

"कह दीजिये जो भी तुम ख़र्च करो माल व असबाब में से"

فَلِلْوَالِدَيْنِ وَالْاَقْرَبِيْنَ وَالْيَتٰمٰى وَالْمَسٰكِيْنِ وَابْنِ السَّبِيْلِ ؕ

"तो वालिदैन, रिश्तेदारों, यतीमों, मिस्कीनों और मुसाफ़िरों के लिये (ख़र्च करो)।"

सबसे पहला हक़ वालिदैन का है, इसके बाद दर्जा-ब-दर्जा क़राबतदारों, यतीमों, मिस्कीनों और मुसाफ़िरों का हक़ है।

وَمَا تَفْعَلُوْا مِنْ خَيْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيْمٌ ﴿۲۱۵﴾

"और जो ख़ैर भी तुम कमाओगे अल्लाह उससे अच्छी तरह बाख़बर है।"

तुम जो भी अच्छा काम करोगे तो जान लो कि वह अल्लाह के इल्म में है। ज़रुरत नहीं है कि दुनिया उससे वाक़िफ़ हो, तुम्हें अगर अल्लाह से अजर लेना है तो वह तो रात के अँधेरे में भी देख रहा है। अगर तुम्हारे दायें हाथ ने दिया है और बायें को पता नहीं चला तो अल्लाह को तो फिर भी पता चल गया। तो तुम ख़ातिर जमा रखो, तुम्हारी हर नेकी अल्लाह के इल्म में है और वह उसे ज़ाया नहीं करेगा।

अब अगली आयत में क़िताल के मज़मून का तसलसुल है। मैंने सूरतुल बक़रह के निस्फ़े आख़िर के मज़ामीन को चार मुख़्तलिफ़ रंगों की लड़ियों से तश्बीह दी थी, जिनको बाहम बट लिया जाये तो चारो रंग कटे-फटे नज़र आते हैं और अगर इन्हें खोल दिया जाये तो हर रंग मुसलसल नज़र आता है।

आयत 216

كُتِبَ عَلَيۡكُمُ الۡقِتَالُ وَهُوَ كُرۡهٌ لَّكُمۡ‌ۚ

"(मुसलमानों!) अब तुम पर जंग फ़र्ज़ कर दी गई है और वह तुम्हें गिराँ गुज़र रही है।"

वाज़ेह रहे कि सूरतुल बक़रह से पहले सूरह मुहम्मद صلی اللہ علیہ وسلم नाज़िल हो चुकी थी और उसमें क़िताल की फ़र्ज़ियत आ चुकी थी। (चुनाँचे उसका एक नाम सूरतुल क़िताल भी है) लिहाज़ा इस हवाले से कुछ लोग परेशान हो रहे थे। ख़ासतौर पर मुनाफ़िक़ीन यह कहते थे कि भाई सुलह जोई से काम लो, बस दावत व तब्लीग़ के ज़रिये से लोगों को सीधे रास्ते की तरफ़ लाओ, यह जंग व जिदाल और लड़ाई-भिड़ाई तो कोई अच्छा काम नहीं है, इसमें तो बहुत ख़राबी हैं। इनके अलावा ऐसे मुसलमान जिनका ईमान क़द्रे कमज़ोर था, अग़रचे वह मुनाफ़िक़ तो नहीं थे, लेकिन उनका ईमान अभी पुख़्ता नहीं था, अभी ताज़ा-ताज़ा ईमान लाये थे और तरबियत के मराहिल से अभी नहीं गुज़रे थे, उनमें से भी बाज़ लोगों के दिलों में इन्क़बाज़ (दबाव) पैदा हो रहा था। यहाँ क़िताल की फ़र्ज़ियत के लिये "كُتِبَ" का लफ़्ज़ आया है। इससे पहले यह लफ़्ज़ रोज़े, क़िसास और वसीयत के ज़िमन में आ चुका है।

﴿كُتِبَ عَلَيۡكُمُ الصِّيَامُ..... كُتِبَ عَلَيۡكُمُ الۡقِصَاصُ فِى الۡقَتۡلٰى‌ؕ..... كُتِبَ عَلَيۡكُمۡ اِذَا حَضَرَ اَحَدَكُمُ الۡمَوۡتُ اِنۡ تَرَكَ خَيۡرَا ۖۚ اۨلۡوَصِيَّةُ.....﴾

फ़रमाया कि तुम पर जंग फ़र्ज़ कर दी गई है और वह तुम्हें बुरी लग रही है।

وَعَسٰۤى اَنْ تَكْرَهُوْا شَيْـًٔا وَّهُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ ۚ

"और हो सकता है कि तुम किसी शय को नापंसद करो और वह तुम्हारे लिये बेहतर हो।"

وَعَسٰۤى اَنْ تُحِبُّوْا شَيْـًٔا وَّهُوَ شَرٌّ لَّكُمْ ؕ

"और हो सकता है कि तुम किसी चीज़ को पसंद करो दर हालाँकि वह तुम्हारे लिये बुरी हो।"

وَاللّٰهُ يَعْلَمُ وَاَنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ﴿٢١٦﴾

"और अल्लाह जानता है, तुम नहीं जानते।"

तुम अपनी अक़्ल पर ईमान ना रखो, अल्लाह की वही पर ईमान रखो, अल्लाह के रसूल ﷺ पर ईमान रखो। जिस वक़्त के लिये जो हुक्म मौज़ूं (मुनासिब) था वही तुम्हें अल्लाह और उसके रसूल ﷺ की तरफ़ से दिया गया। चौदह बरस तक तुम्हें क़िताल से मना किया गया। उस वक़्त तुम्हारे लिये हुक्म था: "كُفُّوْا اَيْدِيَكُمْ" (अपने हाथ रोके रखो) अब तुम पर क़िताल फ़र्ज़ किया जा रहा है, लिहाज़ा अब इस हुक्म पर सरे तस्लीम ख़म करना तुम्हारे लिये लाज़िम है।

आयात 217 से 221 तक

يَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الشَّهْرِ الْحَرَامِ قِتَالٍ فِيْهِ ۭ قُلْ قِتَالٌ
فِيْهِ كَبِيْرٌ ۭ وَصَدٌّ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَكُفْرٌۢ بِهٖ وَالْمَسْجِدِ
الْحَرَامِ ۤ وَاِخْرَاجُ اَھْلِهٖ مِنْهُ اَكْبَرُ عِنْدَ اللّٰهِ ۚ وَالْفِتْنَةُ
اَكْبَرُ مِنَ الْقَتْلِ ۭ وَلَا يَزَالُوْنَ يُقَاتِلُوْنَكُمْ حَتّٰى
يَرُدُّوْكُمْ عَنْ دِيْنِكُمْ اِنِ اسْتَطَاعُوْا ۭ وَمَنْ يَّرْتَدِدْ
مِنْكُمْ عَنْ دِيْنِهٖ فَيَمُتْ وَھُوَ كَافِرٌ فَاُولٰۗىِٕكَ
حَبِطَتْ اَعْمَالُهُمْ فِي الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ ۚ وَاُولٰۗىِٕكَ
اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ ھُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ٢١٧ اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا
وَالَّذِيْنَ ھَاجَرُوْا وَجٰهَدُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ۙ اُولٰۗىِٕكَ
يَرْجُوْنَ رَحْمَتَ اللّٰهِ ۭ وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ٢١٨ يَسْـَٔلُوْنَكَ
عَنِ الْخَمْرِ وَالْمَيْسِرِ ۭ قُلْ فِيْهِمَآ اِثْمٌ كَبِيْرٌ وَّمَنَافِعُ
لِلنَّاسِ ۡ وَاِثْمُهُمَآ اَكْبَرُ مِنْ نَّفْعِهِمَا ۭ وَيَسْـَٔلُوْنَكَ مَاذَا
يُنْفِقُوْنَ ڛ قُلِ الْعَفْوَ ۭ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ
لَعَلَّكُمْ تَتَفَكَّرُوْنَ ٢١٩ ۙ فِي الدُّنْيَا وَالْاٰخِرَةِ ۭ

وَيَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْيَتٰمٰى ۭ قُلْ اِصْلَاحٌ لَّھُمْ خَيْرٌ ۭ وَاِنْ
تُخَالِطُوْھُمْ فَاِخْوَانُكُمْ ۭ وَاللّٰهُ يَعْلَمُ الْمُفْسِدَ مِنَ
الْمُصْلِحِ ۭ وَلَوْ شَاۗءَ اللّٰهُ لَاَعْنَتَكُمْ ۭ اِنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ
حَكِيْمٌ ﴿۲۲۰﴾ وَلَا تَنْكِحُوا الْمُشْرِكٰتِ حَتّٰى
يُؤْمِنَّ ۭ وَلَاَمَةٌ مُّؤْمِنَةٌ خَيْرٌ مِّنْ مُّشْرِكَةٍ وَّلَوْ
اَعْجَبَتْكُمْ ۚ وَلَا تُنْكِحُوا الْمُشْرِكِيْنَ حَتّٰى يُؤْمِنُوْا ۭ
وَلَعَبْدٌ مُّؤْمِنٌ خَيْرٌ مِّنْ مُّشْرِكٍ وَّلَوْ اَعْجَبَكُمْ ۭ
اُولٰۗىِٕكَ يَدْعُوْنَ اِلَى النَّارِ ښ وَاللّٰهُ يَدْعُوْٓا اِلَى الْجَنَّةِ
وَالْمَغْفِرَةِ بِاِذْنِهٖ ۚ وَيُبَيِّنُ اٰيٰتِهٖ لِلنَّاسِ لَعَلَّھُمْ
يَتَذَكَّرُوْنَ ﴿۲۲۱﴾ ۧ

आयत 217

يَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الشَّهْرِ الْحَرَامِ قِتَالٍ فِيْهِ ۭ

"(ऐ नबी ﷺ!) ये आपसे पूछते हैं हुरमत वाले महीनों में जंग के बारे में।"

क़िताल का हुक्म आने के बाद अब वह पूछते थे कि ये जो हुरमत वाले महीने हैं उनमें जंग करना कैसा है? इसलिये कि सीरत में यह वाक़्या आता है कि हिजरत के बाद रसूल

अल्लाह ﷺ ने हज़रत अब्दुल्ला बिन जहश रज़ि० को चंद अफ़राद के दस्ते का कमांडर बना कर हिदायत फ़रमाई थी कि मक्का और ताईफ़ के दरमियान जाकर वादिये नख़ला में क़याम करें और क़ुरैश की नक़ल व हरकत पर नज़र रखें। वादिये नख़ला में क़याम के दौरान वहाँ क़ुरैश के एक मुख़्तसर से क़ाफ़िले के साथ मुठभेड़ हो गई और मुसलमानों के हाथों एक मुशरिक उमर बिन अब्दुल्लाह अल् हज़रमी मारा गया। उस रोज़ रज्जब की आख़री तारीख़ थी और रज्जब का महीना अशहरे हुरुम में से है। यह हिजरत के बाद पहला ख़ून था जो मुसलमानों के हाथों हुआ। इस पर मुशरिकीन ने बहुत वावैला किया कि इन लोगों का क्या हाल है, बने फिरते हैं अल्लाह वाले, रसूल वाले, दीन वाले, आख़िरत वाले और इन्होंने हुरमत वाले महीने को बट्टा लगा दिया, इसमें जंग की। तो यह दरअसल अल्लाह तआला अपने उन मोमिन बंदों की तरफ़ से गोया ख़ुद सफ़ाई पेश कर रहे हैं। फ़रमाया कि यह आपसे पूछते हैं कि हुरमत वाले महीनों में क़िताल का क्या हुक्म है?

قُلْ قِتَالٌ فِيْهِ كَبِيْرٌ

“कह दीजिये कि इसमें जंग करना बहुत बड़ी (गुनाह की) बात है।”

وَصَدٌّ عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَكُفْرٌۢ بِهٖ وَالْمَسْجِدِ

“लेकिन अल्लाह के रास्ते से रोकना, उसका कुफ़्र करना, मस्जिदे हराम से रोकना और हरम के रहने वालों को वहाँ से निकालना अल्लाह के नज़दीक इससे कहीं बड़ा गुनाह है।”

الْحَرَامِ ۚ وَاِخْرَاجُ اَهْلِهٖ

مِنْهُ اَكْبَرُ عِنْدَ اللّٰهِ ۚ

यह वह संगीन जराइम (जुर्म) हैं जिनका इरतकाब मुशरिकीने मक्का की जानिब से हो रहा था। यहाँ फ़रमाया गया कि यह सब काम अशहरे हुरुम में जंग करने से भी बड़े जुर्म हैं। लिहाज़ा उनके सद्देबाब (मुक़ाबले) के लिये अगर अशहरे हुरुम में जंग करनी पड़ जाये तो कोई हर्ज नहीं।

"और फ़ितना क़त्ल से भी बड़ा गुनाह है।"

وَالْفِتْنَةُ اَكْبَرُ مِنَ الْقَتْلِ ۭ

क़ब्ल अज़ आयत 191 में अल्फ़ाज़ आ चुके हैं: { وَالْفِتْنَةُ اَشَدُّ مِنَ الْقَتْلِ ۚ} फ़ितना हर वह कैफ़ियत है जिसमें साहिबे ईमान के लिये ईमान पर क़ायम रहना और इस्लाम पर अमल करना मुश्किल हो जाये। आज का पूरा मआशरा फ़ितना है। इस्लाम पर अमल करना मुश्किल है, बदमाशी और हरामख़ोरी के रास्ते खुले हुए हैं, अकले हलाल (हलाल खाना) इस क़द्र मुश्किल बना दिया गया है कि दाँतों पसीना आये तो शायद नसीब हो। निकाह और शादी के जायज़ रास्तों पर बड़ी-बड़ी शर्तें और क़दग़नें आयद हैं, जबकि नाजायज़ मरासिम और ज़िना के रास्ते खुले हैं। जिस मआशरे के अंदर बातिल का ग़लबा हो जाये और हक़ पर चलना मुमकिन ना रहे वह बड़े फ़ितना में मुब्तला है।

बातिल का ग़लबा सबसे बड़ा फ़ितना है। लिहाज़ा फ़रमाया कि फ़ितना क़त्ल के मुक़ाबले में बहुत बड़ी शय है।

وَلَا يَزَالُوْنَ يُقَاتِلُوْنَكُمْ حَتّٰى يَرُدُّوْكُمْ عَنْ دِيْنِكُمْ اِنِ اسْتَطَاعُوْا ۭ

"और यह लोग तुमसे जंग करते रहेंगे यहाँ तक कि लौटा दें तुम्हें अपने दीन से अगर वह ऐसा कर सकते हों।"

वह तो इस पर तुले हुए हैं कि तुम्हें तुम्हारे दीन से फेर दें। यहाँ मुशरिकीने मक्का की तरफ़ इशारा हो रहा है, क्योंकि अब यह ग़ज़वा-ए-बदर की तम्हीद चल रही है। इसके बाद ग़ज़वा-ए-बदर होने वाला है, उसके लिये अहले ईमान को ज़हनी तौर पर तैयार किया जा रहा है और उन्हें आगाह किया जा रहा है कि मुशरिकीन की जंग का मक़सद तुम्हें तुम्हारे दीन से बरग़श्ता करना (हटाना) है, वह तो अपनी भरपूर कोशिश करते रहेंगे कि अगर उनका बस चले तो तुम्हें तुम्हारे दीन से लौटा कर वापस ले जाएँ।

وَمَنْ يَّرْتَدِدْ مِنْكُمْ عَنْ دِيْنِهٖ

"और (सुन लो) जो कोई भी तुममें से अपने दीन से फिर गया"

فَيَمُتْ وَھُوَ كَافِرٌ

"और उसी हालत में उसकी मौत आ गई कि वह काफ़िर ही था"

فَاُولٰٓئِكَ حَبِطَتۡ اَعۡمَالُهُمۡ فِى الدُّنۡيَا وَالۡاٰخِرَةِ ‌ۚ

“तो यह वह लोग होंगे जिनके तमाम आमाल दुनिया और आख़िरत में अकारत (बेकार) जाएँगे।”

पहले ख़्वाह कितनी ही नेकियाँ की हुई थीं, कितनी ही नमाज़े पढ़ी हुई थीं, कितना ही इन्फ़ाक़ किया हुआ था, सदक़ात दिये थे, जो कुछ भी किया था सबका सब सिफ़र (ज़ीरो) हो जायेगा।

وَاُولٰٓئِكَ اَصۡحٰبُ النَّارِ‌ۚ هُمۡ فِيۡهَا خٰلِدُوۡنَ ﴿۲۱۷﴾

“और वह होंगे जहन्नम वाले, वह उसी में हमेशा रहेंगे।”

आयत 218

اِنَّ الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡا وَالَّذِيۡنَ هَاجَرُوۡا وَجٰهَدُوۡا فِىۡ سَبِيۡلِ اللّٰهِ ۙ اُولٰٓئِكَ يَرۡجُوۡنَ رَحۡمَتَ اللّٰهِ‌ؕ

“(इसके बरअक्स) जो लोग ईमान लाये और जिन्होंने हिजरत की और जिहाद किया अल्लाह की राह में तो यही वह लोग हैं जो अल्लाह की रहमत के उम्मीदवार हैं।”

यहाँ उन लोगों पर बड़ा लतीफ़ तंज़ है जो ख़ुद तो हराम के रास्ते पर जा रहे हैं, लेकिन यह उम्मीद लगाये बैठे हैं कि अल्लाह उन पर रहम फ़रमायेगा। अल्लाह ऐसी रविश इख़्तियार करने वालों पर रहमत नहीं फ़रमाता, अल्लाह की रहमत का मुस्तहिक़ बनना पड़ता है। और अल्लाह की रहमत का मुस्तहिक़ वही है जो ईमान, हिजरत और जिहाद फ़ी सबीलिल्लाह का रास्ता इख़्तियार करता है। ऐसे लोग बजा तौर पर अल्लाह की रहमत के उम्मीदवार हैं।

وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ ۝٢١٨

"और अल्लाह तआला ग़फ़ूर है, रहीम है।"

वो उनकी लग़ज़िशों (गुनाहों) को माफ़ करने वाला और अपनी रहमत से उन्हें नवाज़ने वाला है।

आयत 219

يَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْخَمْرِ وَالْمَيْسِرِ ۭ

"(ऐ नबी ﷺ!) यह आपसे शराब और जुए के बारे में दरयाफ़्त करते हैं (कि इनका क्या हुक्म है?)।"

इन अहकाम से शरीअत का इब्तदाई खाका (blue print) तैयार होना शुरू हो गया है, कुछ अहकाम पहले आ चुके हैं और कुछ अब आ रहे हैं। शराब और जुए के बारे में यहाँ इब्तदाई हुक्म बयान हुआ है और इस पर महज़ इज़्हारे नाराज़गी फ़रमाया गया है।

قُلْ فِيْهِمَآ اِثْمٌ كَبِيْرٌ

"(ऐ नबी ﷺ! इनसे) कह दीजिये कि इन दोनों के अंदर बहुत बड़े गुनाह के पहलु हैं।"

وَّمَنَافِعُ لِلنَّاسِ ۡ

"और लोगों के लिए येछ मनफ़अतें (फ़ायदे) भी हैं।"

وَاِثْمُهُمَآ اَكْبَرُ مِنْ نَّفْعِهِمَا ۭ

"अलबत्ता इनका गुनाह का पहलु नफ़े के पहलु से बड़ा है।"

यानि इशारा कर दिया गया कि इनको छोड़ दो। अब मामला तुम्हारी अक़्ले सलीम के हवाले है, हक़ीक़त तुम पर खोल दी गई है। यह इब्तदाई हुक्म है, लेकिन हुक्म के पैराये में नहीं। बस वाज़ेह कर दिया गया कि इनका गुनाह इनके फ़ायदे से बढ़ कर है, अग़रचे इनमें लोगों के लिये कुछ फ़ायदे भी हैं। बक़ौल ग़ालिब:

मय से ग़र्ज़ निशात है किसी रू स्याह को?
इक गुना बेख़ुदी मुझे दिन-रात चाहिये!

और:

मैं मयकदे की राह से होकर गुज़र गया
वरना सफ़र हयात का बेहद तवील था!

यह हिकमत समझ लीजिये कि शराब और जुए में क्या चीज़ मुशतरक (समान) है कि यहाँ दोनों को जमा किया गया है? शराब के नशे में भी इंसान अपने आपको हक़ाइक से मुन्क़तअ करता है और मेहनत से जी चुराता है। और ज़िन्दगी के तल्ख़ हक़ाइक का मुआवज़ा करने को तैयार नहीं

होता। *"एक गुना बेख़ुदी मुझे दिन रात चाहिए!"* और जुए की बुनियाद भी मेहनत की नफ़ी पर है। एक रवैया तो यह है कि मेहनत से एक आदमी कमा रहा है, मशक़्क़त कर रहा है, कोई खोखा, छाबड़ी या रेढ़ी लगा कर कुछ कमाई कर रहा है, जबकि एक है चाँस और दाव की बुनियाद पर पैसे कमाना। यह मेहनत की नफ़ी है। चुनाँचे शराब और जुए के अन्दर असल में इल्लत एक ही है।

وَيَسْـَٔلُوْنَكَ مَاذَا يُنْفِقُوْنَ ڛ

"और यह आप ﷺ से पूछते हैं कि (अल्लाह की राह में) कितना ख़र्च करें?"

आयत 195 में इन्फ़ाक़ का हुक्म बाअल्फ़ाज़ आ चुका है:

وَاَنْفِقُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَلَا تُلْقُوْا بِاَيْدِيْكُمْ اِلَى التَّهْلُكَةِ ڔ

"और ख़र्च करो अल्लाह की राह में और अपने आपको अपने हाथों हलाकत में ना झोंको।"

तो सवाल किया गया कि "कितना ख़र्च करें?" हमें कुछ मिक़दार भी बता दी जाये। फ़रमाया:

قُلِ الْعَفْوَ ط

"कह दीजिये: जो भी तुम्हारी ज़रुरत से ज़ायद (ज़्यादा) हो।"

अल्लाह तआला का यह मुतालबा नहीं है कि तुम अपनी ज़रुरतों को पीछे डाल दो, बल्कि तुम पहले अपनी ज़रुरतें पूरी करो, फिर जो तुम्हारे पास बच जाये उसे अल्लाह की राह में ख़र्च कर दो। कम्युनिज्म के फ़लसफ़े में एक इस्तलाह

“क़द्रे ज़ायद” (surplus value) इस्तेमाल होती है। यह है “اَلْعَفْوَ।” जो भी तुम्हारी ज़रूरियात से ज़ायद है यह surplus valueहै, उसे अल्लाह की राह में दे दो। इसको बचा कर रखने का मतलब यह है कि आप अल्लाह पर बे-ऐतमादी का इज़हार कर रहे हैं कि अल्लाह ने आज तो दे दिया है, कल नहीं देगा। लेकिन यह कि इंसान की ज़रुरतें क्या हैं, कितनी हैं, इसका अल्लाह ने कोई पैमाना मुक़र्रर नहीं किया। इसका ताल्लुक़ बातिनी रूह से है। एक मुसलमान के अंदर अल्लाह की मुहब्बत और आख़िरत पर ईमान ज्यों-ज्यों बढ़ता जायेगा उतना ही वह अपनी जरुरतें कम करेगा, अपने मैयारे ज़िन्दगी को पस्त करेगा और ज़्यादा से ज़्यादा अल्लाह की राह में देगा। उसूल यह है कि हर शख़्स यह देखे कि जो मेरी ज़रुरत से ज़ायद है उसे मैं बचा-बचा कर ना रखूँ, बल्कि अल्लाह की राह में दे दूँ। इन्फ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह पर इस सूरह मुबारक में पूरे दो रुकूअ आगे आने वाले हैं।

كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ لَعَلَّكُمْ تَتَفَكَّرُوْنَ ﴿٢١٩﴾

“इसी तरह अल्लाह तआला अपनी आयात तुम्हारे लिये वाज़ेह कर रहा है ताकि तुम ग़ौरो फ़िक्र करो।”

आयत 220

فِي الدُّنْيَا وَالْآخِرَةِ ط

"दुनिया और आख़िरत (के मामलात) में।"

तुम्हारा यह ग़ौरो फ़िक्र दुनिया के बारे में भी होना चाहिये और आख़िरत के बारे में भी। दुनिया में भी इस्लाम रहबानियत नहीं सिखाता। इस्लाम की तालीम यह नहीं है कि ना खाओ, ना पिओ, चिल्लेकशी करो, जंगलो में निकल जाओ! नहीं, इस्लाम तो मुत्मद्दन (सभ्य) ज़िन्दगी की तालीम देता है, घर ग्रहस्थी और शादी-ब्याह की तरग़ीब देता है, बीवी बच्चों के हुक़ूक़ बताता है और उनकी अदायगी का हुक्म देता है। इसके साथ-साथ तुम्हें आख़िरत की भी फ़िक्र करनी चाहिये, और दुनिया व आख़िरत के मामलात में एक निस्बत व तनासुब (ratio proportion) क़ायम रहना चाहिये। दुनिया की कितनी क़द्रो क़ीमत है और इसके मुक़ाबले में आख़िरत की कितनी क़द्रो क़ीमत है, इसका सही तौर पर अंदाज़ा करना चाहिये। अगर यह अंदाज़ा ग़लत हो गया और कोई ग़लत तनासुब क़ायम कर लिया गया तो हर चीज़ तलपट हो जायेगी। मिसाल के तौर पर एक दवा के नुस्ख़े में कोई चीज़ कम थी, कोई ज़्यादा थी। अगर आपने जो चीज़ कम थी उसे ज़्यादा कर दिया और जो ज़्यादा थी उसे कम कर दिया तो अब हो सकता है कि यह नुस्ख़ा शिफ़ा ना रहे, नुस्ख़ा-ए-हलाकत बन जाये।

وَيَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْيَتٰمٰى ط

"और यह आप ﷺ से पूछ रहे हैं यतीमों के बारे में।"

قُلْ اِصْلَاحٌ لَّهُمْ خَيْرٌ ط

"(ऐ नबी ﷺ! इनसे) कह दीजिये कि (जिस तर्ज़े अमल में)

उनकी भलाई और मस्लहत (हो वही इख़्तियार करना) बेहतर है।"

उनकी मस्लहत को पेशे नज़र रखना बेहतर है, नेकी है, भलाई है। असल में लोगों के सामने सूरह बनी इसराइल की यह आयत (आयत:34) थी: {وَلَا تَقْرَبُوْا مَالَ الْيَتِيْمِ اِلَّا بِالَّتِيْ هِيَ اَحْسَنُ} "और माले यतीम के क़रीब तक ना फटको, मगर ऐसे तरीक़े पर जो (यतीम के हक़ में) बेहतर हो।" चुनाँचे वो माले यतीम के बारे में इन्तहाई एहतियात कर रहे थे और उन्होंने यतीमों की हंड़ियाँ भी अलैहदा कर दी थीं कि मबादा (ऐसा ना हो कि) उनके हिस्से की कोई बोटी हमारे पेट में चली जाये। लेकिन इस तरह यतीमों की देखभाल करने वाले लोग तकलीफ़ और हर्ज में मुब्तला हो गये थे। किसी के घर में यतीम परवरिश पा रहा है तो उसका ख़र्च अलग तौर पर उसके माल में से निकाला जा रहा है और उसके लिये अलग हंडियां पकाई जा रही है। फ़रमाया कि उस हुक्म से यह मक़सद नहीं था, मक़सद यह था कि तुम कहीं उनके माल हड़प ना कर जाओ, उनके लिये इस्लाह और भलाई का मामला करना बेहतर तर्ज़े अमल है।

وَاِنْ تُخَالِطُوْهُمْ فَاِخْوَانُكُمْ ۭ

"और अगर तुम उनको अपने साथ मिलाये रखो तो वह तुम्हारे भाई ही तो हैं।"

وَاللّٰهُ يَعْلَمُ الْمُفْسِدَ مِنَ الْمُصْلِحِ ؕ

"और अल्लाह जानता है मुफ़्सिद को भी और मुस्लिह को भी।"

वह जानता है कि कौन बदनीयती से यतीम का माल हड़प करना चाहता है और कौन यतीम की ख़ैरख़्वाही चाहता है। यह हंड़िया अलैहदा करके भी गड़बड़ कर सकता है और यह वह शख़्स है जो हंड़िया मुश्तरक करके भी हक़ पर रह सकता है।

وَلَوْ شَآءَ اللّٰهُ لَاَعْنَتَكُمْ ؕ

"और अगर अल्लाह चाहता तो तुम्हें सख़्ती ही में डाले रखता।"

लेकिन अल्लाह तआला ने तुम्हें मशक़्क़त और सख़्ती से बचाया और तुम पर आसानी फ़रमाई।

اِنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ ﴿۲۲۰﴾

"यक़ीनन अल्लाह तआला ज़बरदस्त है, हिकमत वाला है।"

वह इन्तहाई मशक़्क़त पर मब्नी सख़्त से सख़्त हुक्म भी दे सकता है, इसलिये कि वह ज़बरदस्त है, लेकिन वह इंसानों को मशक़्क़त में नहीं डालता, बल्कि उसके हर हुक्म के अंदर हिकमत होती है। और जहाँ हिकमत नरमी की मुतक़ाज़ी (आवेदक) होती है वहाँ वह रिआयत देता है।

आयत 221

وَلَا تَنۡكِحُوا الۡمُشۡرِكٰتِ حَتّٰى يُؤۡمِنَّ ؕ

"और मुशरिक औरतों से निकाह ना करो जब तक कि वह ईमान ना ले आएँ।"

وَلَاَمَةٌ مُّؤۡمِنَةٌ خَيۡرٌ مِّنۡ مُّشۡرِكَةٍ وَّلَوۡ اَعۡجَبَتۡكُمۡ ۚ

"और एक मोमिना लौंडी (दासी) बेहतर है एक आज़ाद मुशरिका औरत से अग़रचे वह तुम्हें अच्छी भी लगती हो।"

وَلَا تُنۡكِحُوا الۡمُشۡرِكِيۡنَ حَتّٰى يُؤۡمِنُوۡا ؕ

"और अपनी औरतें मुशरिकों के निकाह में मत दो जब तक कि वह ईमान ना ले आएँ।"

وَلَعَبۡدٌ مُّؤۡمِنٌ خَيۡرٌ مِّنۡ مُّشۡرِكٍ وَّلَوۡ اَعۡجَبَكُمۡ ؕ

"और एक मोमिन ग़ुलाम बेहतर है एक आज़ाद मुशरिक मर्द से अग़रचे वह तुम्हें पसंद भी हो।"

ख़्वाह वह साहिबे हैसियत और मालदार हो, लेकिन दौलते ईमान से महरूम हो तो तुम्हारे लिये जायज़ नहीं है कि अपनी बहन या बेटी उसके निकाह में दे दो।

اُولٰٓئِكَ يَدۡعُوۡنَ اِلَى النَّارِ ۖۚ

"यह लोग आग की तरफ़ बुला रहे हैं।"

अगर इनसे रिश्ते-नाते जोड़ोगे तो वह तुम्हें भी जहन्नम में ले जाएँगे और तुम्हारी औलाद को भी।

وَاللّٰهُ يَدْعُوْٓا اِلَى الْجَنَّةِ وَالْمَغْفِرَةِ بِاِذْنِهٖ ۚ

"और अल्लाह तुम्हें बुला रहा है जन्नत की तरफ़ और मग़फ़िरत की तरफ़ अपने हुक्म से।"

وَيُبَيِّنُ اٰيٰتِهٖ لِلنَّاسِ لَعَلَّهُمْ يَتَذَكَّرُوْنَ ﴿٢٢١﴾

"और वह अपनी आयात वाज़ेह कर रहा है लोगों के लिये ताकि वह नसीहत हासिल करें।"

आयात 222 से 228 तक

وَيَسْـَٔلُوْنَكَ عَنِ الْمَحِيْضِ ۭ قُلْ هُوَ اَذًى ۙ فَاعْتَزِلُوا
النِّسَاۗءَ فِي الْمَحِيْضِ ۙ وَلَا تَقْرَبُوْهُنَّ حَتّٰى يَطْهُرْنَ ۚ
فَاِذَا تَطَهَّرْنَ فَاْتُوْهُنَّ مِنْ حَيْثُ اَمَرَكُمُ اللّٰهُ ۭ اِنَّ
اللّٰهَ يُحِبُّ التَّوَّابِيْنَ وَيُحِبُّ الْمُتَطَهِّرِيْنَ ﴿٢٢٢﴾
نِسَاۗؤُكُمْ حَرْثٌ لَّكُمْ ۠ فَاْتُوْا حَرْثَكُمْ اَنّٰى شِئْتُمْ ۡ
وَقَدِّمُوْا لِاَنْفُسِكُمْ ۭ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّكُمْ
مُّلٰقُوْهُ ۭ وَبَشِّرِ الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿٢٢٣﴾ وَلَا تَجْعَلُوا اللّٰهَ عُرْضَةً
لِّاَيْمَانِكُمْ اَنْ تَبَرُّوْا وَتَتَّقُوْا وَتُصْلِحُوْا بَيْنَ النَّاسِ ۭ
وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿٢٢٤﴾ لَا يُؤَاخِذُكُمُ اللّٰهُ بِاللَّغْوِ فِيْٓ

اَيۡمَانِكُمۡ وَلٰكِنۡ يُّؤَاخِذُكُمۡ بِمَا كَسَبَتۡ قُلُوۡبُكُمۡ‌ؕ
وَاللّٰهُ غَفُوۡرٌ حَلِيۡمٌ ﴿۲۲۵﴾ لِلَّذِيۡنَ يُؤۡلُوۡنَ مِنۡ نِّسَآٮِٕهِمۡ
تَرَبُّصُ اَرۡبَعَةِ اَشۡهُرٍ‌ۚ فَاِنۡ فَآءُوۡ فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوۡرٌ رَّحِيۡمٌ
﴿۲۲۶﴾ وَاِنۡ عَزَمُوا الطَّلَاقَ فَاِنَّ اللّٰهَ سَمِيۡعٌ عَلِيۡمٌ ﴿۲۲۷﴾
وَالۡمُطَلَّقٰتُ يَتَرَبَّصۡنَ بِاَنۡفُسِهِنَّ ثَلٰثَةَ قُرُوۡٓءٍ‌ؕ وَلَا
يَحِلُّ لَهُنَّ اَنۡ يَّكۡتُمۡنَ مَا خَلَقَ اللّٰهُ فِىۡٓ اَرۡحَامِهِنَّ اِنۡ
كُنَّ يُؤۡمِنَّ بِاللّٰهِ وَالۡيَوۡمِ الۡاٰخِرِ‌ؕ وَبُعُوۡلَتُهُنَّ اَحَقُّ
بِرَدِّهِنَّ فِىۡ ذٰلِكَ اِنۡ اَرَادُوۡٓا اِصۡلَاحًا ‌ؕ وَلَهُنَّ مِثۡلُ
الَّذِىۡ عَلَيۡهِنَّ بِالۡمَعۡرُوۡفِ‌ۚ وَلِلرِّجَالِ عَلَيۡهِنَّ دَرَجَةٌ‌ؕ
وَاللّٰهُ عَزِيۡزٌ حَكِيۡمٌ ﴿۲۲۸﴾

आयत 222

وَيَسۡـَٔلُوۡنَكَ عَنِ الۡمَحِيۡضِ‌ؕ

“और वह औरतों की माहवारी के बारे में आप ﷺ से सवाल कर रहे हैं।”

قُلۡ هُوَ اَذًىۙ

"कह दीजिये वह एक नापाकी भी है और एक तकलीफ़ का मसला भी है"

فَاعۡتَزِلُوا النِّسَآءَ فِى الۡمَحِيۡضِۙ

"तो हैज़ की हालात में औरतों से अलैहदा रहो"

وَلَا تَقۡرَبُوۡهُنَّ حَتّٰى يَطۡهُرۡنَۚ

"और उनसे मुक़ारबत ना करो यहाँ तक कि वह पाक हो जाएँ।"

فَاِذَا تَطَهَّرۡنَ فَاۡتُوۡهُنَّ مِنۡ حَيۡثُ اَمَرَكُمُ اللّٰهُ‌ؕ

"फिर जब वह ख़ूब पाक हो जाएें तो अब उनकी तरफ़ जाओ जहाँ से अल्लाह ने तुम्हें हुक्म दिया है।"

मालूम हुआ कि बदीहयाते फ़ितरत (पूर्व प्राकृतिक ज्ञान) अल्लाह तआला के अवामिर (आदेशों) में शामिल है। औरतों के साथ मुजामियत (संभोग) का तरीक़ा इंसान को फ़ितरी तौर पर मालूम है, यह एक अम्रे तबीय (प्राकृतिक कार्य) है। हर हैवान को भी जिबिल्ली (जन्मजात) तौर पर मालूम है कि उसे अपनी मादा के साथ कैसा ताल्लुक़ क़ायम करना है। लेकिन अगर इंसान फ़ितरी तरीक़ा छोड़ कर ग़ैर फ़ितरी तरीक़ा इख़्तियार करे और औरतों के साथ भी क़ौमे लूत वाला अमल करने लगे तो यह हराम है। सही रास्ता वही है जो अल्लाह तआला ने तुम्हारी फ़ितरत में डाला है।

اِنَّ اللّٰهَ يُحِبُّ التَّوَّابِيْنَ وَيُحِبُّ الْمُتَطَهِّرِيْنَ ۝٢٢٢

"यक़ीनन अल्लाह मुहब्बत करता है बहुत तौबा करने वालों से और मुहब्बत करता है बहुत पाकबाज़ी इख़्तियार करने वालों से।"

उनसे अगर कोई गुनाह सरज़द हो जाये तो उससे तौबा करते हैं और नापाक चीजों से दूर रहते हैं।

आयत 223

نِسَآؤُكُمْ حَرْثٌ لَّكُمْ ۠

"तुम्हारी बीवियाँ तुम्हारे लिये बमंज़िला खेती हैं।"

जैसे खेत में बीज बोते हो, फिर फ़सल काटते हो, उसी तरह बीवियों के ज़रिये से अल्लाह तआला तुम्हें औलाद अता करता है।

فَاْتُوْا حَرْثَكُمْ اَنّٰى شِئْتُمْ ۡ

"तो अपनी खेती में जिस तरह चाहो आओ।"

तुम अपनी खेती में जिधर से चाहो आओ, तुम्हारे लिये कोई रुकावट नहीं है, आगे से या दाहिनी तरफ़ से या बायें तरफ़ से, जिधर से भी चाहो, मगर यह ज़रूर है कि तख़्मरेज़ी (वीर्यरोपण) उसी ख़ास जगह में हो जहाँ से पैदावार की उम्मीद हो सकती है।

وَقَدِّمُوْا لِاَنْفُسِكُمْ ۭ

"और अपने आगे के लिये सामान करो।"

यानि अपने मुस्तक़बिल की फ़िक्र करो और अपनी नस्ल को आगे बढ़ाने की कोशिश करो। औलाद इंसान का असासा (संपत्ति) होती है और बुढ़ापे में उसका सहारा बनती है। आज तो उल्टी गंगा बहाई जा रही है और औलाद कम से कम पैदा करने की तरग़ीब दी जा रही है, जबकि एक ज़माने में औलाद असाए पीरी (बुढ़ापे की छड़ी) शुमार होती थी।

وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّكُمْ مُّلٰقُوْهُ ۭ

"और अल्लाह का तक़वा इख़्तियार करो और जान लो कि तुम्हें उससे मिल कर रहना है।"

नोट कीजिये कि क़ुरान हकीम में शरीअत के हर हुक्म के साथ तक़वा का ज़िक्र बार-बार आ रहा है। इसलिये कि किसी क़ानून की लाख पैरवी की जा रही हो मगर तक़वा ना हो तो वह क़ानून मज़ाक़ बन जायेगा, खेल-तमाशा बन जायेगा। इसकी बाज़ मिसालें अभी आएँगी।

وَبَشِّرِ الْمُؤْمِنِيْنَ ﴿٢٢٣﴾

"और (ऐ नबी ﷺ!) अहले ईमान को बशारत दे दीजिये।"

आयत 224

وَلَا تَجْعَلُوا اللّٰهَ عُرْضَةً لِّاَيْمَانِكُمْ

"और अल्लाह के नाम को तख़्ता-ए-मश्क़ ना बना लो अपनी क़समों के लिये"

اَنۡ تَبَرُّوۡا وَتَتَّقُوۡا وَتُصۡلِحُوۡا بَيۡنَ النَّاسِ‌ؕ

"कि भलाई ना करोगे, परहेज़गारी ना करोगे और लोगों के दरमियान सुलह ना कराओगे।"

यानि अल्लाह तआला के अज़ीम नाम को इस्तेमाल करते हुए ऐसी क़समें मत खाओ जो नेकी व तक़वा और मक़सदे इस्लाह के खिलाफ़ हों। किसी वक़्त गुस्से में आकर आदमी क़सम खा बैठता है कि मैं फलाँ शख़्स से कभी हुस्ने सुलूक और भलाई नहीं करूँगा, इससे रोका गया है। हज़रत अबु बक़्र सिद्दीक़ रज़ि० ने भी इसी तरह की क़सम खा ली थी। मिस्तह एक ग़रीब मुसलमान थे, जो आप रज़ि० के क़राबतदार भी थे। उनकी आप रज़ि० मदद किया करते थे। जब हज़रत आयशा सिद्दीक़ा रज़ि० पर तोहमत लगी तो मिस्तह भी उस आग के भड़काने वालों में शामिल हो गये। हज़रत अबु बक़्र रज़ि० उनके तर्ज़े अमल से बहुत रंजीदा ख़ातिर हुए कि मैं तो इसकी सरपरस्ती करता रहा और यह मेरी बेटी पर तोहमत लगाने वालों में शामिल हो गया। आप रज़ि० ने क़सम खाई कि अब मैं कभी इसकी मदद नहीं करूँगा। यह वाक़िया सूरतुल नूर में आयेगा। मुसलमानों से कहा जा रहा है कि तुम ऐसा ना करो, तुम अपनी नेकी के दरवाज़े क्यों बंद करते हो? जिसने ऐसी क़सम खाली है वह उस क़सम को खोल दे और क़सम का कफ़्फ़ारा दे दे। इसी तरह लोगों के माबैन मसालिहत (सुलह) कराना भी ज़रुरी है। दो भाईयों के दरमियान झगड़ा था, आपने मसालिहत की कोशिश की लेकिन आपकी बात नहीं मानी गई, इस पर आपने गुस्से में आकर कह दिया कि अल्लाह की क़सम, अब

मैं इनके मामले में दख़ल नहीं दूँगा। इस तरह की क़समें खाने से रोका गया है। और अगर किसी ने ऐसी कोई क़सम खाई है तो वह उसे तोड़ दे और उसका कफ़्फ़ारा दे दे।

وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿٢٢٤﴾

"और अल्लाह सुनने वाला, जानने वाला है।"

आयत 225

لَا يُؤَاخِذُكُمُ اللّٰهُ بِاللَّغْوِ فِيْٓ اَيْمَانِكُمْ

"अल्लाह तआला मुवाख़्ज़ा नहीं करेगा तुमसे तुम्हारी बे मायने क़समों पर (जो तुम अज़्म व इरादे के बग़ैर खा बैठते हो)"

अरबों का अंदाज़े गुफ़्तुगू इस तरह का है कि वल्लाह, बिल्लाह के बग़ैर उनका कोई जुमला शुरू ही नहीं होता। इससे दरहक़ीक़त उनकी नीयत क़सम खाने की नहीं होती बल्कि यह उनका गुफ़्तुगू का एक अस्लूब (अंदाज़) है। इस तरह की क़समों पर मुवाख़्ज़ा नहीं है।

وَلٰكِنْ يُّؤَاخِذُكُمْ بِمَا كَسَبَتْ قُلُوْبُكُمْ ۭ

"लेकिन उन क़समों पर तुमसे ज़रूर मुवाख़्ज़ा करेगा जो तुमने अपने दिली इरादे के साथ खाई हों।"

ऐसी क़समों को तोड़ने का कफ़्फ़ारा देना होगा। कफ़्फ़ारे का हुक्म सूरतुल मायदा में बयान हुआ है। मैं अर्ज़ कर चुका हूँ कि सूरतुल बक़रह में शरीअते इस्लामी का इब्तदाई ख़ाका दे दिया गया है और इसके तक्मीली अहकाम कुछ सूरतुन्निसा में और कुछ सूरतुल मायदा में बयान हुए हैं।

وَاللّٰهُ غَفُوْرٌ حَلِيْمٌ ﴿٢٢٥﴾

"और अल्लाह बख़्शने वाला है और हलीम है।"

वो बहुत दरगुज़र करने वाला और बुर्दबार (धैर्यवान) है। वह फ़ौरन नहीं पकड़ता, बल्कि इस्लाह की मोहलत देता है।

आयत 226

لِلَّذِيْنَ يُؤْلُوْنَ مِنْ نِّسَآىِٕهِمْ تَرَبُّصُ اَرْبَعَةِ اَشْهُرٍ ۚ

"जो लोग अपनी बीवियों से ताल्लुक़ ना रखने की क़सम खा बैठते हैं उनके लिये चार माह की मोहलत है।"

अगर कोई मर्द किसी वक़्त नाराज़ होकर या ग़ुस्से में आकर यह क़सम खा ले कि अब मैं अपनी बीवी के क़रीब नहीं जाऊँगा, उससे कोई ताल्लुक़ नहीं रखूँगा, तो यह ईला कहलाता है। ख़ुद आँहुज़ूर ﷺ ने भी अपनी अज़वाजे मुतह्हरात से ईला फ़रमाया था। अज़वाजे मुतह्हरात रज़ि० ने अर्ज़ किया था कि अब आम मुसलमानों के यहाँ भी ख़ुशहाली आ गई है तो हमारे यहाँ यह तंगी और सख़्ती क्यों है? अब हमारे भी नफ़्क़ात बढ़ाये जाएँ। इस पर रसूल अल्लाह ﷺ ने उनसे ईला किया। इसका ज़िक्र बाद में आयेगा। आमतौर पर होता यह था कि लोग क़सम तो खा बैठते थे कि बीवी के पास ना जाएँगे, मगर बाद में पछताते थे कि क्या करें। अब वह बीवी बेचारी मुअल्लक़ (suspended) होकर रह जाती। इस आयत में ईला की

मोहलत मुक़र्रर कर दी गई कि ज़्यादा से ज़्यादा चार माह तक इंतेज़ार किया जा सकता है।

فَاِنۡ فَآءُوۡ فَاِنَّ اللّٰہَ غَفُوۡرٌ رَّحِیۡمٌ ﴿۲۲۶﴾

"पस अगर वह रुजूअ कर लें तो अल्लाह बख़्शने वाला, मेहरबान है।"

इन चार माह के दौरान अगर वह अपनी क़सम को ख़त्म करें और रुजूअ कर लें, ताल्लुक़ ज़न व शौ क़ायम कर लें तो अल्लाह तआला ग़फ़ूर व रहीम है।

आयत 227

وَاِنۡ عَزَمُوا الطَّلَاقَ فَاِنَّ اللّٰہَ سَمِیۡعٌ عَلِیۡمٌ ﴿۲۲۷﴾

"और अगर वह तलाक़ का इरादा कर चुके हों तो अल्लाह सुनने वाला, जानने वाला है।"

यानि चार माह का अरसा गुज़र जाने पर शौहर को बहरहाल फ़ैसला करना है कि वह या तो रुजूअ करे या तलाक़ दे। अब औरत को मज़ीद मुअल्लक़ नहीं रखा जा सकता। रुजूअ की सूरत में चूँकि क़सम तोड़नी होगी लिहाज़ा उसका कफ़्फ़ारा अदा करना होगा। हज़रत उमर फ़ारूक़ रज़ि० ने अपने दौरे ख़िलाफ़त में यह हुक्म जारी किया था कि जो लोग जिहाद के लिये घरों से दूर गये हों उन्हें चार माह बाद लाज़िमी तौर पर घर भेजा जाये। आप रज़ि० अल्लाह ने यह हुक्म ग़ालिबन इसी आयत से इस्तनबात (अनुमान) करते हुये जारी फ़रमाया था। इसलिये कि आप रज़ि० ने उम्मुल मोमिनीन हज़रत हफ़्सा रज़ि० से

मशावरात भी फ़रमाई थी। अग़रचे आप रज़ि० का हज़रत हफ़्सा रज़ि० से बाप-बेटी का रिश्ता है, मगर दीन के मामलात में शर्म व हया आड़े नहीं आती, जैसे कि अल्लाह तआला का इर्शाद है: { وَاللّٰهُ لَا يَسْتَحْيٖ مِنَ الْحَقِّ } (अहज़ाब:53) "और अल्लाह शर्माता नहीं हक़ बात बतलाने में।" आप रज़ि० ने उनसे पूछा कि एक औरत कितना अरसा अपनी इफ्फ़त व अस्मत को संभाल कर अपने शौहर का इंतेज़ार कर सकती है? हज़रत हफ़्सा रज़ि० ने कहा चार माह। चुनाँचे हज़रत उमर रज़ि० ने मुजाहिदीन के बारे में यह हुक्म जारी फ़रमा दिया कि उन्हें चार माह से ज़्यादा घरों से दूर ना रखा जाये।

आयत 228

وَالْمُطَلَّقٰتُ يَتَرَبَّصْنَ بِاَنْفُسِهِنَّ ثَلٰثَةَ قُرُوْٓءٍ ؕ

"और जिन औरतों को तलाक़ दे दी जाये उन पर लाज़िम है कि वह अपने आपको तीन हैज़ तक रोके रखें।"

तलाक़ के बाद औरत के लिये तीन माह की इद्दत है। इस इद्दत में शौहर चाहे तो रुजूअ कर सकता है, अगर उसने एक या दो तलाक़ें दी हों। अलबत्ता तीसरी तलाक़ के बाद रुजूअ का हक़ नहीं है। तलाक़े रजीअ के बाद अभी अगर इद्दत ख़त्म हो जाये तो अब शौहर का रुजूअ का हक़ ख़त्म हो जायेगा और औरत आज़ाद होगी। लेकिन इस मुद्दत के अंदर वह दूसरी शादी नहीं कर सकती।

وَلَا يَحِلُّ لَهُنَّ اَنْ يَّكْتُمْنَ مَا خَلَقَ اللّٰهُ فِيْٓ اَرْحَامِهِنَّ

"और उनके लिये यह जायज़ नहीं है कि अल्लाह उनके अरहाम में जो कुछ पैदा कर दिया हो वह उसे छुपाएँ"

اِنْ كُنَّ يُؤْمِنَّ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۭ

"अगर वह फ़िलवाक़ेअ अल्लाह और यौमे आख़िर पर ईमान रखती हैं।"

तीन हैज़ की मुद्दत इसी लिये मुक़र्रर की गई है कि मालूम हो जाये कि औरत हामिला है या नहीं। अगर औरत हामिला हो लेकिन वह अपना हमल छुपा रही हो ताकि उसके पेट में पलने वाला उसका बच्चा उसके पास ही रहे, तो यह उसके लिये जायज़ नहीं है।

وَبُعُوْلَتُهُنَّ اَحَقُّ بِرَدِّهِنَّ فِيْ ذٰلِكَ اِنْ اَرَادُوْٓا اِصْلَاحًا ۭ

"और उनके शौहर उसके ज़्यादा हक़दार हैं कि उन्हें लौटा लें इस इद्दत के दौरान में अगर वह वाक़िअतन इस्लाह चाहते हों।"

इसे रुजुअत कहते हैं। शौहरों को हक़ हासिल है कि वह इद्दत के अंदर-अंदर रुजूअ कर सकते हैं, लेकिन यह हक़ तीसरी तलाक़ के बाद हासिल नहीं रहता। पहली या दूसरी तलाक़ के बाद इद्दत ख़त्म होने से पहले शौहर को इसका इख़्तियार हासिल है कि वह रुजूअ कर ले। इस पर बीवी को इन्कार करने का इख़्तियार नहीं है। वह यह नहीं कह सकती कि तुम

तो मुझे तलाक़ दे चुके हो, अब मैं तुम्हारी बात मानने को तैयार नहीं हूँ।

وَلَهُنَّ مِثْلُ الَّذِیْ عَلَیْهِنَّ بِالْمَعْرُوْفِ	*“और औरतों के लिये इसी तरह हुक़ूक़ हैं जिस तरह उन पर ज़िम्मेदारियाँ हैं दस्तूर के मुताबिक़।”*

यानि उनके लिये जो हुक़ूक़ हैं वह उनकी ज़िम्मेदारियों की मुनासबत से हैं।

وَلِلرِّجَالِ عَلَیْهِنَّ دَرَجَةٌ ؕ	*“और मर्दों के लिये उन पर एक दर्जा फ़ौक़ियत (प्राथमिकता) का है।”*
وَاللّٰهُ عَزِیْزٌ حَكِیْمٌ ﴿۲۲۸﴾	*“और अल्लाह तआला ज़बरदस्त है, हिकमत वाला है।”*

इस ज़माने में इस आयत की बहुत ग़लत ताबीर भी की गई है और इससे मुसावाते मर्दो-ज़न (औरत और मर्द) का फ़लसफ़ा साबित किया गया है। चुनाँचे बाज़ मुतरजमीन (तर्जुमा करने वालों) ने {وَلَهُنَّ مِثْلُ الَّذِیْ عَلَیْهِنَّ بِالْمَعْرُوْفِ} का तर्जुमा इस तरह किया है कि “औरतों के हक़ूक़ भी मर्दों पर वैसे ही हैं जैसे मर्दों के उन पर हक़ूक़ हैं।” यह तर्जुमा दुरुस्त नहीं है, इसलिये कि इस्लामी शरीअत में मर्द और औरत के दरमियान यानि शौहर और बीवी के दरमियान मुसावात नहीं है। इस आयत का मफ़हूम समझने के लिये अरबी में “لِ” और “عَلٰی” का इस्तेमाल मालूम होना चाहिये’।

"لِ" किसी के हक़ के लिये और "عَلٰی" किसी की ज़िम्मेदारी के लिये आता है। चुनाँचे इस टुकड़े का तर्जुमा इस तरह होगा: لَهُنَّ "उनके लिये हुक़ूक़ हैं।" مِثۡلُ الَّذِیۡ عَلَیۡهِنَّ "जैसी कि उन पर ज़िम्मेदारियाँ हैं।" अल्लाह तआला ने जैसी ज़िम्मेदारी मर्द पर डाली है वैसे हक़ूक उसको दिये हैं और जैसी ज़िम्मेदारी औरत पर डाली है उसकी मुनासबत से उसको भी हुक़ूक़ दे दिये हैं। और इस बात को खोल दिया कि {وَلِلرِّجَالِ عَلَیۡهِنَّ دَرَجَةٌ} यानि मर्दों को उन पर एक दर्जा फ़ौक़ियत का हासिल है। अब मसावात क्योकर हो सकती है? आख़िर में फ़रमाया:

وَاللّٰهُ عَزِیۡزٌ حَکِیۡمٌ ﴿۲۲۸﴾

"और अल्लाह तआला ज़बरदस्त है, हिकमत वाला है।"

ख़्वाह तुम्हें यह बात पसंद हो ख़्वाह नापसंद हो, यह उसका हुक्म है। वह अज़ीज़ है, ज़बरदस्त है, जो चाहे हुक्म दे। और हकीम है, हिकमत वाला है, उसका हर हुक्म हिकमत पर मब्नी है।

इस आयत में जो मज़मून बयान हुआ है उस पर क़द्रे तफ़्सीली गुफ़्तगु की ज़रुरत है। देखिये, इंसानी तमद्दुन (संस्कृति) का अहमतरीन और बुनियादी तरीन मसला क्या है? एक है इंसानी ज़िन्दगी का मसला। इंसानी ज़िन्दगी का सबसे पहला मसला तो वही है जो हैवानी ज़िन्दगी का भी है, यानि अपनी माद्दी ज़रूरियात। हर हैवान की तरह इंसान के साथ भी पेट लगा हुआ है जो खाने को माँगता है। लेकिन इसके बाद जब दो इंसान मिलते हैं और इससे तमद्दुन का आग़ाज़ होता है तो इसका सबसे बड़ा मसला इंसान की

शहवत है। अल्लाह तआला ने मर्द और औरत दो जिन्सें (लिंग) बना दी हैं और इन दोनों के माबैन ताल्लुक़ से नस्ल आगे चलती है। अब इस मामले को कैसे मुनज़्ज़म (organized) किया जाये, इसकी क्या हुदूद व क़ैद हों? यह जज़्बा वाक़िअतन बहुत ज़ोरआवर (potent) है। इसके बारे में फ़राइड ने जो कुछ कहा है वह बिल्कुल बेबुनियाद नहीं है। बस यूँ समझिये कि उसने ज़रा ज़्यादा मिर्च-मसाला लगा दिया है, वरना इसमें कोई शक नहीं कि इंसान का जिन्सी जज़्बा निहायत क़वी और ज़ोरआवर जज़्बा है। और जो शय जितनी क़वी हो उसे हुदूद में रखने के लिये उस पर उसी क़द्र ज़्यादा क़ैद गनीं आयद करनी पड़ती हैं। कोई घोड़ा जितना मुँहज़ोर हो उतना ही उसे लग़ाम देना आसान नहीं होता, उसके लिये फिर मशक़्क़त करनी पड़ती है। चुनाँचे अगर इस जिन्सी जज़्बे को बेलग़ाम छोड़ दिया जाता तो तमद्दुन में फ़साद हो जाता। लिहाज़ा इसके लिये शादी का मामला रखा गया कि एक औरत का एक मर्द के साथ रिश्ता क़ायम हो जाये, सबको मालूम हो कि यह इसकी बीवी है यह इसका शौहर है, ताकि इस तरह नसब (वंश) का मामला भी चले और एक ख़ानदानी इदारा वुजूद में आये। वरना आज़ाद शहवतरानी (free sex) से तो ख़ानदानी इदारा वुजूद में आ ही नहीं सकता। चुनाँचे निकाह के ज़रिये अज़्दवाजी (वैवाहिक) बंधन का तरीक़ा अल्लाह तआला ने इंसानों को सिखाया और इस तरह ख़ानदानी इदारा वुजूद में आया।

अब सवाल यह है कि क्या इस इदारे में मर्द और औरत दोनों बराबर हैं? इस नज़रिये से बड़ी हिमाक़त (मुर्खता)

और कोई नहीं है। इसलिये कि सीधी सी बात है कि किसी भी इदारे के दो बराबर के सरबराह (head) नहीं हो सकते। अगर आप किसी महकमे (विभाग) के दो डायरेक्टर बना दें तो वह इदारा तबाह हो जायेगा। ऊपर मैनेजिंग डायरेक्टर एक ही होगा, उसके नीचे आप दस डायरेक्टर भी बना दें तो कोई हर्ज नहीं। किसी इदारे का जनरल मैनेजर एक ही होगा, उसके मातहत आप हर शौबे का एक मैनेजर बना दीजिये। किसी भी इदारे में अगर नज़्म (सिस्टम) क़ायम करना है तो उसका चोटी (Top) का सरबराह एक ही होना चाहिये। लिहाज़ा जब एक मर्द और एक औरत से एक ख़ानदानी इदारा वुजूद में आये तो उसका सरबराह कौन होगा--- मर्द या औरत? मर्द और औरत इंसान होने के नाते बिल्कुल बराबर है, एक ही बाप के नुत्फ़े से बेटा भी है और बेटी भी। एक ही माँ के रहम में बहन ने भी परवरिश पाई है और भाई ने भी। लिहाज़ा इस ऐतबार से शर्फ़े इंसानियत में, नौए इंसानियत के फ़र्द की हैसियत से, दोनों बराबर हैं। लेकिन जब एक मर्द और एक औरत मिल कर ख़ानदान की बुनियाद रखते हैं तो अब यह बराबर नहीं रहे। जैसे इंसान सब बराबर हैं, लेकिन एक दफ्तर में चपरासी और अफ़सर बराबर नही हैं, उनके अलग-अलग इख़्तियारात और फ़राइज हैं।

क़ुरान हकीम में सबसे पहले और सबसे ज़्यादा तफ़सील के साथ जो अहकाम दिये गये हैं वह ख़ानदानी निज़ाम और आइली मामलात ही से मुताल्लिक़ हैं। इसलिये कि इंसानी तमद्दुन की जड़ और बुनियाद यही है। यहाँ से ख़ानदान बनता है और ख़ानदानों की इज्तमा का नाम मआशरा है।

पाकिस्तानी मआशरे की मिसाल ले लीजिये। अगर हमारी आबादी इस वक़्त चौदह करोड़ है और आप एक ख़ानदान के सात अफ़राद शुमार कर लें तो हमारा मआशरा दो करोड़ ख़ानदानों पर मुश्तमिल है। ख़ानदान का इदारा मुस्तहकम (स्थिर) होगा तो मआशरा मुस्तहकम हो जायेगा। ख़ानदान के इदारे में सलाह और फ़लाह होगी तो मआशरे में भी सलाह व फ़लाह नज़र आयेगी। अगर ख़ानदान के इदारे में फ़साद, बेचैनी, ज़ुल्म और नाइंसाफ़ी होगी, मियाँ और बीवी में झगड़े हो रहे होंगे तो फिर वहाँ औलाद की तरबियत सही नहीं हो सकती, उनकी तरबियत में यह मन्फ़ी चीज़ें शामिल हो जायेंगी और इसी का अक्स पूरे मआशरे पर पड़ेगा। चुनाँचे ख़ानदानी इदारे की इस्लाह और उसके इस्तहकाम के लिये क़ुरान मजीद में बड़ी तफ़सील से अहकाम दिये गये हैं, जिन्हें आइली क़वानीन कहा जाता है।

इस ज़िमन में तलाक़ एक अहम मामला है। इसमें मर्द और औरत को बराबर का इख़्तियार नहीं दिया गया। जहाँ तक शादी का ताल्लुक़ है उसमें औरत की रज़ामंदी ज़रूरी है, उसे शादी से इन्कार करने का हक़ हासिल है, उस पर जबर नहीं किया जा सकता। लेकिन एक मर्तबा जब वह निकाह में आ गई है तो अब शौहर का पलड़ा भारी है, वह उसे तलाक़ दे सकता है। अगर ज़ुल्म के साथ देगा तो अल्लाह के यहाँ जवाब देही करनी पड़ेगी और पकड़ हो जायेगी। लेकिन बहरहाल उसे इख़्तियार हासिल है। औरत ख़ुद तलाक़ नहीं दे सकती, अलबत्ता तलाक़ हासिल कर सकती है, जिसे हम "खुलाअ" कहते हैं। वह अदालत के ज़रिये से या ख़ानदान के बड़ों के ज़रिये से ख़ुलाअ हासिल कर सकती है,

लेकिन उसे मर्द की तरह तलाक़ देने का हक़ हासिल नहीं है। इसी तरह अगर मर्द ने एक या दो तलाक़ें दे दीं और अभी इद्दत पूरी नहीं हुई तो उसे रुजूअ का हक़ हासिल है। इस पर औरत इंकार नहीं कर सकती। यह तमाम चीज़ें ऐसी हैं जो मौजूदा ज़माने में ख्वातीन को अच्छी नहीं लगतीं। इसलिये कि आज की दुनिया में मसावाते मर्दो-ज़न का फ़लसफ़ा शैतान का सबसे बड़ा फ़लसफ़ा और मआशरे में फ़ितना व फ़साद और गंदगी पैदा करने का सबसे बड़ा हथियार है। और अब हमारे इसाई मुल्क ख़ासतौर पर मुसलमान मुल्कों में ख़ानदानी निज़ाम की जो बची-कुची शक्ल बाक़ी रह गई है और जो कुछ रही-सही इक़दार मौजूद हैं उन्हें तबाह व बर्बाद करने की सरतोड़ कोशिशें हो रही हैं। क़ाहिरा कॉन्फ्रेंस और बीजिंग कॉन्फ्रेंस का मक़सद यही है कि एशिया का मशरिक़ और मग़रिब दोनों तरफ़ से घेराव किया जाये ताकि यहाँ कि औरत को आज़ादी दिलाई जाये। मर्द व औरत की मुसावात और औरतों की आज़ादी (emancipation) के नाम पर हमारे खानदानी निज़ाम को इसी तरह बर्बाद करने की कोशिश की जा रही है जिस तरह उनके यहाँ बर्बाद हो चुका है। अमरीकी सदर बिल क्लिन्टन ने अपने साले नौ के पैगाम में कहा था कि जल्दी ही हमारी क़ौम की अक्सरियत "हरामज़ादों" (born without any wedlock) पर मुश्तमिल होगी। वहाँ अब महज़ "one parent family" रह गई है। माँ की हैसियत बाप की भी है और माँ की भी। वहाँ के बच्चे अपने बाप को जानते ही नहीं। अब वहाँ एक मुहिम ज़ोर-शोर से उठ रही है कि हर इंसान का हक़ है कि उसे मालूम हो कि उसका बाप कौन है। यह अज़ीम तबाही

है जो मग़रबी मआशरे पर आ चुकी है और हमारे यहाँ भी लोग इस मआशरे की नक़्क़ाली इख़्तियार कर रहे हैं और यह नज़रिया-ए-मुसावाते मर्दो-ज़न बहुत ही ताबनाक और ख़ुशनुमा अल्फ़ाज़ के साथ सामने आ रहा है।

अलबत्ता इस मामले का एक दूसरा रुख़ भी है। इस्लाम ने औरतों को जो हुक़ूक़ दिये हैं बदक़िस्मती से हम मुसलमानों ने वह भी उनको नहीं दिये। इसकी वजह यह है कि हमारे ज़हनों पर अभी तक हमारा हिन्दुआना पसमंज़र मुसल्लत है और हिन्दुओं के मआशरे में औरत की क़तअन कोई हैसियत ही नहीं। विरासत का हक़ तो बहुत दूर की बात है, उसे तो अपने शौहर की मौत के बाद ज़िन्दा रहने का हक़ भी हासिल नहीं है, उसे तो शौहर की चिता के साथ ही जल कर सती हो जाना चाहिये। गोया उसका तो कोई क़ानूनी वुजूद (legal entity) है ही नहीं। हमारे आबा व अजदाद मुसलमान तो हो गये थे, लेकिन इस्लामी तालीमात के मुताबिक़ उनकी तरबियत नहीं हो सकी थी, लिहाज़ा हमारे ज़हनों पर वही हिन्दुआना तसव्वुरात मुसल्लत हैं कि औरत तो मर्द के पाँव की जूती की तरह है। यह जो कुछ हम कर रहे हैं कि उनके जायज़ हुक़ूक़ भी उनको नहीं देते, इसके नतीजे में हम अपने ऊपर होने वाली मग़रबी यलग़ार को मुअस्सर करने में ख़ुद मदद दे रहे हैं। अगर हम अपनी ख्वातीन को वह हुक़ूक नहीं देंगे जो अल्लाह और उसके रसूल ﷺ ने उनके लिये मुक़र्रर किये हैं तो ज़ाहिर बात है कि आज़ादी-ए-निस्वाँ, हुक़ूक़े निस्वाँ और मुसावाते मर्दो-ज़न जैसे ख़ुशनुमा उन्वानात से जो दावत उठी है वह लाज़िमन उन्हें खींच कर ले जायेगी। लिहाज़ा इस तरफ़ भी

ध्यान रखिये। हमारे यहाँ दीनदार घरानों में ख़ासतौर पर औरतों के हुक़ूक़ नज़र अंदाज़ होते हैं। इसको समझना चाहिये कि इस्लाम में औरतों के क्या हुक़ूक़ हैं और उनकी किस क़दर दिलजोई करनी चाहिये। रसूल अल्लाह ﷺ ने फ़रमाया: ((خَیْرُکُمْ خَیْرُکُمْ لِاَھْلِہٖ وَاَنَا خَیْرُکُمْ لِاَھْلِیْ))(28) "तुममें से बेहतरीन लोग वह हैं जो अपने घरवालों के लिये अच्छे हों। और जान लो कि मैं अपने घर वालों के लिये तुम सबसे अच्छा हूँ।" लिहाज़ा ज़रूरी है कि औरतों के साथ हुस्ने सुलूक हो, उनकी दिलजोई हो, उनके अहसासात का भी पास किया जाये। अलबत्ता जहाँ दीन और शरीअत का मामला आ जाये वहाँ किसी लचक की गुंजाइश ना हो, वहाँ आप शमशीर बराहना हो जाएँ और साफ़-साफ़ कह दें कि यह मामला दीन का है, इसमें मैं तुम्हारी कोई रिआयत नहीं कर सकता, हाँ अपने मामलात के अंदर मैं ज़रूर नरमी करूँगा।

इस सारी बहस को ज़हन में रखिये। हमारे जदीद दानिशवर इस आयत के दरमियानी अल्फ़ाज़ को तो ले लेते हैं: { وَلَھُنَّ مِثْلُ الَّذِیْ عَلَیْھِنَّ بِالْمَعْرُوْفِ } और इससे मुसावाते मर्दो-ज़न का मफ़हूम निकालने की कोशिश करते हैं, लेकिन इनसे पहले वाले अल्फ़ाज़ और {وَبُعُوْلَتُھُنَّ اَحَقُّ بِرَدِّھِنَّ} और बाद वाले अल्फ़ाज़ {وَلِلرِّجَالِ عَلَیْھِنَّ دَرَجَۃٌ ؕ} से सर्फ़े नज़र कर लेते हैं। यह तर्ज़े अमल बिल्कुल ग़लत है। एक मर्द और एक औरत से जो ख़ानदानी इदारा वुजूद में आता है, इस्लाम उसका सरबराह मर्द को ठहराता है। यह फ़लसफ़ा ज़्यादा वज़ाहत से सूरतुन्निसा में बयान होगा जहाँ अल्फ़ाज़

आये हैं: {اَلرِّجَالُ قَوّٰمُوْنَ عَلَى النِّسَآءِ} (आयत:34)। यहाँ इसकी तम्हीद आ गई है ताकि यह कड़वी गोली ख्वातीन के हलक़ से ज़रा नीचे उतरनी शुरू हो जाये। इस आयत का तर्जुमा एक बार फिर देख लीजिये: "और उनके शौहर इसके ज़्यादा हक़दार हैं कि उन्हें लौटा लें इस इद्दत के दौरान में अगर वह वाक़िअतन इस्लाह चाहते हों। और औरतों के लिये इसी तरह हुक़ूक़ हैं जिस तरह उन पर ज़िम्मेदारियाँ हैं दस्तूर के मुताबिक़। और मर्दों के लिये उन पर एक दर्जा फ़ौक़ियत का है। और अल्लाह ज़बरदस्त है, हकीम है।" अल्लाह तआला ने जो ज़िम्मेदारियाँ औरत के हवाले की हैं, जिस तरह के उस पर फ़राइज़ आयद किये हैं वैसे ही उसको हुक़ूक़ भी अता किये हैं। यह दुनिया का मुसल्लमा उसूल है कि हुक़ूक़ व फ़राइज़ बाहम साथ-साथ चलते हैं। अगर आपकी ज़िम्मेदारी ज़्यादा हैं तो हुक़ूक़ और इख़्तियारात भी ज़्यादा होंगे। अगर आप पर ज़िम्मेदारी बहुत ज़्यादा डाल दी जाये लेकिन हुक़ूक़ और इख़्तियारात उसकी मुनासबत से ना हों तो आप अपनी ज़िम्मेदारी अदा नहीं कर सकते। जहाँ ज़िम्मेदारी कम होगी वहाँ हुक़ूक़ और इख़्तियारात भी कम होंगे। यह दोनो चीज़ें मुनास्बत (proportionate) चलती हैं। अब हम अगली आयत का मुताअला करते हैं:

आयात 229 से 231 तक

اَلطَّلَاقُ مَرَّتٰنِ ۠ فَاِمْسَاكٌۢ بِمَعْرُوْفٍ اَوْ تَسْرِيْحٌۢ
بِاِحْسَانٍ ؕ وَلَا يَحِلُّ لَكُمْ اَنْ تَاْخُذُوْا مِمَّآ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ
شَيْـًٔا اِلَّآ اَنْ يَّخَافَآ اَلَّا يُقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ؕ فَاِنْ خِفْتُمْ اَلَّا
يُقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ۙ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَا فِيْمَا افْتَدَتْ بِهٖ ؕ
تِلْكَ حُدُوْدُ اللّٰهِ فَلَا تَعْتَدُوْهَا ۚ وَمَنْ يَّتَعَدَّ حُدُوْدَ
اللّٰهِ فَاُولٰٓئِكَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ ﴿۲۲۹﴾ فَاِنْ طَلَّقَهَا فَلَا تَحِلُّ
لَهٗ مِنْۢ بَعْدُ حَتّٰى تَنْكِحَ زَوْجًا غَيْرَهٗ ؕ فَاِنْ طَلَّقَهَا
فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَآ اَنْ يَّتَرَاجَعَآ اِنْ ظَنَّآ اَنْ يُّقِيْمَا
حُدُوْدَ اللّٰهِ ؕ وَتِلْكَ حُدُوْدُ اللّٰهِ يُبَيِّنُهَا لِقَوْمٍ يَّعْلَمُوْنَ
﴿۲۳۰﴾ وَاِذَا طَلَّقْتُمُ النِّسَآءَ فَبَلَغْنَ اَجَلَهُنَّ فَاَمْسِكُوْهُنَّ
بِمَعْرُوْفٍ اَوْ سَرِّحُوْهُنَّ بِمَعْرُوْفٍ وَلَا تُمْسِكُوْهُنَّ
ضِرَارًا لِّتَعْتَدُوْا ۚ وَمَنْ يَّفْعَلْ ذٰلِكَ فَقَدْ ظَلَمَ
نَفْسَهٗ ؕ وَلَا تَتَّخِذُوْٓا اٰيٰتِ اللّٰهِ هُزُوًا ۡ وَّاذْكُرُوْا نِعْمَتَ
اللّٰهِ عَلَيْكُمْ وَمَآ اَنْزَلَ عَلَيْكُمْ مِّنَ الْكِتٰبِ وَالْحِكْمَةِ

يَعِظُكُمْ بِهٖ ۭ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمٌ ۝۲۳۱

आयत 229

اَلطَّلَاقُ مَرَّتٰنِ

"तलाक़ दो मर्तबा है।"

यानि एक शौहर को दो मर्तबा तलाक़ देकर रुजूअ कर लेने का हक़ है। एक दफ़ा तलाक़ दी और इद्दत के अंदर-अंदर रुजूअ कर लिया तो ठीक है। फिर तलाक़ दे दी और इद्दत के अंदर-अंदर रुजूअ कर लिया तो भी ठीक है। तीसरी मर्तबा तलाक़ दे दी तो अब वह रुजूअ नहीं कर सकता।

فَاِمْسَاكٌۢ بِمَعْرُوْفٍ اَوْ تَسْرِيْحٌۢ بِاِحْسَانٍ ۭ

"फिर या तो मारूफ़ तरीक़े से रोक लेना है या फिर ख़ूबसूरती के साथ रुख़सत कर देना है।"

यानि दो मर्तबा तलाक़ देने के बाद अब फ़ैसला करो। या तो अपनी बीवी को नेकी और भलाई के साथ घर में रोक लो, तंग करने और परेशान करने के लिये नहीं, या फिर भले तरीक़े से, भले मानुसों की तरह उसे रुख़सत कर दो।

وَلَا يَحِلُّ لَكُمْ اَنْ تَاْخُذُوْا مِمَّآ اٰتَيْتُمُوْهُنَّ شَيْــًٔا

"और तुम्हारे लिये यह जायज़ नहीं है कि जो कुछ तुमने उन्हें दिया था उसमें से कुछ भी वापस लो"

जब तुम तलाक़ दे रहे हो तो तुमने उन्हें जो महर दिया था उसमें से कुछ वापस नहीं ले सकते। हाँ अगर औरत ख़ुद तलाक़ माँगे तो उसे अपने महर में से कुछ छोड़ना पड़ सकता है। लेकिन जब मर्द तलाक़ दे रहा हो तो उसमें से कुछ भी वापस नहीं ले सकता जो वह अपनी बीवी को दे चुका है। सूरतुन्निसा (आयत:20) में यहाँ तक अल्फ़ाज़ आये हैं कि अग़रचे तुमने सोने का ढ़ेर (क़िन्तार) दे दिया हो फिर भी उसमें से कुछ वापस ना लो।

اِلَّآ اَنْ يَّخَافَآ اَلَّا يُقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ۭ

"सिवाये इसके कि दोनों को अंदेशा हो कि वह हुदूद अल्लाह को क़ायम नहीं रख सकेगें।"

मुराद यह है कि अल्लाह तआला ने अज़द्वाजी ज़िन्दगी के ज़िमन में जो अहदाफ़ (लक्ष्य) व मक़ासिद मुअय्यन फ़रमाये हैं, उसके लिये जो अहकाम दिये हैं और जो आदाब बताये हैं, फ़रीक़ैन अगर यह महसूस करें कि हम उन्हें मलहूज़ (ध्यान में) नहीं रख सकते तो यह एक इस्तसनाई सूरत है, जिसमें औरत कोई माल या रक़म फ़िदये के तौर पर देकर ऐसे शौहर से खुलासी हासिल कर सकती है।

فَاِنۡ خِفۡتُمۡ اَلَّا يُقِيۡمَا حُدُوۡدَ اللّٰهِ ۙ فَلَا جُنَاحَ عَلَيۡهِمَا فِيۡمَا افۡتَدَتۡ بِهٖ ؕ

"पस अगर तुम्हें यह अंदेशा हो कि वह दोनों हुदूदे इलाही पर क़ायम नहीं रह सकते, तो उन दोनों पर इस मामले में कोई गुनाह नहीं है जो औरत फ़िदये में दे।"

यानि ऐसी सूरत में औरत अगर फ़िदये के तौर पर कुछ दे दिला कर अपने आप को छुड़ा ले तो इसमें फ़रीक़ैन पर कोई गुनाह नहीं। मसलन किसी औरत का महर दस लाख था, वह उसमें से पाँच लाख शौहर को वापस देकर उससे ख़ुला ले ले तो इसमें कोई हर्ज नहीं है।

تِلۡكَ حُدُوۡدُ اللّٰهِ فَلَا تَعۡتَدُوۡهَا ۚ

"यह अल्लाह की हुदूद हैं, पस इनसे तज़ावुज़ मत करो।"

देखिए रोज़े वगैरह के ज़िमन में हुदूद अल्लाह के साथ {فَلَا تَقۡرَبُوۡهَا} फ़रमाया था। यहाँ फ़रमाया: {فَلَا تَعۡتَدُوۡهَا} इसलिये कि इन मामलात में लोग बड़े धड़ल्ले से अल्लाह की मुक़र्रर कर्दा हुदूद को पामाल कर (रौंद) जाते हैं। अग़रचे क़ानून बाक़ी रह जाता है मगर उसकी रूह ख़त्म हो जाती है।

وَمَنْ يَّتَعَدَّ حُدُوْدَ اللّٰهِ فَاُولٰۗىِٕكَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ ۝٢٢٩

"और जो लोग अल्लाह की हुदूद से तज़ावुज़ करते हैं वही ज़ालिम हैं।"

आयत 230

فَاِنْ طَلَّقَهَا فَلَا تَحِلُّ لَهٗ مِنْۢ بَعْدُ حَتّٰى تَنْكِحَ زَوْجًا غَيْرَهٗ

"फिर अगर वह (तीसरी मर्तबा) उसे तलाक़ दे दे तो वह औरत इसके बाद उसके लिये जायज़ नहीं हैं, जब तक कि वह औरत किसी और शौहर से निकाह ना करे।"

तीसरी तलाक़ दे चुकने के बाद अगर कोई शख़्स फिर उसी औरत से निकाह करना चाहे तो जब तक वह औरत किसी दूसरे शख़्स से निकाह ना करे और वह उसे तलाक़ ना दे उस वक़्त तक यह औरत अपने पहले शौहर के लिये हलाल नहीं हो सकती। इसे "हलाला" कहा जाता है। लेकिन "हलाला" के नाम से हमारे यहाँ जो मकरूह धंधा मुरव्वज (चारों ओर) है कि एक मुआहिदे के तहत औरत का निकाह किसी मर्द से किया जाता है कि तुम फिर इसे तलाक़ दे देना, इस पर रसूल अल्लाह ﷺ ने लानत फ़रमाई है।

فَاِنْ طَلَّقَهَا

"पस अगर वह उसको तलाक़ दे दे"

यानि वह औरत दूसरी जगह पर शादी कर ले, लेकिन दूसरे शौहर से भी उसकी ना बने और वह भी उसको तलाक़ दे दे।

فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَآ اَنْ يَّتَرَاجَعَآ

"तो अब कोई गुनाह नहीं होगा उन दोनों पर कि वह मराजियत (वापसी) कर लें"

अब वह औरत अपने साबक़ा शौहर से निकाह कर सकती है। दूसरे शौहर से निकाह के बाद औरत को शायद अक़्ल आ जाये कि ज़्यादती मेरी ही थी कि पहले शौहर के यहाँ बस नहीं सकी। अब दूसरी मर्तबा तजुर्बा होने पर मुमकिन है उसे अपनी ग़लती का अहसास हो जाये। अब अग़र वह दोबारा अपने साबक़ा शौहर की तरफ़ रुजूअ करना चाहे तो इसकी इजाज़त है कि वह फिर से निकाह कर लें।

اِنْ ظَنَّآ اَنْ يُّقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ۭ

"अगर उनको यह यक़ीन हो कि वह अल्लाह की हुदूद की पासदारी कर सकेगें।"

अज़्दवाजी ज़िन्दगी में अल्लाह तआला ने जो हुदूद मुक़र्रर की हैं और जो अहकाम दिये हैं उनको बहरहाल मद्देनज़र रखना है और तमाम मामलात पर फ़ायक़ (प्रमुख) रखना है।

وَتِلْكَ حُدُوْدُ اللّٰهِ يُبَيِّنُهَا لِقَوْمٍ يَّعْلَمُوْنَ ۝٢٣٠

"और यह अल्लाह की मुक़र्रर कर्दा हुदूद हैं, जिनको वह वाज़ेह कर रहा है उन लोगों के लिये जो इल्म हासिल करना चाहें।"

يَّعۡلَمُوۡنَ का तर्जुमा है "जो जानतें हैं" यानि जिन्हें इल्म हासिल है। लेकिन यहाँ इसका मफ़हूम है "जो इल्म के तालिब हैं।" बाज़ अवक़ात फ़अल को तलबे फ़अल के मायने में इस्तेमाल किया जाता है।

आयत 231

وَاِذَا طَلَّقۡتُمُ النِّسَآءَ فَبَلَغۡنَ اَجَلَهُنَّ

"और जब तुम लोग अपनी बीवियों को तलाक़ दो और फिर वह अपनी इद्दत पूरी कर लें"

فَاَمۡسِكُوۡهُنَّ بِمَعۡرُوۡفٍ اَوۡ سَرِّحُوۡهُنَّ بِمَعۡرُوۡفٍ

"तो या तो मारूफ़ तरीक़े से उन्हें रोक लो या अच्छे अंदाज़ से उन्हें रुख़सत कर दो।"

وَلَا تُمۡسِكُوۡهُنَّ ضِرَارًا لِّتَعۡتَدُوۡا ۚ

"और तुम उन्हें मत रोको नुक़सान पहुँचाने के इरादे से कि तुम हुदूद से तजावुज़ करो।"

देखो ऐसा मत करो कि तुम उन्हें तंग करने के लिये रोक लो कि मैं इसकी ज़रा और ख़बर ले लूँ, अगर तलाक़ हो जायेगी तो यह आज़ाद हो जायेगी। गुस्सा इतना चढ़ा हुआ है कि अभी भी ठंडा नहीं हो रहा और वह इसलिये रुजूअ कर रहा है ताकि औरत को मज़ीद परेशान करे, उसे और तकलीफ़ें पहुँचाये। इस तरह तो उसने क़ानून का मज़ाक उड़ाया और

अल्लाह की दी हुई इस इजाज़त का नाजायज़ इस्तेमाल किया।

وَمَنۡ يَّفۡعَلۡ ذٰلِكَ فَقَدۡ ظَلَمَ نَفۡسَهٗ ؕ

"और जो कोई भी यह काम करेगा वह अपनी ही जान पर ज़ुल्म ढायेगा।"

وَلَا تَتَّخِذُوۡٓا اٰيٰتِ اللّٰهِ هُزُوًا ؗ

"और अल्लाह की आयात को मज़ाक ना बना लो।"

ज़रुरी है कि अहकामे शरीअत पर उनकी रूह के मुताबिक़ अमल किया जाये। यही वजह है कि क़ुरान हकीम में ख़ासतौर पर अज़द्वाजी ज़िन्दगी के ज़िमन में बार-बार अल्लाह के खौफ़ और तक़वा की ताकीद की गई है। अगर तुम्हारे दिल इससे ख़ाली होंगे तो तुम अल्लाह की शरीअत को खेल-तमाशा बना दोगे, ठठ्ठा और मज़ाक़ बना दोगे।

وَاذۡكُرُوۡا نِعۡمَتَ اللّٰهِ عَلَيۡكُمۡ

"और याद करो अल्लाह के जो ईनामात तुम पर हुए हैं"

وَمَآ اَنۡزَلَ عَلَيۡكُمۡ مِّنَ الۡكِتٰبِ وَالۡحِكۡمَةِ

"और जो उसने नाज़िल फ़रमाई तुम पर अपनी किताब और हिकमत।"

يَعِظُكُمۡ بِهٖ ؕ

"वह इसके ज़रिये से तुम्हें नसीहत कर रहा है।"

अल्लाह तआला की ऐसी अज़ीम नेअमतें पाने के बाद भी अगर तुमने उसकी हुदूद को तोड़ा और उसकी शरीअत का मज़ाक़ बनाया तो फिर तुम्हें उसकी गिरफ़्त से डरना चाहिये।

وَاتَّقُوا اللّٰهَ

"और अल्लाह का तक़वा इख़्तियार करो"

وَاعۡلَمُوۡٓا اَنَّ اللّٰهَ بِكُلِّ شَىۡءٍ عَلِيۡمٌ ﴿۲۳۱﴾

"और जान लो कि अल्लाह तआला को हर चीज़ का हक़ीक़ी इल्म हासिल है।"

आयात 232 से 237 तक

وَاِذَا طَلَّقۡتُمُ النِّسَآءَ فَبَلَغۡنَ اَجَلَهُنَّ فَلَا تَعۡضُلُوۡهُنَّ
اَنۡ يَّنۡكِحۡنَ اَزۡوَاجَهُنَّ اِذَا تَرَاضَوۡا بَيۡنَهُمۡ
بِالۡمَعۡرُوۡفِ ؕ ذٰلِكَ يُوۡعَظُ بِهٖ مَنۡ كَانَ مِنۡكُمۡ يُؤۡمِنُ
بِاللّٰهِ وَالۡيَوۡمِ الۡاٰخِرِ ؕ ذٰلِكُمۡ اَزۡكٰى لَكُمۡ وَاَطۡهَرُ ؕ وَاللّٰهُ
يَعۡلَمُ وَاَنۡتُمۡ لَا تَعۡلَمُوۡنَ ﴿۲۳۲﴾ وَالۡوَالِدٰتُ يُرۡضِعۡنَ

اَوۡلَادَهُنَّ حَوۡلَيۡنِ كَامِلَيۡنِ لِمَنۡ اَرَادَ اَنۡ يُّتِمَّ
الرَّضَاعَةَ ؕ وَعَلَى الۡمَوۡلُوۡدِ لَهٗ رِزۡقُهُنَّ وَكِسۡوَتُهُنَّ
بِالۡمَعۡرُوۡفِ ؕ لَا تُكَلَّفُ نَفۡسٌ اِلَّا وُسۡعَهَا ۚ لَا تُضَآرَّ
وَالِدَةٌ ۢ بِوَلَدِهَا وَلَا مَوۡلُوۡدٌ لَّهٗ بِوَلَدِهٖ ۚ وَعَلَى الۡوَارِثِ
مِثۡلُ ذٰلِكَ ۚ فَاِنۡ اَرَادَا فِصَالًا عَنۡ تَرَاضٍ مِّنۡهُمَا
وَتَشَاوُرٍ فَلَا جُنَاحَ عَلَيۡهِمَا ؕ وَاِنۡ اَرَدْتُّمۡ اَنۡ
تَسۡتَرۡضِعُوۡۤا اَوۡلَادَكُمۡ فَلَا جُنَاحَ عَلَيۡكُمۡ اِذَا
سَلَّمۡتُمۡ مَّاۤ اٰتَيۡتُمۡ بِالۡمَعۡرُوۡفِ ؕ وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعۡلَمُوۡۤا اَنَّ
اللّٰهَ بِمَا تَعۡمَلُوۡنَ بَصِيۡرٌ ﴿۲۳۳﴾ وَالَّذِيۡنَ يُتَوَفَّوۡنَ مِنۡكُمۡ
وَيَذَرُوۡنَ اَزۡوَاجًا يَّتَرَبَّصۡنَ بِاَنۡفُسِهِنَّ اَرۡبَعَةَ اَشۡهُرٍ
وَّعَشۡرًا ۚ فَاِذَا بَلَغۡنَ اَجَلَهُنَّ فَلَا جُنَاحَ عَلَيۡكُمۡ فِيۡمَا
فَعَلۡنَ فِىۡۤ اَنۡفُسِهِنَّ بِالۡمَعۡرُوۡفِ ؕ وَاللّٰهُ بِمَا تَعۡمَلُوۡنَ
خَبِيۡرٌ ﴿۲۳۴﴾ وَلَا جُنَاحَ عَلَيۡكُمۡ فِيۡمَا عَرَّضۡتُمۡ بِهٖ مِنۡ
خِطۡبَةِ النِّسَآءِ اَوۡ اَكۡنَنۡتُمۡ فِىۡۤ اَنۡفُسِكُمۡ ؕ عَلِمَ اللّٰهُ
اَنَّكُمۡ سَتَذۡكُرُوۡنَهُنَّ وَلٰـكِنۡ لَّا تُوَاعِدُوۡهُنَّ سِرًّا اِلَّاۤ

اَنْ تَقُوْلُوْا قَوْلًا مَّعْرُوْفًا ۬ؕ وَلَا تَعْزِمُوْا عُقْدَةَ النِّكَاحِ
حَتّٰى يَبْلُغَ الْكِتٰبُ اَجَلَهٗ ؕ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُ مَا فِيْٓ
اَنْفُسِكُمْ فَاحْذَرُوْهُ ۚ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ حَلِيْمٌ
﴿۲۳۵﴾ ع لَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ اِنْ طَلَّقْتُمُ النِّسَآءَ مَا لَمْ
تَمَسُّوْهُنَّ اَوْ تَفْرِضُوْا لَهُنَّ فَرِيْضَةً ۖۚ وَّمَتِّعُوْهُنَّ ۚ عَلَى
الْمُوْسِعِ قَدَرُهٗ وَعَلَى الْمُقْتِرِ قَدَرُهٗ ۚ
مَتَاعًا ۢ بِالْمَعْرُوْفِ ۚ حَقًّا عَلَى الْمُحْسِنِيْنَ ﴿۲۳۶﴾ وَاِنْ
طَلَّقْتُمُوْهُنَّ مِنْ قَبْلِ اَنْ تَمَسُّوْهُنَّ وَقَدْ فَرَضْتُمْ
لَهُنَّ فَرِيْضَةً فَنِصْفُ مَا فَرَضْتُمْ اِلَّآ اَنْ يَّعْفُوْنَ اَوْ
يَعْفُوَا الَّذِيْ بِيَدِهٖ عُقْدَةُ النِّكَاحِ ؕ وَاَنْ تَعْفُوْٓا
اَقْرَبُ لِلتَّقْوٰى ؕ وَلَا تَنْسَوُا الْفَضْلَ بَيْنَكُمْ ؕ اِنَّ اللّٰهَ
بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ﴿۲۳۷﴾

आयत 232

وَاِذَا طَلَّقۡتُمُ النِّسَآءَ فَبَلَغۡنَ اَجَلَهُنَّ فَلَا تَعۡضُلُوۡهُنَّ اَنۡ يَّنۡكِحۡنَ اَزۡوَاجَهُنَّ اِذَا تَرَاضَوۡا بَيۡنَهُمۡ بِالۡمَعۡرُوۡفِ

“और जब तुम अपनी औरतों को तलाक़ दे दो, फिर वह अपनी इद्दत पूरी कर लें, तो मत आड़े आओ इसमें कि वह औरतें फिर निकाह कर लें अपने साबिक़ अज़वाज से, जबकि वह आपस में रज़ामंद हो जाएँ भले तरीक़े पर।”

जो औरत तलाक़ पाकर अपनी इद्दत पूरी कर चुकी हो वह आज़ाद है कि जहाँ चाहे अपनी पसंद से निकाह कर ले। उसके इस इरादे में तलाक़ देने वाले शौहर या उसके ख़ानदान वालों को कोई रुकावट नहीं डालनी चाहिये। इसी तरह अगर किसी शख़्स ने अपनी बीवी को एक या दो तलाक़ दी और इद्दत के दौरान रुजूअ नहीं किया तो अब इद्दत के बाद औरत को इख़्तियार हासिल है कि वह चाहे तो उसी शौहर से निक़ाहे सानी (दोबारा) कर सकती है। आयत 228 के ज़ेल में यह बात वज़ाहत के साथ बयान हो चुकी है कि एक या दो तलाक़ की सूरत में शौहर को इद्दत के दौरान रुजूअ का हक़ हासिल है। लेकिन अगर इद्दत पूरी हो गई तो अब यह तलाक़ रजीअ नहीं रही, तलाक़े बाईन हो गई। अब शौहर और बीवी का जो रिश्ता था वह टूट गया। अब अग़र यह रिश्ता फिर से जोड़ना है तो दोबारा निकाह करना होगा और इसमें औरत की मर्ज़ी को दख़ल है। इद्दत के अंदर-अंदर रुजूअ की सूरत में औरत की मर्ज़ी को दख़ल नहीं है। लेकिन इद्दत के बाद अब औरत को इख़्तियार है, वो चाहे तो उसी

साबिक़ शौहर से निकाहे सानी कर ले और चाहे तो अपनी मर्ज़ी से किसी और शख़्स से निक़ाह कर ले। अलबत्ता तलाक़े मुग़लज़ (तीसरी तलाक़) के बाद जब तक उस औरत का निक़ाह किसी और मर्द से ना हो जाये और वह भी उसे तलाक़ ना दे दे, साबिक़ शौहर के साथ उसका निक़ाह नहीं हो सकता। इस आयत में यह हिदायत दी जा रही है कि तलाक़े बाईन के बाद अगर वही औरत और वही मर्द फिर से निक़ाह करना चाहें तो अब किसी को इसमें आड़े नहीं आना चाहिये। आमतौर पर औरत के क़रीबी रिश्तेदार इसमें रुकावट बनते हैं और कहते हैं कि इस शख़्स ने पहले भी तुम्हें सताया था, अब तुम फिर उसी से निक़ाह करना चाहती हो, हम तुम्हें ऐसा नहीं करने देंगे।

ذٰلِكَ يُوْعَظُ بِهٖ مَنْ كَانَ مِنْكُمْ يُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۭ

“यह वह चीज़ है जिसकी नसीहत की जा रही है तुममें से उसको जो वाक़िअतन ईमान रखता हो अल्लाह पर और यौमे आख़िरत पर।”

जिनके अंदर ईमान ही नहीं है उनके लिये तो यह सारी नसीहत गोया भैंस के आगे बीन बजाना है जिससे उन्हें कोई फ़ायदा नहीं पहुँचेगा।

ذٰلِكُمْ اَزْكٰى لَكُمْ وَاَطْهَرُ ۭ

“यही तरीक़ा तुम्हारे लिये ज़्यादा पाक और ज़्यादा उम्दा है।”

وَاللّٰهُ يَعْلَمُ وَاَنْتُمْ لَا تَعْلَمُوْنَ ۝۲۳۲

"और अल्लाह जानता है, तुम नहीं जानते।"

लिहाज़ा तुम अपनी अक़्ल को मुक़द्दम ना रखो, बल्कि अल्लाह के अहकाम को मुक़द्दम रखो। मर्द और औरत दोनों का ख़ालिक़ वही है, उसे मर्द भी अज़ीज़ हैं और औरत भी अज़ीज़ है। नबी अकरम ﷺ ने फ़रमाया ((اَلْخَلْقُ عَيَالُ اللّٰهِ))[29] यानि तमाम मख्लूक़ अल्लाह के कुनबे की मानिंद है। लिहाज़ा अल्लाह को तो हर इंसान महबूब है, ख़्वाह मर्द हो या औरत हो। इंसान उसकी तख़्लीक़ का शाहकार (masterpiece) है। इसके साथ-साथ उसका इल्म भी कामिल है, वह जनता है कि औरत के क्या हुक़ूक़ होने चाहिये और मर्द के क्या होने चाहिये।

आयत 233

وَالْوَالِدٰتُ يُرْضِعْنَ اَوْلَادَهُنَّ حَوْلَيْنِ كَامِلَيْنِ

"और माँए अपनि औलाद को दूध पिलाए पूरे दो साल"

لِمَنۡ اَرَادَ اَنۡ يُّتِمَّ الرَّضَاعَةَ ؕ

"उस शख़्स के लिये जो मुद्दते रज़ाअत पूरी करना चाहता हो।"

अगर तलाक़ देने वाला शौहर यह चाहता है कि मुतलक्क़ा औरत उसके बच्चे को दूध पिलाए और रज़ाअत की मुद्दत पूरी करे तो दो साल तक वह औरत इस ज़िम्मेदारी से इंकार नहीं कर सकती।

وَعَلَى الۡمَوۡلُوۡدِ لَهٗ رِزۡقُهُنَّ وَكِسۡوَتُهُنَّ بِالۡمَعۡرُوۡفِ ؕ

"और बच्चे वाले के ज़िम्मे है बच्चों की माँओं का खाना और कपड़ा दस्तूर के मुताबिक़।"

इस मुद्दत में बच्चे के बाप पर मुतलक़्क़ा के खाने और कपड़े की ज़िम्मेदारी है, जिसे हम नान-नफ्क़ा कहते हैं, इसलिये कि क़ानूनन औलाद शौहर की है। इस सिलसिले में दस्तूर का लिहाज़ रखना होगा। यानि मर्द की हैसियत और औरत की ज़रूरियात को पेशे नज़र रखना होगा। ऐसा ना हो कि मर्द करोड़पति हो लेकिन मुतलक़्क़ा बीवी को अपनी खादमाओं की तरह का नान नफ्क़ा देना चाहे।

لَا تُكَلَّفُ نَفۡسٌ اِلَّا وُسۡعَهَا ۚ

"किसी पर ज़िम्मेदारी नहीं डाली जाती मगर उसकी वुसअत के मुताबिक़"

لَا تُضَآرَّ وَالِدَةٌۢ بِوَلَدِهَا

"ना तो तकलीफ़ पहुँचाई जाये किसी वालिदा को अपने बच्चे की वजह से"

وَلَا مَوْلُوْدٌ لَّهٗ بِوَلَدِهٖ

"और ना उसको जिसका वह बच्चा है (यानि बाप) उसके बच्चे की वजह से।"

यानि दोनों के साथ मुन्सिफ़ाना सुलूक किया जाये, जैसा कि हदीसे नबवी ﷺ है ((لَا ضَرَرَ وَلَا ضِرَارَ))(30) यानि ना तो नुक़सान पहुँचाना है और ना ही नुक़सान उठाना है।

وَعَلَى الْوَارِثِ مِثْلُ ذٰلِكَ

"और वारिस पर भी इसी तरह की ज़िम्मेदारी है।"

अग़र बच्चे का बाप फ़ौत हो जाये तो बच्चे को दूध पिलाने वाली मुतलक्क़ा औरत का नान नफ्क़ा मरहूम के वारिसों के ज़िम्मे रहेगा।

فَاِنْ اَرَادَا فِصَالًا عَنْ تَرَاضٍ مِّنْهُمَا وَتَشَاوُرٍ

"फिर अगर माँ-बाप चाहें की दूध छुड़ा लें (दो बरस के अंदर ही) बाहमि रज़ामंदी और सलाह से"

فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَا

"तो उन दोनों पर कुछ गुनाह नहीं।"

وَاِنْ اَرَدْتُّمْ اَنْ تَسْتَرْضِعُوْٓا اَوْلَادَكُمْ

"और अगर तुम अपने बच्चों को किसी और से दूध पिलवाना चाहो"

فَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ

"तो भी तुम पर कुछ गुनाह नहीं"

अगर बच्चे का बाप या उसके व्रसा बच्चे की वालिदा की जगह किसी और औरत से बच्चे को दूध पिलवाना चाहतें हों तो भी कोई हर्ज नहीं, उन्हें इसकी इजाज़त है, बशर्ते.....

اِذَا سَلَّمْتُمْ مَّآ اٰتَيْتُمْ بِالْمَعْرُوْفِ ؕ

"जबकि तम (बच्चे की माँ को) वह सब कुछ दे दो जिसका कि तुमने देना ठहराया था दस्तूर के मुताबिक़।"

यह ना हो कि नान नफ़्क़ा बचाने के लिये अब तुम मुद्दते रज़ाअत के दरमियान बच्चे की माँ के बजाये किसी और औरत से इसलिये दूध पिलवाने लगो कि उसे मुआवज़ा कम देना पड़ेगा। अगर तुम किसी दाई वग़ैरह से दूध पिलवाना चाहते हो तो पहले बच्चे की माँ को भले-तरीक़े पर वह सब कुछ अदा कर दो जो तुमने तय किया था।

وَاتَّقُوا اللّٰهَ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ بِمَا تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ﴿٢٣٣﴾

"और अल्लाह का तक़वा इख़्तियार करो और जान रखो कि जो कुछ तुम कर रहे हो अल्लाह उसे देख रहा है।"

आयत 234

وَالَّذِيۡنَ يُتَوَفَّوۡنَ مِنۡكُمۡ وَيَذَرُوۡنَ اَزۡوَاجًا

"और जो तुममें से वफ़ात पा जाएँ और बीवियाँ छोड़ जाएँ"

يَّتَرَبَّصۡنَ بِاَنۡفُسِهِنَّ اَرۡبَعَةَ اَشۡهُرٍ وَّعَشۡرًا ۚ

"तो वह औरतें रोके रखें अपने आपको चार माह दस दिन तक।"

क़ब्ल अज़ आयत 228 में मुतल्लक़ा औरत की इद्दत तीन हैज़ बयान हुई है। यहाँ बेवा औरतों की इद्दत बयान की जा रही है कि वह शौहर की वफ़ात के चार माह दस दिन बाद तक अपने आपको शादी से रोके रखें।

فَاِذَا بَلَغۡنَ اَجَلَهُنَّ

"पस जब वह अपनी इस मुद्दत तक पहुँच जाएें (यानि इद्दत गुज़ार लें)"

فَلَا جُنَاحَ عَلَيۡكُمۡ فِيۡمَا فَعَلۡنَ فِىۡۤ اَنۡفُسِهِنَّ بِالۡمَعۡرُوۡفِ ؕ

"तो तुम पर कोई गुनाह नहीं है इस मामले में जो कुछ वह अपने बारे में दस्तूर के मुताबिक़ करें।"

इद्दत गुज़ार चुकने के बाद वह आज़ाद हैं, जहाँ मुनासिब समझे निकाह कर सकती हैं। अब तुम उन्हें रोकना चाहो कि हमारी नाक कट जायेगी, यह बेवा होकर सब्र से बैठ नहीं सकी, इससे रहा नहीं गया, इस तरह की बातें बिल्कुल ग़लत हैं, अब तुम्हारा कोई इख़्तियार नहीं कि तुम उन्हें रोको।

وَاللّٰهُ بِمَا تَعۡمَلُوۡنَ خَبِيۡرٌ ﴿۲۳۴﴾

"और जो कुछ तुम कर रहे हो अल्लाह उससे बाख़बर है।"

आयत 235

وَلَا جُنَاحَ عَلَيۡكُمۡ فِيۡمَا عَرَّضۡتُمۡ بِهٖ مِنۡ خِطۡبَةِ النِّسَآءِ اَوۡ اَكۡنَنۡتُمۡ فِىۡۤ اَنۡفُسِكُمۡ ؕ

"और तुम पर कुछ गुनाह नहीं है इसमें कि किनाया व इशारे में ज़ाहिर कर दो उन औरतों से पैग़ामे निकाह या पोशीदा रखो अपने दिलों में।"

किसी औरत का इद्दत के दौरान निकाह तो नहीं हो सकता, ना ही उसे वाज़ेह तौर पर पैग़ामे निकाह दिया जा सकता है, अलबत्ता इशारे किनाए में यह बात कही जा सकती है कि मुझे इसमें दिलचस्पी है। या फिर यह बात अपने दिल ही में पोशीदा रखी जाये और इद्दत ख़त्म होने का इंतज़ार किया जाये।

عَلِمَ اللّٰهُ اَنَّكُمْ سَتَذْكُرُوْنَهُنَّ

"अल्लाह को मालूम है कि तुम इन औरतों का ज़िक्र करोगे।"

आख़िर तुम्हें उनका ख़्याल तो आयेगा कि यह औरत बेवा हो गई है, अब मैं इससे शादी कर सकता हूँ। कोई आदमी यह भी सोच सकता है कि यह जो मेरे दिल में बेवा के बारे में ख़्याल आ रहा है और उससे निक़ाह की रग़बत पैदा हो रही है तो शायद मैं गुनहगार हूँ। यहाँ इत्मिनान दिलाया जा रहा है कि ऐसे ख़्याल का आना गुनाह नहीं है, यह क़ानूने फ़ितरत है।

وَلٰكِنْ لَّا تُوَاعِدُوْهُنَّ سِرًّا

"लेकिन उनसे निकाह का वादा ना कर रखो छुप कर"

ऐसा ना हो कि ख़ुफिया ही ख़ुफिया निकाह की बात पक्की हो जाये।

اِلَّآ اَنْ تَقُوْلُوْا قَوْلًا مَّعْرُوْفًا ۥ

"सिवाय इसके कि कोई बात कह दो मारूफ़ तरीक़े से।"

बस कोई ऐसी मारूफ़ बात कह सकते हो जिससे उन्हें इशारा मिल जाये।

وَلَا تَعْزِمُوْا عُقْدَةَ النِّكَاحِ حَتّٰى يَبْلُغَ الْكِتٰبُ اَجَلَهٗ ۭ

"और मत बाँधो गिरह निकाह की जब तक कि क़ानूने शरीअत अपनी मुद्दत को ना पहुँच जाये।"

यानि अल्लाह की मुक़र्रर कर्दा इद्दत जब तक पूरी ना हो जाये। यहाँ किताब से मुराद क़ानूने शरीअत है। किताबुल्लाह में बेवा की इद्दत चार माह दस दिन मुक़र्रर कर दी गई, इसका पूरा होना ज़रूरी है, इससे पहले निकाह नहीं हो सकता।

وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُ مَا فِيْٓ اَنْفُسِكُمْ فَاحْذَرُوْهُ ۚ

"और जान रखो कि अल्लाह ख़ूब जानता है जो कुछ तुम्हारे दिलों में है, पस उससे डरते रहो।"

उसकी पकड़ से बचने की कोशिश करो।

وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ حَلِيْمٌ ۝٢٣٥ۧ

"और यह भी जान रखो कि अल्लाह बख़्शने वाला और बुर्दबार है।"

अल्लाह ग़फ़ूर है, बख़्शने वाला है, कोई ख़ता हो गई है तो इस्तग़फ़ार करो, तौबा करो, अल्लाह माफ़ फ़रमायेगा। और वह हलीम है, तहम्मुल (धैर्य) करने वाला है फ़ौरन नहीं पकड़ता, बल्कि ढ़ील देता है, मोहलत देता है कि अगर चाहो तो तुम तौबा कर लो।

आयत 236

لَاجُنَاحَ عَلَيْكُمْ اِنْ طَلَّقْتُمُ النِّسَآءَ مَالَمْ تَمَسُّوْهُنَّ اَوْ تَفْرِضُوْا لَهُنَّ فَرِيْضَةً ۚۖ

"तुम पर कोई गुनाह नहीं है अगर तुम ऐसी बीवियों को तलाक़ दे दो जिनको ना तुमने अभी छुआ हो और ना उनके लिये महर मुक़र्रर किया हो।"

अगर कोई शख़्स अपनी मन्कूहा (बीवी) को इस हाल में तलाक़ देना चाहे कि ना तो उसके साथ खल्वते सहीह (complete privacy) की नौबत आई हो और ना ही उसके लिये महर मुक़र्रर किया गया हो तो वह दे सकता है।

وَّمَتِّعُوْهُنَّ ۚ

"और उनको कुछ ख़र्च दो।"

इस सूरत में अग़रचे महर की अदायगी लाज़िम नहीं है, लेकिन मर्द को चाहिये कि वह उसे कुछ ना कुछ माल व मता-ए-दुनियवी कपड़े वग़ैरह दे दिला कर फ़ारिग करे।

عَلَى الْمُوْسِعِ قَدَرُهٗ وَعَلَى الْمُقْتِرِ قَدَرُهٗ ۚ

"साहिबे वुसअत पर अपने हैसियत के मुताबिक़ ज़रूरी है और तंगदस्त पर अपनी हैसियत के मुताबिक़।"

जो वुसअत वाला है, गनी है, जिसको कशाइश हासिल है वह अपनी हैसियत के मुताबिक़ अदा करे और जो तंगदस्त है वह अपनी हैसियत के मुताबिक़।

مَتَاعًۢا بِالۡمَعۡرُوۡفِ ۚ

"जो ख़र्च के क़ायदे के मुवाफ़िक़ है।"

यह साज़ो सामाने दुनिया जो है यह भी भले अंदाज़ में दिया जाये, ऐसा ना हो कि जैसे ख़ैरात दी जा रही हो।

حَقًّا عَلَى الۡمُحۡسِنِيۡنَ ﴿۲۳۶﴾

"यह हक़ है मोहसिनीन पर।"

नेकी करने वाले, भले लोग यह समझ लें कि यह उन पर अल्लाह तआला कि तरफ़ से आयद कर्दा एक ज़िम्मेदारी है।

आयत 237

وَاِنۡ طَلَّقۡتُمُوۡهُنَّ مِنۡ قَبۡلِ اَنۡ تَمَسُّوۡهُنَّ وَقَدۡ فَرَضۡتُمۡ لَهُنَّ فَرِيۡضَةً

"और अगर तुम औरतों को तलाक़ दो उनको हाथ लगाने से पहले और तुम ठहरा चुके थे उनके लिये एक मुतअय्यन (निर्धारित) महर"

فَنِصۡفُ مَا فَرَضۡتُمۡ

"तो जो महर तुमने तय किया था अब उसका आधा अदा करना लाज़िम है"

इस सूरत में मुक़र्रर शुदा महर का आधा तो तुम्हें देना ही देना है।

اِلَّاۤ اَنۡ يَّعۡفُوۡنَ

"इल्ला यह कि वह माफ़ कर दें"

यानि कोई औरत ख़ुद कहे कि मुझे आधा भी नहीं चाहिये या कोई कहे कि मुझे चौथाई दे दीजिये।

اَوۡ یَعۡفُوَا الَّذِیۡ بِیَدِہٖ عُقۡدَۃُ النِّکَاحِ ؕ

"या वह शख़्स दरगुज़र से काम ले जिसके हाथ में निकाह की गिरह है।"

और यह गिरह मर्द के हाथ में है, वह उसे खोल सकता है। औरत अज़ ख़ुद तलाक़ दे नहीं सकती। लिहाज़ा मर्दों के लिये तरगीब है कि वह इस मामले में फ़राख़ (उदार) दिली से काम लें।

وَ اَنۡ تَعۡفُوۡۤا اَقۡرَبُ لِلتَّقۡوٰی ؕ

"और यह कि तुम मर्द दरगुज़र करो तो यह तक़वा से क़रीबतर है।"

وَ لَا تَنۡسَوُا الۡفَضۡلَ بَیۡنَکُمۡ ؕ

"और अपने माबैन अहसान करना मत भुला दो।"

इसका तर्जुमा यूँ भी किया गया है: "और तुम्हारे दरमियान एक को दूसरे पर जो फ़ज़ीलत है उसको मत भूलो।" यानि अल्लाह ने जो फ़ज़ीलत तुम मर्दों को औरतों पर दी है उसको मत भूलो। चुनाँचे तुम्हारा तर्ज़े अमल भी ऐसा होना चाहिये कि तुम अपने बड़े होने के हिसाब से उनके साथ नर्मी करो और उनको ज़्यादा दो। तुमने उनका जितना भी महर मुक़र्रर किया था वह निस्फ़ के बजाय पूरा दे दो और उन्हें मारूफ़ तरीक़े से इज़्ज़त व तकरीम के साथ रुख्सत करो।

اِنَّ اللّٰہَ بِمَا تَعۡمَلُوۡنَ بَصِیۡرٌ ﴿۲۳۷﴾

"यक़ीनन जो कुछ तुम कर रहो हो अल्लाह उसे देख रहा है।"

आयात 238 से 242 तक

حٰفِظُوۡا عَلَی الصَّلَوٰتِ وَالصَّلٰوۃِ الۡوُسۡطٰی ٭ وَقُوۡمُوۡا
لِلّٰہِ قٰنِتِیۡنَ ﴿۲۳۸﴾ فَاِنۡ خِفۡتُمۡ فَرِجَالًا اَوۡ رُکۡبَانًا ۚ فَاِذَاۤ
اَمِنۡتُمۡ فَاذۡکُرُوا اللّٰہَ کَمَا عَلَّمَکُمۡ مَّا لَمۡ تَکُوۡنُوۡا
تَعۡلَمُوۡنَ ﴿۲۳۹﴾ وَالَّذِیۡنَ یُتَوَفَّوۡنَ مِنۡکُمۡ وَیَذَرُوۡنَ
اَزۡوَاجًا ۚۖ وَّصِیَّۃً لِّاَزۡوَاجِہِمۡ مَّتَاعًا اِلَی الۡحَوۡلِ غَیۡرَ
اِخۡرَاجٍ ۚ فَاِنۡ خَرَجۡنَ فَلَا جُنَاحَ عَلَیۡکُمۡ فِیۡ مَا
فَعَلۡنَ فِیۡۤ اَنۡفُسِہِنَّ مِنۡ مَّعۡرُوۡفٍ ؕ وَاللّٰہُ عَزِیۡزٌ حَکِیۡمٌ
﴿۲۴۰﴾ وَلِلۡمُطَلَّقٰتِ مَتَاعٌۢ بِالۡمَعۡرُوۡفِ ؕ حَقًّا عَلَی
الۡمُتَّقِیۡنَ ﴿۲۴۱﴾ کَذٰلِکَ یُبَیِّنُ اللّٰہُ لَکُمۡ اٰیٰتِہٖ لَعَلَّکُمۡ
تَعۡقِلُوۡنَ ﴿۲۴۲﴾ع

आयत 238

حٰفِظُوْا عَلَى الصَّلَوٰتِ وَالصَّلٰوةِ الْوُسْطٰى ۤ

"मुहाफ़ज़त करो तमाम नमाज़ों की और ख़ास तौर पर बीच वाली नमाज़ की।"

यह जो बार-बार आ रहा है कि जान लो अल्लाह हर शय का जानने वाला है, जान रखो कि अल्लाह तुम्हारे सब कामों को देख रहा है, जो कुछ तुम कर रहे हो अल्लाह कि निगाह में है, जो कुछ तुम कर रहे हो अल्लाह उससे बाख़बर है, तो इस सबको क़ल्ब व ज़हन में मुस्तहज़र रखने के लिये तुम्हें पंच वक़्ता नमाज़ दी गई है कि इसकी निगहदाश्त करो। दुनिया के कारोबार से निकलो और और अल्लाह के हुज़ूर हाज़िर होकर उससे किया हुआ अहद ताज़ा करो। हफ़ीज़ का एक शेर है:

सरकशी ने कर दिये धुँधले नुक़ूशे बन्दगी
आओ सजदे मे गिरें लौहे जबीं ताज़ा करें!

"सलातुल वुस्ता" (बीच वाली नमाज़) के बारे में बहुत से अक़वाल हैं, लेकिन आमतौर पर इससे मुराद असर की नमाज़ ली जाती है। इसलिये कि दिन में दो नमाज़े फ़जर और ज़ुहर इससे पहले हैं और दो ही नमाज़ें मग़रिब और इशा इसके बाद में हैं।

وَقُوْمُوْا لِلّٰهِ قٰنِتِيْنَ ۝٢٣٨

"और खड़े हुआ करो अल्लाह के सामने पूरे अदब के साथ।"

क़याम, रुकूअ और सजदा फ़राइज़े नमाज़ में से हैं। रुकूअ में बंदा अपने रब के हुज़ूर आजिज़ी से झुक जाता है, सजदा उस झुकने कि इन्तहा है। मतलूब यह है कि क़याम भी क़ुनूत, आजिज़ी और इन्कसारी (विनम्रता) के साथ हो, मालूम हो कि एक बंदा अपने आक़ा के सामने बाअदब खड़ा है।

आयत 239

فَاِنْ خِفْتُمْ فَرِجَالًا اَوْ رُكْبَانًا ۚ

"फिर अगर तुम ख़तरे की हालत में तो चाहे प्यादा पढ़ लो या सवार।"

दुश्मन अगर पीछा कर रहा है और आप रुक कर तमाम शराइत व आदाब के साथ नमाज़ पढ़ना शुरु कर देगें तो वह आपके सर पर पहुँच जायेगा। या आपने कहीं जाकर फ़ौरी तौर पर हमला करना है और आप नमाज़ के लिये रुक जाऐंगे तो मतलूबा हदफ़ (लक्ष्य) हासिल नहीं कर सकेगें। चुनाँचे दुश्मन से ख़तरे की हालत में पैदल या सवार जिस हाल में भी हों नमाज़ पढ़ी जा सकती है।

فَاِذَآ اَمِنْتُمْ

"फिर जब तुम अमन में हो जाओ"

ख़तरा दूर हो जाये और अमन की हालत हो।

فَاذۡكُرُوا اللّٰهَ كَمَا عَلَّمَكُمۡ مَّا لَمۡ تَكُوۡنُوۡا تَعۡلَمُوۡنَ ﴿۲۳۹﴾

“फिर अल्लाह को याद करो जैसे कि तुम्हें उसने सिखाया है जिसको तुम नहीं जानते थे।”

उम्मत को नमाज़ का तरीक़ा मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ सिखाया है और हुक्म दिया है: ((صَلُّوۡا كَمَا رَاَيۡتُمُوۡنِىۡ اُصَلِّىۡ))[31] “नमाज़ पढ़ो जैसे कि तुम मुझे नमाज़ पढ़ते हुए देखते हो।” नमाज़ का यह तरीक़ा अल्लाह तआला का सिखाया हुआ है। रिवायात से साबित है कि हज़रत जिब्रील अलै० ने आकर मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ को दो दिन नमाज़ पढ़ाई है। एक दिन पाँचों नमाज़ें अव्वल वक़्त में और दूसरे दिन पाँचों नमाज़ें आख़री वक़्त में पढ़ाईं और बता दिया कि इन नमाज़ों का वक़्त इन अवक़ात के दरमियान है। चुनाँचे नमाज़ के मामले में आँहुज़ूर ﷺ के मुअल्लिम हज़रत जिब्रील अलै० हैं और आप ﷺ पूरी उम्मत के लिये मुअल्लिम हैं।

अब बेवा औरतों के बारे में मज़ीद हिदायात आ रही हैं।

आयत 240

وَالَّذِيۡنَ يُتَوَفَّوۡنَ مِنۡكُمۡ وَيَذَرُوۡنَ اَزۡوَاجًا ۖۚ

"और जो लोग तुममें से वफ़ात दे दिये जाएें और वो छोड़ जाएँ बीवियाँ"

وَّصِيَّةً لِّاَزۡوَاجِهِمۡ مَّتَاعًا اِلَى الۡحَوۡلِ غَيۡرَ اِخۡرَاجٍ ۚ

"तो वह वसीयत कर जाएें अपनी बीवियों के लिये एक साल तक के लिये नान नफ़्क़ा की, बगैर इसके कि उन्हें घरों से निकाला जाये।"

मिसाल के तौर पर एक शख़्स फ़ौत हुआ है और उसकी चार बीवियाँ हैं, जिनमें से एक के यहाँ औलाद है, जबकि बाक़ी तीन इस औलाद सौतेली माँऐं हैं। अब यह औलाद सगी माँ को तो अपनी माँ समझ कर उसकी ख़िदमत करेगी और बाकी तीन को ख़्वाह माख़्वाह की ज़िम्मेदारी (liability) समझेगी। तो फ़रमाया कि ऐसा ना हो कि इन बेवाओं को फ़ौरन घर से निकाल दो, कि जाओ अपना रास्ता लो, जिससे तुम्हारी शादी थी वह तो फ़ौत हो गया, बल्कि एक साल के लिये उन्हें घर से ना निकाला जाये और उनका नान नफ़्क़ा दिया जाये। इन आयतों के नुज़ूल तक क़ानूने विरासत अभी नहीं आया था, लिहाज़ा बेवाओं के बारे में वसीयत का उबूरी हुक्म दिया गया, जैसे कि क़ब्ल अज़ आयत 180 में वालिदैन और क़राबतदारों के लिये वसीयत का उबूरी हुक्म दिया गया। सूरतुन्निसा में क़ानूने विरासत नाज़िल हुआ तो उसमें वालिदैन का हक़ भी मुअय्यन कर दिया गया और

शौहर की वफ़ात की सूरत में बीवी के हक़ का और बीवी की वफ़ात की सूरत में शौहर के हक़ का भी तअय्युन कर दिया गया और अब वालिदैन व अज़ीज़ व अक़ारिब और बेवगान (बेवाओं) के हक़ में वसीयत की हिदायात मन्सूख़ हो गईं।

فَاِنۡ خَرَجۡنَ فَلَا جُنَاحَ عَلَيۡكُمۡ فِىۡ مَا فَعَلۡنَ فِىۡٓ اَنۡفُسِهِنَّ مِنۡ مَّعۡرُوۡفٍ‌ؕ

"फिर अगर वह औरतें ख़ुद निकल जाऐं तो तुम पर इसका कोई गुनाह नहीं जो कुछ वह अपने हक़ में मारूफ़ तरीक़े पर करें।"

अगर कोई औरत इद्दत गुज़ारने के बाद दूसरी शादी करके कहीं बसना चाहे तो तुम उसे साल भर के लिये रोक नहीं सकते। वह अपने हक़ में मारूफ़ तरीक़े पर जो भी फ़ैसला करें वह उसकी मिजाज़ (अधिकृत) है, इसका कोई इल्ज़ाम तुम पर नहीं आयेगा।

وَاللّٰهُ عَزِيۡزٌ حَكِيۡمٌ ۝٢٤٠

"और यक़ीनन अल्लाह तआला ज़बरदस्त है, हिकमत वाला है।"

आयत 241

وَلِلۡمُطَلَّقٰتِ مَتَاعٌۢ بِالۡمَعۡرُوۡفِ‌ؕ

"और मुतल्लक़ा औरतों को भी साज़ो सामाने ज़िन्दगी देना है मारूफ़ तरीक़े पर।"

حَقًّا عَلَى الْمُتَّقِيْنَ ﴿٢٤١﴾

"यह लाज़िम है परहेज़गारों पर।"

वाज़ेह रहे कि यह हिदायत इद्दत के वक़्त तक के लिये है, उसके बाद नहीं। इसी मामले में कलकत्ता हाई कोर्ट ने शाह बानो केस में जो एक फ़ैसला दिया था उस पर हिन्दुस्तान में शदीद एहतजाज हुआ था। उसने यह फ़ैसला दिया था कि मुसलमान अगर अपनी बीवी को तलाक़ दे दे तो वह बीवी अगर दूसरी शादी कर ले तब तो बात दूसरी है, वरना जब तक वह ज़िन्दा रहेगी उसका नान नफ़्क़ा तलाक़ देने वाले के ज़िम्मे रहेगा। इस पर भारत के मुसलमानों ने कहा कि यह हमारी शरीअत में दख़ल अंदाजी है, शरीअत ने मुतल्लक़ा के लिये सिर्फ़ इद्दत तक नान नफ़्क़ा का हक़ रखा है। चुनाँचे मुसलमानों ने इस मसले पर एहतजाजी तहरीक चलाई, जिसमें बहुत से लोगों ने जानों का नज़राना पेश किया। आख़िरकार राजीव गाँधी की हुकूमत को घुटने टेकने पड़े और फिर वहाँ यह क़ानून बना दिया गया कि हिन्दुस्तान की कोई अदालत बशमूल सुप्रीम कोर्ट मुसलमानों के आइली क़वानीन में दख़ल नहीं दे सकती। इस पर मैं मुसलमाने भारत की अज़मत को सलाम पेश किया करता हूँ। इसके बरअक्स हमारे यहाँ यह हुआ कि एक फ़ौजी आमिर ने आइली क़वानीन बनाये जिनके बारे में सुन्नी, शिया, अहले हदीस, देवबंदी, बरेलवी तमाम उल्मा और जमाअते इस्लामी की चोटी की क़यादत सबने मुतफ़क़्क़ा तौर पर यह कहा कि यह क़वानीन ख़िलाफ़े इस्लाम हैं, मगर वह आज तक चल रहे हैं। एक और फ़ौजी आमिर ग्यारह बरस तक यहाँ पर कोसे لِمَنِ الْمُلْكُ الْيَوْمَ बजाता रहा और इस्लाम

इस्लाम का भी राग़ भी अलापता रहा, लेकिन उसने भी इन क़वानीन को ज्यों का त्यों बरक़रार रखा। इसी बुनियाद पर मैंने इसकी शूरा से इस्तीफ़ा दे दिया था। लेकिन हिन्दुस्तान के मुसलमानों ने वहाँ पर यह बात नहीं होने दी।

आयत 242

كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمْ اٰيٰتِهٖ لَعَلَّكُمْ تَعْقِلُوْنَ ﴿٢٤٢﴾

"इसी तरह अल्लाह तआला तुम्हारे लिये अपनी आयात को वाज़ेह कर रहा है ताकि तुम अक़्ल से काम लो (और समझो)।"

आयात 243 से 253 तक

اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْنَ خَرَجُوْا مِنْ دِيَارِهِمْ وَهُمْ اُلُوْفٌ
حَذَرَ الْمَوْتِ ۠ فَقَالَ لَهُمُ اللّٰهُ مُوْتُوْا ۣ ثُمَّ اَحْيَاهُمْ ۭ
اِنَّ اللّٰهَ لَذُوْ فَضْلٍ عَلَى النَّاسِ وَلٰكِنَّ اَكْثَرَ النَّاسِ
لَا يَشْكُرُوْنَ ﴿٢٤٣﴾ وَقَاتِلُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ
اللّٰهَ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿٢٤٤﴾ مَنْ ذَا الَّذِيْ يُقْرِضُ اللّٰهَ قَرْضًا
حَسَنًا فَيُضٰعِفَهٗ لَهٗٓ اَضْعَافًا كَثِيْرَةً ۭ وَاللّٰهُ يَقْبِضُ
وَيَبْصُۜطُ ۠ وَاِلَيْهِ تُرْجَعُوْنَ ﴿٢٤٥﴾ اَلَمْ تَرَ اِلَى الْمَلَاِ مِنْۢ

بَنِیۡۤ اِسۡرَآءِیۡلَ مِنۡۢ بَعۡدِ مُوۡسٰی ۘ اِذۡ قَالُوۡا لِنَبِیٍّ لَّہُمُ
ابۡعَثۡ لَنَا مَلِکًا نُّقَاتِلۡ فِیۡ سَبِیۡلِ اللّٰہِ ؕ قَالَ ہَلۡ
عَسَیۡتُمۡ اِنۡ کُتِبَ عَلَیۡکُمُ الۡقِتَالُ اَلَّا تُقَاتِلُوۡا ؕ قَالُوۡا
وَ مَا لَنَاۤ اَلَّا نُقَاتِلَ فِیۡ سَبِیۡلِ اللّٰہِ وَ قَدۡ اُخۡرِجۡنَا مِنۡ
دِیَارِنَا وَ اَبۡنَآئِنَا ؕ فَلَمَّا کُتِبَ عَلَیۡہِمُ الۡقِتَالُ تَوَلَّوۡا
اِلَّا قَلِیۡلًا مِّنۡہُمۡ ؕ وَ اللّٰہُ عَلِیۡمٌۢ بِالظّٰلِمِیۡنَ ﴿۲۴۶﴾ وَ قَالَ
لَہُمۡ نَبِیُّہُمۡ اِنَّ اللّٰہَ قَدۡ بَعَثَ لَکُمۡ طَالُوۡتَ مَلِکًا ؕ
قَالُوۡۤا اَنّٰی یَکُوۡنُ لَہُ الۡمُلۡکُ عَلَیۡنَا وَ نَحۡنُ اَحَقُّ بِالۡمُلۡکِ
مِنۡہُ وَ لَمۡ یُؤۡتَ سَعَۃً مِّنَ الۡمَالِ ؕ قَالَ اِنَّ اللّٰہَ
اصۡطَفٰىہُ عَلَیۡکُمۡ وَ زَادَہٗ بَسۡطَۃً فِی الۡعِلۡمِ وَ الۡجِسۡمِ ؕ
وَ اللّٰہُ یُؤۡتِیۡ مُلۡکَہٗ مَنۡ یَّشَآءُ ؕ وَ اللّٰہُ وَاسِعٌ عَلِیۡمٌ ﴿۲۴۷﴾
وَ قَالَ لَہُمۡ نَبِیُّہُمۡ اِنَّ اٰیَۃَ مُلۡکِہٖۤ اَنۡ یَّاۡتِیَکُمُ
التَّابُوۡتُ فِیۡہِ سَکِیۡنَۃٌ مِّنۡ رَّبِّکُمۡ وَ بَقِیَّۃٌ مِّمَّا تَرَکَ
اٰلُ مُوۡسٰی وَ اٰلُ ہٰرُوۡنَ تَحۡمِلُہُ الۡمَلٰٓئِکَۃُ ؕ اِنَّ فِیۡ ذٰلِکَ
لَاٰیَۃً لَّکُمۡ اِنۡ کُنۡتُمۡ مُّؤۡمِنِیۡنَ ﴿۲۴۸﴾ ؏ فَلَمَّا فَصَلَ

طَالُوْتُ بِالْجُنُوْدِ ۙ قَالَ اِنَّ اللّٰهَ مُبْتَلِيْكُمْ بِنَهَرٍ ۚ فَمَنْ
شَرِبَ مِنْهُ فَلَيْسَ مِنِّيْ ۚ وَمَنْ لَّمْ يَطْعَمْهُ فَاِنَّهٗ مِنِّيْٓ
اِلَّا مَنِ اغْتَرَفَ غُرْفَةًۢ بِيَدِهٖ ۚ فَشَرِبُوْا مِنْهُ اِلَّا قَلِيْلًا
مِّنْهُمْ ۭ فَلَمَّا جَاوَزَهٗ هُوَ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مَعَهٗ ۙ قَالُوْا لَا
طَاقَةَ لَنَا الْيَوْمَ بِجَالُوْتَ وَجُنُوْدِهٖ ۭ قَالَ الَّذِيْنَ
يَظُنُّوْنَ اَنَّهُمْ مُّلٰقُوا اللّٰهِ ۙ كَمْ مِّنْ فِئَةٍ قَلِيْلَةٍ غَلَبَتْ
فِئَةً كَثِيْرَةًۢ بِاِذْنِ اللّٰهِ ۭ وَاللّٰهُ مَعَ الصّٰبِرِيْنَ ﴿٢٤٩﴾ وَلَمَّا
بَرَزُوْا لِجَالُوْتَ وَجُنُوْدِهٖ قَالُوْا رَبَّنَآ اَفْرِغْ عَلَيْنَا
صَبْرًا وَّثَبِّتْ اَقْدَامَنَا وَانْصُرْنَا عَلَى الْقَوْمِ
الْكٰفِرِيْنَ ﴿٢٥٠﴾ۭ فَهَزَمُوْهُمْ بِاِذْنِ اللّٰهِ ڣ وَقَتَلَ دَاوٗدُ
جَالُوْتَ وَاٰتٰىهُ اللّٰهُ الْمُلْكَ وَالْحِكْمَةَ وَعَلَّمَهٗ مِمَّا
يَشَاۗءُ ۭ وَلَوْلَا دَفْعُ اللّٰهِ النَّاسَ بَعْضَهُمْ بِبَعْضٍ ۙ
لَّفَسَدَتِ الْاَرْضُ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ ذُوْ فَضْلٍ عَلَى
الْعٰلَمِيْنَ ﴿٢٥١﴾ تِلْكَ اٰيٰتُ اللّٰهِ نَتْلُوْهَا عَلَيْكَ بِالْحَقِّ ۭ
وَاِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ ﴿٢٥٢﴾ تِلْكَ الرُّسُلُ فَضَّلْنَا

بَعۡضَهُمۡ عَلٰى بَعۡضٍ ۘ مِنۡهُمۡ مَّنۡ كَلَّمَ اللّٰهُ وَرَفَعَ
بَعۡضَهُمۡ دَرَجٰتٍ ؕ وَاٰتَيۡنَا عِيۡسَى ابۡنَ مَرۡيَمَ الۡبَيِّنٰتِ
وَاَيَّدۡنٰهُ بِرُوۡحِ الۡقُدُسِ ؕ وَلَوۡ شَآءَ اللّٰهُ مَا اقۡتَتَلَ
الَّذِيۡنَ مِنۡۢ بَعۡدِهِمۡ مِّنۡۢ بَعۡدِ مَا جَآءَتۡهُمُ الۡبَيِّنٰتُ
وَلٰكِنِ اخۡتَلَفُوۡا فَمِنۡهُمۡ مَّنۡ اٰمَنَ وَمِنۡهُمۡ مَّنۡ كَفَرَ ؕ
وَلَوۡ شَآءَ اللّٰهُ مَا اقۡتَتَلُوۡا ۡ وَلٰكِنَّ اللّٰهَ يَفۡعَلُ مَا يُرِيۡدُ
ع ﴿۲۵۳﴾

अब जो दो रुकूअ ज़ेरे मुताअला आ रहे हैं यह इस ऐतबार से बहुत अहम हैं कि इनमें उस जंग का तज़किरा है जिसकी हैसियत गोया तारीखी बनी इस्राईल के ग़ज़वा-ए-बदर की है। क़ब्ल अज़ यह बात ज़िक्र की जा चुकी है कि हज़रत मूसा अलै० के बाद बनी इस्राईल ने यूशा बिन नून की सरकरदगी में जिहाद व क़िताल किया तो फ़लस्तीन फ़तह हो गया। लेकिन उन्होंने एक मुस्तहकम हुकूमत क़ायम करने की बजाय छोटी-छोटी बारह हुकूमतें बना लीं और आपस में लड़ते भी रहे। लेकिन तीन सौ बरस के बाद फिर यह सूरते हाल पैदा हुई कि जब उनके ऊपर दुनिया तंग हो गई और आस-पास की काफ़िर और मुशरिक क़ौमों ने उन्हें दबा लिया और बहुत सों को उनके घरों और उनके मुल्कों से निकाल दिया तो फिर तंग आकर उन्होंने उस वक़्त के नबी

से कहा कि हमारे लिये कोई बादशाह, यानि सिपहसालार मुक़र्रर कर दीजिये, अब हम अल्लाह की राह में जंग करेगें। चुनाँचे वह जो जंग हुई है तालूत और जालूत की, उसके बाद गोया बनी इस्राईल का दौरे ख़िलाफ़रे राशदा शुरू हुआ।

बनी इस्राईल की तारीख़ का यह दौर जिसे मैं "ख़िलाफ़ते राशदा" से ताबीर कर रहा हूँ, उनके रसूल अलै० के इन्तेक़ाल के तीन सौ बरस बाद शुरू हुआ, जबकि इस उम्मते मुस्लिमा की ख़िलाफ़ते राशदा रसूल अल्लाह ﷺ के ज़माने के साथ मुत्तसिल (जुड़ा) है। इसलिये कि सहाबा किराम रज़ि० ने जानें दीं, ख़ून दिया, क़ुर्बानियाँ दीं और इसके नतीजे में रसूल अल्लाह ﷺ की ज़िन्दगी ही में दीन ग़ालिब हो गया और इस्लामी रियासत क़ायम हो गई। नतीजतन आप ﷺ के इन्तेक़ाल के बाद ख़िलाफ़त का दौर शुरू हो गया, लेकिन वहाँ तीन सौ बरस गुज़रने के बाद उनका दौरे ख़िलाफ़त आया है। इसमें भी तीन ख़िलाफ़तें तो मुत्तफ़िक़ अलैह हैं। यानि हज़रत तालूत, हज़रत दाऊद और हज़रत सुलेमान अलै० की ख़िलाफ़त। लेकिन चौथी ख़िलाफ़त पर आकर तक़सीम हो गई। जैसे हज़रत अली रज़ि० ख़लीफ़ा-ए-राबेअ के ज़माने में आलमे इस्लाम मुन्क़सिम हो गया कि मिस्र और शाम ने हज़रत अली रज़ि० की ख़िलाफ़त को तस्लीम नहीं किया। इस तरह फ़लस्तीन की मम्लकत हज़रत सुलेमान अलै० के दो बेटों में तक़सीम हो गई, और इस्राईल और यहूदिया के नाम से दो रियासतें वुजूद में आ गईं। क़ुरान हकीम में इस मक़ाम पर तालूत और जालूत की उस जंग का तज़किरा आ रहा है जिसके बाद तारीखी बनी इस्राईल में इस्लाम के ग़ल्बे और ख़िलाफ़ते

राशदा का आग़ाज़ हो रहा है। यह दरहक़ीक़त सहबा किराम रज़ि० को एक आईना दिखाया जा रहा है कि अब यही मरहला तुम्हें दरपेश है, ग़ज़वा-ए-बदर पेश आया चाहता है।

आयत 243

"क्या तुमने उन लोगों के हाल पर ग़ौर नहीं किया जो निकल खड़े हुए अपने घरों से"	اَلَمۡ تَرَ اِلَى الَّذِيۡنَ خَرَجُوۡا مِنۡ دِيَارِهِمۡ
"जबकि वह हज़ारों की तादाद में थे"	وَهُمۡ اُلُوۡفٌ
"मौत के डर की वजह से।"	حَذَرَ الۡمَوۡتِ

यानि जब कुफ़्फ़ार और मुशरिकीन ने उन पर ग़लबा कर लिया और यह दहशतज़दा होकर, अपने मुल्क छोड़ कर, अपने घरों से निकल भागे।

"तो अल्लाह ने उनसे कहा कि मर जाओ!"	فَقَالَ لَهُمُ اللّٰهُ مُوۡتُوۡا
"फिर (अल्लाह ने) उन्हें ज़िन्दा किया।"	ثُمَّ اَحۡيَاهُمۡ

यहाँ मौत से मुराद ख़ौफ और बुज़दिली की मौत भी हो सकती है जो उन पर बीस बरस तारी रही, फिर सिमोइल (Samuel) नबी की इस्लाह व तजदीद की कोशिशों से

उनकी निशाते सानिया हुई और अल्लाह ने उनके अंदर एक जज़्बा पैदा कर दिया। गोया यहाँ पर मौत और अहया (ज़िन्दगी) से मुराद मायनवी और रुहानी व अख़्लाक़ी मौत और अहया है। लेकिन बिल् फ़अल जसदी मौत और अहया भी अल्लाह के इख़्तियार से बाहर नहीं, उसकी क़ुदरत में है, वह सबको मार कर भी दोबारा ज़िन्दा कर सकता है।

اِنَّ اللّٰهَ لَذُوْ فَضْلٍ عَلَى النَّاسِ وَلٰكِنَّ اَكْثَرَ النَّاسِ لَا يَشْكُرُوْنَ ﴿٢٤٣﴾

"यक़ीनन अल्लाह तआला तो लोगों पर बड़ा फ़ज़ल करने वाला है लेकिन अक्सर लोग शुक्र नहीं करते।"

अक्सर लोग शुक्रगुज़ारी की रविश इख़्तियार करने की बजाय अल्लाह तआला के अहसानात की नाक़द्री करते हैं।

अब साबक़ा उम्मते मुस्लिमा के "ग़ज़वा-ए-बदर" का हाल बयान करने से पहले मुसलमानों से गुफ़्तगू हो रही है। इसलिये कि यह सब कुछ उनकी हिदायत के लिये बयान हो रहा है, तारीख़ बयान करना क़ुरान का मक़सद नहीं है। यह तो मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की इन्क़लाबी जद्दोजहद की तहरीक जिस मरहले से गुज़र रही थी और इन्क़लाबी अमल जिस स्टेज पर पहुँच चुका था उसकी मुनासबत से साबक़ा उम्मते मुस्लिमा की तारीख़ से वाक़्यात भी लाये जा रहे हैं और उसी की मुनास्बत से अहकाम भी दिये जा रहे हैं। चुनाँचे फ़रमाया:

आयत 244

وَقَاتِلُوْا فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ وَاعْلَمُوْٓا اَنَّ اللّٰهَ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝٢٤٤

"और जंग करो अल्लाह की राह में, और ख़ूब जान लो कि अल्लाह तआला सब कुछ सुनने वाला (और) सब कुछ जानने वाला है।"

आयत 245

مَنْ ذَا الَّذِيْ يُقْرِضُ اللّٰهَ قَرْضًا حَسَنًا فَيُضٰعِفَهٗ لَهٗٓ اَضْعَافًا كَثِيْرَةً ۭ

"कौन है जो अल्लाह को क़र्ज़े हसना दे तो अल्लाह उसको उसके लिये कई गुना बढ़ाता रहे।"

जो इन्फ़ाक़ खालिस अल्लाह तआला के दीन के लिये किया जाता है उसे अल्लाह अपने ज़िम्मे क़र्ज़े हसना से ताबीर करता है। वह कहता है कि तुम मेरे दीन को ग़ालिब करना चाहते हो, मेरी हुकूमत क़ायम करना चाहते हो, तो जो कुछ इस पर ख़र्च करोगे वह मुझ पर क़र्ज़ है, जिसे मैं कई गुना बढ़ा-चढ़ा कर वापस करूँगा।

وَاللّٰهُ يَقْبِضُ وَيَبْصُۜطُ

"और अल्लाह तंगदस्ती भी देता है और कुशादगी भी देता है।"

अल्लाह ही के इख़्तियार में है किसी चीज़ को सिकोड़ देना और खोल देना, किसी के रिज़्क़ को तंग कर देना या उसमें कशाइश कर देना।

وَاِلَيۡهِ تُرۡجَعُوۡنَ ﴿۲۴۵﴾

"और उसी की तरफ़ तुम्हें लौटा दिया जायेगा।"

यहाँ देखिये जिहाद बिल् नफ़्स और जिहाद बिल् माल दोनों चीज़ों का तज़किरा किया जा रहा है। जिहाद बिल् नफ़्स की आख़री शक्ल क़िताल है और जिहाद बिल् माल के लिये पहले लफ़्ज़ "इन्फ़ाक़" आ रहा था, अब क़र्ज़े हसना लाया जा रहा है।

आयत 246

اَلَمۡ تَرَ اِلَى الۡمَلَاِ مِنۡۢ بَنِىۡۤ اِسۡرَآءِيۡلَ مِنۡۢ بَعۡدِ مُوۡسٰى ۘ

"क्या तुमने ग़ौर नहीं किया बनी इस्राईल के सरदारों क मामले में, जो उन्हे मूसा अलै० के बाद पेश आया?"

اِذۡ قَالُوۡا لِنَبِىٍّ لَّهُمُ ابۡعَثۡ لَنَا مَلِكًا نُّقَاتِلۡ فِىۡ سَبِيۡلِ اللّٰهِ ؕ

"जबकि उन्होंने अपने नबी से कहा कि हमारे लिये कोई बादशाह मुक़र्रर कर दीजिये, ताकि हम अल्लाह की राह में जंग करें।"

यहाँ बादशाह से मुराद अमीर और सिपहसालार है। ज़ाहिर बात है कि नबी की मौजूदगी में बुलंदतरीन मर्तबा तो नबी

ही का रहेगा, लेकिन एक ऐसा अमीर नामज़द कर दीजिये जो नबी के ताबेअ होकर जंग की सिपहसालारी कर सके। मैं हदीस बयान कर चुका हूँ कि बनी इस्राईल में हज़रत मूसा अलै० से लेकर हज़रत ईसा अलै० तक कोई ना कोई नबी ज़रूर मौजूद रहा है। उस वक़्त सैमुअल नबी थे जिनसे सरदाराने बनी इस्राईल ने यह फ़रमाइश की थी।

قَالَ هَلۡ عَسَيۡتُمۡ اِنۡ كُتِبَ عَلَيۡكُمُ الۡقِتَالُ اَلَّا تُقَاتِلُوۡا ؕ

"उन्होंने कहा कि तुमसे इस बात का भी अंदेशा है कि जब तुम पर जंग फ़र्ज़ कर दी जाये तो उस वक़्त तुम जंग ना करो।"

यानि अभी तो तुम्हारे बड़े दावे हैं, बड़े जोश व ख़रोश और बहादुरी का इज़हार कर रहे हो, लेकिन कहीं ऐसा तो नहीं होगा कि मैं अल्लाह तआला से जंग की इजाज़त भी लूँ और तुम्हारे लिये कोई सिपहसालार या बादशाह भी मुक़र्रर कर दूँ और फिर तुम जंग से कन्नी कतरा जाओ?

قَالُوۡا وَمَا لَنَآ اَلَّا نُقَاتِلَ فِىۡ سَبِيۡلِ اللّٰهِ

"उन्होंने कहा कि यह कैसे हो सकता है कि हम अल्लाह की राह में क़िताल ना करें?"

وَقَدۡ اُخۡرِجۡنَا مِنۡ دِيَارِنَا وَاَبۡنَآئِنَا ؕ

"जबकि हमें निकाल दिया गया है हमारे घरों से और अपने बेटों से।"

दुश्मनों ने उनके बेटों को गुलाम और उनकी औरतों को बांदियाँ बना लिया था और यह अपने मुल्कों से ख़ौफ़ के मारे भागे हुए थे। चुनाँचे उन्होंने कहा कि अब हम जंग नहीं करेगें तो क्या करेंगे?

فَلَمَّا كُتِبَ عَلَيْهِمُ الْقِتَالُ

"फिर जब उन पर जंग फ़र्ज़ कर दी गई"

تَوَلَّوْا اِلَّا قَلِيْلًا مِّنْهُمْ ؕ

"तो सब पीठ फेर गये, सिवाय उनकी एक क़लील (थोड़ी) तादाद के"

यह गोया मुसलमानों को तम्बीह (चेतावनी) की जा रही है कि तुम भी बहुत कहते रहे हो कि हुज़ूर हमें जंग की इजाज़त मिलनी चाहिये, लेकिन ऐसा ना हो कि जब जंग का हुक्म आये तो वह तुम्हें नागवार गुज़रे। आयत 216 में हम यह अल्फ़ाज़ पढ़ चुके हैं: { كُتِبَ عَلَيْكُمُ الْقِتَالُ وَهُوَ كُرْهٌ لَّكُمْ ۚ } "तुम पर जंग फ़र्ज़ की गई है और वह तुम्हें नागवार है।"

وَاللّٰهُ عَلِيْمٌۢ بِالظّٰلِمِيْنَ ﴿٢٤٦﴾

"और अल्लाह ऐसे ज़ालिमों से ख़ूब बाख़बर है।"

आयत 247

وَقَالَ لَهُمْ نَبِيُّهُمْ اِنَّ اللّٰهَ قَدْ بَعَثَ لَكُمْ طَالُوْتَ مَلِكًا ؕ

"और उनसे कहा उनके नबी अलै० ने कि अल्लाह तआला ने तालूत को तुम्हारा बादशाह मुक़र्रर कर दिया है।"

इनका नाम तौरात में साउल (Saul) आया है। हो सकता है कि असल नाम साउल हो, लेकिन चूँकि वह बहुत क़द्दावर थे इसलिये उनका एक सिफ़ाती नाम या लक़ब "तालूत" हो। तालूत के मायने "लंबे तड़ंगे" के हैं।

قَالُوْٓا اَنّٰى يَكُوْنُ لَهُ الْمُلْكُ عَلَيْنَا

"उन्होंने कहा कि कैसे हो सकता है कि उसे हमारे ऊपर बादशाहत मिले?"

وَنَحْنُ اَحَقُّ بِالْمُلْكِ مِنْهُ

"जबकि हम उससे ज़्यादा हक़दार हैं बादशाहत के"

وَلَمْ يُؤْتَ سَعَةً مِّنَ الْمَالِ ؕ

"और उसे तो माल की वुसअत भी नहीं दी गई।"

वह तो मुफ़लिस है, उसे तो अल्लाह तआला ने ज़्यादा दौलत भी नहीं दी है। क्योंकि उनके मैयारात यही थे कि जो दौलतमंद हैं वही साहिबे इज्ज़त है।

قَالَ اِنَّ اللّٰهَ اصْطَفٰىهُ عَلَيْكُمْ

“(नबी अलै०) ने कहा: (अब जो चाहो कहो) यक़ीनन अल्लाह ने, उसको चुन लिया है तुम पर।”

यह फ़ैसला हो चुका है। यह अल्लाह का फ़ैसला (Divine Decision) है, जिसे कोई तब्दील नहीं कर सकता। अल्लाह ने उसी को तुम्हारी सरदारी के लिये चुना है।

وَزَادَهٗ بَسْطَةً فِى الْعِلْمِ وَالْجِسْمِ ۭ

“और उसे कुशादगी अता की है इल्म और जिस्म दो चीज़ों में।”

वह ना सिर्फ़ क़द्दावर और ताक़तवर है बल्कि अल्लाह ने उसे इल्म और फ़हम भी वाफ़र (प्रयाप्त) अता फ़रमाया है, उसे उमूरे जंग से भी वाक़िफ़यत है। तुम्हारे नज़दीक इज्ज़त और सरदारी का मैयार दौलत है, मगर अल्लाह ने उसे इन दो चीज़ों की बिना पर चुना है। एक तो वह जिस्मानी तौर पर मज़बूत और ताक़तवर है। उस दौर में ज़ाहिर बात है इसकी बहुत ज़रूरत थी। और दूसरे यह कि उसे इल्म, फ़हम, समझ और दानिश दी है।

وَاللّٰهُ يُؤْتِىْ مُلْكَهٗ مَنْ يَّشَاۗءُ ۭ

“और अल्लाह तआला जिसको चाहता है अपनी बादशाहत दे देता है।”

अल्लाह को इख़्तियार है कि अपना मुल्क जिसको चाहे दे, वह जिसे चाहे अपनी तरफ़ से इक़्तदार बख़्शे।

وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ۲۴۷

"और अल्लाह बहुत समाई (सुनने) वाला है, सब कुछ जानने वाला है।"

उसकी वुसअत अथाह है, कोई उसका अंदाज़ा नहीं कर सकता, और वह बड़ा इल्म रखने वाला है, सब कुछ जानने वाला है। वह जिसको जो कुछ देता है बरबनाये इल्म (अपने पूरे इल्म से) देता है कि कौन उसका मुस्तहिक़ है।

आयत 248

وَقَالَ لَهُمْ نَبِيُّهُمْ اِنَّ اٰيَةَ مُلْكِهٖٓ اَنْ يَّاْتِيَكُمُ التَّابُوْتُ فِيْهِ سَكِيْنَةٌ مِّنْ رَّبِّكُمْ وَبَقِيَّةٌ مِّمَّا تَرَكَ اٰلُ مُوْسٰى وَاٰلُ هٰرُوْنَ تَحْمِلُهُ الْمَلٰٓىِٕكَةُ ؕ

"और उनसे कहा उनके नबी ने कि तालूत की बादशाहत की एक निशानी यह होगी कि तुम्हारे पास वह सन्दूक़ आ जायेगा (जो तुमसे छिन चुका है) जिसमें तुम्हारे लिये तस्कीन का सामान है तुम्हारे रब की तरफ़ से और कुछ आले मूसा अलै० और आले हारून अलै० के छोड़े हुए तबर्रुकात हैं, वह सन्दूक़ फ़रिश्तों की तहवील में है।"

तालूत की अमारत और बादशाही की अलामत के तौर पर वह सन्दूक़ तुम्हारे पास वापस आ जायेगा। असल में यह "ताबूते सकीनह" लकड़ी का एक बहुत बड़ा सन्दूक़ था, जिसमें बनी इस्राईल के अम्बिया किराम अलै० के तबर्रुकात महफ़ूज़ थे। यहूदियों का दावा है कि यह सन्दूक़ अब भी मस्जिदे अक़्सा के नीचे सुरंग में मौजूद है। उन्होंने बाज़

ज़राए से फ़ोटो लेकर उसकी दस्तावेज़ी फ़िल्म भी दिखा दी है। यह "ताबूते सकीनह" हज़रत सुलेमान अलै० के तामीर कर्दा हैकल के तहखाने में रखा हुआ था और वहीं पर रबाई (رَبّٰنِيّٖنَ) भी मौज़ूद थे। जब उस हैकल को मुन्हदिम (ध्वस्त) किया गया तो वह उसी में दब गये। वह तहख़ाना चारों तरफ से बंद हो गया होगा और उनकी लाशें और ताबूते सकीनह उसके अंदर ही होंगे। ताबूते सकीनह में बनी इस्राईल के लिये बहुत बड़ी रुहानी तस्कीन का सामान था कि हमारे पास हज़रत मूसा और हज़रत हारून अलै० के तबर्रुकात हैं। उसमें असा-ए-मूसा भी था और वह अल्वाह भी जो हज़रत मूसा अलै० को कोहे तूर पर दी गई थीं और जिन पर तौरात लिखी हुई थी। उस ताबूत को देख कर बनी इस्राईल को इसी तरह तस्कीन होती थी जैसे एक मुसलमान को खाना-ए-काबा को देख कर तस्कीन होती है। इस्राईलियों को जब उनके पड़ोसी मुल्कों ने शिकस्त दी तो वह ताबूते सकीनह भी छीन कर ले गये। पूरी क़ौम ने इस अज़ीम सानेहा पर मातम किया और इसे बनी इस्राईल से सारी इज्ज़त व हशमत छिन जाने से ताबीर किया। चुनाँचे इससे उनके हौसले मज़ीद पस्त हो गये। अब जबकि इस्राईलियों ने जंग का इरादा किया और वक़्त के नबी हज़रत सैमुअल अलै० ने तालूत को उनका अमीर मुक़र्रर किया तो उन्हें यह भी बताया कि तालूत को अल्लाह की तरफ़ से नामज़द किये जाने की एक अलामत यह होगी कि तुम्हारी तस्कीन का सामान "ताबूते सकीनह" जो तुमसे छिन गया था, उनके अहदे अमारत में तुम्हें वापस मिल जायेगा और इस वक़्त वह फ़रिश्तों की तहवील में है। हुआ यह कि

उनके दुश्मन जब ताबूत छीन कर ले गये तो वह उनके लिये एक मुसीबत बन गया। वह उसे जहाँ रखते वहाँ ताऊन और दूसरी वबाऐं फूट पड़ती। बिलआख़िर उन्होंने उसे नहुसत का बाइस समझते हुए छकड़े पर रखा और बैलों को हाँक दिया कि जिधर चाहें ले जाएँ। बैल सीधे चलते-चलते उसे बनी इस्राईल के इलाक़े में ले आये। ज़ाहिर है कि यह मामला फ़रिश्तों की रहनुमाई से हुआ। इस तरह वह ताबूते सकीनह उनके पास वापस पहुँच गया जो बरसों पहले उनसे छिन चुका था।

اِنَّ فِیْ ذٰلِكَ لَاٰیَةً لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِیْنَ ﴿۲۴۸﴾

"यक़ीनन इसमें तुम्हारे लिये बड़ी निशानी है अगर तुम मानने वाले हो।"

आयत 249

فَلَمَّا فَصَلَ طَالُوْتُ بِالْجُنُوْدِ ۙ

"फिर जब तालूत अपने लश्करों को लेकर चले"

قَالَ اِنَّ اللّٰهَ مُبْتَلِیْكُمْ بِنَهَرٍ ۚ

"तो उन्होंने कहा कि अल्लाह तआला तुम्हारी आज़माइश करेगा एक दरिया से (यानि दरिया-ए-उरदन)।"

فَمَنۡ شَرِبَ مِنۡهُ فَلَيۡسَ مِنِّىۡ‌ۚ

"तो जो उसमें से (पेट भर कर) पानी पियेगा वह मेरा साथी नहीं है।"

وَمَنۡ لَّمۡ يَطۡعَمۡهُ فَاِنَّهٗ مِنِّىۡۤ

"और जो उसमें से पानी नहीं पियेगा वह मेरा साथी है"

اِلَّا مَنِ اغۡتَرَفَ غُرۡفَةًۢ بِيَدِهٖ‌ۚ

"सिवाय इसके कि कोई अपने हाथ से सिर्फ़ चुल्लु भर पानी लेकर पी ले।"

असल में हर कमांडर के लिये ज़रूरी होता है कि किसी भी बड़ी जंग से पहले अपने साथियों के जोश व जज़्बे और अज़्म व हौसले (morale) को परखे और नज़म (discipline) की हालत को देखे। चुनाँचे रसूल अल्लाह ﷺ ने भी ग़ज़वा-ए-बदर से क़ब्ल मशावरत की थी कि मुसलमानों! एक तरफ़ जुनूब से कील काँटे से लैस एक लश्कर आ रहा है और दूसरी तरफ़ शिमाल से माल व असबाब से लदा-फंदा एक क़ाफ़िला आ रहा है। अल्लाह तआला ने वादा फ़रमाया है कि उन दोनों में से एक तुम्हें ज़रूर मिलेगा। बताओ किधर चलें? कुछ लोग जो कमज़ोरी दिखा रहे थे उन्होंने कहा कि चलें पहले क़ाफ़िला लूट लें! और जो लोग बा-हिम्मत थे उन्होंने कहा हुज़ूर! जो आप ﷺ का इरादा हो, जो आप ﷺ की मंशा हो, आप ﷺ उसके मुताबिक़ फ़ैसला फ़रमाये, हम

हाज़िर हैं! तो यहाँ भी तालूत ने अपने लश्करों का टेस्ट लिया कि वह मेरे हुक्म की पाबंदी करते हैं या नहीं करते।

فَشَرِبُوْا مِنْهُ

"तो उन्होंने उसमें से (ख़ूब जी भर कर) पानी पिया"

اِلَّا قَلِيْلًا مِّنْهُمْ ؕ

"सिवाय उनमें से एक क़लील तादाद के।"

فَلَمَّا جَاوَزَهٗ هُوَ وَالَّذِيْنَ اٰمَنُوْا مَعَهٗ ۙ

"तो जब दरिया पार करके आगे बढ़े तालूत और उसके साथी अहले ईमान"

वाज़ेह रहे कि सबसे पहली स्क्रीनिंग क़ब्ल अज़ हो चुकी थी। उनमें से जो क़िताल ही के मुन्कर हो गए थे वह पहले ही अलग हो चुके थे। अब यह दूसरी छलनी थी। जो उसमें से नहीं निकल सके वह पानी पीकर बेसुध हो गए। यह ऐसा ही जैसे ग़ज़वा-ए-उहद में रसूल अल्लाह ﷺ के साथ एक हज़ार आदमी मदीना मुनव्वरा से निकले थे फिर ऐन वक़्त पर तीन सौ अफ़राद साथ छोड़ कर चले गए। तो जब तालूत और उसके उन साथियों ने जो ईमान पर साबित क़दम रहे थे, दरिया पार कर लिया.....

قَالُوْا لَا طَاقَةَ لَنَا الْيَوْمَ بِجَالُوْتَ وَجُنُوْدِهٖ ؕ

"तो उन्होंने कहा कि आज हममें जालूत और उसके लश्करों का मुक़ाबला करने की ताक़त नहीं है।"

जालूत (Goliath) बड़ा क़वी हैकल और ग्रानडेल इंसान था। ज़िरहबकतर (कवच) में उसका पूरा जिस्म इस तरह छुपा हुआ था कि सिवाय आँख के सुराख़ के जिस्म का कोई हिस्सा खुला नहीं था। उसकी मुबारज़त (ललकार) के जवाब में कोई भी मुक़ाबले पर नहीं आ रहा था।

قَالَ الَّذِيْنَ يَظُنُّوْنَ اَنَّهُمْ مُّلٰقُوا اللّٰهِ ۙ كَمْ مِّنْ فِئَةٍ قَلِيْلَةٍ غَلَبَتْ فِئَةً كَثِيْرَةً ۢ بِاِذْنِ اللّٰهِ ۭ

"तो कहा उन लोगों ने जो यक़ीन रखते थे कि उन्हें (एक दिन) अल्लाह से मुलाक़ात करनी है, कि कितनी मर्तबा ऐसा हुआ है कि एक छोटी जमाअत बड़ी जमाअत पर ग़ालिब आ गई अल्लाह के हुक्म से।"

सो तुम आगे बढ़ो, हिम्मत करो, अपनी कम हिम्मती का सबूत ना दो। अल्लाह तआला की नुसरत और मदद से तुम्हें फ़तह हासिल हो जायेगी।

وَاللّٰهُ مَعَ الصّٰبِرِيْنَ ۝٢٤٩

"और अल्लाह तो सब्र करने वालों के साथ है।"

आयत 250

وَلَمَّا بَرَزُوْا لِجَالُوْتَ وَجُنُوْدِهٖ

"और जब वह मुक़ाबले पर निकले जालूत और उसके लश्करों के"

بَرَزَ के मायने हैं ज़ाहिर हो जाना, आमने-सामने आ जाना। अब दोनों लश्कर मैदाने जंग में आमने-सामने आये। इधर तालूत का लश्कर है और उधर जालूत का।

رَبَّنَآ اَفۡرِغۡ عَلَيۡنَا صَبۡرًا

"तो उन्होंने दुआ की कि ऐ हमारे रब! हम पर सब्र उंडेल दे"

"اَفۡرِغۡ" का मफ़हूम है किसी बर्तन से किसी के ऊपर पानी इस तरह गिरा देना कि वह बर्तन ख़ाली हो जाये। तालूत और उनके साथी अहले ईमान ने दुश्मन के मद्दे मुक़ाबिल आने पर दुआ की कि ऐ हमारे परवरदिगार! हम पर सब्र का फ़ैज़ान फ़रमा, सब्र की बारिश फ़रमा दे।

وَّثَبِّتۡ اَقۡدَامَنَا

"और (मैदाने जंग में) हमारे क़दमों को जमा दे"

وَانۡصُرۡنَا عَلَى الۡقَوۡمِ الۡكٰفِرِيۡنَ ۝٢٥٠

"और हमारी मदद फ़रमा काफ़िरों के मुक़ाबले में।"

यह दुआ गोया अहले ईमान को तल्क़ीन की जा रही है कि जब बदर के मौक़े पर तुम्हारा कुफ़्फ़ार से मुक़ाबला होगा तो तुम्हें यह दुआ करनी चाहिये।

आयत 251

فَهَزَمُوْهُمْ بِاِذْنِ اللّٰهِ ۣۙ

"तो उन्होंने मार भगाया उनको अल्लाह के हुक्म से।"

अहले ईमान ने अल्लाह के इज़्न से और अल्लाह की मशियत से दुश्मनों को शिकस्त दी।

وَقَتَلَ دَاوٗدُ جَالُوْتَ

"और दाऊद अलै० ने जालूत को क़त्ल कर दिया"

यह दाऊद वही हज़रत दाऊद अलै० हैं जो जलीलुलक़द्र नबी और बादशाह हुए। इनके बेटे हज़रत सुलेमान अलै०थे। तौरात से मालूम होता है कि दाऊद एक गड़रिये थे और जंगल में अपनी भेड़-बकरियाँ चराया करते थे। उनके पास एक गोपया होता था, जिसके अंदर पत्थर रख कर वह उसको घुमा कर मारते थे। निशाना इतना सही था कि इससे वह अपनी बकरियों पर हमला करने वाले जंगली जानवरों के जबड़े तोड़ दिया करते थे। जब तालूत और जालूत के लश्कर आमने सामने थे तो दाऊद इत्तेफाक़न वहाँ आ निकले। उन्होंने देखा कि जालूत ललकार रहा है कि है कोई जो मेरे मुक़ाबले में आये? लेकिन इधर सबके सब सहमें खड़े हैं, कोई आगे नहीं बढ़ रहा। यह देख कर उनकी ग़ैरत को जोश आ गया। उन्होंने तालूत से उसके मुक़ाबले की इजाज़त माँगी और कहने लगे कि मैं तो अपने गोपये से शेरों के जबड़े तोड़ दिया करता हूँ, भला इस नामख़तून की क्या हैसियत है, मैं अभी इसको कैफ़रे किरदार तक पहुँचाता हूँ। (वाज़ेह रहे कि ख़तना हज़रत इब्राहीम अलै० की सुन्नत है और यह मिल्लते इब्राहीमी में हमेशा राइज रहा है। लेकिन कुफ़्फ़ार और मुशरिकीन के यहाँ ख़तना का रिवाज नहीं था। चुनाँचे

“नामख़तून” बनी इस्राईल के यहाँ सबसे बड़ी गाली थी) दाऊद अलै० ने सिपहसालार की इजाज़त से अपना गोपया और चंद पत्थर उठाये और देव हैकल जालूत के सामने जा खड़े हुए। जालूत ने उनका मज़ाक उड़ाया, लेकिन उन्होंने अपने गोपये में एक पत्थर रख कर ऐसे घुमा कर छोड़ा कि वह सीधा आँख के सुराख़ से पार होकर उसके भेजे के अंदर उतर गया और जालूत वहीं ढ़ेर हो गया।

وَاٰتٰىهُ اللّٰهُ الْمُلْكَ وَالْحِكْمَةَ وَعَلَّمَهٗ مِمَّا يَشَآءُ ؕ

“और अल्लाह ने उसे सल्तनत और हिकमत अता की और जो कुछ चाहा उसे सिखा दिया।”

तालूत ने दाऊद अलै० से अपनी बेटी का निकाह कर दिया, इस तरह वह तालूत के दामाद हो गये। फ़िर तालूत ने उन्हीं को अपना वारिस बनाया और यह बादशाह हुए। अल्लाह तआला ने हज़रत दाऊद अलै० को हुकूमत व सल्तनत भी अता फ़रमाई और हिकमत व नबुवत से भी नवाज़ा। इन दोनों ऐतबारात से अल्लाह तआला ने आप अलै० को सरफ़राज़ फ़रमाया। यह सब ईनामात इस वाक़ये के बाद हज़रत दाऊद अलै० पर हुए। इन सब पर मुस्तज़ाद यह कि अल्लाह ने उन्हें सिखाया जो कुछ कि अल्लाह ने चाहा।

وَلَوۡلَا دَفۡعُ اللّٰهِ النَّاسَ بَعۡضَهُمۡ بِبَعۡضٍ ۙ لَّفَسَدَتِ الۡاَرۡضُ

"और अगर (इस तरीक़े से) अल्लाह एक गिरोह को दूसरे के ज़रिये से दफ़ा ना करता रहता तो ज़मीन में फ़साद फैल जाता"

ज़मीन में जब भी फ़साद होता है तो अल्लाह तआला कोई शक्ल ऐसी पैदा करता है कि किसी और गिरोह को सामने लाकर मुफ़्सिदों का ख़ात्मा करता है। अगर ऐसा ना होता तो ज़मीन में फ़साद ही फ़साद फैल गया होता। अल्लाह तआला ने जंगों के ज़रिये से फ़सादी गिरोहों का ख़ात्मा फ़रमाया है। हर बड़ा फ़िरऔन जो आता है अललाह तआला उसके मुक़ाबले किसी मूसा को खड़ा कर देता है। इस तरह अल्लाह तआला ने हर सरकश और फ़सादी के लिये कोई ना कोई ईलाज तजवीज़ किया हुआ है।

وَلٰكِنَّ اللّٰهَ ذُوۡ فَضۡلٍ عَلَى الۡعٰلَمِيۡنَ ۝٢٥١

"लेकिन अल्लाह तआला तो तमाम जहानों पर बड़ा फ़ज़ल करने वाला है।"

आयत 252

تِلۡكَ اٰيٰتُ اللّٰهِ نَتۡلُوۡهَا عَلَيۡكَ بِالۡحَقِّ ؕ

"यह अल्लाह की आयात हैं जो हम आप ﷺ को पढ़ कर सुना रहे हैं हक़ के साथ।"

यह क़ौल गोया हज़रत जिब्रील अलै० की तरफ़ मन्सूब होगा। यह मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ और तमाम मुसलमानों से ख़िताब है कि यह अल्लाह की आयात हैं जो हम आप ﷺ को सुना रहे हैं हक़ के साथ। यह एक बामक़सद सिलसिला है।

وَاِنَّكَ لَمِنَ الْمُرْسَلِيْنَ ﴿٢٥٢﴾

"और यक़ीनन (ऐ मुहम्मद ﷺ) आप (अल्लाह के) रसूलों में से हैं।"

आयत 253

تِلْكَ الرُّسُلُ فَضَّلْنَا بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ ۘ

"उन रसूलों में से हमने बाज़ को बाज़ पर फ़ज़ीलत दी है।"

यह एक बहुत अहम उसूल बयान हो रहा है। यह बात क़ब्ल अज़ बयान की जा चुकी है कि "तफ़रीक़ बयनल रुसुल" कुफ़्र है, जबकि "तफ़ज़ील" क़ुरान से साबित है। अल्लाह तआला ने अपने रसूलों में से हर एक को किसी ना किसी पहलु से फ़ज़ीलत बख्शी है और इस ऐतबार से वह दूसरों पर मुमताज़ है। चुनाँचे जुज़्वी फ़ज़ीलतें मुख्तलिफ़ रसूलों की हो सकती हैं, अलबत्ता कुल्ली फ़ज़ीलत तमाम अम्बिया व रुसुल अलै० पर मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ को हासिल है।

مِنۡهُمۡ مَّنۡ كَلَّمَ اللّٰهُ

"उनमें से वह भी थे जिनसे अल्लाह ने कलाम फ़रमाया"

यह हज़रत मूसा अलै० की फ़ज़ीलत का ख़ास पहलु है।

وَرَفَعَ بَعۡضَهُمۡ دَرَجٰتٍ ؕ

"और बाज़ के दरजात (किसी और ऐतबार से) बढ़ा दिये।"

وَاٰتَيۡنَا عِيۡسَى ابۡنَ مَرۡيَمَ الۡبَيِّنٰتِ

"और हमने ईसा इब्ने मरयम अलै० को बड़े खुले मौज्ज़े दिये"

وَاَيَّدۡنٰهُ بِرُوۡحِ الۡقُدُسِ ؕ

"और उनकी मदद फ़रमायी रूहुल क़ुदुस (हज़रत जिब्रील अलै०) के साथ।"

وَلَوۡ شَآءَ اللّٰهُ مَا اقۡتَتَلَ الَّذِيۡنَ مِنۡۢ بَعۡدِهِمۡ

"और अगर अल्लाह चाहता तो उनके बाद आने वाले आपस में ना लड़ते-झगड़ते"

यानि ना तो यहूदियों की आपस में जंगें होतीं, ना यहूदियों और नसरानियों की लड़ाइयाँ होतीं, और ना ही नसरानियों के फ़िरक़े एक-दूसरे से लड़ते।

مِّنۡۢ بَعۡدِ مَا جَآءَتۡهُمُ الۡبَيِّنٰتُ

"इसके बाद की उनके पास वाज़ेह तालीमात आ चुकी थीं"

وَلٰكِنِ اخْتَلَفُوْا

"लेकिन उन्होंने इख्तलाफ़ किया"

فَمِنْهُمْ مَّنْ اٰمَنَ وَمِنْهُمْ مَّنْ كَفَرَ ۭ

"फिर कोई तो उनमें से ईमान लाया और कोई कुफ़्र पर अड़ा रहा।"

وَلَوْ شَاۗءَ اللّٰهُ مَا اقْتَتَلُوْا ۣ

"और अगर अल्लाह चाहता तो वह आपस में ना लड़ते।"

यानि अगर अल्लाह तआला जबरन तकवीनी तौर पर उन पर लाज़िम कर देता तो वह इख्तलाफ़ ना करते और आपस में जंग व जिदाल से बाज़ रहते।

"लेकिन अल्लाह तो करता है जो वह चाहता है।"

अल्लाह तआला ने दुनिया को इस हिकमत पर बनाया है कि दुनिया कि यह ज़िन्दगी आज़माइश है। चुनाँचे आज़माइश के लिये उसने इन्सान को आज़ादी दी है। तो जो शख्स ग़लत रास्ते पर जाना चाहता है उसे भी आज़ादी है और जो सही रास्ते पर आना चाहता है उसे भी आज़ादी है।

आयात 254 से 257 तक

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَنْفِقُوْا مِمَّا رَزَقْنٰكُمْ مِّنْ قَبْلِ اَنْ
يَّاْتِيَ يَوْمٌ لَّا بَيْعٌ فِيْهِ وَلَا خُلَّةٌ وَّلَا شَفَاعَةٌ ۭ
وَالْكٰفِرُوْنَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ ۝٢٥٤ اَللّٰهُ لَآ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ
اَلْـحَيُّ الْقَيُّوْمُ ڬ لَا تَاْخُذُهٗ سِنَةٌ وَّلَا نَوْمٌ ۭ لَهٗ مَا فِي
السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ۭ مَنْ ذَا الَّذِيْ يَشْفَعُ
عِنْدَهٗٓ اِلَّا بِاِذْنِهٖ ۭ يَعْلَمُ مَا بَيْنَ اَيْدِيْهِمْ وَمَا خَلْفَهُمْ ۚ
وَلَا يُحِيْطُوْنَ بِشَيْءٍ مِّنْ عِلْمِهٖٓ اِلَّا بِمَا شَاۗءَ ۚ وَسِعَ
كُرْسِيُّهُ السَّمٰوٰتِ وَالْاَرْضَ ۚ وَلَا يَـــُٔـوْدُهٗ حِفْظُهُمَا ۚ
وَهُوَ الْعَلِيُّ الْعَظِيْمُ ۝٢٥٥ لَآ اِكْرَاهَ فِي الدِّيْنِ ڐ قَدْ تَّبَيَّنَ
الرُّشْدُ مِنَ الْغَيِّ ۚ فَمَنْ يَّكْفُرْ بِالطَّاغُوْتِ وَيُؤْمِنْۢ
بِاللّٰهِ فَقَدِ اسْتَمْسَكَ بِالْعُرْوَةِ الْوُثْقٰى ۤ لَا انْفِصَامَ
لَهَا ۭ وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ۝٢٥٦ اَللّٰهُ وَلِيُّ الَّذِيْنَ
اٰمَنُوْا ۙ يُخْرِجُهُمْ مِّنَ الظُّلُمٰتِ اِلَى النُّوْرِ ڛ وَالَّذِيْنَ
كَفَرُوْٓا اَوْلِيٰۗـــُٔـھُمُ الطَّاغُوْتُ ۙ يُخْرِجُوْنَهُمْ مِّنَ النُّوْرِ

اِلَى الظُّلُمٰتِ ؕ اُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ۲۵۷

तक़रीबन दो रुकूओं पर मुश्तमिल तालूत और जालूत की जंग के वाक़िआत हम पढ़ चुके हैं और अब गोया गज़वा-ए-बदर के लिये ज़हनी और नफ्सियाती तैयारी हो रही है। गज़वात के लिये जहाँ सरफ़रोशी की ज़रूरत है वहाँ इन्फ़ाक़े माल भी नागुज़ीर (ज़रूरी) है। चुनाँचे अब यहाँ बड़े ज़ोरदार अंदाज़ में इन्फ़ाक़े माल की तरफ़ तवज्जो दिलाई जा रही है। जैसा कि अर्ज़ किया जा चुका है, सूरतुल बक़रह के निस्फ़े आखिर में चार मज़ामीन तकरार के साथ आये हैं। यानि इन्फ़ाक़े माल, क़िताल, इबादात और मामलात। यह गोया चार डोरियाँ हैं जो इन बाईस रुकूओं के अन्दर ताने-बाने की तरह गुथी हुई हैं।

आयत 254

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَنْفِقُوْا مِمَّا رَزَقْنٰكُمْ مِّنْ قَبْلِ اَنْ يَّاْتِيَ يَوْمٌ

"ऐ अहले ईमान! खर्च करो उसमें से जो कुछ हमने तुम्हें दिया है इससे पहले कि वह दिन आ धमके जिसमें ना कोई खरीद व फ़रोख्त होगी, ना कोई दोस्ती काम आयेगी और ना कोई शफ़ाअत मुफ़ीद होगी।"

لَا بَيْعٌ فِيْهِ وَلَا خُلَّةٌ وَّلَا شَفَاعَةٌ ؕ

وَالْكٰفِرُوْنَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ ۝٢٥٤

"और जो इन्कार करने वाले हैं वही तो ज़ालिम हैं।"

यहाँ काफ़िर से मुराद इस्तलाही काफ़िर नहीं, बल्कि मायनवी काफ़िर हैं, यानि अल्लाह के हुक्म का इन्कार करने वाले। जो शख्स अल्लाह तआला के इस हुक्म इन्फ़ाक़ की तामील नहीं करता, देखता है कि दीन मगलूब है और उसको ग़ालिब करने की जद्दो-जहद हो रही है, उसके कुछ तक़ाज़े हैं, उसकी माली ज़रूरतें हैं और अल्लाह ने उसे क़ुदरत दी है कि उसमें खर्च कर सकता है लेकिन नहीं करता, वह है असल काफ़िर।

इसके बाद अब वह आयत आ रही है जो अज़रूए फ़रमाने नबवी ﷺ क़ुरान हकीम की अज़ीम तरीन आयत है, यानि "आयतुल कुरसी"। इसका नाम भी मारूफ़ है। मैंने आपको सूरतुल बक़रह में आने वाले हिकमत के बड़े-बड़े मोती और बड़े-बड़े फूल गिनवाये हैं, मसलन आयतुल आयात, आयतुल बिर्र, आयतुल इख्तलाफ़ और अब यह आयतुल कुरसी है जो तौहीद के अज़ीम तरीन खज़ानों में से है। रसूल अल्लाह ﷺ ने इसे तमाम आयाते क़ुरानी की सरदार क़रार दिया है। हज़रत अबु हुरैरा रज़ि० से रिवायत है कि रसूल अल्लाह ﷺ ने इरशाद फ़रमाया:

لِكُلِّ شَيْءٍ سَنَامٌ وَ إِنَّ سَنَامَ الْقُرْآنِ سُوْرَةُ الْبَقَرَةِ، وَ فِيْهَا آيَةٌ هِيَ سَيِّدَةُ آيِ الْقُرْآنِ، هِيَ آيَةُ الْكُرْسِيِّ

"हर शय की एक चोटी होती है और यक़ीनन क़ुरान हकीम की चोटी सूरतुल बक़रह है, इसमें एक आयत है जो आयाते क़ुरानी की सरदार है, यह आयतुल कुरसी है।" (32)

जिस तरह आयतुल बिर्र और सूरतुल अस्र में एक निस्बत है कि अल्लाह तआला ने हिदायत और निजात की सारी की सारी शराइत एक छोटी सी सूरत में जमा कर दीं:

وَالْعَصْرِ ① اِنَّ الْاِنْسَانَ لَفِیْ خُسْرٍ ② اِلَّا الَّذِیْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ وَتَوَاصَوْا بِالْحَقِّ ۙ وَتَوَاصَوْا بِالصَّبْرِ ③

लेकिन इसकी तफ़सील एक आयत में बयान हुई है और वह आयतुल बिर्र है। चुनाँचे हमने मुताअला-ए-क़ुरान हकीम का जो मुन्तखब निसाब मुरत्तब (सेट) किया है उसमें पहला दर्स सूरतुल अस्र का है और दूसरा आयतुल बिर्र का है। यही निस्बत आयतुल कुरसी और सूरतुल इख्लास में है। सूरतुल अस्र एक मुख़्तसर की सूरत है जबकि आयतुल बिर्र एक तवील आयत है। इसी तरह सूरतुल इख्लास चार आयात पर मुश्तमिल एक छोटी सी सूरत है और यह आयतुल कुरसी एक तवील आयत है। सूरतुल इख्लास तौहीद का अज़ीम तरीन खज़ाना है और तौहीद के मौज़ू पर क़ुरान हकीम की जामेअ तरीन सूरत है, चुनाँचे रसूल अल्लाह ﷺ ने इसे सुलूसे क़ुरान (एक तिहाई क़ुरान) क़रार दिया है, जबकि तौहीद और ख़ास तौर पर तौहीद फिल सिफ़ात के मौज़ू पर

क़ुरान करीम की अज़ीम तरीन आयत यह आयतुल कुरसी है।

आयत 255

اَللّٰهُ لَاۤ اِلٰهَ اِلَّا هُوَ ۚ

"अल्लाह वह माअबूदे बरहक़ है जिसके सिवा कोई इलाह नहीं।"

اَلْحَيُّ الْقَيُّوْمُ ۚ

"वह ज़िन्दा है सबका क़ायम रखने वाला है।"

वह अज़खुद और बाखुद ज़िन्दा है। उसकी ज़िन्दगी मुस्तआर (उधार) नहीं है। उसकी ज़िन्दगी हमारी ज़िन्दगी की मानिन्द नहीं है, जिसके बारे में बहादुर शाह ज़फर ने कहा था:

उम्रे दराज़ माँग कर लाये थे चार दिन
दो आरज़ू में कट गये दो इन्तेज़ार में!

अल्लाह तआला की ज़िन्दगी "हयाते मुस्तआर" नहीं है, वह किसी की दी हुई नहीं है। उसकी ज़िन्दगी में कोई ज़ौफ़ (दुर्बलता), कोई कमज़ोरी, और कोई एहतियाज (गरीबी) नहीं है। वह खुद अपनी जगह ज़िन्दा-ओ-जावेद हस्ती है और बाक़ी हर शय का वुजूद उसके हुक्म से क़ायम है। वह "اَلْقَيُّوْمُ" है। उसके इज़्न के बगैर कोई शय क़ायम नहीं है। सूरतुल इख्लास में अल्लाह तआला के लिये दो अल्फाज़ "اَلْاَحَدُ" और "اَلصَّمَدُ" आये हैं। वह अपनी जगह "اَلْاَحَدُ" है लेकिन बाक़ी पूरी क़ायनात के लिये "اَلصَّمَدُ" है। इसी तरह

वह अज़ख़ुद "اَلْحَيُّ" है और बाक़ी पूरी क़ायनात के लिये "اَلْقَيُّوْمُ" है।

لَا تَاْخُذُهٗ سِنَةٌ وَّلَا نَوْمٌ ط

"ना उस पर ऊँघ ग़ालिब आती है ना नींद।"

لَهٗ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ط

"जो कुछ आसमानों और ज़मीन में है सब उसी का है।"

हर शय की मिलकियते ताम्मा और मिलकियते हक़ीक़ी उसी की है।

مَنْ ذَا الَّذِيْ يَشْفَعُ عِنْدَهٗٓ اِلَّا بِاِذْنِهٖ ط

"कौन है वह जो शफ़ाअत कर सके उसके पास किसी की मगर उसकी इजाज़त से!"

सूरतुल बक़रह में क़ब्ल अज़ तीन मर्तबा क़यामत के रोज़ किसी शफ़ाअत का दो टूक अन्दाज़ में इन्कार (categorical denial) किया गया है कि कोई शफाअत नहीं! यहाँ भी बहुत ही जलाली अन्दाज़ इख़्तियार किया गया है: {مَنْ ذَا الَّذِيْ يَشْفَعُ عِنْدَهٗٓ} यानि किसकी यह हैसियत है, किसका यह मक़ाम है, किसको यह इख़्तियार हासिल है कि वह अपनी हैसियत की बुनियाद पर अल्लाह के हुज़ूर किसी की शफाअत कर सके? {اِلَّا بِاِذْنِهٖ} हाँ, जिसके लिये अल्लाह

इजाज़त दे दे! यहाँ पहली मर्तबा इस्तसना के साथ शफ़ाअत का ज़िक्र आया है, वरना सूरतुल बक़रह के छठे रुकूअ की दूसरी आयत में हम अल्फ़ाज़ पढ़ चुके हैं: {وَّلَا يُقْبَلُ مِنْهَا شَفَاعَةٌ} "और ना (उस रोज़) किसी की तरफ से कोई शफ़ाअत क़ुबूल की जायेगी।" इसी तरह पंद्रहवे रुकूअ की दूसरी आयत में अल्फ़ाज़ आये हैं: {وَّلَا تَنْفَعُهَا شَفَاعَةٌ} "और ना उसको किसी की शफ़ाअत ही फ़ायदा देगी।" और अब इस रुकूअ की पहली आयत में आ चुका है: {وَّلَا شَفَاعَةٌ} "और ना कोई शफ़ाअत मुफ़ीद होगी।" लेकिन यहाँ एक इस्तसना बयान किया जा रहा है कि जिसको अल्लाह की तरफ से इज़्ने शफ़ाअत हासिल होगा वह उसके हक़ में शफ़ाअत कर सकेगा जिसके लिये इज़्न होगा। यह ज़रा बारीक मसला है कि शफ़ाअते हक्क़ा क्या है और शफ़ाअते बातिला क्या है। दौरा-ए-तर्जुमा-ए-क़ुरान के दौरान इस पर तफ़सील के साथ बहस नहीं की जा सकती। इस पर मैं अपने तफ़सीली दर्स रिकॉर्ड करा चुका हूँ।

يَعْلَمُ مَا بَيْنَ اَيْدِيْهِمْ وَمَا خَلْفَهُمْ

"वह जानता है जो कुछ उनके सामने है और जो कुछ उनके पीछे है।"

आम तौर पर दुनिया में हम किसी की सिफ़ारिश करते हैं तो कहते हैं कि भई मैं इस शख्स को बेहतर जानता हूँ, असल में यह जैसा कुछ नज़र आता है वैसा नहीं है, इसके बारे में जो मालूमात आप तक पहुँची है वह मब्नी पर हक़ीक़त नहीं है, असल हक़ाइक़ कुछ और हैं, वह मैं आपको बताता हूँ। यह

बात अल्लाह के सामने कौन कह सकता है? जबकि अल्लाह तो जानता है जो कुछ उनके सामने है और जो कुछ उनके पीछे है।

وَلَا يُحِيطُونَ بِشَيْءٍ مِّنْ عِلْمِهِۦٓ إِلَّا بِمَا شَآءَ

"और वह इहाता नहीं कर सकते अल्लाह के इल्म में से किसी शय का भी सिवाय उसके जो अल्लाह चाहे।"

बाक़ी हर एक के पास जो इल्म है वह अल्लाह का दिया हुआ, अताई इल्म है। बड़े से बड़े वली, बड़े से बड़े रसूल और बड़े से बड़े फ़रिश्ते का इल्म भी महदूद है। फ़रिश्तों का क़ौल {لَا عِلْمَ لَنَآ إِلَّا مَا عَلَّمْتَنَا} हम चौथे रुकूअ में पढ़ आये हैं।

وَسِعَ كُرْسِيُّهُ ٱلسَّمَٰوَٰتِ وَٱلْأَرْضَ

"उसकी कुरसी तमाम आसमानों और ज़मीन को मुहीत है।"

यहाँ कुरसी के दो मफ़हूम हो सकते हैं। एक तो ये कि उसका इक़तदार, उसकी क़ुदरत और उसका इख़्तियार (Authority) पूरी कायनात के ऊपर हावी है। नेज़ यह भी हो सकता है कि अल्लाह तआला के इक़तदार की अलामत के तौर पर वाक़िअतन कोई मुजस्सम शय भी हो जिसको हम कुरसी कह सकें। अल्लाह तआला के अर्श और कुरसी के बारे में यह दोनों बातें ज़हन में रखें। यह भी हो सकता है कि इनकी कोई मुजस्सम हक़ीक़त हो जो हमारे ज़हन और तख़य्युल (कल्पना) से मा-वरा (बहुत ऊपर) है और यह भी हो सकता है कि इससे इस्तआरा मुराद हो कि उसका

इख़्तियार और इक़्तदार आसमानों और ज़मीन पर छाया हुआ है।

وَلَا يَـُٔوْدُهٗ حِفْظُهُمَا *"और उस पर गिरां (भारी) नहीं गुज़रती उन दोनों की हिफाज़त।"*

आसमानों और ज़मीन की हिफ़ाज़त और इनका थामना उस पर ज़रा भी गिरां नहीं और इससे उस पर कोई थकान तारी नहीं होती।

وَهُوَ الْعَلِيُّ الْعَظِيْمُ ﴿٢٥٥﴾ *"और वह बुलन्द व बाला (और) बड़ी अज़मत वाला है।"*

यह आयतुल कुरसी है जो तमाम आयाते क़ुरानी की सरदार और तौहीदे इलाही का एक बहुत बड़ा खज़ाना है। इसके बाद आने वाली दो आयात भी हिकमत और फ़लसफ़ा-ए-दीन के ऐतबार से बड़ी अज़ीम आयात हैं।

आयत 256

لَآ اِكْرَاهَ فِي الدِّيْنِ *"दीन में कोई जबर नहीं है।"*

इस्लाम इस बात की इजाज़त नहीं देता कि किसी को इस्लाम क़ुबूल करने पर मजबूर किया जाये। इस्लाम में किसी फ़र्द को जबरन मुस्लमान बनाना हराम है। लेकिन इस आयत का यह मतलब निकाल लेना कि निज़ामे बातिल को ख़त्म करने के लिये भी कोई ताक़त इस्तेमाल नहीं हो सकती, परले दर्जे की हिमाक़त है। निज़ामे बातिल ज़ुल्म पर मब्नी है और यह लोगों का इस्तेहसाल (शोषण) कर रहा है। यह अल्लाह और बन्दों के दरमियान हिजाब और आड़ बन

गया है। लिहाज़ा निज़ामे बातिल को ताक़त के साथ ख़त्म करना मुस्लमान का फ़र्ज़ है। अगर ताक़त मौजूद नहीं है तो ताक़त हासिल करने की कोशिश की जाये, लेकिन जिस मुस्लमान का दिल निज़ामे बातिल को ख़त्म करने की आरज़ू और इरादे से खाली है उसके दिल में ईमान नहीं है। ताक़त और जबर निज़ामे बातिल को ख़त्म करने पर सर्फ़ (ख़र्च) किया जायेगा, किसी फ़र्द को मजबूरन मुस्लमान नहीं बनाया जायेगा। यह है असल में इस आयत का मफ़हूम।

قَدْ تَّبَيَّنَ الرُّشْدُ مِنَ الْغَيِّ ۚ

"हिदायत गुमराही से वाज़ेह हो चुकी है।"

जितनी भी कजियाँ हैं, गलत रास्ते हैं, शैतानी पगडंडियाँ हैं सिराते मुस्तक़ीम को इनसे बिल्कुल मुबह्हरन (अलग) कर दिया गया है।

فَمَنْ يَّكْفُرْ بِالطَّاغُوْتِ

"तो जो कोई भी तागूत का इन्कार करे"

देखिये, अल्लाह पर ईमान लाने से पहले तागूत का इन्कार ज़रूरी है। जैसे कलमा-ए-तैय्यबा "لا الٰہ الا اللہ" में पहले हर इलाह की नफ़ी है और फिर अल्लाह का अस्बात (पुष्टिकरण) है। तागूत तगा से है, यानि शरकश। तो जिसने अपनी हाकिमियत का ऐलान किया वह तागूत है, जिसने गैरुल्लाह की हाकिमियत को तस्लीम किया वह भी तागूत है और गैरुल्लाह की हाकिमियत के तहत बनने वाले सारे इदारे तागूत हैं, ख़्वाह वह कितने ही खुशनुमा इदारे हों।

"अदलिया" के नाम से एक इदारा अगर अल्लाह के क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसलें नहीं कर रहा, कुछ और लोगों के बनाये हुए क़ानून के मुताबिक़ फ़ैसलें कर रहा है तो वह तागूत है। "मुताफन्ना" का इदारा अगर अल्लाह की नाज़िल करदा हिदायत के मुताबिक़ क़ानून साज़ी नहीं कर रहा तो वह भी तागूत है। जो कोई भी अल्लाह के हुदूद-ए-बन्दगी से तजावुज़ करता है वह तागूत है। दरिया जब अपनी हदों से बाहर निकलता है तो यह तुग्यानी है:

दरिया को अपनी मौज की तुग्यानियों से काम
कश्ती किसी की पार हो या दरमियान रहे!

तगा और बगा दोनों बड़े क़रीब के अल्फ़ाज़ हैं, जिनका मफ़हूम तुग्यानी और बग़ावत है। फ़रमाया कि "जो कोई कुफ़्र करे तागूत के साथ।"

وَيُؤْمِنْ بِاللّٰهِ

"और फिर अल्लाह पर ईमान लाये"

तागूत से दोस्ती और अल्लाह पर ईमान दोनों चीज़ें यक्जा (एक साथ) नहीं हो सकती। अल्लाह के दुश्मनों से भी याराना हो और अल्लाह के साथ वफ़ादारी का दावा भी हो यही तो मुनाफ़क़त है। जबकि इस्लाम तो {حَنِيْفًا مُّسْلِمًا} के मिस्दाक़ कामिल यक्सुई (पूरी एकाग्रता) के साथ इताअत शआरी का मुतालबा करता है।

فَقَدِ اسْتَمْسَكَ بِالْعُرْوَةِ الْوُثْقٰى ۤ

"तो उसने बहुत मज़बूत हल्का (कुंडा) थाम लिया।"

जिस शख्स ने यह काम कर लिया कि तागूत की नफ़ी की और अल्लाह पर ईमान लाया उसने एक मज़बूत कुंडा थाम लिया। यूँ समझिये अगर कोई शख्स समुन्द्री जहाज के अर्शे से समुन्दर में गिर जाये, उसे तैरना भी ना आता हो और किसी तरह हाथ-पैर मार कर वह जहाज के किसी कुंडे को थाम ले तो अब वह समझता है कि मेरी ज़िन्दगी इसी से वाबस्ता (समर्पित) है, अब मैं इसे नहीं छोड़ूँगा। वह कुंडा अगर कमज़ोर है तो उसका सहारा नहीं बन सकेगा और उसके वज़न से ही उखड जायेगा या टूट जायेगा, लेकिन अगर वह कुंडा मज़बूत है तो वह उसकी ज़िन्दगी का ज़ामिन (जमानती) बन जायेगा। यहाँ फ़रमाया कि तागूत का इन्कार करके अल्लाह पर ईमान लाने वाले शख्स ने बहुत मज़बूत कुंडे पर हाथ डाल दिया है।

لَا انْفِصَامَ لَهَا ؕ

"जो कभी टूटने वाला नहीं है।"

कभी अलैहदा होने वाला नहीं है। यह बहुत मज़बूत सहारा है। रसूल अल्लाह ﷺ के एक ख़ुत्बे में यह अल्फ़ाज़ नक़ल किये गये हैं: ((وَاَوْثَقُ الْعُرٰى كَلِمَةُ التَّقْوٰى)) यानि तमाम कुंडों में सबसे मज़बूत कुंडा तक़वे का कुंडा है।(33) लिहाज़ा इसको मज़बूती के साथ थमने की ज़रूरत है।

وَاللّٰهُ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ ﴿٢٥٦﴾

"और अल्लाह सब कुछ सुनने वाला सब कुछ जानने वाला है।"

आयत 257

اَللّٰهُ وَلِيُّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ۙ

"अल्लाह वली है अहले ईमान का"

ईमान दरहक़ीक़त अल्लाह और बन्दे के दरमियान एक दोस्ती का रिश्ता क़ायम करता है। यह विलायते बाहमी यानि दो तरफ़ा दोस्ती है। एक तरफ़ मतलूब यह है कि बंदा अल्लाह का वली बन जाये (सूरह युनुस:62-63):

اَلَآ اِنَّ اَوْلِيَآءَ اللّٰهِ لَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ۝۶۲ۚۖ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَكَانُوْا يَتَّقُوْنَ ۝۶۳ؕ

"याद रखो, अल्लाह के दोस्तों के लिये ना तो किसी तरह का खौफ़ है और ना वह ग़मगीन होंगे। यह वह लोग हैं जो ईमान लाये और उन्होंने तक़वा इख़्तियार किया।"

दूसरी तरफ़ अल्लाह भी अहले ईमान का वली है, यानि दोस्त है, पुश्त पनाह है, मददगार है, कारसाज़ है।

يُخْرِجُهُمْ مِّنَ الظُّلُمٰتِ اِلَى النُّوْرِ ۭ

"वह उन्हें निकलता रहता है तारीकियों से नूर की तरफ।"

आप नोट करेंगे कि क़ुरान में "नूर" हमेशा वाहिद आता है। "अनवार" का लफ्ज़ क़ुरान में नहीं आया, इसलिये कि नूर एक हक़ीक़ते वाहिदा है। लेकिन "ज़ुलुमात" हमेशा जमा में आता है, इसलिये कि तारीकी के shades मुख्तलिफ़ हैं।

एक बहुत गहरी तारीकी है, एक ज़रा उससे कम है, फिर उससे कमतर है। कुफ़्र, शिर्क, इल्हाद (नास्तिकता), माद्दा परस्ती, ला अदरियत (Agnosticims) वगैरह मुख्तलिफ़ क़िस्म की तारीकियाँ हैं। तो जितने भी गलत फ़लसफ़े हैं, जितने भी गलत नज़रियात हैं, जितनी भी अमल की गलत राहें हैं उन सबके अँधियारों से निकाल कर अल्लाह अहले ईमान को ईमान की रोशनी के अन्दर लाता रहता है।

وَالَّذِيْنَ كَفَرُوْٓا اَوْلِيٰۗـــُٔــهُمُ الطَّاغُوْتُ

"और (इनके बरअक्स) जिन्होंने कुफ़्र किया, उनके औलिया (पुश्त पनाह, साथी और मददगार) तागूत हैं।"

يُخْرِجُوْنَهُمْ مِّنَ النُّوْرِ اِلَى الظُّلُمٰتِ ۭ

"वह उनको रोशनी से निकाल कर तारीकियों की तरफ़ ले जाते हैं।"

अगर कहीं नूर की थोड़ी बहुत रमक़ (बिंदु) उन्हें मिली भी थी तो उससे उन्हें महरूम करके उन्हें तारीकियों की तरफ़ धकेलते रहते हैं।

اُولٰۗىِٕكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ هُمْ فِيْهَا خٰلِدُوْنَ ٢٥٧ۧ

"यही लोग हैं आग वाले, यह उसमें हमेशा-हमेश रहेंगे।"

اَللّٰھُمَّ اجْعَلْنَا مِنْ عِبَادِكَ الْمُؤْمِنِيْنَ، اَللّٰھُمَّ اَخْرِجْنَا مِنَ الظُّلُمٰتِ اِلَى النُّوْرِ ۔ آمِين يارَبّ العالمين۔

इसके बाद हज़रत इब्राहीम और हज़रत उज़ैर अलैहिस्सलाम की ज़िन्दगी के कुछ वाक़िआत बयान किये जा रहे हैं।

आयात 258 से 260 तक

اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِىْ حَآجَّ اِبْرٰهٖمَ فِىْ رَبِّهٖٓ اَنْ اٰتٰىهُ اللّٰهُ
الْمُلْكَ ۘ اِذْ قَالَ اِبْرٰهٖمُ رَبِّىَ الَّذِىْ يُحْىٖ وَيُمِيْتُ ۙ قَالَ
اَنَا اُحْىٖ وَاُمِيْتُ ۭ قَالَ اِبْرٰهٖمُ فَاِنَّ اللّٰهَ يَاْتِىْ بِالشَّمْسِ
مِنَ الْمَشْرِقِ فَاْتِ بِهَا مِنَ الْمَغْرِبِ فَبُهِتَ الَّذِىْ
كَفَرَ ۭ وَاللّٰهُ لَا يَهْدِى الْقَوْمَ الظّٰلِمِيْنَ ۚ﴿٢٥٨﴾ اَوْ كَالَّذِىْ
مَرَّ عَلٰى قَرْيَةٍ وَّهِىَ خَاوِيَةٌ عَلٰى عُرُوْشِهَا ۚ قَالَ اَنّٰى
يُحْىٖ هٰذِهِ اللّٰهُ بَعْدَ مَوْتِهَا ۚ فَاَمَاتَهُ اللّٰهُ مِائَةَ عَامٍ ثُمَّ
بَعَثَهٗ ۭ قَالَ كَمْ لَبِثْتَ ۭ قَالَ لَبِثْتُ يَوْمًا اَوْ بَعْضَ
يَوْمٍ ۭ قَالَ بَلْ لَّبِثْتَ مِائَةَ عَامٍ فَانْظُرْ اِلٰى طَعَامِكَ
وَشَرَابِكَ لَمْ يَتَسَنَّهْ ۚ وَانْظُرْ اِلٰى حِمَارِكَ وَلِنَجْعَلَكَ
اٰيَةً لِّلنَّاسِ وَانْظُرْ اِلَى الْعِظَامِ كَيْفَ نُنْشِزُهَا ثُمَّ
نَكْسُوْهَا لَحْمًا ۭ فَلَمَّا تَبَيَّنَ لَهٗ ۙ قَالَ اَعْلَمُ اَنَّ اللّٰهَ عَلٰى

كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ﴿٢٥٩﴾ وَاِذْ قَالَ اِبْرٰهٖمُ رَبِّ اَرِنِيْ كَيْفَ
تُحْيِ الْمَوْتٰى ؕ قَالَ اَوَلَمْ تُؤْمِنْ ؕ قَالَ بَلٰى وَلٰكِنْ
لِّيَطْمَئِنَّ قَلْبِيْ ؕ قَالَ فَخُذْ اَرْبَعَةً مِّنَ الطَّيْرِ فَصُرْهُنَّ
اِلَيْكَ ثُمَّ اجْعَلْ عَلٰى كُلِّ جَبَلٍ مِّنْهُنَّ جُزْءًا ثُمَّ
ادْعُهُنَّ يَاْتِيْنَكَ سَعْيًا ؕ وَاعْلَمْ اَنَّ اللّٰهَ عَزِيْزٌ حَكِيْمٌ
ع ﴿٢٦٠﴾

आयत 258

اَلَمْ تَرَ اِلَى الَّذِيْ حَآجَّ اِبْرٰهٖمَ فِيْ رَبِّهٖٓ اَنْ اٰتٰىهُ اللّٰهُ الْمُلْكَ ۘ

“क्या तुमने उस शख्स को नहीं देखा जिसने हुज्जतबाज़ी की थी इब्राहीम अलैहिस्सलाम से इस वजह से कि अल्लाह ने उसे बादशाही दी हुई थी।”

यह बाबुल (इराक़) का बादशाह नमरूद था। यह ज़हन में रखिये कि नमरूद असल में लक़ब था, किसी का नाम नहीं था। जैसे फ़िरऔन (*जमा* फ़राअना) मिस्र के बादशाहों का लक़ब होता था इसी तरह नमरूद (*जमा* नमारुद) बाबुल (इराक़) के बादशाहों का लक़ब था। हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की की पैदाइश “उर” में हुई थी जो बाबुल (Babylonia) का एक शहर था और वहाँ नमरूद की बादशाहत थी। जैसे फ़िरऔन ने मिस्र में अपनी बादशाहत

और अपनी खुदाई का दावा किया था इसी तरह का दावा नमरूद का भी था। फ़िरऔन और नमरूद का खुदाई का दावा दरहक़ीक़त सियासी बादशाहत और इक़तदार का दावा था कि इख़्तियारे मुतलक़ हमारे हाथ में है, हम जिस चीज़ को चाहें गलत क़रार दे दें और जिस चीज़ को चाहें सही क़रार दे दें। यही असल में खुदाई इख़्तियार है जो उन्होंने हाथ में ले लिया था। तहलील व तहरीम (हलाल-हराम का फ़ैसला करना) अल्लाह तआला का हक़ है, किसी शय को हलाल करने या किसी शय को हराम करने का इख़्तियारे वाहिद अल्लाह के हाथ में है। और जिस शख्स ने भी क़ानून साज़ी का यह इख़्तियार अल्लाह के क़ानून से आज़ाद होकर अपने हाथ में ले लिया वही तागूत है, वही शैतान है, वही नमरूद है, वही फ़िरऔन है। वरना फ़िरऔन और नमरूद ने यह दावा तो नहीं किया था कि यह दुनिया हमने पैदा की है।

اِذۡ قَالَ اِبۡرٰهٖمُ رَبِّیَ الَّذِیۡ یُحۡیٖ وَیُمِیۡتُ ۙ قَالَ اَنَا اُحۡیٖ وَاُمِیۡتُ ؕ

“जब इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने कहा कि मेरा रब तो वह है जो ज़िन्दा करता है और मारता है तो उसने कहा कि मैं भी ज़िन्दा करता हूँ और मारता हूँ।”

नमरूद ने जेल से सज़ा-ए-मौत के दो क़ैदी मंगवाये, उनमें से एक की गर्दन वहीं उड़ा दी और दूसरे की सज़ा-ए-मौत माफ़ करते हुए उसे रिहा कर दिया और हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम से कहने लगा कि देखो, मैंने जिसको चाहा ज़िन्दा रखा और जिसको चाहा मार दिया। हज़रत इब्राहीम

अलै० ने देखा कि यह कटहुज्जती पर उतरा हुआ है, इसे ऐसा जवाब दिया जाना चाहिये जो उसको चुप करा दे।

قَالَ اِبۡرٰهٖمُ فَاِنَّ اللّٰهَ يَاۡتِىۡ بِالشَّمۡسِ مِنَ الۡمَشۡرِقِ فَاۡتِ بِهَا مِنَ الۡمَغۡرِبِ

"इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने कहा कि अल्लाह सूरज को मशरिक़ से निकालता है (अगर तू खुदाई का मुद्दई है) तो इसे मग़रिब से निकाल कर दिखा"

فَبُهِتَ الَّذِىۡ كَفَرَؕ

"तो मबहूत (आकर्षित) होकर रह गया वह काफ़िर।"

अब उसके पास कोई जवाब नहीं था। वह यह बात सुन कर भौंचक्का और शशदर (हैरान) होकर रह गया।

وَاللّٰهُ لَا يَهۡدِى الۡقَوۡمَ الظّٰلِمِيۡنَۚ‏ ﴿۲۵۸﴾

"और अल्लाह ज़ालिमों को हिदायत नही दिया करता।"

अल्लाह ने उसे राहयाब नहीं किया, लेकिन वह चुप हो गया, उससे हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम की बात का कोई जवाब नहीं बन पड़ा। इसके बाद उसने बुतकदे के पुजारियों के मशवरे से यह फैसला किया कि इब्राहीम अलैहिस्सलाम को आग में झोंक दिया जाये।

आयत 259

اَوۡ كَالَّذِىۡ مَرَّ عَلٰى قَرۡيَةٍ وَّهِىَ خَاوِيَةٌ عَلٰى عُرُوۡشِهَا‌ۚ

"या फिर जैसे कि वह शख्स (उसका वाक़िया ज़रा याद करो) जिसका गुज़र हुआ एक बस्ती पर और वह औंधी पड़ी हुई थी अपनी छतों पर।"

तफ़ासीर में अगरचे इस वाक़िये की मुख्तलिफ़ ताबीरात मिलती हैं, लेकिन यह दरअसल हज़रत उज़ैर अलैहिस्सलाम का वाक़िया है जिनका गुज़र येरुशलम शहर पर हुआ था जो तबाह व बर्बाद हो चुका था। बाबुल (इराक़) के बादशाह बख्तनसर (Nebuchadnezzar) ने 586 ई०पू० में फ़लस्तीन पर हमला किया था और येरुशलम को ताखत (सरपट) व ताराज (तहस-नहस) कर दिया था। इस वक़्त भी इराक़ और इसराइल की आपस में बदतरीन दुश्मनी है। यह दुश्मनी दर हक़ीक़त ढाई हज़ार साल पुरानी है। बख्तनसर के हमले के वक़्त येरुशलम बारह लाख की आबादी का शहर था। बख्तनसर ने छ: लाख नफ़ूस (इंसानों) को क़त्ल कर दिया और बाक़ी छ: लाख को भेड़-बकरियों की तरह हाँकता हुआ क़ैदी बना कर ले गया। यह लोग डेढ़ सौ बरस तक असीरी (captive) में रहे और येरुशलम उजड़ा रहा है। वहाँ कोई मुतनफ्फ़िस ज़िन्दा नहीं बचा था। बख्तनसर ने येरुशलम को इस तरह तबाह व बर्बाद किया था कि कोई दो ईंटें सलामत नहीं छोड़ी। उसने हैकले सुलेमानी को भी मुकम्मल तौर पर शहीद कर दिया था। यहूदियों के मुताबिक़ हैकल के एक तहखाने में "ताबूते सकीनह" भी था और वहाँ उनके रबाई भी मौजूद थे। हैकल मस्मार (विध्वंस) होने पर वहीँ उनकी मौत वाक़ेअ हुई और

ताबूते सकीनह भी वहीं दफ़न हो गया। तो जिस ज़माने में यह बस्ती उजड़ी हुई थी, हज़रत उज़ैर अलैहिस्सलाम का उधर से गुज़र हुआ। उन्होंने देखा कि वहाँ कोई मुतनफ्फ़िस ज़िन्दा नहीं और कोई इमारत सलामत नहीं।

قَالَ اَنّٰى يُحۡىٖ هٰذِهِ اللّٰهُ بَعۡدَ مَوۡتِهَا‌ۚ

"उसने कहा कि अल्लाह इस बस्ती को, इसके इस तरह मुर्दा और बर्बाद हो जाने के बाद किस तरह ज़िन्दा करेगा?"

उनका यह सवाल इज़हारे हैरत की नौइयत का था कि इस तरह उजड़ी हुई बस्ती में दोबारा कैसे अहया हो सकता है? दोबारा कैसे इसमें लोग आकर आबाद हो सकते हैं? इतनी बड़ी तबाही व बर्बादी कि कोई मुतनफ्फ़िस बाक़ी नहीं, कोई दो ईंटे सलामत नहीं!

فَاَمَاتَهُ اللّٰهُ مِائَةَ عَامٍ ثُمَّ بَعَثَهٗ‌ؕ

"तो अल्लाह ने उस पर मौत वारिद कर दी सौ बरस के लिये और फिर उसको उठाया।"

قَالَ كَمۡ لَبِثۡتَ‌ؕ

"पूछा कितना अरसा यहाँ रहे हो?"

قَالَ لَبِثۡتُ يَوۡمًا اَوۡ بَعۡضَ يَوۡمٍ‌ؕ

"कहने लगा एक दिन या एक दिन का कुछ हिस्सा।"

उनको ऐसा महसूस हुआ जैसे थोड़ी देर के लिये सोया था, शायद एक दिन या दिन का कुछ हिस्सा मैं यहाँ रहा हूँ।

قَالَ بَلۡ لَّبِثۡتَ مِائَةَ عَامٍ

"(अल्लाह तआला ने) फ़रमाया बल्कि तुम पूरे सौ साल इस हाल में रहे हो"

فَانۡظُرۡ اِلٰى طَعَامِكَ وَشَرَابِكَ لَمۡ يَتَسَنَّهۡ‌ۚ

"तो ज़रा तुम अपने खाने और अपने मशरूब को (जो सफ़र में तुम्हारे साथ था) देखो, उनके अन्दर कोई बसांद पैदा नहीं हुई।"

उनमें से कोई शय गली-सड़ी नहीं, उनके अन्दर कोई ख़राबी पैदा नहीं हुई।

وَانۡظُرۡ اِلٰى حِمَارِكَ

"और (दूसरी तरफ़) अपने गधे को देखो (हम इसको किस तरह ज़िन्दा करते हैं)"

हज़रत उज़ैर अलैहिस्सलाम की सवारी का गधा इस अरसे में बिल्कुल ख़त्म हो चुका था, उसकी बोशीदा हड्डियाँ ही बाक़ी रह गयी थीं, गोश्त गल-सड़ चुका था।

وَلِنَجۡعَلَكَ اٰيَةً لِّلنَّاسِ

"और ताकि हम तुम्हें लोगों के लिये एक निशानी बनायें"

यानि ऐ उज़ैर अलैहिस्सलाम! हमने तो खुद तुम्हें लोगों के लिये एक निशानी बनाया है, इसलिये हम तुम्हें अपनी यह निशानी दिखा रहे हैं ताकि तुम्हें दोबारा उठाये जाने पर यक़ीने कामिल हासिल हो।

وَانْظُرْ اِلَى الْعِظَامِ كَيْفَ نُنْشِزُهَا

"और अब इन हड्डियों को देखो, किस तरह हम इन्हें उठाते हैं"

ثُمَّ نَكْسُوْهَا لَحْمًا ؕ

"फिर (तुम्हारी निगाहों के सामने) इनको गोश्त पहनाते हैं।"

चुनाँचे हज़रत उज़ैर अलैहिस्सलाम के देखते ही देखते उनके गधे की हड्डियाँ जमा होकर उसका ढाँचा खड़ा हो गया और फिर उस पर गोश्त भी चढ़ गया।

فَلَمَّا تَبَيَّنَ لَهٗ ۙ

"पस जब उसके सामने यह बात वाज़ेह हो गयी"

हज़रत उज़ैर अलैहिस्सलाम ने बचश्मे सर एक मुर्दा जिस्म को ज़िन्दा होने का मुशाहिदा कर लिया।

قَالَ اَعْلَمُ اَنَّ اللّٰهَ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ﴿۲۵۹﴾

"वह पुकार उठा कि मैंने पूरी तरह जान लिया (और मुझे यक़ीन कामिल हासिल हो गया) कि अल्लाह हर शय पर क़ादिर है।"

उन्हें यक़ीन हो गया कि अल्लाह तआला इस उजड़ी हुई बस्ती को भी दोबारा आबाद कर सकता है, इसकी आबादी अल्लाह तआला के इख़्तियार में है।

हज़रत उज़ैर अलैहिस्सलाम को बनी इसराइल की निशाते सानिया (Renaissance) के नक़ीब (अग्रदूत) की हैसियत हासिल है। बाबुल की असारत (क़ैद) के दौरान यहूद अख़्लाक़ी ज़वाल का शिकार थे। जब हज़रत उज़ैर

अलैहिस्सलाम को अल्लाह तआला ने मुतज़क्किर बाला मुशाहदात करवा दिये तो आप अलैहिस्सलाम ने वहाँ जाकर यहूद को दीन की तालीम दी और उनके अन्दर रूहे दीन को बेदार किया। इसके बाद ईरान के बादशाह केखोरस (Cyrus) ने जब बाबुल (इराक़) पर हमला किया तो यहूदियों को असारत (Captive) से निजात दी और उन्हें दोबारा फ़लस्तीन में जाकर आबाद होने की इजाज़त दे दी। इस तरह येरुशलम की तामीरे नौ हुई और यह बस्ती 136 साल बाद दोबारा आबाद हुई। फिर यहूदियों ने वहाँ हैकले सुलेमानी दोबारा तामीर किया जिसको वह माअबूदे सानी (Second Temple) कहते हैं। फिर यह हैकल 70 ई० में रोमन जनरल टाइटस के हाथों तबाह हो गया और अब तक दोबारा तामीर नहीं हो सका। दो हज़ार बरस होने को आये हैं कि उनका काबा ज़मींबोस है। यही वजह है कि आज दुनिया भर के यहूदियों के दिलों में आग सी लगी हुई है और वह मस्जिदे अक़्सा को मस्मार करके वहाँ हैकले सुलेमानी (माअबूदे सालिस) तामीर करने के लिये बेताब हैं। उसके नक्शे भी तैयार हो चुके हैं। बस किसी दिन कोई एक धमाका होगा और ख़बर आ जायेगी कि किसी जुनूनी (Fanatic) ने वहाँ जाकर बम रख दिया था, जिसके नतीजे में मस्जिदे अक़्सा शहीद हो गयी है। आपके इल्म में होगा कि एक जुनूनी यहूदी डॉक्टर ने मस्जिदे अल खलील में 70 मुस्लमानों को शहीद करके खुद भी खुदकुशी कर ली थी। इसी तरह कोई जुनूनी यहूदी मस्जिदे अक़्सा में बम नसब करके उसको गिरा देगा और फिर यहूदी कहेंगे कि जब मस्जिद मस्मार हो ही गयी है तो अब हमें यहाँ हैकल तामीर

करने दें। जैसे अयोध्या में बाबरी मस्जिद के इन्हदाम (विध्वंस) के बाद हिन्दुओं का मौक़फ़ था कि जब मस्जिद गिर ही गयी है तो अब यहाँ पर हमें राम मन्दिर बनाने दो! बहरहाल ये हज़रत उज़ैर अलैहिस्सलाम का वाक़िया था। अब इसी तरह का एक मामला हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम का मुशाहिदा है।

आयत 260

"और याद करो जबकि इब्राहीम अलै० ने भी कहा था परवरदिगार! ज़रा मुझे मुशाहिदा करा दे कि तू मुर्दों को कैसे ज़िन्दा करेगा?"	وَاِذۡ قَالَ اِبۡرٰھٖمُ رَبِّ اَرِنِیۡ کَیۡفَ تُحۡیِ الۡمَوۡتٰی ؕ
"(अल्लाह तआला ने) फ़रमाया क्या तुम (इस बात पर) ईमान नहीं रखते?"	قَالَ اَوَلَمۡ تُؤۡمِنۡ ؕ
"कहा क्यों नहीं! (ईमान तो रखता हूँ)"	قَالَ بَلٰی
"लेकिन चाहता हूँ कि मेरा दिल पूरी तरह मुतमईन हो जाये।"	وَلٰکِنۡ لِّیَطۡمَئِنَّ قَلۡبِیۡ ؕ

यह तमाम अम्बिया-ए-किराम अलैहिस्सलाम का मामला है कि उन्हें अय्नुल यक़ीन और हक़्क़ुल यक़ीन के दर्जे का ईमान अता किया जाता है। उन्हें चूँकि ईमान और यक़ीन की एक ऐसी भट्टी (furnace) बनना होता है कि जिससे ईमान और

यक़ीन दूसरों में सरायत करे, तो उनके ईमान व यक़ीन के लिये उनको ऐसे मुशाहदात करवा दिये जाते हैं कि ईमान उनके लिये सिर्फ़ ईमान बिलगैब नहीं रहता बल्कि वह ईमान बिलशहादा भी हो जाता है। सूरतुल अनआम में सराहत के साथ फ़रमाया गया है कि हमने इब्राहीम अलै० को आसमानों और ज़मीन के निज़ामे हुकूमत का मुशाहिदा कराया ताकि वह कामिल यक़ीन करने वालों में से हो जाये। मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ को शबे मेराज में आसमानों पर ले जाया गया कि वह हर शय को अपनी आँखों से देख लें। इन मुशाहदात से अम्बिया को उन ईमानी हक़ाइक़ पर यक़ीन कामिल हो जाता है जिनकी वह लोगों को दावत देते हैं। गोया वह खुद ईमान और यक़ीन की एक भट्टी बन जाते हैं।

قَالَ فَخُذْ اَرْبَعَةً مِّنَ الطَّيْرِ فَصُرْهُنَّ اِلَيْكَ

"फ़रमाया, अच्छा तो चार परिन्दे ले लो और उन्हें अपने साथ हिला लो"

उन्हें अपने साथ इस तरह मानूस कर लो कि वह तुम्हारी आवाज़ सुन कर तुम्हारे पास आ जाया करें।"

ثُمَّ اجْعَلْ عَلٰى كُلِّ جَبَلٍ مِّنْهُنَّ جُزْءًا

"फिर उनके टुकड़े करके हर पहाड़ पर उनका एक-एक टुकड़ा रख दो"

ثُمَّ ادۡعُهُنَّ يَاۡتِيۡنَكَ سَعۡيًا ؕ

"फिर उनको पुकारो तो वह तुम्हारे पास दौड़ते हुए आयेंगे।"

इसकी तफ़सील में आता है कि हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम ने चारों परिंदों के सर, धड़, टाँगें और उनके पर अलैहदा-अलैहदा किये। फिर एक पहाड़ पर चारों के सर, दूसरे पहाड़ पर चारों के धड़, तीसरे पहाड़ पर चारों की टाँगें और चौथे पहाड़ पर चारों के पर रख दिये। इस तरह उन्हें मुख्तलिफ़ अज्ज़ाअ (हिस्सों) में तक़सीम कर दिया। फिर उन्हें पुकारा तो उनके अज्ज़ाअ मुज्तमेअ (जमा) होकर चारों परिन्दें अपनी साबक़ा हैइयत (आकार) में ज़िन्दा होकर हज़रत इब्राहीम अलैहिस्सलाम के पास दौड़ते हुए आ गये।

وَاعۡلَمۡ اَنَّ اللّٰهَ عَزِيۡزٌ حَكِيۡمٌ ﴿۲۶۰﴾

"और (इस बात को यक़ीन के साथ) जान लो कि अल्लाह तआला ज़बरदस्त है, कमाले हिकमत वाला है।"

आयात 261 से 273 तक

مَثَلُ الَّذِيۡنَ يُنۡفِقُوۡنَ اَمۡوَالَهُمۡ فِىۡ سَبِيۡلِ اللّٰهِ كَمَثَلِ
حَبَّةٍ اَنۡۢبَتَتۡ سَبۡعَ سَنَابِلَ فِىۡ كُلِّ سُنۡۢبُلَةٍ مِّائَةُ
حَبَّةٍ ؕ وَاللّٰهُ يُضٰعِفُ لِمَنۡ يَّشَآءُ ؕ وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيۡمٌ ﴿۲۶۱﴾

الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ ثُمَّ لَا
يُتْبِعُوْنَ مَآ اَنْفَقُوْا مَنًّا وَّلَآ اَذًى ۙ لَّهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ
رَبِّهِمْ ۚ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿٢٦٢﴾ قَوْلٌ
مَّعْرُوْفٌ وَّمَغْفِرَةٌ خَيْرٌ مِّنْ صَدَقَةٍ يَّتْبَعُهَآ اَذًى ۭ
وَاللّٰهُ غَنِيٌّ حَلِيْمٌ ﴿٢٦٣﴾ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تُبْطِلُوْا
صَدَقٰتِكُمْ بِالْمَنِّ وَالْاَذٰى ۙ كَالَّذِيْ يُنْفِقُ مَالَهٗ رِئَاۗءَ
النَّاسِ وَلَا يُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ۭ فَمَثَلُهٗ
كَمَثَلِ صَفْوَانٍ عَلَيْهِ تُرَابٌ فَاَصَابَهٗ وَابِلٌ فَتَرَكَهٗ
صَلْدًا ۭ لَا يَقْدِرُوْنَ عَلٰي شَيْءٍ مِّمَّا كَسَبُوْا ۭ وَاللّٰهُ لَا
يَهْدِي الْقَوْمَ الْكٰفِرِيْنَ ﴿٢٦٤﴾ وَمَثَلُ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ
اَمْوَالَهُمُ ابْتِغَاۗءَ مَرْضَاتِ اللّٰهِ وَتَثْبِيْتًا مِّنْ
اَنْفُسِهِمْ كَمَثَلِ جَنَّةٍۢ بِرَبْوَةٍ اَصَابَهَا وَابِلٌ فَاٰتَتْ
اُكُلَهَا ضِعْفَيْنِ ۚ فَاِنْ لَّمْ يُصِبْهَا وَابِلٌ فَطَلٌّ ۭ وَاللّٰهُ بِمَا
تَعْمَلُوْنَ بَصِيْرٌ ﴿٢٦٥﴾ اَيَوَدُّ اَحَدُكُمْ اَنْ تَكُوْنَ لَهٗ جَنَّةٌ
مِّنْ نَّخِيْلٍ وَّاَعْنَابٍ تَجْرِيْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ۙ لَهٗ فِيْهَا

مِنْ كُلِّ الثَّمَرٰتِ ۙ وَاَصَابَهُ الْكِبَرُ وَلَهٗ ذُرِّيَّةٌ ضُعَفَآءُ ۚۖ
فَاَصَابَهَآ اِعْصَارٌ فِيْهِ نَارٌ فَاحْتَرَقَتْ ؕ كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ
اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ لَعَلَّكُمْ تَتَفَكَّرُوْنَ ﴿۲۶۶﴾ يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ
اٰمَنُوْۤا اَنْفِقُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا كَسَبْتُمْ وَمِمَّآ اَخْرَجْنَا
لَكُمْ مِّنَ الْاَرْضِ ۪ وَلَا تَيَمَّمُوا الْخَبِيْثَ مِنْهُ
تُنْفِقُوْنَ وَلَسْتُمْ بِاٰخِذِيْهِ اِلَّآ اَنْ تُغْمِضُوْا فِيْهِ ؕ
وَاعْلَمُوْۤا اَنَّ اللّٰهَ غَنِىٌّ حَمِيْدٌ ﴿۲۶۷﴾ اَلشَّيْطٰنُ يَعِدُكُمُ
الْفَقْرَ وَيَاْمُرُكُمْ بِالْفَحْشَآءِ ۚ وَاللّٰهُ يَعِدُكُمْ مَّغْفِرَةً
مِّنْهُ وَفَضْلًا ؕ وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ﴿۲۶۸﴾ ۙۖ يُّؤْتِى الْحِكْمَةَ مَنْ
يَّشَآءُ ۚ وَمَنْ يُّؤْتَ الْحِكْمَةَ فَقَدْ اُوْتِىَ خَيْرًا كَثِيْرًا ؕ وَمَا
يَذَّكَّرُ اِلَّآ اُولُوا الْاَلْبَابِ ﴿۲۶۹﴾ وَمَآ اَنْفَقْتُمْ مِّنْ نَّفَقَةٍ
اَوْ نَذَرْتُمْ مِّنْ نَّذْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُهٗ ؕ وَمَا لِلظّٰلِمِيْنَ مِنْ
اَنْصَارٍ ﴿۲۷۰﴾ اِنْ تُبْدُوا الصَّدَقٰتِ فَنِعِمَّا هِىَ ۚ وَاِنْ
تُخْفُوْهَا وَتُؤْتُوْهَا الْفُقَرَآءَ فَهُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ ؕ وَيُكَفِّرُ
عَنْكُمْ مِّنْ سَيِّاٰتِكُمْ ؕ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ خَبِيْرٌ ﴿۲۷۱﴾

لَيۡسَ عَلَيۡكَ هُدٰىهُمۡ وَلٰـكِنَّ اللّٰهَ يَهۡدِىۡ مَنۡ يَّشَآءُ ‌ؕ
وَمَا تُنۡفِقُوۡا مِنۡ خَيۡرٍ فَلِاَنۡفُسِكُمۡ‌ؕ وَمَا تُنۡفِقُوۡنَ اِلَّا
ابۡتِغَآءَ وَجۡهِ اللّٰهِ‌ؕ وَمَا تُنۡفِقُوۡا مِنۡ خَيۡرٍ يُّوَفَّ اِلَيۡكُمۡ
وَاَنۡتُمۡ لَا تُظۡلَمُوۡنَ ﴿۲۷۲﴾ لِلۡفُقَرَآءِ الَّذِيۡنَ اُحۡصِرُوۡا فِىۡ
سَبِيۡلِ اللّٰهِ لَا يَسۡتَطِيۡعُوۡنَ ضَرۡبًا فِى الۡاَرۡضِ
يَحۡسَبُهُمُ الۡجَاهِلُ اَغۡنِيَآءَ مِنَ التَّعَفُّفِ‌ۚ تَعۡرِفُهُمۡ
بِسِيۡمٰهُمۡ‌ۚ لَا يَسۡـئَلُوۡنَ النَّاسَ اِلۡحَافًا ‌ؕ وَمَا تُنۡفِقُوۡا
مِنۡ خَيۡرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيۡمٌ ﴿۲۷۳﴾

अब जो दो रुकूअ आ रहे हैं, इनका मौज़ू इन्फ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह है, और इस मौज़ू पर ये क़ुरान मजीद का ज़रवा-ए-सनाम (climax) है। इनके मुताअले से पहले यह बात नोट कर लीजिये कि अल्लाह तआला की रज़ा जोई के लिये अपना माल खर्च करने के लिये दीन में कई इस्तलाहात हैं। सबसे पहली "اِطعامُ الطَّعام" (खाना खिलाना) है: {وَيُطۡعِمُوۡنَ الطَّعَامَ عَلٰى حُبِّهٖ مِسۡكِيۡنًا وَّيَتِيۡمًا وَّاَسِيۡرًا} (अद दहर:8) दूसरी इस्तलाह ईताये माल है: (सूरतुल बक़रह:177) {وَاٰتَى الۡمَالَ عَلٰى حُبِّهٖ ذَوِى الۡقُرۡبٰى وَالۡيَتٰمٰى وَالۡمَسٰكِيۡنَ وَابۡنَ السَّبِيۡلِ} फिर इससे आगे सदक़ा, ज़कात,

इन्फ़ाक़ और क़र्ज़े हस्ना जैसी इस्तलाहात आती हैं। ये पाँच-छ: इस्तलाहात (terms) हैं, लेकिन इनके अन्दर एक तक़सीम ज़हन में रखिये। अल्लाह तआला की रज़ा जोई के लिये माल खर्च करने की दो बड़ी-बड़ी मदें हैं। एक मद अब्नाये नौ पर खर्च करने की है। यानि क़राबतदार, गुरबा, यतामा, मसाकीन, मोहताज और बेवाओं पर खर्च करना। यह आपके मआशरे के अज्ज़ाअ (हिस्से) हैं, आपके भाई-बन्द हैं, आपके अज़ीज़ व अक़रबाअ हैं। इनके लिये खर्च करना भी अल्लाह तआला को बहुत पसंद है और इसका अजर मिलेगा। यह भी गोया आपने अल्लाह तआला ही के लिये खर्च किया। जबकि दूसरी मद है ऐन अल्लाह के दीन के लिये खर्च करना।

क़ुरान हकीम में इन्फ़ाक़ और क़र्ज़े हस्ना की इस्तलाहें इस दूसरी मद के लिये आती हैं और पहली मद के लिये इतआमुल तआम, ईताये माल, सदक़ा व खैरात और ज़कात की इस्तलाहात हैं। चुनाँचे इन्फ़ाक़े माल या इन्फ़ाक़े फ़ी सबीलिल्लाह से मुराद है अल्लाह की राह में खर्च करना, अल्लाह के दीन की दावत को आम करने और अल्लाह की किताब के पैगाम को आम करने के लिये खर्च करना। अल्लाह के दीन की दावत को इस तरह उभारना कि बातिल के साथ ज़ोर आज़माई करने वाली एक ताक़त पैदा हो जाये, एक जमाअत वुजूद में आये। इस जमाअत के लिये साज़ो-सामान फ़राहम करना ताकि ग़लबा-ए-दीन के हर मरहले के जो तक़ाज़े और ज़रूरतें हैं वह पूरी हो सकें, इस काम में जो माल सर्फ़ (खर्च) होगा वह है इन्फ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह या अल्लाह के ज़िम्मे क़र्ज़े हस्ना। तो यहाँ असल में इस इन्फ़ाक़

की बात हो रही है। आम तौर पर फ़ी सबीलिल्लाह का मफ़हूम बहुत आम समझ लिया जाता है और पानी की कोई "सबील (प्याऊ)" बना कर उसे भी "फ़ी सबीलिल्लाह" क़रार दे दिया जाता है। ठीक है, वह भी सबील तो है, नेकी का वह भी रास्ता है, सबील अल्लाह है, लेकिन "इन्फ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह" का मफ़हूम बिल्कुल और है। फ़ुक़रा व मसाकीन और अहले हाजत के लिये सदक़ात व खैरात हैं। ज़कात भी असलन गरीबों का हक़ है, लेकिन उसमें भी एक मद "फ़ी सबीलिल्लाह" की रखी गयी है। अगर आपके अज़ीज़ व अक़ारब और क़ुर्ब व जवार में अहले हाजत हैं, गुरबा हैं तो सदक़ा व ज़कात में उनका हक़ फ़ाइक़ है, पहले उनको दीजिये। इसके बाद उसमें से जो भी है वह दीन के काम के लिये लगाइये। जब दीन यतीमी की हालत को आ गया हो तो सबसे बड़ा यतीम दीन है। और आज वाक़िअतन दीन की यही हालत है। अब हम इन आयात का मुताअला करते हैं:

आयत 261

مَثَلُ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ كَمَثَلِ حَبَّةٍ اَنْۢبَتَتْ

"मिसाल उनकी जो अपने माल अल्लाह की राह में (अल्लाह के दीन के लिये) खर्च करते हैं ऐसे है जैसे एक दाना कि उससे सात बालियाँ (खोशे) पैदा हों और हर बाली में सौ दाने हों।"

سَبۡعَ سَنَابِلَ فِیۡ کُلِّ
سُنۡۢبُلَۃٍ مِّائَۃُ حَبَّۃٍ ؕ

इस तरह एक दाने से सात सौ दाने वजूद में आ गये। यह उस इज़ाफ़े की मिसाल है जो अल्लाह की राह में खर्च किये हुए माल के अज्रो सवाब में होगा। जो कोई भी अल्लाह के दीन के लिये अपना माल खर्च करेगा अल्लाह तआला उसके माल में इज़ाफ़ा करेगा, उसको जज़ा देगा और अपने यहाँ उस अज्रो सवाब को बढ़ाता रहेगा।

وَاللّٰہُ یُضٰعِفُ لِمَنۡ یَّشَآءُ ؕ

"अल्लाह जिसको चाहता है अफ्ज़ोनी (वृधि) अता फ़रमाता है।"

ये सात सौ गुना इज़ाफ़ा तो तुम्हें तम्सीलन बताया है, अल्लाह इससे भी ज़्यादा इज़ाफ़ा करेगा जिसके लिये चाहेगा। सिर्फ सात सौ गुना नहीं, और भी जितना चाहेगा बढ़ाता चला जायेगा।

وَاللّٰہُ وَاسِعٌ عَلِیۡمٌ ﴿۲۶۱﴾

"और अल्लाह बड़ी वुसअत वाला और सब कुछ जानने वाला है।"

उसके खज़ानों में कोई कमी नहीं और उसका इल्म हर शय को मुहीत है।

आयत 262

اَلَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ فِيْ سَبِيْلِ اللّٰهِ

“जो लोग अपने माल खर्च करते हैं अल्लाह की राह मे”

ثُمَّ لَا يُتْبِعُوْنَ مَآ اَنْفَقُوْا مَنًّا وَّلَآ اَذًى ۙ

“फिर जो कुछ वह खर्च करते हैं उसके बाद ना तो अहसान जताते हैं और ना तकलीफ़ पहुँचाते हैं”

उनका तर्ज़े अमल यह नहीं होता कि देखिये जी, मैंने उस वक़्त इतना चंदा दिया था, मालूम हुआ कि मेरा हक़ ज़्यादा है, हम चंदे ज़्यादा देते हैं तो फिर बात भी तो हमारी मानी जानी चाहिये! या अगर कोई शख्स अल्लाह के दीन के काम में लगा हुआ है और आप उसके साथ तआवुन कर रहे हैं ताकि वह फ़िक्रे मआश से आज़ाद होकर अपना पूरा वक़्त दीन की ख़िदमत में लगाये, लेकिन अगर कहीं आपने उसको जता भी दिया, उस पर अहसान भी रख दिया, कोई तकलीफ़देह कलमा भी कह दिया, कोई दिल आज़ारी की बात कह दी तो आपका जो अज्रो सवाब था वह सिफ़र (ज़ीरो) हो जायेगा।

لَّهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ۝٢٦٢

“उनका अज्र उनके रब के पास महफ़ूज़ है। और ना तो उनके लिये कोई खौफ़ होगा और ना ही वह किसी रन्ज व ग़म से दो चार होंगे।”

आयत 263

قَوْلٌ مَّعْرُوْفٌ وَّمَغْفِرَةٌ

"भली बात कहना और दरगुज़र करना"

خَيْرٌ مِّنْ صَدَقَةٍ يَّتْبَعُهَآ اَذًى ۭ

"बेहतर है उस खैरात से जिसके बाद अज़ियत पहुँचाई जाये।"

अगर आपके पास कोई ज़रूरतमंद आ गया है, किसी ने हाथ फैला दिया है तो अगर आप उसकी मदद नहीं कर सकते तो दिलदारी का एक कलमा कह दीजिये, नरमी के साथ जवाब दे दीजिये, मआज़रत कर लीजिये। या अगर किसी साइल ने आपके साथ दरश्त (भद्दा) रवैय्या इख़्तियार किया है तो फिर भी उसे डाँटीये नहीं: {وَاَمَّا السَّاۗىِٕلَ فَلَا تَنْهَرْ} (अददुहा:10) बल्कि दरगुज़र से काम लीजिये। ये तर्ज़े अमल उससे कहीं बेहतर है कि ज़रूरतमंद को कुछ दे तो दिया लेकिन उसके बाद उसे दो-चार जुम्ले भी सुना दिये, उसकी दिल आज़ारी भी कर दी। तो उसका कोई फ़ायदा नहीं होगा।

وَاللّٰهُ غَنِىٌّ حَلِيْمٌ ۝٢٦٣

"अल्लाह तआला गनी है और हलीम है।"

वह बेनियाज़ भी है और बुर्दबार भी। अगर तुम किसी को कुछ दे रहे हो तो असल में अल्लाह को दे रहे हो। इस ज़िमन में एक हदीसे क़ुदसी में बड़ी वज़ाहत आयी है। हज़रत अबु

हुरैरा रज़ि० रिवायत करते हैं कि रसूल अल्लाह صلى الله عليه وسلم ने इरशाद फ़रमाया:

> *"क़यामत के दिन अल्लाह अज्ज़ व जल्ल फ़रमाएगा: ऐ आदम के बेटे! मैं बीमार हुआ तूने मेरी तीमारदारी नहीं की। वह कहेगा: ऐ परवरदिगार! मैं तेरी तीमारदारी कैसे करता जबकि तू रब्बुल आलामीन है? अल्लाह तआला फ़रमाएगा: क्या तू नहीं जानता कि मेरा फलां बंदा बीमार हुआ और तूने उसकी तीमारदारी नहीं की? क्या तू नहीं जानता कि अगर तू उसकी तीमारदारी करता तो मुझे उसके पास मौजूद पाता! ऐ आदम के बेटे मैंने तुझसे खाना माँगा था, तूने मुझे खाना नहीं खिलाया। वह कहेगा: ऐ मेरे रब! मैं तुझको खाना कैसे खिलाता जबकि तू रब्बुल आलामीन है? अल्लाह तआला फरमाएगा: क्या तू नहीं जानता कि तुझसे मेरे फलां बन्दे ने खाना माँगा था, तूने उसको खाना नहीं खिलाया? क्या तू नहीं जानता कि अगर तू उसे खाना खिलाता तो उस खाने को मेरे पास मौजूद पाता! ऐ आदम के बेटे! मैंने तुझसे पानी माँगा था, तूने मुझे पानी नहीं पिलाया। वह कहेगा: परवरदिगार! मैं तुझको कैसे पानी पिलाता जबकि तू तो रब्बुल आलामीन है? अल्लाह तआला फ़रमाएगा: तुझसे मेरे फलां बन्दे ने पानी माँगा था, तूने उसको पानी नहीं पिलाया था, क्या ऐसा नहीं है कि अगर तू उसको पानी पिला देता तो अपने उस अमल को मेरे पास मौजूद पाता!"*[34]

चुनाँचे याद रखो कि जो कुछ तुम किसी ज़रूरतमन्द को दे रहे हो वह दरहक़ीक़त अल्लाह को दे रहे हो, जो गनी है, जिसने तुम्हें सब कुछ अता किया है। और तुम्हारे तर्ज़े अमल के बावजूद भी अगर वह तुमसे दरगुज़र कर रहा है तो उसकी वजह यह है कि वह हलीम है, बुर्दबार है। अगर तुम अपने दिल से उतरी हुई शय अल्लाह के नाम पर देते हो, कोई बेकार और रद्दी चीज़ अल्लाह के नाम पर दे देते हो तो अल्लाह तआला की गैरत अगर उसी वक़्त जोश में आ जाये तो तुम्हें हर नेअमत से महरूम कर दे। वह चाहे तो ऐसा कर सकता है, लेकिन नहीं करता, इसलिये कि वह हलीम है।

आयत 264

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا لَا تُبْطِلُوْا صَدَقٰتِكُمْ بِالْمَنِّ وَالْاَذٰى ۙ

"ऐ अहले ईमान! अपने सदक़ात को बातिल ना कर लो अहसान जतला कर और कोई अज़ीयत बख्श बात कह कर"

كَالَّذِىْ يُنْفِقُ مَالَهٗ رِئَآءَ النَّاسِ

"उस शख्स की तरह जो अपना माल खर्च करता है लोगों को दिखाने के लिये"

अगरचे अपना माल खर्च कर रहा है, लोगों को सदक़ात दे रहा है, बड़े-बड़े खैराती इदारे क़ायम कर दिये हैं, लेकिन यह सब कुछ रियाकारी के लिये, सरकार दरबार में रसाई के लिये, कुछ अपने टैक्स बचाने के लिये और कुछ अपनी

नामवरी के लिये है। यह सारे काम जो होते हैं अल्लाह जानता है कि इनमें किसकी कियानियत है।

وَلَا يُؤْمِنُ بِاللّٰهِ وَالْيَوْمِ الْاٰخِرِ ؕ

"और वह ईमान नहीं रखता अल्लाह और यौमे आख़िरत पर।"

जो कोई रियाकारी कर रहा है वह हक़ीक़त में अल्लाह पर और यौमे आख़िरत पर ईमान नहीं रखता। रिया और ईमान एक-दूसरे की ज़िद हैं, जैसा कि यह हदीस हम मुतअद्दिद पढ़ चुके हैं:

مَنْ صَلّٰى يُرَائِيْ فَقَدْ اَشْرَكَ، وَمَنْ صَامَ يُرَائِيْ فَقَدْ اَشْرَكَ وَمَنْ تَصَدَّقَ يُرَائِيْ فَقَدْ اَشْرَكَ

"जिसने दिखावे के लिये नमाज़ पढ़ी उसने शिर्क किया, जिसने दिखावे के लिये रोज़ा रखा उसने शिर्क किया और जिसने दिखावे के लिये लोगों को सदक़ा व खैरात दिया उसने शिर्क किया।"(35)

فَمَثَلُهٗ كَمَثَلِ صَفْوَانٍ عَلَيْهِ تُرَابٌ

"तो उसकी मिसाल उस चट्टान की सी है जिस पर कुछ मिट्टी (जम गई) हो"

अगर किस चट्टान पर मिट्टी की थोड़ी सी तह जम गई हो और वहाँ आपने कुछ बीज डाल दिये हों तो हो सकता है कि वहाँ कोई फसल भी उग आये, लेकिन वह इन्तहाई नापायदार होगी।

فَاَصَابَهٗ وَابِلٌ فَتَرَكَهٗ صَلۡدًا ؕ

"फिर उस पर ज़ोरदार बारिश पड़े तो वह उसको बिल्कुल साफ़ पत्थर छोड़ दे।"

बारिश के एक ही ज़ोरदार छींटे में चट्टान के ऊपर जमी हुई मिट्टी की तह भी बह गई, आपकी मेहनत भी ज़ाया हो गई, आपका बीज भी अकारत (व्यर्थ) गया और आपकी फ़सल भी गई। बारिश से धुल कर वह चट्टान अन्दर से बिल्कुल साफ़ और चटियल निकल आई। यानि सब कुछ गया और कुछ हासिल ना हुआ। इसका मतलब यह है कि रियाकारी का यही अंजाम होता है कि हाथ से माल भी दिया और हासिल कुछ ना हुआ। अल्लाह के यहाँ किसी अज्रो सवाब का सवाल ही नहीं।

لَا يَقۡدِرُوۡنَ عَلٰى شَىۡءٍ مِّمَّا كَسَبُوۡا ؕ

"उनकी कमाई में से कुछ भी उनके हाथ नहीं आयेगा।"

ऐसे लोग अपने तै सदक़ा व ख़ैरात करके जो नेकी कमाते हैं उसमें से कुछ भी उनके हाथ नहीं आता।

وَاللّٰهُ لَا يَهۡدِى الۡقَوۡمَ الۡكٰفِرِيۡنَ ﴿۲۶۴﴾

"और अल्लाह तआला ऐसे काफ़िरों को राहयाब नहीं करता।"

वह नाशुक्रों और मुन्करीने नेअमत को सीधी राह नहीं दिखाता और उन्हें बामुराद नहीं करता।

अगली आयत में फौरी ताक़बुल (simultaneous contrast) के तौर पर उन लोगों के लिये भी मिसाल बयान की जा रही है जो वाक़िअतन अल्लाह तआला से अज्रो सवाब की उम्मीद रखते हुए ख़ुलूस व इख्लास से खर्च करते हैं।

आयत 265

وَمَثَلُ الَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمُ ابْتِغَآءَ مَرْضَاتِ اللّٰهِ

"और मिसाल उन लोगों की जो खर्च करते हैं अपने माल अल्लाह की रज़ाजोई के लिये"

وَتَثْبِيْتًا مِّنْ اَنْفُسِهِمْ

"और अपने दिलों को जमाये रखने के लिये"

كَمَثَلِ جَنَّةٍۢ بِرَبْوَةٍ

"उस बाग़ की मानिंद है जो बुलंदी पर वाक़ेअ हो"

जैसा कि मैं अर्ज़ कर चुका हूँ कि क़ुदरती बाग़ का यही तसव्वुर होता था कि ज़रा ऊँचाई पर वाक़ेअ है, उसके दामन में कोई नदी बह रही है जिससे खुद-ब-खुद आब पाशी हो रही है और वह सेराब हो रहा है।

[क़ादयानियों ने इसी लफ्ज़ "ربوہ" के नाम पर पाकिस्तान में अपना शहर बनाया।]

اَصَابَهَا وَابِلٌ	*"अब अगर उस बाग़ के ऊपर ज़ोरदार बारिश बरसे"*
فَاٰتَتۡ اُكُلَهَا ضِعۡفَيۡنِ ۚ	*"तो दोगुना फ़ल लाये।"*
فَاِنۡ لَّمۡ يُصِبۡهَا وَابِلٌ فَطَلٌّ ؕ	*"और अगर ज़ोरदार बारिश ना भी बरसे तो हल्की सी फुहार (ही उसके लिये काफी हो जाये)।"*
وَاللّٰهُ بِمَا تَعۡمَلُوۡنَ بَصِيۡرٌ ۝٢٦٥	*"और जो कुछ तुम कर रहे हो, अल्लाह तआला उसको देख रहा है।"*

लिहाज़ा तुम दरूं बीनी (intro spection) करते रहा करो कि तुम जो यह माल खर्च कर रहे हो वाक़िअतन खुलूसे दिल और इख्लासे नीयत के साथ अल्लाह ही के लिये कर रहे हो। कहीं गैर-शऊरी तौर पर तुम्हारा कोई और जज़्बा इसमें शामिल ना हो जाये। चुनाँचे अपने गिरेबानों में झाँकते रहो।

आयत 266

اَيَوَدُّ اَحَدُكُمۡ اَنۡ تَكُوۡنَ لَهٗ جَنَّةٌ مِّنۡ	*"क्या तुममें से कोई कोई यह पसंद करेगा कि उसके पास खजूरों और अंगूरों का एक बाग़ हो, जिसके दामन में नदियाँ बहती हों"*

نَّخِيْلٍ وَّاَعْنَابٍ تَجْرِىْ مِنْ تَحْتِهَا الْاَنْهٰرُ ۙ

अहले अरब के नज़दीक यह एक आईडियल बाग़ का नक्शा है, जिसमें ख़जूर के दरख़्त भी हो और अंगूरों की बेलें भी हो, फिर उसमें आबपाशी का क़ुदरती इंतेज़ाम हो।

لَهٗ فِيْهَا مِنْ كُلِّ الثَّمَرٰتِ ۙ

"उसके लिये उस बाग़ में हर तरह के फ़ल हों"

وَاَصَابَهُ الْكِبَرُ وَلَهٗ ذُرِّيَّةٌ ضُعَفَاۗءُ ڮ

"और उस पर बुढ़ापा तारी हो जाये जबकि उसकी औलाद भी नातवां (कमज़ोर) हो।"

فَاَصَابَهَآ اِعْصَارٌ فِيْهِ نَارٌ فَاحْتَرَقَتْ ۭ

"और ऐन उस वक़्त उस बाग़ पर एक ऐसा बगुला फिर जाये जिसमें आग हो और वह बाग़ झुलस कर रह जाये?"

यानि एक इन्सान सारी उम्र यह समझता रहा कि मैंने तो नेकियों के अम्बार लगाये हैं, मैंने खैराती इदारे क़ायम किये, मैंने फाउंडेशन बनाई, मैंने मदरसा क़ायम किया, मैंने यतीमखाना बना दिया, लेकिन जब उसका नामाये आमाल पेश होगा तो अचानक उसे मालूम होगा कि यह तो कुछ भी ना था। *"जब आँख खुली गुल की तो मौसम था खज़ा का!"* बस बादे मौसम का एक बगुला आया और सब कुछ जला

गया। इसलिये कि उसमें इख्लास था ही नहीं, नीयत में खोट था, उसमें रियाकारी थी, लोगों को दिखाना मक़सूद था। फिर उसका हाल वही होगा जिस तरह कि वह बूढ़ा अब कफ़े अफ़सोस (अफ़सोस में हाथ) मल रहा है जिसका बाग़ जल कर ख़ाक हो गया और उसके कमसिन बच्चे अभी किसी लायक़ नहीं। वह खुद बूढ़ा हो चुका है और अब दोबारा बाग़ नहीं लगा सकता। उस शख्स की मोहलते उम्र भी ख़त्म हो चुकी होगी और सिवाय कफ़े अफ़सोस मलने के उसके पास कोई चारा ना होगा।

كَذٰلِكَ يُبَيِّنُ اللّٰهُ لَكُمُ الْاٰيٰتِ لَعَلَّكُمْ تَتَفَكَّرُوْنَ ۝٢٦٦

"इस तरह अल्लाह तआला अपनी आयात तुम्हारे लिये वाज़ेह करता है ताकि तुम गौर-ओ-फ़िक्र करो।"

आयत 267

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اَنْفِقُوْا مِنْ طَيِّبٰتِ مَا كَسَبْتُمْ

"ऐ ईमान वालो! अपने कमाये हुए पाकीज़ा माल में से खर्च करो।"

अल्लाह के दीन के लिये खर्च करना है, अल्लाह के नाम पर देना है तो जो कुछ तुमने कमाया है उसमें से अच्छी चीज़, पाकीज़ा चीज़, बेहतर चीज़ निकालो।

وَمِمَّآ اَخْرَجْنَا لَكُمْ مِّنَ الْاَرْضِ ۠

“और उसमें से खर्च करो जो कुछ हमने निकाला है तुम्हारे लिये ज़मीन से।”

ज़ाहिर बात है कि ज़मीन से जो भी नबातात बाहर आ रही हैं उनका पैदा करने वाला अल्लाह है। चाहे कोई चरागाह है तो उसके अन्दर जो हरियावल है वह अल्लाह ही ने पैदा की है। खेत के अन्दर आपने मेहनत की है, हल चलाया है, बीज डाले हैं, लेकिन फ़सल का उगाना तो आपके इख़्तियार में नहीं है, यह तो अल्लाह के हाथ में है। *“पालता है बीज को मिट्टी की तारीकी में कौन?”* चुनाँचे फ़रमाया कि जो कुछ हमने तुम्हारे लिये ज़मीन से निकाला है उसमें से हमारी राह में खर्च करो!

وَلَا تَيَمَّمُوا الْخَبِيْثَ مِنْهُ تُنْفِقُوْنَ

“और उसमें से रद्दी माल का इरादा ना करो कि उसे खर्च कर दो!”

ऐसा ना हो कि अल्लाह की राह में खर्च करने के लिये रद्दी और नाकारा माल छाँटने की कोशिश करने लगो। मसलन भेड़-बकरियों का गल्ला है, उसमें से तुम्हें ज़कात के लिये भेड़ें और बकरियाँ निकालनी हैं तो ऐसा हरगिज़ ना हो कि जो कमज़ोर हैं, ज़रा लागर (दुर्बल) हैं, बीमार हैं, नुक़्स वाली हैं उन्हें निकाल कर गिनती पूरी कर दो। इसी तरह उश्र निकालना है तो ऐसा ना करो कि गन्दुम के जिस हिस्से पर बारिश पड़ गई थी वह निकाल दो। तयम्मुम के मायने क़सद (नीयत) और इरादा करने के हैं।

وَلَسۡتُمۡ بِاٰخِذِيۡهِ اِلَّآ اَنۡ تُغۡمِضُوۡا فِيۡهِ‌ؕ

“और तुम हरगिज़ नहीं होगे उसको लेने वाले (अगर वह शय तुमको दी जाये) इल्ला यह कि चश्मपोशी कर जाओ।”

ऐसा भी तो हो सकता है कि तुम मोहताज हो जाओ और तुम्हें ज़रूरत पड़ जाये, फिर अगर तुम्हें कोई ऐसी चीज़ देगा तो तुम क़ुबूल नहीं करोगे, इल्ला यह कि चश्मपोशी (अनदेखा) करने पर मजबूर हो जाओ। एहतियाज उस दर्जे की हो कि नफ़ीस या खबीस जो शय भी मिल जाये चश्मपोशी करते हुए उसे क़ुबूल कर लो। वरना आदमी अपने तय्बे खातिर के साथ रद्दी शय क़ुबूल नहीं कर सकता।

وَاعۡلَمُوۡۤا اَنَّ اللّٰهَ غَنِىٌّ حَمِيۡدٌ ﴿۲۶۷﴾

“और खूब जान रखो कि अल्लाह तआला गनी है और हमीद है।”

यहाँ “गनी” का लफ्ज़ दोबारा आया है। यह ना समझो कि तुम किसी मोहताज और ज़रूरतमन्द को दे रहे हो, बल्कि यूँ समझो कि अल्लाह को दे रहे हो, जो गनी है, सबकी ज़रूरतें पूरी करने वाला है और हमीद है, यानि अपनी ज़ात में खुद महमूद है। एक तो किसी शय की अच्छाई या हुस्न या कमाल ऐसा होता है कि जिसे ज़ाहिर किया जाये कि भई देखो इसमें यह ख़ूबसूरती है। और एक वह ख़ूबसूरती होती है जो अज़ खुद ज़ाहिर हो। *“हाजते मुशाता नीस्त रूए दिल आराम रा!”* तो अल्लाह तआला इतना सतूदाह सिफ़ात (तारीफ़ के क़ाबिल) है कि वह अपनी ज़ात में अज़ खुद महमूद है, उसे किसी हम्द की हाजत नहीं है।

आयत 268

اَلشَّیۡطٰنُ یَعِدُکُمُ الۡفَقۡرَ وَیَاۡمُرُکُمۡ بِالۡفَحۡشَآءِ ۚ	*"शैतान तुम्हें फ़क्र का अन्देशा दिलाता है और बेहयाई के कामों की तरगीब देता है।"*
وَاللّٰہُ یَعِدُکُمۡ مَّغۡفِرَۃً مِّنۡہُ وَفَضۡلًا ؕ	*"और अल्लाह वादा कर रहा है तुमसे अपनी तरफ से मग़फ़िरत का और फ़ज़ल का।"*

अब देख लो तुम्हें कौनसा तर्ज़े अमल इख़्तियार करना है:

रुख-ए-रोशन के आगे शमा रख कर वह यह कहते हैं
उधर जाता है देखें या इधर परवाना आता है!

शैतान तुम्हें अल्लाह की राह में खर्च करने से रोकता है कि इस तरह तुम्हारा माल कम हो जायेगा और तुम फ़क्रो फ़ाक़ा में मुब्तला हो जाओगे। अब अगर वाक़ई तुम यह खौफ़ रखते हो कि कहीं ऐसा ना हो कि मुझ पर फ़क्र आ जाये, लिहाज़ा मुझे अपना माल सम्भाल-सम्भाल कर, सेंत-सेंत कर रखना चाहिये तो तुम शैतान के जाल में फँस चुके हो, तुम उसकी पैरवी कर रहे हो। और अगर तुमने अपना माल अल्लाह की राह में खर्च कर दिया अल्लाह पर ऐतमाद करते हुए कि वह मेरी सारी हाजतें आज भी पूरी कर रहा है, कल भी पूरी करेगा (इन्शा अल्लाह) तो अल्लाह की तरफ़ से मग़फ़िरत और फ़ज़ल का वादा पूरा होकर रहेगा।

وَاللّٰهُ وَاسِعٌ عَلِيْمٌ ﴿٢٦٨﴾

"और अल्लाह बहुत वुसअत वाला है, सब कुछ जानने वाला है।"

तुम उसके खज़ानों की महदूदियत का कोई तसव्वुर अपने ज़हन में ना रखो।

आयत 269

يُّؤْتِي الْحِكْمَةَ مَنْ يَّشَآءُ

"वह जिसको चाहता है हिकमत अता करता है।"

ये हिकमत की बातें हैं, जिनका समझना हर किस व नाकिस के लिये मुमकिन नहीं। एक चीज़ों का ज़ाहिर है और एक बातिन है, जो हिकमत से नज़र आता है। ज़ाहिर तो सबको नज़र आ रहा है, लेकिन किसी शय की हक़ीक़त क्या है, यह बहुत कम लोगों को मालूम है:

ऐ अहले नज़र! ज़ोके नज़र खूब है लेकिन
जो शय की हक़ीक़त को ना देखे वह नज़र क्या?

जिस किसी पर यह हक़ीक़त अयाँ (उजागर) हो जाती है वह हकीम है। और हिकमत असल में इन्सान की अक़्ल और शऊर की पुख्तगी का नाम है। इस्तेहकाम इसी "हिकमत" से ही बना है। अल्लाह तआला अक़्ल व फ़हम और शऊर की यह पुख्तगी और हक़ाइक़ तक पहुँच जाने की सलाहियत जिसको चाहता है अता फ़रमाता है।

وَمَنْ يُّؤْتَ الْحِكْمَةَ فَقَدْ اُوْتِيَ خَيْرًا كَثِيْرًا ؕ

"और जिसे हिकमत दे दी गयी उसे तो खैरे कसीर अता हो गया।"

इससे बड़ा खैर का खज़ाना तो और कोई है ही नहीं।

وَمَا يَذَّكَّرُ اِلَّآ اُولُوا الْاَلْبَابِ ۝۲۶۹

"और नहीं नसीहत हासिल कर सकते मगर वही लोग जो होशमंद हैं।"

इन बातों से सिर्फ़ वही लोग सबक़ लेते हैं जो ऊलुल अल्बाब हैं, अक़्लमंद हैं। लेकिन जो दुनिया पर रीझ गये हैं, जिनका सारा दिली इत्मिनान अपने माल व ज़र, जायदाद, असासाजात (संपत्ति) और बैंक बैलेंस पर है तो ज़ाहिर बात है कि वह ऊलुल अल्बाब (अक़्लमंद) नहीं हैं।

आयत 270

وَمَآ اَنْفَقْتُمْ مِّنْ نَّفَقَةٍ اَوْ نَذَرْتُمْ مِّنْ نَّذْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ يَعْلَمُهٗ ؕ

"और जो कुछ भी तुम खर्च करते हो (सदक़ा व खैरात देते हो) या जो भी तुम (अल्लाह के नाम पर) मन्नत मानते हो, तो यक़ीनन अल्लाह तआला उस सबको जानता है।"

وَمَا لِلظّٰلِمِيْنَ مِنْ اَنْصَارٍ ﴿٢٧٠﴾

"और (याद रखो कि) ज़ालिमों का कोई मददगार नहीं होगा।"

आयत 271

اِنْ تُبْدُوا الصَّدَقٰتِ فَنِعِمَّا هِيَ ۚ

"अगर तुम सदक़ात को ऐलानिया दो तो यह भी अच्छा है।"

ख़ासतौर पर ज़कात का मामला तो ऐलानिया ही है। तो अगर तुम अपने सदक़ात ज़ाहिर करके दो तो यह भी ठीक है। इसलिये कि कम से कम फ़ुक़रा का हक़ तो अदा हो गया, किसी की ज़रूरत को पूरी हो गई।

وَاِنْ تُخْفُوْهَا وَتُؤْتُوْهَا الْفُقَرَاۗءَ فَهُوَ خَيْرٌ لَّكُمْ ۭ

"और अगर तुम उन्हें छुपाओ और चुपके से ज़रूरतमंदों को दे दो तो यह तुम्हारे लिये बेहतर है।"

याद रहे कि यह बात सदक़ाते नाफ़िला के लिये है। लेकिन जो सदक़ाते वाजिबा हैं, जो लाज़िमन देने हैं, ज़कात और उश्र, उनके लिये अख्फ़ा नहीं है। यह दीन की हिकमत है, इसको ज़हन में रखिये कि फ़र्ज़ इबादात ऐलानिया अदा की जायेंगी। यह वस्वसा भी शैतान बहुत सों के दिलों में डाल देता है कि क्या पाँच वक़्त मस्जिद में जाकर नमाज़ पढ़ने से लोगों पर अपने तक़वे का रौब डालना चाहते हो? घर में पढ़ लिया करो! या दाढ़ी इसलिये रखोगे कि लोग तुम्हें

समझें कि बड़ा मुत्तक़ी है? ऐसे वसावसे शैतानी को कोई अहमियत नहीं देनी चाहिये और जो चीज़ फ़र्ज़ व वाजिब है, वह अलल ऐलान करनी चाहिये, उसके इज़हार में कोई रुकावट नहीं आनी चाहिये। हाँ जो नफ्ली इबादात हैं, सदक़ाते नाफ़िला हैं या नफ्ल नमाज़ है उसे छुपा कर करना चाहिये। नफ्ल इबादत का इज़हार बहुत बड़ा फ़ितना है। लिहाज़ा फ़रमाया कि अगर तुम अपने सदक़ात छुपा कर चुपके से ज़रूरतमंदों को दे दो तो वह तुम्हारे लिये बहुत बेहतर है।

وَيُكَفِّرُ عَنۡكُمۡ مِّنۡ سَيِّاٰتِكُمۡ‌ؕ

"और अल्लाह तआला तुमसे तुम्हारी बुराईयों को दूर कर देगा।"

وَاللّٰهُ بِمَا تَعۡمَلُوۡنَ خَبِيۡرٌ ﴿۲۷۱﴾

"और जो कुछ तुम कर रहे हो अल्लाह तआला उससे बाख़बर है।"

आयत 272

لَيۡسَ عَلَيۡكَ هُدٰٮهُمۡ

"(ऐ नबी ﷺ!) आपके ज़िम्मे नहीं है कि उनको हिदायत दे दें"

उनको हिदायत देने की ज़िम्मेदारी आप पर नहीं है, आप ﷺ पर ज़िम्मेदारी तब्लीग की है। हमने आपको बशीर और नज़ीर बना कर भेजा है।

وَلٰكِنَّ اللّٰهَ يَهۡدِىۡ مَنۡ يَّشَآءُ ؕ

"बल्कि अल्लाह तआला ही हिदायत देता है जिसको चाहता है।"

وَمَا تُنۡفِقُوۡا مِنۡ خَيۡرٍ فَلِاَنۡفُسِكُمۡ ؕ

"और जो भी माल तुम खर्च करोगे वह तुम्हारे अपने लिये बेहतर है।"

उसका अज्रो सवाब बढ़ा-चढ़ा कर तुम्ही को दिया जायेगा, सात सौ गुना, चौदह सौ गुना या उससे भी ज़्यादा।

وَمَا تُنۡفِقُوۡنَ اِلَّا ابۡتِغَآءَ وَجۡهِ اللّٰهِ ؕ

"और तुम नहीं खर्च करोगे मगर अल्लाह की रज़ाजोई के लिये।"

तभी तुम्हें इस क़दर अज्र मिलेगा। अगर रियाकाराना खर्च किया था तो अज्र का क्या सवाल? वह तो शिर्क बन जायेगा।

وَمَا تُنۡفِقُوۡا مِنۡ خَيۡرٍ يُّوَفَّ اِلَيۡكُمۡ وَاَنۡتُمۡ لَا تُظۡلَمُوۡنَ ﴿۲۷۲﴾

"और जो भी माल तुम खर्च करोगे वह पूरा-पूरा तुम्हें लौटा दिया जायेगा और तुम पर कोई ज़ुल्म नहीं होगा।"

तुम्हारी ज़रा भी हक़ तल्फी नहीं की जायेगी।

अब वाज़ेह किया जा रहा है कि इन्फ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह का सबसे बढ़ कर हक़दार कौन है।

आयत 273

لِلۡفُقَرَآءِ الَّذِيۡنَ اُحۡصِرُوۡا فِىۡ سَبِيۡلِ اللّٰهِ

"यह उन ज़रूरतमंदों के लिये है जो घिर कर रह गये हैं अल्लाह की राह में"

जैसे रसूल अल्लाह ﷺ के दौर में असहाबे सुफ्फ़ा थे कि मस्जिदे नबवी ﷺ में आकर बैठे हुए हैं और अपना वक़्त तलाशे मआश में सर्फ़ नहीं कर रहे, आँहुज़ूर ﷺ से इल्म सीख रहे हैं और जहाँ-जहाँ से मुतालबा आ रहा है कि मुअल्लिमीन और मुबल्लिगीन की ज़रूरत है वहाँ उनको भेजा जा रहा है। अगर वह मआश की जद्दो-जहद करते तो यह तालीम कैसे हासिल करते? इसी तरह दीन की किसी ख़िदमत के लिये कुछ लोग अपने आप को वक़्फ़ कर देते हैं तो वह उसका मिस्दाक़ होंगे। आपने दीन की दावतो तब्लीग और नशरो इशाअत के लिये कोई तहरीक उठायी है तो उसमें कुछ ना कुछ हमावक़्ती कारकुन (हर वक़्त तैयार रहने वाले कार्यकर्त्ता) दरकार होंगे। उन कारकुनों की मआश का मसला होगा। वह आठ-आठ घंटे दफ्तरों में जाकर काम करें और वहाँ अफसरों की डाँट-डपट भी सुनें, आने-जाने में भी दो-दो घंटे लगायें तो अब वह दीन के काम के लिये कौनसा वक़्त निकालेंगे और क्या काम करेंगे? लिहाज़ा कुछ लोग तो होने चाहिये जो इस काम में हमावक़्त लग जायें। लेकिन पेट तो उनके साथ भी हैं, औलाद तो उनकी भी होगी।

لَا يَسْتَطِيْعُوْنَ ضَرْبًا فِي الْاَرْضِ

"वह (अपने कसब मआश के लिये) ज़मीन में दौड़-धूप नहीं कर सकते।"

ज़मीन के अन्दर घूम-फिर कर तिजारत करने का उनके पास वक़्त ही नहीं है।

يَحْسَبُهُمُ الْجَاهِلُ اَغْنِيَاۤءَ مِنَ التَّعَفُّفِ

"नावाक़िफ आदमी उनको खुशहाल ख्याल करता है उनकी खुद्दारी के सबब।"

यह इस तरह के फ़क़ीर तो हैं नहीं जो लिपट कर माँगते हों। उनकी खुद्दारी की वजह से आम तौर पर जो नावाक़िफ शख्स है वह समझता है कि यह ग़नी हैं, खुशहाल हैं, इन्हें कोई ज़रूरत ही नहीं, इन्होंने कभी माँगा ही नहीं। लेकिन इसकी वजह यह है कि वह इस तरह के सवाली नहीं हैं, वह फ़क़ीर नहीं हैं, उन्होंने तो अल्लाह तआला के दीन के लिये अपने आप को लगा दिया है। यह तुम्हारा काम है कि उन्हें तलाश करो और उनकी ज़रूरियात पूरी करो।

تَعْرِفُهُمْ بِسِيْمٰهُمْ

"तुम पहचान लोगे उन्हें उनके चेहरों से।"

ज़ाहिर बात है कि फ़क्र व अहतियाज का असर चेहरे पर तो आ जाता है। अगर किसी को सही गिज़ा नहीं मिल रही है तो चेहरे पर उसका असर ज़ाहिर होगा।

لَا يَسْـَٔلُوْنَ النَّاسَ اِلْحَافًا ؕ

"वह लोगों से लिपट कर सवाल नहीं करते।"

वह उन साइलों की तरह नहीं हैं जो असल में अपनी मेहनत का सिला वसूल करते हैं कि आपके सर होकर आपसे ज़बरदस्ती कुछ ना कुछ निकलवा लेते हैं। यह बड़ा अहम मसला है कि अक़ामते दीन की जद्दो-जहद में जो लोग हमावक़्त लग जायें, आखिर उनके लिये ज़रिया-ए-मआश क्या हो? इस वक़्त इस पर तफ़सील से गुफ्तगू मुमकिन नहीं। बहरहाल यह समझ लीजिये कि ये दो रुकूअ इन्फ़ाक़ के मौज़ू पर क़ुरान हकीम का नुक़्ता-ए-उरूज हैं और यह आखरी आयत इनमें अहमतरीन है।

وَمَا تُنْفِقُوْا مِنْ خَيْرٍ فَاِنَّ اللّٰهَ بِهٖ عَلِيْمٌ ﴿٢٧٣﴾

"और जो माल भी तुम खर्च करोगे तो अल्लाह तआला उसको खूब जानता है।"

यह ना समझना कि तुम्हारा इन्फ़ाक़ अल्लाह के इल्म में नहीं है। तुम ख़ामोशी के साथ, इख्फ़ा के साथ लोगों के साथ तआवुन करोगे तो अल्लाह तआला तुम्हें इसका भरपूर बदला देगा।

आयात 274 से 281 तक

اَلَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ بِالَّيْلِ وَالنَّهَارِ سِرًّا
وَّعَلَانِيَةً فَلَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَلَا خَوْفٌ
عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿٢٧٤﴾ اَلَّذِيْنَ يَاْكُلُوْنَ الرِّبٰوا
لَا يَقُوْمُوْنَ اِلَّا كَمَا يَقُوْمُ الَّذِىْ يَتَخَبَّطُهُ الشَّيْطٰنُ
مِنَ الْمَسِّ ذٰلِكَ بِاَنَّهُمْ قَالُوْٓا اِنَّمَا الْبَيْعُ مِثْلُ
الرِّبٰوا ۘ وَاَحَلَّ اللّٰهُ الْبَيْعَ وَحَرَّمَ الرِّبٰوا ؕ فَمَنْ جَآءَهٗ
مَوْعِظَةٌ مِّنْ رَّبِّهٖ فَانْتَهٰى فَلَهٗ مَا سَلَفَ ؕ وَاَمْرُهٗٓ اِلَى
اللّٰهِ ؕ وَمَنْ عَادَ فَاُولٰٓئِكَ اَصْحٰبُ النَّارِ ۚ هُمْ فِيْهَا
خٰلِدُوْنَ ﴿٢٧٥﴾ يَمْحَقُ اللّٰهُ الرِّبٰوا وَيُرْبِى الصَّدَقٰتِ ؕ
وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ كُلَّ كَفَّارٍ اَثِيْمٍ ﴿٢٧٦﴾ اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا
وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ وَاَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتَوُا الزَّكٰوةَ
لَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا
هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿٢٧٧﴾ يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ
وَذَرُوْا مَا بَقِىَ مِنَ الرِّبٰٓوا اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ ﴿٢٧٨﴾ فَاِنْ
لَّمْ تَفْعَلُوْا فَاْذَنُوْا بِحَرْبٍ مِّنَ اللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ ۚ وَاِنْ

تُبْتُمْ فَلَكُمْ رُءُوْسُ اَمْوَالِكُمْ ۚ لَا تَظْلِمُوْنَ وَلَا
تُظْلَمُوْنَ ﴿٢٧٩﴾ وَاِنْ كَانَ ذُوْ عُسْرَةٍ فَنَظِرَةٌ اِلٰى
مَيْسَرَةٍ ۭ وَاَنْ تَصَدَّقُوْا خَيْرٌ لَّكُمْ اِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُوْنَ
﴿٢٨٠﴾ وَاتَّقُوْا يَوْمًا تُرْجَعُوْنَ فِيْهِ اِلَى اللّٰهِ ۤ ثُمَّ تُوَفّٰى كُلُّ
نَفْسٍ مَّا كَسَبَتْ وَهُمْ لَا يُظْلَمُوْنَ ﴿٢٨١﴾

अब हम इस सूरह मुबारका का जो रुकूअ पढ़ रहे हैं यह आज के हालात में अहमतरीन है। यह रुकूअ सूद की हुरमत और शनाअत (बुराई) पर क़ुरान हकीम का इन्तहाई अहम मक़ाम है। इस दौर में अल्लाह तआला के खिलाफ़ बग़ावत की सबसे बड़ी सूरत तो गैरुल्लाह की हाकिमियत का तसव्वुर है, जो सबसे बड़ा शिर्क है। अगरचे नफ्सियाती और दाखिली ऐतबार से सबसे बड़ा शिर्क माद्दे पर तवक्कुल है, लेकिन खारजी और वाक़ियाती दुनिया में इस वक़्त सबसे बड़ा शिर्क गैरुल्लाह की हाकिमियत है, जो अब "अवामी हाकिमियत" की शक्ल इख़्तियार कर गई है। इसके बाद इस वक़्त के गुनाहों और बदअम्ली में सबसे बड़ा फ़ितना और फ़साद सूद की बुनियाद पर है। इस वक़्त दुनिया में सबसे बड़ी शैतानियत जो यहूदियों के ज़रिये से पूरे क़ुर्रा-ए-अर्ज़ी को अपनी गिरफ्त में लेने के लिये बेताब है, वह यही सूद का हथकंडा है। यहाँ इसकी हुरमत दो टूक अन्दाज़ में बयान कर दी गई। इस मक़ाम पर मेरे ज़हन में कभी-कभी एक सवाल पैदा होता था कि इस रुकूअ की पहली आयत का ताल्लुक़

तो इन्फ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह से है, लिहाज़ा इसे पिछले रुकूअ के साथ शामिल होना चाहिये था, लेकिन बाद में ये हक़ीक़त मुझ पर मुन्कशिफ़ हुई कि इस आयत को बड़ी हिकमत के साथ इस रुकूअ के साथ शामिल किया गया है। वह हिकमत मैं बाद में बयान करूँगा।

आयत 274

اَلَّذِيْنَ يُنْفِقُوْنَ اَمْوَالَهُمْ بِالَّيْلِ وَالنَّهَارِ

"जो लोग अपना माल खर्च करते रहते हैं रात को भी और दिन में भी"

سِرًّا وَّعَلَانِيَةً

"ख़ुफ़िया तौर पर भी और ऐलानिया भी"

सदक़ाते वाजिबा ऐलानिया और सदक़ाते नाफ़िला ख़ुफ़िया तौर पर देते हैं।

فَلَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿۲۷۴﴾

"उनके लिये उनका अज्र (महफ़ूज़) है उनके रब के पास, ना तो उन पर कोई खौफ़ तारी होगा और ना ही वह किसी हुज़्न से दो-चार होंगे।"

इसके बरअक्स मामला उनका है जो सूद खाते हैं। वजह क्या है? असल मसला है "क़द्रे ज़ायद" (surplus value) का! आपका कोई शुगल है, कोई कारोबार है या मुलाज़मत है, आप कमा रहे हैं, उससे आपका खर्च पूरा हो रहा है, कुछ बचत भी हो रही है। अब इस बचत का असल मसरफ़ (उपयोग) क्या है? आयत 219 में हम पढ़ आये हैं: {وَيَسْـَٔلُوْنَكَ مَاذَا يُنْفِقُوْنَ ڛ قُلِ الْعَفْوَ ۭ} "लोग आपसे दरयाफ्त करते हैं कि (अल्लाह की राह में) कितना खर्च करें? कह दीजिये जो भी ज़ायद अज़ ज़रूरत हो!" चुनाँचे असल रास्ता तो यह है कि अपनी बचत को अल्लाह की राह में खर्च कर दो। या मोहताजों को दे दो या अल्लाह की के दीन की नशरो इशाअत और सरबुलंदी में लगा दो। लेकिन सूदखोराना ज़हनियत यह है कि इस बचत को भी मज़ीद कमाई का ज़रिया बनाओ। लिहाज़ा असल में सूदखोरी इन्फ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह की ज़िद है। यह उक़द (गिरह) मुझ पर उस वक़्त खुला जब मैंने "اَلْقُرْآنُ يُفَسِّرُ بَعْضُهٗ بَعْضًا" के उसूल के तहत सूरतुल रूम की आयत 39 का मुताअला किया। वहाँ भी इन दोनों को एक-दूसरे के मुक़ाबले में लाया गया है, अल्लाह की रज़ाजोई के लिये इन्फ़ाक़ और उसके मुक़ाबले में रिबा, यानि सूद पर रक़म देना। फ़रमाया: {وَمَآ اٰتَيْتُمْ مِّنْ رِّبًا لِّيَرْبُوَا۟ فِيْٓ اَمْوَالِ النَّاسِ فَلَا يَرْبُوْا عِنْدَ اللّٰهِ ۚ} "और जो माल तुम देते हो सूद पर ताकि लोगों के अमवाल में (शामिल होकर) बढ़ जाये तो वह अल्लाह के यहाँ नहीं बढ़ता।" मेहनत कोई कर रहा है और आप उसकी कमाई में से अपने सरमाये की वजह से वसूल कर रहे हैं तो आपका माल उसके

माल में शामिल होकर उसकी मेहनत से बढ़ रहा है। लेकिन अल्लाह के यहाँ उसकी बढ़ोतरी नहीं होती। {وَمَآ اٰتَيۡتُمۡ مِّنۡ زَكٰوةٍ تُرِيۡدُوۡنَ وَجۡهَ اللّٰهِ فَاُولٰٓـئِكَ هُمُ الۡمُضۡعِفُوۡنَ ۝٣٩} "और वह जो तुम ज़कात (और सदक़ात) में दे देते हो महज़ अल्लाह की रज़ा जोई के लिये तो यही लोग (अपने माल अल्लाह के यहाँ) बढ़ा रहे हैं।" उनका माल मुसलसल बढ़ रहा है, उसकी बढ़ोतरी हो रही है। चुनाँचे इन्फ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह और सदक़ात व ज़कात वगैरह का मामला सूद के बिल्मुक़ाबिल और उसके बरअक्स है। अपने इस बचत के माल को या तो कोई अल्लाह की राह में खर्च करेगा या फिर सूदी मुनाफ़ा हासिल करने का ज़रिया बनायेगा। और आपको मालूम है कि आज के बैंकिंग के निज़ाम में सबसे ज़्यादा ज़ोर बचत (saving) पर दिया जाता है और उसके लिये सेविंग एकाउंट्स और बहुत सी पुरकशिश मुनाफ़ाबख्श स्कीमें मुतारुफ़ कराई जाती हैं। उनकी तरफ़ से यही तरगीब दी जाती है कि बचत करो मज़ीद कमाने के लिये! बचत इसलिये नहीं कि अपना पेट काटो और गुरबा की ज़रुरियात पूरी करो, अपना मैयारे ज़िन्दगी कम करो और अल्लाह के दीन के लिये खर्च करो। नहीं, बल्कि इसलिये कि जो कुछ तुम बचाओ वह हमें दो, ताकि वह हम ज़्यादा शरह सूद पर दूसरों को दें और थोड़ी शरह सूद तुम्हें दे दें। चुनाँचे इन्फ़ाक़ और सूद एक-दूसरे की ज़िद हैं। फ़रमाया:

आयत 275

اَلَّذِيۡنَ يَاۡكُلُوۡنَ الرِّبٰوا	*"जो लोग सूद खाते हैं।"*
لَا يَقُوۡمُوۡنَ اِلَّا كَمَا يَقُوۡمُ الَّذِىۡ يَتَخَبَّطُهُ الشَّيۡطٰنُ مِنَ الۡمَسِّ ؕ	*"वह नहीं खड़े होते मगर उस शख्स की तरह जिसको शैतान ने छूकर मख्बूतुल हवास बना दिया हो।"*

यहाँ आम तौर पर यह समझा गया है कि यह क़यामत के दिन का नक़्शा है। क़यामत के दिन का यह नक़्शा तो होगा ही, इस दुनिया में भी सूदखोरों का हाल यही होता है, और उनका यह नक़्शा किसी स्टॉक एक्सचेंज में जाकर बखूबी देखा जा सकता है। मालूम होगा गोया दीवाने हैं, पागल हैं, जो चीख़ रहे हैं, दौड़ रहे हैं, भाग रहे हैं। वह नॉर्मल इन्सान नज़र नहीं आते, मख्बूतुल हवास लोग नज़र आते हैं जिन पर गोया असीब का साया हो।

ذٰلِكَ بِاَنَّهُمۡ قَالُوۡۤا اِنَّمَا الۡبَيۡعُ مِثۡلُ الرِّبٰوا	*"इस वजह से कि वह कहते हैं बैय (खरीदो फ़रोख्त) भी तो सूद ही की तरह है।"*

कोई शख्स कह सकता है कि मैंने सौ रूपये का माल ख़रीदा, 110 रूपये में बेच दिया, 10 रूपये बच गये, यह रबह (मुनाफ़ा) है, जो जायज़ है, लेकिन अगर सौ रूपये किसी को दिये और 110 वापस लिये तो यह रिबा (सूद) है, यह हराम क्यों हो गया? एक शख्स ने 10 लाख का मकान बनाया, 4 हज़ार रूपये महाना किराये पर दे दिया तो जायज़ हो गया,

और 10 लाख रूपये किसी को क़र्ज़ दिये और उससे 4 हज़ार रूपये महीना लेना शुरू किये तो यह सूद हो गया, हराम हो गया, ऐसा क्यों है? अक़्ली तौर पर इस तरह की बातें सूद के हामियों की तरफ़ से कही जाती हैं। (रबह और रिबा का फ़र्क़ सूरतुल बक़रह की आयत 26 के ज़िमन में बयान हो चुका है।) इस ज़ाहिरी मुनासबत की वजह से यह मख्बूतुल हवास सूदखोर लोग इन दोनों के अन्दर कोई फ़र्क़ महसूस नहीं करते। यहाँ अल्लाह तआला ने इनके क़ौल का अक़्ली जवाब नहीं दिया, बल्कि फ़रमाया:

وَاَحَلَّ اللّٰهُ الْبَيْعَ وَحَرَّمَ الرِّبٰوا ؕ

"हालाँकि अल्लाह ने बैय को हलाल क़रार दिया है और रिबा को हराम ठहराया है।"

अब तुम यह बात करो कि अल्लाह को मानते हो या नहीं? रसूल अल्लाह ﷺ को मानते हो या नहीं? क़ुरान को मानते हो या नहीं? या महज़ अपनी अक़्ल को मानते हो? अगर तुम मुस्लमान हो, मोमिन हो तो अल्लाह तआला और उसके रसूल ﷺ के हुक्म पर सरे तस्लीम ख़म करो (सूरतुल हश्र:7): {وَمَآ اٰتٰىكُمُ الرَّسُوْلُ فَخُذُوْهُ ۚ وَمَا نَهٰىكُمْ عَنْهُ فَانْتَهُوْا ۚ} "जो कुछ रसूल तुम्हें दें उसे ले लो और जिस चीज़ से रोक दें उससे रुक जाओ।" यह तो शरीअत का मामला है। वैसे मआशियात के ऐतबार से इसमें यह फ़र्क़ वाक़ेअ होता है कि एक है fluid capital और एक है fixed capital. जहाँ तक मकान का मामला है तो वह fixed capital है। दस लाख रूपये के मकान में जो शख्स रह रहा है वह उससे

क्या फ़ायदा उठायेगा? वह उसमें रिहाइश इख़्तियार करेगा और उसके एवज़ महाना किराया अदा करेगा। इसके बरअक्स अगर आपने दस लाख रूपये किसी को नक़द दे दिये तो वह उन्हें किसी काम में लगायेगा। इसमें यह भी इम्कान है कि दस लाख के बारह लाख या पन्द्रह लाख बन जायें और यह भी कि आठ लाख रह जायें। चुनाँचे इस सूरत में अगर आपने पहले से तयशुदा (fix) मुनाफ़ा वसूल किया तो यह हराम हो जायेगा। तो इन दोनों में कोई मुनास्बत नहीं है। लेकिन अल्लाह तआला ने अक़्ली जवाब नहीं दिया। जवाब दिया कि "अल्लाह ने बैय को हलाल ठहराया है और रिबा को हराम।"

فَمَنْ جَآءَهٗ مَوْعِظَةٌ مِّنْ رَّبِّهٖ فَانْتَهٰى فَلَهٗ مَا سَلَفَ ؕ

"तो जिस शख्स के पास उसके रब की तरफ़ से यह नसीहत पहुँच गयी और वह बाज़ आ गया तो जो कुछ वह पहले ले चुका है वह उसका है।"

वह उससे वापस नहीं लिया जायेगा। हिसाब-किताब नहीं किया जायेगा कि तुम इतना सूद खा चुके हो, वापस करो। लेकिन इसका यह मतलब भी नहीं कि उस पर इसका कोई गुनाह नहीं होगा।

وَاَمْرُهٗۤ اِلَى اللّٰهِ ؕ

"उसका मामला अल्लाह के हवाले है।"

अल्लाह तआला चाहेगा तो माफ़ कर देगा और चाहेगा तो पिछले सूद पर भी सरज़निश (डाँट-फटकार) होगी।

وَمَنۡ عَادَ فَاُولٰٓئِكَ اَصۡحٰبُ النَّارِ ۚ هُمۡ فِيۡهَا خٰلِدُوۡنَ ۝٢٧٥

“और जिसने (इस नसीहत के आ जाने के बाद भी) दोबारा यह हरकत की तो यह लोग जहन्नमी हैं, वह उसमें हमेशा-हमेश रहेंगे।”

आयत 276

يَمۡحَقُ اللّٰهُ الرِّبٰوا وَيُرۡبِى الصَّدَقٰتِ ؕ

“अल्लाह तआला सूद को मिटाता है और सदक़ात को बढ़ाता है।”

हमारे ज़माने में शेख़ महमूद अहमद (मरहूम) ने अपनी किताब “Man & Money” में साबित किया है कि तीन चीज़ें सूद के साथ-साथ बढ़ती चली जाती हैं। जितना सूद बढ़ेगा उसी क़दर बेरोज़गारी बढ़ेगी, इफ़राते ज़र (inflation) में इज़ाफा होगा और उसके नतीजे में शरह सूद (interest rate) बढ़ेगा। शरह सूद के बढ़ने से बेरोज़गारी मज़ीद बढ़ेगी और इफ़राते ज़र में और ज़्यादा इज़ाफ़ा होगा। यह एक दायरा-ए-ख़बीसा (vicious circle) है और इसके नतीजे में किसी मुल्क की मइशत बिल्कुल तबाह हो जाती है। यह तबाही एक वक़्त तक पोशीदा रहती है, लेकिन फिर एकदम इसका ज़हूर बड़े-बड़े बैंकों के दिवालिया होने की सूरत में होता है। अभी जो कोरिया का हश्र हो रहा है वह आपके सामने है। इससे पहले रूस का जो हश्र हो चुका है वह पूरी दुनिया के लिये बाइस-ए-इबरत है। सूदी मइशत

का मामला तो गोया शीश महल की तरह है, इसमें तो एक पत्थर आकर लगेगा और इसके टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे। इसके बरअक्स मामला सदक़ात का है। उनको अल्लाह तआला पालता है, बढ़ाता है, जैसा कि सूरतुल रूम की आयत 39 में इरशाद हुआ।

وَاللّٰهُ لَا يُحِبُّ كُلَّ كَفَّارٍ اَثِيْمٍ ۝٢٧٦

"और अल्लाह किसी नाशुक्रे और गुनाहगार को पसंद नहीं करता।"

अल्लाह तआला को वह सब लोग हरगिज़ पसंद नहीं हैं जो नाशुक्रे और गुनाहगार हैं।

आयत 277

اِنَّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا وَعَمِلُوا الصّٰلِحٰتِ وَاَقَامُوا الصَّلٰوةَ وَاٰتَوُا الزَّكٰوةَ لَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ ۚ

"हाँ जो लोग ईमान लाये और उन्होंने नेक अमल किये और नमाज़ क़ायम करते रहे और ज़कात अदा करते रहे उनके लिये उनका अज्र उनके रब के पास महफ़ूज़ है।"

नेक अमल में ज़ाहिर बात है जो शय हराम है उसका छोड़ देना भी लाज़िम है।

وَلَا خَوْفٌ عَلَيْهِمْ وَلَا هُمْ يَحْزَنُوْنَ ﴿٢٧٧﴾

"और ना उन्हें कोई खौफ़ लाहक़ होगा और ना ही वह ग़मगीन होंगे।"

आयत 278

يٰٓاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ وَذَرُوْا مَا بَقِيَ مِنَ الرِّبٰوا

"ऐ ईमान वालो! अल्लाह का तक़वा इख़्तियार करो और सूद में से जो बाक़ी रह गया है उसे छोड़ दो"

आज फैसला कर लो कि जो कुछ भी तुमने किसी को क़र्ज़ दिया था अब उसका सूद छोड़ देना है।

اِنْ كُنْتُمْ مُّؤْمِنِيْنَ ﴿٢٧٨﴾

"अगर तुम वाक़ई मोमिन हो।"

आयत 279

فَاِنْ لَّمْ تَفْعَلُوْا فَاْذَنُوْا بِحَرْبٍ مِّنَ اللّٰهِ وَرَسُوْلِهٖ ۚ

"फिर अगर तुमने ऐसा ना किया तो ख़बरदार हो जाओ कि अल्लाह और उसके रसूल की तरफ़ से तुम्हारे खिलाफ़ ऐलाने जंग है।"

सूदखोरी से बाज़ ना आने पर यह अल्टीमेटम है। क़ुरान व हदीस में किसी और गुनाह पर यह बात नहीं आयी है। यह वाहिद गुनाह है जिस पर अल्लाह और उसके रसूल ﷺ की तरफ़ से ऐलाने जंग है।

وَاِنْ تُبْتُمْ فَلَكُمْ رُءُوْسُ اَمْوَالِكُمْ ۚ

"और अगर तुम तौबा कर लो तो फिर असल अमवाल तुम्हारे ही हैं।"

तुम्हारे जो असल रासुल माल हैं वह तुम्हें लौटा दिये जाएँगे। चुनाँचे सूद छोड़ दो और अपने रासुल माल वापस ले लो।

لَا تَظْلِمُوْنَ وَلَا تُظْلَمُوْنَ ﴿٢٧٩﴾

"ना तुम ज़ुल्म करो और ना तुम पर ज़ुल्म किया जाये।"

ना तुम किसी पर ज़ुल्म करो कि उससे सूद वसूल करो और ना ही तुम पर ज़ुल्म किया जाये कि तुम्हारा रासुल माल भी दबा दिया जाये।

आयत 280

وَاِنْ كَانَ ذُوْ عُسْرَةٍ فَنَظِرَةٌ اِلٰى مَيْسَرَةٍ ۭ

"और अगर मक़रूज़ तंगदस्त हो तो फराखी हासिल होने तक उसे मोहलत दो।"

उसे मोहलत दो कि उसके यहाँ कुशादगी पैदा हो जाये ताकि वह आसानी से आपका क़र्ज़ आपको वापस कर सके।

وَاَنْ تَصَدَّقُوْا خَيْرٌ لَّكُمْ

"और अगर तुम सदक़ा ही कर दो तो यह तुम्हारे लिये बेहतर है"

तुम्हारा भाई गरीब था, उसको तुमने क़र्ज़ दिया था, उस पर कुछ सूद लेकर खा भी चुके हो, बाक़ी सूद को तो छोड़ा ही है, अगर अपना रासुल माल भी उसको बख्श दो तो यह इन्फ़ाक़ हो जायेगा, यह अल्लाह को क़र्ज़े हस्ना हो जायेगा और तुम्हारे लिये ज़खीरा-ए-आख़िरत बन जायेगा। यह बात समझ लीजिये कि आपकी जो बचत है, जिसे मैंने क़द्रे ज़ायद (surplus value) कहा था, इस्लामी मइशत के अन्दर उसका सबसे ऊँचा मसरफ़ इन्फ़ाक़ फ़ी सबीलिल्लाह है। उसे अल्लाह की राह में खर्च कर दो, सदक़ा कर दो। इससे कमतर "क़र्ज़े हस्ना" है। आपके किसी भाई का कारोबार रुक गया है, उसको क़र्ज़ दे दो, उसका कारोबार चल पड़ेगा और फिर वह तुम्हें तुम्हारी असल रक़म वापस कर देगा। यह क़र्ज़े हस्ना है, इसका दर्जा इन्फ़ाक़ से कमतर है। तीसरा दर्जा मज़ारबत का है, जो जायज़ तो है मगर पसन्दीदा नहीं है। अगर तुम ज़्यादा ही खसीस (कंजूस) हो तो चलो अपना सरमाया अपने किसी भाई को मज़ारबत पर दे दो। और मज़ारबत यह है कि रक़म तुम्हारी होगी और काम वह करेगा। अगर बचत हो जाये तो उसमें तुम्हारा भी हिस्सा होगा, लेकिन अगर नुक़सान हो जाये तो वह कुल का कुल तुम्हारा होगा, तुम उससे कोई तावान नहीं ले सकते। इसके बाद इन तीन दर्जों से भी नीचे उतर कर अगर तुम कहो कि मैं यह रक़म तुम्हें दे रहा हूँ,

इस पर इतने फ़ीसद मुनाफ़ा तो तुमने बहरहाल देना ही देना है, तो इससे बढ़ कर हराम शय कोई नहीं है।

इस आयत में हिदायत की जा रही है कि अगर तुम्हारा मक़रूज़ तंगी में है तो फिर इन्तेज़ार करो, उसे उसकी कशाइश और फ़राखी तक मोहलत दे दो। और अगर तुम सदक़ा ही कर दो, खैरात कर दो, बख्श दो तो वह तुम्हारे लिये बेहतर होगा।

إِنْ كُنْتُمْ تَعْلَمُونَ ﴿٢٨٠﴾

"अगर तुम जानते हो।"

अगर तुम्हें अल्लाह ने हिकमत अता कर दी है, अगर तुम ऊलुल अल्बाब हो, अगर तुम समझदार हो तो तुम उस बचत के उम्मीदवार बनो जो अल्लाह के यहाँ अज्रो सवाब की सूरत में तुम्हें मिलेगी। उसके मुक़ाबले में उस रक़म की कोई हैसियत नहीं जो तुम्हें मक़रूज़ से वापस मिलनी है।

अगली आयत नुज़ूल के ऐतबार से क़ुरान मजीद की आखरी आयत है।

आयत 281

وَاتَّقُوا يَوْمًا تُرْجَعُونَ فِيهِ إِلَى اللَّهِ ۖ

"और डरो उस दिन से कि जिस दिन तुम लौटा दिये जाओगे अल्लाह की तरफ़।"

यहाँ वह आयत याद कीजिये जो सूरतुल बक़रह में अल्फ़ाज़ के मामूली फ़र्क़ के साथ दो बार आ चुकी है:

وَاتَّقُوْا يَوْمًا لَّا تَجْزِىْ نَفْسٌ عَنْ نَّفْسٍ شَيْـًٔا وَّلَا يُقْبَلُ مِنْهَا شَفَاعَةٌ وَّلَا يُؤْخَذُ مِنْهَا عَدْلٌ وَّلَا هُمْ يُنْصَرُوْنَ ﴿۴۸﴾

"और डरो उस दिन से कि जिस दिन काम ना आ सकेगी कोई जान किसी दूसरी जान के कुछ भी और ना किसी से कोई सिफ़ारिश क़ुबूल की जायेगी और ना किसी से कोई फ़िदया वसूल किया जायेगा और ना उन्हें कोई मदद मिल सकेगी।"

और

وَاتَّقُوْا يَوْمًا لَّا تَجْزِىْ نَفْسٌ عَنْ نَّفْسٍ شَيْـًٔا وَّلَا يُقْبَلُ مِنْهَا عَدْلٌ وَّلَا تَنْفَعُهَا شَفَاعَةٌ وَّلَا هُمْ يُنْصَرُوْنَ ﴿۱۲۳﴾

"और डरो उस दिन से कि जिस दिन काम ना आ सकेगी कोई जान किसी दूसरी जान के कुछ भी और ना किसी से कोई फिदया क़बूल किया जायेगा और ना किसी को कोई सिफ़ारिश फ़ायदा पहुँचा सकेगी और ना उन्हें कोई मदद मिल सकेगी।"

ثُمَّ تُوَفّٰى كُلُّ نَفْسٍ مَّا كَسَبَتْ

"फिर हर जान को पूरा-पूरा दे दिया जायेगा जो कमाई उसने की होगी।"

وَهُمۡ لَا يُظۡلَمُوۡنَ ﴿۲۸۱﴾

"और उन पर कुछ ज़ुल्म ना होगा।"

आयात 282, 283

يٰۤاَيُّهَا الَّذِيۡنَ اٰمَنُوۡۤا اِذَا تَدَايَنۡتُمۡ بِدَيۡنٍ اِلٰٓى اَجَلٍ
مُّسَمًّى فَاكۡتُبُوۡهُ‌ؕ وَلۡيَكۡتُبْ بَّيۡنَكُمۡ كَاتِبٌ ۢ بِالۡعَدۡلِ‌
وَلَا يَاۡبَ كَاتِبٌ اَنۡ يَّكۡتُبَ كَمَا عَلَّمَهُ اللّٰهُ‌ فَلۡيَكۡتُبۡ‌ۚ
وَلۡيُمۡلِلِ الَّذِىۡ عَلَيۡهِ الۡحَـقُّ وَلۡيَتَّقِ اللّٰهَ رَبَّهٗ وَلَا
يَبۡخَسۡ مِنۡهُ شَيۡـــًٔا‌ ؕ فَاِنۡ كَانَ الَّذِىۡ عَلَيۡهِ الۡحَـقُّ
سَفِيۡهًا اَوۡ ضَعِيۡفًا اَوۡ لَا يَسۡتَطِيۡعُ اَنۡ يُّمِلَّ هُوَ
فَلۡيُمۡلِلۡ وَلِيُّهٗ بِالۡعَدۡلِ‌ؕ وَاسۡتَشۡهِدُوۡا شَهِيۡدَيۡنِ مِنۡ
رِّجَالِكُمۡ‌ۚ فَاِنۡ لَّمۡ يَكُوۡنَا رَجُلَيۡنِ فَرَجُلٌ وَّامۡرَاَتٰنِ
مِمَّنۡ تَرۡضَوۡنَ مِنَ الشُّهَدَآءِ اَنۡ تَضِلَّ اِحۡدٰٮهُمَا
فَتُذَكِّرَ اِحۡدٰٮهُمَا الۡاُخۡرٰى‌ؕ وَلَا يَاۡبَ الشُّهَدَآءُ اِذَا
مَا دُعُوۡا‌ ؕ وَلَا تَسۡـــَٔمُوۡۤا اَنۡ تَكۡتُبُوۡهُ صَغِيۡرًا اَوۡ كَبِيۡرًا
اِلٰٓى اَجَلِهٖ‌ؕ ذٰلِكُمۡ اَقۡسَطُ عِنۡدَ اللّٰهِ وَاَقۡوَمُ لِلشَّهَادَةِ

وَاَدْنٰٓى اَلَّا تَرْتَابُوْٓا اِلَّآ اَنْ تَكُوْنَ تِجَارَةً حَاضِرَةً
تُدِيْرُوْنَهَا بَيْنَكُمْ فَلَيْسَ عَلَيْكُمْ جُنَاحٌ اَلَّا
تَكْتُبُوْهَا ۭ وَاَشْهِدُوْٓا اِذَا تَبَايَعْتُمْ ۠ وَلَا يُضَاۗرَّ كَاتِبٌ
وَّلَا شَهِيْدٌ ڛ وَاِنْ تَفْعَلُوْا فَاِنَّهٗ فُسُوْقٌۢ بِكُمْ ۭ وَاتَّقُوا
اللّٰهَ ۭ وَيُعَلِّمُكُمُ اللّٰهُ ۭ وَاللّٰهُ بِكُلِّ شَيْءٍ عَلِيْمٌ ۝۲۸۲ وَاِنْ
كُنْتُمْ عَلٰي سَفَرٍ وَّلَمْ تَجِدُوْا كَاتِبًا فَرِھٰنٌ مَّقْبُوْضَةٌ ۭ
فَاِنْ اَمِنَ بَعْضُكُمْ بَعْضًا فَلْيُؤَدِّ الَّذِي اؤْتُمِنَ
اَمَانَتَهٗ وَلْيَتَّقِ اللّٰهَ رَبَّهٗ ۭ وَلَا تَكْتُمُوا الشَّهَادَةَ ۭ وَمَنْ
يَّكْتُمْهَا فَاِنَّهٗٓ اٰثِمٌ قَلْبُهٗ ۭ وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ عَلِيْمٌ ۝۲۸۳

आयत 282, जो ज़ेरे मुताअला है, क़ुरान हकीम की तवील-तरीन आयत है और इसे "आयते दैन" या "आयते मुदायना" का नाम दिया गया है। इस आयत में हिदायत की गई है कि कोई क़र्ज़ का बाहम लेन-देन हो या आपस में कारोबारी मामला हो तो उसे बाक़ायदा तौर पर लिख लिया जाये और उस पर दो गवाह मुक़र्रर किये जायें। हमारे यहाँ आम तौर पर इस क़ुरानी हिदायत को नज़र अंदाज़ किया जाता है और किसी भाई, दोस्त या अज़ीज़ को क़र्ज़ देते हुए या कोई कारोबारी मामला करते हुए यह ख्याल किया जाता है कि इससे क्या लिखवाना, वह कहेगा कि इन्हें

मुझ पर ऐतमाद नहीं है। चुनाँचे तमाम मामलात ज़बानी तय कर लिये जाते हैं, और बाद में जब मामलात में बिगाड़ पैदा होता है तो फिर लोग शिकवा-शिकायत और चीखो पुकार करते हैं। अगर शुरू ही में क़ुरानी हिदायात के मुताबिक़ माली मामलात को तहरीर कर लिया जाये तो नौबत यहाँ तक ना पहुँचेगी। हदीसे नबवी ﷺ का मफ़हूम है कि जो शख्स क़र्ज़ देते हुए या कोई माली मामला करते हुए लिखवाता नहीं है, अगर उसका माल ज़ाया हो जाता है तो उसे इस पर कोई अज्र नहीं मिलता, और अगर वह मक़रूज़ के हक़ में बददुआ करता है तो अल्लाह तआला उसकी फ़रियाद नहीं सुनता, क्योंकि उसने अल्लाह तआला के वाज़ेह हुक्म की खिलाफ़वर्ज़ी की है।

आयत 282

يَآيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْٓا اِذَا تَدَايَنْتُمْ بِدَيْنٍ اِلٰٓى اَجَلٍ مُّسَمًّى فَاكْتُبُوْهُ

"ऐ अहले ईमान! जब भी तुम क़र्ज़ का कोई मामला करो एक वक़्ते मुअय्यन तक के लिये तो उसको लिख लिया करो।"

आयत के इस टुकड़े से दो हुक्म मालूम होते हैं। एक यह कि क़र्ज़ का वक़्त मुअय्यन होना चाहिये कि यह कब वापस होगा और दूसरे यह कि उसे लिख लिया जाये। فَاكْتُبُوْهُ फ़अल अम्र है और अम्र वजूब (ज़रूरी) के लिये होता है।

وَلۡيَكۡتُبۡ بَّيۡنَكُمۡ كَاتِبٌۢ بِالۡعَدۡلِ

“और चाहिये कि उसको लिखे कोई लिखने वाला तुम्हारे माबैन अद्ल के साथ।”

लिखने वाला कोई डंडी ना मार जाये, उसे चाहिये कि वह सही-सही लिखे।

وَلَا يَاۡبَ كَاتِبٌ اَنۡ يَّكۡتُبَ كَمَا عَلَّمَهُ اللّٰهُ فَلۡيَكۡتُبۡ

“और जो लिखना जानता हो वह लिखने से इन्कार ना करे, जिस तरह अल्लाह ने उसको सिखाया है, पस चाहिये कि वह लिख दे।”

यह हिदायत ताकीद के साथ की गयी, इसलिये कि उस मआशरे में पढ़े-लिखे लोग बहुत कम होते थे। अब भी माली मामलात और मुआहिदात बिलउमूम व वसीक़ा नोएस तहरीर करते हैं।

وَلۡيُمۡلِلِ الَّذِىۡ عَلَيۡهِ الۡحَقُّ

“और इमला वह शख्स कराये जिस पर हक़ आता है”

यानि जिसने क़र्ज़ लिया है वह दस्तावेज़ लिखवाये कि मैं क्या ज़िम्मेदारी ले रहा हूँ, जिसका माल है वह ना लिखवाये।

وَلۡيَتَّقِ اللّٰهَ رَبَّهٗ

“और वह अल्लाह से डरता रहे अपने रब से”

وَلَا يَبْخَسْ مِنْهُ شَيْـًٔاؕ	*"और (लिखवाते हुए) उसमें से कोई शय कम ना कर दे।"*
فَاِنْ كَانَ الَّذِىْ عَلَيْهِ الْحَقُّ سَفِيْهًا اَوْ ضَعِيْفًا	*"फिर अगर वह शख्स जिस पर हक़ आयद होता है, नासमझ या ज़ईफ हो"*
اَوْ لَا يَسْتَطِيْعُ اَنْ يُّمِلَّ هُوَ	*"या उसके अन्दर इतनी सलाहियत ना हो कि इमला करवा सके"*
فَلْيُمْلِلْ وَلِيُّهٗ بِالْعَدْلِؕ	*"तो जो उसका वली हो वह इन्साफ़ के साथ लिखवा दे।"*

अगर क़र्ज़ लेने वाला नासमझ हो, ज़ईफ हो या दस्तावेज़ ना लिखवा सकता हो तो उसका कोई वली, कोई वकील या मुख़्तार (attorney) उसकी तरफ़ से इन्साफ़ के साथ दस्तावेज़ तहरीर कराये। यहाँ "इमलाल" इमला के मायने में आया है।

وَاسْتَشْهِدُوْا شَهِيْدَيْنِ مِنْ رِّجَالِكُمْۚ	*"और इस पर गवाह बना लिया करो अपने मर्दों में से दो आदमियों को।"*

فَاِنۡ لَّمۡ یَکُوۡنَا رَجُلَیۡنِ فَرَجُلٌ وَّامۡرَاَتٰنِ

"फिर अगर दो मर्द दस्तयाब ना हों तो एक मर्द और दो औरतें हों"

مِمَّنۡ تَرۡضَوۡنَ مِنَ الشُّهَدَآءِ

"यह गवाह तुम्हारे पसन्दीदा लोगों में से हो"

जिनकी गवाही हर दो फ़रीक़ के नज़दीक मक़बूल हो और उन पर दोनों को ऐतमाद हो। अगर मज़कूरा सिफ़ात के दो मर्द दस्तयाब ना हो सकें तो गवाही के लिये एक मर्द और दो औरतों का इन्तखाब कर लिया जाये। यानि गवाहों में एक मर्द का होना लाज़िम है, महज़ औरत की गवाही नहीं चलेगी। अब सवाल पैदा होता है कि आया हर क़िस्म के मामलात में दो औरतों की गवाही एक मर्द के बराबर है या यह मामला सिर्फ़ क़र्ज़ और माली मामलात में दस्तावेज़ तहरीर करते वक़्त का है, इसकी तफ़सील फ़ुक़ाहा के यहाँ मिलती है।

اَنۡ تَضِلَّ اِحۡدٰىهُمَا فَتُذَكِّرَ اِحۡدٰىهُمَا الۡاُخۡرٰىؕ

"ताकि उनमें से कोई एक भूल जाये तो दूसरी याद करवा दे।"

यहाँ अक़्ली सवाल पैदा हो गया कि क्या मर्द नहीं भूल सकता? इसका जवाब यह है कि वाक़िअतन अल्लाह

तआला ने औरत के अन्दर निस्यान का माद्दा ज़्यादा रखा है। {اَلَا يَعۡلَمُ مَنۡ خَلَقَؕ وَهُوَ اللَّطِيۡفُ الۡخَبِيۡرُ۝۱۴} (अल मुल्क) "क्या वही ना जानेगा जिसने पैदा किया है? वह बड़ा बारीक-बीन और हर शय की ख़बर रखने वाला है।" जिसने पैदा किया है वह खूब जानता है कि किसमें कौनसा माद्दा ज़्यादा है। औरत में निस्यान का माद्दा क्यों ज़्यादा रखा गया है, यह भी समझ लीजिये। यह बड़ी अक़्ली और मंतक़ी बात है। दरअसल औरत को मर्द के ताबेअ रहना होता है, लिहाज़ा उसके अहसासात को कभी ठेस पहुँच सकती है, उसके जज़्बात के ऊपर कभी कोई कदुरत आती है। इस ऐतबार से अल्लाह तआला ने उनके अन्दर भूल जाने का माद्दा "सेफ्टी वाल्व" के तौर पर रखा हुआ है। वरना तो उनका मामला इस शेर के मिस्दाक़ हो जाये:

यादे माज़ी अज़ाब है या रब
छीन ले अब मुझसे हाफ्ज़ा मेरा!

चुनाँचे यह निस्यान भी अल्लाह तआला की बहुत बड़ी नेअमत है, वरना तो कोई सदमा दिल से उतरने ही ना पाये, कोई गुस्सा कभी ख़त्म ही ना हो। बहरहाल ख्वाह किसी हुक्म की इल्लत या हिकमत समझ में आये या ना आये, अल्लाह का हुक्म तो हर सूरत मानना है।

وَلَا يَاۡبَ الشُّهَدَآءُ اِذَا مَا دُعُوۡا ؕ

"और ना इन्कार करे गवाह जबकि उनको बुलाया जाये।"

गवाहों को जब गवाही के लिये बुलाया जाये तो आकर गवाही दें, उससे इन्कार ना करें। इसी सूरह मुबारका की

आयत 140 में हम पढ़ आये हैं: {وَمَنْ اَظْلَمُ مِمَّنْ كَتَمَ شَهَادَةً عِنْدَهٗ مِنَ اللّٰهِ} "और उस शख्स से बढ़ कर ज़ालिम कौन होगा जिसके पास अल्लाह की तरफ़ से एक शहादत मौजूद हो और वह उसे छुपाये?"

وَلَا تَسْـَٔمُوْٓا اَنْ تَكْتُبُوْهُ صَغِيْرًا اَوْ كَبِيْرًا اِلٰٓى اَجَلِهٖ ۭ

"और तसाहुल (लापरवाही) मत करो उसके लिखने में, मामला ख्वाह छोटा हो या बड़ा, उसकी मुअययन मुद्दत के लिये।"

क़र्ज़ ख्वाह छोटा हो या बड़ा, उसकी दस्तावेज़ तहरीर होनी चाहिये कि मैं इतनी रक़म ले रहा हूँ और इतने वक़्त में इसे लौटा दूँगा। इसके बाद क़र्ज़ख्वाह इस मुद्दत को बढ़ा भी सकता है, मज़ीद मोहलत दे सकता है, बल्कि माफ़ भी कर सकता है। लेकिन क़र्ज़ देते वक़्त उसकी मुद्दत मुअय्यन होनी चाहिये।

ذٰلِكُمْ اَقْسَطُ عِنْدَ اللّٰهِ

"यह अल्लाह के नज़दीक भी ज़्यादा इन्साफ़ पर मब्नी है"

وَاَقْوَمُ لِلشَّهَادَةِ

"और गवाही को ज़्यादा दुरुस्त रखने वाला है"

मामला ज़ब्त तहरीर (documented) में आ जायेगा तो बहुत वाज़ेह रहेगा, वरना ज़बानी याददाश्त के अन्दर तो कहीं ताबीर ही में फ़र्क़ हो जाता है।

وَاَدۡنٰۤی اَلَّا تَرۡتَابُوۡۤا

“और यह इसके ज़्यादा क़रीब है कि तुम शुबह में नहीं पड़ोगे”

اِلَّاۤ اَنۡ تَکُوۡنَ تِجَارَۃً حَاضِرَۃً تُدِیۡرُوۡنَہَا بَیۡنَکُمۡ

“इल्ला यह कि कोई तिजारती लेन-देन हो जो तुम दस्त-ब-दस्त करते हो”

मसलन आप किसी दुकानदार से कोई शय खरीदते हैं और नक़द पैसे अदा करते हैं तो ज़रूरी नहीं कि आप उसका कैशमेमो भी लें। अगर आप चाहें तो दुकानदार से कैशमेमो तलब कर सकते हैं।

فَلَیۡسَ عَلَیۡکُمۡ جُنَاحٌ اَلَّا تَکۡتُبُوۡہَا ؕ

“तो तुम पर कोई गुनाह नहीं है कि उसे ना लिखो।”

وَاَشۡہِدُوۡۤا اِذَا تَبَایَعۡتُمۡ ۪

“और गवाह बना लिया करो जब कोई (मुस्तक़बिल का) सौदा करो।”

“بیع سلم” जो होती है यह मुस्तक़बिल का सौदा है, और यह भी एक तरह का क़र्ज़ है। मिसाल के तौर पर आप किसी ज़मींदार से तय करते हैं कि आइन्दा फ़सल के मौक़े पर आप उससे इतने रूपये फ़ी मन के हिसाब से पाँच सौ मन गन्दुम खरीदेंगे। यह बय सलम कहलाती है और इसमें लाज़िम है कि आप पूरी क़ीमत अभी अदा कर दें और आपको गन्दुम

फ़सल के मौक़े पर मिलेगी। इस तरह का लेन-देन भी बाक़ायदा तहरीर में आ जाना चाहिये और इस पर दो गवाह मुक़र्रर होने चाहिये।

وَلَا يُضَآرَّ كَاتِبٌ وَّلَا شَهِيْدٌ ۬

"और ना नुक़सान पहुँचाया जाये किसी लिखने वाले को और गवाह को। और ना नुक़सान पहुँचाये कोई लिखने वाला और गवाह।"

"يُضَآرَّ" में यह दोनों मफ़हूम मौजूद हैं। इसलिये कि यह मारूफ़ भी है और मजहूल भी।

وَاِنْ تَفْعَلُوْا فَاِنَّهٗ فُسُوْقٌۢ بِكُمْ ؕ

"और अगर तुम ऐसा करोगे (नुक़सान पहुँचाओगे) तो यह तुम्हारे हक़ में गुनाह की बात होगी।"

وَاتَّقُوا اللّٰهَ ؕ

"और अल्लाह से डरते रहो।"

وَيُعَلِّمُكُمُ اللّٰهُ ؕ

"और अल्लाह तुम्हें तालीम दे रहा है।"

وَاللّٰهُ بِكُلِّ شَىْءٍ عَلِيْمٌ ﴿٢٨٢﴾

"और अल्लाह हर चीज़ का इल्म रखने वाला है।"

यह एक आयत मुकम्मल हुई है। मेरा ख्याल है कि आखरी पारे की चार-पाँच छोटी सूरतें जमा कर लें तो उनका हुज्म

इस एक आयत के बराबर होगा। मैं अर्ज़ कर चुका हूँ कि आयात की ताअयीन तौफीक़ी (विशेषता मज़बूत) है। इसका हमारे हिसाब-किताब से, ग्रामर से, मंतिक़ से और इल्मे बयान से कोई ताल्लुक़ नहीं।

आयत 283

وَاِنۡ كُنۡتُمۡ عَلٰى سَفَرٍ وَّلَمۡ تَجِدُوۡا كَاتِبًا

"और अगर तुम सफ़र पर हो और कोई लिखने वाला ना पाओ"

अगर दौराने सफ़र कोई लेन-देन का या क़र्ज़ का मामला हो जाये और कोई कातिब ना मिल सके।

فَرِهٰنٌ مَّقۡبُوۡضَةٌ

"तो कोई शय गिरवी रखलो क़ब्ज़े में।"

क़र्ज़ लेने वाला अपनी कोई शय क़र्ज़ देने वाले के हवाले कर दे कि मेरी यह शय आपके क़ब्ज़े में रहेगी, आप इतने पैसे मुझे दे दीजिये, मैं जब यह वापस कर दूँगा आप मेरी चीज़ मुझे लौटा दीजियेगा। यह रहन बिलक़ब्ज़ा है। लेकिन रहन (गिरवी) रखी हुई चीज़ से कोई फ़ायदा उठाने की इजाज़त नहीं है, वह सूद हो जायेगा। मसलन अगर मकान रहन रखा गया है तो उस पर क़ब्ज़ा तो क़र्ज़ देने वाले का होगा, लेकिन वह उससे इस्तफ़ादा नहीं कर सकता, उसका किराया नहीं ले सकता, किराया मालिक को जायेगा।

فَاِنْ اَمِنَ بَعْضُكُمْ بَعْضًا

"फिर अगर तुम में से एक-दूसरे पर ऐतमाद करे"

यानि एक शख्स दूसरे पर ऐतमाद करते हुए बगैर रहन के उसे क़र्ज़ दे देता है।

فَلْيُؤَدِّ الَّذِى اؤْتُمِنَ اَمَانَتَهٗ

"तो जिसके पास अमानत रखी गयी है उसको चाहिये कि वह उसकी अमानत वापस करे"

एक शख्स के पास रहन देने को कुछ नहीं था या यह कि दूसरे भाई ने उस पर ऐतमाद करते हुए उससे कोई शय रहन नहीं ली और उसको क़र्ज़ दे दिया तो यह माल जो उसने क़र्ज़ लिया है यह उसके पास क़र्ज़ देने वाले की अमानत है, जिसका वापस लौटाना उसके ज़िम्मे फ़र्ज़ है।

وَلْيَتَّقِ اللّٰهَ رَبَّهٗ ؕ

"और अल्लाह से डरे जो उसका रब है।"

وَلَا تَكْتُمُوا الشَّهَادَةَ ؕ

"और गवाही को छुपाया ना करो।"

وَمَنْ يَّكْتُمْهَا فَاِنَّهٗٓ اٰثِمٌ قَلْبُهٗ ؕ

"और जो कोई गवाही को छुपायेगा तो उसका दिल गुनाहगार होगा।"

बाज़ गुनाहों का असर इन्सान के बाहिरी आज़ा (अंगों) तक महदूद होता है, जबकि बाज़ का ताल्लुक़ दिल से होता है।

शहादत का छुपाना भी इसी नौइयत का गुनाह है। और अगर किसी का दिल दाग़दार हो गया तो बाक़ी क्या रह गया?

وَاللّٰهُ بِمَا تَعْمَلُوْنَ عَلِيْمٌ ع ﴿٢٨٣﴾

"और जो कुछ तुम कर रहे हो अल्लाह उसे खूब जानता है।"

आयात 284 से 286 तक

لِلّٰهِ مَا فِي السَّمٰوٰتِ وَمَا فِي الْاَرْضِ ؕ وَاِنْ تُبْدُوْا مَا فِيْٓ
اَنْفُسِكُمْ اَوْ تُخْفُوْهُ يُحَاسِبْكُمْ بِهِ اللّٰهُ ؕ فَيَغْفِرُ لِمَنْ
يَّشَآءُ وَيُعَذِّبُ مَنْ يَّشَآءُ ؕ وَاللّٰهُ عَلٰى كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ
﴿٢٨٤﴾ اٰمَنَ الرَّسُوْلُ بِمَآ اُنْزِلَ اِلَيْهِ مِنْ رَّبِّهٖ
وَالْمُؤْمِنُوْنَ ؕ كُلٌّ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَمَلٰٓئِكَتِهٖ وَكُتُبِهٖ
وَرُسُلِهٖ ۟ لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ اَحَدٍ مِّنْ رُّسُلِهٖ ۟ وَقَالُوْا سَمِعْنَا
وَاَطَعْنَا ۫ غُفْرَانَكَ رَبَّنَا وَاِلَيْكَ الْمَصِيْرُ ﴿٢٨٥﴾ لَا
يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا وُسْعَهَا ؕ لَهَا مَا كَسَبَتْ وَعَلَيْهَا
مَا اكْتَسَبَتْ ؕ رَبَّنَا لَا تُؤَاخِذْنَآ اِنْ نَّسِيْنَآ اَوْ

اَخۡطَاۡنَا ۚ رَبَّنَا وَلَا تَحۡمِلۡ عَلَيۡنَاۤ اِصۡرًا كَمَا حَمَلۡتَهٗ عَلَى
الَّذِيۡنَ مِنۡ قَبۡلِنَا ۚ رَبَّنَا وَلَا تُحَمِّلۡنَا مَا لَا طَاقَةَ لَنَا
بِهٖ ۚ وَاعۡفُ عَنَّا ۗ وَاغۡفِرۡ لَنَا ۗ وَارۡحَمۡنَا ۗ اَنۡتَ مَوۡلٰٮنَا
فَانۡصُرۡنَا عَلَى الۡقَوۡمِ الۡكٰفِرِيۡنَ ۝٢٨٦

अल्लाह तआला के फ़ज़लो करम से हम सूरतुल बक़रह के आखरी रुकूअ पर पहुँच गये हैं। यह अज़ीमुश्शान रुकूअ तीन आयात पर मुश्तमिल है। क़ब्ल अज़ हम इसी तरह का एक अज़ीम रुकूअ पढ़ आये हैं जिसकी चार आयात हैं और उसमें आयतुल कुरसी भी है। यूँ कहा जा सकता है कि ये दोनों रुकूअ अपनी अज़मत और अपने मक़ाम के ऐतबार से एक-दूसरे के हमपल्ला हैं। आयतुल कुरसी तौहीद के मौज़ू पर क़ुरान हकीम की जामेअ तरीन आयत है, और इस रुकूअ की आखरी आयत जामेअ तरीन दुआ पर मुश्तमिल है।

आयत 284

لِلّٰهِ مَا فِى السَّمٰوٰتِ وَمَا فِى الۡاَرۡضِ ؕ

“अल्लाह ही का है जो कुछ भी आसमानों में है और जो कुछ भी ज़मीन में है।”

आप देखेंगे कि अक्सरो बेशतर इस तरह के अल्फ़ाज़ सूरतों के इख्तताम पर आते हैं।

وَاِنۡ تُبۡدُوۡا مَا فِیۡۤ اَنۡفُسِکُمۡ اَوۡ تُخۡفُوۡہُ یُحَاسِبۡکُمۡ بِہِ اللّٰہُ ؕ

"और जो कुछ तुम्हारे दिलों में है ख्वाह तुम उसे ज़ाहिर करो ख्वाह छुपाओ अल्लाह तुमसे उसका मुहास्बा कर लेगा।"

तुम्हारी नीयतें उसके इल्म में हैं। एक हदीस में अल्फ़ाज़ आते हैं:

اِنَّ اللّٰہَ لَا یَنۡظُرُ اِلٰی صُوَرِکُمۡ وَ اَمۡوَالِکُمۡ وَلٰکِنۡ یَنۡظُرُ اِلٰی قُلُوۡبِکُمۡ وَاَعۡمَالِکُمۡ

"यक़ीनन अल्लाह तआला तुम्हारी सूरतों को और तुम्हारे माल व दौलत को नहीं देखता, बल्कि वह तुम्हारे दिलों को और तुम्हारे आमालों को देखता है।" (36)

तो तुम्हारे दिल में जो कुछ है ख्वाह उसे कितना ही छुपा लो अल्लाह के मुहास्बे से नहीं बच सकोगे।

فَیَغۡفِرُ لِمَنۡ یَّشَآءُ وَ یُعَذِّبُ مَنۡ یَّشَآءُ ؕ

"फिर वह बख्श देगा जिसको चाहेगा और अज़ाब देगा जिसको चाहेगा।"

इख़्तियारे मुतलक़ अल्लाह के हाथ में है। हमारे यहाँ अहले सुन्नत का अक़ीदा यही है कि अल्लाह तआला पर लाज़िम नहीं है कि नेकोकार को उसकी जज़ा ज़रूर दे और बदकार को उसकी सज़ा ज़रूर दे। यह दूसरी बात है कि अल्लाह ऐसा करेगा, लेकिन अल्लाह की शान इससे बहुत आला व अरफ़ा है कि उस पर किसी शय को लाज़िम क़रार दिया

जाये। उसका इख्तियारे मुतलक़ है, वह { فَعَّالٌ لِّمَا يُرِيْدُ ۝١٦ } (अल बुरूज) की शान का हामिल है। सूरतुल हज में अल्फ़ाज़ आये हैं: { اِنَّ اللّٰهَ يَفْعَلُ مَا يَشَاۗءُ ۝١٨ } "यक़ीनन अल्लाह जो चाहता है करता है।" अहले तशय्यो का मौक़फ़ यह है कि अल्लाह पर अद्ल वाजिब है। अहले सुन्नत कहते हैं कि अल्लाह अद्ल करेगा, जज़ा व सज़ा में अद्ल होगा, लेकिन अद्ल करना उस पर वाजिब नहीं है, बल्कि अल्लाह ने जो शय अपने ऊपर वाजिब की है वह "रहमत" है। अज़रुए अल्फ़ाज़े क़ुरानी: {كَتَبَ عَلٰي نَفْسِهِ الرَّحْمَةَ ۭ } (अल अनआम:12) और: { كَتَبَ رَبُّكُمْ عَلٰي نَفْسِهِ الرَّحْمَةَ ۙ } (अल अनआम:54) "तुम्हारे रब ने रहमत को अपने ऊपर वाजिब कर लिया है।"

وَاللّٰهُ عَلٰي كُلِّ شَيْءٍ قَدِيْرٌ ۝٢٨٤

"और अल्लाह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है।"

आयत 285

اٰمَنَ الرَّسُوۡلُ بِمَاۤ اُنۡزِلَ اِلَیۡہِ مِنۡ رَّبِّہٖ وَالۡمُؤۡمِنُوۡنَ ؕ

"ईमान लाये रसूल (ﷺ) उस चीज़ पर जो नाज़िल की गयी उनकी जानिब उनके रब की तरफ से और मोमिनीन भी (ईमान लाये)।"

यह एक गौरतलब बात और बड़ा बरीक नुक्ता है कि नबी अकरम ﷺ पर जब वही आयी तो आप ﷺ ने कैसे पहचान लिया कि यह बदरूह नहीं है, यह जिब्राइल अमीन अलैहिस्सलाम हैं? आख़िर कोई इश्तबाह भी तो हो सकता था। इसलिये कि पहला तजुर्बा था। इससे पहले ना तो आप ﷺ ने कहानत सीखी और ना आपने कोई नफ्सियाती रियाज़तें कीं। आप ﷺ तो एक कारोबारी आदमी थे और अहलो अयाल के साथ बहुत ही भरपूर ज़िन्दगी गुज़ार रहे थे। आप ﷺ का बुलन्द तरीन सतह का इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट का कारोबार था। यह दर हक़ीक़त आप ﷺ की फ़ितरते सलीमा थी जिसने वही लाने वाले फ़रिश्ते को पहचान लिया और आप ﷺ उस वही पर ईमान ले आये। नबी की फ़ितरत इतनी पाक और साफ़ होती है कि उसके ऊपर किसी बदरूह वगैरह का कोई असर हो ही नहीं सकता। बहरहाल हमारे लिये बड़ी तस्कीन की बात है कि अल्लाह तआला ने अपने रसूल ﷺ के ईमान के तज़किरे के साथ हमारे ईमान का तज़किरा किया। अल्लाह तआला हमे असहाबे ईमान में शामिल फरमाये। اللهم ربنا اجعلنا منهم

كُلٌّ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَمَلٰٓىِٕكَتِهٖ وَكُتُبِهٖ وَرُسُلِهٖ ۣ

"यह सब ईमान लाये अल्लाह पर, उसके फ़रिश्तों पर, उसकी किताबों पर और उसके रसूलों पर।"

सूरतुल बक़रह में यह दूसरा मक़ाम है जहाँ ईमान के अज्ज़ाअ को गिना गया है। क़ब्ल अज़ आयतुल बिर्र (आयत 177) में अज्ज़ाये ईमान की तफ़सील बयान हो चुकी है।

لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ اَحَدٍ مِّنْ رُّسُلِهٖ ۣ

"(यह कहते हैं कि) हम अल्लाह के रसूलों में किसी के दरमियान कोई तफ़रीक़ नहीं करते।"

यह बात तीसरी मर्तबा आ गयी है कि अल्लाह के रसूलों के दरमियान कोई तफ़रीक़ नहीं की जायेगी। सौलहवें रुकूअ में हम यह अल्फ़ाज़ पढ़ चुके हैं: { لَا نُفَرِّقُ بَيْنَ اَحَدٍ مِّنْهُمْ ۡ وَنَحْنُ لَهٗ مُسْلِمُوْنَ ١٣٦ } "हम उनमें किसी के दरमियान फ़र्क़ नहीं करते और हम अल्लाह ही के फ़रमाबरदार हैं।" और सबसे पहले आयत 4 में यह अल्फ़ाज़ आ चुके हैं: { وَالَّذِيْنَ يُؤْمِنُوْنَ بِمَآ اُنْزِلَ اِلَيْكَ وَمَآ اُنْزِلَ مِنْ قَبْلِكَ ۚ } "वह लोग जो ईमान रखते हैं उस पर भी जो (ऐ नबी ﷺ) आप पर नाज़िल किया गया और उस पर भी जो आपसे पहले नाज़िल किया गया।" अलबत्ता रसूलों के दरमियान तफ़ज़ील साबित

है और हम यह आयत (आयत:253) पढ़ चुके हैं { تِلْكَ الرُّسُلُ فَضَّلْنَا بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ ۘ مِنْهُمْ مَّنْ كَلَّمَ اللّٰهُ وَرَفَعَ بَعْضَهُمْ دَرَجٰتٍ} "यह रसूल जो हैं हमने उनमें से बाज़ को बाज़ पर फ़ज़ीलत दी है। उनमें से वह भी थे जिनसे अल्लाह ने कलाम किया और बाज़ के दर्जे (किसी और ऐतबार से) बुलन्द कर दिये।"

وَقَالُوْا سَمِعْنَا وَاَطَعْنَا ۗ *"और वह कहते हैं हमने कि हमने सुना और इताअत की।"*

غُفْرَانَكَ رَبَّنَا *"परवरदिगार! हम तेरी बख्शीश माँगते हैं"*

غُفْرَانَكَ मफ़ऊल होने की वजह से मंसूब है। यानि نَسْئَلُكَ غُفْرَانَكَ ऐ अल्लाह! हम तुझसे तेरी मग़फ़िरत तलब करते हैं, हम तेरी बख्शीश के तलबगार हैं।

وَاِلَيْكَ الْمَصِيْرُ ﴿٢٨٥﴾ *"और तेरी ही जानिब लौट जाना है।"*

यहाँ पर ईमान बिलआखिरा का ज़िक्र भी आ गया जो ऊपर इन अल्फ़ाज़ में नहीं आया था: { كُلٌّ اٰمَنَ بِاللّٰهِ وَمَلٰٓئِكَتِهٖ وَكُتُبِهٖ وَرُسُلِهٖ }। अब आखरी आयत आ रही है।

आयत 286

لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا وُسْعَهَا ۭ

"अल्लाह तआला नहीं ज़िम्मेदार ठहरायेगा किसी जान को मगर उसकी वुसअत के मुताबिक़।"

यह आयत अल्लाह तआला के बहुत बड़े फ़ज़्ल व करम का मज़हर है। मैंने आयत 186 के बारे में कहा था कि यह दुनिया में हक़ूक़े इंसानी का सबसे बड़ा मन्शूर (Magna Carta) है कि अल्लाह और बन्दे के दरमियान कोई फ़सल नहीं है: { اُجِيْبُ دَعْوَةَ الدَّاعِ اِذَا دَعَانِ } "मैं तो हर पुकारने वाले की पुकार का जवाब देता हूँ जब भी (और जहाँ भी) वह मुझे पुकारे।" { فَلْيَسْتَجِيْبُوْا لِيْ وَلْيُؤْمِنُوْا بِيْ } "पस उन्हें भी चाहिये कि मेरा हुक्म मानें और मुझ पर ईमान रखें।" गोया दो तरफ़ा बात चलेगी, एक तरफ़ा नहीं। मेरी मानो, अपनी मनवाओ! तुम दुआएँ करोगे, हम क़बूल करेंगे! लेकिन अगर तुम हमारी बात नहीं मानते तो फिर तुम्हारी दुआ तुम्हारे मुँह पर दे मारी जायेगी, ख्वाह क़ुनूते नाज़ला चालीस दिन तो क्या अस्सी दिन तक पढ़ते रहो। यही वजह है कि तुम्हारी दुआओं के बावजूद तुम्हें सक़ूते ढाका का सानेहा देखना पड़ा, तुम्हें यहूदियों के हाथों शर्मनाक शिकस्त से दो-चार होना पड़ा। अगरचे उन मौक़ों पर हरमैन शरीफ़ में क़ुनूते नाज़ला पढ़ी जाती रही, लेकिन तुम्हारी दुआएँ क्योंकर क़ुबूल होतीं! तुम्हारा जुर्म यह है कि तुमने अल्लाह को पीठ दिखाई हुई है, उसके दीन को पाँव तले रौंदा हुआ है, अल्लाह के बागियों से दोस्ती रखी हुई है। किसी ने मास्को को अपना क़िब्ला

बना रखा था तो किसी ने वाशिंगटन को। लिहाज़ा तुम्हारी दुआएँ तुम्हारे मुँह पर दे मारी गयीं।

लेकिन आयत ज़ेरे मुताअला इस ऐतबार से बहुत बड़ी रहमत का मज़हर है कि अल्लाह तआला के यहाँ अंधे की लाठी वाला मामला नहीं है कि तमाम इन्सानों से मुहासबा एक ही सतह पर हो। अल्लाह जानता है कि किसकी कितनी वुसअत है और उसी के मुताबिक़ किसी को ज़िम्मेदार ठहराता है। और यह वुसअत मौरूसी और महौलयाती अवामिल पर मुश्तमिल होती है। हर शख्स को जो genes मिलते हैं वह दूसरे से मुख्तलिफ़ होते हैं और उन genes की अपनी-अपनी ख़ुसूसियात (properties) और तहदीदात (limitations) होती हैं। इसी तरह हर शख्स को दूसरे से मुख्तलिफ़ माहौल मयस्सर आता है। तो इन मौरूसी अवामिल (hereditary factors) और महौलयाती अवामिल (environmental factors) के हासिल ज़र्ब से इंसान की शख्सियत का एक ह्यूला बनता है, जिसको मिस्तरी लोग "पाटन" कहते हैं। जब लोहे की कोई शय ढालनी मक़सूद हो तो उसके लिये पहले मिट्टी या लकड़ी का एक साँचा (pattern) बनाया जाता है। उसको हमारे यहाँ कारीगर अपनी बोली में "पाटन" कहते हैं। अब आप लोहे को पिघला कर उसमें डालेंगे तो वह उसी सूरत में ढल जायेगा। क़ुरान की इस्तलाह में यह "शाकिला" है जो हर इन्सान का बन जाता है। इरशादे बारी तआला है (बनी इसराइल): {قُلۡ كُلٌّ يَّعۡمَلُ عَلٰى شَاكِلَتِهٖؕ فَرَبُّكُمۡ اَعۡلَمُ بِمَنۡ هُوَ اَهۡدٰى سَبِيۡلًا ۟﴿۸۴﴾} "कह दीजिये कि हर कोई अपने

शाकिला के मुताबिक़ अमल कर रहा है। पस आपका रब ही बेहतर जानता है कि कौन सीधी राह पर है।" इस शाकिला के अन्दर-अन्दर आपको मेहनत करनी है। अल्लाह तआला जानता है कि किसका शाकिला वसीअ था और किसका तंग था, किसके genes आला थे और किसके अदना थे, किसके यहाँ ज़हानत ज़्यादा थी और किसके यहाँ जिस्मानी क़ुव्वत ज़्यादा थी। उसे खूब मालूम है कि किसको कैसी सलाहियतें वदियत की गयीं और कैसा माहौल अता किया गया। चुनाँचे अल्लाह तआला हर एक के महौलयाती अवामिल और मौरूसी अवामिल को मल्हूज़ रख कर उसकी इस्तदादात के मुताबिक़ हिसाब लेगा। फ़र्ज़ कीजिये एक शख्स के अन्दर इस्तदाद ही 20 दर्जे की है और उसने 18 दर्जे काम कर दिखाया तो वह कामयाब हो गया। लेकिन अगर किसी में इस्तदाद सौ दर्जे की थी और उसने 50 दर्जे काम किया तो वह नाकाम हो गया। हालाँकि कीमत के ऐतबार से 50 दर्जे 18 दर्जे से ज़्यादा हैं। तो अल्लाह तआला का मुहासबा जो है वह इन्फ़रादी सतह पर है। इसलिये फ़रमाया गया: {وَكُلُّهُمْ اٰتِيْهِ يَوْمَ الْقِيٰمَةِ فَرْدًا ۝٩٥} (सूरह मरयम) "और सब लोग क़यामत के दिन उसके हुज़ूर फ़रदन-फ़रदन हाज़िर होंगे।" वहाँ हर एक का हिसाब अकेले-अकेले होगा और वह उसकी वुसअत के मुताबिक़ होगा।

{لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا وُسْعَهَا ۭ} "के अल्फ़ाज़ में जो एक अहम उसूल बयान कर दिया गया है, बाज़ लोग दुनिया की ज़िन्दगी में उसका गलत नतीजा निकाल बैठते हैं। वह दुनिया के मामलात में तो खूब भाग-दौड़ करते हैं लेकिन

दीन के मामले में कह देते हैं कि हमारे अन्दर सलाहियत और इस्तदाद ही नहीं है। यह महज़ खुदफ़रेबी है। इस्तदाद व इस्तताअत और ज़हानत व सलाहियत के बगैर तो दुनिया में भी आप मेहनत नहीं कर सकते, कोई नताइज हासिल नहीं कर सकते, कुछ कमा नहीं सकते। लिहाज़ा अपने आप को यह धोखा ना दीजिये और जो कुछ कर सकते हों, वह ज़रूर कीजिये। अपनी शख्सियत को खोद-खोद कर उसमें से जो कुछ निकाल सकते हों वह निकालिये! हाँ आप निकाल सकेंगे उतना ही जितना आपके अन्दर वदियत है। ज़्यादा कहाँ से ले आयेंगे? और अल्लाह ने किसी में क्या वदियत किया है, वह वही जानता है। तुम्हारा मुहासबा उसी की बुनियाद पर होगा जो कुछ उसने तुम्हें दिया है। इस मज़मून की अहमियत का अंदाज़ा कीजिये कि यह क़ुरान मजीद में पाँच मर्तबा आया है।

لَهَا مَا كَسَبَتْ وَعَلَيْهَا مَا اكْتَسَبَتْ ۗ

"उसी जान के लिये है जो उसने कमाया और उसी के ऊपर वबाल बनेगा जो उसने बुराई कमाई।"

इस मक़ाम पर भी "لَ" और "عَلٰی" के इस्तेमाल पर गौर कीजिये। {لَهَا مَا كَسَبَتْ} से मुराद है जो भी नेकी उसने कमाई होगी वह उसके लिये है, उसके हक़ में है, उसका अज्रो सवाब उसे मिलेगा। {وَعَلَيْهَا مَا اكْتَسَبَتْ ۗ} से मुराद है कि जो बदी उसने कमाई होगी उसका बवाल उसी पर आयेगा, उसकी सज़ा उसी को मिलेगी।

अब वह दुआ आ गई है जो क़ुरान मजीद की जामेअ तरीन और अज़ीम तरीन दुआ है:

رَبَّنَا لَا تُؤَاخِذْنَآ اِنْ نَّسِيْنَآ اَوْ اَخْطَاْنَا ۚ

"ऐ हमारे रब! हमसे मुआख्ज़ा ना फ़रमाना अगर हम भूल जायें या हमसे खता हो जाये।"

ईमान और अमल सालेह के रास्ते पर चलते हुए अपनी शख्सियत के कोनों खद्दरों में से इम्कान भर अपनी बाक़ी मांदा तवानाइयों (residual energies) को भी निकाल-निकाल कर अल्लाह की राह में लगा लें, लेकिन इसके बाद भी अपनी मेहनत पर, अपनी नेकी, अपनी कमाई और अपने कारनामों पर कोई ग़र्रा ना हो, कोई गुरूर ना हो, कहीं इन्सान धोखा ना खा जाये। बल्कि उसकी कैफ़ियत तवाज़े, आजिज़ और इन्कसारी की रहनी चाहिये। और उसे यह दुआ करते रहना चाहिये कि ऐ मेरे परवरदिगार! हमारी भूल-चूक पर हमसे मुआख्ज़ा ना फ़रमाना।

इन्सान के अन्दर खता और निस्यान दोनों चीज़ें गुंधी हुई हैं: (اَلْاِنْسَانُ مُرَكَّبٌ مِنَ الْخَطَاءِ وَالنِّسْيَانِ) खता यह है कि आपने अपनी इम्कानी हद तक तो निशाना ठीक लगाया था, लेकिन निशाना खता हो गया। इस पर आपकी गिरफ़्त नहीं होगी, इसलिये कि आपकी नीयत सही थी। एक इज्तहाद करने वाला इज्तहाद कर रहा है, उसने इम्कानी हद तक कोशिश की है कि सही राय तक पहुँचे, लेकिन खता हो गयी। अल्लाह माफ़ करेगा। मुज्तहिद मुख्ती भी हो तो उसको सवाब मिलेगा और मुज्तहिद मुसीब हो, सही राय पर पहुँच जाये तो उसको दोहरा सवाब मिलेगा। और

निस्यान यह है कि भूले से कोई गलती सरज़द हो जाये। रसूल अल्लाह ﷺ का इरशाद है:

اِنَّ اللّٰہَ تَجَاوَزَ عَنْ اُمَّتِی الْخَطَأَ وَالنِّسْیَانَ

"अल्लाह तआला ने मेरी उम्मत से खता और निस्यान माफ़ फ़रमा दिया है।"

رَبَّنَا وَلَا تَحْمِلْ عَلَیْنَآ اِصْرًا كَمَا حَمَلْتَهٗ عَلَى الَّذِیْنَ مِنْ قَبْلِنَا ۚ

"और ऐ रब हमारे! हम पर वैसा बोझ ना डाल जैसा तूने उन लोगों पर डाला था जो हमसे पहले थे।"

एक हम्ल (बोझ) वह होता है जिसको लेकर इन्सान चलता है। उसी से "हिमाल" बना है जो एक बोरी को या बोझ को उठा कर चल रहा है। जो बोझ आपकी ताक़त में है और जिसे लेकर आप चल सके वह "हम्ल" है, और जिस बोझ को आप उठा ना सकें और वह आपको बिठा दे उसको "इस्र" कहते हैं। यह लफ्ज़ सूरह आराफ़ में फिर आयेगा: {وَيَضَعُ عَنْهُمْ اِصْرَهُمْ وَالْاَغْلٰلَ الَّتِيْ كَانَتْ عَلَيْهِمْ ۭ} (आयत:157) इन अल्फ़ाज़ में मुहम्मद रसूल अल्लाह ﷺ की यह शान बयान हुई है कि उन्होंने लोगों के वह बोझ जो उनकी ताक़त से बढ़ कर थे, उनके कन्धों से उतार दिये। हमसे पहले लोगों पर बड़े भारी बोझ डाले गये थे। शरीअते मूसवी हमारी शरीअत की निस्बत बहुत भारी थी। जैसे उनके यहाँ रोज़ा रात ही से शुरू हो जाता था, लेकिन हमारे लिये यह कितना आसान कर दिया गया कि रोज़े से रात को निकाल दिया गया और

सहरी करने की ताकीद फ़रमायी गयी: ((تَسَحَّرُوْا فَاِنَّ فِی السُّحُوْرِ بَرَکَۃً))(38) "सहरी ज़रूर किया करो, इसलिये कि सहरियों में बरकत रखी गयी है।" फिर रात में ताल्लुक़ ज़नो-शौ की इजाज़त दी गयी। उनके रोज़े में ख़ामोशी भी शामिल थी। यानि ना खाना, ना पीना, ना ताल्लुक़ ज़नो-शौ और ना गुफ्तगू। हमारे लिये कितनी आसानी कर दी गयी है! उनके यहाँ यौमे सब्त का हुक्म इतना सख्त था कि पूरा दिन कोई काम नहीं करोगे। हमारे यहाँ जुमे की अज़ान से लेकर नमाज़ के अदा हो जाने तक हर कारोबारे दुनयवी हराम है। लेकिन उससे पहले और उसके बाद आप कारोबार कर सकते हैं।

رَبَّنَا وَلَا تُحَمِّلْنَا مَا لَا طَاقَةَ لَنَا بِهٖ

"और ऐ रब हमारे! हम पर वह बोझ ना डाल जिसकी हम में ताक़त ना हो।"

وَاعْفُ عَنَّا

"और हमसे दरगुज़र फ़रमाता रह!"

हमारी लग्ज़िशों को माफ़ करता रह!

وَاغْفِرْ لَنَا

"और हमें बख्शता रह!

हमारी खताओं की पर्दापोशी फ़रमा दे!

मग़फ़िरत की लफ्ज़ को समझ लीजिये। इसमें ढाँप लेने का मफ़हूम है। مِغْفَرْ 'खूद' (हेलमेट) को कहते हैं, जो जंग में सर पर पहना जाता है। यह सर को छुपा लेता है और उसे

गोली या तलवार के वार से बचाता है। तो मग़फ़िरत यह है कि गुनाहों को अल्लाह तआला अपनी रहमत से ढाँप दे, उनकी पर्दापोशी फ़रमा दे।

وَارْحَمْنَا ۚ

"और हम पर रहम फ़रमा।"

اَنْتَ مَوْلٰىنَا

"तू हमारा मौला है।"

तू हमारा पुश्तपनाह है, हमारा वली है, हमारा हामी व मददगार है। हम यह आयत पढ़ आये हैं: { اَللّٰهُ وَلِيُّ الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا ۙ يُخْرِجُهُمْ مِّنَ الظُّلُمٰتِ اِلَى النُّوْرِ ۗ } (आयत:257)।

فَانْصُرْنَا عَلَى الْقَوْمِ الْكٰفِرِيْنَ ﴿٢٨٦﴾

"पस हमारी मदद फ़रमा काफ़िरों के मुक़ाबले में।"

इन्हीं अल्फ़ाज़ पर वह दुआ ख़त्म हुई थी जो तालूत के साथियों ने की थी। अब अहले ईमान को यह दुआ तलक़ीन की जा रही है, इसलिये कि मरहला सख्त आ रहा है। गोया:

ताब लाते ही बनेगी ग़ालिब
मरहला सख्त है और जान अजीज़!

अब कुफ्फ़ार के साथ मुक़ाबले का मरहला आ रहा है और उसके लिये मुस्लमानों को तैयार किया जा रहा है। यह दर हक़ीक़त गज़वा-ए-बद्र की तमहीद है।

بارک اللہ لی ولکم فی القرآن العظیم ونفعنی وایاکم بالآیات والذکر الحکیم

❀ ❀ ❀